पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम

(आद्य भारतीय इतिहास की रूपरेखा)

लेखक
डॉ० कुंवरलाल जैन व्यासशिष्य

इतिहासविद्याप्रकाशन
दिल्ली भारत

"यह ग्रन्थ, मानवसंसाधनविकास मन्त्रालय, भारतसरकार की
आर्थिक सहायता से प्रकाशित हुआ।"

बी-२६ धर्मकोलोनी,
नागलोई, दिल्ली-११००४१.

प्रकाशन वर्ष १९८९
मूल्य 80 रुपयामात्र

मुद्रक : नवीन प्रिन्टर्स
ई-१५० कृष्णविहार, दिल्ली-११००४१.

भारतीय एवं विश्वइतिहास के सन्दर्भ में—
सर्वप्रथम मौलिक, क्रान्तिकारी एवं अद्भुत खोज

पुराणोंमें वंशानुक्रमिककालक्रम

पूर्वपीठिका (विवेचनात्मकभाग)
ग्रन्थकी बृहतीभूमिका

डा० वाकणकर की सम्मति

डॉक्टर कुंवरलाल व्यासशिष्य की मैने प्रमाणत: एक पुस्तकपढी व अभ्यास किया वह थी "भारतीय इतिहासपुर्नलेखन क्यों" ? तथा "पुराणों में इतिहासविवेक।"

पाश्चात्यो की धारणाओ पर उन्होंने उनमें कुठाराघात किया था तथा वान डेनिकेन जैसे अवैज्ञानिक लेखको को सहायतार्थ संदर्भित किया था, अत: मैंने उन्हे अवैज्ञानिक दोष को दूर करने के लिये कहा। मै उनके कालगणनाविवरण को सम्मानित करता हू क्योकि पेण्डयूलम का एक कोणशिरा पाश्चात्यो ने आधुनिकता की ओर मोडा था, अत स्वाभाविक प्रक्रिया मे वह दूसरी ओर उतना ही जावेगा, पर उनके कथन मे आस्था और प्राचीन-परम्परा के सही दृष्टिकोण को रखने की आकाक्षा स्पष्ट थी। अब यह उनका दूसरा ग्रन्थ 'प्राचीन इतिहास की अभूतपूर्व अद्भुत, मौलिक और क्रातिकारी निर्णायक खोज भी मेरे सम्मुख है—वास्तव मे पुस्तक मे पुस्तक के विषय मे ही उन्होने अपनी प्रशस्ति दे दी है, मै सोच रहा था कि निर्णायकता के स्थान पर विचारप्रवणता के लिये उसे, उन्होंने मुक्त रखना चाहिए था, यदि मौलिकता है तो वह निश्चित आदरणीय होगी अन्यथा दृष्टिओझल हो जायेगी।

उन्होने मानुषवर्षो की चर्चा की है। परिवर्तयुग की चर्चा की है। वास्तव मे पहली बार पढने पर तो वह मेरी बुद्धि के परे की बात है, ऐसा ही लगा पर पुनश्च पढा व पुनश्च पढा तब बाते ध्यान मे आने लगी और लगता है भारतीय पौराणिकपरम्परा का तब कालमानपद्धति का ऐसा भी विचार होना आवश्यक है अन्यथा हम हमारी परम्परा के प्रति अन्याय न कर दे।

विश्वमस्कृति के मूल प्रजापतिकश्यपसम्बन्धी विवेचन भी गहन है तथा सस्कृतसंदर्भों महित परीक्षणयोग्य है। एक सावधानी रखनी होगी। सुमेरीय लेखों या संदर्भ उनके मूलपाठ मे देना चाहिए, अन्यथा अनैतिहासिकता का दोष होगा। निप्पुर के हिरण्यपुर होने मे भाषाशास्त्रीय आधार भी खोजना होगा।

वैसे ही बलिदैत्य का बेलजियम 'स्वीडन' का श्वेतदानव, डीट्सलेण्ड' (वास्तविक डौशलैण्ड) का दैत्यस्थान बनाना कहा तक वैज्ञानिक होगा यह भी सोचना होगा, भाषाशास्त्रीय आधारों को टालना ही श्रेयष्कर होगा, अत में व्यासशिष्यजी ने मैक्सिको के मयदानव का व मयो का सम्बन्ध भी प्रस्थापित किया है, वास्तव मे मयो की ५००० वर्ष की वशसूची प्रकाशित है, तथा उसका गहन अभ्यास कर यह सम्बन्ध प्रस्थापित करना योग्य होगा फिर भी मै यह कहूगा कि यह सम्पूर्ण विवेचन प्रकाशित होना आवश्यक है, क्योकि भारतीय इतिहास की धारणा का यह अग कम महत्वपूर्ण नहीं हैं तथा अस्मिता भी खोज में गति देने के लिए यह भी सशक्त आधार होगा और तब चर्चितचरण मे से परस्पर विरोधीप्रमाणों के मथन से सत्यरूपी अमृत की प्राप्ति तब होगी, मैं डॉ० कुवरलालजी को साधुवाद देता हूं कि उन्होंने यह एकाकी बीड़ा उठाया है तथा इसका परिणाम शीघ्र ही विचारदोहन से नवनीत के रूप मे प्रकट होगा ।

विष्णु वाकणकर
रामनवमी
युगाब्द ५०८६

आमुख

(मिथ्या इतिहास से हानियाँ और सच्चे इतिहास से लाभ)

अंग्रेजों द्वारा मिथ्या इतिहासलेखन—पिछले एक सहस्रवर्ष मे, अनेक कारणो से विश्व और भारत का सच्चा इतिहास बहुत कुछ अस्त व्यस्त हो गया; ऐसी स्थिति मे, पाश्चात्यो (विशेषत. अंग्रेजो) ने प्रच्छन्न षड्यन्त्र के द्वारा—भारत का मिथ्या इतिहास लिख डाला, अंग्रेजो द्वारा, भारत का सच्चा इतिहास लिखना उनका उद्देश्य हो भी नही सकता और नही वह उद्देश्य था ही। अपने राजनैतिक स्वार्थहेतु पाश्चात्यो ने भारतीयगौरव और एकता को नष्ट करने के लिए घोर भ्रमो और कल्पनाओ का आश्रय लिया, उदाहरणार्थ, भारत पर पर अपना अधिकार वैध सिद्ध करने के लिये, उन्होने 'आर्य' जाति की कल्पना की और आर्यद्रविडसघर्ष को भारत मे फूट डालने के लिये घढा गया। साम्राज्यदृढीकरण के अतिरिक्त भारतीय शास्त्रो—विशेषत. वेद और पुराणो को झूठा माना गया, जिससे अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी संस्कृति का प्रचारप्रसार हो। मैकाले और तदनुयायी मैक्समूलर कीथादि अपने उद्देश्यो मे सहस्रगुणा सफल हुये और मैकाले का काले अंग्रेज उत्पन्न करने का स्वप्न तो पूरा हुआ ही, साथ ही भारत मे मिथ्या इतिहासकार और मिथ्याप्राच्यविशारद (संस्कृतज्ञ) भी उत्पन्न किये, जो भारतीय संस्कृति की जडे खोदते रहे है। उदाहरणार्थ वाडेलस-दृश अंग्रेज प्राच्यविशारदो की मान्यता थी कि 'ब्रिटेन' (Britain)शब्द 'भरत' शब्द का अपभ्रंश है एव सुमेरिया और बेबीलन की प्राचीन भाषाओ का संस्कृत से पूर्णसाम्य था, विदेशी वैज्ञानिक यह भी मानने को तैयार है कि कि प्राचीन भारत मे विमानविद्या और अन्तरिक्षयात्रा होती थी, परन्तु दाण्डेकर और मजूमदार जैसे तथाकथित इतिहासकार इन तथ्यो को मिथ्या कल्पनाये समझते है।

पाश्चात्यों और तदनुयायी भारतीय, तथाकथित इतिहासकारो ने आर्य द्रविडसंघर्ष के समान अनेको मिथ्या कल्पनायें की, उन्होने सम्पूर्णभारतीय इतिहास को, जो विशेषत, पुराणो मे मिलता है, उसको मिथ्या माना, उनका इतिहास केवल बिम्बसार और गौतमबुद्ध से शुरू होता है, उससे

पूर्व के ऋषि, राजर्षि और महापुरुष यथा—मनु, इन्द्र, ययाति, मान्धाता भरत दौष्यन्ति, राम, कृष्ण और युधिष्ठिरादि- ऐतिहासिक पुरुष नहींथे। रामायण-महाभारत को वे इतिहास के ग्रन्थ नहीं मानते।

पाश्चात्यो ने चन्द्रगुप्तमौर्य को सिकन्दर के समकालिक मानकर उसकी एक काल्पनिक तिथि निश्चित कर दी और उसी आधारतिथि के आधार पर प्राङ्मौर्य व मौर्योत्तर तिथियाँ घड दी गई। विक्रमसवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य (शूद्रक) को ऐतिहासिकमान्यता नही दी, जिसका संवत् उसके अस्तित्व में सर्वाधिक सशक्त प्रमाण है क्योकि उसकी मान्यता से मिथ्या कल्पनाओ पर पानी फिर जाता तथा भारत का गौरव बढ़ता।

अविद्यासागर मे निमग्न—भारत का मिथ्या इतिहास तो हमे पढ़ाया ही जाता है, जिसको शुद्ध करने का 'स्वतन्त्रभारत' मे भी कोई प्रयत्न नही हुआ, वरन् आज भारत और विश्व, अनेक प्रकार की अविद्याओ और अज्ञानो के सागर मे डूबा हुआ है—

> अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं पण्डितम्मन्यमानाः।
> जघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

इस अविद्यासागर मे निमग्न होने के अनेक कारण है, परन्तु, मुख्यरूप से असुरत्रयी—डार्विन, मार्क्स और फ्राइड के तीन मिथ्यासिद्धान्तो—मिथ्याविकासवाद, मिथ्यासाम्यवाद और मिथ्यास्वच्छन्दतावाद—के कारण अविद्यासागर की उत्ताल तरंगें विश्व मे मानव को अज्ञान के थपेड़े लगा रही हैं। जैसा कि वासुदेव कृष्ण ने गीता मे कहा है—

"मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।"

अतः घोर अविद्यासागर से, मानव के उद्धार (निकलने) का मुख्य उपाय है विश्व और भारत का सच्चा इतिहास प्रकाशित होना।

सच्चे इतिहास के ज्ञान से, मानव की, न केवल, भौतिक उन्नति होगी—(निश्चयपूर्वक होगी), बल्कि वह अध्यात्म की ओर भी प्रवृत्त होगा, जिससे उसका ऐहिक और पारलौकिक कल्याण होगा।

सत्य इतिहास से लाभ—इस ग्रन्थ के लेखक ने प० भगवद्दत्त के अनुसंधानों से प्रेरणा लेकर संस्कृतसाहित्यसागर का मन्थन करके यह ग्रन्थरूपी-रत्न निकाला है। इस ग्रन्थ में केवल वंशक्रम और तिथिक्रम निश्चित

किया गया है, जो इतिहास का मुख्य आधार है—यह इतिहास की एक रूपरेखामात्र ही है। घटनाक्रम से पूर्ण विस्तृत इतिहास—स्वायम्भुवमनु से यशोधर्मा (जैनकल्कि) तक, न्यूनतम १० भागो मे लिखने एव प्रकाशित करने का लेखक का संकल्प और प्रकल्प है।

सच्चे इतिहास के मुख्य लाभो का परिगणन इस प्रकार है—(१) **भारतीय गौरव की प्रतिष्ठा**—न केवल भारतीय वाङ्मय, वरन्, विदेशी वाङ्मय यथा बाइबिल, अवेस्ता, मिश्री और मयसभ्यता से प्रमाणित होता है कि जलप्रलयपूर्व और जलप्रलय के पश्चात् (१२००० वि०पू०) भारत से मानवजाति का सम्पूर्ण पृथिवी पर प्रसार हुआ। सच्चे इतिहास से यह भी सिद्ध होगा, जैसा कि मनुस्मृति मे कहा है—

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा॰॥

अत. ऐतिहासिक तथ्यो से विश्वमानवऐक्य के साथ भारतीय एकता पुष्ट होगी। सभी मानव मनु (नूह) और स्वायम्भुव मनु (आदम) की सन्तान है।

देवभाषासंस्कृत की प्रतिष्ठा—विश्व के आदिमानव की आदिम और मूलभाषा देववाणी संस्कृत थी, यह तथ्य भी सच्चे इतिहास से पुष्ट होगा। इस तथ्य मे जब मानव का विश्वास हो जायेगा तब विश्व संस्कृत की ओर झुकेगा और **तब भारत मे अंग्रेजी भाषा का साम्राज्य ढह जायेगा और भारतीय भाषाओं की प्राणप्रतिष्ठा होगी।**

स्वायम्भुवमनु और ऋषभदेव वैवस्वतमनु, इन्द्र, भरतमुनि सदृश महापुरुषो ने आदिकाल में, विश्व में कृषि, लेखन (ब्राह्मी) धर्मशास्त्र, साहित्य, और ज्ञानविज्ञान की प्रतिष्ठा की। ये महापुरुष, केवल भारत के नही, सम्पूर्ण विश्वसस्कृति के प्रतिष्ठाता थे यह तथ्यो से सुप्रमाणित होगा।

लेखक की क्रान्तिकारी मुख्य मौलिक खोजें—सूत्ररूप मे इस ग्रन्थ मे मौलिक खोजे इस प्रकार है—(१) डार्विन का तथाकथित विकासवाद का अपसिद्धान्त मिथ्या है।(२) मनुष्य, आज से ३२ सहस्रवर्षपूर्व स्वयम्भूपुरुष—स्वयम्भुवमनु और शतरूपा (आदम और हौवा) से उत्पन्न हुआ। (३) परिवर्तयुग की मौलिक खोज द्वारा ही यह सिद्ध हुआ कि स्वायम्भुव मनु से महाभारतकाल तक २६००० वर्ष या ७१ परिवर्तयुग व्यतीत हुये। ७१

परिवर्तंयुगों का उल्लेख प्रत्येक पुराण से है। इसी प्रकार वैवस्वतमनु से युधिष्ठिर पर्यन्त २८ परिवर्तंयुग (३६०×२८=१००८०) या दशसहस्र वर्ष व्यतीत हुये थे। परिवर्तयुग का कालमान ३६० मानुषवर्ष था। (४) स्वायम्भुवमनु, ऋषभ कर्दम, मरीचि, भृगु, वरुण, इन्द्र, वैवस्वतमनु, यम आदि विश्वसस्कृति के प्रवर्तक थे। (५) पृथु वैन्य पृथिवी का प्रथम सम्राट् था, जो अबसे लगभग १७००० वर्ष पूर्व हुआ। (६) वर्तमान मानवसृष्टि के प्रमुख प्रजापति परमेष्ठी कश्यप थे, जिनसे पञ्चजन जातियाँ—असुर (दैत्य-दानव) देव (आदित्य), गन्धर्व, नाग और सुपर्ण उत्पन्न हुई, जिन्होने सम्पूर्ण पृथिवी को बसाया। पूर्व उत्पन्न होने के कारण (इन्द्र और वैवस्वतमनु की सन्तति से) पूर्वदेव असुर सम्पूर्ण पृथिवी के अधिपति थे। (७) तदनन्तर पश्चाद्देवों (दानवो और आदित्यों) का पृथिवी पर शासन हुआ। (८) भारतवर्ष से असुर साम्राज्य समाप्त करने के कश्यप के कनिष्ठपुत्र वामन विष्णु का प्रमुखयोगदान था, जब आज से १२००० वर्षपूर्व दैत्येन्द्र बलि के नेतृत्व मे असुर पाताल (योरोप) मे चले गये। (९) पश्चिमीएशिया (ईरान-ईराक-यमनादि) में वरुण और यम की सन्तति का शासन था। (१०) ययाति, मान्धाता भरत दौष्यन्ति, सहस्रबाहु अर्जुन, सगरादि विश्व-सम्राट् (सप्तद्वीपेश्वर) थे। (११) प्राचीन मानव दीर्घजीवी थे और प्रारम्भिक सम्राटो—पृथु, मान्धाता, ययाति, सहस्रबाहु आदि ने दीर्घकालपर्यन्त शासन किया। (१२) हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद और बलि का शासन विशेषत: अफ्रीका और योरोप मे था, यह तथ्य आज भी डीट्सलैंड, दैत्य, बेरूत (वरूत्री) और त्रिपोली (त्रिपुरसदृश) नामावशेषों से प्रमाणित किया गया है। (१३) क्षीरसागरका ही नाम कश्यप(कैस्पियन)सागर था। यही पर विष्णु, वैनतेय गरुड और शेषनाग के साथ रहते थे। (१४) द्वादश देवासुरसंग्राम और समुद्रमन्थन देवयुग की प्रमुख घटनायें थी। समुद्रमन्थन एक वैज्ञानिक खोज वा अभियान था। (१५) असुरों की सभ्यता और सस्कृति आधुनिक विमानविद्या और अन्तरिक्षविज्ञान से बढचढ़कर थी, असुर मय और तारक ने अन्तरिक्ष मे परिक्रमणशील तीन नगर (त्रिपुर) बनाये और बसाये थे। (१६) पणियों की शिल्पविद्या और नौनिर्माणविद्या भी श्रेष्ठतम थी, जिससे वे सुदूरसमुद्रो की जलयात्रा करते थे एवं योरोप तक व्यापार एव उपनिवेशन किया। (१७) नरिष्यन्त की सन्तान शक और अनु—तुर्वसु की सन्तान 'यवन' कहलाये। (१८) महाभारतकाल से लगभग दोसहस्रपूर्व, दाशरथिराम से कुछ पूर्व, यादवों और आभीरों ने 'इजरायल'

राष्ट्र बसाया; जो क्रमशः यहूदी और 'हिब्रू' कहलाये। (१६) दक्षिणापथ (द० भारत) मे इक्ष्वाकु के वंशजों का शासन था।

लेखक की भारतोत्तर इतिहास में मुख्य खोजें हैं—(१) भारतयुद्ध की तिथि ३०८० वि० पू० थी, ३०४४ वि० पू० कृष्णनिधन के दिन से कलियुग आरम्भ हुआ। (२) कल्कि विष्णुधर्मा (पाराशर्य) का अवतार कृष्णनिधन से एक हजार वर्ष पश्चात् हुआ, (३) कल्कि और विशाखयूप समकालिक (२००० वि० पू०) थे, (४) काकवर्ण का नाम ही सुन्दरवर्मा और कल्याणवर्मा क्षेमवर्मा था, काकवर्ण किसी 'यवनेश्वर' द्वारा धोखे से मारा गया, (५) चन्द्रगुप्तमौर्य, सिकन्दर से लगभग १२०० वर्षपूर्व हुआ, (६) अशोकाशिलालेखो मे यवनराजाओ का नही, १४०० वि० पू० के यवनराज्यों का उल्लेख है, (७) सिकन्दर का आक्रमण और पलायन किसी सातवाहनराजा के समय मे हुआ, (८) शूद्रकविक्रम ने कृतमालव (विक्रम) सवत् चलाया, (६) क्षुद्रक ही शूद्रक थे (१०) १३५ वि० सं० में साहसाक चन्द्रगुप्त ने शको का विनाश करके शकसंवत् चलाया, (११) और यशोधर्मा ही जैनकल्कि था।

वसन्तपञ्चमी—(१०-२-१६८६)। डॉ० कुवरलालजैनव्यासशिष्य

विषयसूची

(पूर्वपीठिका)

पूर्वखण्डात्मकभाग

उत्तरभाग

(विषयसूची)

१

भारतीय इतिहास की विकृति के कारण

इतिहास पुनर्लेखन की आवश्यकता—जब से भारतभूमि बाह्य दास्यभाव अर्थात् १९४७ में जब से अंग्रेजों की परतन्त्रता से स्वतन्त्र हुई है तब से अब तक शासकवर्ग एवं विद्वद्वर्ग में बहुधा वीर घोषणायें होती रही हैं कि भारतीय इतिहासपुनर्लेखन की महती आवश्यकता है परन्तु अद्यपर्यन्त ४० वर्ष व्यतीत होने पर भी किसी वर्ग की ओर से गम्भीर प्रयत्न तो क्या इतिहासपुनर्लेखन का साधारण या हल्का प्रयत्न तक भी नहीं हुआ। विद्वद्वर्ग में केवल एक व्यक्तिगत लघु परन्तु गंभीर प्रयत्न भारतीय स्वतन्त्रता से पूर्व ही किया था जबकि सन् १९४० में लाहौर में पण्डित भगवद्दत्त ने भारतवर्ष का इतिहास प्रथम बार बड़ी कठिनाई से प्रकाशित किया। पण्डितजी के प्रयत्न स्वतन्त्रता के पश्चात् भी लगभग ३० वर्ष पर्यन्त अर्थात् १९६८ तक जब तक वे जीवित रहे चलते रहे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पण्डित भगवद्दत्तजी के इतिहासपुनर्लेखन के प्रयत्न महान् अन्धकारसागर में प्रकाशस्तम्भ के समान मार्गदर्शक हैं परन्तु एकाकी हैं। उनके समानधर्मा सर्वश्री युधिष्ठिर मीमांसक (संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास) उदयवीरशास्त्री (सांख्यदर्शन का इतिहास) सुरमचन्द्र कृत आयुर्वेद का इतिहास इत्यादि प्रयत्न भी एकाकी या अपूर्ण ही हैं फिर भी सत्यशोधकों के परमसहायक हैं जबकि आंग्लप्रभुओं के तदनुयायी भारतीय कृष्णप्रभुओं ने इतिहास में घोर मिथ्यावादों की कर्दम (कीचड़) की दलदल उत्पन्न कर रखी है। इस घोर कीचड़ से निकलना सामान्यबुद्धि का काम नहीं जिसमें डॉ० मंगलदेव शास्त्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल डा० काशीप्रसाद जायसवाल और पण्डित बलदेव उपाध्याय जैसे प्राच्यविद्याविशारद भी फंसकर नहीं निकल सके।

भारतीय इतिहासपुनर्लेखन की महती आवश्यकता क्यों है इस तथ्य को प्रायः प्रत्येक विद्वान् जान सकता है फिर भी संक्षेप में हम इस आवश्यकता पर विचार मन्थन करेंगे।

आंग्लप्रभुओं ने अपनी षड्यन्त्रपूर्ण—मैकालेयोजना के अन्तर्गत ऐसे समय में भारत का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया जबकि भारतदेश अपने अतीत

गौरव एवं प्राचीनतम इतिहास को अन्धतम अज्ञानावर्त मे डाल चुका था। आंग्लप्रभुओं ने अपने मिथ्याज्ञान के द्वारा उस अन्धतम अज्ञानावर्त पर और गर्त चढ़ाई। इसमें कोई सन्देह नही कि भेद (फूट) और अज्ञान के बीज भारतवर्ष मे अत्यन्त प्राचीनकाल से थे और अब भी हैं, विदेशी शासकों द्वारा भारतीय भेदमूलक तत्वों यथा जातिवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद और अज्ञान का लाभ उठाना स्वाभाविक था, अतः उन्होने भेदमूलक एव अज्ञानमूलक उपादानों का उपबृंहण अथवा विस्तार किया। अतः अंग्रेजो ने आर्य-अनार्य या आर्य-दस्यु या आर्य-द्रविड समस्या खड़ी करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि भारतवर्ष सदा से ही विदेशी जातियो का उपनिवेश या अड्डा रहा है, इसके द्वारा प्रत्यक्ष या प्रच्छन्नरूप से वे सिद्ध करना चाहते थे कि भारतवर्ष में अंग्रेजो का राज्य या शासन सर्वथा वैध या न्यायपूर्ण है, जबकि आर्य-द्रविड या उनसे भी पूर्व शबर, मुण्ड, आन्ध्र, पुलिन्द आदि जातियाँ यहाँ बाहर से आकर बसती रही और भारतभूमि पर आधिपत्य करती रही।

अंग्रेजो ने भारतीय एकता के उपादानो या घटनाओ का अपने इतिहास-ग्रन्थो मे कोई उल्लेख नही किया, यथा अगस्त्य या पुलस्त्य, राम या हनुमान् या व्यास को उन्होने ऐतिहासिक पुरुष ही नही माना, इनकी ऐतिहासिकता की उन्होने पूर्ण उपेक्षा ही की। अगस्त्य-पुलस्त्य के दक्षिण अभियान की उन्होने चर्चा ही नही की, जो उत्तर-दक्षिण-भारतीय एकता का महान् प्रतीकात्मक उपक्रम था। प्रायः स्वय सिद्ध एकता-मूलक तथ्यो मे भी उन्होने भेद के बीज देखे। वेद, जो न केवल भारतवर्ष वरन् विश्वसंस्कृति का मूल है, उसे केवल उत्तरभारतीय या पजाब या पांचाल (उत्तर प्रदेश) की सम्पत्ति सिद्ध किया गया। संस्कृतभाषा, जो मानवजाति की आदिभाषा या मूलभाषा है, उसका उद्गम एक काल्पनिक एव बाह्य इण्डो-यूरोपियन भाषा में माना गया।

अंग्रेज या पाश्चात्यमिथ्याभिमानी लेखको द्वारा प्रत्येक प्राचीनभारतीय विद्या या श्रेष्ठज्ञानविज्ञान को विदेशी मूल का सिद्ध करने का प्रयत्न किया। यहाँ पर प्रत्येक विषय या शीर्षक के विस्तार मे जाने की आवश्यकता नही है, परन्तु अतिसक्षेप मे कथन करेंगे। जब पाश्चात्यो ने यहाँ की प्राचीनजातियो, भाषाओ और धर्मों को विदेशी बताया तो उन्होने प्रत्येक प्राचीन एव श्रेष्ठ-विद्या का मूल भी बाह्यदेश को बताना आरम्भ किया। यथा पाश्चात्यो के अनुसार प्राचीनतमकाल मे भारतीयो ने ज्योतिषविद्या या नक्षत्रविद्या बैबीलन या कालडियावासी असुरो से सीखी, द्वादश राशियों का ज्ञान या सप्ताह के वारों के नामादि यूनानियो से सीखे। पाणिनिव्याकरण सूत्र में एक 'यवनानी' लिपि का उल्लेख है; इस आधार पर पाश्चात्यों ने कल्पना की कि भारतीयों

ने लिपि या लिखना, सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् यूनानियों से सीखा। इसी प्रकार भारतीयनाट्यकला का उद्गम ग्रीकनाटकों मे देखा गया। पाश्चात्यो ने यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की कि भारतीयों ने नगरनिर्माण-कला, स्थापत्यकला (भवनशिल्प), शासनव्यवस्था आदि सभी कुछ यूनानियों से सीखे। उनके अनुसार आर्यजाति तो यायावर या घुमक्कड़ थी, उन्हें न तो नगर बसाना आता था न खेती करना और न शासन करना और न उन्हें धातुज्ञान था, न समुद्र से उनका परिचय था। आर्यों ने धर्म के उपादान उपासनापद्धति आदि यहाँ के वनवासियो या द्रविड़ादि जातियो से सीखे। आर्य तो कूपमण्डूक जाति थी, समुद्रयात्रा या नाव बनाना उन्होंने द्रविड़ों से सीखा। मैक्समूलर, विन्टरनीत्स कीथ मैकडानल आदि को वेदमन्त्रों में समुद्र का उल्लेख ही दिखाई नहीं दिया, फिर आर्य समुद्रयात्रा कैसे करते, उनके अनुसार प्राचीनभारतीय आर्य भेड़ बकरी चराने वाले गड़रिये थे, वेदमन्त्र इन्हीं गड़रियो के गीत हैं, जो ऋषिमुनियो द्वारा भेड़-बकरी चराते समय गाये जाते थे।

पाश्चात्यो का षड्यन्त्र और मिथ्याज्ञान स्वाभाविक ही था, परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भी उसी पाश्चात्य आंग्लविद्या का गुणानुवाद और पठन-पाठन सचेता भारतीय के लिए बुद्धिगम्य नहीं है। भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास के पुनर्लेखन की महती आवश्यकता है, परन्तु आज भी स्वतन्त्रता के ४० वर्ष पश्चात् हमारे विद्यालयो, महाविद्यालयो एवं विश्वविद्यालयों मे भारतीय इतिहास एवं संस्कृतसम्बन्धी पाश्चात्यलेखको (यथा कीथ, वेबर, मैकडानल, विन्टरनीत्स, मैक्समूलर आदि) के ग्रन्थ परम-प्रामाणिकग्रन्थों के रूप मे पढाये जा रहे हैं, वे ही संस्कृतसाहित्य के इतिहासग्रन्थ, जो पाश्चात्यो ने भारतवर्ष पर शासन करने की दृष्टि से लिखे थे। हमारे विद्याकेन्द्रों में ज्यों-की-त्यों लगभग सौ वर्ष से पढ़ाये जा रहे हैं। हमारे विश्व-विद्यालयों के प्राध्यापको मे वे ही अंग्रेजीकाल के सड़े-गले विचार भरे हुए हैं वे उन्ही भ्रष्ट एवं मिथ्यापाश्चात्यग्रन्थो को पढते हैं और उन्हीं के आधार पर पढ़ाते हैं। न केवल इतिहास के क्षेत्र मे वरन् राजनीतिक, मनोविज्ञान, गणित, ज्यामिति, शिल्प या यन्त्रविज्ञान (इंजीनियरिंग) या दर्शन या चिकित्साविज्ञान आदि के क्षेत्र में अभी तक परमप्रामाणिक भारतीयलेखको या ग्रन्थो का प्रवेश तो क्या स्पर्श तक भी नही है। पाठ्यक्रमों के राजनीतिशास्त्र ग्रन्थो में अरस्तू या प्लेटो की बहुधा चर्चा होती है, परन्तु शुक्राचार्य, विशालाक्ष, बृहस्पति, व्यास या चाणक्य का नाममात्र भी नही मिलेगा, इसी प्रकार प्राचीनभारतीयगणित, दर्शन या शिल्प-विज्ञान कितना ही श्रेष्ठ या उच्चकोटि का हो उसका स्पर्शमात्र भी पाठ्यग्रन्थो

मे नहीं मिलेगा। इतिहास के क्षेत्र मे रामायण, महाभारत और पुराणों को तो कीथादि की कृपा से अछूत ही बना दिया गया है। हमारा मत यह है कि प्राचीनभारत का मूल इतिहासपुराणों मे ही लिखा मिलता है। मूल इतिहास पुराणों को स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों मे अनिवार्य बनाना चाहिए, शासन या शिक्षणसंस्थानो द्वारा इतिहासपुराणो के इतिहाससम्बन्धी संशोधित भाग प्रकाशित होने चाहिएं। पाश्चात्यो के मिथ्याग्रन्थो का पूर्ण बहिष्कार होना चाहिए।

अब हम संक्षेप मे भारतीय इतिहास की विकृतियों के कारणो का सिंहावलोकन करेंगे। विकृति के कारणो के परिचय के साथ-साथ ही मुख्य विकृतियों का ज्ञान भी हो जाएगा, फिर भी यह जान लेना चाहिए कि भारतवर्ष तो क्या, विश्व के इतिहास में मुख्यविकृति कालक्रम (Chronology) सम्बन्धी है, यही इतिहासविकृति की नाभि या केन्द्र है। इस ग्रन्थ मे मुख्यतः इसी विकृति का निराकरण किया जाएगा, अन्य विकृतियाँ तो आनुषंगिक या इस विकृति की अगमात्र हैं, अतः प्रधानविकृति के निराकरण से उपागभूत विकृतियाँ स्वय निराकृत हो जाएंगी, जैसाकि पतञ्जलिमुनि ने *महाभाष्य* मे लिखा है—

"प्रधाने कृतो यत्न· फलवान् भवति।"

पाश्चात्य षड्यन्त्र

मैकालेयोजना के अन्तर्गत पाश्चात्यों द्वारा इतिहासलेखन का उद्देश्य—(पूर्वाभास)—प्रायेण ससार मे सदा से ही यह परम्परा या नियम रहा है कि विजेता (व्यक्ति या जाति) विजित की परम्परा (इतिहास) और गौरव को या तो पूर्णतः नष्ट-भ्रष्ट कर देता है या उसमे तोड-मरोड करता है, क्योकि इसी मे उसका स्वार्थ निहित होता है। इस नियम का उदाहरण स्वयं भारतीय इतिहास के प्राचीनतम अध्याय—देवासुरसघर्ष से दिया जा सकता है। देवो के अग्रज—हिरण्यकशिपु, विप्रचित्ति, प्रह्लाद, बलि आदि की सभ्यता और संस्कृति इन्द्रविष्णुविवस्वानादि देवो के तुल्य और कुछ अर्थों मे देवों से भी बढकर थी, यथा वेदो का विस्तार, देवों की अपेक्षा असुरो मे अधिक ही था—स्वय देवपूजक ब्राह्मणों ने लिखा है—'कनीयासि वै देवेषु छन्दास्यासन् ज्यायांस्यसुरेषु (तैतिरीयसंहिता ६/६११)। असुरो की मायाशक्ति (विज्ञान या शिल्प) अत्यन्त उच्चकोटि का था—

तयैतया मायया ऽद्यापि सर्वे मायाविनोऽसुराः।
वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेषाममितं बलम्॥ (हरिवंश ६।३१)

देवपुरोहित बृहस्पति के पुत्र कच ने असुरगुरु शुक्राचार्य से अमृतसंजीवनी विद्या सीखी थी। इन्ही असुरों की सभ्यता और संस्कृति का देवो ने नाश किया और आज इन असुरो का इतिहास प्रायेण पूर्णतः विलुप्त है। कुछ असुरनरेशों के नाममात्र के अतिरिक्त उनके इतिहास के सम्बन्ध मे हमे कुछ भी ज्ञात नही है।

इसी प्रकार द्वितीय उदाहरण यवन शक हूण एवं मुस्लिम आक्रांताओं का दिया जा सकता है कि जिस देश पर भी यवनादि एवं अरब, तुर्क या मंगोल आक्रांताओं ने आक्रमण किया उसी देश की सभ्यता और संस्कृति को नष्ट किया, यद्यपि वे भारतीय संस्कृति को पूर्णत. नष्ट नही कर सके, परन्तु यहाँ पर उन्होंने जो अत्याचार किये वे किसी इतिहासज्ञ मे तिरोहित नहीं है, इस सम्बन्ध में श्री पुरुषोतम नागेश ओक ने "भारतीय इतिहास की भयकर भूले" पुस्तक में विदेशी आक्रान्ताओं की करतूतों के अनेक उदाहरण दिये है कि वे किस प्रकार अपने चाटुकारलेखकों में मिथ्या इतिहास लिखवाते थे। इस सम्बन्ध मे प्रोफेसर हरिश्चन्द्र सेठ ने सिकन्दर और पोरसयुद्ध के सम्बन्ध में यूनानीस्रोतो के आधार पर ही सिद्ध किया है कि इस युद्ध मे पोरस की विजय हुई थी, परन्तु आज भारतीय पाठ्यपुस्तकों मे सिकन्दर का महान् विजेता चित्रित किया जाता है। यही तथाकथित महान् सिकन्दर पोरस से युद्ध मे परास्त होकर प्रार्थना करने लगा— "श्रीमान पोरस ! मुझे क्षमा कर दीजिये। मैंने आपकी शूरता और सामर्थ्य शिरोधार्य कर ली है। अब इन कष्टो को मै और अधिक सहन नही कर सकूँगा। मैं अपराधी हू जिसने इन सैनिको को करालकाल के गाल मे धकेल दिया है।"[1] मार्ग में भागते हुए सिकन्दर का सामना क्षुद्रकमालवगण से हुआ, जिस युद्ध मे उसे मर्मान्तिक प्रहार लगे और शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। सिकन्दरसम्बन्धी उपर्युक्त वृतान्त से ही सिद्ध है कि विदेशी इतिहासकार किस प्रकार का मिथ्या प्रलाप करते है और पोरस द्वारा विजित सिकन्दर को महान् विजेता बनाया जाता है।

मिथ्या-कथन का यह एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है कि शकारि विक्रमादित्य (शूद्रक) प्रथम और साहसांक विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा निर्मित मिहिरावली (महरौली) और विष्णुध्वज, जिसके निकट लोहे की प्रसिद्ध लाट बनी हुई है, उसको किस प्रकार कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा निर्मित घोषित किया गया। मिहिर नक्षत्र की संज्ञा है, जिससे कि प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर का नाम पड़ा। निश्चय ही यह एक वेधशाला थी, जो वराहमिहिर की प्रेरणा से

१. द्रष्टव्य—ईथियोपिक टेक्स्ट्स बाई ई०ए० डब्ल्यू बैज।

आकारि विक्रमादित्य शूद्रक ने सन् ५७ ई० पू० बनाई थी और इसी के निकट लौहस्तम्भ पर चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य (द्वितीय) ने अपनी विजयगाथा अंकित कराई।

इसी प्रकार आगरा मे तथाकथित ताजमहल निश्चय ही प्राचीन राजपूत शासकों का महल (प्रासाद) था, जिसको शाहजहाँ ने स्वनिर्मित घोषित करवा दिया। प्राचीन हिन्दू मन्दिरों को तोडकर मुस्लिमो ने किस प्रकार मस्जिदें बनायी, यह तथ्य किसी विज्ञ इतिहास पाठक से अज्ञात नही है, इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण वाराणसी मे विश्वनाथ का स्वर्णमन्दिर है, जिसका एक बडा भाग अभी भी मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर, दिया गया है। अत: इस मत से कोई भी वैमत्य नही होना चाहिए कि बर्बर, असभ्य और असंस्कृत मुस्लिम आक्रान्ता ऐसे श्रेष्ठ भवनो को बनाना जानते ही नही थे, वे केवल ध्वंसकर्ता थे, उन आक्रांताओ के पास ऐसे श्रेष्ठभवनों के बनाने का न समय था, न साधन और न ही कौशल। उन्होने प्राचीन भवनों को ध्वंस ही अधिक किया और उनको विकृत करके उस पर आधिपत्य जमा लिया, वे स्वय वहाँ के शिल्पियो को बलपूर्वक अपने देशों मे ले गये जहां उन्होंने भारतीय अनुकृति पर भवनादि बनवाये। अत: कश्मीर के निशात और शालीमार (शालिमार्ग) उद्यान, दिल्ली आगरा के लालकिले, तथाकथित कुतुबमीनार तथा इसी प्रकार के सम्पूर्ण भारतवर्ष मे बिखरे हुए शतश: भवनों का निर्माण सहस्त्रो वर्षों पूर्व भारतीयों ने ही किया था, जिनको उत्तरकालीन मुस्लिम आक्रान्ताओं ने आधिपत्य करके स्वनिर्मित घोषित किया। यह भारतीय इतिहास मे महान् जालसाजी (विकृति) का एक बडा भारी उदाहरण माना जाना चाहिए और निश्चय ही इस विकृति का निराकरण होना चाहिए। मुस्लिम शासको के पश्चात् अब अग्रेजी शासन के स्तम्भ, मैकाले की योजना के अंतर्गत, भारतीय इतिहास एव वाङ्मय के सम्बन्ध मे पाश्चात्य षड्यन्त्र की कहानी सक्षेप में लिखेंगे।

पाश्चात्यों को संस्कृतविद्या से परिचय—पाश्चात्यषड्यन्त्रकारी ईसाईलेखकों ने भारतीय साहित्य विशेषत: संस्कृतवाङ्मय का अध्ययन इसलिए किया कि वे यहाँ के रीति-रिवाजो एवं सस्कृति को जानकर, उस पर प्रहार कर सके, जिससे कि मैकाले की योजनानुसार भारतीयो को काले रंग का अंग्रेज (ईसाई) बनाया जा सके, जिससे ब्रिटिश शासन भारत मे चिरस्थायी हो सके। मैकडानल ने संस्कृत साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी में) की भूमिका मे स्पष्ट लिखा है—"It is undoubtedly a surprising fact that down to the present time no history of sanskrit literature as a whole has been written in English. For not only does that literature possess much

intrinsic merit, but the light it shed on the life and thought of the population of our Indian empire ought to have a peculiar interest for British nation". मैकडानल का तात्पर्य यह है कि उन्होंने 'संस्कृतसाहित्य का इतिहास' इसलिये नही लिखा कि इसमे कोई महान् गुणवत्ता है, बल्कि इसलिये लिखा कि अंग्रेजगण भारतीयों की पोलपट्टी जानकर उन पर चिरस्थायी शासन कर सकें। केवल निहित स्वार्थ के कारण अंग्रेजों ने संस्कृत का अध्ययन किया। उनका संस्कृतविद्या का ज्ञान एक उस अबोध बालक के समान था, जो प्राथमिक कक्षाओं में पढता है, अतः उन्होंने संस्कृतविद्या पढकर जो निष्कर्ष निकाले वे उसी अबोधबालक के तुल्य अपरिपक्व एवं अधकचरे थे इनका संकेत आगे के पृष्ठों पर किया जायेगा ही।

पाश्चात्यों मे संस्कृत का सर्वप्रथम विधिवत् अध्ययन विलियम्स जोन्स नामक अंग्रेज न्यायाधीश ने १८वी शताब्दी मे किया। सन् १७८४ ई० मे उसने संस्कृतविद्या की प्रवृद्धि के लिए 'रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' की स्थापना की। संस्कृत के प्रारम्भिक अध्येताओं में कालब्रुक, हैमिल्टन, श्लेगल, आगस्ट, विल्हेल्मवान, फ्रेडरिकवान्, ग्रिम, बाप, बार्टलिंग, राथ, रोजन बर्नफ, मैक्समूलर, बेबर, ओल्डनवर्ग, हिलब्रान्ड, पिश्चल, गेल्डनर, लूडर्स, गार्डगर, जैकोबी, मार्टिनहाग, कीलहार्न, ब्यूलर, म्यूर, मोनियरविलियम्स, विल्सन, मैकडानल, कीथ, पीटर्सन, ग्रिफिथ, ग्रियर्सन, ब्लूमफील्ड हापकिन्स, गोल्डस्टुकर विन्टरनीत्स इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

प्रारम्भ में पाश्चात्य संस्कृत अध्येता कुछ-कुछ निष्पक्ष थे, परन्तु मैकाले के प्रभाव या सत्तापक्ष के प्रभाव के कारण उन्होंने सत्य विचारों को तिलांजलि देकर षड्यन्त्रपूर्ण मतवाद घढने प्रारम्भ किये और उन्हीं असत्यमतवादों को परिपक्व किया, जो आज तक विश्व में छाये हुए हैं। अब इन उभयविध पक्षों की सारग्राही विवेचना करते हैं।

प्रथम, सत्यपाश्चात्यपक्ष के प्रारम्भिक विद्वानों मे थे—आगस्ट विल्हैल्मवान श्लैगल, फ्राइडिश श्लैगल, हम्बोल्ट, शोपेनहावर, जैकालियट, गोल्डस्टुकर, पार्जीटर इत्यादि। ये लेखकगण सत्याग्राही एवं उदारचेता थे। शोपेनहावर के विचार उपनिषदों के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध हैं, उसने लिखा था—"The production of the highest human wisdom" "ये सर्वोत्कृष्ट मानव बुद्धिकी सृष्टि (रचनायें) हैं।" हम्बोल्ट ने गीता के विषय मे लिखा—"It is perhaps the deepest and loftiest thing the world has to show. यह (गीता) संभवतः गहनतम एवं महत्तम ग्रन्थ है जो विश्व में प्रदर्शित करना

है।" प्रारम्भिक संस्कृत अध्येतृगण संस्कृतभाषा को विश्व की आदिम और मूलभाषा मानते थे, बाप जैसे फ्रांसीसी लेखक ने संस्कृत को मूलभाषा माना—"The Sanskrit has preserved more perfect than its Kindered dialects" (Language, p. 48, by O. Jesperson). "संस्कृत मे (ग्रीक, लैटिन आदि की अपेक्षा) मूलरूप अधिक सुरक्षित है।" प्रारम्भिक पाश्चात्य लेखकों के भावो को विन्टरनीत्स ने इस प्रकार व्यस्त किया है—"जब भारतीय वाङ्मय पश्चिम मे सर्वप्रथम विदित हुआ तो विद्वानो की रुचि भारत से आने वाले प्रत्येक साहित्यिकग्रन्थ को अति प्राचीनयुग का मानने की थी। वे भारत पर इस प्रकार की दृष्टि डाला करते थे कि वह मनुष्यजाति या मानवसभ्यता का मूल या प्रेङ्खण (झूला) है।[1] फ्राईडिश श्लैगल ने इन्ही भावो को अभिव्यक्त किया—"He expected nothing less from India than ample information on the history of the primitive world, shrouded hitherto in utter darkness[2] "वह भारत से एक महती आशा रखता है कि ससार का पूर्ण तिमिरावृत इतिहास भारत द्वारा ज्ञात होगा।" श्लेगल की आशा अकारण नही थी, लेकिन षड्यन्त्रकारी पाश्चात्यलेखको ने यथा मैक्समूलर, कीथ वेबर विन्टरनीत्स इत्यादि ने उसकी आशा पर तुषारपात कर दिया। अब इस आशा को पुनरुज्जीवित करके ससार के सत्य इतिहास को प्रकाशित करना है, यह प्रयत्न इस आशा का प्रारम्भ है।

जैकालियट नाम के फ्रैंच विद्वान न्यायाधीश ने १८६६ मे 'भारत मे बाइबिल' नामकग्रन्थ मे ऐसे ही उदात्तभाव लिखे जो सन्धभाव थे—"प्राचीन भारत, मनुष्यजाति के जन्मस्थान तेरी जय हो। पूजनीय और समर्थ धात्री, जिसको नृशस आक्रमणों की शताब्दियो ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे नही दबाया, तेरी जय हो। श्रद्धा, प्रेम, कविता और विज्ञान की पितृभूमि तेरी जय हो। काश, कभी ऐसा दिन आयेगा जब हम अपने पाश्चात्य देशो मे तेरे अतीत काल की सी उन्नति देखेंगे।"[3]

---

1. When Indian literature became first known in the west, people were inclined to ascribe a hoary age to every literary work hailing from India. They used to look upon India as something like the Cradle of mankind or at least of human civilization [lectures in Calcutta University, p 3).
2. A Second selection of Hymns from Rigveda P x) by Zimmerman.
3. 'भारत में बाइबिल'। सन्तराम कृत अनुवाद, प्रथम अध्याय।

इस प्रकार के निष्पक्ष, सत्य, उदात्त और प्रेरक भाव षड्यन्त्रकारी पाश्चात्यो को अच्छे नहीं लगे, क्योंकि इन सत्यभावो को मानने से भारत का गौरव बढता और अँग्रेजो द्वारा भारत को ईसाई बनाने, चिरशासन करने और अँग्रेजीसंस्कृति के प्रसार मे बाधा पड़ती, अत: उन्होंने विपरीत और असत्यविचारो का आश्रय लिया। अनेक कारणो से मैक्समूलर यूरोप मे महान् प्राच्य-विद्या-विशारद (Indologist) माना जाता था, परन्तु वह प्रच्छन्नरूप से मैकाले का भक्त और अँग्रेजीसाम्राज्य का महान् स्तम्भ था। सन् १८५५, दिसम्बर २८ को मैक्समूलर-मैकाले से भेंट हुई। इस समागम के अनन्तर मैक्समूलर ने अपनी विचारधारा भारत के प्रति पूर्णत: परावर्तित कर ली जैसा कि उसने स्वय लिखा है—"(मैकाले से मिलने के पश्चात्) मैं एक उदासीनतर एव बुद्धिमत्तर मनुष्य के रूप मे आक्सफोर्ड लौटा।"[1] स्पष्ट है कि क्या षड्यन्त्र रचा गया।

विकासवाद का भ्रमजाल

प्राय: मूर्ख से मूर्ख मनुष्य या बालक भी यही सोचेगा कि लघु वस्तु से महान् वस्तु, क्षुद्रतम जीव से विशालकाय जीव विकसित हुये, अत: चार्ल्स डार्विन ने जब १८५९ मे जीवो के विकासवाद का प्रतिपादन किया तो वह कोई बहुत महान् बुद्धिमत्ता का काम नही कर रहा था। यह अत्यन्त साधारण-बुद्धि किंवा सष्टि एवं इतिहास मे पूर्णत: अनभिज्ञ एक सामान्य व्यक्ति की कोरी कल्पनामात्र थी, परन्तु उसके इस विकासवाद के सिद्धान्त को समस्त विश्व मे, विशेषत: विज्ञानजगत् मे, आरम्भिक विरोध के बावजूद एक बड़ा भारी क्रान्तिकारी अनुसन्धान माना गया और इसमें कोई सन्देह नही कि आज समस्त बुद्धिजीवीवर्ग पर, इस अतिभ्रामक, घोर अवैज्ञानिक, मूर्खतापूर्ण मतान्धसिद्धान्त का इतना प्रबल प्रभाव है कि अत्यन्त धार्मिक ईश्वरवादी आस्तिक या अति बुद्धिमान् आध्यात्मिक विद्वान् एव योगी भी विकासवाद को ईश्वर से भी अधिक परमसत्य के रूप मे आँख मूँदकर अज्ञानवश मानता है।

विश्व इतिहास, साथ-साथ भारतवर्ष के इतिहास मे विकृतियो का एक प्रमुख कारण विकासवाद या सततप्रगतिवाद का भ्रामक मत है। इसके कारण अनेक सत्यसिद्धान्तो का हनन हुआ और मनुष्य अन्धकार के महान् गर्त मे गिर गया और इस अन्धतम अज्ञान से इसका उद्धार तब तक नही हो सकता, जब तक की मनुष्य सत्य जानकर इस अवैज्ञानिक एव असत्य को नही छोड देता।

---

1. "I went back to Oxford a sadder man and a wiser man" (C. H. I. Vol VI (1932).

जैसा कि पहिले संकेत किया जा चुका है कि डार्विन कोई बड़ा भारी विद्वान् या वैज्ञानिक नहीं था, वह केवल जीव जन्तुओं के विषय में सूचना एकत्र करके अनेक देशों में घूमता रहा, और उसने अनेक प्रकार के जीव-जन्तु देखे, बस इसी अनुसन्धानमात्र से उसने विकासवाद का सिद्धान्त घड़ दिया। परन्तु यह एक परीक्षित नियम या सिद्धान्त है कि कोई भी व्यक्ति एक विषय का ज्ञाता होकर ही निश्चितसिद्धान्तों का या कार्यनिश्चय का निर्णय नहीं कर सकता—

'एकं शास्त्रमधीयानो न यान्ति शास्त्रनिर्णयम् ।'

जिस व्यक्ति को ज्योतिष, गणित, योगविद्या, धर्मशास्त्र विधिशास्त्र या सृष्टिविज्ञान का ज्ञान नहीं हो, वह इन विषयों में या विज्ञान में निर्भ्रान्त निर्णय कैसे ले सकता है। आधुनिक वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी दुर्बलता (या अज्ञान ?) यही है कि वे प्रायः अपने विषय को छोड़कर न तो दूसरे विषय की जिज्ञासा करते है और न प्रायः अन्य विषयों को जानते हैं। इसीलिये उनके सिद्धान्त केवल मतवाद या वितंडावाद बनकर रह जाते हैं, विज्ञान और इतिहास के क्षेत्र में यही प्रयोगवाद चल रहा है जिससे मनुष्यजाति की ज्ञानवृद्धि के साथ अज्ञानवृद्धि भी हो रही है।

डार्विन प्रतिपादित विकासमत का, विशेषतः मनुष्य बन्दर से विकसित हुआ इस विचार का विरोध आरम्भ से ही हुआ। अब कुछ वैज्ञानिकों ने, विशेषतः अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों ने यह मत व्यक्त किया है कि जीव या मनुष्य पृथ्वी पर किसी दूसरे लोक या सुदूर ग्रह से आकर बसे। १९८२, जनवरी में प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक सर फायड हायल ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित करके आश्चर्य और संशय में डाल दिया कि किन्हीं अन्तरिक्षवासियों ने सुदूर प्राचीन-काल में पृथ्वी पर जीवन को स्थापित किया। १८ जनवरी में, हिन्दुस्तान टाइम्स में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसका अंश, डार्विन के मत का खोखलापन दिखाने के लिए आवश्यक रूप से उद्धृत किया जा रहा है—"Life on earth may have been spawned by intelligent beings millions of years ago in another part of the universe.

This is a Startling new theory advanced by Sir Fred Hoyle, one of Britain's leading astronomers to challenge traditional beliefs that man was the result of divine creation or according to Darwin's theory, the product of evolution, Sir Fred told an audience of Scientists at London's Royal Institution recently that the Chemical structures of life were too complicated to

have arisen through a series of accidents, as evolutionists believed. Biomaterials, with their amazing measure of order, must be the outcome of intelligent design, he said.

"The design may have been the work of a life from the universe's remote past which doomed by a crisis in its own environment, wanted to preserve life in another shape, he added

The odds againt arriving at th s pattern by accidental process imagined by Darwin were enormous. Similar to those against throwing five millions consecutives sixes on a dice, he said. He could think of no more plausible explanation for the existence of life on earth in its present form than planning by intelligent beings, he added.

The theory is latest bombshell dropped by the 66 year old former professor of astronomy and experimental philosophy at Cambridge University." जीवन की स्थापना, पृथ्वी पर, करोड़ों वर्ष पूर्व, "ब्रह्माण्ड के किसी अन्य भाग मे निविष्ट बुद्धिमान प्राणियों ने की होगी।" यह एक आश्चर्यजनक नवीन सिद्धान्त, ब्रिटेन के एक सर्वोच्च अन्तरिक्षवैज्ञानिक सर फायड हायल ने प्रस्तुत किया है, जिसमें परम्परागत मनुष्योत्पत्ति के दैवीसिद्धान्त और डार्विन के विकासवाद को चुनौती दी गई है। सर फायड ने एक वैज्ञानिक गोष्ठी मे, जो रायल इन्स्टीट्यूट लन्दन मे आयोजित की गई, इस सिद्धान्त का रहस्योद्घाटन किया कि जीवन की रासायनिक सरचना इतनी जटिल है, कि वह क्रमिक आकस्मिक घटनाओ से सभूत नही हो सकती, जैसा कि विकासवादी विश्वास करते हैं।

उन्होने बताया कि जैवपदार्थ इस अद्भुत रूप से शरीरों में संग्रथित हैं कि यह केवल बौद्धिक कौशल या योजना का परिणाम हो सकता है अर्थात् अज्ञानता या मूर्खता मे या यदृच्छा जीवोत्पत्ति नहीं हो सकती।

यह जीवनयोजना, ब्रह्माण्ड के किसी ऐसे भाग के बुद्धिमान् प्राणियों की हो सकती है, जो सुदूर अतीत में किसी संकट के कारण विनाश को प्राप्त हो गये हों और जो जीवन को किसी रूप मे संरक्षित रखना चाहते थे। डार्विन द्वारा कल्पित आकस्मिक घटनाक्रम के विरुद्ध पर्याप्त कारण हैं। जैसे कि पचास लाख क्रमबद्धों को एक पासे मे प्रक्षेप करने के समान हैं। पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व की और कोई सम्भव व्याख्या प्रतीत नहीं होती कि यह बुद्धिमान् प्राणियों की योजना का परिणाम है।

सर फ्रायड हायल के एक सहयोगी वैज्ञानिक लंकानिवासी विक्रमसिंह ने विकासवाद के खण्डन मे उनके सहयोग से तीन पुस्तकें लिखी हैं, जिनमे एक प्रसिद्ध पुस्तक है 'Evolution from Space'। इस पुस्तक में उन्होंने जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रकट है, यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति आकस्मिक (Accidental) नहीं है, वरन् ब्रह्माण्ड के ध्रुवसिद्धान्तो के अनुसार हुई है। ६ सितम्बर, १९८१ के हिन्दुस्तान टाइम्स मे ही ज्योफीलेनी नामक टिप्पणीकार ने इन दोनो वैज्ञानिको के जीवोत्पत्ति सिद्धान्त का सक्षेप मे 'God alone knows' शीर्षक से परिचय दिया। हिन्दी के हिन्दुस्तान मे 'विकास या लम्बी छलाँग' शीर्षक इस विषय पर टिप्पणी छपी। तदनुसार "उनका कहना है कि जीवो का विकास धीरे-धीरे न होकर बीच-बीच मे छलाँग लगाकर हुआ है।" इन वैज्ञानिको के अनुसार ईश्वर क्या है, ब्रह्माण्ड ही ईश्वर है—"And what is God ? God they suggest is the universe" यह सिद्धान्त प्राचीन भारतीय सिद्धान्त के निकट ही है—जैसा कि वेदो और उपनिषदों मे बारम्बार घोषित है—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्या जगत्।" (ईशोपनिषद्)

"पुरुष एवेद सर्वम्" (पुरुषसूक्त)

"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे" (ऋग्वेद)

"आकाशप्रभवो ब्रह्मा" (अथर्ववेद)

"ब्रह्मा देवानां प्रथम संबभूव" (मुण्डकोपनिषद्)

प्रजापतिर्वा इदमेकं आसीत् (ताण्ड्यब्राह्मण १६।१।१)

अजस्य नाभावध्येकमर्पित यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः।"
(ऋग्वेद १०।८२।६)

ब्रह्म, ब्रह्माण्ड का ही अपर नाम है, वह ब्रह्म ब्रह्माण्ड को रचकर उसमे प्रवेश कर गया—

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत (तै० उपनिषद्)

यही तथ्य श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि सर्वभूतपदार्थ ही ईश्वर हैं, उससे पृथक् नहीं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (गीता १८।६१)

अन्तरिक्ष वैज्ञानिक भलीभाँति जानते हैं कि समस्त ब्रह्माण्ड किस तेजी से नियमपूर्वक भ्रमण कर रहा है।

उपर्युक्त दोनों वैज्ञानिक (हायल और विक्रमसिंह) के सिद्धान्त, डार्विन के विकासमत का खण्डन करते हैं और भारतीयसृष्टिसिद्धान्त के निकट हैं, परन्तु फिर भी अपूर्ण ही हैं। यथा सर फ्रायड हायल ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि ब्रह्माण्ड के किन्हीं बुद्धिमान् प्राणियों ने पृथ्वी के प्राणियों को रचा। इसमें अनवस्था दोष है, क्योंकि ब्रह्माण्ड के उन बुद्धिमान् जीवों की रचना के लिये और अधिक बुद्धिमान् प्राणियों की कल्पना करनी पड़ेगी, इस अवस्था का कहीं अन्त नहीं होगा। अतः सृष्टि का भारतीयसिद्धान्त ही सत्य है, जैसा कि आगे प्रतिपादित किया जायेगा।

डार्विन ने जीवोत्पत्ति पर एकाकी दृष्टि से विचार किया। जीवोत्पत्ति से पूर्व ब्रह्माण्डसृष्टि पर विचार करना अनिवार्य है। जीव, ब्रह्माण्ड से पृथक् नहीं हैं, जो सिद्धान्त ब्रह्माण्डसृष्टि के हैं वे ही जीवोत्पत्ति पर लागू होंगे। परन्तु डार्विन और तदनुयायी जीवोत्पत्ति के सम्बन्ध मे किसी नियम को नहीं मानते, वे जीवोत्पत्ति को आकस्मिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य मे देखते हैं। इस प्रकार के अनियम को ही वे नियम बनाते हैं। यह पूर्णतः असम्भव और अवैज्ञानिक विचारपद्धति है। अतः जीवोत्पत्ति के नियमों से पूर्व ब्रह्माण्डसृष्टि पर विचार अनिवार्य हैं।

ब्रह्माण्डसृष्टि के नियम

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' इस उक्ति के अनुसार जो नियम एक पिण्ड या शरीर के लिए है, वही नियम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे व्याप्त है। आधुनिक वैज्ञानिक भी यह समझने लगे हैं कि यह अनन्त ब्रह्माण्ड यो ही आकस्मिकरूप से उत्पन्न नहीं हो गया है, यह ब्रह्माण्ड भी किसी जीव या मनुष्य के समान जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। अनन्तकोटि नीहारियों से अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड (नक्षत्रादि) अपने निश्चित स्थान पर स्थित होकर नियमित रूप से भ्रमण कर रहे हैं, अतः वेद का यह सिद्धान्त सिद्ध है—

'धाता यथापूर्वमकल्पयत्'

परमात्मा या परमपुरुष ने पूर्वसृष्टि के अनुसार ही नवीनसृष्टि बनाई। बिना नियम के तो यह ब्रह्माण्ड एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकता। बिना नियम के घूमने पर आकाशीय पिण्ड परस्पर टकराकर नष्ट हो जायेंगे, इसीलिए पुराण मे कहा गया है—कुमारी शिशुकुमार (सर्पाकार) संज्ञक नीहारिका

ब्रह्माण्डकी पूंछ में ध्रुवनक्षत्र स्थित है जो समस्त नक्षत्रमण्डलों को घुमाता है—

प्रश्न था—भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि दिवमण्डलम् ।
अव्यूहेन च सर्वाणि तथैवासंकरेण वा ।।

उत्तर मिला—ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते ज्योतिषां गणः ।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।।
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः सन्ध्या चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभं प्रजानां ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते ।।
(ब्रह्माण्डपुराण, २२ अध्याय)

हमारी शिशुमारनीहारिका (सृष्टि-ब्रह्माण्ड) सर्पाकार है और सर्पाकाररूप में ही भ्रमण करती है और ध्रुव इसका अध्यक्ष है, जो इसका सञ्चालक है, ध्रुव की अध्यक्षता में हमारी सृष्टि (नीहारिका कश्यप या शिशुमार) के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं, हमारी नीहारिका के समान अनन्त नीहारिकायें अनन्त आकाश में है, अतः इस सबका नियामक या विधाता कितना अप्रतिम होगा, यह अगम्य और अतर्क्य है। अतः मनुष्य यह मानने के लिए बाध्य है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड नियमानुसार चल रहा है, तब जीवसृष्टि बिना नियम के कैसे हो सकती, जबकि डार्विन जीवसृष्टि को आकस्मिक मानता था।[1] क्योंकि उस समय पाश्चात्य अन्तरिक्षविज्ञान न तो इतना उन्नत था, अतः बिचारे डार्विन को सृष्टि या ब्रह्माण्ड के नियम कहाँ ज्ञात हो सकते थे, इसलिए उसने जीवनसृष्टि को यादृच्छिक मान लिया। उसने अपने सामान्यज्ञान के आधार पर ही विकासवाद की कल्पना कर ली, जो किसी बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं था, वह तो अज्ञान या सामान्यज्ञान से उत्पन्न एक साधारणप्रक्रिया थी, जैसा कि पुराणकार ने कहा है, कि प्रायेण सामान्यजन ब्रह्माण्ड को प्रत्यक्ष देखते हुए भी संमोहित (अज्ञानवृत) होता है—

भूतसंमोहनं ह्येतद्वदतो मे निबोधत ।
प्रत्यक्षमपि दृश्य च समोहयति यत्प्रजाः ।। (ब्र०पु०)

डार्विन जैसे समोहित (अज्ञानी) पुरुष को सत्य का ज्ञान कैसे हो सकता है, जिस सत्यज्ञान के अल्पांश को मरीचि कश्यप, वशिष्ठ, पुलस्त्य जैसे ऋषि सहस्रों वर्षों के कठोरज्ञान या साधनायोग और तपस्या के द्वारा जान सके।

---

१. कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्याः ।
(श्वे० उप०).
सृष्टिसम्बन्ध में डार्विन यदृच्छा (आकस्मिकता) को मानता है।

पाश्चात्यो ने अज्ञानवश सौरमण्डल या ब्रह्माण्डसृष्टि के सम्बन्ध में अनेक मत बड़े हैं और ब्रह्माण्ड की आयु के सम्बन्ध में चार-पाँच सहस्र वर्ष से ८० अरब वर्ष तक के अनुमान किये हैं। कोरपनिकस से पूर्व तक पाश्चात्य जगत् को पृथ्वी के गोलत्व के विषय में भी ज्ञान नहीं था और न्यूटन से पूर्व उन्हें गुरुत्वाकर्षणशक्ति का ज्ञान नहीं था ओर सकर्षणबल का अभी भी ज्ञान नहीं है। परन्तु वेदो मे 'चिरकाल से सभी ग्रह, नक्षत्र आदि गोल (परिमण्डल) हैं', ऐसा ज्ञात था—"परिमण्डल आदित्य" परिमण्डल: चन्द्रमा: परिमण्डला द्यौः, परिमण्डलमन्तरिक्षम् परिमण्डला इयं पृथ्वी।" (जैमिनीयब्राह्मण १।२५७)। ये सब पृथिव्यादि घूमते हैं, इसका उल्लेख इस प्रकार है—

इमे वै लोका सर्पा यद्धि किं च सर्पन्त्येष्वेव
तल्लोकेषु सर्पति (श० ब्रा० ७।४।१।२७)
'इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञी' (ऐ० ब्रा० ५।२३)
संकर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं य संकर्षणमित्याचक्षते।
यस्येद क्षितिमंडल भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरसः एकस्मिन्निव
शीर्षाणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते। (भागवत ५।२५।१३)

यह भूमण्डल संकर्षणबल से ही अनन्ताकाश मे स्थिर होकर भ्रमण कर रहा है।

पाश्चात्यो ने ब्रह्माण्ड या सौरमण्डल की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे निम्न कल्पनाओ की उद्भावना की है। (१) नैबुलरसिद्धान्त, (२) टाईडल सिद्धान्त, (३) प्लेनेटियल सिद्धान्त, (४) युग्मतारासिद्धान्त, (५) फिशनसिद्धान्त, (६) सेफीडसिद्धान्त, (७) नीहारिकाभेदसिद्धान्त, (८) वैद्युतचुम्बकत्वसिद्धान्त, (९) नौवासिद्धान्त और (१०) बिग बैंग या महाविस्फोटसिद्धान्त।

इनमे अन्तिम बिगबैंगसिद्धान्त प्राचीन सनातन भारतीय सिद्धान्त के निकट है, जिसके अनुसार सर्वप्रथम एक बृहदण्ड (ब्रह्म=बड़ा=बृहत्) या महदण्ड उत्पन्न हुआ, जिससे समस्त लोक उत्पन्न हुए। यदि इस बृहदण्ड से हमारी नीहारिका (कश्यप मारीच) से तात्पर्य है तो इसकी कोई सीमा (अन्त सान्त) मानी जा सकती, यदि आकाश की समस्त नीहारिकायें इसी बृहदण्ड से उत्पन्न

हुई तो यह ब्रह्माण्ड अनन्त, अगम और अगोचर है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[1] आंगस्टाइन ने ब्रह्माण्ड को सान्त माना है, परन्तु सान्त हो तो भी मनुष्य के लिए ब्रह्म या ब्रह्माण्ड अगम, अनन्त और अगोचर ही है। इस अन्तराकाश (खाली स्थान) का अन्त कहाँ है, इसको मनुष्यबुद्धि सोच ही नहीं सकती।[2] इसीलिए परमदार्शनिक याज्ञवल्क्य ने, गार्गी के यह पूछने पर कि ब्रह्मलोक किसमें स्थित है, इस अतिप्रश्न का निषेध किया था।[3]

बृहदण्ड की उत्पत्ति अकारण ही नहीं होती, इसमें परमपुरुष की इच्छा = 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' सिद्धान्त था। ब्रह्माण्ड का एक रजोमात्र (धूलकण) तुल्य अंश यह पृथिवी है और इस पृथ्वी का जन्म, आयु और मृत्यु निश्चित है। यह

---

१. (क) निष्प्रभेऽस्मिन् निरालोके सर्वतस्तमसावृते।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजाना बीजमव्ययम्॥
युगस्यादौ निमित्त तन्महद्दिव्य प्रचक्षते।
यस्मिन् संश्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम्॥
अद्भुतं चाप्यचिन्त्य च सर्वत्र समता गतम।
अव्यक्तं कारण सूक्ष्मं यत् तत् सदसदात्मकम्॥
यस्मात् पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः।
आपो द्यौः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा॥
(महाभारत १।१।२६,३२,३६)

(ख) हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् (ऋ० १०।१२१।१)

(ग) आपो ह्वा इदमग्र सलिलमेवास...।
तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमाण्ड सबभूव। (श० ब्रा० ११।१।१६)

(घ) पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदादयो विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते॥ (वायुपुराण ४।७४)

२. (क) यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह (तै० उ० ३२।४)

(ख) सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म यो वेद निहित गुहाया परमे व्योमन्॥ (तै० उ० २।१)

(ग) न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति (केनोपनिषद् १।३)

३. कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका प्रोताश्च ओताश्चेति स होवाच गार्गि!
मातिप्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यपप्तदनतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि
गार्गि मातिप्राक्षीरिति। (बृ०उ० ३।६।१)

ब्रह्माण्ड और पृथिवी कितने बार उत्पन्न हुए और कितने बार नष्ट हुए, इस तथ्य को कौन जान सकता है। वर्तमान पृथिवी पर भी न जाने कितनी बार जीवसृष्टि या मानवसृष्टि और प्रलय हुई है इसका ठीक-ठीक विवरण ज्ञात नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों की प्रायः यह धारणा है कि पृथिवी पर यह मानवसृष्टि प्रथम बार (विकासवाद के अनुसार) लगभग ५० लाख वर्ष पूर्व हुई होगी। परन्तु यह प्रमाणशून्य मिथ्या धारणा ही है। पृथिवी की ठीक ठीक आयु निश्चित ज्ञात नहीं है, परन्तु पाँच अरब वर्ष तक अनुमानित की गई है। इस दीर्घावधि में पृथिवी पर सूर्यातप या हिम से न जाने कितनी बार जीव उत्पन्न और नष्ट हुए यह अज्ञात है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों की मिथ्याधारणा के विपरीत, इस तथ्य के प्रमाण मिले हैं कि जीवों के साथ मानवसभ्यता का भी पृथिवी पर अनेक बार उदय और लोप हुआ है। अभी तक पृथिवी पर सूक्ष्म-जीवों का प्रादुर्भाव साठ करोड़ पूर्व तक का ही माना जाता था, परन्तु अभी हाल में खोजों से पृथिवी पर जीवन का अस्तित्व साढ़े तीन अरब वर्ष पूर्व तक का माना जाने लगा है[1] और यह जीवास्तित्व न जाने और कितना और प्राचीनतर सिद्ध हो जाये। अतः पृथिवी की आयु अनेक अरबों वर्ष है, कुछ भारतीय विद्वान् मन्वन्तरों के आधार पर पृथिवी की आयु दो अरब वर्ष कल्पित करते हैं, सो यह गणना भी मनघडन्त और काल्पनिक है, इस विषय की विवेचना अन्यत्र इसी पुस्तक में की जायेगी। इस गणना का मिथ्यात्व तो इसी नवीन खोज से सिद्ध हो गया कि पार्थिव जीवसृष्टि न्यूनतम चार अरब वर्ष प्राचीन थी।

अनेकबार प्रलय

पृथिवी पर अनेक बार उष्णयुग या हिमयुग व्यतीत हो चुके हैं, जिनमें अनेक बार आंशिक या पूर्ण जीवसृष्टि नष्ट हुई और पुनरुत्पन्न हुई। प्राचीन साहित्य में ज्ञात होता है कि मनुष्य को केवल दो प्रलयों की स्मृतिशेष है।[2]

---

१ नवभारत टाइम्स में कुछ मास पूर्व 'विज्ञानजगत्' शीर्षक से यह रिपोर्ट छपी थी "पता चला है कि कर्नाटक राज्य में जो सूक्ष्म फासिल चट्टानें मिली हैं, वे अफ्रीका में मिली चट्टानों के समान हैं, इनसे यह सिद्ध होता है कि पृथिवी पर जीवन अधिक पुराना है, लगभग ३.८ अरब वर्ष पूर्व।'

२. इनमें से प्रथम प्रलय में सूर्यताप से पृथ्वी पर जीव पूर्णतः समाप्त हो गये, तदनन्तर वराह (मेघ=ब्रह्मा) ने जीव सृष्टि की—
(क) युगान्ते मारुतेनेव शोषित मकरालयम् (शल्यपर्व ६६।६)
(ख) युगान्ते सर्वभूतानि दग्धानि (द्रोणपर्व १५७ १७२)

प्रलय मे सम्पूर्णमनुष्यजाति नष्ट हो जाने पर पूर्व इतिहास को मनुष्य जान भी कैसे सकता था। इसम प्रथम महाप्रलय में अतिदाह के पश्चात् वराह (मेघ = ब्रह्मा)[1] की कृपा से सलिलमय पृथिवी का उद्धार हुआ और स्वायम्भुव मनु ने नवीन मानव सृष्टि की। महाभारत मे ब्रह्मा के सात जन्मो का उल्लेख है, जिनमे प्रत्येकबार नवीनसृष्टि उत्पन्न हुई। इन सात ब्रह्माओ के नाम ये— (१) मानस ब्रह्मा, (२) चाक्षुष ब्रह्मा, (३) वाचस्पत्य, (४) श्रावण, (५) नासिक्य, (६) अण्डज हिरण्यगर्भ ब्रह्मा और सप्तम (७) कमलोद्भव (पद्मज) ब्रह्मा। युगान्त मे पृथिवी के दग्ध होने पर पृथ्वीवासी वैमानिक देवगण विमानों मे बैठकर दूसरे लोको मे चले गये—

चतुर्युगसहस्रान्ते सह मन्वन्तरैः पुरा।
क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते।
तस्मिन् काले तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये।
कल्पावसानिका देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे।
तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मनः॥

(ब्रह्माण्ड० अध्याय ६)

"चतुर्युगसहस्र के अन्त मे मन्वन्तरो का अन्त होने पर, कल्पनाश के समय दाहकाल उपस्थित होने पर पृथ्वीवासी वैमानिक देवगण सताप से सविग्न होकर पृथ्वीलोक छोडकर महर्लोक की ओर गमने चले गये।"

उपर्युक्त पुराणप्रमाण से हमारे इस मत की पुष्टि होती है कि पृथ्वी पर अनेक बार मानवसृष्टि और सभ्यता का उदय और अस्त हुआ था। और कुछ आधुनिक अन्तरिक्ष वैज्ञानिको के इस मत को भी बल मिलता है प्राणीवर्ग एव मनुष्य दूसरे ग्रह नक्षत्र से पृथ्वी पर आकर बसे और उडनतश्तरियो में बैठकर आज भी तथाकथित अन्तरिक्ष मानव या देवगण पृथ्वी पर यदा-कदा आते रहते हैं। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक फ्रायड हायल का मत पहिले ही लिख चुके हैं।

---

१. सर्वं सलिलमेवासीत् पृथिवी यत्र निर्मिता।
ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयम्भूर्दैवतैस्सह।
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम्॥
(रामायण अरण्यकाण्ड ११०।३-४)

मन्वन्तरों और अवतारों में विकासवाद की मिथ्याकल्पना

पुराणों ने १४ मनुओं का वर्णन मनुष्यों के रूप में किया है और उसे उसी रूप में ग्रहण करना चाहिये। जिस समय प्रथम मनु-स्वायम्भुव (स्वयं-भूपुत्र) उत्पन्न हुये, उस समय और उससे बहुत पूर्व पृथ्वी विद्यमान थी, वे पृथ्वी पर ही उत्पन्न हुए थे जबकि वराह ने भूमि को समुद्र में से निकाल लिया। जलप्लावन में पृथ्वी पूरी तरह घुल गई थी।[1] इससे पूर्व सूर्यताप से पृथ्वी पृष्ठ (ऊपरी भाग) दग्ध हो गया था—

> जंगमाः स्थावराश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः।
> शुष्काः पूर्वमनावृष्ट्या सूर्यैस्ते प्रधूपिताः।
> तदा तु विवशाः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः॥[2]

पृथ्वीदाह के समय पृथ्वीतल पर किसी भी जीव के शेष रहने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, दाह से पूर्व वैमानिकदेव पृथ्वी छोड़कर अन्य लोकों में चले गये थे। पृथ्वीदाह के लाखों वर्षों पश्चात् वराहमेघ द्वारा पृथ्वी पर समुद्र बने—

> ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टाग्नौ पृथ्वीतले।
> एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे।
> तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥[3]

पूर्वयुगों में पृथ्वी का ऐसा दाह अनेक बार हो चुका है, इन्ही दाहों द्वारा पृथ्वीगर्भ में अनेक धातुयें,[4] कोयला और पैट्रोल जैसे पदार्थ बने। उपर्युक्त वर्णन का तात्पर्य यह है कि स्वायम्भुव मनु 'सूर्योत्पत्तिकाल' का नाम नहीं है और न पृथ्वीजन्म ही २ अरब वर्ष पूर्व हुआ, सूर्य और पृथ्वी तो स्वायम्भुमनु से अरबोंवर्ष पूर्व विद्यमान थे। 'कल्प' का अर्थ है 'नवीनसृष्टि' उसी को युग भी कहा गया है। कल्प की समाप्ति के समय दाहकाल में ग्रह चन्द्र-सूर्यादि सभी विद्यमान थे—

> चतुर्युगसहस्रान्ते सह मन्वन्तरैः पुरा।
> क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते।
> नक्षत्रग्रहताराश्च चन्द्रसूर्यास्तु ते॥[5]

---

१. संप्रक्षालनकालोऽयं लोकाना समुपस्थितः (महाभारत ३।१९०।२६)
२. ब्रह्माण्ड पु० (१।६।४६-४७),
३. ब्रह्माण्ड (१।३।३०)
४. प्रादुस्तमीति विस्तारे धैतास्तनव स्मृताः॥ (ब्रह्माण्डपुराण १।५।६६)
५. ब्रह्माण्ड पु० (१।२।६।१५-१७)

अतः कल्पान्त मे पथिवीचन्द्रादि का विनाश नही होता। ऐसे अनेक कल्प पृथिवी पर व्यतीत हो चुके हैं।[1]

वैवस्वतमनु का स्वायम्भुवमनु मे कालान्तर केवल १६००० (सोलह सहस्र) वर्ष या ४३ परिवर्तयुग था, जैसा कि पुराणप्रमाण से अन्यत्र सिद्ध किया जायेगा और वैवस्वतमनु विक्रम से लगभग १२००० वर्ष पूर्व हुए थे, यही पुराणो मे लिखा हुआ है। सभी चौदह मनु प्रजापति मनुष्य ही थे, अतः पुराणो मे इसका कोई दूसरा अर्थ है ही नही, और इतिहास मे इसी अर्थ को मानना चाहिए। १४ मनु (स्वायम्भुव से वैवस्वतपर्यन्त) केवल ४३ परिवर्तयुगो मे हुये। सभी १४ मनु भूतकाल के मनुष्य थे, भविष्य मे ७ मनुओं का पाठ सर्वथा भ्रामक है, तथाकथित भविष्य चार सावर्णि मनु दक्ष के दौहित्र थे—

दक्षस्य ते दौहित्राः क्रियाया दुहितुः सुता.।
महानुभावास्ते जज्ञिरे चाक्षुषेऽन्तरे ।।

(ब्र० पु० ३।४।२६)

तथाकथित भविष्य मे होने वाले चार सावर्णमनु चाक्षुषमन्वन्तर (छठे मन्वन्तर) मे, सप्तम मनु वैवस्वत से पूर्व हो चुके थे। इसी प्रकार रुचि प्रजापति का पुत्र रौच्य और भूतिपुत्र भौत्य मनु भी चाक्षुष और वैवस्वत के मध्य हुये—

चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य च।
रुचे. प्रजापते. पुत्रो रौच्योनामाभवत्सुतः ।। (३।४।५०)

अतः १४ मनुओ मे परस्पर कुछ शताब्दियो और सहस्राब्दियो का ही अन्तर था। १४ मनुओ मे सबसे अन्तिम (चौदहवे) वैवस्वत मनु थे और वे स्वायम्भुव मनु से =४३ परिवर्तयुगो अर्थात् १६००० वर्ष पश्चात् हुये। अत मन्वन्तरकाल ३० करोड ६७ लाख २० हजार वर्ष का नही था, वह केवल कुछ

---

१. एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च।
सप्रजातानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः।
मन्वन्तरान्ते सहारः संहारान्ते च संभव.।।

(ब्र० पु० १।२।१६१-६३)

अतः असंख्य कल्प और मन्वन्तर (जीवो सहित) पृथ्वी पर व्यतीत हो चुके हैं। कल्पमन्वन्तरादि में पृथ्वी का पूर्णनाश नहीं होता। केवल जीव-जंतुओ का नाश और भूपृष्ठ पर हलचल होती है।

शताब्दियों या सहस्राब्दियों के काल-परिणाम का था, अतः मन्वन्तरकाल को सौरमण्डल की सृष्टिप्रक्रिया में घसीटना सर्वथा भ्रामक, निरर्थक, अनैतिहासिक और अवैज्ञानिक है।

अवतारों में विकासक्रम देखना भी सर्वथा भ्रामक और मिथ्या है। इन अवतारों के समय का देश कालपात्र, जैसा कि पुराणों में वर्णित है, अवश्य द्रष्टव्य है।

वैवस्वत मनु, सप्तर्षि और अन्य मनुष्य एवं जीव भी पृथ्वी पर रहते थे, तब मत्स्य को विकास की प्रथम कड़ी के रूप में देखना, केवल हवाई कल्पना है, इसमें कोई सार नहीं। इसी प्रकार नृसिंह के समय हिरण्यकश्यपु, प्रह्लादादि, वामन के समय शुक्राचार्य, बलि आदि मानव प्राणी पृथ्वी पर थे, यह तथ्य पुराण अध्येता सम्यक् प्रकार से जानते हैं. पुनः परशुराम, दाशरथि राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि के रूपों में मनुष्यशरीर या मानवसभ्यता का विकास मानना न केवल हास्यास्पद वरन् घोर अज्ञान का प्रतीक भी है। अतः पुराणोल्लिखित दशावतारों में मानवविकास देखना सर्वथा निरर्थक कल्पना का भार ढोना है। इस सम्बन्ध में इन प्राचीन उक्तियों का मनन एवं ध्यान करना चाहिये—

(१) विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।"

(२) एकं शास्त्रमधीयानो न याति शास्त्रनिर्णयम्।

(३) तेषां च त्रिविधो मोहः सम्भवः सर्वपाप्मनाम्।
अज्ञानं संशयज्ञानं मिथ्याज्ञानमिति त्रिकम्॥

(४) मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।

(५) स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।

(६) पार्योवर्यविन्सु तु खलु वेदितृषुभूयोविद्यः प्रशस्यो भवति।

उपर्युक्त उक्तियों पर विचार करके ही ज्ञान-विज्ञान पर विचारणा करनी चाहिये—

अध्यात्म और विकासवाद

विकासवादी अध्यात्मविद्या और योगविज्ञान से कोरे होते हैं, बिना आत्मा का विज्ञान जाने ब्रह्माण्ड या सृष्टि का रहस्य समझा नहीं जा सकता। दर्शन और मनोविज्ञान का ज्ञान भी मनुष्य शरीर को समझने के लिए आवश्यक है। सच्चा ज्योतिषी भविष्य की घटना को देख सकता है, इसी प्रकार अतीन्द्रिय ज्ञ सम्पन्न प्राणी केवल मनुष्य नहीं—पशु-पक्षी आदि भी, भविष्य को देख

लेते हैं। पशु-पक्षियों को भविष्य मे होने वाले भूकम्प की सूचना अनेक दिन पूर्व ज्ञात हो जाती है, इसी प्रकार सर्प अपने घातक को सहस्रो मील जाकर भी पहचान लेता है, कुत्ते की घ्राणशक्ति अपराधियो का पकड़ने मे काम आती है, पक्षियो को दिव्यदृष्टि प्राप्त है जो हजारो मील दूर की वस्तु को देख लेते हैं, अतः अतीन्द्रिय ज्ञान केवल कल्पना की वस्तु नही है जब पशु-पक्षी अतीन्द्रिय-ज्ञान सम्पन्न हो सकता है तो मनुष्य क्यो नही हो सकता। प्राचीनभारत मे ऐसे अनेक अध्यात्मयोगी और भविष्यवक्ता हो चुके है जो अतीत और अनागत का ज्ञान रखते थे। योगशास्त्र एव पुराणादि मे योगजशरीर, सांकल्पिक अयोनिज, अमैथुनीसृष्टि, मानसपुत्र, सांसिद्धिकशरीर, यन्त्रशरीर आदिक योगजादि शरीर सिद्धि[1], अतीन्द्रियज्ञान और पुनर्जन्म के लिए आत्मा का अस्तित्व अनिवार्य है, जब प्राणी मरता है तो लिंगशरीर या सूक्ष्मशरीर नही मरता, वह आत्मा के साथ ही भ्रमण करता है। पूर्वजन्म की स्मति अनेक व्यक्तियो को बाल्यावस्था मे रहती है, अनेक व्यक्ति पूर्वजन्म मे सीखी हुई भाषाओ को इस जन्म में बोलते हैं, ऐसी घटनाओ के विवरण आये दिन पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते हैं। लेकिन आत्मा आदि को प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, केवल ज्ञानचक्षु से उसका ज्ञान होता है—

उत्क्रामन्त स्थित वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष॥ (गीता १५।१०)

आत्मा और विकासवाद का शाश्वतिकविरोध है। विकासवादी सृष्टि को भौतिक एव आकस्मिक घटना मानते हैं, परन्तु अध्यात्मवाद के अनुसार जीव-सृष्टि 'समष्टि' आत्मा (परमात्मा) मे उत्पन्न हुई। कल्पान्त मे वैमानिकदेव मानसीसिद्धि से ही जीव रचना करते हैं

विशुद्धिबहुला मानसी सिद्धिमास्थिताः।
भवन्ति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च॥ (ब्र० पु०)

यह ब्रह्माण्डसृष्टि धाता[2] की निश्चित योजनानुसार हुई है, यह कोई

---

१. स्वायम्भुवमन्वन्तर मे होने वाले सिद्ध कपिल ने योग द्वारा निर्माणचित्त का निर्माण करके द्वापरयुग में आसुरि को सांख्य का उपदेश दिया—
"आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद्
भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच॥"
(योगसूत्र व्यासभाष्य १।२५)

२. सूर्याचन्द्रमसौ धातापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथ्वीं चाऽन्तरिक्षमथो स्वः॥ (ऋ १०।१९०।३)

आकस्मिक घटना नही, विश्व ब्रह्माण्ड की प्रत्येक घटना का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से सम्बन्ध है, यदि ऐसा नही हो तो किसी घटना का भविष्यदर्शन नही किया जा सकता। मनोविज्ञान का साधारण विद्यार्थी भी जानता है कि मनुष्य स्वप्न मे भविष्य की घटनाये बहुधा देखता है और निश्चित प्रतीको का निश्चित अर्थ होता है इससे भी सिद्ध है कि सृष्टि मे मनुष्यजन्म क्या उसका प्रत्येक विचार भी पूर्वनिश्चित है और पूर्वयोजनानुसार निर्मित होता है यदि ऐसा न हो तो स्वप्न का निश्चित परिणाम या फल न हो।

अध्यात्म, पुनर्जन्म, स्वप्नभविष्यदर्शन आदि पर विस्तृत विचार करने का यह उपयुक्त ग्रन्थ नही, यहां पर इनकी सांकेतिक चर्चा इसीलिए की है कि विकासवाद मानने पर आत्मा पुनर्जन्म, स्वप्नफलसाम्य, भविष्यदर्शन, आदि कदापि उपपन्न नही हो सकते, अतः पुनर्जन्मादि के प्रमाण से विकाससिद्धान्त का पूर्णतः खण्डन होता है। जो आत्मवादी विकासवाद को मानता है वह घोर अज्ञानी है।

ह्रासवाद-सत्य

डार्विनकल्पित विकासवाद असत्य है इसके विपरीत ह्रासवाद सत्य सिद्ध हो रहा है। पूर्वनिर्दिष्ट सर फायड हायल के नवीन उद्घोषित सिद्धान्त मे कहा गया है कि पृथ्वी पर प्राणी सृष्टि किसी दूसरे ग्रह (लोक) के अधिक बुद्धिमान् प्राणियो ने की होगी। पुराणो मे आदिकाल से ही बताया गया है कि स्वयम्भू (ब्रह्मा) के दक्ष, वसिष्ठ, पुलस्त्य, क्रतु मरीचि आदि मानसपुत्र[1] (अयोनिज) पृथ्वी पर सर्वाधिक बुद्धिमान् प्राणी थे, इन्ही दक्षादि दशप्रजापतियों ने पृथ्वी पर जीवसृष्टि की। पुराणो में कश्यप प्रजापति की १३ पत्नियों से अनेक पशु-पक्षी एव सरीसृपो की सृष्टि बताई गई है। इससे ह्रासवाद की पुष्टि होती है

१ यहूदीग्रन्थो मे भी सप्तर्षियो को Seven wiseman कहा गया है। *Seven Sages*—"In the time before the Flood there lived the heroes, who (Gilgames epic) dwell in the under world or the Babylonion Nooh, are removed into the heavenly world At that time there lived, too, the (Seven) Sages (Encyclopedia of Religion & Ethics, Articles on Ages).
गीता का एक वचन द्रष्टव्य है :—

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ (गीता १०।६)

कि पूर्ण मानव मे मन्दबुद्धि या मूर्ख प्राणी उत्पन्न हुए। आदिमानव स्वयम्भू और उनसे दश मानसपुत्र स्वायम्भुव मनु आदि पूर्णज्ञानी सिद्धपुरुष थे, उनके आगे उत्पन्न होने वाले मनुष्यो का ज्ञान घटता गया। ब्रह्मा (स्वायम्भुव) को सभी ज्ञानविज्ञानो (शास्त्रो) का आदि प्रवर्तक कहा गया है। स्वायम्भुव मनु को मनुस्मृति मे 'सर्वज्ञानमयो हि स:' कहा गया है। आदियुग मे मनुष्यों की आयु अपरिमित अर्थात् अधिक थी, उनका शरीर, बल, आत्म-बल और आयु भी अधिक थी, वह क्रमश: त्रेता, द्वापर, कलि मे घटती गई। दीर्घायुष्ट्व का अधिक विस्तृत विवेचन पंचम अध्याय मे करेंगे।

उपर्युक्त सभी तथ्यो (प्रमाणो) से ह्रासवाद का समर्थन या सिद्धि होती है।

पाश्चात्य रहस्यमय अनुसंधाता डेनीकेन की अद्भुत खोजो मे भी ह्रासवाद सिद्ध होता है, जबकि करोडो वर्षों पूर्व पृथ्वी निवासी मनुष्य अन्तरिक्ष यानो द्वारा दूसरे ग्रहनक्षत्रो की यात्रा करते थे और अन्य लोको के प्राणी अन्तरिक्ष यानो मे बैठकर पृथ्वी पर आते थे। इस तथ्य का संकेत वैदिकग्रंथो एव पुराणो मे भी मिलता है। वैदिक अश्विनी और मरुद्गण ऐसे ही अन्तरिक्ष देव थे, ये घटनायें महाभारतयुद्ध से केवल १०,००० वर्ष पूर्व की ही हैं। वैमानिकदेवो ने तो स्वायम्भुवमनु से पूर्व (जलप्लावन से पूर्व) सप्तलोको की यात्रायें की थी, जैसा कि ब्रह्माण्डपुराण मे उल्लिखित है।[1]

आज भी पृथ्वी पर सभ्यमानवो की अपेक्षा असभ्यो या असंस्कृतो (अविकसित = अशिक्षित = मूर्खादि) की सख्या कई गुणा अधिक है, आज का भारत इसका उत्तम निदर्शन है, यहाँ ८० प्रतिशत जन निरक्षर हैं आज भी मनुष्य गुफाओ मे रहते है, नरभक्षी हैं, पिशिताशन पिशाच) इत्यादि हैं। तो इससे विकासवाद कैसे सिद्ध हो गया। इससे तो यही सिद्ध होता है कि अधिकाधिक मनुष्य मूर्ख होते जा रहे हे। उसका सर्वविधि ह्रास हो रहा है। तथाकथित विकासवाद का प्रलाप भी मनुष्य को असभ्यता की ओर अग्रसर कर रहा है,

१. द्रष्टव्य ब्रह्माण्डपुराण, अनुषगपाद पृष्ठ अध्याय इन वैमानिकदेवो की सख्या थी—

त्रीणि कोटिशतान्यासन्कोट्यो द्विनवतिस्तथा।
अष्टाधिका सप्ततिश्च सहस्राणा पुरा स्मृता॥
एकैकस्मिस्तु कल्पे वै देवा वैमानिका: स्मृता।

तीन अरब बानवे करोड बहत्तर हजार वैमानिक देवगण।

असद्मतों को मानना भी मानवबुद्धि के ह्रास का लक्षण है, अतः सभी प्रकार के सम्यक् विचार से सिद्ध होता है कि मनुष्य ह्रास की ओर बढ़ रहा है।

प्रागैतिहासिकतावाद

विकासमत से उत्पन्न अज्ञान पर प्रागैतिहासिकतावाद की कल्पना ने रंग चढ़ाया। इससे विश्व इतिहास में पेड़ चढ़ैया की कहानी घड़ी गई कि आदि मानव बन्दर के समान चढ़कर जीवन-यापन करता था, पुनः प्रस्तर युग, धातु-युग, पशुपालन युग, कृषियुग जैसे तथाकथित काल्पनिकयुगों की कल्पना की गई जिनका प्राचीनसाहित्य में कहीं न तो उल्लेख है और न किसी प्रमाण से इनकी पुष्टि होती है। पाश्चात्यकल्पकों ने, भारतीय इतिहास में तो गौतमबुद्ध और बिम्बसार से पूर्वयुग को प्रागैतिहासिकयुग माना और पाश्चात्य लेखकगण ने गौतमबुद्ध से पूर्व होने वाले कृष्ण, राम, व्यास, वाल्मीकि जैसे प्रसिद्धपुरुषों को ऐतिहासिक व्यक्ति न मानकर काल्पनिक व्यक्ति माना।[१] कपिल, स्वायम्भुव मनु, इन्द्र, वरुण, विवस्वान्, कश्यप, वैवस्वत मनु[२] आदि को पार्जीटर जैसा पुराणविशेषज्ञ भी ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानता था।

वास्तव में वर्तमान विश्व इतिहास और भारतवर्ष का इतिहास स्वयम्भू और उसके दशपुत्रों (स्वायम्भुव मनु आदि) से प्रारम्भ होता है, अतः स्वायम्भुव मनु तक का समय ऐतिहासिक था। इससे पूर्व के इतिहास का ठीक-ठीक ज्ञान पुराणों में भी नहीं प्राप्त होता, अतः प्राक्स्वायम्भुवमनुकाल को तो प्रागैतिहासिक कहा जा सकता है, इसके पश्चात् के काल को नहीं। यह प्रागैतिहासिकतावाद पाश्चात्यषड्यन्त्र और अज्ञान का परिणाम था, जो इतिहास की

---

१. अन्त में फिर कहना आवश्यक है कि न केवल महाभारत में वर्णित घटनायें बल्कि, राजाओं राजकुलों में अगणित नाम चाहे इनमें कुछ घटनायें और नाम कितने ही ऐतिहासिक क्यों न मालूम पड़ें सही मायने में भारतीय इतिहास नहीं है। भारतवर्ष का इतिहास मगध के शिशुनाग राजाओं और अजातशत्रु से शुरू होता है। (विन्टरनीत्स कृत भारतीय साहित्य, प्रथम भाग, पृष्ठ १६८, रामचन्द्र पाण्डेय कृत अनुवाद) यहाँ विन्टरनीत्स का घोर अज्ञान, पक्षपात और पूर्वाग्रह स्पष्ट है। ऐसे लेख भारतीय इतिहास की विकृति के प्रधान कारण बने

२. All the royal lineages are traced back to the mythical Manu Vaivasvata". (A.I.H.T. p. 84).

विकृति का एक प्रमुख कारण बना।[1]

भारतीय इतिहास मे प्रागैतिहासिकतावाद के लिए कोई स्थान नही है, क्योकि मानवोत्पत्ति से आज तक का इतिहास, पुराणो से ज्ञात हो जाता है।

प्रागैतिहासिकतावाद, धातुयुग आदि सभी विकासमत के मानसपुत्र हैं, जब विकासमत ही असिद्ध है, तब इससे उत्पन्न सभी वाद स्वय निरस्त हो जाते हैं अत: विद्वानो को इन सभी मिथ्यावादों को छोडकर सत्य इतिहास का आश्रय लेना चाहिये। सत्य इतिहास का ज्ञान केवल प्राचीनभारतीयसाहित्य एवं अन्य प्राचीनग्रन्थो मे होना है।

डार्विन का विकासवाद आज तक किसी भी वैज्ञानिक प्रमाण मे पुष्ट नही हुआ, आज के श्रेष्ठ वैज्ञानिक विचारक इससे हटते जा रहे हैं, क्योंकि आज तक किसी ने भी एक जीव से दूसरे जीव (योनि) में परिवर्तन होते नही देखा। एक कोषीय अमीवा से हाथी या डायनासोर जैसे विशाल जीव कैसे परिवर्तित हो सकते है। जब सात-सात करोड वर्षों मे किसी जीवसंरचना मे रत्तीभर भी परिवर्तन नही हुआ, फिर ३७ लाख वर्ष मे बन्दर से मनुष्य कैसे बन गया, यह कल्पना बोधगम्य नही है, अत: डार्विन कल्पित विकासवाद सर्वथा त्याज्य है। इस विकासवाद की असिद्धि की अन्य हेतु पूर्व संकेतिक किए जा चुके हैं।

विकासवाद की कल्पना, डार्विन के अधकचरे ज्ञान की अटकलपच्चू कल्पना थी, जिसका विज्ञान या सत्य से कोई सम्बन्ध नही। डार्विन को न तो आत्म-विद्या, न योगविद्या, नक्षत्र विद्या किंवा किसी भी विज्ञान का सम्यक् ज्ञान नहीं था, वह मनुष्य के प्रारंभिक इतिहास को भी नहीं जानता था, इसीलिए उसने घोर अज्ञान द्वारा उपर्युक्त कल्पना की।

पाश्चात्य मिथ्याभाषामत

यहां पर हमारा उद्देश्य भाषाविज्ञान का वर्णन करना नही है, केवल यह प्रदर्शित करने के लिए कि पाश्चात्य मिथ्याभाषामतो ने भारतीय इतिहास को कितना विकृत किया, उनका साररूप मे खण्डन करना आवश्यक है।

---

१. पाश्चात्य लेखक तो पाराशर्य व्यास को मनघड़न्त (Legendry) पुरुष मानते ही थे, श्री राधाकृष्णन जैसे भारतीय मनीषी भी पाश्चात्य प्रभाव से वैसा ही मानते थे "The authership of the Gita is attributed to Vyasa, the legendry compiler of the Mahabbharata" (भगवद्गीताभूमिका, श्री राधाकृष्णन्) पृ० १४,

यह पहिले संकेत कर चुके हैं कि जब पाश्चात्यों को संस्कृतभाषा से सर्वप्रथम परिचय हुआ तो उनकी प्रवृत्ति देववाक् संस्कृत को विश्व की आदिम और मूलभाषा मानने की थी। जर्मन संस्कृतज्ञ श्लेगल एवं फ्रैंच बाप आदि की प्रवृत्ति यही थी, परन्तु उत्तरकाल में इस सत्य के फलितार्थ को समझकर उन्होंने षडयंत्र किया कि संस्कृत को विश्व की आदिम भाषा न माना जाय। जब फ्रैंच वैयाकरण बाप ने ग्रीक, लैटिन, पारसी आदि शब्दों का मूल संस्कृत बताना शुरू किया तो मैक्समूलर ने प्रलाप किया— (1) "No Sound scholar ever think of deriving any Greek or Latin word from sanskrit[1]" (2) No one supposes any longer that sanskrit was the common source of Greek, Latin and Anglo saxon[2]. कोईभी निष्पक्ष विद्वान् भाँप लेगा कि यहाँ मैक्समूलर जानबूझ कर सत्य के साथ व्यभिचार कर रहा है, इसका कारण था मैकाले से मिलने के पश्चात् उसका भारतीय इतिहास के साथ रचा गया षड्यन्त्र, इसी षड्यन्त्र के परिणामस्वरूप, पाश्चात्यों ने एक भारोपीयभाषा (Indo European) की कल्पना की, जिसे संस्कृत का भी मूल बताया गया। पाश्चात्यों ने भारतीय और योरोपीय भाषाओं की तुलना से उल्टे परिणाम निकालकर उल्टी गंगा बहाना शुरू किया। पाश्चात्य लेखकों ने अपने मनमाने परिणामों के आधार पर प्रलाप करना शुरू किया कि— 'भाषा का साक्ष्य अकाट्य है, जो प्रागैतिहासिकयुगो के विषय में श्रवणयोग्य है।[४] इसी आधार पर जर्मनसंस्कृतज्ञों ने दम्भ करना प्रारम्भ किया कि वेद का अर्थ जर्मनभाषाविज्ञान से अच्छी प्रकार समझा जा सकता है और जर्मनीभाषा

---

(1) Science of Language Vol. II p. 449.

(2) India, what can it teach us, (p. 21).

(3) In Greek the Sanskrit a becomes a, e or o, without presenting any certain rules-comparative grammer, p. XIII).

(4) The evidence of language is irrefragable and it is the only evidence worth listening with regard to ante-historical periods. (History of Ancient Skt. Lit. MaxMuller p. 13).

"Language alone has preserved a record which would Otherwise have been lost". (Cambridge history of India. Vol. I. p. 41).

विज्ञान का जन्मदाता है—(1) Germany is far more than any other country, the birth place and home of language"[1] (2) The principles of the German school are the only ones which can ever guide us to a understanding of Veda"[2].

इसी मिथ्याभाषाविज्ञान के आधार पर प्रागैतिहासिक युगो एव आर्यप्रावजन की कथा घड़ी गई। मिथ्याभाषामत के आधार ही काल्पनिक इण्डोयूरोपियन मानी गई और यह कल्पना की गई कि आर्यों का मूल किसी यूरोपियन देश मे था, जहाँ से वे ईरान, भारत आदि मे उपनिविष्ट हुये।

ससार आज जानता है कि प्राचीनभारत मे भाषा और व्याकरण का जैसा अप्रतिम और विशाल अध्ययन हुआ, वैसा शताश भी योरोप मे नही हुआ। इन्द्र से पाणिनि तक शतशः महान् वैयाकरण हुए। भारतीयमत के अनुसार मनुष्य के समान भाषा भी स्वयम्भू ब्रह्मा से उत्पन्न हुई, इसलिए उसको ब्राह्मी या देववाक् कहा जाता है। भारतीय इतिहास मे मिथ्या भाषामत के आधार पर 'आर्य' जाति की कल्पना और इतिहास मे 'मिथ्यायुगविभाग' किया गया। अत. इन्ही दो विकृतियो पर यहां विशेष विचार किया जाता है।

'आर्यजाति' सम्बन्धी मिथ्याकल्पना

'आर्य' शब्द किसी जातिविशेष का बोधक नही है। योरोपियन लेखको ने, अब से लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व जब प्राच्यविद्यो का अध्ययन प्रारम्भ किया, तभी से इस शब्द को 'जाति' के अर्थ मे माना जाने लगा। परन्तु प्राचीन-वाङ्मय मे 'आर्य' शब्द किसी जातिविशेष के अर्थ मे प्रयुक्त नही हुआ है। इस कल्पना का मूलकारण था कि जब पाश्चात्यो ने 'इण्डोयूरोपियन' भाषा की कल्पना की और इस सम्पूर्ण भाषावर्ग का सम्बन्ध कल्पित 'आर्य' जाति मे जोड़ा, जिससे कि इस जाति को विदेशी (अभारतीय) सिद्ध किया जा सके। वेदो मे 'आर्य' और 'दस्यु' शब्द समाज के दो वर्गों का बोध कराते हैं।

पाश्चात्यो का षड्यन्त्र

यह था कि उत्तरभारतीयो का भारत मे प्रभुत्व है, अत उन्हे विदेशी सिद्ध किया जाए और दक्षिणभारतीयो मे फूट पैदा करने के लिए द्रविडादि

(1) Language by W D. Whitney

(2) Whitney (American oriental Sec. Proceedings 1867

दाक्षिणात्यों को 'दस्यु' माना जाए, जबकि वेदों में ऐसा भाव कदापि नहीं है। वेदोल्लिखित आर्य-दस्यु संघर्ष को उत्तर भारतीयों की दक्षिणभारतीयों पर विजय के रूप में चित्रित किया गया, जिससे कि दक्षिणभारतीयों का उत्तर-भारतीयों से घृणा और द्वेषभाव उत्पन्न हो और ऐसा हुआ भी और आज उत्तर-दक्षिण भारत का भेद भारत की एक बडी भारी समस्या बन चुका है, जितनी बडी हिन्दू-मुस्लिम समस्या है। यह सब गलत, असत्य और भ्रामक इतिहास लिखने के कारण हुआ और आज तक भी इस भ्रम, त्रुटि या भूल के परिमार्जन का प्रयत्न नहीं हुआ है।

अब वेदों के आधार पर आर्यादिपदों की मीमांसा करेंगे, जिससे कि भ्रमनिवारण होकर सत्य का ज्ञान हो और उत्तर-दक्षिण का भेद समाप्त हो।

योरोपियन जातियाँ विशेषत, जर्मन शासक (यथा हिटलर आदि) अपने को मूल आर्य' मानकर अत्यन्त गर्व अनुभव करते थे, परन्तु भारतीयशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार 'जर्मन' घोर म्लेच्छ है। 'म्लेच्छ' शब्द का स्पष्टीकरण भी आगे किया जायेगा।

आर्य-दस्यु सम्बन्धी कुछ वैदिक मन्त्र द्रष्टव्य है—

विद्वन् ! वज्रिन् ! दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र।[1]

अभिदस्युं बकुरेण धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय।[2]

मिथ्याभिमानी राथ आदि जर्मन लेखक 'आर्य' शब्द की व्युत्पत्ति, अपने द्वारा कल्पित, कृषि के अर्थ मे प्रयुक्त 'अर्' धातु मे बतलाते है और कहते हैं कि 'आर्य' शब्द का मूलार्थ है कृषक'। कोई लेखक 'अर' को गत्यर्थ मे बनाकर घोषित करते है कि 'आर्य' यायावर या घुमक्कड जाति का नाम था। परन्तु संस्कृतव्याकरण म 'अर्' धातु का कहीं पता नहीं है। इसीसे जर्मन-संस्कृतज्ञों के अल्पज्ञत्व, मिथ्यात्व और कल्पनापोढत्व का आभास हो जायेगा। भारतीयमनीषा परम्परा का अनुसरण करते हुए वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने 'आर्य' शब्द के निम्न अर्थ किये है —विदुषाः एव यजन्[3], विद्वांस स्तोतारः[4], अरणीय

1. ऋग्वेद (१।१०३),
2. ऋग्वेद (१।११७।२१),
3. वही (१।५१।८);
4. वही (१।१३०।३),

सर्वैःगन्तव्यम्[1], उत्तमं वर्णं त्रैवर्णिकम्[2], मनवे[3], कर्मयुक्तानि[4], श्रेष्ठानि[5], अर्थात् आर्य हैं—विद्वान्, अनुष्ठाता, स्तोता, विज्ञ, अरणीय या सर्वगन्तव्य[6] ('आर्य' शब्द का एक अर्थ 'ऋजु' यानी सीधासाधा मनुष्य भी समझना चाहिए), कर्मयुक्त श्रेष्ठ (धार्मिक) मनुष्यमात्र ही 'आर्य' पदवाच्य था। ऋग्वेद क्या रामायण, पुराण, महाभारत, धर्मशास्त्र आदि मे कही भी 'आर्य' शब्द जाति, वंश या नस्ल का बोधक नही है। 'आर्य' के विपरीत ही 'अनार्य' या 'दस्यु' जो वेद के अनुसार अकर्मा, मूर्ख, अन्यव्रत और अमानुष (पशुतुल्यआचरण का) था[7], ऐसे दस्यु का वध करने की ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करता है। 'दस्यु' या 'आर्य' शब्द किसी जातिविशेष के बोधक नही थे। 'दस्यु' का पर्यायवाची शब्द ही 'अनार्य' था। प्राय: पाश्चात्य लेखक 'अनार्य' शब्द का अर्थ दक्षिणभारतीय द्रविडादि या राक्षसादि ग्रहण करते हैं, परन्तु दक्षिण भारत का शासक प्रसिद्ध रावण, रामायण मे अपने को 'आर्य' और अपने सोदर्य भ्राता विभीषण को 'अनार्य' घोषित करता है।[8] अत. आर्य-अनार्य मे जाति या नस्ल का प्रश्न उत्पन्न कहाँ होता है, जब दो भ्राताओ मे परस्पर एक अपने को आर्य और दूसरे को 'अनार्य' मानता था।

---

१ वही (१।२४०।८),
२. वही (३।३४।९)'
३. वही (४।२६।२),
४ वही (६।२२।१०),
५. वही (६।३३।१०),
६. तुलना कीजिये—रामायण मे राम का आर्यत्व (सर्वलोकगमनीयत्व)--

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ।।

(रामायण १।१।१६)

अत सायण का 'आर्य' शब्द का अर्थ 'सर्वगन्तव्य' काल्पनिक नही, ऋषि वाल्मीकि के वचन से उसकी पुष्टि होती है।

७ अकर्मा दस्यु अभिनो अमन्तु अन्यव्रतो अमानुष ।
त्व तस्य अमित्र हन वधो दासस्य दम्भय ।।   (ऋग्वेद)

८. यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दव. ।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ।।
यथा पूर्वं गज. स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः ।
दूषयति आत्मनो देह तथानार्येषु सौहृदम् ।।

(युद्धकाण्ड—१६।११-१४)

श्री रामदास गौड ने बिल्कुल ठीक ही लिखा है—"किन्तु वेद के प्रयोग एवं यास्क के अर्थ मे 'आर्य' शब्द मनुष्यमात्र के लिए प्रयुक्त दीखता है"[1] आर्यावर्त का अर्थ हुआ (श्रेष्ठ) मनुष्यो का आवास और यही से मनुष्यजाति चारो ओर फैली।[2]

प्राचीनकाल मे, नाटकों मे भारतीय स्त्री अपने पति को 'आर्यपुत्र' कहती थी, इसका भी यही भाव था कि उसका पति सर्वश्रेष्ठ है, यदि 'आर्य' शब्द जातिवाचक होता तो कोई स्त्री ऐसा नही कहती। वेद मे आर्य शब्द का अर्थ 'श्रेष्ठ' या 'स्वामी' भी है, वैश्यो को प्रायः श्रेष्ठी (सेठ) और अर्य' कहा जाता था। साधु (साधुकार-साहूकार) शब्द भी इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता था। अतः 'आर्य' शब्द का मूलार्थ था—साधु या श्रेष्ठ (पुरुष), वही सभ्य, सज्जन था, इसके विपरीत अनार्य, दस्यु, असज्जन शब्द थे और आज इसी भाव को इस प्रकार कहते है 'यह आदमी चोर है।' यहां 'चोर' शब्द अनार्य या असभ्य का वाचक है।

ईस्यों ने यारोप बसाया

मनुस्मृति मे कहा गया है—

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
> स्व स्व चरित्रं शिक्षरेन् सर्वमानवा ॥

उपर्युक्त वचन, यद्यपि आर्यावर्तनिवासी के आदर्श चरित्र एव सर्वविद्या विशारदत्व की दृष्टि से कहा गया है, परन्तु आर्यावर्त से ही मनुष्यजाति का पृथ्वी के सभी देशो मे प्रसार और उपनिवेशन हुआ। इस विषय का यहाँ केवल संक्षिप्त सर्वेक्षण करेंगे।

उल्टी गंगा बहाई

पाश्चात्य लेखको ने जानबूझकर या अज्ञानवश 'आर्यजाति' की कल्पना करके उल्टी गंगा बहाई कि यूरोप के किसी देश की मूलभाषा इण्डोयूरोपियन थी और उसको बोलने वाले 'आर्य' उसी योरोपियबमूल से प्रस्थान करके ईराब, भारतादिदेशो मे जा बसे। परन्तु हम यहाँ एक अत्यन्त विस्मयकारक सत्य का

---

१. हिन्दुत्व (पृ० ७७१)

२. गीता में 'अनार्य' शब्द का यही भाव है—

> कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
> अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ (गीता २।२)

उद्घाटन कर रहे हैं जो ससार मे अभी अज्ञात है कि जिस वामनविष्णु के दश अवतारो की भारतीयप्रजा सर्वाधिक पूजा करती है, उसी कश्यपपुत्र वामन विष्णु आदित्य (अदितिपुत्र) ने, बलिनेतृत्व मे, देवो से संघर्षरत दैत्यदानवो को, भारतवर्ष से चातुर्यपूर्वक निकाल दिया और उन्ही दैत्यदानवो ने सम्पूर्ण योरोप और रूस के अनेक देश बसाये। योरोप के देशो के नाम आज भी उन्ही दैत्यो के नाम पर प्रसिद्ध हैं, इस परम आश्चर्यजनक तथ्य का रसास्वादन अभी अभी पाठक करेंगे।

योरोप और भारत की भाषाओ मे साम्य का कारण यही है कि विक्रम से १२००० वि० पू० देव और दैत्य-दानव (असुर) साथ-साथ भारत मे रहते थे। वस्तुत. ऋषि कश्यप की सन्तान देवासुरगण मूल मे भारतीयप्रजा ही थे। इन्द्रादिदेवो मे पूर्व दैत्यदानवअसुरो का सम्पूर्ण पृथ्वी पर साम्राज्य था।

'असुराणा वा इय पृथिवी आसीत्',

(काठकसहिता) तथा (तै० ब्रा० ३।२।६।६)

वाल्मीकि ने लिखा है—

दितिस्त्वजनयत् पुत्रान् दैत्यास्तात यशस्विन ।
तेषामिय वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा ।।

(अरण्यकाण्ड ४।१५)

"कश्यपपत्नीदिति ने यशस्वी दैत्यसज्ञकपुत्रो को उत्पन्न किया प्राचीनकाल मे वन, पर्वत और समुद्रसहित सम्पूर्णपृथ्वी पर असुरो का साम्राज्य था।"

हिरण्यकशिपु दैत्यो का आदिसम्राट् था, इसी के नाम से क्षीरसागर को कशिपुसागर (कैस्पियनसागर) कहते थे, जो आज भी इसी नाम से विख्यात है, निश्चय उस समय सम्पूर्णपृथ्वी पर असुरो का राज्य था, इसीलिए उन्हे 'पूर्वदेव' कहते हैं। ज्येष्ठ अदितिपुत्र 'वरुण' के असुरो से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। वरुण, सम्भवत हिरण्यकशिपु के प्रधान पुरोहित थे, इनको 'असुरमहत्' कहा जाता था और दीर्घकालतक पारसीलोग ईरान मे अहुरमज्दा' के नाम से वरुण की पूजा करते थे। हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को दो भागो मे बाटा।[1] समुद्रीभागो प. वरुण का साम्राज्य था, इसीलिए समुद्र को वरुणालय और वरुण को 'यादसापति' कहा जाता था। वरुण के वशज भृगु, कवि, शुक्र, शण्ड और मर्क ..

---

१ हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिघाते दैवतं ।
दष्ट्या तु वराहेण समुद्रस्तु द्विधा कृत ।। (मत्स्यपुराण ४७।४७)

असुरों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहे । शुक्रादि असुरो के प्रधानपुरोहित थे । पृथ्वी पर देवासुरों के द्वादशमहासंग्राम हुए, जिनका पुराणों में बहुधा उल्लेख है । अन्तिम (द्वादश) देवासुरसंग्राम का विजेता नहुष का अनुज रजि था । इसी युद्ध मे वामनविष्णु ने देवों के लिए असुरों से भूमि माँगी—"असुराणां वा इयं पृथिव्यासीत् ते देवा अब्रुवन् दत्त नोऽस्या इति ।"[1] उस समय समस्त लोक (पृथ्वी की प्रजायें) असुरों से आक्रान्त थे—

बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ।। (वायु०)

वामन ने बलि से भूमियाचना की, शुक्राचार्य के विरोध करने पर भी बलि ने भूमिदान देवा स्वीकार कर लिया और विक्रम विष्णु ने समस्त भूमि स्वचातुरी से अधिकार कर लिया । बलिनेतृत्व में असुरगण भारतवर्ष छोड़कर आज से १४००० वर्ष पूर्व योरोप की ओर पलायन कर गये, वहाँ उन्होंने अपने नामों से छोटे-छोटे देश उपनिविष्ट किये । शुक्राचार्य के तीन असुरयाजक प्रभावशाली पुत्र थे, शण्ड, मर्क और वरूत्री ।[2]

दानवो मे रहने के कारण शण्ड, मर्क आदि भी दानव कहलाते थे, अतः दानवमर्क ने वर्तमान डेनमार्क (दानवमर्क) देश बसाया और षण्डदानव ने स्केन्डेनिविया देश बसाया । कालकेय दैत्य के नाम से केल्ट प्रसिद्ध हुआ, 'दैत्य' शब्द का अपभ्रंश डच (Dutch) हुआ । जर्मन का प्राचीन नाम डीट्शलैंड (दैत्यलैंड) था, दनायु के नाम से 'योरोप की डेन्यूब नदी' प्रसिद्ध हुई, असुर के कारण सीरिया का नाम असीरिया हुआ, मद्र से मीडिया । दानवेन्द्र के नाम से बेलजियम—(बल दैत्य),[3] पणि असुरों ने फिनिशलैंड बसाया, श्वेतदानव ने स्वीडन देश बसाया, श्वेतनाम से ही स्विट्जरलैंड प्रसिद्ध हुआ, निकुम्भ दैत्य से नीमिख (आष्ट्रिया) प्रसिद्ध हुआ । एक गाथ दैत्य था, जिसके नाम से फ्रांस मे 'गाथ' जाति प्रचलित हुई । 'दैत्य' शब्द का अपभ्रंश टीटन है, जो अंग्रेजों के पूर्वज थे । 'दैत्य' शब्द के अनेक विकार हुए—जैसे डीट्श, डच, टीटन, जियम, डेन इत्यादि । योरोप और अफ्रीका के निम्न देश आज भी दैत्यदानवों के नामों को धारण किये हुए हैं—

१. काठकसंहिता (३१।४)
२. शण्डमर्कौ वा असुराणा पुरोहितावास्ताम् (मैत्रायणीसंहिता ।६।३)
३. बेलजियम शब्द का अन्तिम अंश 'जियम' शब्द भी दैत्यशब्द का अपभ्रंश है ।

(१) डेनमार्क - दानवमर्क, (२) स्कैण्डेनेविया—पञ्चदानव, (३) डेन्यूब—दनायु (नदी),[१] (४) केल्ट—कालकेय, (५) डच - दैत्य—(हालैंड), (६) बेल्जियम—बलिदैत्य, (७) डीटमलैंड (जर्मन)—दैत्यदेश, (८) फिनिश—पणि, (६) स्विज्—श्वेत, (१०) स्वीडन—श्वेतदानव, (११) म्यूनिख—निकुम्भ, (१२) टीटन—दैत्य, (१३) बेरूत—वरूत्री, (१४) लेबनान—प्रह्लाद, (१५) लीबिया—ह्लाद, (१६) त्रिपोली—त्रिपुर, (१७) सुमाली—सोमालीलैंड (अफ्रीका)।

सप्तपातालों में असुरनिवास

प्राचीन भारत मे पृथ्वी के समुद्रतटवर्ती देशो की संज्ञा पाताल या रसातल प्रसिद्ध थी। पयस् + तल का ही रूप पाताल हो गया, इसका स्पष्ट अर्थ है समुद्रतटवर्ती (जलमय) भूमि। रस भी जल को कहते हैं, अतः रसातल इसका पर्याय हुआ। 'तल' देश समुद्रीय भू-भागों की ही सज्ञा थी। ऐसे सात तल (भू-भाग) पुराणो मे बहुधा उल्लिखित हैं—अतल, सुतल वितल, महातल, श्रीतल (रसातल) और पाताल। ये पातालादि देश पश्चिमी एशिया, अरब देशो, अफ्रीका एवं अमेरिका के समुद्र-तटवर्ती भू-भागों के नाम थे, जहाँ पर भारत से निष्कासित असुर उपनिविष्ट हो गये।

अरबो[२] की एक जाति, उत्तरी मिस्र के तल अमर्रान नामक स्थान मे रहती थी यह तेल (Tel) तल शब्द का अपभ्रंश है, तुर्की मे अनातोलिया और इजरायलदेश मे तेल-अबीब मे तेल (Tel) शब्द 'तल' का ही विकार है। 'तल'

---

१ दनु की भगिनी दनायु थी, जिन्होंने वृत्र का पालन किया था—"त दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतुः तस्माद् दानव इत्याहुः (श० ब्रा० १।६।२।६) दनायु के नाम से डेन्यूब नदी प्रसिद्ध हुई।

२. अरबों को ही गन्धर्व कहते थे, ये वरुण की प्रजा थे—"वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विश (श० ब्रा० १३।४।३।७) वरुण की राजधानी सुषा नगरी (ईरानी) पुराणों मे उल्लिखित है—सूषा नाम रम्या पुरी वरुणस्यापि श्रीमतः (मत्स्यपु०) पारसी और अरब दोनों में ही वरुण का साम्राज्य था, अरब (गन्धर्व) वरुण को ताज (यादसापति) कहते थे—'Taz the forth ancestor of Azi Dahak is founder of the race of the Arabs;' वृत्रासुर वरुण की चतुर्थ पीढ़ी में था, उसी का नाम अहिदानव (अजिदाहक) था।

शब्द देश या स्थान का पर्यायवाची था। पंजाबीभाषा मे भूमि को आज भी थल्ले या तल्ले कहते हैं जो निश्चय ही तल या स्थल का विकार है। 'तुर्क' भी 'तुरग' शब्द से बना है, जो गन्धर्वों का प्रसिद्ध वाहन था। विभिन्न देशों में घोड़े की विभिन्न संज्ञायें प्रसिद्ध थीं, बृहदारण्यकोल्लिखित इस ऐतिहासिक तथ्य से भी संस्कृत का मूल या आदिमभाषा होना सिद्ध होता है—"हय इति देवान् अर्वा इत्यसुरान्, वाजीति गन्धर्वान्, अश्व इति मनुष्यान्' (बृ० उ० १।१।१), घोड़े के तुरग (तुर्क) आदि और पर्याय अनेक उपजातियों में प्रसिद्ध हुये। संस्कृत के अतिभाषा एक-एक शब्द के शतशः पर्याय थे जिनमें से एक-एक देश या जाति ने एक-एक पर्याय ग्रहण किया। अश्वशब्द को इग्लैंडवासी दैत्यों (टीटन) - अंग्रेजो ने ग्रहण किया, जिसका आज Horse (हार्स) हो गया। तुर्की ने तुरग और अरबो (गन्धर्वों) ने 'अर्वत्' शब्द ग्रहण किया। इसी प्रकार अंग्रेजी मे 'सूर्य' का विकार सन (Sun) और मास (चन्द्रमस्) का विकार मून (Moon) एकमात्र पर्याय मिलते हैं।

पुराणो मे 'गभस्तल' का अधिपति राक्षसेन्द्र सुमाली को बताया है। आज अफ्रीका का विशाल देश सोमालीलैंड, उसी राक्षसेन्द्र के नाम से विख्यात है। रामायण, उत्तरकाण्ड मे विष्णु द्वारा सुमाली की पराजय का वर्णन है, परास्त सुमाली आदि राक्षस लंका से पलायन करके पाताल अर्थात् अफ्रीका के सोमालीलैंड इत्यादि देशो मे बस गये।[1] आज, अफ्रीका के अनेक देशों नदी पर्वतो के नाम संस्कृत के विकार हैं, इससे किसी को विमति नही हो सकती।

यथा - केन्या—कन्या—(कन्याकुमारी)	सुदानव—सूडान,
अगुला—अग	त्रिपोली—त्रिपुर
बेगुला - बग	माली—माली
नाइल—नील (नदी)	सोमाली—सुमाली
ईजिप्ट - मिस्र	इत्यादि
त्रिनिदाद्—त्रिदैत्य,	

भविष्यपुराण मे उल्लिखित है किसी काश्यप ब्राह्मण ने मिस्रदेशवासी म्लेच्छो को ज्ञान दिया[2] और उनको ब्राह्मण बनाया। अतः अफ्रीका में मिश्रादि देशों मे भारतीयसंस्कृति का पूर्ण प्रचार था।

पण्डित भगवद्दत्त के अनुसार अफ्रीका का 'लीबिया' देश 'प्रह्लाद' शब्द का

---

१. त्यक्त्वा लंकां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः (रा० ७।८।२२)

२. वाम कृत्वा ददौ ज्ञानम् मिस्रदेशे मुनिर्गतः
सर्वान् म्लेच्छान् मोहयित्वा कृत्वाथ तान् द्विजन्मनः ॥

अपभ्रंश है।[1] वितल मे प्रह्लाद का राज्य था, अतः लीबिया 'वितल' हो सकता है।

'मय एक अत्यन्त प्राचीन दानवपुरुष या जाति थी, पुराणों में मय दानवेन्द्र को शुक्राचार्य का पुत्र कहा गया है। मयजाति की सभ्यता मध्यअमेरिका के देश मैक्सिको आदि देश में मिली है, पुराणो में इसकी 'तलातल' संज्ञा प्राप्त होती है। मय का पुत्र था बलदानव, इसका राज्य तलातल मे था। सूर्यसिद्धान्त में लिखा है कि कृतयुग के अन्त में मयदानव ने घोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर विवस्वान् (सूर्य) ने उसे ग्रहों का चरित्र (ज्योतिषशास्त्र) बताया।[2] मय की भगिनी सरण्यू का विवाह सूर्य (विवस्वान्) से हुआ था। कुछ लोग शाल्मलिद्वीप वर्तमान ईराक को मानते हैं, जहाँ का शासक शाल्मनसेर था। वर्तमान खोजो के अनुसार मयसभ्यता का केन्द्र मध्य अमेरिका मे मैक्सिको आदि देश थे। मयजाति ज्योतिर्विज्ञान और स्थापत्यकला मे सर्वोत्कृष्ट थी। मय को ही विश्वकर्मा कहते थे। मयदानवो ने विश्व में सर्वश्रेष्ठ नगर और भवन बनाये थे। महाभारतकाल मे युधिष्ठर की सभा और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) मय दानव ने बसाई थी। मयजाति भवननिर्माणकला में विश्व में विख्यात थी। डेनीकेन आदि के मत में मयजाति किसी दूसरे ग्रह से आकर मैक्सिको मे बसी, उनकी भवनकला इतनी उत्कृष्ट है कि डेनीकेन के मत मे पृथ्वीवासी ऐसा भव्य निर्माण नही कर सकते। डेनीकेन की अन्तरिक्षसम्बन्धी कल्पना मे कितना सत्यांश है, यह तो हम नही जानते, परन्तु, सूर्यसिद्धान्त और महाभारतग्रन्थो से मय असुरो के ज्योतिष एव शिल्पसम्बन्धी उत्कृष्टज्ञान की पुष्टि होती है। मयशिल्पियो को पर्वत काटने एव सुरग बनाने की कला विशेषरूप से ज्ञात थी, जिसकी पुष्टि भारतीयलेखो एव प्रत्यक्ष मैक्सिको एवं मिस्र के पिरामिड आदि के देखने से होती है।

पणि

रसातल मे पणि एव निवातकवच नाम के असुर रहते थे—'ततोऽधस्ताद्रसातले दैत्याःदानवा. पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिनः।'[3] महाभारत स अर्जुन द्वारा हिरण्यपुरवासी निवातकवच दानवो के वध का

---

१. द्रष्टव्य, भारतवर्ष का बृ० इ० भाग १, पृ० २१६,

२. भूमिकक्षा द्वादशेऽब्दे लंकायाः-प्राक् च शाल्मलेः।
मया प्रथमे प्रश्ने सूर्यवाक्यमिदं भवेत्॥ (शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त १।१६८)

३. भागवतपुराण (५।२४।३०);

विस्तृत उल्लेख है। पणियों का रसातलस्थ—हिरण्यपुर समुद्रकुक्षि में बसा हुआ था, और असुरों की संख्या तीन करोड़ थी वहाँ पर पौलोम, कालकेय और कालखंज दानव रहते थे।[1] यह आकाशस्थ पुर था।[2]

यह हिरण्यपुर प्राचीन बैबीलन का इतिहासप्रसिद्ध नूपुर शहर था, जो असुरों का विख्यात नगर था, इसी के निकट उर नगर था, जो असुरसभ्यता का अन्य विख्यात केन्द्र था। इन्द्र के समय में यहां पणिनाम के असुर रहते थे, जिन्होंने इन्द्र की गौ चुराकर किसी गुहा में छिपा दी थी। इन्द्र ने सरमानाम की देवशुनी (गुप्तचरी) गायों की खोज के लिए प्रेषित की थी, इसका आख्यान वैदिकग्रंथो (ऋग्वेदादि) मे है। ऋग्वेद का सरमापणिसंवाद विख्यात है। वेदमन्त्रों एवं बृहद्देवताग्रन्थ में रसा (नदी) तटवासी पणियों का उल्लेख है,[3] इसी 'रसा' के नाम से वह देश 'रसातल' कहलाया। पारसीधर्मग्रन्थ अवेस्ता में रंहानदी का उल्लेख है, आज पश्चिम एशिया मे इसको सीरनदी कहते हैं।

उत्तरकाल में पणिगण योरोप की ओर प्रस्थान कर गये, जहाँ उन्होंने फिनिशिया या फिनलैण्ड बसाया।

म्लेच्छजातियों का उत्तर में निवास

वैदिकग्रंथो एवं इतिहासपुराणो में बहुधा उल्लिखित है अनेक क्षत्रिय (भारतीय) समय-समय पर अनेक कारणो से उत्तर, पूर्व और पश्चिम की ओर गये और उन्होंने वहाँ देश बसाकर शासन किया। आदिकाल मे सभी मनुष्य 'आर्य' (सज्जन) थे, कालान्तर में शनैः शनैः मनुष्य में वस्तुता या अनार्यत्व की वृद्धि होने लगी। भाषा की अशुद्धि के कारण वे मनुष्य 'म्लेच्छ' कहलाने लगे।

---

१. निवातकवचा नाम दानवा मम शत्रवः।
समुद्रकुक्षिमाश्रित्य दुर्गे प्रतिवसन्त्युत।
तिस्रः कोट्यः समाख्यातास्तुल्यरूपबलप्रभाः॥ (महाभारत ३।१६८।७१-७२)

२. तदेतत् स्वपुरं दिव्यं चरत्यमरवर्जितम्।
हिरण्यपुरमित्येवं ख्यायते महत्॥ (वही ३।१७३।१२-१३)

३. असुराः पणयोनाम रसापारनिवासिनः।
गास्तेऽपजह्रुरिन्द्रस्य न्यगूहँश्चप्रयत्नतः।
शतयोजनविस्तारामतरत्ताम् रसां पुनः।
यस्यापारे परे तेषां पुरमासीत्सुदुर्जयम्।
पदानुसारपद्धत्या रथेन हरिवाहनः।
गत्वा जघान स पणीन् गाश्चताः पुनराहरत्॥ (बृहद्देवता अध्याय ८)

प्राचीनभारतीय ग्रंथों में इस तथ्य का संकेत है कि कौन-सी क्षत्रिय जातियाँ म्लेच्छ हुई, सर्वप्रथम, वैदिकग्रन्थो से प्रमाण उद्धृत करते हैं—(१) न म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेद् । असुर्या ह्येषा वाक् ।[1] (२) असुर्या वै सा वाग् अदेवजुष्टा[2] (३) म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्द इति विज्ञायते ।[3] अतः आरम्भ में भाषा के अशुद्धोच्चारण के कारण जातियाँ म्लेच्छ हुई, पुनः कालान्तर मे धर्माचरणच्युति के कारण म्लेच्छता मानी गई ।[4] मनु ने क्रियालोप एवं शास्त्रों के प्रदर्शन के कारण निम्न क्षत्रियजातियो को म्लेच्छ और वस्यु कहा है—पौण्ड्र, उड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात दरद और खश ।[5]

पाश्चात्य भ्रामकमतो से प्रभावित होकर अनेक भारतीयलेखकों मे 'म्लेच्छ' और 'असुर' शब्दो मे विदेशीमूलत्व खोजने की प्रवृत्ति बन गई । डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल के आधार पर श्री जयचन्द्र विद्यालकार ने लिखा—वास्तव मे 'म्लेच्छ' धातु मे एक विदेशी शब्द छिपा हुआ है, वह उस 'सामी' शब्द का रूपान्तर है जो हिब्रू (यहूदी) मे 'मेलेख' बोला जाता है । सस्कृत मे उसका 'म्लेच्छ' बन गया ।" इसी प्रकार असुर शब्द के विषय में श्रीजायसवाल का विचार था, "इस प्रकार असुरशब्द शुरू मे स्पष्टत अश्सुर (असीरियाबासी) लोगो का और म्लेच्छ अनेक राजाओं का वाचक था ।[6]"

लोकमान्यतिलक के मत मे अथर्ववेद(५।१३) मंत्रो के प्रयुक्त तैमात, आलिगी, विलिगी उरुगूला, ताबुव आदि शब्द काल्डीयन हैं ।[7] कुछ अन्य लेखको के मत मे ऋग्वेद मे 'मना:' आदि शब्द जो भार (परिमाण) के वाचक हैं, काल्डीयन मूल के है । इसी प्रकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के मत मे अष्टाध्यायी में

---

१. श० ब्रा० (३।२।१।२४),
२. ऐ० ब्रा० (६।५),
३. भार० गृ० सू०
४ व्युच्छेदात्तस्य धर्मस्य निर्यायोपपद्यते ।
ततो म्लेच्छा भवन्त्येते निर्घृणा धर्मवर्जिताः ॥ (महा० अनु० १४६।२४)
५ मनुस्मृति (१०।४२-४५) ;
६. भारतीय इतिहास की रूपरेखा (पृ० ५३८, जयचन्द्र विद्यालंकार कृत) तथा Vedic Chronology, Chaldean and Indian Vedas article (P 125-144)
७. भण्डारकस्मारकग्रंथ मे तिलक का लेख चाल्डीयन और भारतीयवेद ।

प्रयुक्त कन्या, अर्क, आवाल, कार्षापण और पुस्तक आदि शब्द ईरानी मूल के हैं और इसी प्रकार अन्य बहुत से लेखकों ने विपुल ऊँटपटाँग कल्पनायें कर रखी है कि अमुक शब्द विदेशी है, अमुक भारतीयविद्या का मूल अमुक विदेश हैं, इत्यादि। यह समस्त विकृतियाँ इतिहास के यथार्थज्ञान के न होने से है। उपर्युक्त तथाकथित इतिहासकारों को उन देशों का इतिहास देखना चाहिए कि वे देश कितने प्राचीन हैं। काल्डिया या चाल्डिया देश भारतीय चोलक्षत्रियों ने उपनिविष्ट किया और बैबीलन या बावल का प्राकृत नाम बवेरु था, जिसका बवेरुजातक मे उल्लेख है, इसका शुद्धरूप था वभ्रु। चोल और वभ्रु दोनों ही क्षत्रजातियाँ विश्वामित्र कौशिक की वंशज थी। अफ्रीका का एक प्राचीन नाम कुशद्वीप था, अत: कुश या कौशिक प्राचीनभारतीयक्षत्रिय थे, जिन्होने मध्यपूर्व एशिया, अफ्रीका के अनेक देशो मे सभ्यताओ का पल्लवन किया। पुराणों मे शक[1] नरिष्यन्त की सन्तान और यवन[2] तुर्वसु के वंशज कथित हैं। अत: चोल, बभ्रु, शक, यवनादि के पूर्वज भारतीय थे और सभी शुद्ध संस्कृत बोलते थे। वे बाह्य देशो मे बसने के कारण, क्रियालोप व शास्त्रो के अदर्शन के कारण—(संस्कारहीन —असंस्कृत=अशुद्ध) भाषा बोलने लगे।[3] अत: यथार्थ इतिहासज्ञात होने पर संस्कृत ही मूलभाषा सिद्ध होती है।

अत· म्लेच्छजातियों एव म्लेच्छभाषाओ का मूल भारत ही था, इसकी अब यहाँ कुछ विशद विवेचना करते हैं, जिससे भ्रमो का निवारण हो।

मिश्र देश का इतिहास मनु से आरम्भ

प्राचीन मिश्रनिवासी अपने वश का प्रारम्भ वैवस्वतमनु से मानते थे— The priets told Herodotus that there had been 341 generations in both of King and high priests from Menes (मनु) to Sethos and this he calculates at 11340 years[4] इसका अर्थ है कि मनु से सैथोज तक राजाओं और पुरोहितों की ३४१ पीढ़ियाँ थी और ११३४० वर्ष व्यतीत हुए।" भारतीयकालगणना मे मनु का लगभग यही समय हैं, यह अन्यत्र सिद्ध किया जायेगा। उत्तरकालीन अनेक मिश्रीराजाओ के नाम भी भारतीय थे, तथा, अनु, औशिनर शिवि इत्यादि।[5]

---

१. नरिष्यन्तः शकाः पुत्राः (हरिवंश पु० १।१०।२८)।
२. तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः (महाभारत आदिपर्व)
३. द्रष्टव्य, (मनुस्मृति १०।४२-४५)
४. The Ancient history of East by Philips Smith, p. 59.
५ द्रष्टव्य—The Cradle of Indian history by C. R. Kishnamacharlu.

ययाति का कनिष्ठ पुत्र अनु था। इसका कुल आनवकुल कहलाया। इसके वंशजों ने न केवल पश्चिमी भारत[1] में राज्य स्थापित किये, बल्कि योरोप और अफ्रीका के अनेक देशों में राज्य स्थापित किये। यूनान मे डेरोरियन और आयोनियन (यवन=आनव) क्रमशः द्रुह्यु के वंशज थे। द्रुह्यु के वंशज गान्धारों और काम्बोज म्लेच्छो ने अफगानिस्तान और ईरान मे उपनिवेश स्थापित किये। काम्बोज शब्द की व्युत्पत्ति के हेतु महाभारत का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है, जिसमे ययाति अपने पुत्र द्रुह्यु को शाप देता है—

तस्माद् द्रुह्यो प्रिय· कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित् ।
अराजा भोजशब्द त्वं तत्र प्राप्स्यति सान्वय· ॥[2]

'काम+भोज' शब्द मिलकर 'काम्बोज' शब्द बना, वे द्रुह्यु वंशज थे, ये भारत से निष्कासित होकर दक्षिणी ईरान मे बस गये और वही इन्होने राज्य स्थापित किया। तुर्वसु और अनु के ही वंशज ही यवन हुये। मिश्रदेश के इतिहास मे हेरोडोटस के लेखो के आधार पर प० भगवद्दत्त ने एक अद्भुत एवं आश्चर्यजनक खोज की है जो भारतीय इतिहास की विकृति को दूर करती ही है, साथ, प्राचीनभारत का प्राचीन मिश्र मे घनिष्ठ संबंध जोडती है—प्राचीन यूनानी इतिहासकार हैरोडोटस ने देवों को तीन श्रेणियो का वर्णन किया है, जिसको पाश्चात्यलेखक नहीं समझ सके। पण्डित भगवद्दत्त ने इसका रहस्य समझकर लिखा है कि पुराणों मे उल्लिखित दैत्य, देव और दानव ही देवो की तीन श्रेणियाँ थी। दैत्यो को पूर्वदेव कहा जाता था। वे प्रथमश्रेणी के देव थे, द्वितीयश्रेणि में इन्द्रादि द्वादशदेव थे और तृतीयश्रेणी में विप्रचित्ति, वृत्र आदि दानव थे। इन तीनो मे सर्वाधिक कनिष्ठ क्रमशः विष्णु (हरकुलीज) बाण (पान) और वृत्र (बैक्सस) थे।[3] पं० भगवद्दत्त बैक्कस की पहचान ठीक प्रकार से नही कर पाये। यह बैक्कस विप्रचित्ति[4] न होकर वृत्रत्वाष्ट्र था। पान (pan) की

१. कैकय, शिबि, मद्र सौवीर आदि अनु के वंशज थे।
२. महाभारत (१।८४।२२)
३. The Greeks regard Hercules, Bacchus and Pan as the youngest of gods (Herodotus p. 189);
४. "बैक्कस (विप्रचित्ति दानव) से, जो दैत्यों और देवों मे सबसे छोटा है, मिस्र के पुरोहित इस (अमेसिस) तक १५००० वर्ष गिनते हैं।" भा० बृ० इ० प्रथम भाग पृ० २१७,

पहचान भी पण्डितजी नहीं कर पाये, यह पान बाण (बाणासुर) ही था। यह दैत्यों का अन्तिम महान्‌शासक था, जो बलि का पुत्र था।

मिस्री पुरोहित हरकुलीस (विष्णु) के जन्म से अमेसिस के राज्य तक १७००० वर्ष व्यतीत हुए मानते थे।[1]

अदिति के द्वादशपुत्र ही प्रसिद्ध द्वादश आदित्य देव थे[2], इनमें आठ मुख्य माने जाते थे।[3]

मिस्री कालगणना वैवस्वत मनु के सम्बन्ध में पूर्णतः ठीक है, परन्तु वृत्र और विष्णु के सम्बन्ध में कुछ त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती हैं। यदि मिस्रीगणना को ठीक माना जाय तो विष्णु का समय वैवस्वत मनु से लगभग ६००० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा, जो प्रायः असम्भव प्रतीत होता है। यह सम्भव है कि हैरोडोटस से पाठ में ही त्रुटि हो।

वरुण और यम का राज्य ईरान-ईराक और योरोप अफ्रीका में

कश्यप और अदिति के ज्येष्ठतम पुत्र थे वरुण आदित्य। ये हिरण्यकशिपु के समकालीन थे। द्वितीय जन्म मे भृगु, वसिष्ठ आदि सप्तर्षि इन्हीं वरुण के पुत्र थे। हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या का वरुण के ज्येष्ठ पुत्र कवि भृगु से विवाह हुआ था। वरुण का संक्षिप्त वंशक्रम निम्न तालिका से प्रकट होगा और इससे यह भी ज्ञात होगा कि वरुणवंशजों का घनिष्ठ सम्बन्ध दैत्यदानवो (असुरो) से था वरन् वरुण के वंश में ही प्रसिद्ध दानव हुये—

वरुण—असुरमहान्—याद (ताज)—अहुरमज्दा
|
भृगु, वसिष्ठ आदि सप्तर्षि
|
उशना काव्य—शुक्राचार्य
|
त्वष्टा | वरूत्री | शण्ड | मर्क
|
त्रिशिरा—विश्वरूप | वृत्र—अहि - अजिदाहक, | मयदानव | सरण्यू

१. Seventeen thousand years (from the birth of Hercules before the reign of Amasis the twelve gods; they (Egyptians) affirm (Herodotus P. 136);

२. द्वादशो विष्णुरुच्यते (महाभारत १।६५।१६),

३. अष्टानां देवमुख्यानाम् इन्द्रादीनां महात्मनाम्। (वायुपुराण ३४-९२)

इनमें सरण्यू विवस्वान् (सूर्य) की पत्नी थी। प्रकट है कि विवस्वान्, वरुण के भ्राता होते हुए भी उनमें न्यून में न्यून चार पीढ़ियों का अन्तर था।

पहिले वर्णन कर चुके हैं कि सप्त पातालों में दैत्यदानवो का राज्य था, तृतीय पाताल वितल में प्रह्लाद, अनुह्लाद तारक और विश्वरूप त्रिशिरा के नगर थे अफ्रीका के त्रिपोली (त्रिपुर) मे इसकी स्मृति अभी भी शेष है कि असुरों के प्रसिद्ध त्रिपुर अफ्रीका मे ही थे, लीबिया मे प्रह्लादराज्य था। त्रिपुरो का विस्तृत वर्णन अन्यत्र किया जायेगा। सुमाली दानवेन्द्र द्वारा उपनिविष्ट सोमालीलैंड आज भी इसी नाम से अफ्रीका मे प्रसिद्ध है। बेरूत नगर 'वरूत्री' का अपभ्रंश हैं, जहां शुक्रपुत्र वरूत्री का राज्य था। अरबजातियाँ वरुण के वंशज गन्धर्वों के ही अवशेष है, यह पहले ही सूचित कर चुके हैं। अरबदेशों और अफ्रीका मे दानवों और राक्षसो का साम्राज्य था। उत्तरकाल मे अफ्रीका के निकटवर्ती मारीशसद्वीप मे मारीच[1] राक्षस का राज्य था, प्रकट है कि सुमाली, रावणादि राक्षसेन्द्रों का उपनिवेश अफ्रीका था।

ईरान मे, प्रथमतः वरुण का साम्राज्य था, यहाँ आज भी सूषानगरी के अवशेष मिले हैं जो वरुण की राजधानी थी। वरुण को यादसांपति या गन्धर्व-पति कहा जाता था।[2] प्रकटतः ईरान पश्चिमी एशिया, अरब देशो और अफ्रीका के समुद्रतटवर्ती देशो मे गन्धर्वों (अरबो) ने राज्य स्थापित किये।

वरुण के उपरान्त कुछ शताब्दियों पश्चात् ईरान मे विवस्वान् के कनिष्ठ-पुत्र वैवस्वतयम का राज्य स्थापित हुआ, जो पितृदेश का शासक कहलाया। जिस समय भारतवर्ष मे जलप्लावन आई, (वैवस्वतमनु के समय में), ईरान मे हिमप्रलय (हिमयुग) आई थी। भारतीयग्रन्थो में यम का पर्याप्त वृतान्त सुरक्षित है, परन्तु यहाँ हम केवल पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जिससे स्वय सिद्ध होगा कि वैवस्वत यम ईरान का सम्राट् था—"And Ahura Majda Spake unto Yima, Saying 'O fair Yima Son of Vivanghat ; upon the material world the fatal waters are going

---

१. 'मारीच' शब्द का विकृतरूप 'मारीशस' है।

२. याद का अपभ्रंश 'ताज' शब्द है, यह वरुण का ही नाम था, इसको अरब अपना मूलप्रवर्तक मानते थे—Taz, the fourth ancestor of Azi Dahak is founder of the race of the Arabs !
(तिरुपति आल इण्डिया आरि० कान्फ्रें०, पृ० १४५ मद्रास)

to fall ...... that shall make Snow flakes fall thick, (Vendidad Fargard II, 22 by Darmesteter),

"T, was Vivohvant, first of Mortals
to him was a son begotten
Yim of fair flock, all shining

o o o o o

while he reigned........... !
Son of Vivohvant, great Yima"[1]

उपर्युक्त उद्धरणो को प्रदर्शित करने का उद्देश्य केवल यह है कि विवस्वान् और तत्पुत्र वैवस्वत यम का ईरान पर शासन था।

ईरानीधर्मग्रन्थो और परम्परा के अनुसार अहुरमज्दा (वरुण) की चौथी पीढ़ी मे अजिदाहक (वृत्र—अहिदानव) हुआ।[2] यम को अहिदानव (वृत्र—अजिदाहक) का पूर्वकालीन माना जाता था।[3] पारसीधर्मग्रन्थ में वृत्र के ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूप (त्रिशीर्षा षडक्ष) का नाम 'विवरस्म' था। पारसी वर्णन द्रष्टव्य है—

He the Serpent Slew Dahaka
Triple zawed and Triple headed
Six eyed, thousand powered in Mischief.[4]

भारतीय इन्द्र, यम का शिष्य था, इसी इन्द्र ने वृत्र और उसके ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूप को मारा था। वृत्र (अहिदानव—अजिदाहक) को मारने पर उसको 'महेन्द्र' पदवी मिली।

ईरानीग्रन्थो में वरुण, भृगु शुक्राचार्य और उनके शण्ड, मर्क तथा दानवेन्द्र वृषपर्वा का उल्लेख भी मिलता है, वहाँ इनका नाम मल्हक (मर्क) और षण्ड नाम मिलते हैं, उसा (उशना—शुक्र), अफरासियाब (वृषपर्वा), फर्वा (वरुण), बग

---

१. अवेस्ता, यस्न गाथा।
२. Azi Dahak is the fourth descendant of Taz (All India-oriental Conf. Madras 1941, p. 145)
३. Yim .....Azi Dahaka's predecessor. (वही, पृ० १४५)
४. त्वष्टुर्ह वै पुत्रः त्रिशीर्षा षडक्ष आस। तस्य त्रीण्येव मुखानि (श० ब्रा० १।६।३।१ तुलना करो)

(भृगु) इत्यादि। देवयुग में ही ईरान होते हुये ये असुरगण एवं उनके पुरोहित योरोपियन देश डेनमार्क (दानवमर्क), स्वीडन (श्वेत दानव) आदि में पहुँचे; कुछ उत्तरी अफ्रीका तथा बेरूत (वरुत्री) लीबिया, लेबनानादि में बस गये।

उपर्युक्त विवरण से पूर्णतः सिद्ध है कि असुरों (दैत्यदानवों का) मूल और उनकी भाषाओं (यूरोपियन—असुरभाषा) का मूल भारत ही था। पुराणो से इस तथ्य की सर्वांशतः पुष्टि होती है. स्वयं अवेस्ता मे वर्णित त्वष्टा के वंशजों की आर्यव्रज (आर्यावर्त—Airyana Vaejo—आर्यनवेजो) से पलायन की पुष्टि होती है कि ईरानी किस प्रकार देवो के भय से १६ देशों में मारे-मारे घूमते रहे। सर्वप्रथम उनका (ईरानियों) निवास आर्यव्रज (आर्यावर्त—आर्यवीजो) मे ही था।[1] यही से उन्होंने १६ देशों[2] में क्रमशः प्रस्थान किया।

अतः प्राचीन ईरानियो का भारतमूलत्व स्वयसिद्ध है।

ईराक (मेसोपोटेमिया) के बोगोजई नामक स्थान मे प्राप्त मृत्तिकापट्टिका पर राजा मत्तिवज (मित्रवह?) वैदिक देवगण—मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य का आह्वान करता है। इस अन्वेषण ने पाश्चात्यों ने जो परिणाम निकाले हैं, वे सर्वथा भ्रामक हैं, उनका निकाला गया समय (१४०० ई० पू०) भी सन्दिग्ध है, क्योंकि इन्द्रादि की पूजा भारतवर्ष मे ही महाभारतकाल से पूर्व प्रायः समाप्त हो गई, महाभारत का समय ३१०२ वि० पू० था। अत ये मुद्रायें न्यून से न्यून महाभारतयुग से पूर्व की होनी चाहिए।

मित्तन्नी को हित्ती—खित्ती कहते थे, जो 'क्षत्रिय' का विकार है। मित्तन्नी का एक राजा 'दशत' था, जो स्पष्टत संस्कृत के 'दशरथ' का अपभ्रंश है।

मैसोपोटामिया (ईराक) की प्राचीनतम सभ्यता सुमेरसभ्यता थी, जो इतनी उच्चकोटि की थी कि कुछ वैज्ञानिक इसका सम्बन्ध किसी दूसरे ग्रह के

१. I, Ahura Mazda Created as the first best region, AiryanaVeajo of the good Greation. Then Angra Mainyu, the destroyer, formed in opposition to yet a great Serpent and water Or Snow, the Greation of Daevas : (Vendidad 3, 4).

२. सोलह देश—आर्यनवीजी, सुग्ध, मौरू, बख्धी, नैश, हरोयु वैकरत, अर्व, वेह्रकन, हरह्वैति, हैतुमन्त, रंग, चख, वरन और हप्तहिन्दु।

अन्तरिक्षदेवताओं से जोड़ते हैं—"स्वयं प्राचीन सुमेरका इतिहास यह कहता है कि प्राचीन सुमेरवासी लोग (जो अन्य संस्कृतियों के पूर्वज थे) ऐसे लोगो के वंशज हैं, जो मानव नहीं थे तथा अन्य ग्रहो से पृथ्वी पर आये।" (धर्म-युग, दि० १४-१०-१९८० में 'इन्टेलिजेन्ट लाइफ इन यूनिवर्स' पुस्तक से उद्धृत)। इस तथाकथित प्राचीनतमसभ्यता के अनेक राजा संस्कृत नाम धारण करते थे—

शरगर (Shargar)	—सगर
मन (Man)	—मनु
इस्साकु (Issaku)	—इक्ष्वाकु
शरहगन (Sharagun)	—सहस्रार्जुन

इसी प्रकार दशरथादि नाम भी सुमेर मे प्रसिद्ध थे।

अतः भारत सुमेरियन सभ्यता का भी मूल था और प्रकट है कि उनकी भाषा भी संस्कृत का ही म्लेच्छ (विकार) रूप थी।

'अक्काद' नाम भी 'इक्ष्वाकु का ही विकार प्रतीत होता है।

ससार की आदिम मूलजातियाँ—पंचजन या दशजन

वैदिकग्रन्थो मे बहुधा पंचजन (असुर, गन्धर्व, देव, मनुष्य और नाग) जातियो का उल्लेख मिलता है।[1] ये विश्व की प्राचीनतम आदिम जातियाँ थी। परन्तु शतपथब्राह्मण, पारिप्लवोपाख्यान (काण्ड १३, अध्याय ४, ब्राह्मण ३) मे आदिम दश जातियों का उल्लेख मिलता है—इसका विवरण इस प्रकार है—

(१) मानव—प्रथम राजा	वैवस्वत मनु—धर्मशास्त्र—ऋग्वेद		
(२) पितर— ,,	वैवस्वत यम	,,	यजुर्वेद
(३) गन्धर्व— ,,	वरुण	,,	अथर्ववेद
(४) अप्सरा— ,,	सोम	,,	आंगिरसवेद
(५) नाग (किरात) ,,	अर्बुदकाद्रवेय	,,	सर्पविद्या(वेद)

१. ऐ० ब्रा० (१३।७), निरुक्त (३।२), इत्यादि।
मनुष्याः पितरो देवा गन्धर्वोरगराक्षसा.।
गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा यक्षराक्षसाः॥
यास्कोपमन्यवावेतान् आहतुः पंच वै जनान्॥ (बृहद्देवता)
असुरो से पूर्व भी कोई पंचजन थे—'ये देवा असुरेभ्यः पूर्वे पंचजना आसन्'; (जै० उप० ब्रा० १।४।१७)।

(६) यक्षराक्षस—प्रथम राजा	वैश्रवणकुबेर—धर्मशास्त्र—देवजनविद्या		
(७) असुर (दैत्यदानव),,	असितधान्व	,,	मायावेद
(८) मत्स्यजीवी (निषाद),,	मत्स्यसाम्मद	,,	इतिहासवेद
(९) सुपर्ण—कृष्णवर्ण-निभो	तार्क्ष्य वैपश्यत	,,	पुराण
(१०) देव — ,,	इन्द्र	,,	सामवेद

मिथ्याकालविभाग (युगविभाग)

जिस प्रकार तथाकथित विकासवाद के आधार पर प्रागैतिहासिकयुगों—यथा प्रस्तरयुग, नवपाषाणकाल धातुयुग, लौहयुग, कृषियुग, पशुचारणकाल जैसे सर्वथा मिथ्यायुगों की कल्पना इतिहास में की गई, उसी प्रकार मिथ्याभाषामतों के आधार पर, पाश्चात्यलेखकों ने भारतीय इतिहास में वैदिककाल, उत्तर-वैदिककाल, उपनिषद्युग, महाकाव्यकाल, पुराणकाल जैसे सर्वथा मिथ्यायुगों की कल्पना की ओर आज भी यही युगविभाग इतिहास में प्रायेण प्रचलित है। सम्भवतः आजतक किसी भी देश के राजनीतिक इतिहास का युग-विभाजन साहित्यिकग्रन्थों के आधार नहीं किया गया, बल्कि अन्यदेशों का साहित्यिक इतिहास भी राजनीतिकपुरुषों के आधार पर विभक्त किया गया है जैसे अंग्रेजी-साहित्य में विक्टोरियायुग, पूर्वविक्टोरियायुग आदि नामकरण किये गये हैं, परन्तु अंग्रेजों ने भारतवर्ष को, इस सम्बन्ध में अपवाद बनाया और यह भी सर्वथा मिथ्या। उपर्युक्त युगविभाग का मिथ्यात्व ही आगे प्रदर्शित किया जाएगा।

पूर्वयुगों (द्वापर, त्रेता, कृतयुग, देवयुग, पितृयुग और प्रजापतियुग) में शिक्षित व्यक्ति (विद्वान् = ब्राह्मण = द्विज) अतिभाषा देववाक् के दोनों रूपों वेदवाक् और मानुषीवाक् (संस्कृत) को बोलता था—

"तस्माद् ब्राह्मण उभे वाचौ वदति दैवीं मानुषीं च।"[1] "तस्माद् ब्राह्मण उभयीं वाचं वदति या च देवानां या च मनुष्याणाम्।"[2] अतः वैदिक और लौकिक संस्कृत का लोक में प्रयोग अतिपुरातनकाल से हो रहा था, अतः लौकिकसंस्कृतभाषा या साहित्य को उत्तरकालीन मानना महती भ्रान्ति है। यास्क ने बताया है कि मनुष्यों और देवों की भाषा तुल्य है।[3]

१. काठकसंहिता (१४।५)
२. निरुक्त (१३।८)
३ तेषां मनुष्यवद् देवताभिधानम् (निरुक्त)

लौकिकसंस्कृत या लोकभाषा की [illegible] थी, जो अतिभाषा या देववाक् में थी, अन्तर केवल यह था कि लौकिकवाक् सकुचित थी तथा इसकी शब्दानुपूर्वी (वाक्यविन्यास) में अन्तर था । इस तथ्य का उल्लेख भरत-मुनि ने इस प्रकार किया है—

> अतिभाषा तु देवानामार्यभाषा भूभुजाम् ।
> संस्कारपाठ्यसंयुक्ता सप्तद्वीपप्रतिष्ठिता ॥[1]

इसी तथ्य का कथन पतञ्जलिमुनि ने 'सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदा' इत्यादि रूप में किया है ।[2]

लोकभाषा या मानुषीवाक् या लौकिकसंस्कृत व्याकरणसम्मत या संस्कार-युक्त होने से ही संस्कृत कही जाती थी, इसी आधार पर यास्क ने इसे व्यावहारिकी (बोलचाल) भाषा कहा ।[3] वाल्मीकि ने इसे मानुषीसंस्कृतावाक् कहा है ।[4] क्योंकि इसका लोक मे व्यवहार होता था इसीलिए पतञ्जलि ने बारम्बार, संस्कृत' के लिए 'व्यवहारकाल' का उल्लेख किया है ।[5]

अत: लोकभाषा संस्कृत का व्यवहार या प्रयोग, प्रजापति स्वयम्भू, स्वायम्भुव मनु, कश्यप, इन्द्रादि से यास्क, आपस्तम्बादि एव कालिदासपर्यन्त किंवा अद्यपर्यन्त भी होता है । इसके विपरीत, वैदिकभाषा का प्रयोग केवल वेदमन्त्र, तद्व्याख्यान (ब्राह्मणादि) एव कल्पसूत्रादि अन्य वैदिकग्रन्थो मे होता था । लौकिकसंस्कृत का प्रयोग इतिहासपुराण, काव्य, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, अर्थशास्त्र आदि लौकिकशास्त्र प्रणयन मे होता था । जिस प्रकार लौकिकशास्त्रों मे वैदिकशास्त्रों का प्रामाण्य था, उसी प्रकार वैदिकशास्त्रो मे लौकिकशास्त्रो, यथा, इतिहासपुराणादि का प्रामाण्य मान्य था । इस तथ्य का उल्लेख किसी अर्वाचीन विद्वान् ने नही, परन्तु परमप्रामाणिक न्यायविद् न्यायभाष्यकार वात्स्यायन ने किया है कि वेद मे पुराणो या धर्मशास्त्र का प्रामाण्य मान्य था—

(१) "प्रामाण्येन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रमाण्यमभ्यनुज्ञायते । ते

---

१. नाट्यशास्त्र (१७।१८।२६),

२. महाभाष्य पस्पशाह्निक,

३ चतुर्थी व्यवहारिकी (निरुक्त १३।६)

४. वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् (वा० रा० ३।३०।१७)

५. "चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति, व्यवहारकालेन इति"

था खल्वेते अथर्वाऽङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन् ॥" "(न्यायभाष्य) वास्तव में ब्राह्मणग्रन्थों में इतिहासपुराण का प्रमाण मान्य है, क्योंकि अथर्वाङ्गिरस ऋषियों ने इतिहासपुराणों का प्रवचन किया था।" क्योंकि वेदमन्त्रों के द्रष्टा और ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रणेता ऋषि वे ही थे, जिन्होंने इतिहासपुराणो एवं धर्मशास्त्र का प्रणयन था—"द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुपपत्तिः। य एवं मन्त्र ब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति (न्यायभाष्य)।

केवल विषयव्यवस्थापन के कारण भाषा में अन्तर था, लेखक या काल के कारण नहीं।

जब इतिहासपुराणग्रन्थ, वैदिकब्राह्मणग्रन्थों से पूर्व रचे जा चुके थे, तब पुराणरचनाकाल या महाकाव्यकाल, ब्राह्मणरचनाकाल से उत्तरकालीन कैसे हो सकता है। यह केवल वात्स्यायन की कल्पनामात्र नहीं है। शतपथब्राह्मणादि में पुराणों की गाथायें उद्धृत मिलती हैं जो लौकिकभाषा मे हैं, यथा, द्रष्टव्य हैं कुछ गाथायें जो ब्राह्मणग्रंथों में किन्ही प्राचीन इतिहासपुराणो से उद्धृत की, यद्यपि वे उपलब्ध भागवतादिपुराणों में भी प्राप्य हैं—यथा शतपथब्राह्मण की यह गाथायें—

> मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे।
> आविक्षितस्यः क्षत्तारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥[1]
> भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे जनाः। (श. ब्रा. १३।११।१।१)
> नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्या त्रिदिवं यथा।[2] (श. ब्रा. १३।५।४।११)

इसी प्रकार और भी बहुत से गाथाश्लोक ब्राह्मणग्रन्थों मे मिलते हैं जो पुराणों से उद्धृत हैं। महाभारत मे इन्द्र, उशना, वायु, ययाति, कश्यप, अम्बरीष आदि की शतशः गाथायें मिलती हैं, ये कश्यप, उशना आदि वेद-मन्त्रों के प्रसिद्ध द्रष्टा थे। अतः वेदकाल और पुराणकाल, महाकाव्यकालआदि युगविभाग सर्वथा भ्रामक और इतिहासविरुद्ध हैं। यह युगविभाग आज भारतीय इतिहास की एक महत्तमा विकृति है, जिसका परिमार्जन अवश्यम्भावी है जिसके बिना सत्य इतिहास का ज्ञान नही हो सकता।

इसी प्रकार प्राचीन अनेक अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, व्याकरण-शास्त्र इत्यादि भी वेदमन्त्रों के साथ-साथ ही लौकिकभाषा में रचे गये, इसका

---

१. भागवतपु० (९।२।२८),
२. भागवतपु० (९।२०।२९)

उल्लेख यथास्थान किया जायेगा, क्योंकि अधिक उदाहरण देकर हम इस भूमिका का कलेवर नहीं बढ़ाना चाहते। केवल, उपनिषदों के प्रमाण से उपर्युक्त काल-विभाग का मिथ्यात्व प्रदर्शित होगा—

ब्रह्मविद्या की परम्परा और आदिम उपनिषद्वेत्ता ऋषिगण

शतपथब्राह्मण, बृहदारण्यकोपनिषद्, जैमिनीयोपनिषद्, सामविधानब्राह्मण एवं तैत्तिरीयोपनिषद् आदि मे ब्रह्मविद्या, मधुविद्या आदि के आचार्यों की प्राचीन वंशपरम्परा (विद्यावंश) मिलती है, जिससे पाश्चात्यलेखको की इस मिथ्या धारणा का खण्डन होता है कि वेदमन्त्रो में उपनिषद्ज्ञान नही है अथवा उपनिषद्सिद्धान्त अर्वाचीन है।

वरुण

ब्राह्मणग्रन्थो के अध्ययन से सिद्ध होता है कि वरुण आदित्य का एक नाम ब्रह्मा था, इसी वरुण ब्रह्मा ने आदिमयुग मे वैवस्वत मनु के पिता विवस्वान् से पूर्व अपने ज्येष्ठ पुत्र भृगु या अथर्वा को ब्रह्मविद्या पढाई—

> ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ॥
> स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥[1]

अन्यत्र लिखा है—"भृगुर्वै वारुणिः। वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति।[2] इन प्रमाणो मे सिद्ध है वरुण और उनके पुत्र भृगु (अथर्वा) उपनिषद्ज्ञान के आदिम आचार्यों में से थे।

कश्यप और इन्द्र

वरुण, इन्द्र आदि के जनक पितामह प्रजापति कश्यप थे। देवेन्द्र इन्द्र और कश्यपपौत्र असुरेन्द्र विरोचन दोनो ने ही ब्रह्मविद्या प्रजापति कश्यप से सीखी—"इन्द्रो देवानाम् प्रवव्राज। विरोचनोऽसुराणां तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः।[3]

कश्यप से भी प्राचीनतर सनत्कुमार, कश्यपपुत्र देवर्षि नारद के गुरु थे। ब्रह्मविद्या सीखने नारद उनके पास गये—"ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्त होवाच।"[4] 'उपससाद' क्रियापद मे स्पष्ट है कृतयुग से

---

१. मु० उ० (१।१।१),
२. तै० उ० (३।१),
३. छा० उ० (८।७),
४. छा० उ० (६।१।६),

पूर्व भी (१४००० वि० पू०), नारद और सनत्कुमार के समय 'उपनिषद्' शब्द प्रचलित था।

दर्शन की आदित्य (विवस्वान) परम्परा

शतपथब्राह्मण (४।६।४।३३) में विवस्वान् आदित्य की प्रमुखशिष्य परम्परा उल्लिखित है। विवस्वान् पचम व्यास थे, जिन्होंने जलप्लावन से पूर्व शुक्ल-यजुर्वेद एवं उपनिषद् का प्रवचन किया था। इसी परम्परा का उल्लेख वासुदेव कृष्ण ने गीता मे किया है।[1]

दध्यङ् आथर्वण और मधुविद्या

बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय २ ब्राह्मण ६) मे मधुविद्यादर्शन की एक शिष्य परम्परा इस प्रकार है—(१) स्वयम्भू, (२) परमेष्ठी, (३) सनग, (४) सनातन, (५) सनारु, (६) व्यष्टि, (७) विप्रचित्ति, (८) एकर्षि, (९) प्रध्वंसन, (१०) मृत्यु प्राध्वंसन, (११) अथर्वा दैव, (१२) दध्यङ् आथर्वण। ऋग्वेद मे भी मधुविद्या के प्रवक्ता दध्यङ् आथर्वण है—

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रदीयमुवाच।[2]

अश्विनीकुमारद्वय दध्यङ् आथर्वण के शिष्य थे।

स्वयं उपनिषद्ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध है कि उपनिषद्विद्या देवासुरयुग मे भी प्रचलित थी, अत पूर्ववैदिकयुग या उत्तरवैदिक इत्यादि जैसा युगविभाग सर्वथा भ्रामक असत्य एवं त्याज्य है। वाल्मीकिऋषि ने रामायण की मूल-रचना शतपथ ब्राह्मण (वाजसनेय याज्ञवल्क्य) से २००० वर्ष पूर्व की थी, अतः साहित्यिकग्रन्थों के आधार पर कल्पित भारतीय इतिहास का युगविभाग, इसकी विकृति का एक मूल कारण है। अतः काल्पनिक और मिथ्यायुगविभाग सर्वथा हेय एवं त्याज्य है।

भारतीय इतिहास का तिथिक्रम मनघड़न्त

पाश्चात्य लेखक गौतम बुद्ध और बिम्बसार से पूर्व के पुरुषों को ऐतिहासिक मानते ही नहीं, फिर भी उन्होंने वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, पुराण एवं अन्य ग्रन्थों एवं आर्य-आगमन, द्रविड-आगमन इत्यादि मनघड़न्त काल्पनिक घटनाओं की जो तिथियां घड़ दी थी, वे ही प्राय आज तक तथा-

---

१. इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ (गीता ४।१)

२. ऋग्वेद (१।११६।१२),

कथित भारतीय इतिहास मे प्रचलित हैं। क्योंकि बुद्ध से पूर्व के भारतीय इतिहास को वे इतिहास ही नहीं मानते, उसे प्रागैतिहासिकयुग कहते हैं तथा उन काल्पनिकतिथियों के विषय में भी सर्वसम्मत नहीं हैं यथा काल्पनिक आर्य-आगमन की तिथि १००० ई० पूर्व, १२०० ई० पू०, १५०० ई० पू०, २००० ई० पू०, २५०० ई० पू० और ३००० ई०पू० तक विभिन्न रूपमे तथाकथित इतिहासज्ञ मानते थे और अभी पाठ्यपुस्तको मे ये तिथियाँ प्राय: दुहराई जाती हैं। इसी प्रकार, यद्यपि रामायण एव महाभारत को पाश्चात्यलेखक ऐतिहासिक नही मानते, फिरभी इन ग्रन्थो के रचनाकाल में भी उक्त प्रकार के मतभेद हैं, कही जानबूझकर कही अज्ञानवश।

जिस एक आधारतिथि के ऊपर, पाश्चात्यलेखकों ने भारतीय तिथिक्रम का सम्पूर्ण ढांचा बनाया है, वह है चन्द्रगुप्त मौर्य और यूनानी शासक सिकन्दर की तथाकथित समकालीनता की कहानी। यह तिथि है ३२७ ई० पू०। इस समकालीनता पर आज लोगो को उसी प्रकार विश्वास है जितना विकासवाद पर, बल्कि उससे भी अधिक। इस तिथि के विरुद्ध कुछ लिखना तो दूर, मन मे सोचने का भी कोई साहस नही करता। इस समकालीनता की कहानी पर आज लोगो को अटूट और अचल श्रद्धाविश्वास है। इस कहानी पर इस प्रकरण मे विस्तार से विचार नही करेंगे, इसका विस्तृत विवेचन 'तिथिसम्बन्धी' अग्रिम अध्याय मे होगा, परन्तु यह सकेत करना आवश्यक है कि इसी 'चन्द्रगुप्तमौर्य-सिकन्दर' की समकालीनता की मनघड़न्त कहानी के आधार पर ही प्राङ्मौर्य एव मौर्योत्तरकाल की तिथियाँ गढी गई हैं। चन्द्रगुप्तमौर्य से पूर्व के नन्द, शैशुनाग आदिवंशो महावीर, गौतम बुद्ध जैसे प्रख्यात इतिहासपुरुषो की तिथियाँ इसी 'आधारतिथि' के आधार पर निश्चित की गईं। इसी प्रकार मौर्योत्तरयुग मे शुग, काण्व, आन्ध्रसातवाहन, शक, कुषाण, हूण, वाकाटक, गुप्तवश के शासको की तिथियाँ भी इसी 'आधारतिथि' के अनुरूप ही घढी गई। इन सब काल्पनिक और तदनन्तर वास्तविक तिथियो का उल्लेख एव निश्चय 'तिथि सम्बन्धी' अध्याय मे ही करेंगे, परन्तु एक तथ्य ध्यातव्य है कि पाश्चात्य इतिहासकार ईलियट और डासन ने अंग्रेजो में आठ भागों में, प्राचीन इतिहासकारो विशेषत: मुस्लिम इतिहासकारों के आधार पर 'इण्डियाज हिस्ट्री ऐज रिटन बाई इट्स ओन हिस्टोरियन' के प्रथम भाग, पृ० १०८, ०९ पर लिखा है कि सिकन्दर का समकालीन भारतीय राजा आन्ध्र सातवाहन 'हाल' था। इसी तथ्य से सोचा जा सकता है कि सिकन्दर का भारत पर आक्रमण किस भारतीय राजा के समय हुआ। इस सबका विस्तृत विवेचन 'तिथिसम्बन्धी' अध्याय में ही करेंगे।

भारतीय इतिहास मे महावीर, बुद्ध, कनिष्क, गुप्तराजगण और यहाँ तक कि शंकराचार्य तक की तिथियाँ विवादग्रस्त बना दी गई हैं और विक्रम शूद्रक जैसे महाप्रतापी शासकों का इतिहास मे कोई उल्लेख ही नहीं, तब कल्किसदृश एवं कृष्णतुल्य महापुरुषों का वर्णन होगा ही कहाँ से ? इस ग्रन्थ में ऐसे सभी महापुरुषों की 'ऐतिहासिकता' यथास्थान प्रमाणित की जायेगी।[1]

भारत में शकराज्य का अन्तकरनेवाला प्रसिद्ध गुप्तसम्राट् साहसांक चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य था, जिसकी पुष्टि अलबेरुनी, भारतीय ज्योतिषी और बाणभट्ट जैसे साहित्यकार करते हैं। अतः गुप्तराजाओं का उदय १३५ वि० से पूर्व विक्रमादित्य के ठीक पश्चात् प्रथमशती मे हुआ था। शकसम्वत् का प्रवर्तक चन्द्रगुप्त द्वितीय ही था। इन तिथियों का प्रामाणिक निर्णय आगे किया जायेगा।

तथाकथित या आरोपित ग्रन्थकार (Attribution)

पाश्चात्यलेखकों एव तदनुयायी अनेक भारतीयलेखकों ने भारतीय इतिहास में अनेक इतिहास प्रसिद्ध, प्रतापी, वर्चस्वी और महाज्ञानीपुरुषों का अस्तित्व मिटाने के लिये एक घोरभ्रामक प्रवृत्ति को जन्म दिया कि अनेक प्राचीनग्रन्थों के प्रसिद्ध कर्त्ता वास्तव मे हुये ही नही, उनके नाम से दूसरे उत्तरकालीन अज्ञात-नामा लेखकों ने अनेक ग्रन्थ रचे। वैसे शतशः एव सहस्रशः ग्रन्थों के विषय मे, पाश्चात्यों ने ऐसी भ्रामक कल्पनायें की हैं, परन्तु निदर्शनार्थ यहाँ पर केवल प्रसिद्धतम कुछ ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे—

(१) शुक्राचार्य	(७) चरक अग्निवेश
(२) इन्द्र	(८) याज्ञवल्क्य वाजसनेय
(३) मनु	(९) जैमिनि
(४) भरत	(१०) शौनक
(५) पराशर	(११) कात्यायन
(६) पाराशर व्यास	(१२) कौटल्य

उपर्युक्त ग्रन्थकारों के सम्बन्ध मे पाश्चात्यों ने यह धारणा बनाई है कि

१. अरबों मुस्लिमो के सर्वोच्च तीर्थस्थल मक्का के 'काबा मन्दिर मे उत्कीर्ण प्राचीन कवि बिन्तोई (१६५ वर्ष पैगम्बर मौहम्मद से पूर्व) ने अपनी कविता मे विक्रमादित्य का उल्लेख किया है—"जिसका अरबदेशों तक शासन था"। द्रष्टव्य—"भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें'। (पृ० २७७)

शुक्रकृत, शुक्रनीति, इन्द्रकृत ऐन्द्रव्याकरण, मनुकृत मनुस्मृति, भरतकृत नाट्यशास्त्र, पराशरकृत विष्णुपुराण और ज्योतिषसंहिता, पाराशर्यव्यासकृत ब्रह्मसूत्रादिग्रंथ, चरक (अग्निवेश) कृत चरकसंहिता जैमिनिकृत मीमांसासूत्र, शौनककृत बृहद्देवता आदि ग्रन्थ, कात्यायनकृत स्मृति आदि ग्रन्थ, याज्ञवल्क्यकृत योगियाज्ञवल्क्य, कौटल्यकृत अर्थशास्त्र इत्यादि ग्रन्थ वास्तव मे इन ग्रन्थकारो की कृतियाँ नही है, उत्तरकाल या अत्यन्त अर्वाचीनकाल मे इनके नाम से उपर्युक्त ग्रन्थ बनाये गये। फिर हिरण्यगर्भ, स्वायम्भुव मनु, सप्तर्षि, नारद, कपिल आदि के प्रणीतग्रन्थो पर तो पाश्चात्यों का विश्वास होगा ही कहाँ से, जो ऋषिगण जलप्लावन से पूर्व हुये थे।

यह पूर्णत सम्भव है कि अनेक प्राचीनग्रन्थो, संहितादि मे समय-समय पर उपबृहण (विस्तार), प्रक्षेपण (क्षेपक) एवं संशोधन हुआ हो, जैसा कि प्रसिद्ध महाभारत या चरकसंहिता का हुआ है। परन्तु मूललेखक मनु, भरत, शुक्र, चरक या व्यास हुये ही नही, ऐसा मानना महान् अज्ञान है। आज यह कोई भी दावा नही करता कि मनुस्मृति, शुक्रनीति, भरतनाट्यशास्त्र या चरकसंहिता अपने मूलरूप मे ही उपलब्ध हैं, परन्तु जो यह माने कि कृतयुग, त्रेता या द्वापर मे मनु 'या', शुक्र या भरतसंज्ञक महर्षि हुए ही नही या कौटल्य के नाम के तृतीयशती मे किसी ने जाली अर्थशास्त्र रच दिया, वह महान् अज्ञ है और भारतीय इतिहास से पूर्णत. अनभिज्ञ है, ऐसे घोर अज्ञानी को इतिहासकार मानने वाला और भी मूढ़तम है। कुछ लेखक कपिल, शुक्र, बृहस्पति, भरत आदि को 'अतिमानव' या देवता मानकर उनकी ऐतिहासिकता उड़ाना चाहते हैं।[1] ऐसे 'अतिमानवों या देवताओं' की ऐतिहासिकता हम पुराणसाक्ष्य से सिद्ध करेंगे।

आज जर्मनलेखक जालि के इस मत को कोई नही मानता कि ईसा की तृतीय शती मे कौटल्य के नाम से किसी ने अर्थशास्त्र को रच दिया, यद्यपि

---

१. The names of well known works like Manu Smriti, the yajnavalkya Smriti, Parasarasmriti and Sukraniti show that in ancient India authors often preferred incognito and attributed their works to divine or semi divine persons.
(स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एशेन्ट इण्डिया, पृष्ठ ३, सदाशिव अल्तेकरकृत)

विन्टरनीत्स ने यही मत दुहराया है।[१]

निश्चय ही मनु[२] इन्द्र, वरुण, कपिल, शुक्रादि दैवीपुरुष थे, परन्तु वे ऐतिहासिक व्यक्ति। इनकी ऐतिहासिकता इसी ग्रन्थ के परायण से सिद्ध होगी।

इसी प्रकार, आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरकसंहिता' का प्रधान संस्कर्ता महाभारतयुद्ध से पूर्व हुआ,[3] परन्तु आधुनिकलेखक उसका मूललेखक ही कनिष्क के राजवैद्य 'चरकाह्व' उपाधिप्राप्त व्यक्ति को मानते हैं।[४]

---

१. अर्थशास्त्र लाहौर संस्करण १९२३, जालिसम्पादित तथा समप्रोब्लम्स-इन इण्डियन लिटरेचर, (पृ० १०६),

२. स्वायम्भुव मनु या आदम (आत्मभुव = स्वायम्भुव) को भारतीय-ग्रन्थों के समान प्राचीन यहूदी साहित्य मे अनेक शास्त्रो का रचयिता बताया गया है—

"The Hebrew doctors acscribe to Adam various composition on the subjects of Ethies, theology and Legislation, as well as a book on the creation (पुराण) of the world (Stanely on the oriental Philosophy. chap 3, p. 36).

"Kissalaeus, a Mohamadan writer, asserts that the Sabians possessed not only the books of Seth (वसिष्ठ) and Edris (अत्रि) but also others written by Adam himself." (वही)

प्रसिद्ध बैबीलन इतिहासकार बेरोसस ने वि० पू० तृतीय शती मे बैबीलन के बलिमन्दिर में उपर्युक्त ग्रन्थों को देखा था।

३. चरकसंहिता का मूललेखक पुनर्वसु कृष्ण आत्रेय, भारतयुद्ध से कई सहस्त्रवर्षपूर्व हुआ था।

४. The court of King Kanishka as believed to have been adorned by three wise men . an experienced physician called Caraka, who was the well known author of the Carak Samhita.

(आयुर्वेद का इतिहास २९२ पर उद्धृत विमलचरण ला की पुस्तक 'अश्वघोष पृ० ५ से)

यद्यपि, चरक उपाधि व्यासशिष्य वैशम्पायन की भी थी, परन्तु इन पंक्तियों का लेखक पं० भगवद्दत्त और कविराज सूरमचन्द्र के इस मत को नहीं मानता कि वैशम्पायन ही आयुर्वेद की चरकसंहिता का रचयिता था। इस सम्बन्ध में भारतीय परम्परा के आधार पर अलबेरूनी का मत ही सत्य प्रतीत होता है कि ऋषि अग्निवेश का ही अपरनाम 'चरक' था।[1] प्राग्महाभारत युग में— अग्निवेश चरक ने ही यह ग्रन्थ लिखा था।

अत पाश्चात्यो का आरोपित ग्रन्थकार (Attribution)सम्बन्धीमत सर्वथा भ्रान्त निर्मूल अतएव त्याज्य है। मूलग्रन्थों के रचयिता स्वायम्भुव मनु, सप्तर्षि, शुक्र, बृहस्पति आदि देवयुगीन व्यक्ति ही थे, परन्तु इन ग्रन्थो का समय-समय पर संस्कार होता रहा।

भारतीय इतिहास के मूलस्रोत

तथाकथित प्रामाणिक (अप्रामाणिक) स्रोत कितने सत्य—पाश्चात्य लेखकों ने भारतीय इतिहास के मूलस्रोत भारतीयवाङ्मय मे या भारत मे न ढूढ़कर भारत के बाहर देखे और उन्ही को परमप्रमाणिक माना अथवा शिलालेख, ताम्रपत्र, अभिलेख मुद्रा आदि धातुगतप्रमाणो को अधिक प्रामाणिक माना और उनके मनमाने पाठ एवं अर्थ निकालकर भारतीय इतिहास को भली-भाँति विकृत किया।

सर्वप्रथम, विलियम जोन्स ने, विदेशी यूनानी मैगस्थनीज जैसे लेखक, जिसको न भारतीय इतिहास का अधिक ज्ञान था और न जिसके विषय में निश्चित है कि वह कभी आया कि नही, उसको परमप्रामाणिक मानकर भारतीय इतिहास की एक मूलतिथि ज्ञात करने का दम्भ किया। जिस प्रकार प्रारम्भ मे डार्विन के विकास—मत को यूरोप या संसार ने ब्रह्मवाक्य की भाँति ग्रहण किया परन्तु अब उस पर शंका करने लगे है, परन्तु भारतीय विद्वान् जोन्स की मूलखोज पर अभी तक अंगुली उठाने का विचार तक नहीं करते। उनके लिए तो जोन्स के प्रतिपादन ध्रुवसत्य है। जिस पर वे अभी अटल या निश्चल है।

मैगस्थनीज के समान, अन्य यूनानी लेखको हेरोडोटस, प्लिनी, एरियन, प्लूटार्क आदि के ग्रन्थ भारतीय इतिहास मे परम सहायक माने गए और एस-

१. According to their belief, Caraka was a Rishi in the last Dwapara yuga when his name was Agnivesha, but afterwards he was called Caraka. (अलबेरूनी, पृ० १५६)

देशीय लेखकों के कौटलीय अर्थशास्त्र, रघुवंश, हर्षचरित जैसे ग्रन्थों पर अधिक विश्वास नहीं किया गया। इसी प्रकार बुद्ध की तिथि के सम्बन्ध में सभी भारतीय तथा चीनीग्रन्थों के साक्ष्य को छोड़कर केवल सिंहलीबौद्धग्रन्थदीपवंश या महावंश पर पूर्ण विश्वास व्यक्त किया गया, जिनमे बुद्ध की सर्वाधिक अर्वाचीन तिथि का उल्लेख है। कल्हण की अपेक्षा तिब्बती बौद्धलेखक तारानाथ लामा के विवरण पर अधिक विश्वास किया गया इसी प्रकार बाह्य मुस्लिम लेखको यथा अलबेरूनी, अलमासूदी जैसे लेखको के ग्रन्थो पर पूर्ण विश्वास किया, जिन्होंने भारतीय इतिहास मे बिना अन्तरग पैठ के केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार या पक्षपातपूर्वक लिखा, जिन्होने भारतीयप्रजा पर अमानुषिक अत्याचार किए ऐसे विदेशीशासको को भारतीय इतिहास का श्रेष्ठतम नायक बताया गया जैसे सिकन्दर, मेनेन्द्र, तोरमाण, हूण मिहिरकुल, बाबर, अकबर इत्यादि। सिकन्दर की पराजय को जिन यूनानी लेखको ने महान् विजय के रूप में प्रदर्शित किया, उन्हे ही भारतीय इतिहास का परमप्रमाणिक स्रोत माना गया।

प्राचीन भारतीय साहित्य मे वर्णित समान एव निश्चित तथ्यो को असद्-वृतान्त या माइथोलोजी बताकर उनके प्रति घृणा एव अश्रद्धा उत्पन्न की गई। भारतीय इतिहास का मूलाधार है पुराण एव इतिहास (रामायण-महाभारत) ग्रन्थ, परन्तु मैक्समूलर, मैकडानल और कीथ जैसे साम्राज्यवादी स्तम्भों ने उनको पूर्णतः अप्रामाणिक मानकर इतिहासनिर्माण मे कोई भी मान्यता नही दी, यद्यपि पार्जीटर ने इस सम्बन्ध मे एक प्रयत्न किया, उसे भी शासन की ओर से कोई मान्यता नही मिली।

प्राचीनभारतीयवाङ्मय की उपेक्षा करके, पाश्चात्यलेखकों को विदेशी लेखको के अतिरिक्त **सर्वाधिक प्रामाणिक द्वितीय स्रोत** दिखाई पडा, वह था **पथरिया प्रमाण** अर्थात् शिलालेख, ताम्रपत्र, मृत्पट्टिका लेख इत्यादि जो पत्थरों, धातुओ या मिट्टी के पात्रों आदि पर लिखे हुए थे। क्योकि इस प्रमाण को, अस्पष्ट होने के कारण अनेक प्रकार से पढा जा सकता था और उसके मनमाने अर्थ लगाये जा सकते थे। उदाहरणार्थ अशोक के शिलालेखो पर उल्लिखित 'यवन' को यूनानी माना गया। इसी प्रकार अशोक के शिलालेखों मे ही पाँच 'यवनराज्यों' का उल्लेख है, उसे 'यवनराजा'[1] बनाकर मनमाने अर्थ लगाए

१. श्रेष्ठ विद्वान् प्रथमदृष्टि मे भाँप लेगा कि अशोक के शिलालेखो मे 'यवनराजाओ' का नही 'यवनराज्यो का उल्लेख है, द्रष्टव्य एक मूलपाठ—"योजनशतेषु यत्र अतियोको नाम योनरज पर च तेन

गए। उन तथाकथित 'मग' आदि राजाओ को 'अशोकमौर्य' का समकालीन माना गया।

इसी प्रकार खारवेल के हाथीगुफा नाम प्रसिद्ध शिलालेख का पाठ अनेक प्रकार से मानकर अनेक तथाकथित इतिहासकारों ने मनमाने परिणाम निकाले। इस लेख मे डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'बिमित' और बहसतिमित को क्रमशः ग्रीक राजा डेमेट्रियस और मगधराज बृहस्पतिमित्र (पुष्यमित्र शुग) मान कर मनमानी कालगणना की। जायसवालजी को युगपुराण में भी डेमेट्रियस का उल्लेख प्राप्त हो गया—'धर्ममीत के रूप मे।' वास्तव में युगपुराण मे, जो श्री डी० आर० मनकड ने प्रकाशित किया है, वह पाठ इस प्रकार है—

"धर्मभीता· वृद्धा जनं मोक्ष्यन्ति निर्भया." (यु०,पु० पंक्ति १११)

इसी प्रकार अनेक मुद्रालेखों, प्रस्तरलेखो, मृल्लेखो के मनमाने पाठ मान कर मनमाने परिणाम निकाले। क्योकि पाश्चात्यो एवं तदनुयायी भारतीयों को, भारतीय इतिहास के ये ही 'परमप्रामाणिक' स्रोत जान पड़े और उन्ही का 'इतिहासनिर्माण' मे आश्रय लिया।

अतियोके न चतुरे रजनि (राज्ये) तुरमये मम अन्तकिनि नम मक नम अलिकसुन्दर नम" (अशोक का पेशावरखरोष्ठीलेख)। हरिवंश-पुराण मे इन पाँच म्लेच्छ (यवन) राज्यों का उल्लेख है—
यवना : पारदाश्चैव काम्बोजा: पह्लवा: शका:।
एतेह्यपि गणा पंच हैहयार्थे पराक्रमन् (१।१६।४)

२

इतिहासविकृति के प्राचीनकारण

सामान्य

वर्तमान शिक्षणसंस्थाओ मे भारतवर्ष का जो इतिहास पढाया जाता है, उसकी विकृति के कारण केवल नवीन ही नहीं है, वरन् प्राचीन कारण भी पर्याप्त है। यह विधि का विधान ही था कि शनै· शनै: मानव इतिहास की विकृति के कारण अत्यन्त पुरातनकाल मे ही उत्पन्न होते रहे। आज, विद्या के अनेक क्षेत्रों में घोर अज्ञान का एक प्रधानाकारण, इतिहास की यह महत्तमा-विकृति या विस्मृति ही है। यो तो सृष्टि के प्रारम्भ से ही विकृति के कारण बनते रहे। यथा, पृथ्वी पर अनेक बार सूर्यदाहो और एवं जलप्रलयो या हिम-प्रलयो से अनेक बार पृथ्वी की वनस्पति, जीव-जन्तु और मानवप्रजाये नष्ट होती रही, न जाने कितने बार, पूर्वकाल मे प्रलयो से प्रजासहार हुआ, उसकी सही-सही सख्या की स्मृति ससार के किसी देश के साहित्य मे नही है, यदि वह इतिहास ज्ञात होता तो आज संसार पर डार्विन का मिथ्याविकासवाद न छाया रहता। इन प्रलयों मे मानवसहित समस्त प्राणिवर्ग नष्ट हो गए, तब इतिहास को कौन स्मरण रखता। फिर भी, न जाने किस विज्ञान, दिव्यज्ञान या योग-बल से प्राचीन ऋषियों ने अनेक प्रलयो की स्मृति सुरक्षित रखी—शतश· सह-स्रश: प्रलयो और जीवोत्पत्तियो का ऋषियो को आभास था—

> एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च ।
> सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रश. ।
> मन्वन्तरान्ते संसारः संहारन्ते च संभव· ॥
>
> (ब्र० पु० १।२।६।२)

फिर भी इन सहारो (प्रलयो) और सम्भवो (उत्पत्तियों) का वास्तविक इतिहास संक्षेप मे भी किसी को, आज ज्ञात नही हैं। यह पूर्ण सम्भव है कि प्राग्भारतकाल या उससे पूर्वकाल में यह इतिहास किन्हीं इतिहासकारों (ऋषियों) को ज्ञात हो। पुराणों में इसका संकेतमात्र है, मयसभ्यता और चीनसभ्यता के पुरातन इतिहासों में भी इसका संकेत है और कालडिया के पुरातन इतिहासकार

बेरोसस ने लिखा है 'जलप्रलय (प्रथम) के पश्चात् प्रथम राजवंश में ८६ राजा थे। इनका राज्य ३४०६० वर्ष था।" दृष्टव्य A history of Babylon, L. W. King p. 114)।

इसी प्रकार मयसभ्यता के इतिहास मे लाखो वर्षों के इतिहास का संकेत हैं।[1] प्रलयतुल्य अन्य प्राकृतिक आपदाओं यथा भूकम्प, तूफान बाढ़ आदि में न जाने, प्राचीन विश्व का कितना वाङ्मय और उसके साथ ही इतिहास नष्ट हो गया।

प्राचीन इतिहासो के लोप होने का द्वितीय प्रधान कारणहै विजेता जातियों द्वारा विजित सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को नष्ट करना। देवासुरसंग्रामो का हम पहले संकेत कर चुके हैं, देवों ने निश्चय ही विजित असुरों का प्राचीन इतिहास और गौरव नष्ट किया। असुरो के साथ नागों, वानरों, सुपर्णों, गन्धर्वों, यक्षो, राक्षसो एवं पितरादि जातियों का इतिहास लुप्तप्राय है। देवो में केवल आदित्यो, विशेषत: सोम और सूर्य (विवस्वान्) आदित्य के वंशज वैवस्वत मनु का इतिहास ही पुराणो में मिलता है।[2] उत्तरयुगों मे भारत पर अनेक बार असुरो, म्लेच्छो एव शक, यवन, हूण जैसी बर्बर जातियों के आक्रमण हुए, इनके पाश्चात् तुर्क, अरब, मुगल, मगोल आदि जातियों के आक्रमण कितने घातक एवं बर्बर थे इसको वर्तमान ऐतिहासिक विद्वान् जानते ही हैं। इन बर्बर जातियों ने न केवल धर्म, संस्कृति और सभ्यता, बल्कि विपुल वाङ्मय को अग्निसात् किया। नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के जलाने की घटना इतिहासप्रसिद्ध है। प्राचीनभवनों एवं मन्दिरो की मुस्लिम आक्रमणकारियो ने

---

१. (द्रष्टव्य धर्मयुग, पृ० ३४—३मई १६८१)—मयसभ्यतासम्बन्धी लेख

२. प्रथम आदित्य (ज्येष्ठ अदितिपुत्र) वरुण ब्राह्मण था; असुरमहत् (अहुरमज्द) एवं उसके उत्तराधिकारी वैवस्वत यम का कुछ विस्तृत इतिहास पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता मे मिलता है। यम से पूर्व 'धर्मराज' उपाधि वरुण को प्राप्त थी। वरुण ने पितृजाति के पूर्वज 'यम' को अपना उत्तराधिकारी बनाया जरथुस्त्र से अहुरमज्जद (वरुण) कहते हैं—"मैने विवनघत के पुत्र यिम को धर्मोपदेश दिया'··· मैंने उसको पृथ्वी का राजा बनाया · यिम को राज्य करते ३०० वर्ष बीत गए···इस प्रकार ३००-३०० वर्ष करके उसने चार बार (कुल १२०० वर्ष) राज्य किया (अवेस्ता, फर्गद द्वितीय) टि०—दीर्घायु के सम्बन्ध में अग्रिम अध्याय में स्पष्ट किया जाएगा।

किस प्रकार नष्ट किया या उनके स्वरूप को परिवर्तित करके अपने महल या मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया। ऐतिहासिक स्मारको (भवनों या पुस्तकों) के नष्ट होने पर इतिहास स्वयं ही नष्ट हुआ या विकृत या विस्मृत हुआ। जिस प्रकार यूनानी इतिहासकारों ने सिकन्दर सम्बन्धी भ्रामक या मिथ्या या विपरीत[१] इतिहास लिखा। इसी प्रकार अनेक मुस्लिम इतिहासकारों—यथा अलबेरूनी, अबुल फजल, अलमासूदि, ज्याबरानी, सुलेमान सौदागार, इब्न खुरदादबा, अबु इसहाक, इब्नहौकल, रशीदुद्दीन, भक्करी—इत्यादि ने अपने समकालीन इतिहास को किस प्रकार भ्रामक एवं पक्षपातपूर्ण रूप से लिखा, यह विज्ञ पाठको को अज्ञात नहीं होगा।[२]

भारतीय वाङ्मय, विशेषतः इतिहासपुराणो ने, प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध मे घोर भ्रम या अज्ञान या मिथ्याज्ञान, जिस प्रकार या जिन कारणो से उत्पन्न किया, अब इसी की विशेष मीमांसा, इस प्रकरण मे करेंगे।

इतिहासपुराणों के भ्रष्टपाठ

रामायण, महाभारत और पचासों पुराणग्रन्थो मे भ्रष्टपाठों की भरमार है, इसके लिए हमे पाश्चात्यों यथा मैक्समूलर, विलसन, मैकडानल, वा कीथ को दोषी नहीं ठहरा सकते, न ही इस सम्बन्ध मे इन लेखको के प्रामाण्याप्रमाण्य का कोई मूल्य है। यह पाठभ्रष्ठता तो उत्तरकालीनपुराणलिपिकार का प्रतिलिपिकारों या धूर्त चाटुकारो की है जो अज्ञानवश या लोभवश सत्य के साथ व्यभिचार करते थे। ग्रन्थो मे क्षेपको की भरमार है, यद्यपि सभी क्षेपक अप्रामाणिक या भ्रमोत्पादक नही, परन्तु भ्रामक क्षेपको का बाहुल्य है, साम्प्रदायिक पक्षपात या मतभेद के कारण अनेक ऐतिहासिक तथ्यो को तोडा-मरोडा गया। यथा ब्राह्मणो ने अनेक महापुरुषो को अपने-अपने सम्प्रदाय का अनुयायी सिद्ध करने की चेष्टा की : शैवो, वैष्णवो की भाति जैनों और बौद्धो ने भी राम, कृष्ण, नेमिनाथ, ऋषभ, नारद आदि का विभिन्न एव परस्पर विपरीत चरित लिखा। यदि किसी ब्राह्मण ने किसी स्त्री के साथ व्यभिचार किया तो उसको इन्द्र या वायु जैसे देवताओ के मत्थे मढ दिया। इसके सर्वोतम उदाहरण हैं—गौतम (गोत्रनाम) पत्नी अहिल्या और जनमेजय (पाण्डव) पत्नी वपुष्टमा,

---

१. सिकन्दर पर पोरस की विजय उसकी (पोरस) की पराजय के रूप में चित्रित किया, यह अब सिद्ध हो चुका है।

२. अनेक मुस्लिम शासको ने अपने नाम से, पक्षपातपूर्ण एवं प्रशसात्मक आत्मकथायें लिखवाई जैसे बाबरनामा, जहाँगीरनामा इत्यादि।

केसरीपत्नी अञ्जना (हनुमानमाता) और कुन्ती। यहाँ गौतम एक गोत्रनाम है, जिसका वास्तविक नाम अज्ञात है—गौतम ऋषि राजा दशरथ के समकालीन था। गौतम पत्नी के साथ छल से किसी पुरुष ने व्यभिचार किया, परन्तु पुराण-संस्कर्त्ताओं ने यह दोष इन्द्र के मत्थे मढ़ दिया—

> तस्यान्तर विदित्वा च सहस्राक्षः शचीपतिः।
> मुनिवेषधरो भूत्वा अहल्यामिदमब्रवीत्॥
> ० ० ०
> एवं संगम्य तु तदा निश्चक्रामोटजात् ततः।[1]

जो इन्द्र वेद मे ईश्वर का प्रतिरूप है, उसको महाभारतोत्तरकाल मे वैष्णव ब्राह्मणों ने किस निम्नकोटि का 'धूर्त' बनाया, यह इससे प्रकट होता है।

जनमेजय की पत्नी वपुष्टता से अश्वमेधयज्ञ मे संज्ञप्त (मृत) अश्व के साथ एक रात्रि सोने के मिष अध्वर्यु या अन्य किसी ब्राह्मण सदस्य ने व्यभिचार किया, इस कारण जनमेजय का वैशम्पायन ब्राह्मणो से घोर संघर्ष हुआ और राज्य का विनाश भी हुआ। यहाँ भी पुराणकारो ने जनमेजय की पत्नी वपुष्टमा के साथ किए व्यभिचार को देवराज इन्द्र के मत्थे मढ़ दिया।[2]

इसी प्रकार रामायण मे कुशनाभ की १०० कन्याओ के साथ व्यभिचार को वायुदेव के मत्थे मढा है।[3] हनुमान की माता अञ्जना का वायु के संगम की कथा प्रसिद्ध ही है। कुन्ती के साथ किसी दुर्वासासंज्ञकब्राह्मण ने व्यभिचार किया, उसे सूर्य के मत्थे मढ दिया। इसी प्रकार पुराणो से इस प्रकार का मिथ्या-प्रवादो क अनेक उदाहरण दिये जा सकते है, जिससे प्राचीन इतिहास अत्यन्त विकृत एव दूषित हो गया, जिसमे कि सत्य इतिवृत का ज्ञान होना प्रायः अत्यन्त दुष्कर है।

रामायण, महाभारत, हरिवंश एवं विपुल पुराणो मे भ्रष्टपाठो के पर्याप्त उदाहरण हैं।

उदाहरणार्थ, भ्रष्टपाठो के दृष्टि से रामायण मे निकृष्टतम उदाहरण दिये

---

१. रामायण (१।४८।१७।२२),

२. तां तु सर्वानवयागी चकमे वासवस्तदा।
संज्ञप्तश्वमाविश्य यथा मिश्रीबभूव ह॥ (हरिवंश २।५।१३)

३. रामायण (१।३२)

जा सकते हैं, इनके प्राचीन कोशों मे अनेक पाठान्तरों एवं क्षेपकों मे से मूल या सत्यपाठ को ग्रहण करना असंभव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इसके तीन प्रधान पाठों (Recensions) दाक्षिणात्य, बंगीय एवं पश्चिमीय पाठो में कठिनाई से आठ सहस्र श्लोक समान होंगे, जबकि सम्पूर्ण रामायण मे २४००० श्लोक हैं। एक प्राचीनबौद्धग्रंथ महाविभाषा के अनुसार बाल्मीकि ऋषि ने कुल १२००० श्लोकों की रचना की थी. उत्तरकाल मे प्रक्षेप बढते-बढते रामायण का आकार ठीक द्विगुणित हो गया। वाल्मीकि अब से लगभग ७००० वर्ष पूर्व हुये थे, अत ऐसा होना प्राय: असंभव नही।

रामायणपाठ की भ्रष्टता

रामायण के उत्तरकालीन प्रतिलिपिकारो, गायको (चारणभाटों) या प्रक्षेपकारो का अज्ञान निम्नता की किस सीमा तक जा सकता था, इसके उदाहरण रामायण मे ही इक्ष्वाकुवशावली के दो पाठ हैं। बालकाड (१।७० सर्ग) और अयोध्याकाण्ड (२।११०) मे इक्ष्वाकुवश अयोध्याशाला की वशावली पठित है, इस वशावली में शासक पृथु का पुत्र षष्ठ शासक त्रिशकु है, जो पुराणो के सर्वसम्मत पाठ के अनुसार अयोध्या का इकतीसवा शासक था, रामायण में त्रिशंकु का पुत्र धुन्धुमार पठित है जबकि उसका पुत्र प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र ३२वा शासक था। रघु का पुत्र पुरुषादक राजा कल्माषपाद बताया गया है और आगे सुदर्शन, अग्निवर्ण जैसे रघुवशी राजा दाशरथि राम से पूर्व बताये गये है, अज का पिता नाभाग और उसका पिता ययाति बताया गया है। इस प्रकार की महाभ्रष्ट इक्ष्वाकुवशावली रामायण मे मिलती है। **रामायण में इस प्रकार प्रक्षेपण करने वाले चारणभाट को न तो पुराणपाठों का सामान्य या स्वल्प सा भी ज्ञान था और न उसने रामायण से अर्वाचीनतर कालिदास के रघुवंशमहाकाव्य का ही परायण तो क्या, आँख से उठाकर भी नहीं देखा। इस प्रकार उत्तरकालीन प्रतिलिपिकार या चारणादि किस सीमा पर्यन्त घोर अज्ञान में आकण्ठ निमग्न थे, उससे भारतीय इतिहास का कैसे हित हो सकता था,** अतः **इतिहास में महान् विकार आना स्वाभाविक था।** इस सम्बन्ध मे लेखक प० भगवद्दत्त के इस मत से सहमत नहीं हैं "विष्वगश्व से लेकर बृहदश्व तक का पाठ रामायण में टूट गया है। इसका कारण स्पष्ट है। अत्यन्त प्राचीनकाल मे किसी रामायण के प्रतिलिपिकर्त्ता ने दृष्टिदोष से विष्वगश्व के 'श्व' से पाठ छोड़ा और आगे मूलप्रति मे बृहदश्व के 'श्व' से पाठ पढकर लिखना आरम्भ कर दिया।[1]" **पाठत्रुटि का यह कारण बोधगम्य नहीं है। यदि सामान्य**

१. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग २, पृ० ७१;

दृष्टि की भूल होती तो उस प्रतिलिपिकार ने कल्माषपाद का पुत्र शंखण, उसका पुत्र सुदर्शन, उसका पुत्र अग्निवर्ण, उसका पुत्र शीघ्रग,' उसका पुत्र मरु और उसका पुत्र प्रसुश्रत, उसका पुत्र अम्बरीष इत्यादि राजा कैसे लिख दिये। जब ये सभी राजा कुशलव के बहुत पश्चात् हुये और महाकवि कालिदास ने अग्निवर्ण[2] तक के जिन रघुवंशी राजाओं का वर्णन किया है, ये सभी रामायणपाठ में राम के पूर्वज बना दिये गये हैं, इसे प्रतिलिपिकार का सामान्य दृष्टिदोष नहीं कहा जा सकता। यह तो परममूढ़ता की घोरपराकाष्ठा है, जो दृष्टि किसी प्रमाणिकता का स्पर्श नहीं करती उसको दृष्टिदोषमात्र कैसे कहा जा सकता है। अतः रामायण के तथाकथित उक्त प्रतिलिपिकार को इतिहास का एक प्रतिशत भी ज्ञान नहीं था और न ही उसने पुराण या रघुवंश जैसे सामान्य ग्रन्थों को ही आंख से देखा। यह परम अक्षम्य भूल है। ऐसी स्थिति मे पाश्चात्य या कोई विदेशी कहे कि "भारतीयों को इतिहास लिखना नही आता था" तो यह प्रसग अतिशयोक्ति या पक्षपात नही कहा जा सकता। कम से कम रामायण के प्रतिलिपिकारो के सम्बन्ध मे यो यह कथन शतप्रतिशत सत्य है कि उन्होने ज्ञान, सत्य इतिहास को भी पूर्णतः विकृत कर दिया और उसे गहन अन्धकार मे डुबो दिया। यह अतिखेद का विषय है।

उपरोक्त पाठत्रुटि या भ्रष्टता, प्रतिलिपिकारो का दृष्टिदोषमात्र नही थी, वरन् घोर मूढता या परम अज्ञान का प्रतीक है, इसकी पुष्टि आगे के उदाहर्त्तव्य सकेतो से भी होगी।

हरिवंश (१।२० अध्याय) एवं अन्य पुराणो के प्रामाणिक इतिवृतो से ज्ञात होता है कि शन्तनु के पिता प्रतीप के समकालीन पाञ्चालनरेश काम्पिल्याधिपति नीपवंशी ब्रह्मदत्त थे।[3] परन्तु रामायण मे चूली ब्रह्मदत्त को विश्वामित्र कौशिक के पूर्वज कुशनाभ (या कुशिक) का समकालीन बना दिया है।[4]

---

२. कालिदास ने रघुवश के अन्तिम एव उन्नीसवे सर्ग मे रघुवंश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ किया है—
"अग्निवर्णमभिषिच्य राघव. स्वे पदे तनयमग्नितेजसम्।"
(रघुवंश १९।१)

३. प्रतीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिप.।
ब्रह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः। (हरिवंश १।२०।११)

४. सराजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरीमध्यवसत् तदा।
काम्पिल्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथा दिवम्॥
स बुद्धि कृतवान् राजा कुशनाभः सुधार्मिक।
ब्रह्मदत्ताय काकुत्स्थ दातु कन्याशतं तदा॥
(रामायण १।३३।१९-२०)

इसी प्रकार बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में अनैतिहासिकवृत्तान्तों की शतशः कथायें हैं, यथा उत्तरकाण्ड में रावण का यम, वरुण आदि से युद्ध, मेघनाद का इन्द्र से युद्ध, विष्णु का सुमाल्यादि से युद्ध, रावण सहस्रार्जुन की समकालीनता, शुनःशेप को अम्बरीष का बलिपशु बनाने की कथा इत्यादि। इनमें अन्तिम इतिहास ऐतरेयब्राह्मण एवं पुराणो मे प्रसिद्ध है कि शुनःशेप हरिश्चन्द्र का समकालीन था और उसी के पुरुषमेध मे वह बलि का पशु बनाया गया था, उसको अम्बरीष का समकालीन प्रदर्शित करना, उसी प्रकार घोर अज्ञानता का प्रतीक हैं, जिस प्रकार इक्ष्वाकुवंशावली का भ्रष्टपाठनिर्माण।

इस प्रकरण मे हम सम्पूर्ण वंशावलियों की शुद्धता का परीक्षण नही कर रहे हैं, केवल भ्रष्टपाठो का उदाहरण संकेतित है, जिससे ज्ञात हो कि इतिहास विकृति मे इन भ्रष्टपाठो का कितना भीषण योगदान है।

महाभारत, हरिवंश और पुराणों मे पाठभ्रष्टता की न्यूनता नही है वरन् पर्याप्त ही है, यहाँ पर दो-चार उदाहरणो से ही इसकी पुष्टि करेंगे, सम्पूर्ण भ्रष्टपाठों का संकलन करने के लिए तो अनेक पृथुलग्रन्थो की आवश्यकता होगी और ऐसा संकलन करना यहाँ असम्भव ही है।

महाभारतग्रन्थ की रचना के समय और लेखकत्वादि के विषय में यहाँ विचार नही करना है, यहाँ पर केवल यह देखना है कि वर्तमानपाठों में कितनी समरूपता एवं निर्भ्रान्ति है, इस सम्बन्ध मे दो-चार बातो पर ही विचार करेंगे।

सर्वप्रथम, यह बात काल्पनिक प्रतीत होती है कि देवयुग के पुरुषों यथा इन्द्र, वरुण, भृगु, सप्तर्षि, वायु, अग्नि, यम आदि शतशः पुरुषों को पाण्डवादि के समकालीन दिखाया गया है। नारदादि[1] सम्बन्धी एक-दो पुरुषो को छोड़ कर इन्द्रादिसम्बन्धी समकालिकता पूर्णतः काल्पनिक प्रतीत होते हैं। इन्द्र की कृष्ण या अर्जुन से तथाकथित भेंटों मे ऐतिहासिकता नही है। देवयुगीन नागो और सुपर्णों का सम्बन्ध जनमेजय के नागयज्ञ से जोडा गया है, यह समकालीनता भी काल्पनिक है। हाँ, मय, बाण, नरक, (असुर), तक्षक, वासुकि जैसे वंशनाम हैं, क्योंकि मयादि असुर और तक्षकादि नाग देवासुरयुग में हुए थे, उनके वंशज महाभारतयुग में इसी नाम से अभिहित किए जाते थे। प्रथम मय, शुक्राचार्य

१. नारद निश्चय ही, अतिदीर्घजीवी पुरुष थे, जो दक्ष प्रजापति से पाण्डवों तक विद्यमान रहे, इसी प्रकार परशुराम भी दीर्घजीवी थे, इसका विवरण अन्यत्र लिखा जायेगा।

का पौत्र और त्वष्टा का पुत्र था। इसके वंशज भी मय ही कहलाते थे, एक मय का वध[1] दशरथ के समकालीन देवासुरयुद्ध में हुआ था, जिसकी पत्नी हेमा थी और पुत्र दुन्दुभि तथा मायावी थे, इन दोनों मयपुत्रों का वध वानरराज बालि ने किया था। मय के वंशज किसी मय असुर ने युधिष्ठिर की सभा का निर्माण किया था। अतः मय, वासुकि आदि वंशनाम या जातिनाम थे। देवासुरयुगीन और महाभारतकालीन सनामापुरुषों में भ्रम होना स्वाभाविक है, परन्तु ये पृथक्-पृथक् थे।

महाभारत, आदिपर्व मे पुरुवंश की वंशावली दो स्थलों पर मिलती है, यथा अध्याय १४ और १५ में पर्याप्त अन्तर है। एक ही ग्रन्थ के दो क्रमिक अध्यायों में वंशावली का भेद होना निश्चय ही चिन्त्य है और इसे केवल प्रतिलिपिकार की भूल नहीं कहा जा सकता।

हरिवंशपुराण मे क्षेपक पर्याप्त है, यद्यपि इस पुराण का पाठ पर्याप्त प्राचीन है, परन्तु अनेक भाग प्रक्षिप्त है, यह सहज ही ज्ञात हो सकता है। हरिवंश मूल मे केवल १२ सहस्र श्लोक थे[2] अब श्लोकसख्या १६ सहस्र से भी अधिक है, स्पष्ट है, न्यूनतम चार सहस्र श्लोक क्षेपक हैं। इस पुराण में अनेक कथाओ की द्विरुक्ति है, वे निश्चय ही क्षेपक हैं, इसी प्रकार अनेक असम्भव वर्णनों के क्षेपक माना जाना चाहिए, तथा बालकृष्ण के शरीर से भेड़ियो की उत्पत्ति इत्यादि।[3]

इसी प्रकार समस्त पुराणो मे क्षेपकों एवं भ्रष्टपाठों, साम्प्रदायिक-कल्पनाओ, असम्भव घटनाओ के अविश्वसनीय वर्णन पर्याप्त हैं, इसका संकेत तत्तत्प्रकरण मे ही किया जाएगा। यहाँ पर सभी का संकेत करने पर भी ग्रन्थ का कलेवर अतिवृद्ध हो जायेगा। केवल उन कारणों का सामान्य उल्लेख करेंगे, जिनके कारण ऐतिहासिक विभ्रम उत्पन्न हुये।

विभ्रमों का प्रारम्भ वेदों से

दिव्य-मानुष-इतिहास—वेदमन्त्रो एवं इतिहासपुराण में भ्रम का मुख्य

---

१. मयो नाम महातेजा मायावी वानरर्षभ।
विक्रम्यैवाशनिं गृह्य जघानेशः पुरन्दरः॥ (रामा० ३।५१।१०,१५)

२. दशश्लोकसहस्राणि विंशच्छ्लोकशतानि च।
खिलेषु हरिवंशे च संख्यातानि महर्षिणा॥ (आदिपर्व २।३८०)

३. घोराश्चिन्तयतस्तस्य स्वतनूरुहजास्तथा।
विनिष्पेतुर्भयंकराः सर्वशः शतशो वृकाः॥ (हरि० २।८।३१)

कारण नामसाम्य, नामपर्याय, सदृशनाम, गोत्रनाम, पक्षिनाम, पशुनाम, ग्रहनाम, नक्षत्रनाम, बहुव्रीहिसमास नाम एवं इसी प्रकार के अनेक कारणों से हुआ। इन समस्तविषयों का सोदाहरण स्पष्टीकरण इसी प्रकरण में करेंगे। परन्तु यह ध्यातव्य है कि इतिहासपुराणों में इन विविध विभ्रमों का बीज वेदमन्त्रों में ही बो दिया गया था। उदाहरणार्थ वेद में ऋषि प्रायः गोत्रनाम से ही अपना उल्लेख करता है, जैसे गौतम, कण्व, वसिष्ठ, कौशिक इत्यादि, इन गोत्रनामों से इतिहास में जितना भ्रम उत्पन्न हुआ, उतना भ्रम सम्भवतः और किसी कारण से नही हुआ। वेद में वसिष्ठगोत्र का ऋषि अपने को वशिष्ठ ही कहता है और विश्वामित्र का वंशज अपने को विश्वामित्र या कौशिक कहता है, इससे सर्वत्र आदिविश्वामित्र, जो इन्द्र का शिष्य व गुरु था, उसका भ्रम होता है, अतः इस प्रकरण में प्रत्येक प्रसिद्धगोत्रप्रवरनामो की सोदाहरण मीमांसा करेंगे। उससे पूर्व वेद मे दिव्यमानुष इतिहास की चर्चा करेगे।

वेद मे इतिहास—हम, इस मत को नही मानते कि वेदों में इतिहास नही है, प्राचीन ऋषियो ब्राह्मणकर्त्ता ऐतरेय, तैत्तिरीयादि, यास्क, शौनक एवं सायणादि वेदभाष्यकारो ने वेदमन्त्रो मे इतिहास माना है और स्वयं वेदमन्त्रों मे मन्त्रकर्त्ता ऋषि अपना नाम लेता है, इसका अपलाप किसी प्रकार भी नही किया जा सकता।[1] तर्क के द्वारा भी वेदमन्त्रों मे इतिहास सिद्ध है। परन्तु इन सबके बावजूद कुछ विद्वानो की यह मान्यता निर्मूल नही है "इतिहासशास्त्र के आधार पर वेद-पाठ करने वाले के हृदय मे अनायास ही यह सत्यता प्रकट होगी कि वेदमन्त्रों के आश्रय पर ही अनेक व्यक्तियों के नाम रखे या बदले थे। इसीलिए भगवान् मनु के भृगुप्रोक्त शास्त्र १।२१ मे कहा गया है—

"सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

अर्थात् वेद के शब्दों से ही आदि में अनेक पदार्थों के नाम रखे गये।"[2] वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि "मन्त्र में उस देवासुरयुद्ध का वर्णन नहीं है, जो इतिहास मे वर्णित है[3]", स्वयं वेदमन्त्र में यही बात कही गई है 'हे

---

१. शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सोऽस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु। (ऋ० १।२४।१२)

२. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ० ३५८ भगवद्दत्त कृत;

३. तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्देवासुरं यदिदमन्वाख्याने त्वदुद्यत इतिहासे त्वत्। (श० ब्रा० ११।१।६।९);

इन्द्र ! तुमने न किसी से युद्ध किया और न मघवन्' तुम्हारा कोई शत्रु है, जो युद्ध कहे जाते हैं वे सब माया है, तुम पूर्वकाल मे शत्रुओं से लड़े नहीं[1]।

ऋग्वेद और शतपथब्राह्मण के उक्त मन्तव्यों से यह भाव स्पष्टता से निकल रहा है कि मायायुद्धो एव दिव्य इन्द्र के अतिरिक्त ऐतिहासिकदेवासुरसग्राम निश्चयपूर्वक हुये थे, परन्तु उनका आशय यह है कि मन्त्र मे सर्वत्र ऐतिहासिक वर्णन ही नहीं है, परन्तु उसकी छाया अवश्य है जैसा कि यास्क ने अनेकत्र माना है—"तत्र ब्रह्मे तिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति" (नि० ४।६; "मन्त्र, इतिहास मिश्रित, ऋङ्मिश्र और गाथामिश्र होते हैं। यास्क ने यह भी लिखा है कि 'आख्यानयुक्त मन्त्रार्थ (पदार्थ) कथन में ऋषि को प्रीति होती है। भला, जहाँ ऋषि को मन्त्र में इतिहास कथन में प्रीति या आनन्द मिलता हो, वहाँ यह मानना कि उसमे इतिहास नही, कितनी विडम्बना है।

शब्द की निरुक्ति या निर्वचन से पुरुष का ऐतिहासिक अस्तित्व नही मिटाया जा सकता और यह भी नही समझना चाहिए कि अमुक व्यक्ति से पूर्व अमुक पद था ही नही—यथा दशरथ, राम, इन्द्र, विभीषण, सुग्रीव, वृत्र, विष्णु, अदिति, कश्यप, गौतम, कण्व, भरद्वाज, विश्वामित्र, वशिष्ठ, शुक्र, जमदग्नि इत्यादि महत्त्पदो के निर्वचन करने का यह तात्पर्य नही है कि कश्यप, इन्द्र आदि के जन्म मे पूर्व कश्यपादि शब्द थे ही नही। पुरुषो के नाम लोक-वेद से ही रखे जाते है, इसका अर्थ यह नही है कि 'राम' शब्द दाशरथि राम से पूर्व था ही नहीं, आखिर यही नाम राम दाशरथि से पूर्व लोक मे था, तभी तो यह नाम रखा गया। यही बात इन्द्र, अदिति, वसिष्ठ, कश्यपादि के सम्बन्ध मे समझना चाहिए। भाव यह है कि वेदमन्त्र मे कही इन्द्रादिपदों का ऐतिहासिक अर्थ हो सकता है और कही नही भी हो सकता। वेद मे वृत्र, उर्वशी, आयु, नहुष, ययाति, पुरु (पुरुष ?), आङ्गिरस, भृगु आदि शब्द ऐतिहासिक (मानुष) भी हो सकते हैं[3] और दिव्य (द्युलोकसम्बन्धी) पदार्थ के

---

१. न त्वं युयुत्से कतमच्चनाह न तेऽमित्रो मघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाथ शत्रून्ननु पुरा युयुत्से। (ऋग्वेद)

२. ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यानसंयुक्ता (नि० १०।१०),

३. निरुक्त का यही भाव है—'तत्कोवृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः
त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः।" (नि० २।५।१६),।
निम्न मन्त्र में नहुषादिपदों के भी ये दोनों दिव्यमानुष अर्थ सम्भव हैं—
त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम्।
इलामकृण्वन् मनुषस्य शासनीम्।' (ऋ० १।३१।२)

बोधक भी हो सकते है। अतः प० भगवद्दत्त का मत आंशिक रूप से सत्य है "विश्वामित्र. विश्वरथ, अत्रि, भारद्वाज, श्रद्धा, इला, नहुष आदि नाम सामान्य श्रुतियाँ है। ऋषियों ने ये नाम वेदमन्त्रो से लेकर रख लिए।" साथ ही यह भी सत्य है कि वेद में केवल दिव्य नाम ही नही, मानुषनामो का उल्लेख है। स्वयं पं० भगवद्दत्त जी ने अनेक वेद के दिव्य-मानुषनामों की चर्चा की है, परन्तु वे इस गुत्थी को सुलझा नही पाये।[1]

दिव्य और मानुष निश्चय ही पृथक-पृथक पदार्थ थे। दिव्य का सामान्य अर्थ है द्युलोक या सूर्य या आकाशसम्बन्धी (वस्तु) और मानुष का अर्थ है मनुष्य या पृथ्वी सम्बन्धी वस्तु। निम्न मन्त्रों मे दिव्यामानुष का उल्लेख द्रष्टव्य है—

तदूचिषे मानुषेमा युगानि।[2]

विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः।[3]

या ओषधीःपूर्वा जाता देवभ्यस्त्रियुगं पुरा।[4]

दैव्यं मानुषा युगाः।[5]

नाहुषा युगा मह्ना।[6]

सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः।[7]

जैमिनीब्राह्मण मे स्पष्ट लिखा है कि वेदमंत्रोक्त 'दाशराज्ञयुद्ध' मानुष[8] भी था। 'दिव्यदाशराज्ञयुद्ध' भी सम्भव है, जिसका मनुष्य या पृथ्वीलोक से सम्बन्ध

१. "दुःख है कि इस समय वेदविद्या लुप्तप्रायः है। अतः इन सबका यथार्थ अर्थ करना यत्नसाध्य है" (भा० बृ० इ० भाग २ पृ० १२५)।
२. ऋ० (१।१०३।४),
३. ऋ० (५।५२।४),
४. ऋ० (१०।९७।१),
५. शु० यजु० (१२।१११),
६. ऋ० (५।७३।३) (वेद मे नहुष, पुरु, आयु आदि का अर्थ मनुष्य भी है।)
७. ऋ० (७।१८।६),
८. "क्षत्रं वै प्रातर्दन दाशराज्ञो दश राजानः पर्यतन्त मानुषे," (जै० ब्रा० ३।२४५);
"एवं क्षत्रस्य मानुषात् व्युपापतत शश्वव ! (जै० ब्रा० ३।२४८)

नहीं " वेद मे मानुषीप्रजा का उल्लेख है।[1]

दिव्य का एक अर्थ होता सौर या सूर्यसम्बन्धी अतः दिव्यवर्ष या दिव्य-युग का अर्थ हुआ सूर्यसम्बन्धी वर्ष या युग। मूल मे सौरवर्ष ३६० या ३६५ दिन का होता है। इस 'दिव्य' शब्द से इतिहास मे इतना बडा भ्रम उत्पन्न हुआ कि चतुर्युग के १२००० (द्वादशसहस्र) मानुषवर्षों को पुराणो में ४३२०००० (तैंतालीस लाख बीस हजार) मानुषवर्ष बना दिया गया जो मानव इतिहास में पूर्णतः असम्भव है। तात्पर्य यह है कि वेद के मानुष और दिव्य शब्दो ने इतिहास मे ऐसा अप्रतिम और महान् भ्रम को जन्म दिया, जिससे कि भारतयुद्ध से पूर्व की ऐतिहासिकतिथियों का आधुनिक या प्राचीन इतिहासकार निर्णय ही नही कर सके।[2] इतिहास मे एक शब्द[3] से ही कितना विकार हो सकता है, यह ज्वलन्त उदाहरण इसका प्रमाण है दिव्यशब्द।

नामसाम्य से इतिहास में विकृति

उपाधिनाम से भ्रम—अर्वाचीन या उत्तरकालीन इतिहास मे जिस प्रकार विक्रम (विक्रमादित्य), साहसाक, शक, शकराचार्य, कालिदास जैसे नाम उपाधि बन गये और इतिहास में भ्रम उत्पन्न करने लगे, उसी प्रकार पुराणो (किंवा वेदो) मे भी प्रजापति, ब्रह्मा, प्रचेता, इन्द्र, व्यास, सप्तर्षि, आदित्य, बृहस्पति, पञ्चजन जैसे उपाधिबोधक शब्द महान् भ्रमोत्पादक बन गए।

प्रजापतिपद—सर्वप्रथम 'प्रजापति' शब्द को ही ले, पुराण या रामायण, महाभारत मे 'प्रजापति' का सामान्यत. अर्थ चतुरानन ब्रह्मा या स्वयम्भू अर्थ लिया जाता है। उसी प्रकार ब्राह्मणग्रंथो मे बहुधा 'प्रजापति' का बिना विशेषनाम लिए सामान्य निर्देश किया गया है, जबकि प्रमुख प्रजापति २१ या इससे भी

---

१ पावकोऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु (ऋ० ६।७)

२. मानुषयुग का अर्थ है १०० वर्ष और दिव्ययुग का अर्थ है ३६० वर्ष। दिव्य (सौर) और चान्द्रवर्ष मे स्वल्प अन्तर था, इसका आभास पंडित भगवद्दत्त को हो गया था। पाश्चात्यलेखक तो 'मानुषयुग' का अर्थ समझ ही नही पाये एतदर्थ द्रष्टव्य—लोकमान्यतिलक कृत—आर्कटिक होम ऑफ दी वेदाज (पृ० १४०-१४८ मानुषयुगसम्बन्धी विवेचन); इसका (युग का) विशेष परिशीलन युगसम्बन्धी अध्याय मे करेंगे।

३. इसलिए वैयाकरणों ने कहा "एक ही सुप्रयुक्त शब्द स्वर्गलोक में कामदुघ होता है।" "एकः शब्दः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति।"

अधिक हुए थे। मुण्डकोपनिषद् (१।१।१) मे 'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव' में 'ब्रह्मा' शब्द 'आदित्य वरुण प्रजापति' का बोधक हैं, क्योंकि अथर्वा या भृगु ऋषि वरुण के ज्येष्ठपुत्र थे, परन्तु सामान्य पाठक यहाँ 'ब्रह्मा' का अर्थ स्वयम्भू या चतुरानन (प्रथम प्रजापति) ग्रहण करेगा। इसी प्रकार निम्न ब्राह्मणप्रवचनों में 'प्रजापति' शब्द भ्रमोत्पादक है—(१) प्रजापतिरिन्द्रमसृजत आनुजावर देवानाम् (तै० ब्रा० २।२।१०।६१), (२) इन्द्रो हैव देवानाम् अभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणाम्.........तौ समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः (छा० ५।८।७); सामान्यतः जिस पाठक को इतिहास का ज्ञान नही होगा, वह यहां 'प्रजापति' शब्द से 'ब्रह्मा' का ही ग्रहण करेगा, परन्तु इतिहासविज्ञ ही जान सकता है कि यहाँ देवासुरों के जनक 'कश्यप मारीच' प्रजापति का उल्लेख है। पुराणों के वर्तमानपाठों मे इस भ्रम की पुनरावृत्ति 'ब्राह्मणग्रन्थो' के कारण भी हुई है, जहा वे प्रजापतिविशेष का नामनिर्देश नही करते।

इसी प्रकार दक्ष के पिता का नाम 'प्रचेता' था, जो एक महान् प्रजापति हुए और 'वरुण आदित्य' को भी 'प्रचेता' कहते हैं, सप्तर्षियो के 'जन्मद्वयी' के सम्बन्ध में प्रचेता' या वरुण (ब्रह्मा) शब्द से यह भ्रम उत्पन्न हुआ है, स्वयं पुराणकार इस भ्रम मे फंस गये, फिर सामान्य पाठक इस प्रसंग मे सत्य इतिहास को कैसे जान सकता है।

आदित्यपद—आदित्य, सूर्य, विवस्वान् और देवादि शब्द भी इतिहास मे घोर भ्रम उत्पन्न करते हैं। कश्यप और अदिति के द्वादशवरुणइन्द्रादिपुत्र 'आदित्य' कहे जाते हैं। 'मार्तण्ड' आकाशस्थ सूर्य को विवस्वान् या आदित्य भी कहते हैं। वेदार्थ मे इसी दिव्य (सूर्य) और मानुष विवस्वान् से महान् भ्रान्ति होती है और वही भ्रान्ति इतिहासपुराणो मे यथावत् विद्यमान है। इतिहास मे यम और मनु का पिता विवस्वान् पृथ्वी का राजा और मनुष्य था। आकाश के विवस्वान् या सूर्य और आदित्य को हम प्रत्यक्ष देखते है। ऐतिहासिक वरुण, इन्द्र, विष्णु आदि सबकी 'आदित्य' संज्ञा प्रसिद्ध थी। बिना व्यक्तिविशेष का नाम लिए केवल 'आदित्य' कहने मे इतिहास मे भ्रम के लिए महान् अवकाश है और ऐसा भ्रम वेदमंत्रों और इतिहासपुराणो में है ही। इस भ्रान्ति का निराकरण अतिदुष्कर कर्म है, तथापि इस ग्रन्थ मे यथाप्रसंग यथार्थ 'आदित्य' का यथार्थ ऐतिहासिक उल्लेख किया जायेगा।

---

१. यथा बृहद्देवता (७।४६।६०) मे वैकुण्ठ इन्द्र का वर्णन—
प्राजापत्यासुरी त्वासीद् विकुण्ठा नाम नामतः।
तस्यां चेन्द्र स्वयं जज्ञे जिघांसुर्दैत्यदानवान् ॥

इन्द्रपद—इन्द्र भी अनेक हुए हैं, पुराणो मे चौदह मन्वन्तरों के इन्द्रादिदेवों का पृथक् निर्देश है। वैदिकग्रंथों में काश्यप इन्द्र के अतिरिक्त अन्य इन्द्रों का भी उल्लेख है।[1] सामान्यतः लोग एक ही इन्द्र को जानते हैं।

व्यास-उपाधि—भारतीय इतिहास मे २८ या ३० व्यास हुये हैं, पुराणों में इनका बहुधा वर्णन है, सामान्यजन क्या बड़े-बड़े संस्कृतज्ञ भी केवल एक ही व्यास पराशर्य कृष्णद्वैपायन से परिचित है, अतः अनभिज्ञ व्यक्ति निश्चय ही भ्रम मे पड़ जाएगा, अतः 'व्यास' पदवी से यत्र तत्र सर्वत्र पाराशर्य व्यास का भ्रम होता है, कुछ विद्वानो के मत मे गीता के निम्न श्लोक मे चौबीसवें व्यास ऋक्ष वाल्मीकि का उल्लेख है—

मुनीनामह् व्यासो कवीनामुशना कविः।[1]

सप्तर्षिपद-उपाधि—व्यासपदवी के समान 'सप्तर्षि' एक महती पदवी थी। १४ मन्वन्तरो मे १४ सप्तर्षिगण हुए। अतः बिना विशिष्ट मन्वन्तर के उल्लेख मे यह ज्ञात नही हो सकता कि किस सप्तर्षिगण का उल्लेख है। प्रत्येक मन्वन्तर मे इन सात ऋषियो का एक प्रधानवशज सप्तर्षि हुआ—अत्रि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वसिष्ठ। यथा दशम मन्वन्तर मे पुलहपुत्र हविष्मान् भृगुवंशी सुकृति, अत्रिवंशी आपोमूर्ति, वसिष्ठवशी अष्टम, पुलस्त्यपुत्र प्रमिति, कश्यपगोत्रीय नभोग और अंगिरावशी नभस नाम के सप्तर्षि थे।[2] यहाँ पर सप्तर्षियों के नाम दे दिये हैं, यदि केवल इनको वसिष्ठ, अत्रि आदि ही कहा जाए जैसा कि पुराणो मे बहुधा कहा गया है, तब भ्रम के लिए पूर्ण स्थान रहता है।

चाक्षुपमन्वन्तर (षष्ठ) मे पृथुवैन्य के राज्यकाल मे अत्रि आदि सप्तर्षियों के वंशज चित्रशिखण्डी नाम के सप्तर्षि थे, जिन्होंने लक्षश्लोकात्मकधर्मशास्त्र बनाया। नामो से आदिम अत्रि आदि का भ्रम पूर्णसंभव है।

---

१. श्रीमद्भगवद्गीता (१०।३६), द्रष्टव्य श्री रामशंकर भट्टाचार्यकृत इतिहासपुराण अनुशीलन।

२. दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः।
हविष्मान् पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गवः।
आपोमूर्तिस्तथात्रेयो वासिष्ठाश्चाष्टमः स्मृतः।
अंगिरा नभसः सप्तैते परमर्षय॥
(हरिवंश० १।७।६५, ६६)

इसी प्रकार 'पंचजन'संज्ञक अनेक जातियाँ विभिन्न कालों में हुई यथा वैवस्वत में—असुर, देव, गंधर्व, सुपर्ण और नाग पंचजन थे, ययाति के पाँच पुत्रों के वंशजों यथा यादव, पौरव आदि भी पंचजन थे, भार्म्यश्व के मुद्गल आदि पाँच पुत्र भी पंचजन या पांचाल कहलाये। इस प्रकार की तुल्य या सामान्य संज्ञाओं से इतिहास में भ्रम हुआ है।

इसी प्रकार ब्रह्मा, बृहस्पति आदि भी पदवियाँ थी, यह पदवी किसी भी विशिष्ट विद्वान् की हो सकती थी। वरुण प्रजापति को भी 'ब्रह्मा' पदवी प्राप्त थी, यज्ञ में ब्रह्मा एक ऋत्विक् होता था। अतः इन पदो ने भी इतिहास मे भ्रमोत्पादन में सहयोग दिया।

नामसादृश्य से भ्रम—एक ही नाम के अनेक राजा, ऋषि या अन्य पुरुष विभिन्न समयो मे होते है और हुए हैं, पुराण के एक श्लोक[1] में बताया गया है कि ब्रह्मदत्त, जनमेजय, भीम इत्यादि नामों के सौ-सौ राजा हो चुके हैं, अतः अब तक उसका वंश, कालादि ठीक-ठीक ज्ञात नही हो तो भ्रम उत्पन्न होता है। इसी प्रकार 'राम' नाम के अनेक पुरुष या महापुरुष हुये हैं। अतः बिना विशेषण के भ्रम के लिए पूर्ण स्थान है, यथा गीता के निम्न श्लोकार्ध मे उल्लिखित राम से टीकाकार 'दाशरथि राम' और 'परशुराम भार्गव' दोनो ही अर्थ लेते हैं। "रामः शस्त्रभृतामहम्[2]"

दोनो ही श्रेष्ठशस्त्रविद् थे, परन्तु इतिहास से ज्ञात है कि भार्गव राम ही विशेष शस्त्रविद् या धनुर्वेदपारग थे, अतः गीता मे उन्ही का उल्लेख माना जाना चाहिये। यह रहस्य सच्चा इतिहासवेत्ता ही ज्ञात कर सकता है।

इसी प्रकार दशरथ, कृष्ण, अर्जन, भीम आदि शतशः उदाहरण नामसादृश्य के दिये जा सकते हैं। परन्तु इतने ही पर्याप्त हैं।

नामपर्याय से भ्रम—पुराणो मे पृथु के एक पुत्र के अन्तर्धि का नाम अन्तर्धान भी मिलता है।[3] इसी प्रकार 'अरिमर्दन' नाम के राजा को 'शत्रुमर्दन' भी कहा गया है।[4] पिप्पलाद को पिप्पलाशन, कणाद को कणभक्ष, शिलाद को

१. शतं ब्रह्मदत्ताणामशीतिर्जनमेजयाः ।
शतं वैप्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः सहैहयाः ॥
(ब्रह्माण्ड ०२।३।७४।२६६-६७)

२. गीता (१०।३१)

३. द्रष्टव्य विष्णुपुराण (१।१४।१)

४. मार्कण्डेयपुराण (२६।६, २६।६, २६।२०)

शिलाशन कहा गया है।[1] इसी प्रकार हिरण्याक्ष के लिए हिरण्यचक्षु[2] अग्निवेश को वह्निवेश हुताशवेश आदि नामपर्याय पुराणों में मिलते हैं। कहीं-कहीं नाम के अन्तिम भाग में किंचित् परिवर्तन से भी भ्रम हो सकता है यथा नेदिष्ट के लिए दिष्ट, सुबाहु के लिए बाहु, परशुराम के लिए पर्शुराम।[3] नाम के साथ विशेषण का सांकर्य भी सम्यग् इतिहासबोध मे बाधक होता है, यथा कृष्णात्रेय, श्वेतात्रेय, पीतात्रेय अथवा दृप्तबालाकिगार्ग्य (श० ब्रा० १४।१।१।१), सौर्यायणि गार्ग्य (प्रश्नोपनिषद्), शैशिरायण गार्ग्य यत्र-तत्र इतिहास पुराणों में बाष्कल को ही बाष्कलि (वि० पु० ३।४।१६-१७), उत्तम को औत्तमि (वि० पु० ३।१।२२), अगस्त्य को अगस्ति, पुलस्त्य को पुलस्ति, कुशिक को कौशिक, कात्यायन को कात्य, मार्कण्ड को मार्कण्डेय, च्यवन को च्यावनेय, यम को मृत्यु, धर्मराज यमराज या अन्तक, बुध को वीरसोम, शुक्र को भृगु, भृगुपति या भार्गवमात्र, परशुराम को भृगु या भार्गव या भृगुपति कहा गया है। ये सभी नाम पर्याय इतिहास मे भ्रमोत्पादक अथवा इतिहासबाधक बन सकते हैं, यदि पाठक सम्यक् रूप से इतिहास का गम्भीरज्ञाता न हो। परन्तु ऐसी स्थिति में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ विद्वान् को भ्रम हो सकता है और स्वयं पुराणकारों या प्रतिलिपिकारों ने पुराणपाठो मे अनेक भ्रमों या कल्पनाओं को जन्म दिया, जिससे इतिहास विकृत हुआ है और जिसका संशोधन आज अतिदुष्कर एवं कष्टसाध्य कर्म प्रतीत होता है।

समासनाम—समासनामो से भी इतिहास मे बाधा होती है, जैसाकि 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' का उदाहरण तैत्तिरीयसंहिता एवं व्याकरणशिक्षा ग्रन्थों मे दिया जाता है, इसी प्रकार षण्मुख, षाण्मातुर पतंजलि, चक्रधर, पीताम्बर, हलायुद्ध वृकोदर, कानीन, मेघनाद, इन्द्रजित् कश्यप, प्रज्ञाचक्षु जैसे अनेकविध समासनाम इतिहास मे कभी-कभी महान् बाधा उत्पन्न करते हैं। पुराणो मे इस प्रकार के नाम बहुधा प्रयुक्त हुए हैं।

गोत्रनामों से महती भ्रान्ति—जैसाकि पूर्व संकेतित है कि गोत्रनामो द्वारा ऐतिहासिक भ्रान्ति का बीज वेदमन्त्रो मे ही बो दिया गया था और इतिहासों एवं पुराणो मे इसकी पूरी फसल काटी गई है। इस भ्रान्ति के शिकार यास्क

---

१. द्रष्टव्य—इतिहासपुराण अनुशीलन पुस्तक मे—पौराणिकव्यक्तिनाम-घटित समस्यायें शीर्षक लेख।

२. वामनपु० (१०।४५)

३. ब्रह्माण्ड २।५०।१४, विष्णु ४।१।५ और ब्रह्मवैवर्त० (३।२५।२०)

जैसे वेदाचार्य और उनसे पूर्व जैमिनीयब्राह्मण के कर्त्ता व्यासशिष्य जैमिनि ऋषि तक हो गये। इसका सर्वप्रसिद्ध उदाहरण 'विश्वामित्र' या 'वसिष्ठ' के गोत्र-नामों से दिया जा सकता है। निम्न ब्राह्मणवाक्य मे 'विश्वामित्रजमदग्नी' पद निश्चय ही इन ऋषियों के किन्हीं वंशजों के लिए आया है, जो कुरु के पिता संवरण के समय हुये थे—

'भरता ह वै सिन्धोरपतार आसुः इक्ष्वाकुभिरुद्बाढ़ाः।
तेषु ह विश्वामित्रजमदग्नी ऊषतुः ॥' (जै० ब्रा० ३।२३८)

यहाँ पर स्वयं 'भरत' और 'इक्ष्वाकु' शब्द इन्ही राजाओ के वंशजों के लिए प्रयुक्त है, इसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता नही है। वेदमन्त्रो और इतिहासपुराणो मे गोत्रनामो पर विचार करने से पूर्व पाणिनिव्याकरण के निम्न सूत्र द्रष्टव्य है—

(१) अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च।[1]
(२) यस्कादिभ्यो गोत्रे।[2]
(३) बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु।[3]
(४) आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिन च।[4]

इन सूत्रो का अर्थ है—(१) अत्रि आदि के गोत्रप्रत्यय का बहुवचन मे लुक् होगा अर्थात् अत्र्यादि के वंशज भी अत्रयः (या अत्रिः), भृगुः (भृगवः), कुत्सः (कुत्साः), वसिष्ठः (वसिष्ठाः), गौतमः (गोतमाः), अंगिरसः (अंगिराः) कहलाएँगे। (२) यस्कादि गोत्रे मे बहुवचन मे प्रत्ययलुक् होगा—यथा यस्क के वंशज भी यस्काः, मित्रयु के वंशज मित्रयवः कहलाएँगे। (३) प्राच्यगोत्रो एव भरतगोत्र मे बह्वच के परे इञन्त प्रत्यय का लुक् होगा यथा युधिष्ठिर के वंश भी युधिष्ठिरः या युधिष्ठिराः या भरतः के भरता. कहे जाएँगे। (४) आगस्त्य (अगस्त्यवंशज) और कौण्डिन्य (कुण्डिन वंशज) क्रमश. अगस्ति या अगस्त्यः, कुण्डिन या कुण्डिनाः कहलाएँगे। इसी प्रकार पुलस्त्य (पौलस्त्य) वंशज पुलस्ति या पुलस्तयः कहलायेंगे।

---

१. अष्टाध्यायी (२।४।६५),
२. वही, (२।४।६३),
३. वही, (२।४।६६),
४. वही, (२।४।७०),

ये उदाहरण मात्र है। इनके प्रकाश मे निम्न वेदमंत्र द्रष्टव्य है :—

(१) त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने।[1]

(२) द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिरे।[2]

(३) भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः।[3]

(४) प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः।[4]

(५) कण्वा इन्द्र यदक्रत।[5]

उपर्युक्त मन्त्रो मे गृत्समद, कुशिक, भारद्वाज, वसिष्ठ और कण्व शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुये हैं, स्पष्ट है ये शब्द तत्तद् ऋषिवंशजों के लिए प्रयुक्त हुये हैं। वेद, उपनिषद् एवं इतिहासपुराणों मे अनेकत्र एकवचन मे भी ऋषि, प्रायः अपने वास्तविक नाम के स्थान पर गोत्रनाम को लेता है, जैसे वसिष्ठ या विश्वामित्र या कण्व या भारद्वाज का वंशज, चाहे उनसे पचास या सौ पीढ़ी के अनन्तर, अपने को वसिष्ठ या वासिष्ठ, विश्वामित्र या कौशिक, कण्व या काण्व, भरद्वाज या भारद्वाज कहे तो उसका वास्तविक परिचय या इतिहास ज्ञात नहीं हो सकेगा और वह इतिहास तिमिरावृत्त ही होता चला जायेगा। आज भी वसिष्ठ, भरद्वाज, पराशर, कश्यप गोत्रनामधारी शतशः सहस्रशः व्यक्ति (ब्राह्मण) मिलेंगे। स्पष्ट है, यदि हम केवल गोत्रनाम या जातिनाम लेंगे तो निश्चय ही उत्तरकाल मे भ्रम उत्पन्न होगा। कुछ पुराणो के प्राचीन पाठो मे यथा वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण तथा बृहदारण्यकोपनिषद् जैसे कुछ उपनिषदो मे पिता के साथ पुत्र का नाम उल्लिखित है, वहाँ इतिहासबोध मे सुविधा या सौकर्य रहता है, यथा बृहदारण्योकपनिषद् मे द्रष्टव्य है—नैध्रुविकाश्यप, शिल्पकाश्यप, हरितकाश्यप (१।६।४) इत्यादि विशिष्ट काश्यप ऋषियो का सम्यक् बोध होता है। इसी प्रकार जैमिनिपायनिषद् मे ऋष्यशृंगकाश्यप,

---

१. ऋ०, (२।४।९),

२ ऋ०, (३।२९।१५),

३. ऋ०, (६।२३।२०),

४ ऋ०, (७।३३।३),

५. ऋ०, (८।६।३),

मूल गोत्र प्रवर्तक ऋषि ये थे—मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। अन्यत्र भृगु को प्रधानता दी है। गोत्रप्रवर्तक ऋषि शतशः हुये, जिनका परिचय अन्यत्र लिखा जायेगा।

पुलुष प्राचीनयोग्य, सत्ययज्ञ पौलुषि इत्यादि नामों मे पितासहित ऋषिनाम है। पुराणों मे एतादृश निदर्शन द्रष्टव्य हैं—रोमहर्षक के षट् शिष्यों के नाम हैं—

आत्रेय: सुमतिर्धीमान् काश्यपोह्यकृतव्रण: ।
भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वासिष्ठो मित्रयुश्च य: ।
सावर्णि: सौमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायन: ॥
(वायु० पु० ६१।५५-५६)

गोत्रनाम से इतिहास मे भ्रान्ति के चार निदर्शन उदाहृत करके गोत्रभ्रान्ति प्रकरण को समाप्त करेंगे—(१) आगस्त्य: (२) पुलस्त्य (३) वसिष्ठ और (४) विश्वामित्र कौशिक।

अगस्त्य—प्रथम या आदिम अगस्त्य मैत्रावरुण अर्थात् मित्र और वरुण के पुत्र और वसिष्ठ के सहोदर भ्राता थे, इन्होंने ही नहुष को शाप दिया था, जिससे वह दससहस्रवर्ष अजगरयोनि मे पड़ा रहा।[1] एक अगस्त्य लोपामुद्रा के पति विदर्भराज के समय मे हुये, तृतीय अगस्त्य दाशरथि राम के समकालीन थे। अतः सभी अगस्त्य एक नहीं हो सकते। इनके समयों मे सहस्रों वर्षों का महदन्तर था। पाणिनि के सूत्र से स्पष्ट है कि अगस्त्य के वंशज भी अगस्त्य या अगस्ति कहलाते थे, जो कुछ 'अगस्त्य' पर लागू है, वही 'पुलस्त्य' पर लागू होता है। आदिम पुलस्त्य, अगस्त्य से भी प्राचीनतर ऋषि थे और स्वायम्भुव मनु, मरीचि आदि ब्रह्मा (स्वयम्भू) के दश मानसपुत्रों में से एक थे। स्पष्ट है वे उन आदिम सप्त ऋषियो मे से एक थे जिनमे पृथ्वी पर समस्त प्रजा उत्पन्न हुई।[2] कुबेर वैश्रवण और रावण के पितामह तथा विश्रवा के पिता पुलस्त्य आदिम पुलस्त्य नही हो सकते। दोनो पुलस्त्यों मे न्यून से न्यून बाईसमहस्रवर्षों का अन्तर था। वाईसमहस्रवर्ष की आयु प्राय असम्भव है और यदि सम्भव भी हो तो इतनी वृद्धायु मे कोई ऋषि सन्तान उत्पन्न नही करेगा। अत निश्चय दोनो पुलस्त्य भिन्न-भिन्न थे। सत्य यह है कि पुलस्त्य के वंशज भी 'पुलस्त्य' या पुलस्ति कहे जाते थे।

वसिष्ठ—इसी प्रकार ब्रह्मा के मानसपुत्र वसिष्ठ और मैत्रावरुणि वसिष्ठ एक ही नही थे, यह तो पुराणो मे ही स्पष्ट लिखा है कि वरुण के यज्ञ मे भृगु,

---

१. दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि। (उद्योगपर्व १७।१५)

२. महर्षय: सप्तपूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ (गीता १०।६)

वसिष्ठादि सप्तर्षियों का द्वितीय जन्म हुआ था।[१] इसी यज्ञ में वसिष्ठ के साथ अगस्त्य का जन्म हुआ।[२] इक्ष्वाकुवंशियों का पुरोहित क्रम से क्रम वैवस्वत मनु से दाशरथि राम तक मैत्रावरुणि वसिष्ठ को कहा गया है। परन्तु यह एक वसिष्ठ नहीं था, स्पष्ट है वसिष्ठ के वंशज भी वसिष्ठ ही कहे जाते थे जैसा कि वेदमन्त्र से भी सिद्ध होता है—

"प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः।" (ऋ० ७।३३।३)

विश्वामित्र—इसी प्रकार, वसिष्ठ के समान विश्वामित्र के वंशज विश्वामित्र या 'कौशिक' कहे जाते थे। इस गोत्रनाम के कारण, सम्भवतः यास्क भी भ्रम मे पड़ गये और आदिम विश्वामित्र और सुदास पांचाल पुरोहित विश्वामित्र को ही माना,[३] यद्यपि उन्होने ऐसा स्पष्ट नही लिखा, परन्तु प्रतीति ऐसी ही होती है। परन्तु इस भ्रांति का मूलबीज वेदमंत्र मे ही है जैसा कि हम पहले ही सकेत कर चुके हैं।[४] यह भ्रांति गोत्रनाम विश्वामित्र और कौशिक से होती है। रामायण मे वर्णित प्रसिद्ध कौशिक या विश्वामित्र के सम्बन्ध में भी यही भ्रान्ति है।[५] इन सभी भ्रान्तियो का विस्तृत निराकरण "सप्तर्षिवंश ग्रन्थ" मे ही होगा। यहाँ पर इन सबका संक्षिप्त उल्लेख इसलिए किया गया है कि पाठको को ज्ञात हो कि इतिहासविकृति के प्राचीन कारण कौन-कौन से हैं'

---

१. भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयम्भुवा।
वरुणस्य क्रतौ जात. पावकादिति नः श्रुतम्॥ (आदिपर्व ५।८)

२. स्थले वसिष्ठस्तु मुनिसंभूतः ऋषिसत्तम.।
कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतोजले मत्स्यो महाद्युतिः॥ (बृहद्देवता ५।१५१)

३. "विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहित आस," (निरुक्त २।७।२४)

४. प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः (ऋ० ३।३३।५)
द्रष्टव्य है कि जमदग्नि के वंशज 'जमदग्नयः' कहे जाते थे—
'सूर्यक्षयादिहाहृत्य ददुस्ते जमदग्नयः।' (बृहद्दे० ४।११४)
स्पष्ट है—जमदग्नि के वंशज भी जमदग्नयः या जमदग्नि कहे जाते थे।

५. शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम्। (रामा० ।१८।४०)
कुशिकस्य सुनुः और 'कौशिक' शब्द भ्रान्तिजनक है। सुनु शब्द भी वंशज के अर्थ में है। वेद मे विश्वामित्र के वंशजो को भी 'विश्वामित्र' ही कहा जाता था।

मनुष्य के नक्षत्रनाम

वेदमन्त्रों के समान पुराणों मे मनुष्यों और नक्षत्रों के नाम समान हैं, उदाहरणार्थ ध्रुव, आदित्य सूर्य (विवस्वान्), सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, रोहिणी आदि २७ सोमपत्नियाँ, सप्तर्षि, इसी प्रकार चान्द्र तिथियों के नाम कुहू, सिनीवाली इत्यादि, भूतेश (रुद्र), कार्तिकेय (कृत्तिका देवियाँ, नक्षत्र), अगस्त्य, कश्यप इत्यादि शतशः नाम हैं जो भ्रमों की सृष्टि करते हैं। वेदों और पुराणों में इस नामसाम्य के आधार पर दिव्य या पार्थिव घटनाओं का ऐतिह्यदोहन असंभव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर अवश्य है। इस भ्रान्ति के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

वैदिकग्रन्थों में ध्रुव और ध्रुवग्रह (सोमपात्र) का बहुधा उल्लेख है ध्रुव-वंशवर्णन के प्रसंग में श्रीमद्भागवतपुराण मे यह वर्णन द्रष्टव्य है[1]—

प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः।
उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ॥
स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्यासूत षडात्मजान्।
पुष्पार्णं तिग्मकेतं च इषमूर्जं वसुं जयम्॥
पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः।
प्रातर्मध्यदिनं सायमिति ह्यासन् प्रभासुताः।
प्रदोषो निशीथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः।
व्युष्टः सुतः पुष्करिण्यां सर्वतेजमादधे॥
(भागवत ४।१३।११-१४)

उपर्युक्त वर्णन में 'ध्रुव' निश्चय ही स्वायम्भुव मनुपुत्र उत्तानपाद का पुत्र था, शेष के विषय में यह निश्चय करना कठिन है कि भ्रमि, वत्सर आदि वास्तव मे मानव (या मानवी) थे या द्युलोक या अन्तरिक्ष के नक्षत्रादि। 'भ्रमि' के विषय में पं० जगन्नाथ भारद्वाज का व्याख्यान है' "पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, इसीलिये पृथ्वी को 'भ्रमि' कहा गया है।"[2]

खगोलविज्ञान मे ध्रुव, भ्रमि, शिशुमार, स्वर्वीथि आदि शब्द भले ही आकाशीय नक्षत्रादि हों, परन्तु इतिहास मे ध्रुवादि निश्चय ही ऐतिहासिक पुरुष थे। परन्तु मानव इतिहास और ज्योतिष के नाम समान हो जाने पर भ्रान्ति

---

१. द्रष्टव्य—भारतीय खगोलविज्ञान पृ० ७७ पं जगन्नाथ भारद्वाज

२. भारतीयखगोलीयविज्ञान (पृ० ७४) (२) वनपर्व (२३०।८-११), दक्ष की अट्ठाइस कन्याओं के नाम पर २८ नक्षत्रों (रोहिणी आदि) के नाम पड़े, वे सभी सोम (अत्रिपुत्र) की पत्नियाँ थीं—

के लिए पूर्ण अवसर है और इससे यह समझना कठिन है कि यह ज्योतिष का वर्णन है या मानव इतिहास का। इसके कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य है...

(१) अभिजित् स्पर्धमाना तु रोहिण्याः कन्यसी स्वसा।
इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी तपस्तप्तुं वनं गता।
तत्र मूढाऽस्मि भद्रं ते नक्षत्रं गगनात् च्युतम्।
कालं त्विम पर स्कन्द ब्रह्मणा सह चिन्तय।
धनिष्ठादिस्तदा कालो ब्रह्मणा परिकल्पितः।
रोहिणी ह्यभवत् पूर्वमेवं संख्या समाभवत्।
एवमुक्ते तु शक्रेण कृत्तिकास्त्रिदिवं गता।
नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वह्निदैवतम्।।[1]

इन श्लोको के अर्थ के सम्बन्ध मे श्री शंकर बालकृष्णादीक्षित ने लिखा है— "ये श्लोक स्कन्दाख्यान के हैं। सब वाक्यों का भावार्थ समझ मे नहीं आता। अभिजित्, धनिष्ठा, रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्रों से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न-भिन्न प्रचलित कथाये यहाँ गुँथी हुई-सी दिखाई देती हैं। इससे इनके पारस्परिक सम्बन्ध का ठीक पता नही चलता।"[2] (परन्तु इतना स्पष्ट है कि सोम और उसकी रोहिणी आदि पत्नियाँ ऐतिहासिक व्यक्ति थे और आकाशी पिण्ड भी हैं)।

(२) वेदो और पुराणो मे अदिति के आठ या बारह पुत्रों की उत्पत्ति की कथा है। इसमें मार्तण्ड (सूर्य या विवस्वान्) के जन्म का विशेष उल्लेख है।[3] इस कथा मे भी मानव इतिहास और ज्योतिष का घोरसंमिश्रण है। वायु-पुराणादि मे इसका ऐतिहासिक घटना (मानवइतिहास) के रूप में ही वर्णन है।[4]

(३) रुद्र (महादेव) के द्वारा तारामृग (मृगशीर्ष या यज्ञियमृग) के पीछे दौड़ने की घटना का इस प्रकार उल्लेख इतिहासपुराणों मे मिलता है...

---

१. अष्टाविंशतिर्याः कन्या दक्षः सोमाय ता ददौ।
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्तिताः।। (ब्रह्माण्ड० ३।२।५३)

२. भारतीय ज्योतिष—(पृ० १५६),

३. अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि।
देवाँ उपप्रैत्सप्तभिः परा मार्तण्डमास्यत्।
सप्तभिः पुत्रै रदितिरुपप्रैत्पूर्व्यं युगम्।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्तण्डमाभरत्।। ऋ० १०।७२।५-६)

४. अष्टानां देवमुख्यानामिन्द्रादीनां महात्मनाम्।। (वायु० ३४।९२)

अन्वधावन्मृगं रामो रुद्रस्तारामृगं यथा ।[1]

शुक्रग्रह को भृगुपुत्र कहा जाता है—

भृगुसुनुधरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ ।[2]

तथ्य यह है कि देवयुग मे, आज से लगभग १५ या १४ सहस्र वर्ष पूर्व जब दैत्यदानव (असुर) भारतवर्ष मे देवों के साथ ही रहते थे, उसी समय ऋषि-मुनियों के नाम पर ग्रहो, ताराओं और नक्षत्रों के नाम रखे गये। यथा कश्यप-पुत्र विवस्वान् के नाम पर सूर्य की आदित्य या विवस्वान् संज्ञा प्रथित हुई, भृगुपुत्र शुक्र के नाम पर शुक्रग्रह का नाम रखा गया। पुन: ग्रहों के नाम पर सात वारों के नाम रखे गये।

यह नामकरण, उसी समय हुआ, जैसा कि हमने ऊपर बताया है, जब असुर और देव भारतवर्ष मे रहते थे, तदनन्तर ही बलिकाल मे असुरों ने पाताल (योरोप, अफ्रीका, अमेरिका) मे पलायन कर उपनिवेश बसाये।

इस कालनिर्धारण का प्रमाण है, इन संज्ञाओ की असुरों और देवो मे साम्यता। अत्रिपुत्र सोम या चन्द्रमा के नाम से पृथ्वी के उपग्रह को चन्द्र कहा गया, अंग्रेजी का मून (Moon) शब्द चन्द्रमा या सोम शब्द का ही अपभ्रंश है, इसी प्रकार सोमपुत्र बुध के नाम पर अंग्रेजी का वेडनेसडे (Wednesday) आज तक प्रसिद्ध है। 'वेडन' शब्द 'बुध' शब्द का विकार है, इसको प्रत्येक मनुष्य मानेगा।

अपने मत की पुष्टि में हम दो-तीन और उदाहरण देकर नक्षत्रनामसाम्य प्रकरण को समाप्त करेंगे।

ज्योतिष में लघु और गुरु सप्तर्षि विख्यात हैं। अत्यन्त प्राचीनकाल मे भारत में सप्तर्षियों को 'ऋक्ष' कहते थे।

सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्ष इत्याचक्षते ।[3]
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तम् ।[4]

गुरु सप्तर्षि को यूरोप में ग्रेट बीयर (Great Bear) कहते हैं। अत:

१. वनपर्व (२७८।२०)
२. शल्यपर्व (११।१८)
३. श० ब्रा० (२।१।२।४)
४. ऋ० (१।२४।१०),

सप्तर्षियों का भल्ल या बीयर (भालू) नामकरण उस समय का संकेत करता है, जब असुर और देव साथ-साथ भारत में रहते थे।

यूरोपियन ज्योतिष में नौविस (Novis) नक्षत्र का उल्लेख वेद में 'हिरण्यम-यीनौ के नाम से उल्लेख है। 'हिरण्यमयी नौश्चरद् हिरण्यबन्धना दिवि' अथर्व, (५।४।४)।

कालकञ्ज दैत्यों के नाम ही दो दिव्य श्वानो का वेद में उल्लेख है, जिनको यूरोपियन Canis Major और Canis Minor कहते हैं। यहाँ 'कैनिस' नाम कालकञ्ज का ही विकार है—

> शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना हविषा विधेम ।
> ये त्रय: कालकञ्जा दिवि देवा इव श्रिता: ।[1]
> यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।[2]

इसी प्रकार यूरोपियन ज्योतिष का 'कैसोपिया' नक्षत्र प्रसिद्ध प्रजापति ऋषि कश्यप के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्वाति नक्षत्र के निकट ऊपर यूरोपियन ज्योतिष में 'बूटेश' नक्षत्र है जो 'भूतेश' (रुद्र) का अपभ्रंश है।[3]

ये सभी प्रमाण हमारे इस मत को पुष्ट करते हैं कि देवासुरयुग मे नक्षत्रों का नामकरण उसी समय हुआ जब देवासुरगण भारत में ही साथ-साथ रहते थे।

पशुपक्षिनाम मे मानवनामसादृश्य-भ्रमजनक

वेदपुराणो मे कुहू, सिनीवाली आदि देवपत्नियाँ भी हैं[4] और ज्योतिष मे वे अमावस्या की संज्ञा है।

स्पष्ट है उपर्युक्त नक्षत्रनामकरण मानव इतिहास मे भ्रान्तिजनक है।

वेदों और इतिहासपुराणों में अनेक पशुपक्षियों के नामों के साथ ऐतिहासिक पुरुषों के नाम मे सादृश्य है यथा :

---

१. कालकञ्जा वै नामासुरा आसन्'''तौ दिव्यौ श्वानावभवताम् (तै० ब्रा० १।१।२);

२. ऋ० (१०।१४।११)

३. द्रष्टव्य – भा० ख० वि० (पृ० ४१)

४. सिनीवालीकुहूरिति देवपत्न्याविति नैरुक्ता अमावस्येति याज्ञिका: ।" (नि०११।३१);

पशुनाम—मत्स्य, वराह, कश्यप, महिष, खर, आखु (आखुराज), हिरण (हिरण्य), मण्डूक, नाग, अश्व, अश्वतर, श्वेताश्वर इत्यादि ।

पक्षिनाम—शुक, भरद्वाज, तित्तिरि, कपिञ्जल, कपोत, हंस इत्यादि । वरुण का एक पुत्र मत्स्य (महामत्स्य)[1] था—

उपरिचरवसु के एक पुत्र का नाम मत्स्य था, जिनसे जनपद का नाम 'मत्स्य' पड़ा । विराट मत्स्यों का राजा था जो अभिमन्यु का श्वसुर और उत्तरा का पिता था ।

'वराह' नाम का एक दैत्य, जो हिरण्यकशिपु का भ्राता, अपरनाम हिरण्याक्ष था । कश्यप कच्छप (कछुआ) को भी कहते हैं । प्रसिद्ध प्रजापति ऋषि का नाम भी कश्यप ही था, महिष एक दैत्य हुआ अथवा अनेक असुरो का यह प्रसिद्ध नाम था, जिसके नाम से माहिष्मती नगरी और महिषपुर (मैसूर) प्रथित हुये, एक महिषासुर का वध दुर्गा ने किया था, जिसका दुर्गासप्तशती मे वर्णन है । एक महिष रामायणकाल मे हुआ जो मयवंशी था, इसका वध वालि ने किया था । रामायण में खरराक्षस का विशेष आख्यान है । महिष और खर पशुओं (भैंसा और गधा) के नाम भी हैं । उत्तरकाल मे अज्ञानीजन उपर्युक्त असुरों को पशु ही समझने की भ्रान्ति में पड़ गये । प्राचीन मन्दिरो मे महिषासुर की मूर्तियों को भैंसे के रूप में ही बनाया गया है । यही बात खरादि के सम्बन्ध मे समझनी चाहिये ।

वेदमन्त्रों में आखुओं के एक राजा चित्र का उल्लेख है ।[2] महाभारत वनपर्व मे मण्डूकों के राजा का वर्णन है । शौनकऋषिवंश मे एक ऋषि का नाम मण्डूक था, जिसने माण्डूक्योपनिषद् रचा । ऋषभ नाम प्रसिद्ध है जो अनेक मनुष्यों ने धारण किया । सूर्य (विवस्वान्) या नक्षत्रों को 'अश्व' या सर्प या 'नाग' भी कहते थे । अनेक राजाओं के नाम अश्वान्त थे...यथा हर्यश्व, हरिदश्व, भार्म्यश्व, हिरण्याश्व, युवनाश्व इत्यादि । इस प्रकार के नामों से मनुष्य को घोड़ा समझने की भूल हो सकती है । एक ऋषि का नाम श्वेताश्वतर था, सस्कृत मे अश्वतर खच्चर को कहते हैं । एक या अनेक राजाओं का नाम हस्ती था । हस्ती हाथी को कहा जाता है । हस्ती के नाम से हस्तिनापुर प्रथित हुआ ।

---

१. कुम्भेत्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः (बृहद्दे० ५।१५२)

२. आखुराजोऽभिमानाच्च प्रहर्षितमनाः स्वयम् ।
संस्तुतो देववत् चित्र ऋषये तु गवां ददौ । (बृहद्देवता ६।६०)

३. आसीत् दीर्घतपाः कपोतो नाम नैऋतः । (बृह० ८।६७)

महाभारत में हस्तिनापुर को 'नागपुर' भी कहा गया है। हस्ती का पर्याय नाग है, इसलिये पर्यायनाम का प्रयोग किया गया। इन पर्यायनामों से भी भ्रान्ति होती है। इसी प्रकार नकुल नेवले को कहते हैं परन्तु एक पाण्डव का नाम नकुल था। इस प्रकार बभ्रु (नकुल) नाम के अनेक व्यक्ति हुये थे। इसी प्रकार अनेक पुरुषों के नाम पक्षिनामसदृश थे, यथा—शुक, कपोत, भरद्वाज, हंस, तित्तिरि, कपिञ्जल, श्येन इत्यादि।

वैयासकि पाराशर्यपुत्र का नाम शुक प्रसिद्ध था। अनेककथाओं में वैयासकि शुक को तोतारूप मे चित्रित किया है। एक ऋषि का नाम कपोत था। वेद में कपिञ्जल आदि भी ऋषियों के तुल्य प्रतीत होते हैं।[1] कपिञ्जल तीतर को कहते हैं। व्यासशिष्य प्रसिद्ध वैदिक ऋषि वैशम्पायन के एक प्रधान शिष्य तित्तिरि थे। इससे विष्णुपुराण[2] में एक भ्रान्तिजनक कथा घड ली। भरद्वाज एकपक्षी का नाम होता है, जिसे हिन्दी मे भारदूल कहते हैं।

इसी प्रकार अनेक अन्य पशुपक्षियो के नामवाले पुरुषों के नाम विशाल संस्कृत वाङ्मय में मृग्य है, जिससे भ्रान्तिनिराकरण में सहायता हो। यहाँ थोड़े से उदाहरण ही दिये गये हैं।

पर्वतनदीस्थाननामसाम्य से भ्रम

अनेक पर्वतो, नदियो, सरोवरो, तीर्थस्थानादि के नाम अनेक पुरुषो या स्त्रियों के नाम पर रखे गये और सभी जनपदों के नाम—यथा अंग, वंग, कलिंग, विदर्भ, अश्मक, अवन्ति, केरल, चोल, आन्ध्र, पुलिन्दादि सभी राजपुरुषो के नाम पर रखे गये, अनेक नगरो या राजधानियो के नाम भी राजाओं (शासकों) के नाम पर रखे गये, यथा श्रावस्त से श्रावस्ती, कुशाम्ब से कौशाम्बी, काशि से काशी, मधु से मथुरा इत्यादि। इन सभी का राजवंशों के प्रकरण में उल्लेख होगा। स्थाननामों में सर्वाधिक भ्रम नदीनामसाम्य और पर्वतनामसाम्य से होता है—यथा हिमालय (पर्वत) जो, शिव के श्वसुर, पार्वती के पिता और नारद के मातुलेय (मामा के पुत्र) थे। पुराणों और कालिदास ने हिमालय पर्वतराज का ऐसा भ्रामक वर्णन किया है कि सामान्य पाठक ही नहीं अत्यन्त विज्ञजन भी 'पर्वतराज' को पहाड ही समझते हैं—

---

१. स्तुतिं तु पुनरेवेच्छन्निन्द्रो भूत्वा कपिञ्जलः। (वही ४।९३)

२. यजूंष्यथ विसृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विज।
जगृहुस्तित्तिरा भूत्वा तैत्तिरीयास्तु ते ततः॥ (वि० पु० ३।५।१२)

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।"[१]

वास्तव में यह 'पर्वत' पत्थर का पहाड़ नहीं, दक्ष प्रजापति का वंशज हिमालयप्रदेश का 'राजा' था। शतपथब्राह्मण (२।४।४।१-६) में एक राजा—दक्षपार्वति का उल्लेख है, यह दक्ष, इसी पर्वतराज का पुत्र था। पर्वतप्रदेश का राजा होने से राजा का नाम भी 'पर्वत' पड गया और उत्तरयुगों मे यह भ्रम हो गया कि पर्वतसंज्ञकपुरुष पहाड ही था। राजा पर्वत की पुत्री होने से भवानी (भवपत्नी) का नाम पार्वती (उमा) प्रसिद्ध हुआ। यही पार्वतीपिता पर्वतऋषि होकर नारद के साथ भ्रमण करता था, यथा षोडशराजोपाख्यान (द्रोणपर्व महाभारत) मे इन्हीं पर्वतनारद का उल्लेख है। ऐतरेयब्राह्मण के वर्णन के अनुसार पर्वतनारद ऋषिद्वयी ने हरिश्चन्द्र[२] को उपदेश दिया, इन्हीं दोनों ऋषियों ने आम्बष्ट्य राजा और औग्रसेनि युधाश्रोष्टि[३] का यज्ञ कराया।

नदियो के नाम यथा नर्मदा, गगा (भगीरथी), यमुना, कौशिकी, सरस्वती इत्यादि अनेक नदियों के नाम राजकन्याओं या ऋषिकन्याओ के नाम पर प्रथित हुये। यथा दध्यङ् आथर्वण (दधीचि) की पत्नी[४] का नाम सरस्वती था जिसके नाम पर संभवतः नदी का नाम पडा। सरस्वती के पुत्र होने के कारण नवम व्यास अपान्तरतमा 'सारस्वत' कहलाये, जो शिशु आगिरस भी कहलाते थे, वे ही मारस्वतवेद के उद्धारक या शैशवसामसंहिता के भी प्रवर्तक थे।[५]

वैवस्वत यम की भागनी यमी या यमुना थी, जिससे यमुना नदी का नाम पड़ा। विश्वामित्र की भगिनी कौशिकी के नाम से कौशिकी नदी का नाम पड़ा। मान्धाताऐक्ष्वाकपुत्र पुरुकुत्स का नाम तपस्या करते हुये पड़ा, पर्वतकन्या या नागकन्या नर्मदा से विवाह किया, इसलिए कुत्सित (निन्दित) कर्म करने के कारण राजा का नाम पुरुकुत्स हुआ।[६] नर्मदा के नाम से नदी का नाम पड़ा। मूर्खजन इन नामसाम्यों से भ्रम मे पड जाते हैं।

---

१. कुमारसम्भव (१।१),
२. ऐ० ब्रा० (७।१३).
३. ऐ० ब्रा० (८।२१),
४. तथाङ्गिरा रागपरीतचेत: सरस्वती ब्रह्मसुत. सिषेवे।
सारस्वतो यत्र सुतोऽस्य जज्ञे नष्टस्यवेदस्य पुनः प्रवक्ता ।। (बु० च०)
५. तथा द्रष्टव्य हर्षचरित मे बाणवंशवर्णन।
६. पुरुकुत्सः कुत्सित कर्म तपस्यन्नपि मेकलकन्यामकरोत्
(हर्षचरित ३ उच्छ्वास)।

नदीनामों में सर्वप्रथम भ्रम गंगा या भागीरथी के नाम से होता है, जो कौरव राज शान्तनु की पत्नी और भीष्म की माता थी, इसको महाभारत में ही इस प्रकार चित्रित किया है, जैसे की वह जलमयी नदी हो,[1] वास्तव में वह कोई राजकन्या थी, जिसका नाम गंगा था, जिससे भीष्म गांगेय कहलाते थे। इसी का नाम दृषद्वती या माधवी भी था।

पुराणो मे निम्नलिखित विचित्र या अद्‌भुत वर्णनों से इतिहास मे भ्रम या बाधा या अश्रद्धा (अविश्वास) होती है, अतः इनका समाधान आवश्यक है—

(१) योनिसमस्या। (६) आयुसमस्या
(२) पंचजनसमस्या। (७) मन्वन्तर-युगसमस्या-दिव्यमानुषयुग।
(३) वरदानशापसमस्या। (८) राज्यकालसमस्या।
(४) भविष्यकथनादिसमस्या (९) संवत्‌समस्या।
(५) अद्‌भुत या असंभव घटना।

अब इन समस्याओ का संक्षेप मे उल्लेख कर समाधान करेंगे।

योनिसमस्या

प्राचीन भारतीय इतिहास की एक विकट समस्या है कि नाग, किंनर, वानर, सुपर्ण, ऋक्ष, कपि, प्लवगम, किम्पुरुष गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव, देव जैसी जातियों को मनुष्येतर समझा जाता है। परन्तु, अब प्रायः सभी एकमत हैं कि पुराणादि मे वर्णित नागादि सभी मनुष्य ही थे और मनुष्यों के समान ग्रामो एवं नगरो मे बस्तियाँ बसाकर और भवनादि बनाकर रहते थे।

नागजाति निश्चय ही मनुष्यतुल्य प्राणी थी, वे साँप नहीं थे, इसका प्रमाण है अनेक नागकन्याओ का विवाह अनेक राजर्षियो एवं ऋषियों से हुआ। कुछ प्रसिद्ध उदाहरण हैं, नागकन्या नर्मदा का ऐक्ष्वाक पुरुकुत्स से, रामपुत्र कुश का विवाह नागकन्या कुमुद्वती से और वासुकिनाग की भगिनी का विवाह जरत्कारु ऋषि से हुआ। इसी प्रकार के अनेक तथ्य इतिहासपुराणों में उल्लिखित हैं। जनमेजय का नागयज्ञ इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी, जिसमें सहस्रों नागपुरुषो का वध हुआ। श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल में यमुनातट पर प्रसिद्ध कालियनाग का दमन किया। नागों राजाओं ने अनेक नगर बसाये। गुप्तकाल

---

१. अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात् पितामहम् (महाभारत १।९६।४)
महाभिषं तु त दृष्ट्वा नदी··। (१।९६।९ वही)
[illegible] महानदि। (१।९८।१२, वही)

तक नागों का इतिहास ज्ञात होता है। महाभारतयुग में गंगातट पर नागों की बस्तियाँ थीं, जहाँ वे घर बनाकर रहते थे—

> बहूनि नागवेश्मानि गंगायास्तीर उत्तरे।
> यस्य वासः कुरुक्षेत्रे खाण्डवे चाभवत् पुरा।।
> कुरुक्षेत्रं च वसतां नदीमिक्षुमतीमनु।
> जघन्यजस्तक्षकस्य श्रुतसेनेति विश्रुतः।।[1]

नाग इन्द्रप्रस्थ (खाण्डवप्रस्थ=दिल्ली) मे यज्ञ किया करते थे—'एते वै सर्पाणां राजानश्च राजपुत्राश्च खाण्डवप्रस्थे सत्रमासत पुरुषरूपेण विषकामाः।"[2] आज भी दिल्ली के निकट 'नागलोई' नाम का ग्राम है, जो 'नागलोक' शब्द का विकार है, इसी 'नागलोक' मे दुर्योधन ने भीम को विष के लड्डू खिलाये थे, जहाँ नागों ने भीम पर आक्रमण किया, परन्तु भीम बच गये।[3] आज भी भारत मे नागजाति प्रसिद्ध है। बंगाल मे पुरुषो के नागनामान्तगोत्र है।

रामायण महाभारत मे वर्णित वानर, ऋक्ष, कपि, हरि प्लवगम, किन्नर, किंपुरुष, यक्षराक्षस, गन्धर्वादि एव सुपर्ण (गरुड-जटायु आदि) भी मनुष्यजाति की विभिन्न नस्लें प्रतीत होती हैं। यह सम्भव है कि इन जातियो मे कुछ जातियाँ 'कामरूप' हो अर्थात् इच्छानुसार रूप बना सकती थी, यथा नागो के विषय मे कहा गया है कि वे कामरूप अर्थात् इच्छानुसार रूप बना सकते थे। अथवा वानरो का पूरा शरीर तो मनुष्यतुल्य ही था, केवल पूँछ उनमे अतिरिक्त विशेषता थी, क्योकि इतिहासपुराणो मे वानरो की पूँछ का इस प्रकार उल्लेख है कि उस पर सहसा अविश्वास नही किया जा सकता। अभी हाल मे, १२ मई ८२ के नवभारत टाइम्स मे 'क्या पूँछ वाले मानव का अस्तित्व है' लेख श्री सुरेन्द्र श्रीवास्तव का प्रकाशित हुआ है, जिसमें बताया गया है कि मलाया, लाओस इत्यादि हिन्दचीन के देशो मे पूँछवाले मनुष्यो की चर्चा बहुधा सुनी जाती है, तिब्बत, लका आदि मे भी ऐसे मनुष्यो का अस्तित्व देखने सुनने मे आया है। प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने लिखा है—"यहाँ के निवासियों की पूँछे हैं कुत्तों जैसी, पर उन पर बाल बिल्कुल नही हैं।" टर्नर नामक यात्री ने तिब्बत में पूँछवाले जंगली मनुष्य देखे थे, जिनकी पूँछ इतनी सख्त थी कि उन्हे भूमि

---

१. महा (१।३।१३६, १४१),
२. बौधायनश्रौतसूत्र (१७।१८),
३. आक्रामन्नागभवने तदा नागकुमारकान्।
पोथयन्नास तान् सर्वान् केचिद्भीता प्रदुद्रुवुः।। महा० १।१२७।५५, ५९

पर बैठने से पहिले भड्डा खोदना पड़ता था। महाभारत में वर्णित है कि भीम ने हिमालय प्रदेश (तिब्बत) में पूँछ बिछाये हुये हनुमान् के दर्शन किये थे—

जृम्भमाणः सुविपुलं शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम् ।
आस्फोटयच्च लांगूलमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥[1]

वानरों का पीला रंग होने के कारण हरि और कपि कहा जाता था, वे तैरना विशेषरूप से जानते थे, अतः उन्हें 'प्लवंगम' कहा जाता था। ये मनुष्य के तुल्य ही थे अतः वानर, किंनर और किंपुरुष कहा जाता था। इनमें केवल पूँछ की विशेषता थी, शेष सभी प्रवृत्तियाँ भाषा बोलना, विवाह करना, घरों में रहना इत्यादि सब कुछ मनुष्यो की भाँति था, अतः रामायणकाल में पूंछ वाले मानव (वानर) पृथ्वी पर बहुसख्या में, विशेषतः नगर बसाकर पर्वतों एवं जंगलो मे रहते थे।[2] ऋक्ष भी वानरों का एक कुल था। रामायण मे ऋक्षराज जाम्बवान् को बहुधा वानर भी कहा गया है—

... .प्लवगर्षभः ॥

जाम्बवानुत्तम वाक्य प्रोवाचेदं ततोऽङ्गदम् ॥
मंचोदयामास हरिप्रवीरो हरिप्रवीर हनुमन्तमेव ॥
तत. कपीनामृषभेण चोदितः प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपि ।[3]

उपर्युक्त श्लोकों मे प्लवगर्षभः हरिप्रवीर, कपिऋषभ जाम्बवान् के विशेषण हैं अतः ऋक्षों और वानरों मे कोई विशेष अन्तर नहीं था, वे भी मनुष्यतुल्य ही थे।

यही सम्भव है कि देवयुगीन सुपर्णजाति भी पक्षयुक्त मनुष्य ही हो। सुमेर आदि अन्य प्राचीनदेशों की पौराणिक कथाओं मे पंखयुक्त देवों या मनुष्यों की कथायें वर्णित हैं, अतः सम्भावना है कि सुपर्ण पक्षयुक्त मानव थे, देवयुग में गरुड सुपर्णों का राजा था, शतपथब्राह्मण मे तार्क्ष्य वैपश्यत (गरुड़ के वंशज विपश्यत का पुत्र) को सुपर्णों का राजा कहा गया है।[4] रामयुग में इस जाति के

---

१. महाभारत (३।१४६।७०)

२. हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता ।
बभूवनगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे ॥ (रामा० ४।२६।४१)

३. रामा० (४।६५, ३३, ३५), वही (४।६६।३८),

४. श० ब्रा० (१३।४।३।१३)

"तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजेत्याह तस्य वयांसि विशः ।"
"तानुपदिशति पुराणं···वेदः ।" (श० ब्रा०)

इक्का-दुक्का निदर्शनमात्र प्रतिनिधि अवशिष्ट रह गये थे—जटायु और सम्पाति। सुपर्णों के उड़ने के अतिरिक्त शेषकार्य मनुष्यतुल्य ही थे—यथा मानुषी-वाक् में बोलना।[1]

यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव, नाग, गन्धर्व आदि सभी मनुष्य ही थे, इसी प्रकार इन्द्रादिदेव भी पृथ्वीवासी मनुष्य थे, यह सब इतिहास, विस्तार से अग्रिम अध्यायों में, उनका कालनिर्णय करते समय लिखा ही जायेगा।

उत्तरकाल में इन्हीं यक्षादि की संज्ञा किरात, निषाद आदि हुई। इनमें किरात वर्तमान मंगोलनस्ल के थे, निषाद हब्शी, पिग्मी जैसी जाति थी। निषादों के साथ यक्ष राक्षस अफ्रीका एवं पूर्वी द्वीपसमूह तथा लंका, अण्डमान निकोबार आदि देशों मे रहते थे।

यक्षराक्षसों की उत्पत्ति के साथ उनके मूलनिवासस्थान का निर्णय करना भी कठिन समस्या है।

रामायण मे राक्षसों के द्वीप या देश का नाम कही नहीं मिलता, केवल द्वीप की राजधानी लका का बारम्बार उल्लेख है।[2] रामायण में सुन्दरकाण्ड के नामकरण का यह रहस्य प्रतीत होता है कि द्वीप का नाम 'सुन्दद्वीप' था क्योंकि रावण से पूर्व राक्षसेन्द्र 'सुन्द' उस द्वीप का अधिपति था। प्राचीन पाठों में काण्ड का नाम 'सुन्दकाण्ड' होना चाहिए, क्योंकि प्रायः शेषकाण्डों के नाम भौगोलिक स्थानों के नाम पर हैं, सुन्दरता से सुन्दरकाण्ड का कोई सम्बन्ध नहीं। उत्तरकाल में सुन्दद्वीप की विस्मृति होने से इस काण्ड को सुन्दरकाण्ड कहने लगे। लका और सिंहल का पार्थक्य हिन्दी कवि जायसी तक को ज्ञात था, अतः सिंहल और लंका पृथक्-पृथक् द्वीप थे। ऐसी सम्भावना है, लंकानगरी सम्भवतः पूर्वी द्वीपसमूह में कोई मे द्वीप थी, क्योकि हनुमान् का लका की ओर प्रयाण महेन्द्र पर्वत[3] (उडीसा) से प्रारम्भ हुआ था, इधर से पूर्वी द्वीपसमूह निकट है, न कि सिंहलद्वीप। यद्यपि सिंहलद्वीप लंका भी हो सकती है।

---

१. रामा० (३।६७)॥

२. अध्यास्ते नगरीं लंकां रावणो नाम राक्षसः।
इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने।
तस्मिल्लंका पुरीरम्या निर्मिता विश्वकर्मणा॥ (रा० ४,५८।१९,२०)

३. ततस्तु मारुतप्रख्यः स हरिर्मारुतात्मजः।
आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः। (रामा० ४।६७।३९)

अगस्त्य की स्मृति भी पूर्वी द्वीपसमूह में विद्यमान है जहाँ 'बटुगुरु' के नाम से उनकी पूजा होती है। राम से पूर्व अगस्त्य और पौलस्त्य ब्राह्मणों ने अनेक पूर्वी द्वीपसमूहों की राजा तृणबिन्दु के साथ यात्रा की थी। अगस्त्य द्वारा समुद्र को पीने का तात्पर्य यही है कि उन्होंने दक्षिणी समुद्र (हिन्दमहासागर) की दूर-दूर यात्रायें की थीं, और असुरसंहार में देवों की सहायता की।[1] अगस्त्य ने अपने दक्षिणाभियान में यक्षराक्षसों को सुसंस्कृत किया। पुलस्त्य ने यक्ष-राक्षसो से वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किये।[2] पुलस्त्य के वंश में वैश्रवण कुबेर यक्षराज और राक्षसराज रावणादि उत्पन्न हुये।

पंचजन या दशजन

इस समस्या का पूर्व पृष्ठ ५५ पर उल्लेख कर चुके हैं, इन जातियों का अधिक विस्तृत वर्णन आगामी अध्यायों में करेंगे।

वरदान-शाप समस्या

इतिहासपुराणो मे वरदानो और शापों की शततः घटनायें उल्लिखित हैं, जिन सबकी सत्यता पर विश्वास होना कठिन है। वरदानों और शापों की समस्त घटनाओं का उल्लेख न तो यहाँ पर सम्भव है और न हमारा यह उद्देश्य है। हमारा उद्देश्य केवल इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करना है।

वरदान का मुख्य या मूल अर्थ था कि प्रसन्न होकर श्रेष्ठ वस्तु का दान देना, जैसे राजा दशरथ ने देवासुरसग्राम में कैकयी की सहायता से प्रसन्न होकर दो वर दिये।[3] वरदान की यह घटना सत्य है। परन्तु ब्रह्मा द्वारा रावणादि को अवध्यतादि[4] के वरदान अथवा देवों द्वारा हनुमान् को वरदान[5]

---

१. समुद्रं स समासाद्य वारुणिर्भगवानृषिः।
समुद्रमपिबत् क्रुद्धः सर्वलोकस्य पश्यतः॥ (महा० १।१०५।१,३)

२. पुलस्त्यो नाम महर्षिः साक्षादिव पितामहः।
तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः।
दत्त्वा तु तनयां राजा स्वाश्रमपदंगतः। (रामा० ७।२।४, २८)

३. पुरा देवासुर युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः।
तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौवरौ शुभदर्शने॥ (अयो० ९ सर्ग)

४. अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत (उत्तर० १०।१९),

५. वही (सर्ग ३६);

अथवा परशुराम की प्रार्थना पर जमदग्नि द्वारा रेणुका को पुनर्जीवित[1] करने का वरदानादि असत्य प्रतीत होते हैं।

"सत्यहृदयं से निकली आह कभी-कभी सत्य हो जाती है जैसे दशरथ के प्रति श्रमणकुमार के पिता की वाणी सत्य सिद्ध हुई कि तुम भी पुत्रवियोग में मेरे समान प्राण त्यागोगे।[2] परन्तु कुछ ऐसे अद्भुत शाप केवल गप्प प्रतीत होते हैं, जैसे देवयुग में कद्रू ने अपने पुत्र नागो को यह शाप दिया कि तुम कलियुग में जनमेजय के यज्ञ मे अग्नि मे जलाये जाओगे—

तत पुत्रसहस्र तु कद्रूजिह्मं चिकीर्षती।
नावपद्यन्त ये वाक्यं ताञ्छशाप भुजगमान्।
सर्पसत्रे वर्तमाने पावको व· प्रधक्ष्यति।
जनमेजयस्य राजर्षे: पाण्डवेयस्य धीमतः॥

महा० (१।२०।६, ७, ८)

परन्तु कुछ ऐसे शापों के विषय मे निर्णय करना कठिन है, जैसे अगस्त्य द्वारा नहुष को दशसहस्रवर्ष अजगर होने का शाप देना, यद्यपि युधिष्ठिरादि की अजगर से भेंट हुई, परन्तु यह पूर्वजन्म का नहुष था, यह दिव्यदृष्टि से ही जाना जा सकता है—

सोऽहंशापादगस्त्यस्य च ब्राह्मणानवमत्य च।
इमामवस्थामापन्नः···(वनपर्व १७९।१४)।

शाप का मूलार्थ था 'क्रुद्ध होकर गाली देना', परन्तु पुराणों मे शापों का जिस रूप मे वर्णन है, उसी रूप मे आज के युग मे उन पर विश्वास करना कठिन है। परन्तु जिस प्रकार के वरदान और शाप तथ्य हो सकते हैं, उसका संकेत पूर्व किया जा चुका है। सभी शापो या वरदानो पर विचार तत्तत्प्रकरण मे ही होगा।

भविष्यकथनादिसमस्या

भविष्यकथन, यद्यपि असंभव नही है, आज के युग मे भी दिव्यज्ञानसम्पन्न योगी या अतीन्द्रियपुरुष सत्य भविष्यवाणी कर देता है, अनेक सच्चे ज्योतिषी भी भविष्य जान लेते हैं। परन्तु पुराणो मे महाभारतोत्तरयुग के जिन कलियुगीन

---

१. स वव्रे मातुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै (महा० ३।११६।५७),

२. त्वेन त्वामपि शप्स्येऽहं सुदुःखमतिदारुणम्
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं करिष्यसि॥
(रामा० २।६४।५३, ५४)

राजवंशों[1] का वर्णन है वह भविष्यकथन नहीं होकर बाद में जोड़ा गया प्रक्षेप ही प्रतीत होता है। आज निश्चय ही भविष्यकथनसम्बन्धी वर्णन प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं, परन्तु प्राचीनयुगों में भविष्यज्ञ श्रुतर्षि एवं भविष्यपुराण की परम्परा सत्य प्रतीत होती है। पाराशर्यव्यास या पूर्व के श्रुतर्षियों द्वारा कल्कि अवतार की भविष्यवाणी सत्य प्रतीत होती है,[2] यह भविष्यवाणी महाभारतकाल मे ही कर दी गई थी। परन्तु वर्तमानपुराणों के उत्तरकाल मे अनेक बार संस्करण या प्रक्षेपण हो चुके हैं।

भविष्यकथन की एक बड़ी घटना सत्य नही होती तो आज मानवजाति उस जल प्रलय से नहीं बच सकती, जिसमे एक मत्स्य ने अथवा भविष्यज्ञो ने प्रलय से अनेकवर्ष पूर्व वैवस्वतमनु को जलप्रलय से बचने की तैयारी करने का[3] निर्देश दे दिया था। अतः दिव्यज्ञानी सत्यभविष्यकथन अवश्य करते थे, यह मानना पड़ेगा।

महाभारतयुग से पूर्व ही एक या अनेक भविष्यपुराण रचे जा चुके थे, जिनमें भविष्यज्ञश्रुतर्षिगण भविष्य की घटनाओं का वर्णन कर दिया करते थे। स्वयं वाल्मीकि ऋषि के प्रमाण से ज्ञात होता है कि ऋषि द्वारा रामायण रचना से बहुत पूर्व निशाकर ऋषि ने सम्पाति को रामाविर्भाव का इतिहास बता दिया था—

"पुराणे सुमहत्कार्यं भविष्य हि मया श्रुतम्।
दृष्टं मे तपसा चैवश्रुत्वा च विदित मम॥"
राजा दशरथो नाम कश्चिदिक्ष्वाकुवर्धनः।
तस्य पुत्रो महातेजा रामो नाम भविष्यति॥
आख्येया राममहिषी त्वया तेभ्यो विहंगम।
देशकालौ प्रतीक्षस्व पक्षौ त्व प्रतिपत्स्यसे॥[4]

रामायण का यह वर्णन काल्पनिक प्रतीत नही होता, अतः इससे भविष्य-

---

१. एतत्कालान्तरं भाव्यमांध्रान्ताद्याः प्रकीर्तिताः।
भविष्यज्ञैस्तत्र संख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः।
(ब्रह्माण्ड० ३।७४।२२९);

२. कल्की विष्णुयशानाम द्विजः कालप्रचोदितः।
उत्पत्स्यंते महावीर्यो महाबुद्धिपराक्रमः॥ (वनपर्व १९०।९३)

३. द्रष्टव्य वनपर्व (१८७ अध्याय), शं० ब्रा० (१।८।१)

४. रामायण (४।सर्ग ६२)

कथन की पुष्टि होती है। तथापि भविष्यपुराण के सभी भविष्यकथनों को वास्तविक भविष्यकथन नहीं माना जा सकता, वह प्रायः धूर्तवंचना ही है।

अद्‌भुत एवं असम्भव घटनायें

पुराणों मे ऐसी अनेक अदभुत, विचित्र एव असम्भव-सी प्रतीत होने वाली घटनाओं का वर्णन है, जिनपर तथाकथित आधुनिक वैज्ञानिक विश्वास नहीं करते। निश्चय ही अनेक घटनाओ को तोडा मरोडा गया है, कुछ को बढ़ा चढ़ाकर वर्णित किया है, परन्तु सभी अद्‌भुत घटनायें असम्भव हों, ऐसा आवश्यक नहीं हैं। जैसे कुछ प्राणियों का कामरूप (इच्छानुसार रूप) होना, स्वयम्भू से मानसी या अमैथुनी सृष्टि,[1] पुंख या पक्षयुक्त मानव[2] (देव) या पुच्छयुक्त मनुष्य[3] (वानर), षडक्ष त्रिशिरा की उत्पत्ति[4], चतुर्भुज मनुष्य की उत्पत्ति[5] (यथा वामन विष्णु) त्र्यक्षमनुष्य[6] (यथा शिशुपाल) का जन्म, युवनाश्व के उदर से मान्धाता का जन्म[7] कुम्भकर्ण जैसे विशाल शरीरवाला राक्षस[8], कबन्ध[9] या कुबेर या अष्टावक्र जैसे विचित्र शरीर, कुम्भकर्ण का षण्मासशयन, पुष्पकादि विमानो का अस्तित्व।[10] ऐसी अनेक घटनाओ का पूर्ण आंशिकरूप सत्य था, क्योंकि आज के युग मे भी मनुष्ययोनि (स्त्री) से विचित्र आकार के प्राणी उत्पन्न होते देखे गए हैं, भले ही वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहे हों। आज जी समाचारपत्रो मे यह समाचार पढते हैं कि अमुक युवक या युवती

---

१. ततोऽभिध्यायतस्तस्य मानस्यो जज्ञिरे प्रजाः। (ब्रह्माण्ड पु० १।८।१),

२ महाभारत आदिपर्व मे नाग और सुपर्ण का जन्म (अध्याय १६),

३. रामायण मे वानरो की उत्पत्ति,

४ त्वष्टुर्ह वै पुत्र। त्रिशीर्षा षडक्ष आस···विश्वरूपो नाम (श० ब्रा० १।६।३।१)

५. चेदिराजकुले जातस्त्र्यक्ष एष चतुर्भुज.। (महा० २।४३।१);

६. त्र्यक्ष चतुर्भुज श्रुत्वा तथा च समुदाहृतम् (महा० २।४३।२१),

७. वाम पार्श्वं विनिर्भिद्य सुत: सूर्य इव स्थित. (महा० ३।१२६।२७),

८ कुम्भकर्णो महाबल.। प्रमाणाद् यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते। (रामा० ७।६।३४)

९. सक्थिनी च शिरश्चैव शरीरे संप्रवेशितम्। (रामा० ३।७१।११) विवृद्धमाशिरोग्रीवं कबन्धमुरेमुखम् (रामा० ३।६९।२७),

१०. पुष्पकं तस्य जग्राह विमान जयलक्षणम्। मनोजवं कामगमं कामरूपं विहंगमम्॥ (रामा० ७।१५।३८, ३९);

की योनिपरिवर्तन (यानी लड़की का लड़का होना या लड़के की लड़की होना) हो गया या हो रहा है जबकि सुद्युम्न का इला होने पर और शिखण्डी का शिखण्डिनी होने पर हम अविश्वास करते हैं। मानुष उदर से भ्रूण उत्पन्न होने के समाचार भी प्रकाशित हुए हैं।

ऐसी अनेक सत्य घटनाओं की सम्भावना के बावजूद पुराणों मे अनेक अतिरंजित काल्पनिक घटनाओं का वर्णन है, जैसे कुम्भकर्ण द्वारा दो सौ महिषों का मांस[1] भक्षण, वसिष्ठ की गौशबली से शकयवनादिम्लेच्छों की उत्पत्ति, इल्वल-वातापि द्वारा मेष बनना, मारीच का मृग बनना इत्यादि घटनायें असम्भव हैं, परन्तु अन्तिम दो घटनाओं मे आंशिक सत्यता यह है कि वे राक्षस माया (या कौशल) से पशु का चर्म आदि ओढकर पशुरूपधारण कर सकते थे, जैसे मारीच का हिरणरूप धारण करना।

अत: इतिहासपुराण की समस्त ऐसी विचित्रघटनाओं का नीरक्षीरविवेक करना आवश्यक है।

कालगणनासमस्या

इतिहासरूपीभवन की भित्ति है युगगणना और तिथियाँ या कालगणना, बिना सही कालगणना के पौराणिक इतिहास प्रायः मिथ्या ही समझा जाता है, यही एक महती बाधा है जिसको भगवद्दत्त जैसे विद्वान पूरी तरह सुलझा नहीं सके और अधर मे ही लटके रहे। इस समस्या को हमने पर्याप्तरूप में हल कर लिया है, जिसका दिग्दर्शन कराना ही इस शोधग्रन्थ का प्रमुख विषय रहेगा। कालगणनासम्बन्धी प्रमुखतः ये समस्यायें हैं। (१) दीर्घायुष्ट्व, (२) कल्प, मन्वन्तर और युग, वर्ष (दिव्यमानुष युग-वर्ष), राज्यकालगणना एव संवत्-कलिसंवदादि-निर्णय।

इस प्रकरण मे कालगणनासम्बन्धी समस्याओ के प्रति उनकी विकटता या काठिन्य का संकेतमात्र करना भर है, इन समस्याओ का विस्तृत विवेचन और समाधान अग्रिम अध्यायों में होगा।

---

१. पीत्वा घटसहस्रे द्वे (रा० ६।६०।६३)

२. असृजत् पह्लवान् पुच्छात् प्रस्रवाद् द्रविडाञ्छकान्।
योनिदेशाच्च यवनान् शकृतः शबरान् बहून्॥ (महा० २।१७४।३६)

३. भ्रातरं संस्कृतं कृत्वाततस्तं मेषरूपिणम् (रामा० ३।११।५७)
मेषरूपी च वातापिः कामरूप्यभवत् क्षणात् (महा० ३।९९।८)

वर्तमानपुराणपाठों के अनुसार न केवल कल्पमन्वन्तरयुगादि लाखों, करोड़ों कि वा अरबों वर्षों के थे, वरन् ऋषिमुनियों का जीवन भी लाखों करोड़ों वर्षों का था, दश-दश सहस्र या लाख-लाख वर्ष तपस्या करना तो उनके लिए पलक झपने के तुल्य था, और एक-एक राजा का राज्यकाल दस हजार से कम तो होता ही नहीं, किसी-किसी राजा का राज्यकाल साठ हजार वर्ष, अस्सी या नब्बे हजार वर्ष, यहाँ तक कि हिरण्यकशिपु जैसों का राज्यकाल लाखो वर्ष का होना बताया गया है, उसने तप ही एक लाख वर्ष तक किया ।[1] ऐसे अतिरंजित एवं असम्भाव्य वर्णनों मे किसी भी सचेता मनुष्य की अश्रद्धा होना स्वाभाविक है । परन्तु, ऐसे अविश्वसनीय वर्णनो का कारण क्या है, यह पुराणकारों ने जानबूझकर किया या अज्ञानवश किया । अधिकाशतः ऐसे वर्णन भ्रम या संशयज्ञान की उत्पत्ति है, जान बूझकर ऐसे वर्णन प्रायः नहीं किये गये । केवल साम्प्रदायिक मतान्धवर्णन ही जान बूझकर किये गये हैं ।

इस संशयज्ञान या भ्रम के मूल मे था—दिव्य, दैवी वा दैव वर्षों या युगो की कल्पना । अब इस मूलभ्रान्ति पर प्रहार करेंगे, जिससे कि घोरतम का निवारण होकर सूर्यरूपी निर्मलज्ञान का प्रकाश प्रस्फुटित होगा ।

दिव्यकालगणना से भ्रान्ति

वर्षगणना मे भ्रम का मूल तैत्तिरीयब्राह्मण का यह वाक्य था—"वर्ष देवानामहः ।[2]" मनुस्मृति मे १२००० वर्षों का दैवयुग माना है ।[3] यहाँ ये वर्ष मानुषवर्ष ही हैं । पुराणो की मूलगणना (मूलपाठो मे) मानुषवर्षों मे ही थी—जैसा कि बार-बार उल्लिखित है—

> त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ।
> त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मत सप्तर्षिवत्सर. ।
> पित्र्य सवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ।

मूल मे 'दिव्यसवत्सर' 'सौरवर्ष' का नाम था, क्योकि सूर्य को ही 'द्यु कहते हैं । सूर्य या 'देव' से सम्बन्धित वर्ष ही 'दिव्यसवत्सर' था, सप्तर्षियो का युग २७०० वर्ष का होता था, उसे भी 'दिव्यगणना' के अनुसार कहा गया है—

१. शत वर्षसहस्राणा निराहारो ह्यधशिराः ।
वरयामास ब्रह्माणं तुष्टं दैत्यो वरेण ह ।। (ब्रह्माण्ड० २।३।३।१४),

२. तै०.ब्रा०

३. एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते (मनु० १।७१)

४. वायुपुराण (५७।१७),

'सप्तर्षीणां युग ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् ।''[1] उत्तरकाल में इस 'दिव्यवर्ष' (सौरवर्ष) को भ्रम से ३६० वर्षों का माना गया—

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु ।
दिव्यसंवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ॥[2] (पाठत्रुटि)

पुराणो के उपर्युक्त प्रमाणों को देखकर पं० भगवद्दत्त ने लिखा—'इस प्रकरण के सब प्रमाणों से मानुष और दिव्य संख्या का स्वल्प सा अन्तर दिखाई पड़ता है ।[3] भ्रम का मूल यही 'दैव'—या 'दिव्य' शब्द था जो मूल्य मे 'सौर' वर्ष था । मनुस्मृति मे साधारण मानुषवर्षों का ही दैवयुग माना गया है, उसको उत्तरकालीनटीकाकारो ने भ्रमवश ३६० का गुणा करके भ्रामक एवं मिथ्या-गणना की । आर्यभट्ट के समय तक 'युग' और 'युगपाद' समान (१२०० वर्ष) के माने जाते थे, प्राचीन ईरानी साहित्य मे द्वादशवर्षसहस्रात्मकदैवयुग को समानकालिक (३००० वर्ष के) चार युगों मे विभक्त किया गया था—"Four ages or periods of Trimillannia......according to the Budohishan Time was for Twelve thousand years (A Dict. of comp. Relegion by S. G. F. Brandon p. 47).

बैबीलन देश में दिव्यवर्ष गणना

In Eridu Alulum became king and reingned 28800 years, Alalagar reingned 36000 years.

Five Cities were they. Eight Kings reigned 211200 years. (The greatness that was Babylon p. 35 by. H.W.F. Saggs).

आर्यभट्ट के समय 'युग' और युगपाद (१२०० वर्ष) समान माने जाते थे, परन्तु ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट्ट का खंडन किया ।[4] वास्तव मे ब्रह्मगुप्त ने युगपादों के रहस्य को समझा नही । आर्यभट्ट का मत ठीक था कि प्राचीनयुगो में युगपाद समान थे । बैरोसस के अनुसार ८६ राजाओ ने ३४०८० वर्ष राज्य किया और १० राजाओ (या राजवशो) ने ४ लाख ३ हजार वर्ष राज्य किया ।

(विश्व की प्रा० सभ्यता पृ० ५०)

---

१. वायु० (९९।४१९),
२. ब्रह्माण्ड (१।२।२८।१६),
३. भा० वृ० इ० प्र० भाग पृ० १६५ ।
४. न समा युगमनुकल्पा: कल्पादिमतं कृतादियुगानि तंच ।
स्मृत्युक्तैरार्यभटो नातो जानाति मध्यगतिम् ॥ (ब्रह्मस्फुटसि०)

दशराजाओं का राज्यकाल = ४०३००० वर्ष (दिन) = १११० वर्ष; पुराणों और बेरोसस की 'दिव्यवर्षगणना' का ऐतिहासिक अर्थ, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। अथर्ववेद[1], मनुस्मृति[2] और वायुपुराणादि से ज्ञात होता है चतुर्युग साधारण वर्षों (क्रमशः एक सहस्र, द्विसहस्र, त्रिसहस्र और चतुःसहस्र) वर्षों के थे।[3] महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि नहुष, जो कृतयुग के आदि में हुए, से युधिष्ठिर, जो द्वापर के अन्त और कलियुग के आरम्भ में हुए, केवल दशसहस्रवर्ष व्यतीत हुए।[4] यदि ये युग तथा कथित दिव्यवर्षों के होते तो नहुष से युधिष्ठिरपर्यन्त लाखो मानुषवर्ष व्यतीत होते।

पुराणों मे भ्रामकगणना का एक और महान् कारण है, जिसका अनुसंधान महती सूक्ष्मेक्षिका का कार्य है।

पुराणों में २८ किंवा युगो या परिवर्तों (परिवर्तनों) मे २८ या ३० व्यास हुए, ये २८ या व्यास क्रमशः युगानुयुग होते रहे। एकयुग मे एकव्यास का अवतरण हुआ। वेदों में दिव्य और मानुष युगो का उल्लेख है इसमे दिव्ययुग ३०० या ३६० वर्ष का और मानुषयुग १०० वर्ष का होता था। यह हमारी कल्पना नहीं, ब्राह्मणग्रन्थों मे लिखा है—कि प्रजापति (कश्यप) ने देवो से कहा है कि तुम्हारी आयु ३०० वर्ष की होती है अतः यह सब ३०० वर्षों में समाप्त करोगे—"देवान्नब्रवीदेतानि यूयं त्रीणि शतानि वर्षाणां समापयथेति।"[5] ऋग्वेद में लिखा है—'दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।[6] अर्थात् दीर्घतमा दश (मानुष) युग जीवित रहा। इसकी व्याख्या शांख्यायन ने इस प्रकार की है—"तत उ ह दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव" (शां० ब्रा २।१७), मनुष्यायु (पुरुषायु मानुषयुग) १०० वर्ष होती है—

शत वर्षाणि पुरुषायुषो भवन्ति (ऐ० ब्रा०)
"शतायुर्वै पुरुषः।" (श० ब्रा० १२।४।११।१५)

---

१. अथर्व० (८।२।२१) तेयुन्तं हायनान्……।।
२. मनुस्मृति (१।६९-७१) इत्यादि श्लोक चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां कृतं युगम्।
३. वायु० (५७।२२-२९) अत्र संवत्सरासृष्टा मानुषेण प्रमाणतः)।
४. दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्। विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि॥ (उद्योगपर्व १७।१५)
५. जै० ब्रा० (१।३),
६. ऋ० (१।१५८।६)।

स्पष्ट है कि दशपुरुषायु=दशमानुषयुग=१००० वर्ष तक दीर्घतमा जीवित रहा। इसका कोई दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता। अतः मानुषयुग १०० वर्ष का था और देवयुग ३६० वर्ष का था और इस प्रकार ३० व्यास ३० युगों (३६०×३०=१०८०० वर्ष) में हुए। अतः नहुषादि युधिष्ठिर से ठीक १०००० वर्ष पूर्व हुए थे।

पुराणों मे उपर्युक्त परिवर्त या युग का मान ३६० वर्ष था, जो वेदों में एक दिव्य या देवयुग कहा जाता था। 'देवयुग' शब्द से पुनः भ्रम उत्पन्न हुआ, जिससे महायुग=चतुर्युग=१२००० (द्वादशसहस्र) वर्षों में ३६० का गुणा किया जाने लगा। इसी महान् भ्रम के कारण आजकल वैवस्वतमन्वन्तर का २८वां कलियुग माना जाता है।[1] जबकि वैवस्वत मनु महाभारतकाल से केवल ११ सहस्रवर्ष पूर्व हुए थे, २८ चतुर्युगों को बीतने की बात भ्रममात्र है।

'युगसमस्या' का पूर्ण समाधान अन्यत्र होगा। अतः यह विस्तार केवल स्पष्ट करने के लिये लिखा गया है कि युग, मन्वन्तर और कल्प की वर्षगणना में क्यों भ्रम उत्पन्न हुआ।

१३ मनु, वैवस्वतमनु से पूर्व हो चुके थे अथवा कुछ मनु वैवस्वत के समकालीन थे, अत् १४ मनुओं में लाखों वर्षका अन्तर नहीं था, कुछ शताब्दियों का अन्तर ही था, यह 'विकासवाद' के खण्डनप्रसंग मे लिख चुके हैं। अतः कल्प का वर्षमान केवल एक करोड बीस लाखवर्ष था न कि चार अरब वर्ष, जैसा कि वर्तमान पुराणो के आधार पर कुछ आधुनिक लेखक पृथ्वी की आयु मानने लगे हैं। यह भी सब भ्रम है, जिसका पूर्वप्रतिवाद हो चुका है।

उपर्युक्त दिव्यवर्षसम्बन्धी भ्रमनिवारण के साथ राजाओं के राज्यकाल-सम्बन्धी समस्या सुलझ जाती है। सर्वप्रथम दाशरथिराम के राज्यकाल[2] को ही लीजिए। उपर्युक्त भ्रम के प्रयास मे ३० वर्ष ६ मास और २० दिन को दिव्य मानकर उनको ११००० मानुषवर्षों मे परिणित कर दिया, वास्तव मे उनका राज्यकाल ३० वर्ष (मानुष) ६ मास और २० दिन था।

बेबीलनदेश में दिव्यगणना सम्बन्धी परिपाटी या भ्रान्ति

भारतवर्ष मे इतिहासपुराणो एवं ज्योतिषग्रन्थो (यथा सूर्यसिद्धान्त) मे यह

---

१. अष्टाविंशाद्युगमस्मात् यातमेतत्कृतं युगम् (सूर्यसिद्धान्त (१।२३)
२. दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥ (रामा० १।१)

'दिव्यगणनासम्बन्धी' परिपाटी प्रविष्ट किस काल मे की गई इसका समय ठीक ज्ञात नहीं होता, तथापि बौद्ध और जैनग्रन्थो में भी यह गणनापद्धति प्रचलित थी, यथा निदानसंज्ञक ग्रन्थ में बुद्धघोष २४ बुद्धो की आयु इस प्रकार बताता है—

प्रथम बुद्ध—दीपंकर—आयु—एकलाख वर्ष (दिन) = २७७ वर्ष

द्वितीयबुद्ध कौडिन्य " " " = २७७ वर्ष

परन्तु कनिष्क समकालिक अश्वघोष के समयतक यह 'दिव्यगणना' पद्धति प्रचलित नहीं हुई थी, अतः उसने सामान्य मानुषवर्षों में पौराणिक व्यक्तियों का का समय लिखा है—

विश्वामित्रो महर्षिश्च विगाढ़ोऽपि महत्तपः।
दशवर्षाण्यहर्मेने घृताच्याप्सरसा हृतः ॥ (बुद्धचरित ४।२०)

परन्तु सूर्यसिद्धान्त मे दिव्यवर्षगणनापद्धति मिलती है, और मनुस्मृति, महाभारत में नहीं। परन्तु पुराणों में यह पद्धति प्रविष्ट कर दी गई—न्यूनतम विक्रम से पूर्व तीन शती पूर्व। क्योंकि बैबीलन के प्रसिद्ध इतिहासकार बैरोसिस ने जो विक्रम से लगभग तीन शतीपूर्व हुआ, राजाओं का राज्यकाल, भारतीय-पुराणो के सदृश दिव्यवर्षों में लिखा है। पूर्व पृ० ६६ पर आधुनिक इतिहासकार सेग्जस (saggs) के सन्दर्भ से लिखा जा चुका है कि बैबीलन के दो राजाओं ने कुल ६४८०० वर्ष राजा किया—राज्य एललम (इलिल भरतपूर्वज २८८०० वर्ष २८८०० दिन)

$$\text{राजा अलालगर} = \frac{\text{३६००० दिन दिन}}{\text{योग} = \text{ ६४८०० वर्ष}} = \text{१८० वर्ष}$$

दाशरथिराम के उदाहरण से समझा जा सकता है कि २८८०० दिनो के ८० वर्ष और ३६००० दिन के १०० वर्ष होते हैं अतः दोनों राजाओं का कुल राज्यकाल केवल १८० वर्ष (सौरवर्ष) था।

इसी प्रकार बैरोसस ने प्रलयपूर्व के ८ राजाओं का राज्यकाल २४१२०० वर्ष (दिन) बताया है, अतः उनका राज्यकाल केवल ६७० वर्ष हुआ।

अतः उपर्युक्त गणना भारत और बैबीलन मे अश्वघोष के पश्चात् प्रचलित हुई अतः इस प्रकार से अश्वघोष का समय बैरोसस के पूर्व, लगभग चार शती विक्रमपूर्व निश्चित होता है।

इसी महती भ्रान्ति के कारण, रामायण मे १६ वर्ष के एक बालक की

आयु पाँचसहस्रवर्ष[1] बताई है, भला बालक भी पाँचहजारवर्ष का हो सकता है, इससे प्रक्षेपकारों की भ्रान्ति उद्घाटित होती है।

कुछ अन्य राजाओं का राज्यकाल पुराणों में इस प्रकार उल्लिखित है—

भरत दौष्यन्ति का राज्यकाल = २७००० वर्ष = ७५ वर्ष, ४ मास

सगर ,, = ३०००० वर्ष = ८३ वर्ष, ४ मास

अत: भरत दौष्यन्ति ने लगभग ७५ वर्ष और सगर ने ८३ वर्ष राज्य किया। यह राज्यकाल प्राचीनयुग के मानव के लिए पूर्ण सम्भव, अतः सत्य है। सुमेर और बेबीलन के अनेक प्रारम्भिक राजाओं का राज्यकाल भी इसी प्रकार लगभग १००-१०० वर्ष के आसपास था, द्रष्टव्य पृष्ठ ६६।

ऋषियों का दीर्घायुष्ट्व

योगसिद्धि एव रसायनविद्या के अभाव में दीर्घायुष्टव् के रहस्य को नहीं समझा जा सकता। प्राचीनयुगों में मनुष्य विशेषत. देवसंज्ञकमनुष्य और ऋषि दीर्घजीवी होते थे। वेद, पुराण, अवेस्ता और बाइबिल में दीर्घायुष्ट्व के प्रमाण मिलते हैं। आज रूस में लगभग २०० वर्ष आयु के अनेक पुरुष जीवित हैं। अन. दीर्घजीवन मे अविश्वास करना सर्वथा अलीक है। दीर्घायु पूर्णत: सम्भव एवं सत्य ऐतिहासिक तथ्य था।

नारद, परशुराम, अगस्त्य, मार्कण्डेय, लोमश, दीर्घतमा, भरद्वाज आदि की दीर्घायु आज के तथाकथित वैज्ञानिको के लिए दुर्गम समस्या है। पाश्चात्य-लेखकगण तो पुराणो के इतिहास पर विश्वास ही नही करते, परन्तु जो विश्वास करते थे, वे भी दीर्घजीवन के रहस्य को न समझकर मिथ्यालेखन करते रहे, यथा पार्जीटर का मत द्रष्टव्य है—"प्राय. ऋषि अनेक कालों (युगो) मे दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु क्षत्रियराजा कालक्रम को भंग कर उपस्थित नही होता।"[2]

वेदमन्त्र के प्रमाण (ऋ० १।१५८।६) से पिछले पृष्ठ पर लिखा जा चुका है

---

1. अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्षसहस्रकम्। अकाले कालमापन्नम्"'॥
(अप्राप्तयौवन का अर्थ है यौवन के निकट, यह १५ वर्ष का ही सम्भव है, पाँच वर्ष का नहीं (रामा० ७।७३।५)
2. It is generally rishis who appear on such Occasions in defiance of chronology and rarely that Kings so appear (A I, H, T. by Pargiter p. 141).

है कि दीर्घतमा एकसहस्रवर्ष तक जीवित रहा। वैदिककल्पसूत्रों एवं ब्राह्मण-ग्रन्थों मे उल्लिखित है कि दश विश्वसृज (प्रजापतियो) ने वर्षसहस्रात्मक सत्र किया था। कश्यप प्रजापति ने ७०० वर्ष का यज्ञ किया—"स सप्त शतानि वर्षाणां समाप्येमामेव जितिमजयत्।"[१] प्रजापति ने सहस्रवर्ष तप किया—"स तपोऽतप्यत सहस्रपरिवत्सरान्।"[२] नारदादि एव भरद्वाजादि ऋषियों की दीर्घायु का वैदिकग्रन्थों एव पौराणिक ग्रन्थों में बहुधा उल्लेख है, अतः दीर्घजीवीपुरुषों का इतिहास एक पृथक् अध्याय मे संकलित करेंगे। परन्तु दीर्घजीवन के घटाटोप में गोत्रनामों से भ्रम होता है, वह जगत्प्रसिद्ध है : जैसा कि वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, अत्रि इत्यादि के गोत्रनामों से इनके वंशजों को भी वशिष्ठ या वासिष्ठ, विश्वामित्र या कौशिक, अगस्त्य या आगस्ति, अत्रि या आत्रेय कहते थे। यह नियम प्रायः सभी गोत्रप्रवर्तक ऋषियों यथा याज्ञवल्क्यादि सभी पर लागू होता है। आदिम यज्ञवल्क्य या याज्ञवल्क्य आदिम् विश्वामित्र के पुत्र थे, जो कृतयुग मे हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक से पूर्व हुये, परन्तु पाण्डवकालीन वाजसनेय याज्ञवल्क्य का गोत्रनामसाम्य होने से सर्वत्र एक ही याज्ञवल्क्य का भ्रम होता है, यह दीर्घजीवन का उदाहरण नहीं है केवल गोत्रनामसाम्य से भ्रम होता है। इसी प्रकार का भ्रम पं० भगवद्दत्त को भरद्वाज ऋषि के विषय मे हो गया, जबकि पंडितजी को ज्ञात होगा कि भरद्वाजगोत्र के प्रत्येक व्यक्ति को भरद्वाज या भारद्वाज कहा जाता था और इतिहासपुराणों एव चरकसंहिता में उनका पृथक्-पृथक् नामत उल्लेख भी है। यदि बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज और द्रोणाचार्य के पिता भरद्वाज (भारद्वाज) को एक माना जाय तो उन दोनों मे ६००० (छः सहस्र) वर्ष का अन्तर है, इतनी वृद्धावस्था मे आदिम भरद्वाज का द्रोणाचार्यपुत्र को उत्पन्न करना, न केवल असंभव, किंच हास्यास्पद भी है, जो शरीरविज्ञानी किंवा योगी के लिए भी अनुचित है।[३] तैत्तिरीयब्राह्मण[४] के अनुसार इन्द्र ने भरद्वाज बार्हस्पत्य को तीन पुरुषायु (३०० वर्ष की आयु) प्रदान की और चतुर्थ पुरुषायु का प्रस्ताव किया था। भला, जो भरद्वाज इन्द्र की कृपा (रसायनसेवन) से ४०० वर्षमात्र जीवित रहा, उसका ६००० वर्ष की आयु मे पुत्र उत्पन्न करना केवल गोत्रनामसाम्य का भ्रममात्र के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अतः भरद्वाज एक नहीं, उनके वंशज अनेक (शतशोऽथ सहस्रशः) हुए, जो सभी भरद्वाज या

---

१. जैं० ब्रा० (१।३),
२. श० ब्रा० (१०।४।४।१);
३. द्र० भा० वृ० इ० भाग १, अध्यायदीर्घजीवीपुरुष, पृ० १४९;
४ द्र० तै० ब्रा० का मूल उद्धरण, (३।१०।११।४५)

भारद्वाज कहलाते थे। अतः वास्तविक दीर्घजीवन और गोत्रनामसाम्यभ्रम के भेद का ध्यान रखकर असद्ग्राहों से बचना चाहिए।

सम्वत्समस्या

केवल कलिसम्वत् का उल्लेख ही पुराणों में है। परन्तु काब्योत्तरकालीन या भारतोत्तरकालीन भारतीय इतिहास में सम्वतों का इतना बाहुल्य है कि सहज ही भ्रमोत्पत्ति होती है। प्राचीन भारत में अनेक संवत् थे, जिनमें अनेक सम्वतों को 'शकसम्वत्' कहा जाता था और शकसम्वत् का प्रारम्भ और अन्त भी शक कहलाता था। एक शकसम्वत् आन्ध्रसातवाहनों के राज्यकाल के मध्य में शकराज्योत्पत्ति के समय अर्थात् २४५ वि० पू० से प्रारम्भ हुआ, शकों का राज्य ३८० वर्ष रहा, पुनः जब चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय, सांहसाक ने १३५ वि० सं० में शकराज्य का अन्त किया, तक द्वितीय शकसम्वत् चला, जैसा कि ज्योतिषियों ने लिखा है—"शका नाम म्लेच्छजातयो राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स कालो लोके शक इति प्रसिद्धः।"[1] आधुनिक लेखक शकसम्वत् का सम्बन्ध कुषाणशासक कनिष्क से स्थापित करते हैं, यह सर्वथा मिथ्या है। शकों, कुषाणों, हूणो, तुषारों, मुरुण्डशकों आदि सभी के राज्यवर्ष या सम्वत् पृथक्-पृथक् शिलालेखादि पर उल्लिखित है, इसी प्रकार मालवगणसम्वत्, शूद्रकसम्वत्, हर्षसम्वत्, विक्रमसम्वत् आदि सभी पृथक्-पृथक् सम्वत् थे, आधुनिक लेखक, इन सभी सम्वतों को एक मानकर इतिहास के साथ घोर व्यभिचार और अनाचार करते हैं। इसी प्रकार गुप्त-सम्वत् दो थे, एक गुप्तसम्वत् गुप्तराज्यप्रारम्भ से और द्वितीय गुप्तसम्वत् गुप्तराज्य के अन्त के वर्ष से चला। इन दोनो में २४२ वर्षों का अन्तर था, आधुनिक ऐतिहासिक लेखकों ने गुप्तराज्य का प्रारम्भ उस समय से माना, जब गुप्तराज्य का अन्त हो गया था। इससे गणना में २४२ वर्ष का अन्तर उत्पन्न किया गया।

अतः सम्वत्बाहुल्य से कुछ भ्रम उत्पन्न हुआ और कुछ भ्रम जानबूझकर फ्लीट आदि लेखकों ने किया। इन सभी भ्रमों एवं समस्याओं का निराकरण आगामी अध्यायों में किया जायेगा।

---

१. बृहत्संहिता भट्टोत्पलटीका (८।२०), शिलालेखों में उल्लिखित 'शकनृप-कालातीतसंवत्सर' का ही यह भाव है कि शकसम्वत् शकराज्य के अन्त से प्रवर्तित हुआ। भास्कराचार्य ने भी यही लिखा है—"शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः" (सि० शि० कालमानाध्याय १।२८),

३

भारतीय ऐतिहासिक कालमान तथा परिवर्तयुग

कालमान एवं तिथिगणना किसी भी देश के इतिहास की सुषुम्नानाड़ी या रीढ़ की हड्डी है, जिस पर इतिहासरूपीशरीर निर्लंबित रहता है। आधुनिक तथाकथित इतिहासकारों ने मिस्र, सुमेर, चीन, बैबीलन, मयसभ्यतासहित प्राचीन इतिहास की सभी तिथियाँ बिना किसी प्रमाण के अपनी मनमानी कल्पना के आधार पर निश्चित की, सर्वाधिक भ्रष्ट कल्पनायें भारतीय इतिहास की कालगणना में की गईं और सर्वाधिक प्रसिद्ध काल्पनिक या असत्य या आधारतिथि, जो भारतीय इतिहास में घड़ी गई वह है चन्द्रगुप्त और सिकन्दर यूनानी की समकालीनता की कहानी। सन् ३२७ ई० पू० में सिकन्दर के भारत आक्रमण की तुच्छतमघटना को मूलाधार बनाकर अंग्रेजों ने प्राचीनभारतीय इतिहास का मूल ढाँचा बनाया। हमारा उद्देश्य इस भ्रष्ट या असद् ढांचे को तोड़कर सत्य की भित्ति पर इतिहासभवन बनाना है।

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक कालगणना का मूलाधार युगगणना है, युगगणना के अनेक प्रकार थे। महाभारतकाल से पूर्व परिवर्तयुगगणना (या वैदिक 'दिव्यमानुषयुग' गणना) प्रचलित थी।[1] महाभारतकाल से कुछ शतीपूर्व 'द्वादशसहस्रात्मक चतुर्युगगणना' पद्धति का प्राबल्य हो गया।

युगगणनापद्धतियो के सम्यग् बोधार्थ, सर्वप्रथम, संक्षेप में भारतीयकालमिति (कालविज्ञान) या कालमानो की सारणी प्रस्तुत करेंगे।

प्राचीन भारत और मयसभ्यता (मध्यअमेरिका-मैक्सिको)···ये दो ही ऐसे प्राचीनतम देश थे, जहाँ आधुनिक सैकेण्ड से सूक्ष्मतर और प्रकाशवर्ष (Light Year) से महत्तर कालमान प्रचलित थे। मयसंस्कृति में शुक्रग्रह के आधार पर कालगणना विशेषरूप से प्रचलित थी, क्योंकि विश्वकर्मा मय, स्वयं शुक्राचार्य का पौत्र और त्वष्टा (शिल्पी) का पुत्र था। मय के वंशजों ने अनेक देशो मे

१. वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण के प्राचीनपाठो मे 'परिवर्त' या पर्याययुगगणना का ही मुख्यतः उल्लेख मिलता है।

अपनी सभ्यता स्थापित की। इस सभ्यता की मुख्य दो विशेषतायें थी, स्थापत्य-कला (भवननिर्माण) और सूक्ष्म ज्योतिषगणना। प्रायः अब सभी इतिहासविद् मानने लगे हैं कि प्राचीन विश्व में सर्वोच्चकोटि के भवनो का निर्माण मय-जाति के लोगों (शिल्पियों) ने किया था, यथा मिस्र, भारत और मध्य अमेरिका मे मैक्सिको, होण्डुरास, द० अमेरिका में प्राचीन पेरू, बोलवीया इत्यादि देशो मे।

मयासुरो के कालगणनासम्बन्धी वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए एक विद्वान् ने लिखा है "उनके अभिलेखों मे ९००००००० (नौ करोड) और ४००००००० (चार करोड) वर्ष पूर्व की ठोस संगणनाओ द्वारा निर्धारित तिथियो का वर्णन है, उन्होंने पृथ्वी के सौरवर्ष की ही संगणना नही की, चन्द्रलोक का परिशुद्ध पचाग भी तैयार किया और शुक्रग्रह की संयुक्त परिक्रमाओं का भी अचूक परिकलन किया।"[1] मयासुरो की कालगणना २० या कौडी के आधार पर चलती थी और २३०४०००००००० दिनो का एक अलाउटुन नाम का 'युग' होता था, जो २० कालाबटुन के तुल्य था। कालमानों के नाम थे—२० किन =१ यूइनल (मास—शुक्रमास), १८ यूइनल=१ टुन (३६० दिन वर्ष) २० टुन=१ काटुन (७२०० दिन), २० काटुन=१ बाक्टुन, २० बाक्टुन= १ पिकटुन। मयलोग शुक्र[2] (ग्रह या शुक्राचार्य) की विशेष पूजा करते थे, क्योंकि वही उनके पूर्वज थे। आदि मयासुर को ज्योतिषज्ञान उसके बहनोई (सुरेणुपति) विवस्वान् ने दिया था, जैसा कि सूर्यसिद्धान्त में लिखा है – "ग्रहाणा चरित प्रादान्मयाय सविता स्वयम्"। अत. मयजाति का गुरु भारत ही था। यहाँ पर प्राचीनकाल मे युग, मन्वन्तर, कल्प जैसे महत्तम और सूक्ष्मतम कालांश (सेकेण्ड का पंचम भाग तक) प्रचलित थे—'यावन्तो निमेषास्तावन्तो लोमगर्ता यावन्तो लोमगर्तास्तावन्तो स्वेदायनानि यावन्ति स्वेदायनानि तावन्त एते स्तोका वर्षन्ति।" (श० ब्रा० १२।३।२।४-५), शतपथब्राह्मण (१२।३।२।४-५) मे ही मुहूर्त क्षिप्र, एतर्हि, इदानि और प्राणसंज्ञक सूक्ष्मतम कालाशों का उल्लेख है।

द्वादशसहस्रात्मक या दशसहस्रात्मक महायुग का मूलाधार—प्राचीन वैज्ञानिक उक्तियाँ है—

'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म' (ई० उ० १७)
'यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोक इति' (चरकसंहिता ४।१३)

---

१. दी एन्शेंट साइंसेस इन ऐंटिक्विटि, ले० न्यूमे बाकर से धर्मयुग (३ मई, १९८१) मे उद्धृत।

२. मयलोग शुक्र को भगवान् कुकुलकन (कवि उशना =शुक्र) कहते थे और इसकी मूर्ति पूजते थे।

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' ब्रह्माण्ड या सूर्यलोकसम्मित ही मनुष्यशरीर है। एक दिन (अहोरात्र - २४ घण्टे) में मनुष्य १०८०० प्राण और इतने ही अपान ग्रहण करता है—

शत शतानि पुरुषः समेनाष्टौ शता यन्मितं तद्वदन्ति।[1]
अहोरात्राभ्यां पुरुषः, समेन तावत्कृत्वः प्राणिति चानिति॥

अग्निचयन नाम के अतियज्ञ मे इतनी ही (१०८००) इष्टिकायें रखी जाती थीं। अथर्ववेद मे शतमानुषयुगों में दशसहस्रवर्ष बताये गये हैं, और इनको चार भागों में विभक्त किया गया है—(कृत, त्रेता, द्वापर और कलि)—

"शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।"[2]

प्राचीन भारत मे बहुधा प्रचलित क्रमिक और सूक्ष्म कालांश इस प्रकार थे

½ निमेष = १ त्रुट	१५ मुहूर्त = १ अहोरात्र
२ त्रुट = १ लव	१५ अहोरात्र = १ पक्ष
२ लव = १ निमेष	७ अहोरात्र १ सप्ताह
५ निमेष = १ काष्ठा	२ सप्ताह - १ पक्ष
३० काष्ठा = १ कला	२ पक्ष = १ मास
४० कला - १ नाडिका	१२ मास १ वर्ष
२ नाडिका = १ मुहूर्त	३० दिन = १ मास

लोक और वेद में चन्द्रमा या प्रजापतिपुरुष की षोडशकलायें प्रसिद्ध हैं। 'कला' और 'काल' शब्द 'कल' धातु (गणना) से व्युत्पन्न हैं। कलाओं का सुपरिणाम काल है।[3]

प्राचीन भारत में होरा (घण्टा), मुहूर्त, रात्रि-दिन, पक्ष, मास तथा वर्षों के नाम भी रख दिए थे।[4] नक्षत्र, वार और ग्रहों के नाम वेद के आधार पर प्राचीनविश्व मे रखे गये थे, इसकी एक लघु झांकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है। यूरोप में १५, ३० और ६० का विभाजन प्राचीन भारत से ही बैबीलन और ग्रीस के माध्यम से गया। पुराणों का प्रसिद्ध श्लोक है—

---

१. श० ब्रा० (१२।३।२।८)
२. अथर्ववेद (८।२।२१),
३. 'कलानांसुपरीणामात् काल इत्यभिधीयते' (वायुपु० १००।२२४),
४. तैत्तिरीयब्राह्मण (३।१०) में शुक्लपक्षादि के मुहूर्तों के नामादि द्रष्टव्य हैं।

काष्ठा निमेषा दश पंचैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तम् ।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशतो रात्र्यहनी समेते ॥[1]

"१५ निमेष की एक काष्ठा होती है, ३० काष्ठा की एक कला और ३० कलाओं का एक मुहूर्त और ३० मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है। महीने में ६० अहोरात्र होते हैं।"

ग्रहवारनाम

आधुनिक लेखक प्रायः यह उद्घोष करते हैं कि प्राचीन भारत में राशियों और वारों के नाम अज्ञात थे, परन्तु जिन ऋषियों या राजर्षियों के नाम पर ग्रहों और वारो के नाम रखे गए थे, वे सभी देवासुरयुगीन भारतीयपुरुष थे, यह हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि यह नामकरण वामनविष्णु द्वारा असुरेन्द्र-बलि की पराजय एवं भारतपलायन से पूर्व ही हो चुका था, हमारे मत की पुष्टि वारनामो से भी होती है, यथा भारतीयनाम—आदित्य (सूर्य) वार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार। अदितिपुत्र विवस्वान् (सूर्य या आदित्य) के नाम पर रविवार (आदित्यवार=ऐतवार) को यूरोप में 'सनडे' अत्रिपुत्र सोम या चन्द्रमा के नाम से मूनडे (मनडे), भौम मंगल या वैदिकदेवता 'मरुत्' (मार्स) नाम मे ट्यूजडे, सोमपुत्र राजर्षिबुध के नाम पर बुधवार (वेडनेसडे), देवपुरोहित बृहस्पति (आंगिरस) के नाम पर थर्स्डडे, शुक्र के नाम पर शुक्रवार (फ्राईडे) और सूर्यपुत्रशनि के नाम से शनिवार (Saturday) रखा गया। पुरूरवा का पिता बुध जब भारत मे ही रहता था, तभी वार का नाम 'बुधवार' रख दिया गया था, जब दैत्य भारत से भाग कर यूरोप मे बसे तब इसी नाम को वहाँ ले गये, यह प्रत्यक्ष है इसको अन्य प्रमाण की क्या आवश्यकता है।[2] 'शनि और सेटर्न' शब्दों का साम्य स्पष्ट है। ट्यूज (मंगल) 'मरुत्' शब्द का और 'थर्स' बृहस्पति (बृहस्) शब्द का विकार है।

---

१. वा० पु० (५०।१६६),

२. वैदिक मरुत् को यूरोप मे मार्स (मृत्युदेव) कहते हैं, वेद मे भी मरुत्-गण या मगल विघ्नेश मृत्युदेव हैं। 'बृहस्पति' के 'बृहस्' का विकार 'थर्स' रूप बन गया। बुध का 'वेडन' रूप स्पष्ट विकार है। शुक्र का ही एक नाम 'प्रिय' था, यह प्रेम (काम) या विवाह का देवता भी था। 'प्रिय' (प्रेम) शब्द ही बिगडकर फ्राई (डे) हो गया। विवाह शुक्रोदय में ही होते हैं।

वैदिकग्रन्थों में त्रिविध मासनाम मिलते हैं, इनमें प्रथम, चैत्रादि नाम अर्वाचीन और अधिक प्रचलित हैं, 'मधुमाधव' आदि नाम केवल वैदिक हैं तथा अरुणादि नाम केवल तैत्तिरीयब्राह्मण (३।१०) मे ही मिलते हैं। १२ मासों का 'सम्वत्सर' या वर्ष जगत्प्रसिद्ध हैं। वर्ष को वैदिक-ग्रन्थों मे सम्वत्सर आदि कहा जाता था और ऋतुओ के नाम पर शरद्, हिम, वर्ष इत्यादि भी कहा जाता था। वर्ष का प्राचीनतम नाम वेद में हिम था, क्योंकि 'हिमयुग' मे 'हेमन्त' ऋतु या 'शरदृतु' का प्राबल्य था।

कल्प, मन्वन्तर और युगसम्बन्धोभ्रान्तिनिराकरण

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते।
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥ (कालिदास)

"सन्त (या सत्यशोधक) परीक्षण के अन्तर ही तथ्य स्वीकार करते हैं, परन्तु मूढ (मूर्ख) केवल दूसरो की वात पर ही विश्वास कर लेते हैं।"

पुराणों में यद्यपि अनेक तथ्यात्मक ऐतिहासिक घटनाओ का प्रामणिक वर्णन है, तथापि अनेक भ्रष्टपाठो के कारण तथा उनमे निरन्तर परिवर्तन होते रहने के कारण, उनके वचन प्रायः श्रद्धेय (विश्वसनीय) नही समझे जाते। पुराणों मे सर्वाधिक परिवर्तन विक्रम सम्वत् आरम्भ से एक दो शती पूर्व, युग-गणना या कालगणनासम्बन्धीपाठो मे कर दिया गया, जिससे पुराणोल्लिखित सत्य इतिहास भी इतिहास न रहकर कल्पनालोक की वस्तु रह गया। पाश्चात्य षड्यन्त्रकारी लेखको ने पुराणों के प्रति अश्रद्धा को और बढाया और गौतम बुद्ध और बिम्बसार से पूर्व के किसी भी ऐतिहासिक पुरुष, जिसका इतिहास पुराणो मे उल्लेख था, उसे ऐतिहासिक नही माना। मैगस्थनीज के आधार पर उन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्य की एक काल्पनिक तिथि घड़ ली और इसी काल्पनिक तिथि के आधार पर गौतम बुद्ध मे गुप्तकाल तक की तिथियां निश्चित की।

ऐसे अज्ञानावृत वातावरण मे एक प्रकाशस्तम्भ का उदय हुआ—पडित भगवद्दत्त के रूप मे - जिन्होंने पाश्चात्य चेष्टाओं पर प्रहार करते हुये इतिहास पुराणो के आधार पर स्वायम्भुव मनु से गुप्तकाल तक के इतिहास का पुनरुद्धार किया। पण्डितजी का प्रयत्न, बहुत प्रारम्भिक, परन्तु साहसिक था। इतिहास पुराणों के आधार पर, उन्होंने भारतयुद्ध एवं उससे पूर्व की तिथियां निश्चित करने का विद्वत्तापूर्ण प्रयत्न किया और भारतीय इतिहास का प्रारम्भ विक्रम से १४००० वि० पू० माना अर्थात् सिद्ध किया। युगसमस्या का स्पर्श करने पूर्व हम पण्डितजी के कुछ मूलवचन, उनकी पुस्तकों से उद्धत करते हैं। क्योंकि मुझे सत्य इतिहास मे अनुसंधान करने एव लिखने की प्रेरणा पं० भगवद्दत्त के ग्रंथों

के ही मिली और वे ही पुराणों से सच्चा इतिहास निकालने वाले, वर्तमान युग में प्रथम अनुसंधाता थे, जो मेरी प्रेरणा के स्रोत थे, अतः सर्वाधिक मत उन्हीं के उद्धृत किये जायेंगे। पण्डितजी ने पुराणोल्लिखित युगगणना एवं तिथिसंबन्धी कुछ समस्याओ को आंशिकरूप से सुलझा लिया था, और कुछ समस्याओं को नही सुलझा पाये। अब उनके कुछ मूलकथन दृष्टव्य है—

(१) ब्रह्माजी का काल बहुत पुराना है। जर्मनभाषा के आधार पर भारतीय इतिहास की जो रूपरेखा उपस्थित की गई है वह अविश्वसनीय सिद्ध हो चुकी है। महाभारतयुद्ध का काल (विक्रम से ३००० वर्षपूर्व) निर्धारित हो चुका है। तदनुसार जलप्लावन के लिये हमने कलि से पूर्व लगभग ११००० वर्ष का काल माना है। ४८०० वर्ष कृतयुग, ३६०० वर्ष त्रेतायुग, २४०० वर्ष द्वापरयुग। पूरा योग बना १०८०० वर्ष। इसके साथ कलि और प्रवृद्धकलि के ५००० से कुछ अधिक वर्ष जोडने पर लगभग १६००० वर्ष बनते हैं। यह न्यूनातिन्यून काल है। पूर्ण सम्भव है, यह काल इससे अधिक हो। आने वाले विद्वान् इस विषय पर अधिक प्रकाश डाल सकेंगे।"[1]

निश्चय ही पण्डितजी ने एक सत्य, आंशिक सत्य का आधुनिककाल मे उद्घाटनकिया है। परन्तु ब्रह्मा एक नही अनेक हुये हैं, यथा कश्यप, वरुण आदि भी ब्रह्मा या प्रजापति कहे जाते थे। आगे हम सिद्धि करेंगे कि विक्रम से १४००० वर्षपूर्व कश्यप प्रजापति (ब्रह्मा) हुये थे, न कि स्वयम्भू ब्रह्मा और उनका पुत्र स्वायम्भुव मनु। यास्क के निरुक्त (३/४) में जिस विसर्गादि[2] (आदिकाल = आदियुग) का उल्लेख है, वह विक्रम से ३०००० वर्ष पूर्व का काल था, इसका आगे विस्तार से विवेचन करेंगे।

प० भगवद्दत्त ने ही, सर्वप्रथम वायुपुराणोल्लिखित त्रेता और उसके अवान्तर विभागों की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने लिखा "वायुपुराण में २४ त्रेता और २८ द्वापर माने गए हैं। इनमें आद्यत्रेता स्वायम्भुव अन्तर में था। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य है :

(क) तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा/वायु०६/६४

(ख) त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन् स्वायम्भुवेऽन्तरे, ॥ ,, ३१/३

(ग) स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ॥ ॥ ३३/५

——वायु का युगविभाग महाभारत से कुछ भिन्न प्रकार का है। वायु

१. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग १, पृ० २५४,

२. "मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥"

का वैवस्वतमनु का आरम्भ त्रेता से होता है। वायु का वर्तमानरूप भारत युद्ध के पश्चात् महाराज अधिसीमकृष्ण के काल का है। परन्तु वायु की बहुत सी सामग्री अतिपुरातनकाल की है। उसका कालविभाग अन्य प्रकार का था, अतः निम्नलिखित श्लोक भी दृष्टि मे रखने होंगे। भावी विद्वानो को इस समस्या की पूर्ति करनी चाहिये —

> कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत्प्रजा ।
> त्रेतायां युगमन्यतु कृतांशमृषिसत्तमाः ।।

वायु के त्रेता एक ही त्रेता के अवान्तरविभाग—वायु के बहुत से त्रेता एक ही त्रेता के अवान्तर विभाग हैं। वायु के अनुसार आद्यत्रेता से लेकर चौबीसवें त्रेता तक निम्नलिखित व्यक्ति हुये थे—

दक्ष प्रजापति	—	आद्य त्रेतायुग
बारह देव	—	आद्य त्रेतायुगमुख
करन्धम	वायु ८६/७	त्रेतायुगमुख
अविक्षितपुत्र	आश्वमेधिक पर्व ४/१७	त्रेतायुगमुख
तृणविन्दु	—	तृतीय त्रेतायुग
दत्तात्रेय	—	दशम त्रेतायुग
मान्धाता	—	पन्द्रहवाँ
जामदग्न्यराम	—	उन्नीसवा
दाशरथिराम	—	चौबीसवां
×	×	×

"अवान्तरत्रेताओ की अवधि=यदि इन अवान्तर त्रेताओ की अवधि तथा आदियुग, देवयुग और त्रेतायुग आदि की अवधि जान ली जाये, तो भारतीय इतिहास का सारा कालक्रम शीघ्र निश्चित हो सकता है। हम अभी इस बात को पूर्णतया जान नहीं पाये।"

(भा० बृहद्० भाग १० पृ० १५८-१५९)

इस सम्बन्ध में, यहाँ अति संक्षेप[१] मे निम्न बातें ध्यातव्य हैं—

(१) वायु के वर्तमान पाठों में भी अनेक भ्रष्टपाठ हैं, इसका प्रमाण है कि इसी पुराण का पाठान्तर है ब्रह्माण्डपुराण, जिसमे अवान्तर विभागों के लिए त्रेता के स्थान पर 'द्वापर' शब्द का प्रयोग किया गया है—दोनो ही के नाम भ्रान्तिजनक हैं।

---

१. युगों पर विस्तृत अनुसंधान ही अगे के अध्यायो में होगा।

प्रथमे द्वापरे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ॥[१]

वायु के ही अन्यत्र पाठ में त्रेता, या द्वापर के स्थान पर युग, पर्याय और परिवर्त शब्दों का प्रयोग है—

परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा विभुः ॥
यदा व्यासः सुरक्षस्तु पर्यायश्च चतुर्दश ॥

अतः सत्य या यथार्थपाठ पर्याय या परिवर्त युग था, इसका व्याख्यान (स्पष्टीकरण) विस्तार से होगा ।

उपर्युक्त युगसमस्या की कुन्जी 'व्यासपरम्परा' में ही निहित है, जिसका पृथक् अध्याय मे विस्तार से विवेचन करेंगे ।

कल्प, मवन्तर और दिव्यवर्ष या दिव्ययुग पुराणों या वैदिकग्रन्थों मे यत्र तत्र प्रयुक्त हुये, जिससे भी महती भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई ।

वर्तमान पुराणपाठ से पं० भगवद्दत्त को भी यह भ्रान्ति हुई कि विभिन्न अवान्तरत्रेता एक ही त्रेतायुग के विभाग है । परन्तु पुराणों, विशेषतः वायु पुराण व ब्रह्माण्डपुराण के सूक्ष्म अनुशीलन से सुस्पष्ट प्रतिभान होता हैं कि उपर्युक्त तथाकथित त्रेता न तो अवान्तर त्रेता थे और न ही महात्रेता के विभाग थे । मूल मे वे स्वतन्त्र एवं पृथक् ऐतिहासिकयुग थे, जिन्हें उत्तरा-कालीन पुराणप्रक्षेपकारों या प्रतिलिपिकारो ने कही त्रेता कही 'द्वापर' और कही कलियुग[२] कह दिया है । स्पष्ट ही यह महती भ्रान्ति है जो प्राचीन यथार्थ युग या परिवर्त का बोध न होने, उसकी विस्मृति से उत्पन्न हुई । यह वर्तमानभ्रान्तपाठों के कारण ही उत्पन्न हुई । अतः हम पूर्वपक्ष के रूप में प्रथम, वर्तमानपुराण-पाठो के आधार पर प्रचलित युगगणना का सिंहावलोकन करेंगे ।

युगगणनासम्बन्धी वर्तमान पुराणपाठ

वर्तमान पुराणपाठो से ऐतिहासिकयुगगणना[३] मे किस प्रकार महती भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई, इन कारणो को खोजने से पूर्व इस द्विविधयुग गणना का निर्देशन यहां प्रस्तुत करते हैं—

---

१. ब्रह्माण्ड० (१।२।३५)

२. परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति ।
तत्राहं ब्रह्मन् कलौ तस्मिन्युगान्तिके ॥ वायु० पृ०२३

३. यह युगगणना द्विविध थी एक चतुर्युगीगणना और प्राचीनतर परिवर्त-युगगणना ।

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।
कृतस्य तावद् वक्ष्यामि च निबोधत ।
सहस्राणां शतान्याहुश्चतुर्दश हि संख्यया ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतम् युगम् ।
तथा शतसहस्राणि वर्षाणि दशसंख्यया ।
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य सः ।
सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषेण तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालः स द्वापरस्य च ।
तथा शतसहस्राणि वर्षाणां त्रीणि संख्यया ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य च ।
एव चतुर्युगे काल ऋतैः संध्यांशकैः स्मृतः ।
नियुतान्येव षड् विंशान्निरसानि युगानि वै ।
चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया ।
विंशतिश्च सहस्राणि च ससंध्यश्च चतुर्युगः ॥

(ब्रह्माण्ड० ११२।२९।२६-३६)

'चारो युग (कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग) कुल १२००० वर्ष के होते हैं। यह गणना स्पष्ट ही मानुष वर्षमान के आधार पर है।" कृतयुग के वर्ष (बिना संध्या के) १४ लाख ४० सहस्र होते हैं। त्रेतायुग १० लाख ८० सहस्र वर्ष का होता है। द्वापरयुग सात लाख २० हजार वर्ष का होता है। और कलियुग ३ लाख ६० हजारवर्ष का होता है। यह बिना सध्यांश के कालगणना है। संध्यांशों को मिलाकर चारो युग (चतुर्युग) ४३ लाख और २० हजारवर्ष के होते है।"

अत कहा गया है कि इस प्रकार के ७१ चतुर्युग मिलकर एक मन्वन्तर होता है, मन्वन्तर की अवधि ३० करोड़ ६७ लाख और बीस सहस्र मानी गई। और १४ मन्वन्तरो का एक कल्प=(ब्रह्मा=सृष्टि=का एक दिन)=४ अरब ३२ करोड़ वर्षों का माना गया। यह अर्धकल्प है। कल्प के दिनरात्रि मिलकर ८ अरब ६४ करोड़ वर्षों के हैं।

यह है संक्षेप मे कल्प, मन्वन्तर और चतुर्युग का वर्षमान, जो वर्तमान पुराणपाठों से उद्‌घाटित होता है। निश्चय ही यह कालगणना ऐतिहासिक नही है और नहीं इसका इतिहास में कोई उपयोग है। पुराणों में भी इसका ऐतिहासिक उपयोग कहीं नहीं है। केवल सिद्धान्त के रूप में अथवा यों कहिये

भ्रान्तिरूप में हुरे पुराणों में इसका वर्णन है। हमने भ्रान्ति के निराकरणार्थ ही इसको यहाँ उद्धृत किया है।

'कल्प' शब्द का व्याख्यान—भ्रान्तिनिराकरण—मूलपुराणो में महाभारत-काल एवं उससे पूर्व—द्विविध ऐतिहासिक युगगणना प्रचलित थी। पूर्वकाल मे 'पर्याय' या 'परिवर्तयुग'गणनापद्धति प्रचलित थी, उत्तरकाल मे—महाभारतयुद्ध से लगभग १००० वर्ष पूर्व (४५०० वि० पू०) चतुर्युगीगणना पद्धति का प्राबल्य हो गया। पर्याय या परिवर्त (युग) का मान ३६० मानुष वर्ष था और चतुर्युग का मान था—'द्वादशसहस्रवर्ष'[1] (१२०००) मनुस्मृति मे इसी को एक 'देवयुग'[2] कहा गया है। यह देवयुग' पद महती भ्रान्ति का कारण बन गया, इसका विशेष व्याख्यान एवं स्पष्टीकरण आगे विस्तार से करेंगे मूल में कल्प शब्द ब्रह्माण्डरचना या पृथ्वीरचना आदि का पर्याय था—

> कल्पस्यादौ सुबहुला यस्मात्संस्थाश्चतुर्दश।
> कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात्कल्पो निरुच्यते ॥[3]

प्राचीनसंस्कृतवाङ्मय में 'कल्प'शब्द अनेक अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है। यथा वेद का एक वेदांग है—'कल्प' (सूत्र)

अर्थवाद और ऐतिह्यविधि को भी कल्प कहा जाता था—

> 'पुराकल्प इत्यर्थवादः (न्यायसूत्र २।१।६४)
> ऐतिह्यसमाचरितो विधिः पुराकल्पः (वात्स्यायनन्यायभाष्य)

पुराकल्प एक ऐतिहासिकशास्त्र भी था—

> श्रूयते हि पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः।[4]
> पुराकल्पे कुमारीणा मौञ्जीबन्धनमिष्यते (यमस्मृति)

वायुपुराण अनुषंगपाद मे ब्रह्मकल्प ध्रुवकल्प; तपकल्प, गन्धर्वकल्प, षड्जकल्प, मनुकल्प, रक्तकल्पसंज्ञक ३१ प्रकार के कल्प (रचना या सृष्टियो) का उल्लेख है। अतः पुराणों मे ही कल्पशब्द केवल 'कालमान' के रूप ही प्रयुक्त नहीं हुआ, अन्य बहुत से अर्थों में प्रयुक्त है, तथापि पुराणों में इसका 'कालवाची' अर्थ भी माना जाता है।

---

१. तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता।
   कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२९-३०)
२. एतद् द्वादशसहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ (मनु० १।९)
३. ब्रह्माण्ड० १।२।६।७४)
४. अनुशासनपर्व

हम पूर्वपृष्ठ पर संकेत कर चुके हैं कि पुराणों में द्विविध ऐतिहासिक युगगणना पद्धतियाँ प्रचलित थीं। उन दोनों के संमिश्रण से ही वर्तमान 'अनैतिहासिकयुगपद्धति' का आविष्कार हो गया, जिसका इतिहास में कोई उपयोग नहीं। व्यासपरम्परा पर एवं अन्य सकेतों के आधार हमने परिवर्त या (तथाकथित अवान्तर त्रेताओं) का कालमान ज्ञात कर लिया, जिसको परमश्रद्धेय पं० भगवद्दत्त ज्ञात नही कर सके।

ब्रह्माण्डपुराण (१।२।६।७४) के पूर्वोक्तश्लोक में कहा गया है कि स्वयम्भू ने १४ प्रकार की संस्थाओ (देव, गन्धर्व, मानुष, पिशाचादि की सृष्टि की (कल्पयामास), अतः इस सृष्टि को 'कल्प' कहा गया। वर्तमानकल्प को 'वाराहकल्प'[1] कहा जाता है। इससे पूर्व पृथिवी पर सहस्रकल्प व्यतीत हो चुके थे—

> एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च।
> सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः।
> मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च संभवः।[2]

वाराहकल्प का प्रारम्भ अबसे लगभग ३२ सहस्रवर्षपूर्व हुआ था, जब वाराहसञ्ज्ञकमेघ[3] ने पृथ्वी का समुद्र से पुनरुद्धार किया—(१) स (प्रजापति.) वाराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत् स पृथिवीमध आर्च्छत्। तस्मा उपहत्योप न्यमज्जत्। तत् पुष्करपर्णेऽप्रथयत्। तत् पृथिव्यै पृथिवित्वम्[4] "वह प्रजापति निश्चय ही वराह का रूप धारण करके समुद्र मे चला गया। वह उसके नीचे गया और बाहर निकला। उसे पुष्करपर्ण पर फैलाया। यही पृथिवी का पृथिवीत्व है।'

निरुक्त (२।४) में यास्क ने व्याख्यान किया है कि 'वराहो मेघो भवति।'

वायुपुराण मे स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा ने वायु (मेघ) का रूप धारण करके सलिल (समुद्र) मे विचरण किया और जल से संछादित भूमि को जल से बाहर निकाला।

---

१. यस्चायं वर्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः। (ब्रह्माण्ड १।२।६।६)
२. ब्रह्माण्डपु० (१।२।६।२)
३. वाराहं रूपमास्थाय मयेयं जगती पुरा।
मज्जमाना जले विप्र वीर्येणासीत् समुद्धृता ॥(वनपर्व १९२।११)
४. तै० ब्रा० (१।१।३।६,७)

यह वर्तमान 'वाराहकल्प' सहस्रोंकल्पों से एक है जो पृथिवी पर व्यतीत हुये तथा यह 'वाराहकल्प' पूर्वकल्प का अवान्तर कल्प (विभाग) ही है[1]—
यश्चायं वर्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः।

अस्मात्कल्पात्तु यः पूर्वः कल्पोऽतीतः सनातनः।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां निबोधत ॥
प्रत्यागते पूर्वकल्पे प्रतिसंधि विनाऽन्यथाः।
अन्यः प्रवर्तते कल्पो जनलोकावयं पुनः ॥[2]

अत पुराणप्रामाण्य से ज्ञात होता है कि यह कल्प (जीवसृष्टि) बिना प्रतिसन्धि के ही पूर्व सनातन (चिरकालीन) कल्प का एक अवान्तरविभाग है। इस अवातर वाराहकल्प को प्रारम्भ हुये अभी लगभग ३२ सहस्र व्यतीत हुये हैं, यह स्वायम्भुव मनु की तिथि निश्चित करते समय, सिद्ध किया जायेगा।

अनेकबार जीवसृष्टि एवं प्रलय (कल्प=सर्ग और प्रतिसर्ग--पृथिवी पर अनेकबार उष्णयुग या हिमयुग व्यतीत हो चुके हैं, जिनमें अनेक बार आंशिक या पूर्ण सृष्टि नष्ट हुई और पुनरुत्पन्न हुई। प्राचीन साहित्य से ज्ञान होता है कि मनुष्य को केवल दो प्रलयो की स्मतशेष है। इसमें, प्रथम महाप्रलय में अग्निदाह के पश्चात् वराह (मेघ=ब्रह्मा) की कृपा से सलिलमय पृथिवी का उद्धार हुआ और स्वायम्भुव मनु ने नवीन मानवसृष्टि उत्पन्न की। पूर्व कल्पान्त या युगान्त मे पृथिवी के दग्ध होने पर पृथिवीवासी वैमानिक देवगण (पूर्वप्रजा) विमानो मे बैठकर दूसरे लोको में चले गए।

चतुर्युगसहस्रान्ते सह मन्वन्तरैः पुरा
क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते।
तस्मिन् काले तदा देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे।

---

१. ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुभुत्वा तदाचरन्।
स तु रूप वराहस्य कृत्वाऽपः प्राविशत् प्रभुः ॥
अद्भिः संछादितामुर्वीसंमीक्ष्याथ प्रजापतिः।
उदधृत्योर्वीमथादृभ्यस्तु अपस्तासु स विन्यसन् (वायु० ८।२,७,८)

२. ब्रह्माण्ड० (१।२।६।६—८) तथा द्रष्टव्यरामायण (११०।३-४)
सर्वसलिलमेवासीत् पृथिवी यत्र निर्मिता
ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैस्सह ॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम् ॥

तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः ।
महर्लोकाय संविग्ना दधिरे मनः । (ब्रह्माण्डपु० ६)

"चतुर्युगसहस्र के अन्त मे मन्वन्तरो का अन्त होने पर, कल्पनाश के समय दाहकाल उपस्थित होने पर पृथिवीवासीदेवगण संताप से संविग्न होकर पृथिवीलोक छोड़कर महर्लोक बसने चले गए।"

उपर्युक्त पृथिवीवासी वैमानिकदेवगण स्वायम्भुवमनु से पूर्व पृथिवी की प्रजा (निवासी) थे। वे दाहकाल का आगमन देखकर किसी अन्य ऊर्ध्वलोक में चले गये, पुराण के उक्त संकेत में अतिरिक्त प्राक्स्वायम्भुव इन देवो का इतिहास पूर्णतः अज्ञात है। वर्तमान पुराणों मे मुख्यतः इतिहास स्वायम्भुव मनु से ही प्रारम्भ होता है, इससे पूर्व का इतिहास आज अज्ञात है।

उपर्युक्त पुराणप्रमाण से हमारे इस मत की पुष्टि होती है कि पृथिवी पर अनेक बार मानवसृष्टि और सभ्यता का उदय और अस्त हुआ था। और कुछ आधुनिक वैज्ञानिको के इस मत को बल मिलता है कि प्राणिवर्ग एवं मनुष्य दूसरेग्रह से आकर पृथिवी पर बसे और उड़नतश्तरियों में बैठकर आज भी तथाकथित अन्तरिक्ष मानव या देवगण पृथिवी पर आते रहते हैं। इस सम्बन्ध में हम प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक सर फ्राइड हायल का मत 'अपनी पूर्व पुस्तक 'भारतीय इतिहास पुनर्लेखन क्यों?' पृष्ठ २१ पर लिख चुके हैं। आधुनिकयुग में, इस विषय पर सर्वाधिक अनुसन्धाता प्रसिद्ध जर्मन इतिहासकार एरिक वान डेनीकेन ने अनेक पुस्तके लिखी हैं, जिसमे प्रमुख— (Chariots of gods) और प्राचीनदेवो की खोज (In search of ancient gods) इत्यादि।

कल्प की यथार्थ अवधि या कालमान—कल्प, मन्वन्तर और चतुर्युग के वर्तमान पाठो मे अविश्वसनीय काल क्यो प्रचलित हुये, इस भ्रान्त धारणा का यहां विस्तृत विवेचन करेंगे। परन्तु, इससे पूर्व 'कल्प' का यथार्थ वर्षमान ज्ञातव्य है।

मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है कि १२००० वर्षों (चतुर्युग) का एक 'देवयुग' या 'महायुग' या 'युग' होता है—

एतद् द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते। (मनु० १।६)

यह द्वादशसहस्रवर्ष मानुषवर्षगणना के आधार पर थे, ऐसा पुराण में स्पष्ट लिखा है—

तेषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ।
कृत त्रेता द्वापर च कलिश्चैव चतुष्टय्यम् ।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः (ब्रह्माण्ड० १।२९-३०)

पाश्चात्य लेखक ह्विटने आदि का मत पूर्णतः ठीक है। कि इन १२००० वर्षों को देववर्ष मानने की कल्पना मनु की नहीं हैं।[१] यही मत श्री लोकमान्य तिलक का था।[२] अतः प्राचीनशास्त्रों के मूलवचन द्रष्टव्य है—

सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्यद् ब्रह्मणो विदुः (गीता ८।१६)
सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्ब्राह्म स राध्यते। (बृ० ८।६८)
युगसहस्रपर्यन्तमहर्यद ब्रह्मणो विदुः ॥
रात्रिर्युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः (निरुक्त १४।४।१७)
दैविकाना युगाना तु सहस्रं परिसंख्यया ।
ब्राह्ममकेमहर्ज्ञेय तावती रात्रिमेव च ॥ (मनु० १।७२)

उपर्युक्त ग्रन्थो मे यह रञ्चमात्र भी संकेत नही है कि ब्रह्मा का एक दिन जो 'सहस्रयुगपर्यन्त' होता है, वह दिव्यवर्षों मे है जब मनुस्मृति के अनुसार देवयुग सामान्य मानुष—१२००० वर्षों का था, तब सहस्रदेवयुगो को भी मानुषवर्षों का समझना चाहिए। अत यदि 'सहस्र' शब्द यथार्थसख्या का ही बोधक है तो 'कल्प' कुल १२००००० (एक करोड बीस लाख) मानुषवर्षों का था न कि चार अरब बत्तीस करोड (वर्षों) का। यदि कल्प का आरम्भ स्वायभुव मनु से हुआ था तो इसके केवल ३२ सहस्रवर्ष व्यतीत हुए हैं, न कि दो अरब वर्ष। यही तथ्य वक्ष्यमाण 'मन्वन्तरो की अवधि' से पुष्ट होगा ।

मन्वन्तरों का क्रम और अवधि—सर्वप्रथम १४ मनुओ का क्रम द्रष्टव्य है। पुराणनुसार उनका क्रम इस प्रकार है—

(१) स्वायम्भुव मनु	(८) सावर्णि मनु
(२) स्वारोचिषमनु	(९) दक्षसावर्णि
(३) उत्तम मनु	(१०) ब्रह्मसावर्णि
(४) तामस मनु	(११) धर्मसावर्णि
(५) रैवत मनु	(१२) रुद्रसावर्णि
(६) चाक्षुषमनु	(१३) रौच्य मनु
(७) वैवस्वतमनु	(१४) भौत्यमनु

१. भारतीय ज्योतिष — श्री बालकृष्ण दीक्षित (पृ० १४८,३५०)
२. आर्कटिक होम इन दी वेदाज पृ० ३५०

अब पुराणों में इनका कालक्रम और वंशसम्बन्ध द्रष्टव्य है—

स्वारोचिषश्चोत्तमोऽपि तामसो रैवनस्तथा ।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवः स्मृताः ।।
(ब्रह्माण्ड० १।२।३६।६५)

सावर्णमनवस्तात पंच तांश्च निबोध मे ।।
दक्षस्यैते सुतास्तात मेरुसावर्णतां गताः ।।
दक्षस्यैते दौहित्राः प्रियायास्तनया नृप ।। (ब्रह्माण्ड०)

'स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत— ये चार मनु (स्वायम्भुव मनु के पुत्र) प्रियव्रत के वंशज थे ।'

पांच सावर्ण मनु परमेष्ठी (कश्यप) के पुत्र और दक्ष के दौहित्र तथा उसकी पुत्री प्रिया के पुत्र थे जो मेरुसावर्णता को प्राप्त हुये ।

प्रथम सावर्णि को वायुपुराण (४।१००।५८,३०) मे दक्षपुत्र रोहित कहा गया है—

प्रथमं मेरुसावर्णेर्दक्षपुत्रस्य वै मनोः ।
दक्षपुत्रस्य पुत्रान्ते रोहितस्य प्रजापतेः ।।

अष्टम मनु रोहित या मेरुसावर्णि का समय निम्न पुराणवचनों से ज्ञात होता है—

वैवस्वते ह्युपस्पृष्ठे किंचिच्छिष्टे च चाक्षुषे ।
जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतान्तरे ।। (वायु० १००।२६)

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभा (३२) रौच्यमनु का समय पुराण मे निर्दिष्ट है—

चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य च ।[1]
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः । (वायु १००।५४)
... .भौत्यो नामाभवत्सुतः ।
वैवस्वतेऽन्तरे राजन् द्वौ मनू तु विवस्वतः ।।

'चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत होने पर और वैवस्वतमन्वन्तर के प्राप्त होने (आरम्भ से पूर्व) रुचिप्रजापति का पुत्र रौच्यमनु हुआ ।' 'भौत्यमनु और दो वैवस्वत मनु भी (लगभग) उसी समय हुये ।' उपर्युक्त सभी मनु, भविष्य के नहीं, भूतकाल के प्राणी थे, कुछ मनु, वैवस्वत मनु के समकालिक और कुछ

१. ब्रह्माण्ड० (३।४।१।५०)

उनसे दोचारसती पूर्ववर्ती । मेरुसावर्णि (रोहित) मनु का इन्द्र, स्कन्द (कार्तिकेय पावकि) को बताया गया है—

स्कन्दोऽसौ पार्वतीयो वै कार्तिकेयस्तु पावकिः । (ब्रह्माण्ड० ३।४।१।६१)
उसका अन्य नाम अद्भुत भी था ।

तेषमिन्द्रस्तदा भाव्यो ह्यद्भुतो नाम नामतः (६१) पार्वतीपुत्र स्कन्द कार्तिकेय को कौन मूढ़ भविष्य का व्यक्ति मानेगा ।

पांचसावर्णिमनु चाक्षुषमन्वन्तर (चाक्षुषमनु) के कुछ काल पश्चात् ही हुये यह स्पष्ट ही प्रामाणिक प्राचीन पुराणों मे उल्लिखित है—

दक्षस्य ते हि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः सुताः ।
महानुभावास्ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेऽन्तरे ॥ (३।४।१।२४,२६)

चार मनु, कश्यपप्रजापति (ब्रह्मा = परमेष्ठी) के पुत्र तथा एक सावर्णि मनु, विवस्वान् के पुत्र थे । चार सावर्ण मनु कश्यप के पुत्र और दक्ष के दौहित्र होने से देवों (द्वादशआदित्य-वरुणादि) एव दैत्य हिरण्यकशिपु के समकालिक एव उनके भ्राता ही थे, अतः जो समय आदित्यो और दैत्यो का था, वही पाच मावर्णिमनुओ का था । इन पाच सावर्णमनुओ का सम्बन्ध दक्ष, धर्म (प्रजापति) ब्रह्म (कश्यप = परमेष्ठी) से बताया गया है, इससे भी यही तथ्य पुष्ट होता है कि उपर्युक्त सावर्ण (पाच) मनु रुद्रादि के समकालिक थे । धर्म और रुचि प्रजापति दोनो भ्राता थे, जो ब्रह्मा के मानसपुत्र तथा स्वायम्भुव मनु के समकालिक ही थे ।

ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा धर्मं भूतसुखावहम् ।
प्रजापतिं रुचिं चैव पूर्वेषामपि पूर्वजौ ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।६।२०)

मूल मे (वास्तव मे) रुचि या कर्दम प्रजापति पुलह ऋषि के पुत्र थे । भौत्य मनु भूति के पुत्र थे, जो भार्गव वंशीय थे—

रौच्यो भौत्यो यौ तौ तु मतौ पौलहभार्गवौ" ।[२] अतः रौच्य मनु और भौत्य मनु, कश्यप से पूर्व और संभवतः चाक्षुष मनु से भी पूर्ववर्ती या न्यूनतम उनके समकालिक थे । उपर्युक्त पौलह और भार्गव ऋषि वैवस्वत मन्वन्तर या द्वितीय जन्म के भृगु (वारुणि) आदि के पुत्र नही, बल्कि स्वायम्भुव मन्वन्तर मे ब्रह्मा के मानसपुत्र भृगु आदि प्रथम के वंशज थे, वैवस्वत मन्वन्तर मे तो पुलह या पौलह का नाम सुनाई ही नही पड़ता । वे वैवस्वतमनु अथवा

२. ब्रह्माण्ड० (३।४।१।११६)

पृथुवैन्य से पूर्व हो चुके थे। भौत्य मन्वन्तर में चक्षु के पुत्र चाक्षुष देवता थे[1], अतः भौत्यमनु चाक्षुष के कुछ पूर्ववर्ती ही थे। भौत्य मन्वन्तर में वाचावृद्ध संज्ञक देवर्षियों का सम्बन्ध स्वायम्भुव मनु से बताया गया है।[2] इससे भी भौत्य मनु की प्राचीनता और समकालिकता सिद्ध है। वैवस्वत मन्वन्तर को छोड़कर अन्य तेरह मन्वन्तरों के सप्तर्षि ब्रह्मा के मानसपुत्रों पुलहादि के वंशज थे, उदाहरणार्थ तथाकथित अन्तिम भौत्य के समकालिक सप्तर्षि थे—

> भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिरांगिरसस्तथा।
> युक्तश्चैव तथाऽऽत्रेयः शुक्रो वासिष्ठ एव च।
> अजित पौलहश्चैव अन्त्याः सप्तर्षयश्च ते।। (हरिवंश १।७।६३-६७)

"भार्गव अतिबाहु, युक्त आत्रेय, शुचि आंगिरस, शुक्र वासिष्ठ अजित पौलह।

उपर्युक्त रौच्य मनु आदि के पूर्ववर्ती स्वारोचिष मनु आदि चार मनु भी परस्पर सम्बन्धी और एक ही वंश प्रियव्रत के वंशज थे, यह पुराण में स्पष्ट ही लिखा है। अत. तथाकथित भावी सप्त मनुओं सहित १३ मनु वैवस्वत मनु से पूर्व हो चुके थे, यह पुराणप्रामाण्य से ही सिद्ध है। इनमें से अनेक मनु परस्पर भ्राता या पितापुत्र ही थे यथा तृतीय मनु उत्तम का पुत्र तामस चतुर्थ मनु था। चार मनुसावर्ण परस्पर भ्राता (महोदर-एक माता के पुत्र) थे। सावर्णमनु और वैवस्वत मनु—विवस्वान् के पुत्र, अतः भ्राता ही थे।

अत· प्रत्येक विचारशील मनुष्य मान जायेगा कि १४ मनु भूतकालिक प्राणी थे और इनका क्रम इस प्रकार था—

(१) स्वायम्भुवमनु	(२) स्वारोचिष मनु
(३) उत्तम मनु	(४) तामस मनु
(५) रैवत मनु	(६) रौच्य मनु
(७) भौत्य मनु	(८) चाक्षुष मनु
(९) मेरुसावर्णि मनु	(१०) दक्षसावर्णि = प्राचेतस
(११) ब्रह्मसावर्णि -(कश्यप)	(१२) धर्मसावर्णि = प्रजापति
(१३) वैवस्वत मनु	(१४) वैवस्वतमनु सावर्णि

अतः कौन विज्ञ पुरुष पितापुत्र या परस्पर भ्राताओं में ३० करोड ६७ लाख 20 सहस्र वर्षों का अन्तर मानेगा, जैसा कि वर्तमानपुराणपाठों में मन्वन्तर का 'वर्षमान' है। अनेक मनु समकालिक थे—यथा पाँच सावर्णि मनु और

---

१. ब्रह्माण्ड० (३।४।१।१०६)

२. वाचावृद्धानृषीन्विद्धि मनोः स्वायम्भुवस्य वै (वही ३।४।१।१०६)

कुछ मनुओं में एक या दो पीढी का अन्तर था और एक पीढी में अन्तर एक शती से अधिक नहीं हो सकता। कुछ मनुओं में कुछ शताब्दीमात्र का अन्तर था, कुछ मनुओं मे कुछ पीढियों का अन्तर था।[1] अतः मनु या मन्वन्तर मे करोडोवर्ष का अन्तर मानना महती भ्रान्ति है, जिसके कारणो का विश्लेषण या विवेचन आगे किया जायेगा।

अब यह द्रष्टव्य एवं अन्वेष्टव्य है कि चौदह मनुओं की पूर्ण कालावधि का रहस्य 'मनु' शब्द एवं पुराण के निम्न श्लोक मे है—

> तच्चैकसप्ततिगुणं परिवृतं तु साधिकम्।
> मनोरेतमधिकारं प्रोवाच भगवान् प्रभुः।[2]

'मनु' शब्द का मूलार्थ था 'मनुष्य' या पुरुषपीढी। मनु या पुरुषपीढी को 'युग' या 'पुरुषायु' या 'आयु' मे भी व्यक्त किया जाता था—शतायुर्वैपुरुषः" (श० ब्रा० १३।४।१।१५)

> 'तस्माच्छत वर्षाणि पुरुषायुर्भवन्ति ।(ऐ० आ०)
> 'दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे'। (ऋग्वेद १।१५८।६)
> तत उ ह दीर्घतमा दशपुरुषायुषाणि जिजीव' (शा० आ० २।१६)

वेद मे पुरुषपीढी को मानुषयुग (१०० वर्ष) कहा गया है—

> नद्विचिषे मानुषेमा युगानि। (ऋ० १।१०३।४)
> विश्वे ये मानुषयुगा पान्ति मर्त्य रिषः। (ऋ ५।५२।४)

एक मन्वन्तर मे ३० करोड ६७ लाख २० सहस्र माने जायें तो चार सोदर्य भ्राताओ सावर्ण मनुओ अथवा उत्तम मनु के पुत्र तामस (चतुर्थमनु) मे इतना दीर्घ कालान्तर कैसे हो सकता है, यह सोचने की बात है। वेद मे सामान्य मनुष्यायु १०० वर्ष का ही माना जाता था अत. पुराणों के वर्तमानपाठो मे स्वायम्भुवमनु (आदिम मनुष्य) से वैवस्वत मनु (अन्तिम मनु) पर्यन्त ५० पीढियां वर्णित है,[4]

---

१. यथा—तृतीय मनु उत्तम का पुत्र तामस मनु मे एक ही पीढी का अन्तर हुआ (२) उत्तम मनु की लगभग ४०वी पीढी मे चाक्षुष मनु हुये और चाक्षुष मनु से वैवस्वत मनु मे केवल १२ पीढ़ियो का अन्तर था।

२. ब्रह्माण्ड० (१।२।३५।१७३)

३. दिव्ययुग देवयुग-देववर्ष आदि को आगे स्पष्ट करेगे।

४. बाइबिल (जीनियस) मे आदम (आत्मभू स्वायम्भुव मनु) से वैवस्वत मनु (नूह) तक केवल दश पीढियां वर्णित है।

अनुमानतः पुराणों मे २२ नाम छोड़ दिये गये, क्योंकि केवल प्रधानपुरुषों की गणना करना पुराणशैली थी—

पुनरुक्तात्बहुत्वात् न वक्ष्ये तेषु विस्तरम् । (वायु० १००।७०) अतिप्राचीन नामों मे विस्मृति भी स्वाभाविक थी, पुराणो मे जब अनेक भ्रम जुड़ते गये तो एक यह भ्रम भी जुड़ गया कि ७१ युगो (परिवर्तयुग) का एक मन्वन्तर होता है अतः स्वायम्भुवमनु से वैवस्वतमनुपर्यन्त ४३ परिवर्त या १६००० वर्ष व्यतीत हुये । प्रत्येक मन्वन्तर अथवा १४ मनुओ या मन्वन्तरों का कालान्तर कोई निश्चित नही था क्योंकि कुछ मनु पितापुत्र थे, कुछ सहोदर भ्राता, कुछ मे १२ पीढ़ी का, कुछ मे ४० पीढ़ी का अन्तर था । प्रजापतियुग और देवयुग मे मनुष्य (देव, ऋषि आदि) की आयु दीर्घ होती थी इसका विवेचन पृथक् प्रकरण मे करेंगे । अतः वैवस्वतमनु से १६००० (न्यूनतम) वर्ष पूर्व स्वायम्भुव मनु हुये । यह कालान्तर अधिक हो सकता है न्यून नहीं, क्योंकि उस समय मनुष्य दीर्घजीवी होते थे ।

परिवर्तयुगाख्या और युगमानविवेक

वेद मे मानुषयुग के साथ दैव्ययुग, देवयुग या दिव्ययुग का उल्लेख है, जिसको पुराणों के भ्रान्तपाठो में प्रायः 'देववर्ष' कहा गया है ।

पुराणो, विशेषत वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण के अनेक प्रकरणो मे व्यासपरम्परा का वर्णन[1], असुर साम्राज्यकाल[2] तथा अनेकप्रकरणो मे यत्र तत्र 'युगाख्या' का उल्लेख है । प्रत्येकयुग या परिवर्त मे एक व्यास हुआ, परम्पराक्रम से प्रत्येक व्यास, पूर्वव्यास का शिष्य था, यथा जातूकर्ण्य व्यास के अन्तिमव्यास कृष्णद्वैपायन व्यास शिष्य थे, इसी प्रकार चतुर्थ व्यास बृहस्पति के गुरु तृतीय व्यास शुक्र थे, बृहस्पति के शिष्य पंचम व्यास विवस्वान् (सविता=सूर्य) हुये, अतः व्यासगण परस्पर गुरुशिष्यगण थे, ऐसे तीस व्यास, परमेष्ठी प्रजापतिकश्यप से कृष्णद्वैपायनपर्यन्त हुये । अत युगाख्या युग या परिवर्त का वर्षमान लाखो करोड़ों वर्ष नहीं हो सकता । यह युग या परिवर्त ३६० वर्ष का था, जिसे भ्रान्ति से कहीं त्रेता, कही द्वापर, कहीं कलि और कही चतु-

---

१. (क) दैव्यं मानुषा युगाः (शु० यजु० १२।१११)

(ख) या ओषधीः पूर्वाजाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा (ऋ० १०।९७।१)

(ग) "तद्धैव विद्वान् ब्राह्मणः सहस्रं देवयुगानि उपजीवति,"

(जै० ब्रा० २।७५)

(घ) वायुपुराण, त्रयोदश अध्याय

२. ब्रह्माण्ड० (२।३।७२ अध्याय)

युग बना दिया, पुन: ७१ चतुर्युग का एक मन्वन्तर माना गया, जिसका स्पष्टीकरण पूर्वपृष्ठ पर किया जा चुका है। युगाख्या को ही पुराणकारों ने उत्तरकालीन पाठों में 'चतुर्युग' बना दिया—

युगाख्या या समुद्दिष्टा प्रागेतस्मिन्मयाऽनघाः।
कृतत्रेतासंयुक्तं चतुर्युगमितिस्मृतम् ॥ (ब्र० १।२।३।५)

असुरराज्यकाल=दशयुगाख्यापर्यन्त—पुराणों मे उल्लिखित है कि देवों से पूर्व असुरों का पृथ्वी पर अखण्ड साम्राज्य दशयुग पर्यन्त रहा—
३६०×१०=३६०० वर्ष।

हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्यं प्राक्प्रशासति।
बलिनाऽधिष्ठितं राष्ट्रं पुनर्लोकत्रयं क्रमात्।
संख्यमासीत्पर तेषां देवानामसुरैः सह।
युगाख्या दश सम्पूर्णा ह्यासीदव्याहत जगत्।[1]
दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद्दशयुगं किल।
अशपत्तु ततः शुक्रो राष्ट्रं दशयुगं पुनः।[2]
युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि।

"हिरण्यकशिपु दैत्यराज त्रैलोक्य का अधिपति था, पुन (प्रह्लाद और विरोचन के पश्चात्) त्रैलोक्य पर बलि का शासन हुआ। दशयुगपर्यन्त दैत्यों का अनुल्लंघित शासन रहा है और उनकी (प्रायः) देवो के साथ मैत्री रही। दशयुगपर्यन्त असुरो का विश्व पर अधिकार रहा। तदनन्तर शुक्राचार्यने शाप दिया कि तुम्हारा (असुरो का) राष्ट्र दशयुगपर्यन्त ही रहेगा। दशयुगपर्यन्त दैत्यगण देवो के सिर पर शासन करते रहे।" हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद और बलि—ये तीनो ही दैत्यों के तीन इन्द्र थे।[3]

हिरण्यकशिपु का राज्यकाल—(अवधि)—पुराणो मे आदिदैत्यराज हिरण्यकशिपु के तपःकाल, राज्यकाल और अन्तकाल का उल्लेख मिलता है। यह वर्षसंख्या अत्यन्त दीर्घ और भ्रामक एवं परस्परविरोधी भी है। उसका राज्यकाल पुराणो में इस प्रकार है—

---

१. ब्रह्माण्ड० (२।३।७।६८-६९)
२. वही (२।३।७२।९२) तथा (३।२।३।७२—५१)
३. इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणां महौजसः। (वायु० ९७।९१)
सार्वभौम सम्राट=इन्द्र

हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ ।
तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः ।
अशीतिश्च सहस्राणि त्रैलोक्येश्वरोऽभवत् ।।
(ब्रह्माण्ड० २।३।७२।८६)

एक अरब, बहत्तर लाख और अस्सी हजारवर्षपर्यन्त हिरण्यकशिपु त्रैलोक्येश्वर रहा ।" इतनी दीर्घसंख्या का रहस्य अज्ञात है, यद्यपि इससे प्रकट होता है कि उसका राज्यकाल दीर्घ था, जो आगे स्पष्ट किया जायेगा ।

एक स्थान पर हिरण्यकशिपु का तपःकाल ही एक लाख वर्ष बताया गया है—शत वर्षसहस्राणा निराहारो ह्यधशिराः ।

वरयामास ब्रह्माण तुष्ट दैत्यो वरेण ह ।। (ब्र० २।३।३।१४)

'हिरण्यकशिपु दैत्य ने निराहारऔर अधशिराः होकर तप किया और ब्रह्मा (कश्यप पिता) को तुष्ट करके वरदान माँगा ।"

परन्तु हरिवंशपुराण (१।४१।४०-४१) का पाठ प्राचीनतर और शुद्ध (सही) प्रतीत होता है—

पुरा कृतयुगे राजन् सुरारिर्बलदर्पितः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चचार तप उत्तमम् ।
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पंच च ।।

"कृतयुग मे दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने ग्यारहसहस्र पाँचसौवर्ष तप (ब्रह्मचर्य) किया ।

आगे पुराणो एव अन्य वैदिकग्रन्थो के प्रमाण से सिद्ध करेगें कि उपर्युक्त ११५०० वर्ष नही दिन थे, जिनके कुल मानुषवर्ष केवल ३२ होते हैं ($\frac{११५००}{३६०}$ = ३२ वर्ष), अतः हरिवंशपुराण का अंक सत्य हैं कि हिरण्यकशिपु ने ३२ तप या ब्रह्मचर्य किया ।[1]

पुराणो मे युगाख्या के उल्लेख से हिरण्यकशिपु का राज्यकाल अनुमानित किया जा सकता है ।

हमने अन्यत्र सिद्ध किया है कि कश्यप और दक्षप्रजापति से युगाख्या

१. देवासुरयुग मे ३२ वर्ष—ब्रह्मचर्य—तप की प्रथा थी, जैसा कि इन्द्र और विरोचन द्वारा ऐसा ही किया गया—
'इन्द्रो वै देवानाम् अभिवव्राज । विरोचनोऽसुराणां... ।
तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः, । (छान्दोग्य० ८।७)

प्रारम्भ हुई, जिसको भ्रान्तिवश पं० भगवद्दत्त ब्रह्मा से मानते थे, परन्तु उन्होंने भी माना 'महाभारत मे लिखा है कि ययाति प्रजापति से दसवां था'[1]। यह संख्या तभी पूर्ण होती है, जब गणना प्रचेता से आरम्भ की जाए। प्रचेता, दक्ष, अदिति(+कश्यप), विवस्वान्, मनु, इला, पुरूरवा, आयु, नहुष, और ययाति। इससे प्रतीत होता है कि महाभारत का युगारम्भ प्रचेता से होता है[2] अतः पुराणोल्लिखित युगारम्भ प्रचेता या दक्ष प्राचेतस से हुआ और परमेष्ठी प्रजापति कश्यप दक्ष प्राचेतस के समकालिक थे ही। कश्यप के ज्येष्ठ पुत्र हिरण्यकशिपु का जन्म प्रथम युग के अन्त मे हो गया था और वह प्रथम युग के अन्त या द्वितीय युग के प्रारम्भ मे राज्याभिषिक्त हुआ होगा और चतुर्थी युगाख्या (चतुर्थ परिवर्त) मे नृसिंह द्वारा उसका वध हुआ—

चतुर्थ्यां तु युगाख्यायामापन्नेषु सुरेष्वथ।
सम्भूतः स समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे ॥[3]

अत हिरण्यकश्यपु के समय तक संभवतः इन्द्र का जन्म भी नही हुआ था, परन्तु रुद्र उस समय विद्यमान थे, जो नृसिंह के पुरोहित थे।[4] रुद्र और दक्ष का सघर्ष भी द्वितीय युग मे हुआ था—

द्वितीये हि युगे शर्वमकोधव्रतमास्थिम्।
पश्यन् समर्थश्चोपेक्षा चक्रे दक्षः प्रजापतिः ॥[5]

अत हिरण्यकशिपु का राज्यकाल तीन युग—(३६०×३=१०८०) लगभग एक सहस्रवर्ष पर्यन्त रहा। आधुनिक मापदण्ड से इतना दीर्घराज्यकाल असंभव प्रतीत होता है, परन्तु प्राचीनकाल मे दिव्यपुरुषो की आयु सहस्रवर्ष से अधिक होती थी, यह 'दीर्घायुपुरुष' प्रकरण मे सिद्ध करेंगे।

यहां यह सब अनुशीलन एव पुराणप्रामाण्य प्रदर्शित करने का हमारा उद्देश्य है युगाख्या का सत्य वर्षमान निश्चित करना और चतुर्युगादि का वर्षमान लाखो वर्ष नही था, वह केवल १२००० मानुष वर्ष था।

सप्तमयुग में बलिबन्धन

प्रह्लाद दैत्येन्द्र और बलि का सम्मिलित राज्यकाल पुनः हिरण्यकशिपु के समान अविश्वसनीय एवं भ्रान्तिमय कथित है—

१. ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः। (आदिपर्व १।१७)
२. भा० बृ० इ० भा १, पृ० ६५
३. ब्रह्माण्ड० (२।३।७३।७३)
४. द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रुद्रपुरस्सरः। (वायुपुराण)
५. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान (३।१५,१६)

पारम्पर्येण राजाबलिर्वर्षार्बुदं पुनः ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि त्रिंशच्च नियुतानि च ।
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह ।
प्रह्लादो निर्जितोऽभूच्च तावत्कालं सहासुरैः ।।
(ब्रह्माण्ड० २।३।६०-६१)

'परम्परा से बलि का राज्यकाल एक अरब तीस लाख साठ हजार वर्ष रहा, इसी मध्य मे देवों ने प्रह्लाद को विजित कर लिया था' ।

परन्तु, अन्यत्र, प्रामाणिक पुराणपाठ से ज्ञात होता है कि प्रह्लाद, विरोचन और बलि का राज्यकाल सप्तमयुग तक रहा—

बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् । (वायु०)

'सप्तमयुग में संसार के बलि के अधीन हो जाने पर और त्रैलोक्य के दैत्यों से आक्रान्त होने पर तृतीय (वैष्णव अवतार) वामन हुआ ।'

प्रह्लाद, विरोचन और बलि का शासन पचमयुग से सप्तम युगपर्यन्त, लगभग १००० वर्ष रहा । जब अकेले हिरण्यकशिपु का राज्यकाल इतना ही था तो तीन दैत्यपीढियो का इतना राज्यकाल असभव नही कहा जा सकता ।

प्रथम युग का आरम्भ दक्ष, कश्यपादि से, आज से १४००० वि०पू० हुआ अतः उपर्युक्त युगगणना मे हिरण्यकशिपुवध १३००० वि०पू० के आसपास और बलिबन्धन १२००० वि०पू० के निकट हुआ ।

उपर्युक्त युगपद्धति (युगाख्या) की गणना अनुसार अन्य कुछ महापुरुषो का समय पुराणो मे इस प्रकार निर्दिष्ट है—

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह ।

'दशम त्रेतायुग (परिवर्त) मे दत्तात्रेय हुये ।'

पञ्चदश्यां तु त्रेतायां संबभव ह ।
मान्धाता चक्रवर्तित्वे तस्थौ उतथ्यपुरस्सरः ।

'पन्द्रहवें त्रेतायुग (परिवर्त) मे चक्रवर्ती मान्धाता हुआ ।'

एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभूत् ।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः ।।

'उन्नीसवें त्रेतायुग मे सर्वक्षत्रान्तक षष्ठ वैष्णव अवतार हुआ—जामदग्न्य राम, विश्वामित्र को आगे करके ।'

चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा ।
सप्तमो रावणवधस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ।।

"चौबीसवें युग में वसिष्ठ पुरोहित को आगे करके सप्तम वैष्णव अवतार रावण वध हेतु, दाशरथि राम का हुआ।"

उपर्युक्त वायुपुराण पाठ मे युग या परिवर्त को 'त्रेतायुग' कहा गया है, जिससे महती भ्रान्ति होती है कि इन युगो के मध्य मे कृतयुग, द्वापर और कलियुग भी हुए होंगे। परन्तु यह भ्रान्ति है, जो सच्चा इतिहासवेत्ता समझ सकता है कि मान्धाता और दशरथि राम या जामदग्न्य राम और दाशरथि राम में कितने युग, पीढ़ियों या काल का अन्तर था। अन्यत्र पुराणपाठ मे उपर्युक्त युगाख्या को द्वापर या कलि भी कहा है, यह पूर्वपृष्ठ पर संकेत कर चुके हैं, अतः द्वापर और कलि सम्बन्धी भ्रान्तपाठों के साथ 'त्रेतायुग' सम्बन्धी पाठ भी भ्रान्त है। इस भ्रान्ति के समूल नाश हेतु वक्ष्यमाण एवं उध्रियमाण वेद-व्यास परम्परा द्रष्टव्य है—जो वायुपुराण २३ अध्याय, श्लोक ११४-२२६ तक वर्णित है, उसका केवल आवश्यक अंश पूर्व उद्धृत किया गया है।

उपर्युक्त वेदव्यास परम्परा के प्रारम्भिक पांच व्यासों के लिए 'द्वापर' संज्ञा का प्रयोग हुआ है, जबकि पूर्वोद्धृत वैष्णव अवतार संबंधी प्रकरण मे 'त्रेतायुग' का प्रयोग किया गया है।

प्रथमे द्वापरे ब्रह्मा व्यासो बभूव ह।
पुनस्तु नभदेवेशो द्वितीये द्वापरे प्रभुः
तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः।
चतुर्थे द्वापरे चैव व्यासोऽङ्गिरा स्मृतः।
पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता।

इसके आगे परिवर्तसंज्ञा का प्रयोग हुआ है—

सप्तमे परिवर्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः।
परिवर्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा ।।

अतः युगाख्या की वास्तविक संज्ञा 'परिवर्त' या 'पर्याय' थी, परन्तु भ्रान्ति से उसे 'त्रेता' या 'द्वापर' कहा गया।

उपर्युक्त पाठ (वायुपुरायण, अध्याय २६) मे केवल २८ व्यासों के नाम हैं, परन्तु इसी पुराण के अन्त में २९ व्यासों के नाम हैं—

१. ब्रह्मा	११. शरद्वत्	२१. निर्यन्तर
२. वायु (मातरिश्वा)	१२. त्रिविष्ट	२२. वाजश्रवा (गौतम)
३. उशना शुक्र	१३. अन्तरिक्ष	२३. सोमशुष्म
४. बृहस्पति	१४. वर्षि	२४ तृणबिन्दु
५ विवस्वान् सविता	१५ त्र्यारुण	२५. ऋक्ष-वाल्मीकि
६. यम वैवस्वत	१६. धनजय	२६. शक्ति वासिष्ठ
७. शक्र इन्द्र	१७. कृतजय	२७. पराशर
८ वसिष्ठ	१८. तृणजय	२८. जातूकर्ण
९ सारस्वत-अपान्तरतमा	१९. भरद्वाज (भारद्वाज)	२९. द्वैपायन पाराशर्य
१० त्रिधामा	२०. गौतम	

पुराणो के अनेकश भ्रष्टपाठो के कारण वेदव्यास नामो मे पर्याप्त विकृतिया हैं। इनमे क्रमव्यत्यास के साथ नाम पाठान्तर की त्रुटिया भी हैं, विशेषत. द्वादश व्याम से पच्चीसवें व्यास ऋक्ष वाल्मीकि तक के नामभेद या पाठान्तर द्रष्टव्य हैं—

१२ भरद्वाज = मनद्वाज = सुतेजा = त्रिविष्ट
१४ धर्म · सुचक्षु = वर्णी नारायण
१६ धनजय = सजय
१८. कृतजय = ऋजीषी = जय · तृणजय
२१. वाचस्पति = निर्यन्तर = हर्यात्मा नत्तम
२२ वाजश्रवा · शुक्लायन
२३ सोमशुष्मायन = सोमशुष्म
२४. ऋक्ष = वाल्मीकि

उपर्युक्त पाठान्तरो के कारण एक या दो व्यासो के नाम लुप्त हो गये, प्रत्येक व्यास एक युग या परिवर्त = ३६० वर्ष के अन्तर या मध्य मे हुआ। वर्तमानपाठो मे कुल व्यासो की सख्या अट्ठाईस बताई गई है—

> अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभिः। (ब्रह्माण्ड० १।२।३५, तथा वायु० अध्याय २३, विष्णुपुराण ३।३ द्रष्टव्य।)

उपर्युक्त पाठान्तरो मे एक-एक व्यास के चार-चार तक नाम मिलते हैं, अतः एक व्यास का नाम लुप्त होना कोई असभव नही है। यह संभव है कि ऋक्ष और वाल्मीकि पृथक् पृथक् हो, अथवा भरद्वाज, सनद्वाज, धनंजय, संजय आदि मे कोई एक पृथक् हो, अत व्यासपरम्परा मे न्यूनतम ३० व्यास हुके,

युगपरिवर्त का चतुर्युग गणना तभी सामंजस्य बैठता है। ऋक्ष वाल्मीकि से पाराशर्य व्यास तक २४०० वर्षों (द्वापर की अवधि) मे न्यूनतम छः व्यास होने चाहिये।

वेदव्यासपरम्परा का विस्तृत वर्णन, यद्यपि चतुर्थ अध्याय मे होगा, यहां पर इसके संक्षिप्त सोदाहरण विवरण का उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि व्यास-अवतरणकाल का तथाकथितयुग एक चतुर्युग—१२००० मानुषवर्ष या ४३२०००० तैंतालीस लाख बीस सहस्र मे नही हुआ। प्रत्येक व्यास मे १२००० वर्षों का अन्तर ही अत्यधिक है। तीस व्यास केवल १०८०० वर्ष (३६० ३०=१०८००) मे हुये, पुनः द्वादश सहस्र या तैंतालीस लाख बीस सहस्रो वर्षों का अन्तर कितना बुद्धिगम्य या संभव है, यह सोचा जा सकता है।

युगसम्बन्धीभ्रान्त एव अनैतिहासिक धारणा का कारण यही था कि ३० युगो मे प्रत्येक का वर्षमान ३६० वर्ष था, और चतुर्युगपद्धति से चारो युगो का वर्षमान १२००० मानुषवर्ष था। यही युगपद्धति का ऐतिहासिक रूप था, परन्तु वास्तविक युगगणना की विस्मृति के कारण यह माना जाने लगा कि प्रत्येकव्यास एक चतुर्युग (४३ लाख २० हजार) वर्ष के अन्तर से हुआ। पुनः भ्रान्तिवश मानुषवर्षों को या परिवर्त को युग (३६० वर्ष का) न समझ कर एक चतुर्युग समझा गया और तुर्रा यह कि वह भी मानुष (१२००० वर्ष) नही, उसमे भी ३६० × (१२०००) गुणा करके ४३ लाख २० हजार बना दिया गया। ३६० वर्ष और ४३ लाख २० हजार मे कितना अन्तर है, यह पूर्व संकेत कर चुके हैं। यह विचारणीय है कि प्रत्येक व्यास, पूर्वव्यास का शिष्य था, यथा प्रथम व्यास ब्रह्मा कश्यप का शिष्य था वायु प्रच्वसन (प्रभंजन), मातरिश्वा, उसका शिष्य हुआ शुक्राचार्य, उसका शिष्य हुआ बृहस्पति, और उसका शिष्य हुआ देव विवस्वान्। अन्तिम व्यास को देख लीजिये—पाराशर्य कृष्ण-द्वैपायन जातूकर्ण का शिष्य था। गुरुशिष्य मे न तो १२००० वर्षों का अन्तर हो सकता है और न ४३ लाख २० हजार वर्ष का। ३६० वर्ष का अन्तर ही कठिनाई से बोधगम्य है। ऐसी स्थिति मे युग (परिवर्त) का मान ३६० वर्ष और चतुर्युग का मान १२००० मानुष वर्ष ही था, यही बुद्धिगम्य एव ऐतिहासिक तथ्य था और ऐसा ही था, यही आगे विविध प्रमाणो से सिद्ध करेंगे।

पुराणपाठों में एतद्विषयक भ्रान्ति के उदाहरण

युगाख्या (३६० वर्ष) को किस प्रकार चतुर्युग (१२००० मानुषवर्ष को दिव्य समझकर=४३२०००० वर्ष) बना दिया, निम्न व्याख्येय एव वक्ष्यमाण

उदाहरणों से और अधिक स्पष्ट करेंगे। ब्रह्माण्डपुराण के निम्न उदाहरण में किस प्रकार चतुर्युग, द्वापर और त्रेता को एकादश परिवर्त (युग) से भ्रान्त किया गया है, एतदर्थ तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण श्लोक उद्धृत करते हैं—

चतुर्युगे त्वतिक्रान्ते मनो ह्येकादशे प्रभो।
अथावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे संप्रवर्तिते।
मरुत्तस्य नरिष्यन्ततस्य पुत्रो दमः किल।
राज्यवर्द्धनकस्तस्य सुधृतिस्ततो नरः।
केवलश्च ततस्तस्य बन्धुमान् वेगवास्ततः।
बुधस्तस्याभवत्तस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः।
त्रेतायुगेमुखे राजा तृतीये संबभूव ह॥
(ब्रह्माण्ड० २।३।८।३४-३६)

पुराणलिपिकार ने एक ही सास मे ११ पीढ़ियो मे चतुर्युग (एकादश), द्वापर, और तृतीय—त्रेतायुग के दीर्घकाल को व्यतीत कर दिया। ११ पीढ़ियां अधिक से अधिक एक सहस्र वर्ष मे हो सकती हैं, परन्तु पुराणप्रतिलिपिकर्त्ता ने इसके लिए चतुर्युग+द्वापर+त्रेता (४३२००००+१२९६०००+८६४०००=६४८०००० चौंसठ लाख अस्सी हजार वर्ष) बताया। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक राजा ने छः लाख वर्ष तक राज्य किया। इस प्रकार की अविश्वसनीय बात में न कोई विश्वास कर सकता है, न करना चाहिए।

और उपर्युक्त श्लोक मे 'त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह' भी भ्रष्ट है, क्योंकि यही तृणबिन्दु अन्यत्र त्रयोविंश युग का व्यास बताया गया है—'परिवर्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनि.' अतः तृणबिन्दु का समय तेईसवे युग मे था न कि तृतीय युग—यह तथ्य व्यासपरम्परा के साथ राजवंशपरम्परा से भी सिद्ध है। इस उदाहरण से प्रकट होता है कि वर्तमान पुराणपाठो मे कितनी अशुद्धि एवं पाठ-च्युति या पाठभ्रष्टता है।

सत्य है कि सम्राट मरुत्त ग्यारहवें युग (३६०×११=३९६० वर्ष=१४०००—३९६०=१००४० वि०पू०)या मान्धाता से लगभग डेढ़ सहस्राब्दी(१५०० वर्ष) पूर्व हुआ और सम्राट तृणबिन्दु २३वें या २४ युग मे ५७२०—५३६० वि०पू०, रामदाशरथि और रावण से एक युग (३६० वर्ष) पूर्व हुये थे, क्योंकि तृणबिन्दु, रावण के पितामह पुलस्त्य ऋषि के ससुर थे, जिनकी कन्या इलविला का विवाह ऋषि के साथ हुआ था[१]।

---

१. तस्य चेलविला कन्यालम्बुषागर्भसंभवा। (ब्रह्माण्ड० २।३।८।३७)

अतः उत्तरकाल में पुराण मे ३६० वर्ष का 'युग' किस प्रकार भ्रान्त किया गया, यह इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

इसी प्रकार की भ्रान्ति का एक और उदाहरण पुराण मे द्रष्टव्य है।

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते शौनहोत्रः प्रकाशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा।[1]

इस काशिराज दीर्घतपा शौनहोत्र के वंश में क्रमशः धन्व, धन्वन्तरि, केतुमान्, भीमरथ, दिवोदास और प्रतर्दन हुये। यह हमने अन्यत्र प्रमाणित किया है कि वैश्वामित्र अष्टक, औशीनरि शिबि और वसुमना ऐक्ष्वाक प्रतर्दन के समकालिक राजा थे और सत्रहवें युग में हुए। अतः शौनहोत्र काशिराज दीर्घतपा का समय द्वादशयुग से पूर्व नहीं हो सकता, अतः 'द्वादश' का 'द्वितीय' पाठ अत्यन्त भ्रष्ट है और परिवर्त या युग के स्थान पर 'द्वापर' पद का प्रयोग भी अतिभ्रामक है।

अतः पुराणो के युगसम्बन्धीपाठ में गहन अनुसंधान की आवश्यकता है और इन पंक्तियो का लेखक साधनों के अभाव में अत्यन्त कष्टमय स्थिति में भी घोर प्रयत्न करके 'युगगणना' के ऐतिहासिकरूप का पुनरुद्धार कर रहा है और यह पुस्तक इसी दिशा में एक लक्षित प्रयत्न है। युगपद्धति या युगगणना पर पर इतना तम. या धूल जम चुकी है कि इसको दूर करने के लिये सतत् महान् यत्न करना पड़ेगा।

उपर्युक्त भ्रान्तिमय गणना के कारण ही – यथा वेदव्यासपरम्परा केआधार पर अत्युत्तरकालीन धार्मिक आचार्यों ने, यथा हेमाद्रिसकल्प मे यह संकल्प पढ़ा जाता है – 'स्वायम्भुवादिचतुर्दशमन्वन्तराणां मध्ये वैवस्वतमन्वन्तरे चतुर्यु युगानां मध्ये अष्टाविंशतितमे कलियुगे तत्प्रथमचरणे गताब्दे' इत्यादि। और यह मानकर वैवस्वतमनु का समय आज से बारहकरोड़वर्षपूर्व निश्चित किया जाता है।

वैवस्वतमनु का समय १२ करोड़ वर्ष पूर्व मानने की मान्यता अन्य कारणों (यथा वंशावली) के अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान की इस खोज से ही निरस्त या असिद्ध हो जाती है कि बीस हजार से अस्सी हजार वर्ष के मध्य में पृथ्वी की स्थावर जंगम (वनस्पति-जीव) सृष्टि सूर्यदाह या हिमप्रलय में नष्ट हो जाती है[2]। इस खोज से विकासवाद का भी पूर्ण खण्डन होता है। वैवस्वत

---

१. वायु० (९२।१८)

२ Lyell or others, are favourable and 21000 years must elapse

मनु से बृहद्बल (महाभारतकाल) तक लगभग १०० पीढ़ियाँ हुईं, बारहकरोड़वर्ष में केवल १०० पीढ़ियाँ ही हुई हों, यह सर्वथा अबुद्धिगम्य है। इस अवधि में तथाकथित ३३२ चतुर्युग होते और इनमे पीढ़ियां भी इतनी होती कि जिनकी गणना कोई पुराणकार स्मरण नहीं रख सकता। अतः प्रत्येक मन्वन्तर मे ७१ चतुर्युग, आदि की गणना इसी भ्रान्तिवश हुई कि वेदव्यासपरम्परा के ३० युगो को ३० चतुर्युग समझा गया। वेदव्यास परस्पर गुरुशिष्य थे, इनमे तीन या चार शती का अन्तर भी आधुनिक मान-दण्ड से अधिक और अविश्वसनीय है, पुनः लाखों वर्षों का अन्तर (गुरु-शिष्य में) कैसे संभव है?

युगगणना में भ्रान्ति के मूल कारण

अतः उत्तरकालीन या वर्तमानकाल पुराणपाठो मे ऐतिहासिक गणना में भ्रान्ति के निम्न दो कारण थे।

प्रथम—वैदिक 'दिव्य-मानुष' शब्द

द्वितीय—पर्याय, परिवर्त-युग को चतुर्युग समझना या उसको उत्तरकाल मे त्रेता, द्वापर; या कलि सज्ञा प्रदान करना।

तृतीय—भ्रान्ति से उपर्युक्त दोनो गणनाओ का मिश्रण करना।

अर्थात् ऐतिहासिक युग या परिवर्त का वर्षमान ३६० वर्ष था, यही युग पद्धति प्राग्महाभारतकाल में विशेषरूप से प्रचलित थी। आदिकाल (कश्यप-दक्षकाल) से महाभारतयुग तक ऐसे ३० युग व्यतीत हुए और प्रत्येक युग मे एक व्यास अवतीर्ण हुआ। महाभारतकाल के आसपास चतुर्युगपद्धति (कुल = वर्ष = ४८००, त्रेता = ३६०० वर्ष, द्वापर = २४०० वर्ष) का प्राबल्य हो गया, तथापि व्यास ने पुराण मे दोनों का पार्थक्य रखा और महाभारत में गणना प्रायः चतुर्युगीनपद्धति से की। महाभारतयुग तक दोनो गणनापद्धतियो से ३० × ३६० = १०८००) = कृतत्रेताद्वापर = १०८०० वर्ष व्यतीत हुए। परन्तु उत्तर-कालीनपुराणप्रक्षेपकारों या प्रतिलिपिकारों को भ्रान्तियां होती गई, अतः

between two successive occurance of winter at aphelion—and four Inter Glacial epoches, the duration must be extended to soming like 80000 years (Arctic Home in the Vedas, p. 30).

पुराणों मे प्रजा के सूर्यदाह से नष्ट होने का बारम्बार उल्लेख है—
युगान्ते सर्वभूतानि दहवैव वसुरुल्वणः। (महा० शा० १५७)

३६० वर्ष वाले ३० युगों को पृथक् न समझकर चतुर्युग (=१२००० वर्ष) से गुणा करके यह कल्पना की कि यह गणना दिव्यवर्षों में है, मूल में ३६० वर्ष ऐतिहासिक युग का मान ही था, उसे गुणा करके १२०००×३६०= ४३२०००० वर्ष बना दिया, जिससे चतुर्युग इतिहास की वस्तु न बनकर कल्पना लोक की वस्तु बन गये।

वर्ष का दिनपरक अर्थ-वैदिक दिव्यमानुष उभय संज्ञाओं ने भी भ्रान्ति उत्पन्न करने मे सहायता की। पुराणों की वर्षगणना में भ्रम का मूल कारण तैत्तिरीय ब्राह्मण का यह वाक्य था—'वर्षं देवानां अहः' यद्यपि इसका ऐतिहासिक गणना से कोई सम्बन्ध नहीं था, यह एक प्ररोचनावाक्य था, परन्तु उत्तरकालीन ज्योतिषियों आदि ने भ्रान्तिवश, इसका सम्बन्ध पुराणोल्लिखित युगों—चतुर्युगों और परिवर्तों से जोड़कर उन्हें अनैतिहासिक किंवा काल्पनिक बना दिया। प्राचीन इतिहास-पुराणपाठों मे मूल ऐतिहासिकगणना सामान्य मानुषवर्षों मे ही थी, कुछ विशिष्ट उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) रामायणादि मे राम का वनवासकाल सामान्य १४ वर्षों का ही कथित है, यह तथ्य सुप्रसिद्ध है, परन्तु उत्तरकाण्ड मे एक बालक की आयु पांचसहस्रवर्ष कही गई है—

(क) अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्षसहस्रकम्।
अकाले कालमापन्नम् (राम० ७।७३।५)

(ख) दशरथ की आयु—षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य ममकौशिक।
(रामा० १।५२।१)

इस पर टीकाकार तिलक ने कहा है—'वर्षशब्दोऽत्रदिनपरः, 'सहस्रसंवत्सर-सत्रमुपासीत इतिवत्' तेन षोडशवर्षबालकमित्येवायम्।

इस प्रकार राम का राज्यकाल ११००० दिन, जिसके लगभग ३१ वर्ष बनते हैं, परन्तु दिव्यवर्ष=१ दिन के घटाटोप में उसे ११००० वर्ष बना दिया—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति। (रामा० १।१)

परन्तु पुराणो मे सर्वत्र ही ऐसा नहीं किया गया, यथा शुक्राचार्य ने जयन्ती के साथ दश मानुषवर्ष वास किया—

ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहितः प्रभुः।
स तया चावसद्देव्या दशवर्षाणि भार्गवः॥
(ब्रह्माण्ड० २।३।७३।१२)

यहां तक कि अश्वघोष (३५० वि० पू०) के समय तक—(कनिष्कसम-काल) तक यह तथाकथित 'दिव्यवर्षगणना' प्रचलित नहीं हुई थी—

विश्वामित्रो महर्षिश्च विगाढोऽपि महत्तपः ।
दशवर्षाण्यहर्मेने घृताच्याप्सरसा हृतः ।। (बुद्धिचरित ४।२०)

परन्तु अनेक बौद्ध, जैन और सूर्यसिद्धान्तादिग्रन्थों में तथाकथित दिव्य वर्षगणना परिपाटी प्रविष्ट हो गई। यथा निदानसंज्ञक बौद्धग्रन्थ में २४ बुद्धों में कुछ की आयु, बुद्धघोष ने इस प्रकार बताई है—

प्रथम बुद्ध—दीपंकर=आयु—एक लाख वर्ष=दिन=२७७ वर्ष
द्वितीय बुद्ध—कौण्डिन्य=आयु=एक लाख वर्ष=दिन=२७७ वर्ष

उस समय यह दिव्यगणनासम्बन्धीरोग केवल भारतवर्ष मे ही नहीं बैबीलन (ईराक) सदृश असुरदेशो मे भी फैल गया था तभी तो वहां के प्रसिद्ध इतिहासकार बैरोसस ने राजाओ के राज्यकाल को भारतीयपुराणो के सदृश सामान्यवर्षों को दिव्यवर्ष मानकर गणना की है[1]—

In Eridu, Aliulum became King and reigned 28800 years, Alalagar reigned 36000 years. Five cities were they. Eight Kings reigned 211200 years (The Greatness that was Bobylon, p. 35 by H.W.F. Saggs)

बैरोसस के अनुसार ही जलप्रलय से पूर्व ८६ राजाओ ने ३४०८० वर्ष राज्य किया और १० राजाओं या १० राजवंशों ने ४ लाख ३ हजार वर्ष राज्य किया।

दश राजाओ का राज्य काल ४०३०.०० वर्ष = दिन=१११० वर्ष
राजा एललम इलिल(=भरतपूर्वज) या पुरूरवा ऐल=
राज्यकाल २८८०० वर्ष=दिन=८० वर्ष राज्यकाल
राजा अलालगर=३६००० दिन=१००वर्ष राज्यकाल
आठ राजाओ का राज्यकाल २४१२०० दिन =६७० वर्ष

पुराणो के सदृश बैरोसस भी इसी भ्रान्त 'दिव्यगणना'पद्धति के चक्कर मे फंस गया। तृतीयशतीपूर्व के इतिहासकार बैरोसस ने दैत्येन्द्र असुर बलि

---

१. सूर्यसिद्धान्त का सम्बन्ध असुर मय से था, उसमें लिखा है कि मानुषवर्ष को दिव्यवर्ष बनाने की प्रथा आसुरदेशो मे भी थी—

सुरासुराणामन्योऽन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ।
तत्षष्टिषड्गुणदिव्यं वर्षमासुरमेव च । (सूर्यसिद्धान्त १।१४)

के मन्दिर में जलप्रलयपूर्व और पश्चात् के राजाओं का विवरण सुरक्षित मिला था, जहां से नकल करके उसने अपना इतिहासग्रन्थ लिखा था (द्रष्टव्य: हिस्ट्री आफ हिन्दुस्तान, टी० मौरिस, पृ० ३६६)।

मूल में उपर्युक्त वृतान्त दिनों में ही लिखा हुआ था, इतने पुरातन वृतान्त को पढ़ने या समझने में बैरोसस को भ्रान्ति या त्रुटि होना असंभव नहीं, इसी भ्रान्ति के कारण बैरोसस ने दिनों को वर्ष समझकर राजाओं का राज्यकाल हजारों लाखो वर्षों मे लिखा, जिस प्रकार पुराणप्रक्षेपकारों ने सामान्य मानुषवर्षों को दिव्यवर्ष समझकर उसी प्रकार गणना की। हमने अपने अनुसंधान से संशोधन (शुद्ध) कर दिया है।

कहीं-कहीं पुराणो एवं वेदों मे 'दिव्य' शब्द निरर्थक भी है—(१) सः (प्रजापतिः) ऊर्ध्वबाहुरधस्तात् भूम्यां शिरः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रं तपोऽतप्यत' (काठकसंहिता)। पुराणों में सप्तर्षियुग के २७०० वर्षों में 'दिव्य' शब्द निरर्थक ही है—सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् (वायु० ६६। ४१६) यथा हरिवंश (१।२६।१८) तथा वायुपुराण (६१।५) में पुरूरवा ने उर्वशी के साथ लगभग ६० वर्ष रमण किया—

तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि चाऽष्ट च।
सप्त षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान्॥ (वायु०)
वर्षाण्येकोनषष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिता। (हरिवंश०)

विष्णुपुराण इसी ६० वर्ष को ६० सहस्रवर्ष कहता है—

'तया सह रममाणः षष्टिवर्षसहस्राण्यनुदिनप्रवर्द्धमानप्रमोदोऽवसत्।' (४।६)

अतः ऐसे स्थानों पर सहस्रपद निरर्थक या पूर्णार्थक है।[1]

परन्तु राजाओं के राज्यकालसम्बन्धी विवरणों से प्रायः वर्ष या सामान्य मानुषवर्ष को दिव्यवर्ष समझकर उसको पुनः ३६० से गुणा करके तथाकथित वर्ष (वास्तव में दिन) बना दिया है, यथा राम दाशरथि के राज्यकाल मे ११००० वर्ष, वास्तव मे दिन ही थे, जिनको ३१ वर्ष मे ३६० का गुणा करके बनाया गया है।

---

१. म० म० मधुसूदन ओझा ने 'अत्रिख्याति' में लिखा है—'एवं त्रीणि वर्षसहस्राणि शक्तिविक्षेपलाभार्थमृक्षपर्वतेऽनुत्तमं तपस्तेपे इत्याहुः। तत्र सहस्रशब्दः पूर्णार्थकः 'सर्वं वै सहस्रम्' (श० ब्रा० ४।६।१।१५) इति श्रुतेः। पूर्णत्वं च वर्षाणां मासवासरादिभिरन्यूनव्यतिरिक्तत्वम्।'
(अत्रिख्याति, पृ० ३)

राजाओं के राज्यकाल वर्ष सम्बन्धी और उदाहरण आगे लिखेंगे।

दीर्घसत्रसम्बन्धीमीमांसा

मीमांसादर्शनशास्त्र मे 'सहस्रसंवत्सरात्मकसत्र' के विषय मे सूत्रग्रन्थों एवं जैमिनीयमीमांसासूत्र मे जो शास्त्रार्थ मिलता है— उससे भी वर्षों के दिन मानने की परम्परा पर अच्छा प्रकाश पडता है, इस सम्बन्ध में कात्यायनश्रौत-सूत्र और जैमिनिमीमांसासूत्र मे विभिन्न आचार्यों के मत उद्धृत किये हैं, जिससे ज्ञात होता है कि उस समय 'सहस्रसंवत्सरसत्र' के विषय मे भारी विवाद था और आचार्यगण 'वर्ष' को 'दिनपरक' अर्थ मानने के पक्ष में थे—

कात्यायनसूत्र	जैमिनिमीमांसासूत्र
सहस्रसंवत्सरम्मनुष्याणामसम्भवात्	सहस्रसंवत्सरं तदायुषामसंभवान्मनुष्येषु
शास्त्रसम्भवादिति भारद्वाजः	कुलकल्पः स्यादिति कार्ष्णाजिनेरे—
कुलसत्रमिति कार्ष्णाजिनिः	कस्मिन्नसम्भवात् ।
साम्युत्थानमिति लौगाक्षि.	संवत्सरो विचालित्वात्
अह्नां वाशक्यत्वात्[१]	मासाः प्रकृतिः स्यादधिकारात् ।
	अहनि वाऽभिसख्यत्वात् ।[२]

कोई सहस्रसवत्सरसत्र को कुलसत्र मानता था, कोई साम्युत्थान (बीच मे छोड़ना) और अन्त मे यही मान्यता थी कि यहां संवत्सर का अर्थ 'दिन' ही है। यद्यपि सहस्रसंवत्सरात्मकसत्र महाभारतकाल मे नही होते थे तथापि प्रजापतियुग मे प्रजापतियों ने ऐसे सहस्रसंवत्सरात्मक सत्र किये थे।[3] प्रथम प्रजापतिगण स्वायम्भुव मनु, मरीचि आदि के अतिरिक्त उत्तरकाल मे परमेष्ठी प्रजापति कश्यप के पश्चात् 'सहस्रसंवत्सरात्मकयज्ञ' का प्रचलन समाप्त हो गया, जैसा कि सूत्रकारो ने कहा है—'तदायुषामसंभवान्मनुष्येषु'। इसीलिये यह विवाद का विषय बन गया। तथापि यहा इसका उल्लेख इसीलिये किया गया है कि वेदाचार्य या मीमांसकगण 'दिन' को ही वर्ष (संवत्सर) भी मानते थे, इसीलिये भी संभवतः उत्तरकालीन पुराणपाठों मे भ्रान्तिवश दिनों को वर्ष = (संवत्सर) बना दिया गया।

---

१. का० श्रौ० १।६।१७-२५

२. जै० मी० सू० ६।७।४३१-४१

३. विश्वसृज. प्रथमा. सत्रमासत सहस्रसमम् । आप० श्रौ० २३।१४।१७
प्रजापतिः सहस्रसंवत्सरमास्त । जै० ब्रा० (१।३)

उपर्युक्त पृष्ठों पर भ्रान्ति के कुछ मूल कारणों पर प्रकाश डाला गया, अब आगे 'पुराणों में उल्लिखित' ऐतिहासिक युगमानों का यथार्थ विवेचन प्रस्तुत करते हैं कि किस-किस युगमान का इतिहास गणना मे प्रयोग होता था और 'दिव्यादि' शब्द किस प्रकार भ्रमोत्पादक हुये।

युगमानविवेक

युग—मूल मे 'युग' शब्द अहोरात्ररूपी 'युग्म' (जोड़े) का वाचक था, यह शब्द 'युजिर्' (योगे) धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ है।[1] ऋग्वेद (१।१६४।११) मे ही दिन-रात को 'मिथुन'जोड़ा कहा गया है।[2] अतः मूलार्थ मे 'युग' शब्द दिनरात के जोड़े या मिथुन के अर्थ में ही था। परन्तु वेद मे ही मे 'पञ्चशारदीय' (पंचसंवत्सरात्मकयुग), 'मानुषयुग' और 'दिव्य' या 'दैव्ययुगो' का उल्लेख है। ऐतिहासिककालगणना की दृष्टि से इन युगों का विशेष महत्व है, अतः प्राचीन वाङ्मय मे जिन ऐतिहासिकयुगो का उल्लेख है, उनका सक्षेप मे विवरण प्रस्तुत करेंगे। प्रमुख युग थे—

(१) पञ्चसंवत्सरात्मकयुग
(२) षष्टिसंवत्सर (बार्हस्पत्ययुग)
(३) शतवर्षीयमानुषयुग
(४) दैव्ययुग (त्रिशतषष्टिवत्सरात्मक = ३६० वर्ष) = परिवर्तयुग
(५) सप्तर्षियुग (२७०० वर्ष)
(६) ध्रुवयुग = ६०६० वर्ष,
(७) चतुर्युग = द्वादशवर्षसहस्रात्मक = महायुग = देवयुग।

पंचसंवत्सरात्मयुग

वेद और इतिहासपुराणों में युग के पांच वर्षों के पृथक्-पृथक् नाम हैं—संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर।[3] वायुपुराण, सूर्य-प्रज्ञप्ति, कौटल्य अर्थशास्त्र में इस पंचसंवत्सरात्मकयुग का उल्लेख है। वायुपुराण के अनुसार पंचवर्षात्मकयुग का प्रवर्तक चित्रभानु (विवस्वान् = सूर्य

---

१. सायण ने ऋग्वेद (५।७३।३) की पंक्ति 'नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः' मे 'युग' शब्द या अर्थ 'दिनरात' ही किया है।

२. "आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।"

३. द्रष्टव्य ऋग्वेद (७।१०३।७) शु० यजु० (३०।१६), ब्रह्माण्डपु० (१।२),

सविता=आदित्य) था ।[1] प्रत्येक पाच वर्ष मे सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्रादि अपने अपने स्थल पर निवर्तमान होते हैं । लगध ने पचवत्सरात्मकयुग को प्रजापति कहा है—

पंचसवत्सरमय युगाध्यक्ष प्रजापतिम् ।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः ॥[2]

षष्टिसंवत्सर या बार्हस्पत्ययुग

पूर्वकथित पचसवत्सरात्मक युगो के १२ पचक मिलकर एक षष्टिसंवत्सर या बार्हस्पत्ययुग बनता था । वैदिकग्रन्थो मे इस बार्हस्पत्ययुग का उल्लेख मिलता है यथा तैत्तिरीय आरण्यक के प्रारम्भ मे षष्टिसंवत्सर का वर्णन है । वायुपराणादि में षष्टिसंवत्सर के विष्णु, बृहस्पति आदि द्वादश देवता निर्दिष्ट हैं और प्रत्येक वर्ष का नाम भी कथित है । अतिप्राचीनकाल मे इतिहास में इस युग का उपयोग होता था, यथा सिन्धुसभ्यता के असुरगण इसका प्रयोग करते थे, परन्तु अर्वाचीनतरग्रन्थो मे इसका प्रयोग नही मिलता ।

मानुषयुग—शतवर्षात्मक—

वेद और इतिहासपुराण मे ऐतिहासिकतिथिगणना सर्वदा मानुषवर्षों मे ही होती थी—वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण मे स्पष्टत कहा गया है कि 'दिव्य संवत्सर' की गणना मानुषवर्षों के अनुसार ही होती थी—

दिव्यः सवत्स ो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।[3]
अत्र संवत्सरा सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ॥[4]

हम पहले बता चुके हैं कि 'दिव्य' शब्द 'सौर' का पर्यायवाची है, इसी से महान् भ्रम हुआ और व्यर्थ मे युगों मे ३६० वर्ष का गुणा किया जाने लगा । मनुस्मृति और महाभारत में जहाँ चतुर्युगो को १२००० वर्ष का बताया गया है, वे मानुषवर्ष ही हैं, यही आगे प्रमाणित किया जाएगा । कुछ वैदिक उद्धरणों के आधार पर उत्तरकाल मे 'दिव्य' शब्द के अर्थ मे भ्रम उत्पन्न हुआ, जिससे पुराणकारो ने पुराणो के युगसम्बन्धीपाठो मे पूर्णतः परिवर्तन कर दिया, जिससे

---

१. श्रवणान्त श्रविष्ठादि युगं स्यात् पचवार्षिकम् (वायु० ५३।१।१६),
२. वेदांगज्योतिष—प्रथमश्लोक ।
३. ब्रह्माण्ड० (१।२।६), वही (१।२।३०),
४. सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया सख्या स्मृतम् ।
तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तुतैः ॥ (वायु० ११।४१६, ४२०) ।

'इतिहास' इतिहास न रहकर कल्पनालोक की वस्तु बन गया, इन भ्रामक कल्पनाओं से ही भारतीय इतिहास पूर्णत. कलुषित, भ्रष्ट, अस्पष्ट एवं अज्ञेय-तुल्य हो गया।

इस भ्रम का मूल तैत्तिरीयसंहिता के एक वाक्य से उत्पन्न हुआ—"एकं वा एतद्देवानामहः। यत्संवत्सरः।" प्राचीनपुराणपाठो, महाभारत[1] और मनुस्मृति[2] मे इस 'दिव्य' संख्या का कोई चक्कर नहीं हैं, वहाँ युगगणना साधारण मानुषवर्षों मे है। यह बहुत उत्तरकाल की बात है, जब पुराणोल्लिखित वास्तविक इतिहास को लोग प्रायः भूल गये तब कल्प, मन्वन्तरो और युगो की भ्रामक गणना प्रचलित कर दी गई। ज्योतिष के आधार पर पुराणपाठों मे, परिवर्तन करके द्वादशशसहस्रात्मक चतुर्युग को जो सामान्य मानुषवर्षों के थे, उनको ४३२०००० (तैंतालीस लाख बीस सहस्र) वर्षों का बना दिया। मन्वन्तर को ७१ चतुर्युगो का माना गया, जिसका समय ३० करोड ६७ लाख २० सहस्र वर्ष का कल्पित किया गया और १४ मन्वन्तरो का समय ४ अरब ३२ करोड़ माना गया, जबकि १४ मनुओ मे अनेक मनु प्राय समकालीन थे, वे पिता-पुत्र ही थे यथा चार सावर्णमनु परस्पर भ्राता ही थे—

> सावर्णमनवस्तात पंच ताश्च निबोधमे।
> परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णता गताः।
> दक्षस्यैते दौहित्राः प्रियायास्तनया नृप ॥ ब्रह्माण्ड

सौन्दर्यभ्राताओ में तीस करोड वर्षों से अधिक का अन्तर कैसे हो सकता है यह तो सामान्यबद्धि से ही समझा जा सकता हे, चौदह मनुओ का यथार्थकाल आगे निर्दिष्ट करेगे। मनु का अर्थ है मनुष्य (बुद्धिमान प्राणी), प्रथम स्वायम्भुव-मनु से अन्तिम (चौदहवें) वैवस्वत मनुपर्यन्त ७१ मानुषयुग या पीढ़ियाँ व्यतीत हुई थी। यह मानुषयुग ही वेद मे बहुधा उल्लिखित है।[3] दक्ष प्रजापति से भारतयुद्ध (कृष्ण) पर्यन्त ३० परिवर्त (जिनमे प्रत्येक का वर्षमान ३६० था) व्यतीत हुए, इसमे उत्तरकाल मे यह कल्पना की गई कि वैवस्वतमन्वन्तर के

---

१. चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणा कृत युगम्।
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप।
द्विसहस्र द्वापरे शत तिष्ठिति सम्प्रति ॥ (भीष्मपर्व)

२. मनुस्मृति (१।६-६)

३ तदूचिषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्य मघवा नाम बिभ्रत्। (ऋ १।१०३।४),
विश्वे ये मानुषा युगाः पान्ति मर्त्यंरिष। (ऋ० ५।५२।४)

२८ या ३० चतुर्युग व्यतीत हो गये और माना जाने लगा कि यह वैवस्वत मन्वंतर का अट्ठाईसवाँ कलियुग चल रहा है। परन्तु पुराणों एव महाभारतादि के प्रामाणिक वचनो पर कोई ध्यान नही दिया, जहां बारम्बार कहा गया है कि युगगणना सर्वत्र मानुषवर्षों मे की गई है—

सूर्यसिद्धांत में चतुर्युग—

सुरासुराणान्योऽन्यमहोरात्रविपर्ययात् ।
तत्षष्टिषड्गुणीदिव्य वर्षमासुरमेव च ॥ (१।७) सू० सि०
तेषां द्वादशाहस्री युगसख्या प्रकीर्तिता ।
कृत त्रेता द्वापर च कलिश्चैव चतुष्टयम् ।
अत्र सवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणत. ॥ (ब्रह्माड पु० १।२९-३०

और भी स्पष्ट वायुपुराण मे कहा गया है कि ये द्वादशसहस्र केवल मानुषवर्ष ही हैं—

एव द्वादशसहस्र पुराण कवयो विदुः ।
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पाद यथा युगम् ।
चतुष्पादं पुराणं तु ब्रह्मणा विहित पुरा ॥

जब वायुपुराण मे १२ सहस्रश्लोक और ऋग्वेद मे द्वादश सहस्र ऋचाये[1] हैं और युगों (चतुर्युग) में इतने ही वर्ष हैं तब यह कल्पना कहा तक ठहरती है कि चतुर्युग मे ४३ लाख २० सहस्रवर्ष हैं। अतः इस गपोड़े मे कोई भी मनुष्य (बुद्धिमान) विश्वास नही कर सकता कि एक चतुर्युग में ४३ लाख २० हजार वर्ष होते थे।

चतुर्युगपद्धति का प्राचीनतम उल्लेख मनुस्मृति मे है, इसमे स्पष्टतः ही वर्षगणना मानुषसौरवर्षों मे है, वहा द्वादशवर्षसहस्रात्मकचतुर्युग (महायुग) को केवल 'देवयुग'[2] कहा गया है। टीकाकारादि ने पुनः इस 'देववर्ष' शब्द के आधार पर भ्रम उत्पन्न किया। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्वान स्वर्गीय बालकृष्ण दीक्षित का मत सर्वथा भ्रामक है।[3] इस सम्बन्ध में दीक्षितजी ने प्रो० ह्विटने का जो मत उद्धृत किया है, वह पूर्णत. सत्य है—"ह्विटने कहते

---

१. द्वादश बृहतीसहस्राणि एतावत्यो ह्यर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः ॥
(श० ब्रा० १०।४।२।२३)

२ एतद्द्वादशसाहस्र देवाना युगमुच्यते (मनु० १।९)

३. भारतीयज्योतिष (पृ० ४९),

हैं कि इन १२००० वर्षों को देववर्ष मानने की कल्पना मनु की नहीं है,[१] इसकी उत्पत्ति बहुत दिनो बाद हुई।"[२] सम्भवत यह कल्पना गुप्तकाल या अधिक-से-अधिक वराहमिहिर या अश्वघोष के पश्चात् उत्पन्न हुई होगी। सूर्यसिद्धान्त मे यह कल्पना है।[३] परन्तु दीक्षित जी ने अपने भ्रम को चालू रखना श्रेयकर समझा, उन्होंने तैत्तिरीयसंहिता में 'दिव्यवर्ष' सम्बन्धी प्ररोचना को ज्योतिष और इतिहास से जोडा। वस्तुतः मनुस्मृति और महाभारत मे यह कल्पना है ही नहीं, हाँ उत्तरकाल मे पुराणों में यह कल्पना पुराणों मे प्रक्षेपकारो ने पूर्णतः घुसेड दी।

अथर्ववेद (८।२।२१) का प्रमाण पूर्व संकेतित है कि तीन युग (द्वापर, त्रेता और कृत या ३० परिवर्त) १०८०० वर्ष के होते थे। अथर्व, मनुस्मृति और महाभारत तथा प्राचीनपुराणपाठ में 'दिव्यवर्ष सम्बन्धी कल्पना का पूर्णतः अभाव है और स्पष्टत· ही वे मानुषवर्ष है, अत. लोकमान्य ने इसी मत का समर्थन किया है और उनके एतत्सम्बन्धी मत से हम पूर्ण सहमत है—"In other words, Manu and Vyasa obviously speak only of a period of 10000 or including the Sandhyas of 12000 ordinary or human (not divine) years, from the biginning of Krita to the end of Kaliage, and it is remarkable that In the Atharvaveda we should find a period of 10000 years apparently assigned to one yuga.'[४]

यह द्रष्टव्य है कि अथर्वमन्त्र (८।२।२१) १०००० (या १०८००) वर्षों के तीन विभाग 'द्वेयुगे त्रीणि चत्वारि चत्वारि क्रमः' ही उल्लिखित है केवल एक युग अथवा कलियुग के १००० वर्ष या १२०० वर्ष उल्लिखित नही है कलियुगमान १२०० जोडने पर (१०८००+१२००)=१२००० वर्ष हुए।

अतः दिव्यवर्ष या दिव्ययुग के सम्बन्ध मे यह भ्रम समाप्त हो जाना चाहिए कि वह मानुषवर्ष की अपेक्षा ३६० गुणा होते थे, परन्तु परिणाम इसके विपरीत ही है कि मानुष और दिव्यवर्ष एक ही थे, जैसा कि पं० भगवद्दत्त को भी आभास हो गया था—"इस प्रकरण के सब प्रमाणो से मानुष और दिव्य-

४. बर्जसकृत सूर्यसिद्धान्त अनुवाद (पृ० १० पर) द्र०

५. वही (पृ० १४८)

६. वही (पृ० १४९)

१. The Arctic Home in the Vedas (P. 350 by L. Tilake),

संख्या का स्वल्प-सा अंतर दिखाई पड़ता है।[१]" हाँ वेदोक्त 'मानुषयुग' और 'दिव्ययुग मे जो अन्तर था, उसका व्याख्यान या स्पष्टीकरण आगे करते हैं।

वेद में बहुधा 'मानुषयुग का उल्लेख मिलता है, परन्तु आज, इसका स्पष्ट रहस्य किसी को ज्ञात नही है कि 'मानुषयुग' क्या था, इसका 'कालमान' क्या था। पाश्चात्य लेखक मिथ्याज्ञान या अज्ञानवश सर्वदा अर्थ का अनर्थ करते हैं, सो इस सम्बन्ध मे उन्होंने इसी परिपाटी का अनुसरण किया। लोकमान्यतिलक ने एतत्सम्बन्धी पाश्चात्य लेखको के मत उद्धृत किये हैं।[२] 'मानुषयुग' का अर्थ मानवायु या युग कुछ भी लिया जाय, परन्तु यह काल '१०० वर्ष' का होता था।

वेद में ही बहुधा अनेकत्र उल्लिखित है कि मनुष्य की आयु १०० वर्ष होती है—

'शतायुर्वै पुरुषः (श० ब्रा० (१३।४।१।१५),
तस्माच्छत वर्षाणि पुरुषायुषो भवन्ति (ऐ० ब्रा०)

अतः वेद मे दीर्घतमा मामतेय[३] की आयु १००० वर्ष (एकसहस्रवर्ष) कथित है, न कि पंचसंवत्सरात्मक युग को आधार मानकर ५० वर्ष। इसकी पुष्टि इतिहास मे भी होती है। देवयुग मे उत्पन्न दीर्घतमा औचत्य (मामतेय) त्रेतायुग मे भारतदौष्यन्ति के समय तक जीवित रहा—'दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच,[४] दीर्घतमा बृहस्पति का भतीजा था।

अत मन्त्र मे कथित 'मानुषयुग' १०० वर्ष का होता था, जितना कि मानवायु। इसकी पुष्टि अथर्ववेद के पूर्वोद्धृतमन्त्र मे भी होती है कि १०००० (दशसहस्र) वर्षों मे १०० युग या मानुषयुग थे—शतंतेऽयुतंहायनान् द्वे युगे त्रीणि

---

१ भा० बृ० इ० (भाग १, पृ० १६५),

2. The Petersburg Lexicon would interpret yuga wherever, it occures in Rigveda, to mean not 'a period of time', but 'a generation' or the retation of descent form a common stock, and it is followed by Grassman,' 'Proff, Max Muller translates the Verse to mean, "All those who Protect the generations of men, who Protected the mortals from injury, (A.H. in the Vedas p, 139, 141),

३. दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे (ऋ १।१५८।६)

४. ऐ० ब्रा० (८।२३),

चत्वारि क्रमश: ।' अर्थात् १०० मानवयुगों या १०००० (दशसहस्र) वर्षों को हम दो (द्वापर) तीन (त्रेता) और चार (कृतयुग) मे बाँटे।

मनुष्यायु १०० वर्ष थी, इसी आधार पर ऋग्वेद (१।१५८।६) में दीर्घतमा को दशयुगपर्यन्त जीवित करने वाला कहा है, इसका स्पष्ट उल्लेख शांखायन आरण्यक (२।१७) मे दश (मानव) युग का यही अर्थ लिखा है, यह कोई आधुनिक कल्पना नहीं है—"तत उ ह दीर्घतमा दशपुरुषायुषाणि जिजीव।" पुरुषायु १०० वर्ष होती है, अत दीर्घतमा १००० वर्ष पर्यन्त जीवित रहा।

वेदोक्त 'मानुषयुग' स्पष्ट ज्ञात हुआ, अत: इतिहास मे गणना मानुषयुग या 'मानुषवर्षों मे होती थी।

देवयुग, दैव्ययुग ता देववर्ष (परिवर्तयुग) में 'दिव्य' शब्द का अर्थ

'देव या 'दिव्य' शब्द का निर्वचन यास्काचार्य ने इस प्रकार किया है— "देवो दानाद् वा दीपनाद् द्योतनाद् वा, द्युस्थानो भवतीति वा। (नि० ७।१५), वेद में 'देव' प्राय: सूर्य या सविता को कहते हैं, यही 'दिव्य' या 'सौर' (सूर्य) है[१] अत: दिव्यवर्ष का अर्थ हुआ सौरवर्ष। इसी आधार पर वेद में दिव्य या दैव्ययुग की कल्पना की गई।[२]—क्योंकि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा ३६० दिन मे करती है अत: ३६० वर्ष का ही एकपरिवर्त एकदैव्ययुग (सौरयुग) मानागया— लेकिन है यह मानुषवर्षों के आधार पर ही, जैसा कि पुराण मे स्पष्ट लिखा है ३६० वर्षों का संवत्सर मानुषप्रमाण के अनुसार ही है।[3] वक्ष्यमाण सप्तर्षियुग के दिव्यवर्ष भी सामान्य मानुषवर्ष थे।[४] वस्तुत: मानुषवर्ष और दिव्यवर्ष मे कोई अन्तर था ही नही। अत: देवयुग का अर्थ था देवो का वह समय जब वे पृथ्वी पर विचरण करते थे और शासन करते थे 'देवयुग' शब्द का अन्य कोई अर्थ नहीं था।

देव एक विशिष्ट मानवजाति थी, जिसका वैदिकग्रन्थों में बहुधा उल्लेख है, इन्द्र, वरुण, यम विवस्वान् आदि ऐसे ही देवपुरुष थे, देवयुग मे मनुष्य की आयु ३०० या ४०० वर्ष होती थी, जैसा कि मनुस्मृति (१।८३) मे उल्लिखित है—

१. देवस्य सवितु: प्राण: प्रसव: प्राण: (तै० ब्रा०)

२. त्वमगिरा दैव्यं मानुषा युगा: (वाज० १२।१११),

३. त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च।
दिव्य: संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तित:॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।१६)

४ सप्तर्षीणा युगं ह्येतद्दिव्यया संख्ययास्मृतम्। (वही)

"अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ।"

देवो की ३०० या ३६० वर्ष आयु सामान्य थी, यह इतिहास से सिद्ध है, परन्तु विशिष्ट देवों यथा इन्द्र, वरुण, यम,[1] विवस्वान्, आदि प्रजापति-तुल्य देवों की आयु सहस्रवर्ष से भी अधिक थी। जो इन्द्र १०१ ब्रह्मचारी रहा, जो अपने शिष्य भरद्वाज को ४०० वर्ष को आयु प्रदान कर सकता था, उसकी अपनी स्वयं की आयु कितनी हो सकती है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। दीर्घायु पुरुषो का वर्णन पृथक् अध्याय मे किया जायेगा।

देवो की आयु सामान्यतः ३०० (या ३६०) वर्ष और प्रजापति का आयु ७०० (या ७२० वर्ष) या सहस्राधिक होती थी, इसका प्रमाण जैमिनीय ब्राह्मण (१।३) के निम्नवचन मे प्राप्त होता है—"प्रजापतिस्सहस्रसवत्सरमास्त। स सप्त शतानि वर्षाणा समाप्यमेमामेव जितिमजयत्··· स स्वर्ग लोकमारोहन् देवान्नब्रवीदेतानि यूयं त्रीणि शतानि वर्षाणा समापयथेति।"

देवयुग मे सवत्सर दशमास या ३०० दिन का भी होता था, इसका प्रमाण वैदिकग्रन्थों के साथ यूरोपियन इतिहास मे भी मिलता है। इसका उल्लेख लोकमान्य तिलक ने अपने ग्रन्थ में किया है। जैमिनीयब्राह्मण और अवेस्ता से भी इसकी पुष्टि होती है।[2]

अत देवयुग ३०० या ३६० वर्षो का होता था और प्रायः यही सामान्य देवपुरुष की आयु थी। इतिहासपुराणो मे बहुधा देवयुग का उल्लेख है—'पुरा देवयुगे राजन्नादित्यो भगवान् दिवः' (सभापर्व ११।१)

'पुरादेवयुगे ब्रह्मन् प्रजापतिसुते शुभे।' (आदिपर्व १४।५) जैमिनीयब्राह्मण (२।६५), निरुक्त (१२।४१) और रामायण (१।६।१२) मे भी देवयुग का उल्लेख है। अतः 'देवयुग' एक ऐतिहासिक युग था। देवयुग ३०० वर्ष का होता था, इसका स्पष्ट उल्लेख मत्स्यपुराण २४।३७ मे है—

"अथ देवासुरयुद्धमभूद्वर्षशतत्रयम्।"

---

१. पारसीधर्मग्रन्थ जेन्दाअवेस्ता (छन्दोवेद = अथर्ववेद) के प्रमाण सेज्ञात होता है कि वैवस्वतयम, जो इंद्र का गुरु था, उसने १२०० वर्ष पृथ्वी पर शासन किया—"३००-३०० वर्ष करके उसने चार बार राज्य किया। इस १२०० वर्षों में पृथ्वी का आकार (जनसख्या) पहिले से दुगुना हो गया (अवेस्ता, द्वितीय फर्गद, आर्यों का आदिदेश, पृ० ७४ पर उद्धृत)

२. द्र०. Ar. H. in the Vedas P. 158)

ऐसे द्वादश देवासुरसंग्राम दशयुगपर्यन्त अर्थात् ३६०० वर्षों के मध्य मे हुए ।[1]—(१४००० वि० पू० से १०४०० वि० पू० तक हुए)

२८ अवान्तर त्रेता=परिवर्त=पर्याय=द्वापर—प्राचीनपुराणपाठों मे गणना परिवर्त, पर्याय नाम के ऐतिहासिक युगो मे की गई है, इन्ही को वैदिकग्रंथो मे 'देवयुग' या 'दैव्ययुग' कहा गया है। प० भगवद्दत्त ने देवयुग, अवान्तर त्रेता (पर्याय=परिवर्त) आदि की अवधि जानने में असमर्थता व्यक्त की है—"यदि अवान्तर त्रेताओ की अवधि तथा आदियुग, देवयुग और त्रेतायुग आदि की अवधि जान ली जाए तो भारतीय इतिहास का सारा कालक्रम शीघ्र निश्चित हो सकता है।"[2]

वायुपुराण के दक्ष, द्वादश आदित्य करन्धम, मरुत्त आदिपुरुषो को आदित्रेतायुग या प्रथमपर्याय में होना बताया गया है। मान्धाता १५वें युग मे हुए, जामदग्न्य राम उन्नीसवें युग मे, राम[3] (दाशरथि) चौबीसवें युग मे और वासुदेवकृष्ण २८वें युग मे हुए। ये सभी पुरुष थोड़े अन्तर (कुछ शतियो) मे उत्पन्न हुए, इनमे लाखों करोडो वर्षों का अन्तर किसी प्रकार उपपन्न नही होता, यही तथ्य प्रत्येक गम्भीर पुराण अध्येता समझ लेगा। परन्तु उनमे उतना स्वल्प समयान्तर नही था जैसाकि पार्जीटर मानता था।

प्रत्येक परिवर्तयुग (३६० वर्ष) को भ्रम से एक चतुर्युग (१२००० दिव्य वर्ष) मानकर ही पुराणगणना मे भीषण त्रुटि हुई है। अत २८ अवान्तर युगो को चतुर्युग मान लिया गया। पर्याय=परिवर्त की अवधि एक देवयुग (दैव्ययुग) यानी ३६० वर्ष थी, यह तथ्य विविध प्रमाणों से प्रमाणित किया जायेगा। ये प्रमाण हैं—(१) व्यास परम्परा (2) नहुष से युधिष्ठिर का अन्तर (दससहस्रवर्ष) (३) तमिलसंघपरम्परा (४) मिस्रीपरम्परा (५) द्वादशवर्षसहस्रात्मक महायुग (चतुर्युग=देवयुग) (६) पारसी (ईरानी) प्रमाण (७) मैगस्थनीज उल्लिखित असित धान्वासुर (डायनोसिस) का समय और (८) मयसम्यत्ता की गणना।

---

१. युगं वै दश (वायु० ९७।७०),

२. भा० बृ० इ० भा० १ (पृ० १५६)

३. चतुर्विंशे युगेचापि विश्वामित्रपुरस्सरः ।
राज्ञो दशरथस्य पुत्रः पद्मायतेक्षणः ।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ॥ (हरिवंशपु० २२।१।४१)

परिवर्त (वैंश्ययुग=सौरयुग) का मान विस्मृत

३६० वर्षमितवाले युग का पुराणो मे उल्लेख अवश्य है, परन्तु इसका वर्षमान विस्मृत सा हो गया, इसके कारण हम पूर्व संकेत कर चुके हैं—यथा देववर्ष की कल्पना, २८ परिवर्तों को २८ चतुर्युग मानना इत्यादि से ३६० वर्ष का युग विस्मृत हो गया। प्रकारान्तर से इसका उल्लेख अवश्य मिलता है। परन्तु निम्न श्लोक मे दिव्यसवत्सर के नाम से 'परिवर्तयुग' का ही उल्लेख है।

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु।
दिव्यः सवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।१६)

भ्रांति से दिव्यसंवत्सर को परिवर्तयुग न समझकर=दिव्यवर्ष समझकर समस्त भ्रान्ति उत्पन्न हुई।[1]

आधुनिकयुग मे कुछ सोवियत अन्वेषको ने कम्प्यूटरादि से हड़प्पा सिन्धुलिपि की खोज की है। इस सम्बन्ध मे सोवियत अन्वेषको ने ज्ञात किया है, "सिन्धु-जनो ने ६० वर्षो के कालचक्र की, बृहस्पतिचक्र की खोज कर ली थी और इस चक्र को वे बारह वर्षों की पांच अवधियो मे विभाजित करते थे। यह भी कल्पना की गई है कि हड़प्पावासी 'वर्षकाल' को 'देवताओ के एक दिन' के तुल्य मानते थे। बाद में संस्कृत साहित्य मे इस मान्यता को हम अधिक विकसित रूप से देखते हैं। सिन्धुजनो ने 'बृहस्पतिचक्र' के अलावा ३६० वर्षों के एकऔर कालचक्र(परिवर्तयुग) की भी कल्पना की थी।[2] वर्ष में ३६० दिन और

---

१. इस युगमान की स्मृति, सिद्धान्तशिरोमणि के टीकाकार मुनीश्वर ने वेदांग ज्योतिष के रचियता लगध के प्रमाण से इस प्रकार उद्धृत की है—

"पंचमवत्सरैरेकं प्रोक्त लघुयुग बुधैः।
लघुद्वादशकेनैव षष्टिरूपं द्वितीयकम्।
तद् द्वादशमितैः प्रोक्त तृतीययुगसंज्ञकम्।
युगानां षट्शती तेषां चतुष्पादी कलायुमे।"

इसमे तृतीययुग ७२० वर्ष का था, परन्तु यह वैदिक प्रजापतियुग (अहोरात्र रूपी ७२० वर्ष) का मान था, इसका आधा अर्थात् ३६० देवयुग (परिवर्तयुग) युगमान था, अतः मुनीश्वर का उद्धरण कुछ भ्रान्तिजनक है, तृतीययुग ३६० वर्ष का ही था और उसमे ६०० के स्थान पर १२०० का गुणा करने पर ही कलियुग या युगपाद का मान आता था।

२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (२५ अक्तूबर, १९८१) में श्री गुणाकर मुले का लेख 'सिन्धु भाषा और लिपि की पहेली'।

दैवयुग में ३६० वर्ष होने के कारण, साम्यसंख्या के कारण युगमान—(३६० वर्ष) विस्मृत हो गया। भारत के समान बैबीलन का इतिहासकार बैरोसस भी इस भ्रम में पड़ गया और उनसे दिनों को वर्ष मान लिया। द्र० पूर्व पृष्ठ १०६।

तृतीययुगगणनासम्बन्धी श्लोकों का पाठपरिवर्तन

प्राचीनग्रंथो मे विशेषतः पुराणो एवं ज्योतिषग्रन्थों मे कालगणनासम्बन्धी कितना परिवर्तन, परिवर्धन संस्करण, क्षेपक, और अंशनिष्कासन का कार्य किया गया इसको प्रत्येक गम्भीर पुरातत्ववेत्ता या भारतविद्याविद् सम्यक् समझ सकता है। परन्तु हम यहाँ केवल दो-चार उदाहरणो पर विचार करेंगे, जिसने इतिहास गणना को पूर्णतः अनैतिहासिक किंवा मिथ्या बना दिया।

प्रथम उदाहरण-दिव्यसंवत्सर या दिव्ययुग

वायु, ब्रह्माण्डादि प्राचीनपुराणों मे एक श्लोक मिलता है—(परिवर्त या दैव्ययुग सम्बन्धी)

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टि वर्षाणि यानि तु।
दिव्यसंवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः॥

(ब्रह्मा० २।२८।१६)

उपर्युक्त समीक्षा के अनन्तर हम अधिक प्रामाणिक लगधाचार्य के निम्न श्लोक का पाठ जो मुनीश्वर ने उद्धृत किया है, इस प्रकार मूल में होना चाहिए, तभी 'तृतीययुग' सार्थक होगा—

तत् षण्मितैः प्रोक्त तृतीय युगसञ्ज्ञकम्।
युगाना द्वादशशती तेषा चतुष्पादी कला युगे॥

हमने लगध के 'द्वादशमितैः' का स्थान पर 'षण्मितैः' और 'षट्शती' के स्थान पर 'द्वादशशती' माना है, क्योकि 'युगपाद' १२०० वर्ष (द्वादशशती) का होता था, न कि ६०० वर्ष का, जैसा कि आर्यभट ने भी लिखा है—'षष्ट्यब्दाना षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।' (कालक्रियापाद, आर्यभटीय, श्लोक १०)। आर्यभट के साक्ष्य से निश्चित है कि लगधोक्त 'तृतीययुग' ३६० वर्ष का ही होता था न कि ७२०वर्ष का, कलि के १२००वर्ष मे ३६० का गुणा करके ही दिव्यवर्ष का मान निकाला जाता है, न कि ७२० वर्ष का। ७२० वर्ष के किसी भी युग का अन्यत्र किसी भी प्राचीनग्रंथ में किञ्चिन्मात्र भी सकेत नही है अतः युगपाद ६०० वर्ष का उपपन्न नही होता, यह १२०० वर्ष का ही

था। यद्यपि गणित की दृष्टि से ७२० × ६०० = ३६० × १२०० = ४३२००० तुल्य परिमाण है, परन्तु मुनीश्वर के वर्तमानपाठ को मानने से इतिहास मे अर्थ का महान् अनर्थ हो जाता है। अतः तृतीययुग (३६० वर्ष) = परिवर्तयुग, बार्हस्पत्ययुग (६० वर्ष) का छः गुना (षण्मित) होता था न कि द्वादशमित। अतः अज्ञान या भ्रान्तिवश मुनीश्वर के श्लोक मे अनर्थकपाठपरिवर्तन किया गया है जिसका निम्न शुद्धरूप इतिहाससम्मत है—

तत् षण्मितैः प्रोक्तं तृतीयं युगसंज्ञकम्।
युगानां द्वादशशती तेषां चतुष्पादो कला युगे॥

अतः आर्यभट, पुराण, लगध, सिन्धुसभ्यता और वैदिकवाङ्मय—सभी के साक्ष्य से ऐतिहासिक दैवयुग = परिवर्त का मान ३६० वर्ष ही सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह फलितार्थ निकलता है कि प्राचीन देशो—भारत, बैबीलन, आदि में ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण प्रत्येक दिन लिखा जाता था और वह न केवल मास और वर्ष बल्कि दिनो में गणना होती थी, अतः आधुनिक तथाकथित इतिहासकारो का यह आरोप पूर्णतः मिथ्या है कि प्राचीन जन इतिहास लिखना नही जानते थे अथवा इतिहास मे उन्होने तिथिगणना की उपेक्षा की। निम्नलिखित चार देशो के साक्ष्य से यह सिद्ध है कि वे वर्ष या मास की ही नही एक-एक दिन की इतिहास मे गणना करते थे।

स्वयं योरोपियन या यूनानियो के इतिहासपिता हैरोडोटस ने लिखा है कि मिस्री पुरोहित प्रत्येक वर्ष का ऐतिहासिक वृत्तान्त बहियो मे लिखते थे—"In these matters they Say they cannot be mistaken as they have always kept count of the years and noted them in their Registers" (Herodotus, Vol 1 p 320)

बैबीलन में

तृतीयशतीपूर्व के इतिहासकार बैरोसस ने दैत्येन्द्र बलि असुर के मन्दिर मे जलप्रलयपूर्व और पश्चात् का ऐतिहासिक विवरण सुरक्षित मिला, जहा से उसने अपना इतिहास ग्रन्थ लिखा—"It was from these writings deposited in the temple of Belus of Babylon, that Berosus copied the outlines of history of the antidiluvion Sovereigns of Chaldea" (History of Hindustan, its Arts and its Sciences Vol 1 London 1820 by 1. Mourice P. 399).

बैरोसस की भ्रान्ति का कारण

जलप्रलय पूर्व और पश्चात् का वृतान्त मूल में दिनों मे लिखा हुआ था, जो बैरोसस को मन्दिर में मिला और इसने प्राचीन वृतान्त को पढ़ने या सम-

समने में बैरोसस को भ्रान्ति या त्रुटि होना असम्भव नहीं, इसी भ्रान्ति के कारण बैरोसस ने दिनों को वर्ष समझकर राजाओं का राज्यकाल हजारों लाखों वर्ष का लिखा, जो पूर्णतः असम्भव है। हमने पुराणसाक्ष्य के आधार पर बैरोसस की त्रुटि सुधार दी है और बैबीलीन राजाओ का यथातथ्य राज्यकाल निकाल लिया है।

यहूदी साहित्य—बाइबिल में गणना दिनों में—

भारत और प्राचीन चाल्डिया के समान उनके अनुकरण पर प्राचीन यहूदियो ने भी ऐतिहासिक वृतान्त दिन-प्रतिदिन सुरक्षित रखने की प्रथा थी, इससे उनकी सूक्ष्म ऐतिहासिक बुद्धि का पता चलता है। बाइबिल में मनु (नूह) और जलप्रलयसम्बन्धी वर्णन द्रष्टव्य है, जिसमे एक-एक दिन का विवरण लिखा गया है—(1) For yet seven days and I will cause it to rain upon the earth forty days and forty nights (2) In the six hundredth year of Noah's life the second month. the seventeenth day of the month,... (3) And the Flood was forty days upon the earth (4) And there to rested in the seventh month on the seventeenth day of the month, upon the mountain of Arrarat (Holy Bible, p 10, 11)।

सहस्रोंवर्षपूर्व के इतिहास मे एक-एक दिन का वृत्तान्त सुरक्षित रखना कितना दुष्कर कर्म है, यह वर्तमान विद्वान् समझ सकते हैं।

भारतीयगणना

प्राचीन भारत मे इक्ष्वाकु, मान्धाता, सगर, भरतदौष्यन्ति, दाशरथिराम से हर्षवर्धन (सप्तमशती) पर्यन्त विवरण वर्ष, मास और तिथियों (दिनो) मे सुरक्षित रखा जाता था, यह तथ्य पुराणों एवं मौर्ययुग से हर्ष तक के शतशः सहस्रशः शिलालेखो मे प्रमाणित है, एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) मिधवसे ४०, २ वैसाख मासे राजा क्षहरातम क्षत्रपस नहपानस'''।
(नहपान नासिक गुहालेख)

(२, शते पञ्चपष्ट्यधिके वर्षाणां भूपतौ च बुधगुप्ते। आषाढमासशुक्लद्वादश्यां सुरगुरोर्दिवसे ॥ (एरणस्तम्भ गुप्तलेख)

अतः प्राचीन भारतीयो पर इतिहास की उपेक्षा का आरोप मिथ्या है। हाँ, इतिहासवृत्त अनेक कारणो से पर्याप्त लुप्त हो गए, यह पृथक् बात है। यह सत्य

है कि प्राचीनभारतीयजन वृत्त को आज की अपेक्षा अधिक और पूर्ण सुरक्षित रखते थे, यदि प्राचीनवृत्तात केवल कागज या भोजपत्र पर लिखा जाता तो हम प्राचीनराजाओं का नाम भी नही जान सकते थे, उन्होंने तो इतिवृत्त को सुदृढ़ पत्थरों एवं धातुपत्रो पर उत्कीर्ण करा दिया था, जिनके नष्ट होने की बहुत कम संभावना थी। इससे भी प्राचीन राजाओ और विद्वानो की इतिहाससंरक्षण के प्रति अत्यधिक चिन्ता प्रकट होती है।

व्यासपरम्परा से तृतीययुग परिवर्तयुगमान (३६० संवत्सरात्मक) की पुष्टि—अतः वायुपराण (अ०२३।११४-२२६) मे विस्तार से २८ या ३० व्यासों का वर्णन है, ब्रह्माण्डपुराण मे (१।२।३५) एव विष्णुपुराण (३।३) मे व्यासो की सूची लिखित है। यहाँ पर विषयगौरव के कारण ब्रह्माण्डपुराण से व्यासो का वर्णन उद्धृत करते हैं, जिससे ज्ञात होगा कि क्रमिकरूप से प्रथम परिवर्त से अट्ठाइसवेंपरिवर्तपर्यन्त शिष्यानुशिष्यरूप मे कौन-कौन से व्यास हुये—

अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभि ।
प्रथमे द्वापरे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यास. प्रजापति ।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः ।
सविता पचमे व्यासो मृत्युः षष्ठे स्मृत प्रभुः ।
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः ।
सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः ।
एकादशे तु त्रिवृषा सनद्वाजस्तत परम् ।
त्रयोदशे चातरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे ।
त्रय्यारुणि. पंचदशे षोडशे तु धनजयः ।
कृतंजय ऋजीषोऽष्टादशे स्मृतः ।
ऋजीषात्तु भरद्वाजो भरद्वाजात्तु गौतमः ।
गौतमादुत्तमश्चैव ततो हर्यवन स्मृत. ।
हर्यवनात्पगे वेनःस्मृतो वाजश्रवास्ततः ।
अर्वाक्च वाजश्रवसः सोममुख्यायनस्ततः ।
तृणबिन्दुस्ततस्मातृक्षस्तु तृणविन्दुतः ।
ऋक्षाच्च स्मृतः शक्तिः शक्तेश्चापि पराशरः ।
जातूकर्णोऽवमग्मात्द्वैपायनः स्मृतः ।

पुराणो मे अनेकश भ्रष्टपाठो के कारण वेदव्यासनामो मे पर्याप्त विकृतियां हैं। इनके नाम समस्तपाठो से संतुलित करके इस प्रकार संशोधित किये गये

हैं—(१) स्वयम्भू ब्रह्मा, (२) प्रजापति (कश्यप), (३) उशना (शुक्र), (४) बृहस्पति, (५) विवस्वान् (६) वैवस्वयतयम, (७) इन्द्र, (८) वसिष्ठ (वासिष्ठ) (६) सारस्वत (अपान्तरतमा), (१०) त्रिधामा, (११) त्रिवृषा, (१२) भरद्वाज (सनद्वाज=सुतेजा=त्रिविष्ट), (१३) अन्तरिक्ष, (१४) धर्म=सुचक्षु=वर्णी=नारायण, (१५) त्रय्यारुणि, (१६) धनंजय—संजय, (१७) कृतंजय, (१८) ऋतंजय (ऋजीषी)=जय=तृणजय, (१९) भरद्वाज, (२०) गौतम=वाजश्रवा, (२१) वाचस्पति+निर्यन्तर=हर्यात्मा=उत्तम, (२२) वाजश्रवा=शुक्लायन, (२३) सोमशुष्मायण=सोमशुष्म—तृणविन्दु, (२४) ऋक्ष=वाल्मीकि, (२५) शक्ति, (२६) पराशर: (२७) जातूकर्ण, (२८) कृष्णद्वैपायन=पाराशर्यव्यास।

इस व्यासपरम्परा के आधार पर २८ या ३० युगों का सम्पूर्ण और औसत कालमान निकाला जा सकता है। कृष्णद्वैपायन व्यास अन्तिम व्यास थे, उनका समय ज्ञात है कि द्वापर के अन्त मे, कलियुग प्रारम्भ मे लगभग २०० वर्ष पूर्व थे हुये, और कलियुग का प्रारम्भ कृष्ण के स्वर्गवास के दिन से हुआ—

यस्मिन् कृष्णो दिव यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने।
प्रतिपन्न: कलियुगस्तस्य सख्या निबोधत ॥[1]

और २४वे व्यास ऋक्ष वाल्मीकि का अवतार त्रेताद्वापर की सन्धि मे हुआ—परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति।[2] इसी २४वें परिवर्तयुग मे रामावतार हुआ—

त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपस: क्षयात्।
राम दाशरथिं प्राप्य सगण: क्षयमेयिवान् ॥
संधौ तु समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पति: ॥
(शान्तिपर्व ३४८।१६)

पुराणों के अनुसार वाल्मीकि (ऋक्ष) व्यास से अट्ठाइसवेंव्यासपर्यन्त निम्न-लिखित व्यास हुये—

---

१ वायु० (६६।४२७),

२. वायु (१३।३०६),

(क) पुलस्तिष्ये च सप्राप्ते कुरवो नाम: भारता:।
कृष्णेयुगे च सप्राप्ते कृष्णवर्णो भविष्यति: ॥
विख्यातो वसिष्ठकुलनंदन.। (शान्तिपर्व. ३४६)

२४वां परिवर्त युग मे	ऋक्ष=वाल्मीकि व्यास
२५ ,, ,,	शक्ति व्यास
२६ ,, ,,	पराशर ,,
२७ ,, ,,	जातूकर्ण ,,
२८ ,, ,,	कृष्णद्वैपायन

युग और व्यास २८ या ३० भ्रान्ति ?

वर्तमान पुराणों एवं सूर्यसिद्धान्त आदि मे यह मान्यता मिलती है कि वैवस्वत मन्वन्तर के २८ चतुर्युग व्यतीत हो चुके है और यह इस मन्वन्तर का २८वाँ कलियुग चल रहा है, पुराणो मे इस समय २८ व्यासो के ही नाम मिलते है।

अथर्ववेद (८।२।२१) के प्रमाण से हमे ज्ञात है कि तीन युगो मे ११०००- वर्ष या सही १०८०० वर्ष होते थे, पुराणो एव मनुस्मृति के अनुसार हम बहुधा बता चुके हैं कि चतुर्युग मे १२००० मानुष वर्ष ही होते थे। दक्ष-कश्यपप्रजापतिद्वयी से युधिष्ठिर पर्यन्त चतुर्युग के या सही अर्थों मे युगो या परिवर्तो के १०८०० वर्ष व्यतीत हुये थे। यह परिवर्त या युग या लघुदेवयुग (वैदिकदिव्य-युग) ३६० वर्ष का होता था। १०८०० वर्षो मे ३० युग (३६० × ३० = १०८००) ही व्यतीत हुये। अत भारतयुद्धपर्यन्त ३० युग व्यतीत हुये और व्यास भी ३० या अधिक होने चाहिए। यह हमारी अपनी निजी कल्पना नहीं है, पुराणपाठो मे इस तथ्य के निश्चित सकेत है।

२. **नहुष से युधिष्ठिर तक का अन्तर (काल)**—नहुष मे युधिष्ठिर पर्यन्त लगभग दशसहस्रवर्ष व्यतीत हुये थे, इसका एक प्रमाण महाभारत के वर्तमानपाठ मे अवशिष्ट रह गया है। उद्योगपर्व (१७'१५) मे स्पष्ट रूप मे लिखा है कि अगस्त्य ऋषि के शाप मे नहुप दशसहस्रवर्ष तक अजगरयोनि मे रहा और युधिष्ठिर के दर्शन होने पर उसकी शापमुक्ति हुई—

दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥

नहुष का पुत्र ययाति प्रजापति से दशम पीढी मे हुआ।[1]

---

१ ययातिः पूर्वजोऽस्माक दशमो यः प्रजापतेः। (आदिपर्व ७१।१)
ये दशपुरुष थे—प्रचेता, दक्ष, कश्यप, विवस्वान् मनु, बुध, पुरूरवा, आयु, नहुष और ययाति। ये सभी दीर्घजीवी थे, इनका कालादि अग्रिम अध्यायो मे विचारित होगा।

वैवस्वत मनु, नहुष से पांच पीढ़ी पूर्व, नहुष से लगभग एक सहस्रवर्षपूर्व हुए, अतः वैवस्वतमनु और युधिष्ठिर में लगभग ग्यारह सहस्रवर्ष का अन्तर था।

३. **तमिलसंघपरम्परा से परिवर्तकाल (दशसहस्रवर्ष) की पुष्टि**—तमिलसंघ परम्परा से भी उपर्युक्त कालगणना की पुष्टि होती है। प्रथम तमिलसंघ की स्थापना शिव, स्कन्द, इन्द्र और अगस्त्य के समय में हुई, पाण्ड्यनरेश कापचिन वलुति (वलि ?) के राज्यकाल में।[1] प्रथमसंघ के प्रमुख अध्यक्ष थे—अगस्त्य ऋषि, जिन्होंने तमिल के अगस्त्य (अकत्तियम्) व्याकरण की रचना की। तमिल इतिहास में तीन संघकाल, इस प्रकार माने जाते हैं—

प्रथम संघकाल—अगस्त्य से प्रारम्भ—८९ राजा = ४४०० वर्ष राज्यकाल
द्वितीय संघकाल दाशरथिराम से प्रारम्भ—५८ राजा = ३७८० वर्ष ,,
तृतीय संघ काल भारतोत्तरकाल प्रारम्भ —४९ राजा = १८५० वर्ष ,,

योग १९७ राजा = १००३० वर्ष

आदिम अगस्त्य ऋषि नहुष और देवराज इन्द्र के समकालिक थे। अन्तिम तमिलसंघ की समाप्ति विक्रम सम्वत् के निकट हुई। अतः तमिलगणना में अगस्त्य का समय विक्रम से दशसहस्रवर्षों से कुछ पूर्व था। आदिम अगस्त्य अत्यन्त दीर्घजीवी ऋषि थे—सहस्राधिक वर्षों तक जीवित रहे, पुनः उनके वंशज भी अगस्त्य ही कहे जाते थे। अतः तमिलसंघगणना से भी पुराणोक्त कालगणना, विशेषतः चतुर्युग एवं परिवर्तयुगगणना की पुष्टि होती है कि अगस्त्य और नहुष का समय विक्रम से लगभग तेरह सहस्रवर्षपूर्व था।

४. **मिस्रीगणना से पुष्टि**—हेरोडोटस ने मिस्रीगणना में चौदहमनुओं में से किसी एक मनु का समय ११३६० वर्ष पूर्व अर्थात् अब में लगभग चौदह-सहस्रवर्षपूर्व बताया है—"The priests told Herodotus that there had been 391 generations both of kings and high priests from Manos (मनु) to Sethos and this he calculates at 11390 years.[2]

बाइबिल के अनुसार मनु की आयु—९५० वर्ष थी, अतः उसका जन्म आज से पन्द्रह सहस्रवर्ष पूर्व हुआ—११३९० + २६०० = १३९९० हैरोडोटस और

१. द्र० तमिलसंस्कृति—ले० र० शौरिराजन् (पृ० ११),
२. The Ancient History of East by Philips Smith p 59.

सैयोज विक्रम से लगभग ६०० वर्ष पूर्व हुये, अतः मिस्री मनु का जन्म आज से १४५०० वर्ष पूर्व था। भारतीय गणना से वैवस्वतमनु, तृतीय परिवर्त में हुए, तदनुसार उनका समय (३६० × २७ परिवर्त -९७२० + ५१२० भारतयुद्धकाल = १४८८० वर्ष पूर्व निश्चित होता है, अत मिस्रीगणना से भी भारतीयगणना की पुष्टि होती है।

५. चतुर्युगपद्धति से पुष्टि—महाभारत (भीष्मपर्व ११।६), मनुस्मृति (१।६४।७८) एवं प्रायः सभी पुराणों में चतुर्युग कृत, त्रेता, द्वापर और कलि का मान क्रमश ४८०० वर्ष, ३६०० वर्ष, २४०० वर्ष और १२०० वर्ष गणित है।[1] इस पद्धति से भी उपर्युक्त परिवर्तयुगगणना की पुष्टि होती है। कलियुग को छोड़कर तीनों युगों का कालमान १०८०० वर्ष था महाभारतयुद्ध समाप्त हुये लगभग ५१२० वर्ष हुये हैं, कश्यप और दक्ष प्रजापति कृतयुग के आदि मे हुए, इस गणना से उनका समय १०८०० + ५१२० = १५९०० वर्ष या षोडश-सहस्रवर्षपूर्व था।

सभी गणनाओं में मनु आदि का एक ही समय निकलता है, अत सभी गणनायें या परम्परायें मिथ्या नहीं हो सकती, अत अगस्त्य, नहुषादि का जो समय उपर्युक्त गणनाओं से जो हमने निश्चित किया है, वही सत्य है। इतिहास मे कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं है।

६. पारसीपरम्परा का प्रमाण—भारतीय अनुकरण पर पारसी, बावल, यहूदी और यूनानीपरम्परा मे चारयुगों एवं उनका काल १२००० वर्ष माना जाता था। ऐसा लेख प्रमाणों द्वारा प० भगवद्दत्त ने लिखा है।[2] पारसीजन हमारी तरह ही १२००० वर्ष का युगचक्र मानते थे। वैवस्वत यम ने ३००-३०० करके १२०० (द्वादशशताब्दी = एककलियुगतुल्य) वर्ष राज्य किया था, यह पहिले ही अवेस्ता (फर्गर्द २) के आधार पर लिखा जा चुका है।[3]

७. मैगस्थनीज का भारतीय इतिहासकालसम्बन्धीप्रमाण—मैगस्थनीज ने प्राचीनभारतीय इतिहासकालसम्बन्धी एक विवरण प्रस्तुत किया है और डायनोसियस (दानवासुर = धान्व असिनासुर) मे सिकन्दरपर्यन्त १५४ राजा और

---

१. एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते (मनु० १।७१)

२. इ० भा० बृ० इ० भाग १ पृ० २१ तथा Encyclopedia of Relegion and Ethics (Articles on ages).

३. इ० आर्यों का आदि देश पृ० ७४।७६ पर उद्धृत

६४५१ वर्ष गणित किये हैं।[1] प० भगवद्दत्त डायनोसिस या बेक्कस को विप्रचित्ति (प्रथम दानवेन्द्र) मानते है जो हिरण्यकशिपु के समकालिक एवं इन्द्र का पूर्ववर्ती था। परन्तु 'बेक्कस'[2] वृत्र हो सकता है, और वृत्रासुर का समय भी अत्यन्त पुरातन है, 'विप्रचित्ति' का विकार बेक्कस' किसी प्रकार भी नहीं बनता। असुरेन्द्र असितधान्व ही 'डायनोसिस' हो सकता है।[3] निश्चय ही डायनोसिस 'धान्व' का विकार है। 'धान्व' असुर (डायनोसिस) ने देवो से बदला लेने के लिए, देवयुग के बहुत काल पश्चात् देवसन्तति (भारतीयो) पर आक्रमण किया। इसी का संकेत मैगस्थनीज ने किया है।[4] विप्रचित्ति के समय असुर भारतवर्ष मे ही रहते थे, परन्तु डायनोसिस (धान्व) बाहर (पश्चिम) से आया था, अतः धान्व असित असुर ही मैगस्थनीज उल्लिखित डायनोसिस था। जिसका समय आज मे लगभग १०००० (६४५१ + ३२७ + ११८२ = ६७६०) वर्ष पूर्व था, जो भारतयुद्ध मे पूर्व अर्थात् १३ परिवर्त पन्द्रहवेंयुग मे जब भारत मे मान्धाता का राज्य था। असितधान्व असुरों का आदिम राजा नही था, परन्तु वंश प्रवर्तक एव राज्यप्रवर्तक था, जिस प्रकार रघुवश का प्रवर्तक रघु। अश्वमेधयज्ञ के अवसर पर सातवें दिन असितधान्व का उपाख्यान सुनाया जाता था। (द्र० श० ब्रा० १३।४।३) ।

८. **मैक्सिको की मयसभ्यता में चतुर्युगगणना**—श्री चमनलाल ने 'द्वादशवर्षसहस्रात्मक' भारतीय चतुर्युग की तुलना प्राचीन मैक्सिको की मयगणना मे की है—"The following comperative table" Shows the lengths of the Indian and Mexican Ages :—

---

१ From the days of Father Bacchus to Alexander the great their Kings are reckoned at 154 whose reigns extend over 6451 years and three months (Indika)

२. बेक्कस का शुद्ध संस्कृत 'बृक' भी सम्भव है, 'वृक' नाम के अनेक असुर हो चुके थे।

३. वायुपुराण (६८।८१) के अनुसार प्रह्लादपुत्र विरोचन का पुत्र शम्भु था, उसका पुत्र हुआ धनु, इसके वंशज असुर धान्व कहलाये, असित इन्ही का कोई वंशज था।

४. .... Dionysus .. . coming from the regions lying to the west .... He overun the whole India......He was besides, the founder of large cities (Fragments; p 35-36)

INDIAN		MAXICAN
First Age,	4800 years	4800 years
Second Age	3600 years	4010 years
Third Age	2400 years	4801 years
Fourth Age	1200 years	5042 years
		(Total = 18653 years)

In both countries the first Age is of exactly the same duration"……(Hindu America, p 34, by Chaman Lal) स्पष्ट है मैक्सिको का इतिहास आज से लगभग उन्नीस सहस्रवर्षपूर्व आरम्भ होता था और भारतीय और मैक्सीकनयुगगणना मे प्रारम्भिक साम्य था तथा मनु का समय मैक्सिको मे भी आज मे चौदह सहस्र वर्ष पूर्व ही माना जाता था, उनका आदिमपूर्वज या प्रमुखपुरुष मयासुर भी लगभग उसी समय हुआ, क्योंकि मयासुर, वैवस्वत मनु के पिता विवस्वान् का शिष्य और साला था।

सप्तर्षियुग

२७०० वर्षों का एक सप्तर्षियुग या सवत्सर प्राचीनपुराणपाठों मैं उल्लिखित है। सप्तर्षिमण्डल के सप्ततारा मघादि नक्षत्रों मे १००-१०० वर्ष ठहरते हैं, इस गणना से सत्ताईस सौ वर्षों का एक युग होता था।[1]

एक अन्य मत (पुराणपाठ) के अनुसार सप्तर्षियुग ३०३० वर्षों का होता था—

> त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।
> त्रिंशद्यानि तु मे मत सप्तर्षिवत्सर ॥

वायुपुराण एव ब्रह्माण्डपुराण के मतानुसार शान्तनुपिता कौरवराज प्रतीप के राज्यकाल से लेकर आन्ध्रसातवाहनवश के आरम्भ होने से पूर्व तक एक सप्तर्षियुग पूर्ण हो चुका था और प्रतीप मे परीक्षितपर्यन्त ३०० वर्ष हुये थे, अत परीक्षित् से आन्ध्रपूर्व तक २४०० वर्ष पूर्ण हुये, परीक्षित् से नन्दवंश के प्रारम्भ

१. सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्॥
सप्तर्षीणा युग ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम्॥ (वायु० ९९।४१९)
द्रष्टव्य है कि यहाँ २७०० मानुषवर्षों को ही दिव्यवर्ष कहा है।

तर्क १५०० वर्ष पूरे हुये थे । अतः महाभारत का युद्ध कलि के प्रारम्भ से ३६ वर्षपूर्व अर्थात् ३०८० वि० पू० हुआ—

सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या आन्ध्राणामन्वया. पुन. ।[1]
सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रदीप्तेनाग्निना समाः ।
सप्तविंशतिर्भाव्यानामन्ध्राणान्तेऽन्वयात् पुनः ।[2]
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारीक्षिते शतम् ।
अन्ध्राणान्ते सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शत समाः ।[3]

उपर्युक्त प्रमाणो से भारतीय इतिहास की सुपुष्ट आधारशिला रखी जायेगी । ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणो मे ऐतिहासिक कालगणना सप्तर्षियुग के माध्यम से भी होती थी । पचवर्षीययुग से सप्तर्षियुगपर्यन्त सभी इतिहास मे प्रयुक्त होते थे ।

उपर्युक्त गणना मे प्रकट है कि दक्ष प्रजापति से एक महायुग (दैव्ययुग) युधिष्ठिरपर्यन्त, १०० मानुषयुग या ३ सप्तर्षियुग या १०००० (दशसहस्र) वर्ष व्यतीत हुये थे और महाभारतयुद्ध ३०८० वि० पू० लड़ा गया था तथा ३०४४ वि० पू० कृष्णपरमधामगमन के दिन मे कलियुग प्रारम्भ हुआ ।

चतुर्युगपद्धति के आविष्कार से पूर्व इतिहास मे गणना शतवर्षीय मानुषयुग, ३६० वर्षीय परिवर्तयुग (या देवयुग) और २७०० वर्षीय सप्तर्षियुग मे होती थी ।

चतुर्युग की कृतादि सज्ञायें कब और कैसे समुद्भूत हुई, यह रहस्य वैदिक वाङ्मय और इतिहासपुराणो से ही अनुसधान करेंगे ।[4]

कृतादिसंज्ञाकरण का रहस्य

उपर्युक्त वैदिक (प्राचीनतर) मानुषयुग और परिवर्तयुगपद्धति से बहुत काल पश्चात् चतुर्युगपद्धति भारतवर्ष मे प्रचलित हुई,[5] वायुपुराणादि मे परिवर्तयुगपद्धति

---

१. वायु० (९९।४१८),
२. मत्स्य० (२७३।३९),
३. ब्रह्माण्ड० (३।७४।२३६) ।
४. इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृंहयेत् । (महाभारत)
५. चत्वारि भारतवर्षे युगानि मुनयो विदु ।
कृत त्रेता द्वापर च तिष्यं चेति चतुर्युगम् । (वायुपु० २४।१),

को त्रेतायुगमुखनाम, से अभिहित किया है, और इसी में ऐतिहासिक कालगणना की गई है[1] व्यासपरम्परा के वर्णन में उपर्युक्त पुराण में इसी कालगणना का प्रयोग किया है। ब्रह्माण्डादि में त्रेता के स्थान पर 'द्वापर' युग का प्रयोग हुआ है—

द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः।[2]

परिवर्त—पर्याय या युग को 'त्रेता' या 'द्वापर' कथन उत्तरकालीन भ्रम है युग का पूर्वनाम 'परिवर्त' ही था। यह 'युग' ३६० वर्ष पश्चात् परिवर्तन होता था, अतः इसे 'परिवर्त' कहा जाता था।

अब यह द्रष्टव्य है कि कृतादिसंज्ञायें कब और कैसे प्रचलित हुई। वैदिक, संहिताओं में बहुधा द्यूत के प्रसंग में कृतादिसंज्ञाओं का प्रयोग हुआ है—

कृताय आदिनवदर्शत्रेतायै कल्पिन द्वापरायाधिकल्पनमास्कन्दाय सभास्थाणुम्' (वा० स ३०।१८)

कृताय सभाविनं त्रेताया आदिनवदर्शम् द्वापराय बहिःसदम् कलये सभास्थाणुम्' (तै० ब्रा० ३।४।१)

सभावी का अर्थ है द्यूतसभा में बैठनेवाला (स्थायीसदस्य), आदिनवदर्श का अर्थ है द्यूतद्रष्टा, बहिःसद का अर्थ है सभा से बाहर से द्यूत देखनेवाला और सभास्थाणु का अर्थ है द्यूतसमाप्ति पर भी द्यूतसभा में जमे रहनेवाला, इनको ही क्रमशः कृत, त्रेता, द्वापर और कलि कहा जाता था। क्योंकि कलिसंज्ञक सदस्य या अक्ष ही कलह का मूलकारण होता था, अतः युद्ध की संज्ञा भी कलि हुई। कल्पसूत्रों के समय यज्ञादि में पञ्चाक्षिकद्यूत का प्रचलन था। द्यूत के पाँच अक्षों (पाशों) की संज्ञा भी कृतादि थी, पंचम अक्ष को 'कलि' कहा जाता था।[3] कलि सदस्य और द्यूताक्ष कलि के नाम पर ही कल्यादियुगसंज्ञायें प्रथित हुई।

राजसूययज्ञ के सूर्यमान राजा अक्षावाप की सहायता से द्यूतक्रीड़ा करता था। द्यूत और राजा का घनिष्ठ सम्बन्ध था और राजा ही काल (समय=युग) का कारण=निर्माता=प्रवर्तक होता है, यह सर्वमान्य सिद्धान्त था।

---

१. तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा (वायु० ६।४६),
त्रेताया युगमन्यत्तु कृताशमृषिसत्तमाः ॥ (वायु० ८।८७),

२. ब्रह्माण्ड० (१।२।३५।११७),

३. अथ ये पञ्चः कलिः सः (तै० ब्रा० १।५।११),

महाभारत (शान्तिपर्व, अध्याय ६९) मे राजा को युगनिर्माता या युगप्रवर्तक कहा गया है—

कालो वा कारण राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।
इति ते सशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम् ॥७९॥
दण्डनीत्या यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन प्रवर्तते ।
तदा कृतयुग नाम कालसृष्ट प्रवर्तते ॥८०॥
दण्डनीत्या यदा राजा त्रीनशाननुवर्तते ।
चतुर्थमशमुत्सृज्य तदा त्रेता प्रवर्तते ॥८७॥
अर्धं त्यक्त्वा यदा राजा नीत्यधर्ममनुवर्तते ।
ततस्तु द्वापरं नाम स कालः संप्रवर्तते ॥८९॥
दण्डनीतिं परित्यज्य यदा कार्त्स्न्येन भूमिपः ।
प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तेत तदा कलिः ॥९१॥
राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥९८॥

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि युगप्रवर्तन मे राजा की नीति और धर्म-व्यवस्था का प्रमुख योगदान होता था और आज भी है। प्राचीनयुगो में द्वादश आदित्य (वरुणादि), मान्धाता, जामदग्न्यराम, दाशरथि राम, युधिष्ठिरादि युगप्रवर्तक राजा थे। कलियुग मे राजा शूद्रकविक्रम का शासन धर्मशासन कहा जाता था, इसलिये उसका सवत् 'कृतसंवत्' कहलाता था—जैसा कि समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित की भूमिका मे लिखा है—

धर्माय राज्यं कृतवान् तपस्विव्रतमाचरन् ।
एवं ततस्तस्य तदा साम्राज्य धर्मशासितम् ॥[1]

अतः राजा (शासक) ही 'कृत' अथवा 'कलि'युग का प्रवर्तक होता था। भारतयुद्ध से बहुकालपूर्व यज्ञो मे द्यूतक्रीडा का विधान था, परन्तु यह विधान कब से विहित हुआ, वह समय अज्ञात है परन्तु हमारा अनुमान है कि ऐक्ष्वाक अयोध्यापति ऋतुपर्ण के समय से यह द्यूत यज्ञो मे प्रविष्ट हुआ। ऋतुपर्ण को 'दिव्याक्षहृदयज्ञ' कहा गया है और वह नैषध नल का सखा था।[2] अतः प्रतीत होता है ऋतुपर्ण और नल के समय मे द्यूत यज्ञ का अनिवार्य अग बन चुका था। दाशरथि राम का समय २४वाँ परिवर्तयुग था, यह राजा ऋतुपर्ण, राम

१. कृष्णचरित, (श्लोक ८, ९)
२. वायु० (८८।१७४)

से १४ पीढी पूर्व या ४ युगपूर्व हुआ, अतः ऋतुपर्ण और नल का समय राम से डेढ सहस्राब्दी पूर्व अर्थात् विक्रम मे ७००० वर्ष पूर्व था। सभवत इसी नल के समय से चतुर्युगीनगणना और कृतादिसज्ञाये प्रचलित हुई हो। 'कलि' ने नल को बहुत सताया था। पुरूरवा आदि के समय कृतादिसज्ञायें प्रचलित नही थी, यद्यपि पुरूरवा को त्रेताग्नि का प्रवर्तक कहा गया है।[1]

चतुर्युग का २८ या ३० परिवर्तो का सामजस्य— ३० या २८ युगो या परिवर्तो का कालमान (३६० × ३०) = १०८०० या दशसहस्रवर्ष था। चतुर्युग का कालपरिमाण १२००० वर्ष था। मूल मे चतुर्युग के दशसहस्र-वर्ष के ही थे, सन्ध्याकाल के २००० जोडने पर ही चतुर्युग के द्वादशसहस्र वर्ष हुए। अथर्ववेद मे चतुर्युग का दशसहस्रवर्ष परिमाण या १०० मानुषयुगो के तुल्य बताया गया है—

शत तेऽयुत हायनान् द्वे युगे त्रीणिचत्वारि कृण्म।[2]

इसी को मनुस्मृति, महाभारत आदि मे द्वादशवर्षसहस्रात्मकयुग कहा है—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणा तत्कृत युगम्।
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप।
द्विसहस्र द्वापरे तु शत तिष्ठति सम्प्रति॥[3]
चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणा तत्कृत युगम्।
तस्य तावच्छती सध्या सध्याशश्च तथाविध॥
इतरेषु ससध्येषु सध्याशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥
यदेतत् परिसख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद्द्वादशसाहस्र देवाना युगमुच्यते॥[4]

कृतयुग = ४००० वर्ष, त्रेतायुग = ३००० वर्ष, द्वापर = २००० वर्ष, कलि = १००० वर्ष के थे। इनमे क्रमशः सध्याश और सध्या जोडने पर ४८००, ३६००, २४०० और १२०० वर्ष के हो जाते थे इसी को एक महायुग या देव-युग कहा जाता था। यह देवयुग मानुषवर्षो (१२०००) का ही था, इनमे ३६०

---

१. ऐलस्त्रीस्तानकल्पयत् (वायु०)
२. अथर्व० (८।२।२१),
३. महाभारत भीष्मपर्व
४. मनु० (१।६।६),

से गुणा करने की आवश्यकता नही थी। मनुस्मृति के समय तक यह देवयुग एक ऐतिहासिकयुग था, परन्तु जब से (बैरोसस और अश्वघोष के समय से) इसमे ३६० का गुणा किया जाने लगा, तबसे यह एक काल्पनिकयुग बन गया, जो इतिहास मे सर्वथा अनुपयुक्त है। देवयुग का मूलरूप यही था—

> तेषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता।
> कृत त्रेता द्वापर च कलिश्चैव चतुष्टयम्।
> अत्र सवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः।[1]

आर्यभट के समय तक युगपाद तुल्य और १२०० वर्ष के माने जाते थे—

> षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
> त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीता.॥[2]

ध्रुवसंवत्सर

पुराणो मे ९०९० या तीन सप्तर्षियुगो के तुल्य एक ध्रुवसवत्सर का उल्लेख है—

> नवतानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च।
> अन्यानि नवतिश्चैव ध्रुवसवत्सर स्मृतः॥[3]

अतः उपर्युक्त सभी युग (मानुषयुग परिवर्तयुग, चतुर्युग, सप्तर्षियुग और ध्रुवयुग) मानुषवर्षों मे ही गिने जाते थे। दिव्यवर्ष की तथाकथित गणना अनैतिहासिक है।

अब आगे आदियुग, आदिकाल, देवासुरयुग, चतुर्युग (कृत, त्रेता, द्वापर और कलि), मन्वन्तर एव कल्पसज्ञक युगमानो पर विशिष्ट विचार करेंगे, जिनका प्राचीन इतिहास मे विशेष व्यवहार हुआ है।

आदियुग या आदिकाल या प्रजापतियुग

आदिम दस प्रजापतियो या विश्वसृजसज्ञक महर्षियो से समस्त मानवप्रजा उत्पन्न हुई, उनके नाम थे—स्वायम्भुवमनु, मरीचि, भृगु, अत्रि, दक्ष, अङ्गिरा

---

१. ब्रह्माण्ड० (१।२।२९-३०),

२. आर्यभटीय कालक्रियापाद।

३. ब्र० पु० (१।२।२९-१८), पुराणो मे २६००० वर्षो के युग का भी उल्लेख है।
षड्विंशतिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु।
वर्षाणां युगं ज्ञेयम्॥ (ब्र० पु० १।२।२९।१९),

पुलह, क्रतु, वसिष्ठ और पुलस्त्य।[1] वायुपुराण (३।२-२) में निम्नलिखित २१ प्रजापतियों का उल्लेख है—भृगु, परमेष्ठी, मनु, रज, तम, धर्म, कश्यप, वसिष्ठ, दक्ष, पुलस्त्य, कर्म, रुचि, विवस्वान्, क्रतु, मुनि, अंगिरा, स्वयंभू, पुलह, बुक्रोधन मरीचि और अत्रि। इसी प्रकार रामायण (३।१४) मे प्रजापतियों के नाम हैं—कर्दम, विकृत, शेष, संश्रय, बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और सर्वान्तिम कश्यप।

स्वयम्भू या स्वायम्भुव मनु से दक्ष-कश्यप पर्यन्तयुग को 'प्रजापतियुग' कह सकते है। यही आदिकाल या आदियुग था। चरकसंहिता (३।३०) मे 'आदि-काल' संज्ञा का प्रयोग है—

"आदिकाले हि अदितिसुतसमौजस पुरुषा बभूवुरमितायुष।"

इन प्रजापतियो के अतिरिक्त कही कही वरुण और वैवस्वत यम को भी प्रजापति कहा गया है। निश्चय ही वरुण से महान् आसुरीप्रजा दानवगन्धर्वादि उत्पन्न हुये, वैवस्वत यम से पितृसंज्ञक ईरानी प्रजा उत्पन्न हुई। वरुण और हिरण्यकशिपु से पूर्व के युग का नाम **'प्रजापतियुग'** या, हिरण्यकशिपु से इन्द्र-बलिपर्यन्तयुग को **'पूर्वदेवयुग'** (असुरयुग) और इन्द्र से वैवस्वतमनु या नहुष-भ्राता रजि के समय तक,**'देवयुग'** अथवा **'पूर्वदेवयुग और 'देवयुग'** की सम्मिलित संज्ञा कृतयुग थी। इसी देवासुरयुग मे, जो १० परिवर्तकाल अर्थात् ३६०० वर्षो का था, द्वादशदेवासुरसंग्राम हुये। इन सभी घटनाओ का विस्तृत उल्लेख आगे होगा। यहाँ पर केवल कृतयुग से पूर्व की युगसंज्ञाओ का स्पष्टीकरण किया जा रहा है। इसी देवासुरयुग मे कृतयुग का तीन चौथाई काल (३६०० वर्ष) मे सम्मिलित था। कृतयुग के चतुर्थपाद के आरम्भ या दशमपरिवर्तयुग मे दत्तात्रेय और मार्कण्डेय हुये—

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सरः॥ (वायुपुराण)

दत्तात्रेय और मार्कण्डेय दोनो ही दीर्घजीवी थे, दत्तात्रेय कार्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन के समय तक जीवित रहे, जो उन्नीसवें परिवर्त मे परशुराम के द्वारा मारा गया।[2] परशुराम, कार्तवीर्य और दत्तात्रेय तीनो ही दीर्घजीवी व्यक्ति थे, जो सहस्रोवर्ष तक जीवित रहे। मार्कण्डेय और परशुराम तो ३०वें परिवर्त

---

१. महा० शा० (२२।४४)

२ एकोनविंश्या त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकविभुः।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः। (मत्स्य० ४७।२२४)

(द्वापरान्त) तक जीवित रहे, जहां पाण्डवों मे उनकी भेंट दिखाई गई है। सप्तम परिवर्त मे त्रिधामासंज्ञक वेदव्यास हुये, संभव है कि मार्कण्डेय का नाम ही त्रिधामा हो। जामदग्न्यराम ने सहस्रबाहु अर्जुन का वध त्रेताद्वापर की संधि में किया था।[1]

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि परिवर्तयुगगणना और चतुर्युगगणना के कारण घटनाओं का कालनिर्णय करना अत्यन्त जटिल कार्य था, परन्तु परिवर्तयुग का समय ३६० वर्ष निश्चित ज्ञात हो जाने पर घटनाक्रम को निश्चित करना अपेक्षाकृत सरल हो गया है।

अतः 'देवासुरयुग' का आरम्भ १४००० वि० पू० दक्ष-कश्यप प्रजापति के समय से हुआ, जब 'प्रजापतियुग' का अन्तिम चरण व्यतीत हो रहा था, इसी समय 'कृतयुग' आरम्भ हुआ, जिसका अन्त मान्धाता के समय (पन्द्रहवें) परिवर्त मे हुआ—

पचमः पचदश्यान्तु त्रेतायां संबभूवह।
मान्धातुश्चक्रवर्तित्वे तस्थौ उतथ्यपुरस्सरः।

इसी समय कृतयुग के अन्त मे असितधान्वासुर[2] ने किसी पश्चिमीदेश (रसातल=पाताल=योरोप) से आकर भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, जिसका मैगस्थनीज ने उल्लेख किया है। शतपथब्राह्मण (१३।४।३) में इसी असुरेन्द्र असितधान्व का प्रधान असुर सम्राट् के रूप मे उल्लेख है, जिसका मैगस्थनीज ने 'डायनोसिस' नाम से वर्णन किया है। असितधान्व को जीतकर मान्धाता ने सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन किया।[3] यह कृतयुग के अन्त की अन्तिम

---

१. त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृता वरः।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥ (महा० १।२।३)

२. असित धान्वासुर पर मान्धाता की विजय का महाभारत में दो स्थानों पर उल्लेख है—

'यश्चागारं तु नृप्रति मरुतमसितं गयम्
अग बृहद्रथं चैव माधाता समरेऽजयत्॥ (शान्ति० २८।८८)
असित च नृग वैव मान्धाता मानवोऽजयत्॥ (द्रोण० ६२।१०)

३. असितासुरविजय (रसातलविजय) से मान्धाता का सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन स्थापित हो गया—द्र० गाथा—यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते। (वायु० ८८।६८)
हर्षचरित में मान्धाता की पातालविजय का उल्लेख है—"मान्धाता...... रसातलमगात्।" (३ उच्छ्वास)

व सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी। मान्धाता के अनन्तर के एक नये युग—सोलहवें परिवर्त (३६०० कलिपूर्व) से त्रेतायुग का प्रारम्भ हुआ। इस त्रेतायुग का परिमाण ३६०० वर्ष था।

असुरयुग या पूर्वदेवयुग

कश्यप द्वारा दिति से असुरेन्द्रद्वयी[1] उत्पन्न हुई इनमे हिरण्याक्ष संभवतः ज्येष्ठ था और हिरण्यकशिपु कनिष्ठ भ्राता था।[2] हिरण्याक्ष का शासन सम्भवतः पाताल (योरोपादि) में था और हिरण्यकशिपु का राज्य भारतादि में था। इन दोनो के वशजो का सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन था।[3] हिरण्यकशिपु के वशजों ने बाणासुर के पिता असुरेन्द्रबलिपर्यन्त भारतवर्ष पर शासन किया। विष्णु द्वारा परास्त बलिनेतृत्व मे दैत्य अपने पूर्वनिवास पाताल (जहाँ हिरण्याक्ष का शासन था) भाग गये। विष्णु का अवतार सप्तम त्रेतायुग मे हुआ था,[4] और देवासुरसग्राम दशयुगपर्यन्त (३६०० वर्ष) होते रहे।[5] इन्द्र का जन्म षष्ठयुग मे हुआ था। असुरो की सज्ञा 'पूर्वदेव' थी, अतः उनके शासनकाल का पूर्वदेवयुग या 'असुरयुग' उपयुक्त नाम है। यह समय ७ युग अर्थात् २५२० वर्ष था, यद्यपि युद्ध अगले तीन परिवर्तों तक होते रहे, अर्थात् **बलि का समय (पलायनकाल) ११४८० वि० पू० और अन्तिमयुद्धकाल १०४०० वि० पू० था, इसी समय असुरयुग समाप्त हो गया।** **असुरयुग** १४००० वि० पू० से ११४८० वि० पू० तक रहा।

देवयुग—पण्डित भगवद्दत्त ने बिल्कुल ठीक ही लिखा है "भारतवर्ष का इतिहास अपूर्ण ही रहता है, जब तक उसमे देवयुग का स्पष्ट चित्र उपस्थित न

१. दित्या पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम्।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान्॥ (हरिवंश ३।३६।३२),
२. दैत्यानां च महातेजा हिरण्याक्षः प्रभुः कृत.।
हिरण्यकशिपुश्चैव यौवराज्येऽभिषेचितः॥ (हरि० ३।३६।१४)
३. दितिस्त्वजनयत पुत्रान् दैत्यास्तात यशस्विनः।
तेषामिय वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा॥ (रामायण० ३।१४।१५)
४. बलिसस्थेषु लोकेषु त्रेताया सप्तमे युगे।
दैत्यस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥ (वायुपुराण)
५. युग वै दश (वायु ९७।७०), 'युद्ध वर्ष सहस्राणि द्वात्रिंशदभवत् किल (शान्ति० २२।१४) यदि सहस्र के स्थान पर शत पाठ हो तो युद्ध ३२०० वर्ष तक हुए।

हो। भारत ही नहीं, संसार का मूल इतिहास देवयुग के वर्णन बिना अधूरा है।" (भा० बृ० इ० भाग १ पृ० २७७)।

देवराज इन्द्र से देवयुग का प्रारम्भ होता है, जो सप्तम परिवर्तयुग में हुआ, यद्यपि वरुण (द्वितीययुग), विवस्वान् (पचमयुग) आदि भी देव थे, परन्तु इन्द्र से पूर्व मुख्यसत्ता असुरो के हाथ मे थी, इन्द्र का समय (जन्मादि) वि०सं० से १३८४० वि० पू० से १२००० मध्य था, अतः देवासुरयुग की सम्मिलित अवधि २१६० वर्ष (१३८०० वि० पू० तक) थी, तो शुद्धदेवयुग की अवधि १४०० वर्ष थी, देवो और असुरो का कुल राज्यकाल दशयुग अर्थात ३६०० वर्ष था, इसमे वरुण, विवस्वान् इत्यादि का राज्यकाल भी सम्मिलित है, यद्यपि इन्द्र का शासन १०वें युग तक अर्थात् ११४०० वि० पू० तक रहा, परन्तु उसका अस्तित्व वैश्वामित्र अष्टक और यौवनाश्व मान्धाता तक यहाँ तक कि हरिश्चन्द्र तक ज्ञात होता है, अतः इन्द्र अनेक सहस्रावर्षों जीवित रहा, परन्तु देवयुग की समाप्ति ११४०० वि० पू० हो गई थी और प्रारम्भ १३८४० वि० पू० हुआ। प्राचीनग्रन्थों में देवयुग के उल्लेख द्रष्टव्य हैं—

एव स देवप्रवरः पूर्व कथितवान् कथाम्।
सनत्कुमारो भगवान् पुरा देवयुगे प्रभुः। (रामा० १।६।१२)

तद्धैव विद्वान् ब्राह्मण सहस्र देवयुगानि उपजीवति।
(जै० ब्रा० २।७५)

पुरा देवयुगे ब्रह्मन् प्रजापतिसुते शुभे॥ (महा० १।१४।५)
सोऽब्रवीदहमास प्राग् गृत्सो नाम महासुर।
पुरा देवयुगे तात भृगोस्तुल्यवया इव॥ (शान्ति० ३।१६)

देवयुग की प्रधान जातियाँ थी—असुर, दैत्य, दानव, किन्नर, यक्ष, राक्षस, नाग और सुपर्ण। देवयुग के प्रधान पुरुष थे—

द्वादश आदित्य, नारद, सोम, वैनतेय गरुड, शिव, स्कन्द, सनत्कुमार, धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार इत्यादि। इन्द्र देवयुग का प्रधान शासक था और विष्णु ने बलि को परास्त करके देवयुग का प्रवर्तन किया। यह युग लगभग १५०० वर्ष तक रहा। (देवासुरयुग १३८४० वि० पू० से ११४०० वि० पू० तक रहा) अतः देवयुग प्राचीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण और स्वर्णयुग था।

कृतयुग—यह पहिले बता चुके हैं कि कृतयुग युगपरिवर्त प्रारम्भ, और देवासुर का सम्मिलित, प्रारम्भ प्राचेतस दक्ष प्रजापति से (आज से १४००० वि० पू०) हुआ। कृतयुग के ४८०० वर्षों मे देवयुग के ३६००–

कुल वर्ष सम्मिलित थे, देवयुग का अन्त १०२४० वि० पू० हुआ, परन्तु कृत-युगसमाप्ति ९२०० वि० पू० हुई।

कृतयुग और देवयुग मे मनुष्य की आयु ४०० वर्ष होती थी।

त्रेतायुग का प्रारम्भ

३६०० वर्ष परिणामवाले त्रेतायुग का प्रारम्भ १६वें परिवर्तयुग से, ९२०० वि० पू० पुरुकुत्स-त्रसदस्यु के शासनकाल के समय से हुआ और अन्त ५६०० वि० पू० हुआ। महाभारत, आदिपर्व (२।३) के प्रमाण[1] पर प० भगवद्दत्त ने त्रेता द्वापरसन्धि, परशुराम द्वारा क्षत्रियविनाश (विशेषतः कीर्त्तवीर्य अर्जुनवध) ५४०० वि० पू० माना है, परन्तु महाभारत का यह मत अनुपयुक्त एव त्रुटित है। महाभारत के वंशापाठो की महान् त्रुटियाँ हैं, यह प० भगवद्दत्त ने भी अनेकत्र माना है।[2] वायुपुराण के प्राचीनपाठो मे परशुराम का अवतार (= हैहयवध) उन्नीसवें त्रेता[3] परिवर्त मे हुआ था, यह समय ६४४० वि० पू० से ६०८० वि० पू० पर्यन्त था। अत. रामावतार और परशुराम मे कमसेकम २०४० वर्षों का अन्तर था। अतः परशुरामकृत क्षत्रियवध त्रेताद्वापर की सन्धि मे न होकर त्रेता के मध्यकाल में हुआ।

त्रेतायुग का अन्त (१० परिवर्तयुग = १६वें से २५वें पर्यन्त) ५६०० वि० पू० हुआ। २४वें परिवर्त मे ऋक्ष वाल्मीकि और २५वे परिवर्त मे शक्ति वासिष्ठ व्यास हुये—

"परिवर्ते चतुर्विशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति।"

'पंचविंशे पुनः प्राप्ते...। वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिर्नाम भविष्यति।

पं० भगवद्दत्त ने त्रेतान्त या द्वापरादिकाल मे पृथ्वी पर आयुर्वेदावतारकाल माना है। वहाँ पर प्रतर्दन-राम की समकालीनता, भरद्वाज, दिवोदास आदि के समय के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह अत्यन्त भ्रामक है, इन सबकी

---

१. त्रेताद्वापरयोःसंधौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥

२. यथा इ० भा० बृ० इ० भाग २, पृ० १४१, अध्याय अष्टाविंशति।

३. एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत्।
जामदग्न्यस्तथाषष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः॥ (वायु०)

आलोचना यथा स्थान की जायेगी।[1] पार्जीटर त्रेता का प्रारम्भ सम्राट सगर से मानता है,

वह भी भ्रामक एवं मिथ्या है।[2]

द्वापरयुग—इस युग की अवधि २४०० थी, पुराणों मे इसका प्रारम्भ ५६०० वि० पू० से माना जाता है और अन्त ३२०० वि० पू० या ३०८० वि० पू० श्रीकृष्ण वासुदेव के परधामगमन के दिन से हुआ था। श्रीकृष्ण का जन्म ३२०० वि० पू० ओर मृत्यु ३०८० वि० पू० हुई, उनकी आयु १२० या १२५ वर्ष थी।

---

१. द्र० भा० बृ० इ० भा० १ पृ० २६६,
२. द्र० हि० ट्रे ए० इ०

४

भारतोत्तरतिथियाँ

वायुपुराण मे (९९।४२८) मे लिखा है कि १२०० वर्ष परिमाणवाला कलियुग ठीक उसी दिन से प्रारम्भ हुआ जब श्रीकृष्ण दिवगत हुये।[१]

कलि का अन्त—पुराणों में स्पष्ट ही कलियुग को बारम्बार द्वादशाब्दशतात्मक (१२०० वर्ष वाला) कहा गया है—और सप्तर्षियो के मघानक्षत्र पर आने पर यह युग प्रवृत्त हुआ—

तदा प्रवृत्तश्च कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः।[२]

कलियुग को चार लाख बत्तीस हजारवर्ष परिमाण का मानने की कल्पना निरर्थक एवं भ्रामक है, इसका सप्रमाण खण्डन पहिले ही कर चुके हैं। पुराणो मे सदसदात्मक दोनो ही मत उपलब्ध है, इतिहास मे कल्पना नही तथ्य को ग्रहण किया जाता है। अस्तु।

कल्यन्त—कलियुग का अन्त कब हुआ, यह पुराणपाठो मे ही अनुसन्धेय है। वायुपुराणादि मे लिखा है कि इस युग (कलियुग) के क्षीण (समाप्त) होने पर विष्णुयशा नामक पाराशर्यगोत्रीय कल्कि ब्राह्मण के रूप मे विष्णु का दशम अवतार हुआ—याज्ञवल्क्यगोत्रीय कोई ब्राह्मण उनका पुरोहित था—

अस्मिन्नेव युगे क्षीणे सध्याशिलष्टे भविष्यति।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान्॥
दशमो भाव्यसभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः। (वायुपु०)

हम १४ मनुओं के विषय मे सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं कि वे सभी भूतकालिक थे, इसी प्रकार 'कल्कि' अवतार भी भूतकाल मे हो चुका था। पुराणो के द्वैध (भूत एवं भविष्य) वर्णन से भी हमारे मत की पुष्टि होती है। पुराणो में 'भाव्यसंभूत' और भविष्यति, अभवत्[३] जैसी क्रियाओं का दर्शन होता है।

---

१. यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदादिने।
प्रतिपन्नः कलियुगतस्य संख्या निबोधत॥

२. विष्णुपुराण (४।२४।१०६), भागवतपु० (१२।२।३१),

३. संध्याश्लिष्टे भविष्यति, कलियुगेऽभवत् (वायु०)

वस्तुत: कल्कि किस राजा के राज्यकाल में हुए, इसका समुल्लेख केवल कल्किपुराण मे अवशिष्ट रह गया है—तदनुसार कल्कि का जन्म प्रद्योतवंशीय राजा विशाखयूप के समय में हुआ—

विशाखयूपभूपालपालितास्तापवर्जिता: । (कल्किपुराण १।२।३३)
विशाखयूपभूपाल: कल्केनिर्याणमीदृशम् ।
श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम् । (कल्किपु० ३।१६।२६)

पुराणों के अनुसार बालक (मागध) प्रद्योतवंश का तृतीय राजा विशाखयूप था, जिसने कलिसवत् १०५० से ११०० तक पचास वर्ष राज्य किया। कल्कि का आविर्भाव कलियुग की सध्या अर्थात् १००० कलिसंवत् के पश्चात् और कलियुगान्त से कुछ वर्ष पूर्व हुआ, अत: ११०० कलिसंवत् के आसपास कल्कि हुये। वस्तुत: कल्कि एक महान चक्रवर्ती सम्राट थे, जो विशाखयूप के अनन्तर भारत के सम्राट बने, वे युगान्तकारी एवं युगप्रवर्तक महापुरुष थे।[१] कल्कि ने २५ वर्षपर्यन्त राज्य किया 'मनुष्य' की भांति।[२]

अत: कलियुग का अन्त महान् इतिहासपुरुष कल्कि के अन्त के साथ ही हुआ। कलियुग केवल १२०० वर्षों का था।

आज तक भारतीय इतिहास की किसी भी पुस्तक मे ऐतिहासिक कल्कि का नाममात्र भी उल्लिखित नही है, जो कृष्णतुल्य महापराक्रमी और महाबुद्धिमान् महान् शासक थे, तथा जिन्होने म्लेच्छों एवं विधर्मियों से भारत की अपूर्व रक्षा की थी—

कल्की विष्णुयशा नाम द्विज: कालप्रचोदित: ।
उत्पस्यते महावीर्यो महाबुद्धिपराक्रम: ।। (महा० ३।१९०।९३),
दशमो भाव्यसंभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सर: ।।
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्बली ।। (वायु०)

कलिसंवत् और महाभारतयुद्ध की तिथि

कलिसवत् और महाभारतयुद्ध की तिथि का घनिष्ठ सम्बन्ध है,[३] यह

---

१. सधर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति ।
सक्षेपको हि सर्वस्य युगस्य परिवर्तक: ।। (महाभारत ३।१९०।९५।९७)

२. पंचविंशोत्थितो कल्पे पञ्चविंशतिर्वै समा: ।
विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वश: ।। (वायु०)

३. ततो नरक्षये वृत्ते शान्ते नृपमण्डले ।
भविष्यति कलिर्नाम चतुर्थं पश्चिमं युगम् ।
तत: कलियुगस्यादौ पारीक्षिज्जनमेजय. । (युगपुराण ७४-७६).
अन्तरेचैव सप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
समन्तपञ्चके युद्ध कुरुपाण्डवसेनयो: ।। (महा० १।२।९),

तिथि प्राचीनतम भारतीय इतिहासभवन (कालक्रम) की आधारशिला है। परन्तु पाश्चात्य गवेषको के साथ भारतीय अनुसंधाता भी प्राय: कलिसंवत् की प्रमाणिकता पर निश्चल विश्वास नही करते और उसे अतिशंकालु दृष्टि से अवलोकन करते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहासकार (पुराणादि), आचार्य, ज्योतिषीगण सभी सर्वसम्मति से ३०४४ वि० पू० से कलिसम्वत् का प्रारम्भ मानते थे, केवल एक अर्वाचीनतर भारतीय इतिहासकार कश्मीरक कल्हण को छोड़कर। कल्हण के भ्रम का कारण आगे बताया जायेगा।

विंसेन्ट स्मिथ, विन्टरनीत्स, कीथ विशेषत फ्लीट[1] ने इस कलिसम्वत् को केवल भारतीय ज्योतिषियों की कल्पनामात्र माना है। फ्लीट के चरणचिह्नो पर चलता हुआ, एक भारतीय लेखक प्रबोधचन्द्रसेन लिखता है—"It is thus seen that the Kali—reckoning was an astronomical fiction invented by Aryabhata[2]" सर्वप्रथम तो उपर्युक्त लेखक का यह अज्ञान, उसकी अल्पज्ञता को प्रकट करता है कि सर्वप्रथम आर्यभट ने नही, उनसे पूर्व महाभारतकालीन ज्योतिषी गर्गाचार्य और वेदागज्योतिषी लगधाचार्य ने कलिसम्वत् का उल्लेख किया है—

> कलिद्वापरसधौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
> मुनयो धर्मनिरता· प्रजाना पालते रता.॥
> कल्यादौ भगवान् गर्ग· प्रादूर्भूय महामुनि:।
> ऋषिभ्यो जातक कृत्स्न वक्ष्यत्येवंकलि श्रित:॥

ज्ञातव्य है कि गर्गगोत्र मे ज्योतिष के अनेक महान् विद्वान गणितज्ञ हुए थे, एक गर्गाचार्य ने श्रीकृष्ण का नामकरण, जातकादि संस्कार किये थे। भागवतपुराण (१०-१८) मे गर्गाचार्य के द्वारा प्रणीत परावरज्ञान के स्रोत ज्योतिषसहिता का उल्लेख है।[3] इस गर्गवंश के अनेक आचार्यो ने ज्योतिष-ग्रन्थ लिखे, अत: उनकी प्रमाणिकता स्वयसिद्ध है। कलि के आदि मे पुनर्गर्ग

1. The reckoning is invented one devised by the Hindu astronomers for the purposes of their calculations some thirty five centuries after the date. (J. R A S. p. 485)
2. (A. G. D. C. Vol., II 1946)
३. "गर्ग: पुरोहितो राजन् यदूना सुमहातपा:।
ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम्,
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम्॥"

ने ऋषियों को जातक ज्ञान दिया। अतः कलिसम्वत् आर्यभट की कल्पना नहीं था। पुनः लगधाचार्य ने कलिसम्वत् का उल्लेख किया है। सिद्धान्तशिरोमणि की मरीचिटीका के लेखक मुनीश्वर (१५६० शकसम्वत्) ने लगध के वचन उद्धृत किये हैं उनमे कलिसम्वत् का स्पष्ट निर्देश है।[1] कलिसम्वत् मे तिथि-गणना का सर्वप्रथम उल्लेख अभी तक अवन्तिनाथ विक्रमादित्य के धर्माध्यक्ष" हरिस्वामी के शतपथब्राह्मण व्याख्याग्रन्थ मे मिला है परन्तु. इससे पूर्व महाभारत और पुराणो मे कलिसम्वत् के संकेत हैं।

उपर्युक्त श्लोक के अर्थ दो प्रकार से किये जाते हैं, कलिसम्वत् ३७४० मे भाष्य की रचना की गई अथवा ३०४७ कलिसम्वत् मे भाष्य लिखा गया। प० भगवद्दत्त ने कलिसम्वत् ३७४० मे हरिस्वामी का समय माना है, परन्तु श्लोक मे अवन्तिनाथ विक्रमादित्य का उल्लेख द्वितीय अर्थ को मानने को बाध्य करता है इस सम्बन्ध मे पं० उदयवीर शास्त्री के मत ही उपयुक्त प्रतीत होते हैं कि कलिसम्वत् ३७४० न होकर ३०४७ ही ठीक है जो विक्रमसम्वत् प्रारम्भ होने के लगभग तीन वर्ष अनन्तर पडता है।[3] पञ्चतन्त्रादि ग्रन्थो मे हरिस्वामी का नाम विक्रम के साथ मिलता है। विक्रम के भ्राता का नाम भी हरि या भर्तृहरि था।

शिलालेखादि मे कलिसम्वत् ३४१८ तक के उल्लेख दाक्षिणात्य राजाओ के लेखो मे मिलते हैं। इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध उल्लेख हर्षवर्धन के समकालीन, उसके प्रतिद्वन्द्वी चालुक्यराजा महाराजा पुलकेशी के शिलालेख मे

---

१. चतुष्पादी कला सज्ञा तदध्यक्ष. कलिः स्मतः। इति लगधप्रोक्तत्वात्॥

२. श्रीमतोऽवन्तिनाथस्य विक्रमार्कस्य भूपतेः।
धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्यच्छातपथी श्रुतिम्।
यदाब्दाना कलेर्जग्मु सप्तत्रिंशच्छतानि वै।
चत्वारिंशत् समाश्चान्यास्तदा भाष्यमिद कृतम्॥

३. विक्रम सम्वत् ६९५ या ६२८ ई० मे ऐतिहासिक आधारों पर उज्जयिनी के स्वामी किसी विक्रमादित्य का पता नही लगता।"···यदि सप्तत्रिंशच्छतानि पद को एक न मानकर सप्त को पृथक् तथा 'त्रिंशच्छतानि' को पृथक् पद समझा जाय, तो सम्वत्प्रवर्तक विक्रमादित्य के काल के साथ हरिस्वामी के निर्दिष्टकाल का कोई असामांजस्य नहीं रहता (वे० द० इ० पृ० २७४)

मिला है।[1]

अतः कलिसम्वत् ज्योतिषीपण्डितो की केवल कल्पना नही थी, कलियुग से ही कलिसम्वत् का प्रारम्भ था, पुराणों मे कल्योत्तर राजाओं का राज्यकाल कलिव्यतीत होने के आधार लिखा हैं। तदनुसार ही महाभारतयुद्ध, कृष्ण का दिवंगत होना,[2] राजाभिषेक, कलिवृद्धि आदि का सम्बन्ध भी कलिसम्वत् से ही है—

(१) **महाभारतयुद्ध कलिद्वापर की संधि में**

अन्तरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
समन्तपचके युद्ध कुरुपाण्डवसेनयो ॥ (आदिपर्व २।६)

(२) **कल्किजन्म कल्यन्त में**—अस्मिन्नेवयुगे क्षीणे मध्याश्लिष्टे भविष्यति ।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्य प्रतापवान् ।
गात्रेण वै चन्द्रसमपूर्ण कलियुगेऽभवन् ॥
(वायुपुराण)

(३) **नन्दात्प्रभृतिकलिवृद्धि**—तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलिःवृद्धिं गमिष्यति ।[3]

उपर्युक्त सदर्भो मे प्रकारान्तर से कलिसम्वत् का हो उल्लेख है, अतः कलिसम्वत्गणना तथाकथितरूप मे आर्यभट से, कलिसम्वत् के ३५०० वर्षो पश्चात् नही, कलि के प्रारम्भ मे श्रीकृष्णपरमधामगमन के दिन[4] मे ही गिनी जाती थी, उपर्युक्त पुराणप्रमाणो से सिद्ध है।

महाभारतयुद्ध की तिथि

पार्जीटर ने अपनी मनमानी कल्पना से महाभारतयुद्ध की तिथि ९५० ई० पू० मानी है, श्री एस० बी० राय नामक लेखक ने महाभारतयुद्ध की तिथि पर विभिन्न मतो का सग्रह किया, उन्होने लिखा है—पार्जीटर के अनुसार ९५०

---

१. त्रिशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादित. ।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषुपचसु ।
पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पचशतेषु च ।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥
(इण्डियन एन्टिक्वटि भाग ५, पृ० ७०)

२. यस्मिन् कृष्णो दिवयातस्मिन्नेव तदादिने ।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ (भागवत १२।२।३३)

३. भागवत (१२।२।३२)

४. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १७५-८३)

ई० पू०,[1] हेमचन्द्रराय चौधरी ९०० ई० पू०[2] कनिंघम[3], जायसवाल[4], लोकमान्य तिलक[5] वी-वी केतकर[6], और सीतानाथ प्रधान[7] प्रभृति लेखक १४५० ई० पू०, पी० सी० सेनगुप्त[8] २५०० ई० पू०, सर्वश्री डी० आर० मनकड,[9] एम० एम० कृष्णामाचारी,[10] सी० वी० वैद्य[11] और वी० पी० अथवले[12] ३१०० ई० पू० महाभारतयुद्ध की तिथि मानते हैं।[13] स्वर्गीय शंकरबालकृष्णदीक्षित ने अपनी पुस्तक 'भारतीयज्योतिष' में लिखा है—"मेरे मतानुसार पाण्डवों का समय शकपूर्व १५०० और ३००० के मध्य मे है, इससे प्राचीन नही हो सकता।"

उपर्युक्त मतों मे पार्जीटर, रायचौधरी आदि का मत, बिना किसी प्रमाणो के अपनी कल्पना पर आधृत है अतः निराधार होने से स्वयं ही अस्वीकृत हो जाता है, और डा० काशीप्रसादजायसवालप्रभृति का मत (१४०० ई० पू०) निम्न भ्रमो पर आधारित है—

(१) सिकन्दर और चन्द्रगुप्तमौर्य की काल्पनिक समकालीनता।

(२) बुद्धनिर्वाण के सम्बन्ध मे भ्रामक सिंहलीतिथि।

(३) अर्वाचीन जैनपरम्परा मे महावीर की भ्रामकतिथि।

---

१. पो० हि० ए० इ० (पृ० ३५-३६)

२. Arch Survey. F. R-1864,

३. J. B. O. R. S, Vol I P. F. p. 1091

४. गीतारहस्य, पृ० ५४८-५५२,

५. वी० वी० केतकरकृत ओरि-कान्फ० पूना, पृ० ४४४-४५९

६. क्रो० ए० इ० पृ० २६२-२६६,

७. इण्डियन क्रानोलोजी

८. पुरानिकक्रोनोलोजी पृ० (१०१),

९. हिस्ट्री आफ क्ला० स० लिट० (पृ० XII, IX, X, VII),

१०. हि० स० लिट० (पृ० ४-८)

११ जे० जी० आर० वाई भाग I, पृ० २०४, द्रष्टव्य Date of Mahabharata Battle by S. B. Roy. p. (139-140);

१२. दीक्षितजी ने कृत्तिकासम्पातसम्बन्धीज्योतिषगणना के आधार पर शतपथब्राह्मण का रचनाकाल ३१०० शकपूर्वमाना है। शतपथब्राह्मण की रचना महाभारत के रचयिता व्यास के प्रशिष्य याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने की थी, अतः याज्ञवल्क्य वाजसनेय का समय ही ३१०० शकपूर्व था, इसका विशेष परीक्षण आगे करेंगे।

(४) अशोकशिलालेखों में तथाकथित यवनराज्यों का उल्लेख मानना।

(५) खारवेल की हाथीगुफाशिलालेख का भ्रामकपाठ।

(६) पुराणों में परीक्षित से नन्द तक १०१५ वर्ष मानना – पुराणपाठ की भ्रष्टता।

(७) युगपुराण में डेमिट्रियस यूनानी का उल्लेख मानना (डा० जायसवाल द्वारा)।

तृतीयमत, पी० सी० सेन का कल्हण के एक महान् भ्रम के ऊपर आधारित है, जो वाराहमिहिर के शकसम्वत्सम्बन्धी उल्लेख से उत्पन्न हुआ।

चतुर्थ मत, ३०४४ वि० पू० या ३१०२ ई० पू० कलिसम्वत् के प्रारम्भ से ३६ वर्ष पूर्व हुआ, अतः युद्ध की तिथि ३०८० वि० पू० या ३१३८ ई० पू० थी। सर्वप्रथम सर्वमान्य भारतीयमत का दिग्दर्शन करेंगे, तदनन्तर इस मत मे जो बाधायें उपस्थित हुई, उनका निराकरण करेंगे।

इतिहासपुराणो मे निःशकरूप या निर्विवादरूप से उल्लिखित है महाभारत युद्ध कलिद्वापर की सन्धि में हुआ, यही मत गर्गादि ज्योतिर्विदो का था, इनके उद्धरण व प्रमाण पूर्व लिखे जा चुके हैं। अब शिलालेखो पर उद्धृत प्रमाणों पर विचार-विमर्श करेंगे।

एक प्राचीन ताम्रपत्र मे प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त से पुष्यवर्मा राजा तक ३००० वर्ष व्यतीत होने का उल्लेख है—

> भगदत्तः ख्यातोजय विजय युधियः समाह्वयत।
> तस्यात्मजः क्षतारेर्वज्रदत्तनामाभूत्।
> वश्येषु तस्य नृपतिषु वर्षसहस्रत्रय पदमवाप्य।
> यातेषु देवभूय क्षितीश्वर पुष्यवर्माभूत।

(एपीग्राफिक इण्डिया २९१३-१४ पृ० ६५)

सर्वप्रसिद्ध शिलालेख चालुक्यमहाराज पुलकेशी द्वितीय का है, जिसने हर्ष को परास्त किया था इसमे कलिसम्वत् और भारतयुद्ध का उल्लेख—

> त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
> सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु
> पञ्चाशत्सु कलौ काले ……॥

तदनुसार पुलकेशी द्वितीयपर्यन्त कलिसम्वत् के ३६३७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से शिलालेखो में यही कलिसम्वत् की

गणना मिलती है, जिसके अनुसार कलिसम्वत् और भारतयुद्ध क्रमशः ३०४४ वि० पू० और ३०८० वि० पू० हुये ।

अतः सर्वसम्मति से भारतयुद्ध ३०८० वि० पू० हुआ, केवल कल्हण ने भ्रमवश इस तिथि पर शंका की है—

भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्या प्रचक्रिरे ॥[1]

कल्हण का मन्तव्य है कि आख्यानों मे, जो भारतयुद्ध द्वापरान्त मे उल्लिखित है, वह मृषा और भ्रान्ति पर आधारित है। वस्तुतः भ्रान्ति कल्हण को ही हुई है जो भारतयुद्ध को कलि के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर हुआ मानता था—

शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन् कुरुपाण्डवाः ॥[2]

कल्हण के इस भ्रम का कारण कश्मीरी ज्योतिषी वराहमिहिर द्वारा निर्दिष्ट एक शकसम्वत् था—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वी युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ (बृ० सं० १३।३)

इस शकसम्वत् का प्रारम्भ युधिष्ठिर शक (सम्वत्) के २५२६ वर्ष पश्चात् होता था अर्थात् विक्रम से ५५४ वर्ष पूर्व ।

प्राचीन भारत मे 'शकशब्द' 'सम्वत्' का पर्याय हो गया था, क्योंकि जब-जब भी किसी शकराज्य का उत्थान और पतन होता था तब-तब ही एक नवीन 'शकसम्वत्' की स्थापना होती थी । कम से कम दो शकारि विक्रम (शूद्रक विक्रम तथा चन्द्रगुप्त विक्रम) उत्तरकाल मे प्रसिद्ध हुये, इनसे पूर्व भी अनेक शकारि और शकराज हो चुके थे. वराहमिहिर स्वयं शकारि विक्रमादित्य शूद्रक प्रथम का सभारत्न था, अतः वह विक्रमादित्य के समकालीन था, वह शालिवाहन शक का उल्लेख कैसे कर सकता था । वराहमिहिर की विक्रमपूर्व-विद्यमानता का एक और प्रमाण है कि विक्रम ने दिल्ली के निकट मिहिरावली नाम. की वेधशाला वराहमिहिर ज्योतिषी के नाम से बनवाई थी, जिसे आजकल महरौली कहते हैं । महरौली मे विष्णुध्वज (कुतुबमीनार) भी विक्रम ने

---

१. राजतरंगिणी (१।४९),
२. वही (१।५१);

निर्मित कराई थी और लौहस्तम्भ पर चन्द्रगुप्तशकारि द्वितीय की यशकीर्ति उत्खनित मिलती है। इन सब प्रमाणों से वराहमिहिर का समय विक्रमपूर्व निश्चित है, अतः उसने वर्तमान शकसम्वत् का उल्लेख नहीं किया जिससे कल्हण को महती भ्रान्ति हुई। हमने अन्यत्रन्यूनतम चार 'शकसम्वतो' का निर्देश किया है, वराहमिहिर निर्दिष्ट शकसम्वत् वि० पू० ५५४ मे, सम्भवतः अम्लाट शकराज ने चलाया था।

इसी कल्हण की भ्रान्ति के आधार पर श्री पी० सी० सेन ने भारतयुद्ध की तिथि २५०० ई० पू० मानी है।

जिन भ्रान्तियो के कारण भारतयुद्ध की तिथि १४५० ई० पू० मानी जाती है, उनमे सर्वप्रधान है चन्द्रगुप्त मौर्य की सिकन्दर यूनानी (३२७ ई० पू०) की समकालीनता की मनघड़न्त कहानी। इस कहानी को घड़नेवाले थे, भारत मे सर्वप्रथम अग्रेज सस्कृत अध्येता विलियम जोन्स। विलियमजोन्सकृत यह मनघढन्त कहानी, आज इतनी सुदृढ मान्यता प्राप्त कर चुकी है, जितना वैज्ञानिक जगत् मे डार्विन का विकासवाद। इन दोनो कहानियो क विरूद्ध सोचना भी आज अबुद्धिमानीपूर्ण एवं अवैज्ञानिक आयाम माना जायेगा। सामान्यजन इन दोनो मान्यताओ के विरूद्ध सोचने का कष्ट ही नही उठाते।

परन्तु, मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकार भारत पर सिकन्दर का आक्रमण, आन्ध्रसातवाहन राजा हाल के समय मे हुआ मानते थे। इसका उल्लेख, स्वयं, एक पाश्चात्य विद्वान इलियट ने भारत के इतिहास मे किया है—सिन्ध का इतिहासकार मुनयलुक तवारीख से उद्धरण सग्रह करते हुए इलियट ने लिखा है—"ऐसा कहा जाता है कि हाल संजवार का वशज था, जो अन्दरत (जयद्रथ) का पुत्र था और इसकी माता राजा दहरात (धृतराष्ट्र) की पुत्री थी" (पृ० ७४), "फिर हिन्दुओ का यह देश राजा कफन्द ने अपने बाहुबल से जीत लिया…कफन्द हिन्दू नही था।…वह यूनानी एलैकजेन्डर का समकालीन था। उसने स्वप्न मे कुछ दृश्य देखे और ब्राह्मण से उसका अर्थ पूछा। उसने एलैकजेन्डर से शान्ति की इच्छा की थी और इस निमित्त उसको अपनी पुत्री, एक निपुण वैद्य, एक दार्शनिक और एक कांच का पात्र भेंट-स्वरूप भेजे। **सामोद ने हिन्दुस्तान के राजा हाल से सहायता मांगी** (पृ० ७५), इस घटना के पश्चात् एलैकजेन्डर भारत आया।" (पृ० ७६)

"कफन्द के बाद राजा अयन्द हुआ, फिर रासल। रासल के पुत्र रब्बाल और बरकमारीस (विक्रमादित्य) थे।"[१]

१. इलियटकृत भारत का इतिहास, भाग पृ० ७६ (अनु० डा० मथुरालाल शर्मा प्रकाशक—शिवलाल अग्रवाल आगरा (१९७३),

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि सिकन्दर का भारत पर आक्रमण राजा हाल के समय में हुआ था और इस प्रमाण से आन्ध्रसातवाहनवंश का समय भी निश्चित हो जाता है तथा पुराणप्रमाण से आन्ध्रसातवाहनराज्य का उदय २४०० कलिसम्वत् या ६४४ वि० पू० या ७०१ ई० पू० हुआ, क्योंकि प्राचीन पुराणपाठ के अनुसार शन्तनुपिता प्रतीप से आन्ध्रपूर्वपर्यन्त एक सप्तर्षिचक्र या २७०० वर्ष अथवा परीक्षित पाण्डव से आन्ध्रोदयपर्यन्त २४०० वर्ष हुये—

सप्तर्षयस्तदा प्राहु. प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या आन्ध्राणान्ते[1]ऽन्वयाः पुनः ।

(वायु० ९९।४१८)

सप्तर्षयो मघायुक्ता. काले परीक्षिते शतम् ।
आन्ध्राणान्ते सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शत समाः ।।

(मत्स्यपु० २७३।४४)

आन्ध्रवश के राजाओ की सामान्य संज्ञा 'सातवाहन' या 'हाल' थी, आन्ध्रवंश के ३० राजाओ ने ४५६ वर्ष राज्य किया—

इत्येते वै नृपास्त्रिशदंध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ।
समाः शतानि चत्वारि पंचाशत्षट् तथैव च ।।

(ब्रह्माण्ड २।३।७४-१७०)

मौर्यराज्य की स्थापना आन्ध्रसातवाहनो से आठ सौ वर्ष पूर्व कलिसवत १६०१ मे अथवा १४४४ वि० पू० हुई थी । चन्द्रगुप्तमौर्य और सिकन्दर की समकालीनता पूर्णतः मनघड़न्त कहानी है, चन्द्रगुप्तमौर्य, सिकन्दर से लगभग १२०० वर्ष पूर्व हुआ, अतः सिकन्दर के आक्रमण के समय (२७० वि० पू०) भारत पर गौतमीपुत्र सातवाहन या पुलोमावि वसिष्ठीपुत्र सातवाहन (शातकर्णि =हाल) का शासन था, जैसाकि इलियट उद्धृत मुस्लिम इतिहासकार के कथन से पुष्टि होती है ।

अब हम विलियम जोन्स रचित कहानी[2] का सक्षेप मे खण्डन करते हैं ।

---

१. आध्राणान्ते का पदविच्छेद है—आन्ध्राणाम् + ते = आन्ध्राणान्ते

२. अपनी तथाकथित स्थापना मे विलियमजोन्स स्वयं एक महान् कठिनाई देखता था, कि मैगस्थनीज ने लिखा है कि यमुना नदी पालिबोथ्राई (= पाटलिपुत्र ? = शुद्ध=-परिभद्रा नगरी) मे होकर बहती थी—The river Jamones flows through the Palibothri into Gangas between Methora and Carisobora. "अर्थात् यमुना नदी पालिबोथ्राई मे होकर बहती है, जिसके एक ओर मथुरा और दूसरी ओर कैरिसोबारा (कृष्णपुर=शूरपुर=बटेश्वर) बसे हुये थे ।" (Curtius para XIII), मैगस्थनीज का यही कथन जोन्स के कथन पर पानी फेर देता है,

सर्वप्रथम पं० भगवद्दत्त ने सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता का खण्डन, भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग १, (पृ० २८८ से २९७ तक) किया। उसका सार इस प्रकार है—(१) मैगस्थनीज ने लिखा है कि पालिबोथ्राई को हरकुलीज ने बसाया है. (२) प्रसई (पर्शु?) जाति सिन्धु तट पर बसी हुई है। प्रसइयों का राजा सैण्ड्रोकोट्स है। (३) पालिबोथ्रा एर्नबोअस और गंगा के तट पर बसा हुआ है। ध्यान रखना चाहिए कि मैगस्थनीज ने सोन और एर्नबोअस नदियों को पृथक्-पृथक् लिखा है। (४) पालिबोथ्रा के आगे उत्तर मे मलेयुस पर्वत है, (५) टामेली के अनुसार प्रसई जनपद के निकट सौरबतिस (शरावती या सौरवत्स) प्रदेश है। (६) मैगस्थनीज ने सूचित किया है कि सैण्ड्रोकोट्स सिन्धु (Indus) देश का सबसे बड़ा राजा था, परन्तु पोरस सैण्ड्रोकोटस् से भी बड़ा राजा था। (७) सैण्ड्रोकोट्स के राज्य के पार्श्व मे गन्दरित्त (Gandarition) बसे हुये थे। (८) सैण्ड्रोकोट्स के पुत्र का नाम एमित्रोचेट्स था। (९) मैगस्थनीज ने लिखा है कि पालिबोथ्रा के नाम पर वहाँ के राजा को भी पालिबोथ्रा कहते थे। (१०) गंगा के निकट का समस्त प्रदेश पालिबोथ्रा कहा जाता था।

उपर्युक्त दश कथनो मे से एक भी चन्द्रगुप्त मौर्य और पाटलिपुत्र पर नही घटता।

प्रथम मैगस्थनीज के अनुसार पालिबोथ्रा को हरकुलीज ने बसाया, परन्तु भारतीयग्रन्थ एकमत से कहते हैं कि पाटलिपुत्र को शिशुनागवंशीय राजा उदायी ने बसाया।[१] जो चन्द्रगुप्त मौर्य के २४० वर्ष पूर्व हुआ था। मैगस्थनीज के अनुसार हरकुलीज ने सैण्ड्रोकोट्स से १३८ पीढी पूर्व पालिबोथ्रा बसाया। अतः मैगस्थनीज का कथन पाटलिपुत्र पर नही घटता।

द्वितीय आपत्ति, मैगस्थनीज ने लिखा है कि प्रसई की राजधानी पालिबोथ्रा है। जोन्स आदि ने 'प्रसई' को 'प्राच्य' का अपभ्रंश मानकर संतोष कर लिया। परन्तु, मैगस्थनीज ने यह भी लिखा है कि सैण्ड्रोकोट्स सिन्धुप्रदेश का राजा था।[२] सिन्धु और प्राच्य दोनो ही विपरीत दिशा मे हैं। सिन्धु उदीच्य या पश्चिम

१. ततः कलियुगे राजा शिशुनागात्मजो बली।
उदायी नाम धर्मात्मा पृथिव्या प्रथितोगुणैः।
गंगातीरे स राजर्षिः दक्षिणेच महानदे।
स्थापयेन्नगरं रम्यं पुष्पारामजनाकुलम्।
तेषां पुष्पपुरं रम्यं नगरं पाटलीसुतम्॥ (युगपुराण)

२. Sandrocotus was the king of Indians around the Indus "Indus Skirts fronotiers of the Prasii"

मे हैं और मगध (पाटलिपुत्र) पूर्व (प्राच्य) मे है। क्या मैगस्थनीज प्रसिद्ध 'मगध' जनपद का नाम नहीं लिख सकता था और क्या पाटलिपुत्र समस्त प्राच्यजनपदों की राजधानी थी ? क्या मैगस्थनीज संस्कृतव्याकरण का व्यापक एवं गहन ज्ञान प्राप्त किये बिना ऐसे सूक्ष्म परिभाषिक शब्द (प्राच्य) का प्रयोग देश के लिए करता। पुनः मगध के निकट कौन सा सिन्धुतट है ? वस्तुतः मैगस्थनीज ने न तो प्राच्य, न मगध, न पाटलिपुत्र का कोई उल्लेख किया है।

वास्तव मे, मैगस्थनीज वर्णित प्रसई जाति, जिस सिन्धुनदी के तट पर बसी हुई थी, वह मध्यदेश में थी, पं० भगवद्दत्त ने इस सिन्धु को महाभारत के प्रमाण से खोज निकाला है—

वेदिवत्साः करुवाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः। (भीष्मपर्व)

मध्यदेश की सिन्ध को आज भी 'कालीसिन्ध' कहते हैं, इसी कालीसिन्ध के तट पर पालिबोथ्रा बसा हुआ था। अतः मध्यदेश के पालिबोथ्रा को पाटलिपुत्र मानना महती भ्रान्ति है।

तृतीय, जोन्स ने एर्नबोअस को शोण का पर्याय 'हिरण्यबाहु' मानकर महती भ्रान्ति उत्पन्न कर दी। वस्तुतः मैगस्थनीज ने शोण और एर्नबोअस को पृथक्-पृथक् नदियाँ लिखा है। अपनी भ्रान्ति को सत्य मानकर जोन्स, मैगस्थनीज पर दोषारोपण करता है कि उसने अज्ञान या अध्यान के कारण उसका पृथक्-पृथक् नाम लिखा है। वह असंभव कल्पना है कि अपने निकटवर्ती राजधानी की एक नदी के, कोई राजदूत भ्रान्ति से दो नाम लिखे। जोन्स से पूर्व अन्विल्ल नाम के अंग्रेज लेखक ने एर्नबोअस की पहिचान 'यमुना' से की थी, पं० भगवद्दत्त ने एर्नबोअस को यमुना का पर्याय 'अरुणवहा' माना है। कुछ भी हो, शोण और एर्नबोअस पृथक्-पृथक् नदियाँ थी। चतुर्थ, मैगस्थनीज ने पालिबोथ्रा से आगे मलेउस पर्वत बताया है, इसको लोग मल्ल (वृजि) जनपद का पार्श्वनाथ (शिखरजी) पर्वत मानते हैं, पार्श्वनाथ का नाम मल्लपर्वत कभी नही रहा। यह मल्लपर्वत, शाल्व, युगन्धर, कठापि जनपदों का निकटवर्ती मालवजनपद का पर्वत था, जहाँ पर सिकन्दर को मालव सैनिक का प्राणघातक तीर लगा था।

पंचम, मैगस्थनीज द्वारा पोरस को सैण्ड्रोकोट्स से बड़ा राजा बताना भी चन्द्रगुप्त मौर्य पर नही घटित होता क्योंकि मौर्य तो भारतसम्राट था। पोरस तो पंजाब के लघुभागमात्र का नरेश था।

षष्ठ, चन्द्रगुप्तमौर्य का अमित्रकेतु (अमित्रोचेट्स) नाम का कोई उत्तराधिकारी नहीं था, उसके पुत्र का प्रसिद्ध नाम बिन्दुसार था, फिर ऐसे प्रसिद्ध नाम को छोड़कर 'एमित्रोचेट्स' नाम लेने की क्या आवश्यकता थी।

सैण्ड्रोकोट्स के पार्श्वस्थ क्षत्रिय 'गन्दरितन' निश्चय ही युगन्धर क्षत्रिय थे, जो शाल्वो एक अवयव माने जाते थे—

उदुम्बरास्तिलखला भद्रकारा युगन्धराः।
भुलिंगाः शरदण्डाश्च साल्वावयसंज्ञिताः॥ (काशिका ४।१।१७३)

इन जनपदों के निकट मल्लजनपद था, जिसका उल्लेख महाभारत (विराटपर्व ११६) मे है—"दशार्णा वनराष्ट्र च मल्लाः शाल्वा युगंधरा·।"

इन्ही शाल्वावयव युगन्धरो के निकट पारिभद्र जनपद था, जिसका राजा सैण्ड्रोकोट्स था।[1] मैगस्थनीज ने स्पष्ट लिखा है, कि पालिबोथ्रा के राजा को पालिबोथ्रा कहते हैं, अतः पालिबोथ्रा केवल नगर का नाम नही था, वह जनपद भी था। प्राचीन भारत मे जनपद के नाम से राजा को केकय, शिवि, अग, वग, कलिग आदि कहा जाता था अतः पालिबोथ्रा पाटलिपुत्र नगर नही हो सकता वह जनपद था पारिभद्र और वहाँ की राजधानी थी पारिभद्रा, अतः मैगस्थनीज को देश नगर और राजा—तीनो के नाम समान दिखाई पडे पालिबोथ्रा मे 'बोथ्र' भाग 'पुत्र' का अपभ्रंश नही है, वह 'भद्र' का अपभ्रंश था। महाभारत युद्धपर्वों मे पारिभद्रक्षत्रियो का बहुधा सकेत मिलता है जो पांचालो के साथी थे।[2] संभवत· पारिभद्र और भद्रकार (शाल्वावयव) एक ही थे। नगर के नाम से किसी राजा को सम्बोधित नही किया जाता था, जैसे मथुरा, अयोध्या, कौशाम्बी, राजगृह के नाम से राजा को वैसा नही कहते, अतः पाटलिपुत्र और पालिबोथ्रा एक नहीं थे। अतः मैगस्थनीज ने यथार्थ ही लिखा है कि पारिभद्रा (पालिबोथ्रा) के राजा को 'पारिभद्र' (पालिबोथ्रा) कहा जाता था।

मैगस्थनीज यदि मगध की राजधानी पाटलिपुत्र मे रहता और यदि चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालिक होता तो वह मगध का नाम अवश्य लेता। नन्द, मौर्य के साथ जगद्विख्यात राजनीतिज्ञ चाणक्य या कौटल्य का उल्लेख करता,

१. सैंड्रोकोट्स का शुद्ध संस्कृत रूप—'चन्द्रकेतु' है न कि चन्द्रगुप्त, शूद्रक के समकालीन एक चकोरनाथ 'चन्द्रकेतु' का उल्लेख हर्षचरित (षष्ठ उच्छ्वास) मे मिलता है—"ससचिवमेवदूरीचकार चकोरनाथ चन्द्रकेतुं जीवितात्।।सम्भव है यही 'चन्द्रकेतु' सिकन्दर का समकालिक हो। शूद्रक एक वंशनाम था।

२. धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथ.।
वृहितः पृतनामूरैरथमुख्यैः प्रभद्रकैः॥ (भीष्मपर्व १६),

परन्तु उसने इनमे से किसी का नाममात्र भी नहीं लिया, अतः मैगस्थनीज के नाम पर सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता की कहानी पूर्णतः खण्डित हो जाती है। इस कहानी के टूटने पर महाभारतयुद्धतिथि और कलिसंवत् की अमान्यता की एक प्रमुख कठिनाई दूर हो गई। अर्थात् अब कलिसंवत् और महाभारत युद्ध की तिथि क्रमशः ३०४६ वि० पू० ३०८० वि० पू० सिद्ध हो जाती है।

बुद्धनिर्वाण की सिंहलोतिथि—भ्रामक मान्यता

पाश्चात्य लेखक भारतीय इतिहास की तिथियो को अर्वाचीनतम सिद्ध करना चाहते थे, अतः जिस भी कल्पना या किसी विदेशीग्रंथ से वह अपनी मान्यता को सुदृढ कर सके वही उन्होने किया। पाश्चात्यो ने बुद्धनिर्वाण की उस अर्वाचीनतमतिथि को माना जो श्रीलंका या सिंहलीपरम्परा मे थी, यद्यपि सिंहलीपरम्परा मे भी बुद्धनिर्वाण की तिथि ६८६ ई० पू० मानी जाती थीं, परन्तु पाश्चात्यों ने अपनी मनमानी काल्पनिक गणना, विशेषतः जोन्स की उपर्युक्त स्थापना (सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता के परिप्रेक्ष्य मे) इस तिथि को और घटाकर ४८७ ई० पू० या ४६४ ई० पू० कर दिया।

सत्य की विस्मृति के कारण प्राचीन बौद्धदेश बुद्धनिर्वाण की विभिन्न तिथियाँ मानते थे। चीनी यात्री ह्यूनसाग ने अपने समय मे माने जानी वाली बुद्धनिर्वाण की विभिन्न तिथियो का उल्लेख किया है, तदनुसार उसके समय (सप्तमशती) मे बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुये १२०० या १३०० या १५०० वर्ष व्यतीत हुये माने जाते थे, ऐसे चीनी विद्वानो के विभिन्न मत थे, अतः चीन मे ई० पू० ७००, ८०० या १००० वर्ष मे बुद्ध निर्वाण माना जाता था।[1] फाहियान ने लिखा है कि हानदेश मे चाववशी राजा पिंग के राज्यकाल से १४९७ वर्ष पूर्व अर्थात् १०९० ई० पू० बुद्धनिर्वाण हुआ।[2] जोन्स ने भी तिब्बती वर्णनो के आधार पर बुद्धनिर्वाणकाल १०२७ ई० पू० माना गया था।[3] राजतरंगिणी मे बुद्धनिर्वाण १४४४ ई० पू० माना है। श्री ए० वी० त्यागराज ने 'इण्डियन आर्किटेक्चर' पुस्तक मे कुछ वर्ष पूर्व ग्रीकनगर एथेन्स में प्राप्त शिलालेख मे एक भारतीय भिक्षु, जो १००० ई० पू० वहाँ गया था,

१. ह्यूनसाग की जीवनी (बीलकृत अनुवाद) पृ० ९८,
२ फाह्यान का यात्रावृतान्त (हिन्दी पृ० १६,)
३. जोन्सग्रथावली, भाग ४ पृ० १७;

उसकी समाधि मिली है, तदनुसार उन्होने बुद्ध का समय १७०० ई० पू० माना है। यही मान्यता पुराणों की गणना के अनुकूल है, पुराणो के अनुसार बार्हद्रथ-राजाओं ने १००० वर्ष तक राज्य किया, प्रद्योतो ने १३८ वर्ष, शिशुनागवंशीय षष्ठनरेश अजातशत्रु के ८वें वर्ष तक १७२ वर्षों का योग १३१० वर्ष हुआ। बुद्ध, कल्कि से लगभग २०० वर्ष पश्चात् हुये, कल्कि का समय विशाखयूप के राज्यकाल १११० कलिसवत् मे था तो बुद्ध का निर्वाणकाल १३१० कलि संवत् मे हुआ, बुद्ध का निर्वाण ८० वर्ष की आयु मे हुआ, अतः उनका जन्म कल्कि से १२० वर्ष पश्चात् हुआ, स्थूलरूप से बुद्ध और कल्कि मे एक शताब्दी का ही अन्तर था।

पुरातनजैनवाङ्मय में महावीर स्वामी का निर्वाणकाल—इसमे कोई सदेह नही कि महावीर और बुद्ध समकालिक थे, परन्तु वर्तमान वीरनिर्वाण-सम्वत् की गणना अत्यन्त अर्वाचीनकाल मे की गई है, यद्यपि वीरसवत् अत्यन्त पुरातन था, वीर सवत् ८४ का एक शिलालेख प्राप्त हो चुका है। यथार्थ मे प्राचीनजैनवाङ्मय अनेक बार आक्रमणादि मे नष्ट हो चुका था, वाङ्मय और परम्परा के अभाव मे जैनाचार्यों ने महावीरनिर्वाण की एक अर्वाचीन तिथि मान ली। **वस्तुतः एक प्राचीन श्वेताम्बरग्रन्थ तित्थोगाली में वीरनिर्वाण और (जैन) कल्कि का अन्तर १६२८ वर्ष माना है, यह कल्कि (सम्भवतः यशोवर्मा) गुप्तराज्यारम्भ के २५० वर्ष पश्चात् हुआ, इस गणना से महावीर निर्वाण १६७८ वि० पू० हुआ।** यह तिथि पुराणगणना के अनुकूल मत है, और तथापि इसमे स्वल्प त्रुटि है, वास्तव मे महावीर, बुद्ध मे कुछ वर्ष पूर्व ही हुए थे, अतः उनका निर्वाणकाल १७०० वि० पू० से १८०० वि० पू० के मध्य में था।

अशोक शिलालेखों में तथाकथित यवनराजा या यवनराज्य ?—अशोक के शिलालेखो का गम्भीर नही, सामान्य अध्येता भी तुरन्त भाँप लेगा कि उनमे किसी राजा का नामोल्लेख नहीं, राज्यो का नाम है—एक दो शिलालेखो के मूल पाठ द्रष्टव्य हैं—(१) "स्वमपि प्रचतेषु तथा चोडा पाडा सतियपुतो केतलपुत्रो आ तबतंणी अतियोक योनराज (शि) ये वा पि तस अतियोकस सामीप ...।" (गिरनारलेख) (२) स योनकाबोज गधरन रठिकपितिं निकन ये (पेशावर, खरोष्ठी लेख) (३) योजनशतेषु य च अतियोक नम योनरज परं च तेन अतियोके न चतुरे रजनि तुरमये नम अतकिनि नम मक नम अलिकसुन्दरो नम नि च चोड पंड...।" (शाहबाजगढ़ी—रावलपिण्डी पाठ।

पाश्चात्य लेखको ने स्वयं मूर्ख बनकर सभी को मूर्ख बनाया, स्पष्टतः शिलालेखों मे उल्लिखित चोड (चोल), पाडा (पाण्ड्य), सतियपुत (सत्यपुत्र) केतलपुत (केरलपुत्र), तंबपणी (ताम्रपर्णी = सिंहल), काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, मग आदि जब राज्यो या देशों के नाम हैं, तब—तुरमय, अंतकिन, योन और अलिकसुन्दर आदि राजाओं के नाम कैसे हो गये, स्पष्ट ही इनको राजा मानना अतिभ्रम या मूढ़ता या षड्यत्र ही है। 'योन' किसी राजा का नाम नहीं हो सकता, वह राज्य का ही नाम है, अतः स्वयंसिद्ध है—तुरमय, मग अंतकिन और अलिकसुन्दर भी निश्चय ही राज्यो के नाम थे। इनके राज्य होने का एक, और प्रमाण शिलालेख मे ही है—'योजनशतादि' दूरी का उल्लेख, यह उल्लेख स्थान या देश के साथ ही सार्थक है, राजा के साथ निरर्थक। अतः अशोक के धर्मलेखों मे जब किसी राजा का नामोल्लेख है ही नही, तब उनको अन्तियोख द्वितीय टालेमी, एन्टिगोनस, मगस, एलेक्जेण्डर नाम के राजा मानना घोर अज्ञान एव हास्यास्पद परिणामत अनैतिहासिक कल्पना है।

शिलालेख के पाठ मे स्पष्ट 'राजनि' या 'रजनि' पठित है, जो निश्चय ही राज्ये (सप्तमीप्रयोग) है न कि राज्ञि, शिलालेखपाठ मे 'तबपंणी राज्ञि' पाठ सार्थक बनता ही नही।

अशोक के शिलालेखो मे उल्लिखित पच यवनराज्य अत्यन्त पुरातन थे, इनका वर्णन रामायण, महाभारत और पुराणो मे मिलता है—सम्राट सगर के समय मे उक्त पचयवनराज्यो के राजाओं का सगर मे युद्ध हुआ था, हैहय-नरेश के पक्ष मे—

> यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पह्लवाः शका।
> एतेह्यपि गणा पच हैहयार्थे पराक्रमन्॥
>
> (हरि० १।१३।१४)

ये पच यवनराज्य भारत की पश्चिमी सीमान्त मे अवस्थित थे न कि मिश्रादि मे। अत: अशोक के शिलालेखो मे किसी यूनानी राजा का उल्लेख नही है। भारतीयगणना से अशोक का राज्यभिषेक १३९५ वि० पू० हुआ था।

खारवेल के हाथीगुफालेख से भ्रम

खारवेल के शिलालेख में उल्लिखित यवनराज को डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'डिमिट' पाठ पढकर 'डेमट्रियस' यूनानी राजा बना दिया, उसमें उल्लिखित बृहस्पतिमित्र को पुष्यमित्र शुंग मानकर, यह महती भ्रान्ति उत्पन्न

कर दी गई कि डेमिट्रियस या मेनान्डर पुष्यमित्र शुग के समकालिक था और इनका समय १८७ ई० पू० माना गया। शिलालेखों को लिपिविशेषज्ञ (?) अपने मनमाने ढंग से पढ़कर अनेक मनमाने शब्द और अर्थ बना लेते हैं, अतः उनसे वैसे भी निश्चित परिणाम नहीं निकाले जा सकते। फिर भी, यदि हाथी गुफा शिलालेख शुद्धरूप मे पढा गया है, यह मान भी लिया जाय तो उसमे उल्लिखित 'यवनराजा' का न तो कोई नाम है और बृहस्पतिमित्र को पुष्यमित्र शुंग मानना कोरी कल्पना है, यदि वह बृहस्पतिमित्र शुग होता तो उसका 'शुंग' नाम से ही उल्लेख होता जैसा कि शिलालेख मे 'शातकर्णि' का केवल प्रसिद्ध वशनाम उल्लिखित है, उसका नाम नही लिखा।[1]

अत उक्त शिलालेख के आधार पर शुगकाल का निर्णय नही किया जा सकता, जबकि स्वय खारवेल का समय निश्चित नही है, हाँ शिलालेख मे 'शातकर्णि' के उल्लेख से यह निश्चित हो सकता है खारवेल किसी शातवाहन राजा के समकालीन था, शुगो के नही। शुगो और सातवाहनो के मध्य अनेक शताब्दियो का अन्तर था—कम से कम चार शताब्दी का, अत शुगो और शातकर्णियो की समकालीनता का प्रश्न ही नही उठता, पुराणलेख इसी पक्ष मे है।

युगपुराण मे धर्ममीत तथाकथित डेमेट्रियस का उल्लेख—भ्रान्तधारणा—काल्पनिक गणनाओ के आधार पर डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'युगपुराण' मे 'धर्ममीत' के रूप म यूनानी 'डमेट्रियस' (Demetrius) का उल्लेख मानकर, उसे शुगो के समकालीन बना दिया। जिस प्रकार हाथीगुफा शिलालेख मे यवनराज के साथ 'दिमित' पाठ बनाकर अपनी कल्पना पर रग चढाया, उसी प्रकार 'धर्ममीत' शब्द को जायसवाल ने ग्रीक डेमेट्रियस माना। डेमेट्रियस का शुद्ध सस्कृत दत्तामित्र' होता है।

युगपुराण मे 'डेमेट्रियस' का उल्लेख कोरी कल्पना, वरन् निरर्थक भी है, इसके निम्न हेतु हैं—

श्री डी० आर० मनकड ने एक नवीन प्राप्त गार्गीसहिता की हस्तलिखित प्रति के आधार पर, 'युगपुराण' का जो पाठ प्रकाशित किया है वह इस प्रकार है—

"धर्ममीततमा वृद्धा जनं मोक्ष्यन्ति निर्भयाः।" (पक्ति १११)

१. हाथीगुफा शिलालेख के कुछ अंश प्रमाणार्थ द्रष्टव्य हैं—"दुतियें च वसे अचितयिता सातकंनि पछिमदिस···अपयातो यवनराज···यव्नति·· मागध च राजान बहसतिमित पादे बंदापयति।"

इसका सरलार्थ है 'धर्म' से भयभीत वृद्धपुरुष प्रजाजनो को भय से मुक्त करेंगे।" अतः युगपुराण मे किसी भी यवन अथवा यूनानी राजा का उल्लेख नहीं है।

गार्गीसंहिता की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियो मे उपर्युक्त पंक्ति के चार पाठ मिले हैं— धर्मभीततमा, धर्मभीततमा, धर्ममीयतमा और धर्ममीततमा। इनमें 'धर्मभीततमा' पाठ शुद्ध और सार्थक है, शेष अशुद्ध एवं निरर्थक हैं। क्योंकि डा० जायसवाल अपने द्वारा निर्मित 'धर्ममीयतमा' पाठ मे 'डेमेट्रियस'[1] और उसके ज्येष्ठ भ्राता 'तमा' का उल्लेख मानते थे, परन्तु उसका ज्येष्ठ भ्राता 'तमा' कौन था, यह डा० जायसवाल स्वयं नहीं बता सके। अतः धर्ममीत (शुद्ध धर्मभीत) को डेमेट्रियस मानना कोरी कल्पनामात्र ही हैं। द्वितीय, यदि उक्त श्लोक में किसी राजा का नामोल्लेख होता तो शुद्ध संस्कृत, 'धर्ममित्र' होना चाहिए, क्योकि संस्कृत मे 'धर्ममीत' निरर्थक एवं अशुद्ध शब्द है। तृतीय डा० जायसवाल का अनुमान था कि भारतीयो की दृष्टि मे डेमेट्रियस' धार्मिक राजा था, अतः उसे 'धर्ममीत' संज्ञा प्रदान की गई। भारतीयवाङ्मय मे, विशेषतः पुराणो मे यवनो या म्लेच्छो को कही भी धार्मिक नही माना गया[2] अतः डेमेट्रियस को धर्ममीत' कहा गया होगा, यह भ्रष्ट कल्पना है। चतुर्थ, यदि डेमेट्रियस को भारतीय दत्तामित्र' नाम से सम्बोधित करते थे तो, उसके द्वितीय नाम धर्ममीत' की क्या आवश्यकता थी।

अतः डा० जायसवाल की युगपुराण मे उल्लिखित डेमेट्रियससम्बन्धी-कल्पनायें, निरर्थक, भ्रष्ट एव इतिहासविरुद्ध हैं, जिसका इतिहास से कोई सम्बन्ध नही। 'यवन' शब्द का इतिहास अन्यत्र लिखा जायेगा।

---

१. महाभारत आदिपर्व मे दत्तामित्र सौवीर या यवन का उल्लेख है जिसको अर्जुन ने जीता था, पाणीनीयगणपाठ (अष्टाध्यायी ४।२।१६) मे दत्तामित्र और उसकी बसाई नगरी दत्तामित्रायणी का उल्लेख है, निश्चय ही यूनानी दत्तामित्र को डेमेट्रियस कहते थे, यहनाम अनेक व्यक्तियो ने रखा।

२. यवनाश्च सुविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्।
अनार्याश्चाप्यधर्माश्च भविष्यन्ति नराधमा। (युगपुराण, प० ६५ व ६६)
व्युच्छेदात्तस्य धर्मस्य निर्यायोपपद्यते।
ततो म्लेच्छा भवन्त्येते निर्घृणा धर्मवर्जिताः (महाभारत, अनु० १४६।२४)
अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधा ह्यधार्मिका भविष्यन्तीह यवना···॥
(ब्रह्माण्ड पु० २।३१।७४।२००)

परीक्षित् से नन्दपर्यन्तकाल

पुराणो मे मागधराजवंशो का क्रमिकवर्णन हुआ है, उनपर क्रमभग का आरोप लगाना घोर धृष्टता है। आधुनिक लेखको ने मागध बालकप्रद्योतवश को अवन्ति का चण्डप्रद्योत बनाकर, मनमानी करके, पुराणगणना मे अन्तर डालने की धृष्टता की हैं। डा० काशीप्रसाद जायसवाल, पार्जीटर, रैप्सन और जयचन्द्र विद्यालंकर ने ऐसी ही कल्पना की है। विद्यालंकार जी लिखते हैं—"पार्जीटर ने भी इस स्पष्ट गलती को सुधारकर प्रद्योतों के वृतान्त को 'पुराणपाठ' मे मगधवृत्तान्त से अलग रख दिया है। इसे सुलझाने पर कोई आपत्ति नही की जा सकती, यहा तक कि विषय निर्विवाद है।[1]" रैप्सन ने लिखा है—"पुराणो का मागध प्रद्योत और उज्जैन का प्रद्योत एक थे, इस विषय मे सन्देह नही हो सकता।"[2]

इस सम्बन्ध मे पं० भगवद्दत्त ने ६ प्रमाण दिये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि मागध प्रद्योतवश और आवन्त्य प्रद्योतवश पृथक्-पृथक् थे।[3] इस विषय की विस्तृत समीक्षा 'कलियुगराजवृतान्त' प्रकरण मे की जाएगी, यहा तो केवल महाभारततिथि (३१०२ ई० पू०) की पुष्टिहेतु इसका सकेत मात्र किया गया है।

आधुनिक लेखको की कल्पना को एक भ्रष्टपुराणपाठ से और बल मिला—

> आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
> एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम्॥[4]

परन्तु इस श्लोकपाठ की भ्रष्टता (अशुद्धि) स्वय पुराणो के प्रमाण से ही सिद्ध होती है। पुराणो मे महाभारतयुद्ध के अनन्तर के २२ मागध राजाओं का राज्यकाल ठीक १००० वर्ष बताया है—

> द्वाविंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथा.।
> पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषा राज्यं भविष्यति॥[5]

---

१. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ५५३, जयचन्द्रविद्यालंकार।
२. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग १ पृ० ३१०,
३. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास भाग २, पृ० २३८-२३९;
४. भागवतपुराण (१२।२।२६),
५. ब्रह्माण्डपु० (२।३।७४।१२२)।

इसके पश्चात् पांच प्रद्योतमागधो ने १३८ वर्ष और दश शैशुनागराजाओ ने ३६० वर्ष राज्य किया। ये कुल १४९८ वर्ष हुए, इसके अनन्तर महापद्मनन्द का अभिषेक कलिसंवत् या १५४४ या १५१२ ई० पू० हुआ। और प्रतीप, परीक्षित् और नन्द से आन्ध्रसातवाहनोदयपूर्व तक क्रमशः २७००, २४०० और ८३६ वर्ष पुराणों मे उल्लिखित है, अतः पुराणप्रमाण से भारतयुद्ध की पूर्वोक्त तिथि (३०८० वि० पू०) ही सत्य सिद्ध होती है। परीक्षित् से नन्दपूर्व तक १५०० वर्ष हुए, शुद्धपुराणपाठ के अनुसार—

यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चशतोत्तरम्॥[1]

नन्द से आध्रतक का अन्तर ८३६ वर्ष बताया गया है—

प्रमाण वै तथा वक्तु महापद्मोत्तरं च यत्।
अन्तरं च शतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समा स्मृता॥[2]

ज्योतिषगणना से पुराणमत की पुष्टि—श्री बालकृष्ण दीक्षित ने शतपथ ब्राह्मण के आधार पर सिद्ध किया है कि कृत्तिकानक्षत्रसम्पात के द्वारा उक्त ग्रन्थ का समय ३०७४ शकपूर्व या ३२१८ शकपूर्व या ३०७३ वि० पू० निश्चित होता है। उन्होने लिखा है—"उपर्युक्त वाक्य मे 'कृत्तिकाये पूर्व मे उगती हैं यह वर्तमानकालिक प्रयोग है। आजकल उत्तर मे उगती हैं। शकपूर्व ३१०० वर्ष के पहिले दक्षिण मे उगती थी। इससे सिद्ध होता है कि शतपथब्राह्मण के जिस भाग मे ये वाक्य आये हैं उसका रचनाकाल शकपूर्व ३१०० वर्ष के आसपास होगा।"

शतपथब्राह्मण मे महाभारतकाल के अनेक पुरुषो के नाम उल्लिखित हैं—

यथा—'तदु ह बह्लिक. प्रातिपीयः शुश्राव कौरव्यो राजा।"[5]
'अथ हम्माह स्वर्णजिन्नाग्नजितः। नग्नजिद्वा गान्धारः।'[6]

शतपथब्राह्मण मे चरकाचार्य (वैशम्पायन) का बहुधा उल्लेख है, जो व्यास का शिष्य और याज्ञवल्क्य वाजसनेय का गुरु था, वैशम्पायन ने महाभारत का

---

१. श्री विष्णुपुराण (४।२४।१०४) गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित सस्करण;
२. ब्रह्माण्डपु० (२।३।७४।२२८),
३. श० ब्रा० (२।१।२।३),
४. भारतीय ज्योतिष, पृ० १८१,
५. श० ब्रा० (१२।९।३।३),
६. श० ब्रा० (८।१।४।१०)।

श्रावण जनमेजय पारीक्षित् को कराया था। और भी अनेक महाभारतकालीन पुरुषो के नाम शतपथब्राह्मण मे हैं, हो क्यो नही, जब व्यासप्रशिष्य याज्ञवल्क्य ही तो शतपथब्राह्मण के रचियता थे, अतः ज्योतिष के प्रमाण से कृत्तिका द्वारा भी महाभारतयुद्धतिथि ३०८० वि० पू० सिद्ध होती हैं।

अर्वाचीन संवत्

युधिष्ठरसंवत्—भारतोत्तरकाल मे इस देश मे अनेक संवत् प्रचलित हुए, जिनमे सर्वप्रथम युधिष्ठिरसंवत् था, जो युद्ध के पश्चात् ठीक युधिष्ठिर के राज्याभिषक के दिन से प्रारम्भ हुआ, इसका प्रसिद्ध उल्लेख वराहमिहिर ने किया है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वी युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपचद्वियुक्तः शककालस्तस्य राज्ञश्च।

युद्ध के अन्तिम अर्थात् १८वें दिन बलराम तीर्थयात्रा करके लौटे—

चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः। (गदापर्व ५।६)

"गणितानुसार सायन और निरयन नक्षत्रो मे इतना अन्तर शकारम्भ के ५३०६ वर्ष पूर्व अर्थात् कलियुग का आरम्भ होने के २१२७ वर्ष पूर्व आता है।"[१]

कलिसवत् और युधिष्ठिरसंवत् मे ३६ वर्ष का अन्तर था, क्योकि युधिष्ठिर का शासनकाल ३६ वर्ष था, अतः वर्तमान गणित के अनुसार यह समय ३०८० वि० पू० आता है। अभी तक के प्रमाणो के अनुसार युद्ध और युधिष्ठिरसवत् की यही तिथि है, परन्तु ज्योतिर्गणना से यह कुछ और प्राचीन हो जाती है।[२]

कलिसवत् पर पहिले ही विस्तार से विचार कर चुके हैं। प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अलबेरूनी के प्राचीन भारत के अनेक संवतो का वर्णन किया है, तदनुसार संक्षेप मे उनका परिचय लिखेंगे।

कालयवनसंवत्—इसका संवत् द्वापरान्त में प्रचलित हुआ। सभवतः जब श्रीकृष्ण ने कालयवन या कशेरुमान् यवन का वध[3] किया था उसी दिन से यह

---

१. भारतीय ज्योतिष (पृ० १७०), बालकृष्ण दीक्षित।
२. डा० पी० वी० वर्तक (पूना) के अनुसार महाभारतयुद्ध ५५६१ ई० पू० हुआ इन्होने अपना यह मत इतिहासो के अनेक सम्मेलनों मे दुहराया है।
३. इन्द्रद्युम्नोहतः कोपाद् यवनश्च कशेरुमान् (महाभारत वनपर्व)

संवत् चला होगा। इस यवन को किसी पश्चिमीदेश से बुलाने के लिए जरासंध ने सौभाधिपति शाल्व को विमान द्वारा भेजा था कि वह कृष्ण को मार सके—

अद्य तस्य रणे जेता यवनाधिपतिर्नृपः।
स कालयवनो नाम अवध्यः केशवस्य हु॥
मन्यध्वं यदि वा युक्ता नृपा वाच मयेरिताम्।
तत्र दूत विसृजध्वं यवनेन्द्रपुर प्रति।
श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्य सर्वे ते नृपसत्तमाः।
कुर्म इत्यमब्रुवन् हृष्टा जरासध महाबलम्॥
यवनेन्द्रो यथा याति यथा कृष्ण विजेष्यति।
यथा वय च तुष्यामस्तथा नीतिर्विधीयताम्॥[1]

इसी तथ्य का अनभिज्ञ अलबेरूनी लिखता है—The Hindus have an era Kalayavana, regarding which I have not been able to obtain full information, they place itsepoch in the end of the last Dwapara yuga They here mentiond yavan scverally oppressed both their country and their religion"[2] हरिवंशपुराण (२) अध्याय ५२ -५८ पर्यन्त) मे उपरोक्त कालयवन का विस्तार से वर्णन है। इसका वध श्रीकृष्ण के चातुर्य से भारतयुद्ध के प्राय: एक शती पूर्व हुआ, अत: कालयवनसंवत् युधिष्ठिरसंवत् से भी लगभग सौ वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ था।

श्री हर्षसंवत्—यह श्रीहर्ष भूमि उत्खनन द्वारा प्राचीन कोश की खोज करता था। अलबेरूनी इसको विक्रम से ४०० पूर्व हुआ लिखता है—Between Shri Harsha and Vikramaditya their is interval of 400 years' पं० भगवद्दत्त ने कल्हणादि के प्रमाण से लिखा है कि शूद्रक विक्रम का नाम ही श्रीहर्ष था।[3] यह मत प्रमाणाभाव मे त्याज्य है—

तत्रानेहस्युज्जयिन्या श्रीमान्हर्षापराभिधः।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत्।[4]

---

१. हरिवंश (२।५२।२५,३१,३२,४५),
२. Alberuni's India (p 5),
३. वही, पृ० (१),
४. भा० वृ० इ० भाग-२ (पृ० २९५),

अतः हर्षसंवत् ४०० वि० पू० प्रचलित हुआ ।

विक्रमसंवत्—यह प्रसिद्ध विक्रमसवत् है जो शकसंवत् से १३५ वर्ष पूर्व और ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ । अलबेरूनी इस विक्रम का नाम भ्रान्ति से चन्द्रबीज लिखता है—In the book of Srudhava by Mahadeva, I find as his name Chandrabija, यहाँ भ्रम से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य शकारि द्वितीय को ही 'चन्द्रबीज' कहा गया है जो शकसवत् (१३५ विक्रम से) का प्रवर्तक था । विक्रमसवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य और था, जो शूद्रकवंश (जाति) था—इसके विषय मे समुद्रगुप्त ने श्रीकृष्णचरित के आरम्भ मे लिखा है—

वत्सर स्व शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम् ॥[3]

इसी विक्रम के विषय मे प्रभावकचरित मे लिखा है—

शकाना वंशमुच्छेद्य कालेन कियताऽपि ह ।
राजा श्रीविक्रमादित्यः सार्वभौमपमोऽभवत् ॥
मेदिनीमनृणा कृत्वाऽचीकरद्वत्सर निजम ॥[4]

'शूद्रक' पद का रहस्य और तज्जन्य भ्रान्तिनिराकरण—'शूद्रक' पद अनेक राजाओ ने धारण किया । यह एक भ्रान्ति प्रतीत होती है कि यदि 'शूद्रक' पद 'शूद्र' का पर्यायवाची हैं तो ऐसे अपमानजनक शब्द को चक्रवर्ती सम्राटो ने क्यो धारण किया । इस रहस्य को न समझकर पं० भगवद्दत्त लिखते हैं—"श्री नन्दलाल दे का मत है कि क्षुद्रक ही शूद्रक थे । हमे इसके मानने मे कठिनाई प्रतीत होती है । महाभारत आदिग्रन्थों मे क्षुद्रक और मालव तथा शूद्र और आभीर साथ-साथ एक-एक समास मे आते हैं । क्षुद्रक और आभीर का समास हमारे देखने मे नही आया ।"[5] इस अबोधगम्यता का कारण यह है कि पण्डितजी 'शूद्रक' शब्द को शूद्र का पर्याय समझते है । इस सम्बन्ध मे श्री नन्दलाल दे का मत बिल्कुल सत्य है कि 'क्षुद्रक' ही शूद्रक थे ।"[6] सत्यता यह है

---

१. राजतरंगिणी (२५१),
२. Alberuni's India (p. 6), वही ।
३. कृष्णचरित (राजकविवर्णन, श्लोक ११)
४ प्रभावकचरित, कालकाचार्य (कथा ६०, ६२)
५ भा० बृ इ० भाग २ (पृ० १६०)
६. भौगोलिक कोश, 'शूद्रक' शब्द नन्दलाल दे कृत ।

कि 'शूद्रक' शब्द 'शूद्र' का पर्याय नहीं है, यदि शूद्रक शब्द घृणित होता तो मालवा के सम्राट इस पदवी को धारण नही करते। काशिका मे (५।३।११३) ही लिखा है कि क्षुद्रकमालवगण ब्राह्मणराजन्यवर्जित आयुधजीवी थे। महाभारत इस सम्बन्ध मे प्रमाण है कि वे शाल्व असुरो के वंशज थे जिनका राजा द्युमत्सेन था। वे 'सावित्रीपुत्र' भी कहे जाते थे, उत्तरकालीनपरम्परा मे क्षुद्रकमालव अपने को ब्राह्मण ही मानने लगे थे—यथा विक्रमादित्य शूद्रक के विषय मे बताया गया है—

> द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्वः।[1]
> पुरन्दरबलो विप्रः शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित्।[2]

अतः 'शूद्रक' को 'शूद्र' का पर्याय मानने की आवश्यकता नहीं है, इससे पं० भगवद्दत्त की कठिनाई दूर हो जाती है कि 'शूद्रक' और आभीर का समास हमारे देखने में नही आया। अतः आभीर ही शूद्र माने जाते थे, शूद्रक नहीं। फिर क्षुद्रकों को शूद्रक क्यों कहा गया। इसका कारण है भाषाविकार। क्षुद्रकमालवों के देश मालव में प्राकृत भाषा का अधिक प्रसार और प्रचार था, रामिल सौमिल कवियों ने शूद्रकचरित प्राकृतभाषा में ही लिखा था – स्वयं शूद्रकरचित मृच्छकटिक में प्राकृतभाषाप्रयोगों का बाहुल्य उपलब्ध होता है। अतः संस्कृत शब्द 'क्षुद्रक' को प्राकृत में 'शूद्रक' कहा गया। यह 'शूद्रक' व्यक्तिगत नाम नहीं है, जातिगत नाम है, इसलिए अनेक क्षुद्रकमालवनरेशों का विरुद (नाम) 'शूद्रक' हुआ। पण्डित राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने शंका व्यक्त की है कि क्या शूद्रक अनेक थे। निश्चय ही क्षुद्रक (शूद्रक) मालव जाति में 'शूद्रक' नाम के अनेक राजा हुए, जिस प्रकार अनेक हैहय, राघव, आवन्त्य या वसिष्ठ या भारद्वाज हुए। इसी प्रकार 'शूद्रक' जातिवाचक नाम था, इसलिए भ्रान्ति उत्पन्न होती है कि 'शूद्रक' एक था या अनेक, निश्चय ही क्षुद्रकों का प्रत्येक शासक क्षुद्रक या शूद्रक कहलाता था। नामसाम्य से अनेक शूद्रकनरेशो का चरित एक प्रतीत होता है। कल्हण भी इस भ्रमपाश मे बद्ध हो गया।[4] अतः अनेक शूद्रको (क्षुद्रको) सम्राटो मे दो शूद्रकसम्राट् विख्यात हुए, दोनो ने शको या

---

१. मृच्छकटिक (प्रारम्भ), २. श्रीकृष्णचरित (श्लोक ६),

३. किं तर्हि बहवः शूद्रका राजानः कवयो वा बभूवुरेकस्यैव चरितं नानारूपं दरीदृश्यत इति संशयं समाधातुं यथामति किमप्यत्र ब्रूमहे।"

(कृष्णचरित पृ० ४१)

४. शकारिर्विक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः। अन्यैरेवमन्यथालेखि विसंवादि कदर्थितम् (राजतरंगिणी)।

म्लेच्छों को जीत कर विक्रमशकसंवत् चलाया, क्षुद्रक और मालव एक ही जाति के थे अतः 'मालव' नाम क्षुद्रक की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ है, शूद्रकसंवत् को ही मालवसंवत् कहा जाता था। इसी के संवत् को **मालवसंवत् या कृतसंवत्** कहते हैं। मन्दसौर के प्रसिद्ध शिलालेख मे इसी प्रथम श्रीशूद्रकसवत् (मालववा-कृतसंवत्) का प्रयोग हुआ है, मालवाना गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्यके-ऽब्दानामृतौ सेव्यघनस्वने। मगलाचारविधिना प्रासादोऽय निवेशितः। बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पार्थिवैः। व्यशीर्यतैकदेशोऽस्य भवनस्य ततोऽधुना। वत्सरशतेषु पञ्चसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु। यातेषु अभिरम्यतपस्यमास-शुक्लद्वितीयायाम्॥

मालवगणराज्य की स्थापना किसी मालवनाथ या क्षुद्रक या अवन्तिनाथ ने विक्रमादित्य से ३४३ वर्ष पूर्व की थी, न कि ४०० वर्षपूर्व जैसाकि अलबेरूनी ने लिखा है। इस सम्बन्ध मे यह परम्परा अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है, जिसका उल्लेख कर्नल विल्फर्ड ने किया है—"From the first year of Sudraka to the first year of Vikramaditya . ...there are 343 years and only fifteen Kings to fillup that Space"[1] इस परम्परा से ज्ञात होता है कि शूद्रकनामधारी १५ राजा हुए थे, जिनका अन्तर ३४३ वर्ष था, पन्द्रहवां राजा प्रसिद्ध विक्रमसम्वत्सरप्रवर्तक विक्रमादित्य था। प्रथम शूद्रक इससे ३४३ वर्ष पूर्व हुआ जिससे गणतन्त्र स्थापना की।[२] कुमारगुप्त के सम-कालिक बन्धुवर्मा का समय १५० वि० सं० मे था, जब उसने उक्त भवन का निर्माण कराया, उसके ५२६ वर्ष व्यतीत होने पर ६७६ वि० सं० मे इसका जीर्णोद्धार हुआ। अतः कृतसम्वत् या श्रीहर्षसम्वत् या मालवसम्वत् को विक्रम सम्वत मानना महती भ्रान्ति है जैसा कि रैप्सन जायसवाल आदि मानते हैं।

अस: शूद्रक-क्षुद्रक एव विक्रमसम्वत्सम्बन्धी उपर्युक्तविवेचन से एतत्-सम्बन्धी भ्रम समाप्त हो जाना चाहिए। निम्नलिखित गुप्तकाल और शक-सम्बन्धीविवेचन से उक्त विषय का और स्पष्टीकरण होगा।

शकसम्वत् का गुप्तराजा विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध और गुप्तों का राज्यकाल—प० भगवद्दत्त गुप्त राजाओ को ही विक्रमसम्वत् (५७ ई० पू०) का प्रवर्तक मानते हैं, उन्होंने इस सम्बन्ध मे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ भारतवर्ष का

1. Asiatic' Researches, Vol IX. p. 210, 1809. A, D.,

२ शूद्रको या क्षुद्रको ने अनेक युद्ध जीते थे—
'एकाकिभि क्षुद्रकैर्जितम् असहायैरित्यर्थः (महाभाष्य १।१।२४),
यह परम्परा शूद्रको ने दीर्घकाल तक जारी रखी।

बृहद् इतिहास, में प्रभूत सामग्री एकत्र की है, उनका परिश्रम अभूतपूर्व, स्तुत्य एवं अभिनन्दनीय है, लेकिन वे इस धारणा के साथ कि 'सम्भवतः गुप्त ही विक्रम थे' इस अनिश्चय के साथ गुप्तों के सम्बन्ध मे निर्भ्रान्त निर्णय नही कर सके। उन्होने लिखा "भारतीय इतिहास मे गुप्तो का वंश विक्रमों का वंश है। समुद्रगुप्त को विक्रमांक चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमांक अथवा विक्रमादित्य और स्कन्दगुप्त को विक्रमादित्य कहते हैं। अतः प्रसिद्ध विक्रमसम्वत् का सम्बन्ध इन्हीं विक्रमो से जुडता है।"[1] कुछ विद्वान गुप्तो को सिकन्दर का समकालीन मानकर उनका समय ३२७ ई० पू० मे रखते हैं यथा श्री कोटा वेंकटाचलम् ने अपनी पुस्तक 'दी एज आफ बुद्ध, मिलिन्द एण्ड किंग अंतियोक एण्ड युगपुराण' के पृष्ठ २ पर लिखते हैं—सिकन्दर का आक्रमण ई० पू० ३२६ मे हुआ वह चन्द्रगुप्त गुप्तवश का है, जिसका सम्बन्ध ईसा पूर्व ३२७-३२० वर्ष से है।" पुनः वेलिखते हैं गुप्तवशीय चन्द्रगुप्त को सिकन्दर का समकालीन मगधनरेश मान लेना, हिन्दुओ, बौद्धो और जैनियो के प्राचीनकालीन पवित्र और धार्मिक साहित्य में वर्णित सभी प्राचीनतिथियो से मेल खाता है।"

(वही पृष्ठ ३),

उपर्युक्त दोनो विद्वानो (भगवद्दत्त और वेकटाचलम्) के मत सर्वथा अयुक्त और पुराणगणना के सर्वथा विपरीत है। लेकिन आजकल प्रायः सर्वमान्य प्रचलित मत उपर्युक्त दोनो मतो से भी असत्य और घोर भ्रामक है, जिसका प्रवर्तन फ्लीट के आधार पर आधुनिक इतिहासकारो ने किया है। एक प्रसिद्ध लेखक हेमचन्द्रराय चौधरी, चन्द्रगुप्त प्रथम का समय ३२० ई० मानते हैं।[2] फ्लीटादि गुप्तो का प्रारम्भ ३७५ विक्रम सम्वत् से मानते हैं। अब देखना है कि किन आधारो पर फ्लीटादि ने यह तिथि घडी। इसका मूल है प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अलबेरूनी का यह प्रमाणवचन—"As regards the Gupta Kala, people say that the Guptas were wicked powerful people and that when they ceased to exist, this date was used as the epoch of an era. It Seems that Valabha was the last of them, because the epoch of the era of the Guptas follow like of the Vallabhera 241 years later than the Sakakala" स्पष्ट हैं।

१. भारतवर्ष का बृ० इ० भाग (पृ० १७१),

२. घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम इस वंश के प्रथम महाधिराज थे। वे सन् ३२० के आसपास सिंहासनरूढ हुए होगे।" प्राचीन भारत का राज० इति०, (पृ० ३९३),

अलबेरूनी से गुप्तकाल के अन्त और वलभीभग की एक ही तिथि लिखी है—३७५ वि० सम्वत्। अलबेरूनी के आधार पर इस कालको गुप्तकाल का आरम्भ कौन विज्ञपुरुष मानेगा। वलभभगकाल को गुप्तकाल का आरम्भ मानना बुद्धि का दिवाला निकालना है।

शकसम्वत्चतुष्टयी

इस सम्बन्ध मे ध्यातव्य है कि प्राचीनभारत में न्यूनतम चार शकसंज्ञक सम्वत प्रचलित थे। दो शकसंवत् शकराज्यो के आरम्भ होने पर चले और दो शकसंवत् शकराज्यों के दो बार अन्त होने पर चले, इस शकाब्दचतुष्टयी पर यहाँ संक्षिप्त विचार करते हैं।

प्रथमशकसम्वत्—प्राचीनतम ज्ञात शकसवत् ५५४ वि० पू० से प्रारम्भ हुआ था, जिसका सर्वप्रथम उल्लेख शूद्रकविक्रमसमकालिक प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता (१३।३) में मिलता है—

> आसन मघासु मुनयः शासति पृथिवींयुधिष्ठिरेनृपतौ।
> षड्द्विपंचद्वियुत शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥

युधिष्ठिर का राज्यारम्भ ठीक ३०८० वि० पू० हुआ, इसमे वराहमिहिरोक्त २५२६ वर्ष घटाने पर ५५४ वर्ष होते हैं, अत: ५५४ वि० पू० से शकसम्वत् का प्रारम्भ हुआ।

यद्यपि, इस प्रथम शकसम्वत् का प्रवर्तक कौन शकराज था, यह निश्चित एवं निर्णायक प्रमाण अभी तक अनुपलब्ध है, तथापि हमारा अनुमान है कि नहपान का पूर्वज और क्षहरातवंश का प्रतिष्ठाता शकराज आम्लाट ही होगा जिसका उल्लेख युगपुराण में प्रथम शकसम्राट् के रूप मे है—

> आम्लाटो लोहिताक्षेति पुष्पनाम गमिष्यति।
> ततः स म्लेच्छ आम्लाटो रक्ताक्षो रक्तवस्त्रभृत्।
>
> (युगपुराण, १३३, १३६)

युगपुराण से आभास होता है कि यह शकराजा कण्वो के अन्त और सातवाहनो के प्रारम्भकाल मे हुआ।

पुराणो मे १८ शकराजाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ मञ्जुश्रीमूलकल्प मे ३० और १८ शकराजाओ का उल्लेख है—

---

१. Alberuni's India (p. 7)

शकवंशस्तथा विज्ञात् मनुजेशा निबोधत।
दशाष्ट भूपतयः ख्याताः सार्धभूतिकमध्यमाः।
(म० मू० क० श्लोक ६१२, ६१३)

पुराणोक्त १८ शकराजा उत्तरकालीन चष्टनवंश के थे, चष्टन के पिता का नाम भूतिक (भूमिक या ध्समोतिक) था, जिसका शिलालेखों में उल्लेख मिलता है। चष्टनशको से पूर्व १२ क्षहरात शक राजा हुए, जिनमें प्रथम आम्लाट और अन्तिम नहपान था। चष्टनशको का राज्यकाल पुराणो में ३८० वर्ष लिखा है। अन्तिम शकराज का हन्ता चन्द्रगुप्त साहसांक विक्रमादित्य था, शकवध के कारण ही चन्द्रगुप्त को साहसाक और विक्रमादित्य उपाधि मिली थी, इसी शकवध के उपलक्ष मे उसने १३५ विक्रम सम्वत् में अन्तिम शक-सम्वत चलाया, यह पूर्वपृष्ठो पर प्रमाणपूर्वक लिखा जा चुका है। अतः चष्टनशक का राज्यारम्भ २४५ वि० पू० और अन्त १३५ विक्रमसम्वत् में हुआ।

चष्टनशको से पूर्व १२ क्षहरातशकों का राज्यकाल लगभग ३०० वर्ष था, गौतमीपुत्र शातकर्णी ने २६० वि० पू० के आसपास अन्तिम क्षहरात शक-सम्राट् नहपान का वध किया था।[1] अतः क्षहरातशकवंश के प्रवर्तक आम्लाट का समय ५५४ वि० पू० निश्चित होता है, जो चष्टन से लगभग ३०० वर्ष पूर्व हुआ।

द्वितीय शकसम्वत्—२४५ वि० पू० से आरम्भ—भूतिक और चष्टक सहित १८ शक राजाओ ने ३८० वर्ष राज्य किया—

शतानि त्रीणि अशीतिश्च।
शका अष्टादशैव तु।[2]

इस वंश के अठारह राजाओं मे अधिकांश का उल्लेख शिलालेखो मे मिलता है और इस शकराजसम्वत् ३१० का शिलालेख प्राप्त हो चुका है, अतः पार्जीटर की यह कल्पना पूर्णतः ध्वस्त हो जाती है कि 'शतानित्रीणि अशीतिश्च' का अर्थ '१८३' है।[3] भ्रामक एवं षड्यन्त्रपूर्ण कल्पनाओं के कारण पाश्चात्य लेखकों की गणना मे सामञ्जस्य नही बैठता, यह अन्यत्र भी स्पष्ट होगा।

---

१. क्षहरातवंसनिरवसेसकरस (नासिकगुहालेख, पंक्ति ५.६)
२. पुराणपाठ, पृ० ४५,
३ पुराणपाठ. भूमिका (XXIV-XXV)

चष्टनशकराज्य का अन्त—अन्तिम शकराजा का वध करके चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने किया, यह प्राचीन भारत मे सर्वविदितसर्वसामान्य तथ्य था, परन्तु गुप्तो के सम्बन्ध से भ्रामक कल्पना के कारण आज तक कोई सोच ही नहीं सका कि शकसम्वत का प्रवर्तक चन्द्रगुप्त साहसाक था।

तृतीयशकसम्वत् विक्रमसम्वत्—इस 'शक' सम्वत को ५७ वर्ष ईसापूर्व क्षुद्रकमालव नरेश शूद्रक विक्रमादित्य ने शको पर अपनी विजय के उपलक्ष मे चलाया था। इस पर विस्तृतविचार 'शूद्रकगर्दभिल' प्रकरण मे किया जायेगा। परन्तु एक तथ्य ध्यातव्य है कि जैनवाङ्मय मे शकसवत् और विक्रमसंवत् को बहुधा एक माना गया है।[1]

चतुर्थ, प्रसिद्ध शक (शालिवाहन) सम्वत्—यह अपने जन्मकाल १३५ वि० श० से आजतक सर्वाधिक प्रचलित सम्वत् था और इसको अब सरकार ने 'राष्ट्रीय सम्वत्' के रूप मे मान्यता दी है। परन्तु इसके प्रारम्भ के सबंध मे आज के इतिहासकारों को सर्वाधिक भ्रान्तियाँ है, इस असत्यता या भ्रान्ति का दिग्दर्शन श्री वासुदेव उपाध्याय के निम्न वाक्यो से होगा—"कुछ विद्वानो का मत है कि रुद्रादामन् (ई० स० १५० ?) के पितामह चष्टन शकवश का प्रथम महाक्षत्रप हुआ और सम्भवतः उसीने इस गणना का प्रारम्भ किया। यह माना जा सकता है कि कुषाण कनिष्क द्वारा ई० स० ७८ मे गद्दी पर बैठने के कारण इस गणना का प्रारम्भ हुआ हो।⋯ ⋯ फलीट तथा कैनेडी, कनिष्क को इसका संस्थापक नही मानते। फर्गुसन, ओलडेनवर्ग, बनर्जी तथा रायचौधरी का मत है कि कनिष्क ने ही सन् ७८ मे शकसम्वत् का प्रारम्भ किया हो।"[2] कोई इस सम्वत् का सम्बन्ध नहपान से जोडता है, कोई कनिष्क से, कोई चष्टन से, तो कोई सातवाहनो से स्पष्ट है कि ये सभी मत निराधार कल्पना से अधिक कुछ नही हैं।

समतीत शककाल—परन्तु आधुनिक इतिहासकार सभी साक्ष्यो को त्यागकर अपनी हठवादिता पर अडकर, चालुक्यनरेश पुलकेशी, द्वितीय के अयहोल शिलालेख के निम्न कथन के आधार पर, कनिष्क या चष्टन को शकराज्यारम्भ से, चतुर्थ शकसम्वत् का प्रवर्तक मानते हैं—

पञ्चाशत्सु कलौ काले, षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥[3]

१. भा० बृ० इ० भा० २, गुप्तकाल प्रारम्भ, पृ० ३३२-३३४;
२. प्रा० भा० अ०, पृ० २२०;
३. ए० इ०, भा० ६, पृ० १.

हमें यह सन्देह है कि उक्त शिलालेख के उक्त वाक्य 'समतीतासु' के स्थान पर समतीतानाम्' को परिवर्तित किया गया है, क्योंकि इतने प्राचीनकाल (६५३ शकसम्वत्) में इस सम्वत् के संबंध मे शिलालेखकर्ता ऐसी भूल नहीं कर सकते थे। क्योंकि इस काल (६५३ शकसम्वत्) से भी २४० वर्ष पश्चात् शकसम्वत् ७९३ के अमोघवर्ष के संजान ताम्रपत्र लेख में इसको 'शकनृपकालातीतसम्वत्सर ही कहा है—

"शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेषु नवतृतयाधिकेषु।"[1]

अतः पुलकेशी द्वितीय के शिलालेख का सही पाठ यह है—

"समासु समतीताना शकानामपि भूभुजाम्"

षष्ठी विभक्ति (समतीतानां) को सप्तमी (समतीतासु) मे बदलने के कारण यह महती भ्रान्ति हुई और जिन शकराजाओ का राज्यकाल २४५ वि० पू० प्रारम्भ हुआ, उनका आरम्भकाल उनके अन्तकाल १३५ वि० सं० मे माना जाने लगा।

प्राचीन शिलालेखको और भट्टोत्पलसदृश प्राचीन ज्योतिषियो एव अलबेरूनी को भी भ्रान्ति नहीं थी कि चतुर्थ शकसंवत् शकराज्य की पूर्णसमाप्ति पर चला। इस सम्बन्ध मे निम्न साक्ष्य द्रष्टव्य है—

(१) नन्दाद्रीन्दुगुणस्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सरा:।

(२) शकान्ते शकावर्धौ काले।

(३) कलेर्गोऽगैकगुण' शकान्तेऽब्दाः।

(४) श्रीसत्यश्रवा ने आगे सुदृढ प्रमाणो से सिद्ध किया है कि 'शकनृपकालातीतसवत्सरः' का अर्थ यही है कि यह सवत्सर शकनृप के काल के पश्चात् चला।[2]"

इस सम्बन्ध मे प्राचीन भारतीय ज्योतिषियो को कोई भ्रम नही था—"शका नाम म्लेच्छा राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स शकसम्बन्धीकाल: लोके शक इत्यच्यते।"[3]

इस सम्बन्ध मे अलबेरूनी का मत उसके ग्रन्थ के पृष्ठ ६ पर द्रष्टव्य है—Vikramaditya from whom the era got its name is not identical

---

१. प्रा० भा० अ० अ० द्वि० ख० मूल पृ० १५०,

२. इ० भा० बृ० भा० (१७४-१७७)

३. खण्डखाद्यक, वासनाभाष्य आमराज, पृ० २;

with that one who killed Saka, but only a namesake of his." अतः अलबेरूनी और उसके समय भारतीय विद्वानो को कोई संदेह नहीं था कि उपर्युक्त शकसंवत् 'विक्रमादित्य' ने चलाया था और यह विक्रमादित्य सिवाय गुप्त सम्राट् साहसांक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के अतिरिक्त और कोई हो ही नही सकता। जिसका 'शकसम्राट् के वध' से घनिष्ठसम्बन्ध प्राचीनवाङ्मय में अतिप्रसिद्ध है। अब यह देखना है कि शकसंवत् का प्रवर्तक कौन था, किस प्रकार प्रसिद्ध शालिवाहन शक का १३५ वि० सं० से प्रारम्भ हुआ। शकसंवत् के प्रारम्भ के विषय में आधुनिक पाश्चात्य और भारतीय लेखक 'अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः' उक्ति को चरितार्थ करते हुए भटकते रहे हैं। कुछ लोगो ने इसका सम्वत् कुषाण सम्राट् कनिष्क से जोड़ा है। तो कुछ लोग इसका सम्बन्ध चष्टनादिशको से जोड़ते हैं। इस सम्बन्ध मे विभिन्न मत द्रष्टव्य हैं—कनिष्क की तिथि के सम्बन्ध के लिये—

(१) डा० फलीट के मतानुसार काडफिसेस वश के पूर्व कनिष्क राज्य करता था। ईसापूर्व ५८ मे उसने विक्रमसंवत् की स्थापना की।[1]

(२) मार्शल, स्टेनकोनो, स्मिथ तथा अनेक दूसरे विद्वानों के अनुसार कनिष्क सन् १२५ ई० अथवा १४४ ई० मे सिंहसनारूढ हुआ।[2]

(३) अभी हाल मे ग्रिशमैन ने कनिष्क की तिथि १४४—१७२ ई० निर्धारित की है।[3]

(४) डा० आर० सी० मजूमदार का मत है कि कनिष्क ने सन् २४८ के त्रैकूटक कलचुरिचेदिसवत् की स्थापना की।[4]

(५) फर्गुसन, ओल्डनवर्ग, थामस, बनर्जी, रैप्सन, जे० ई० वान लो हुइजेन डीलीऊ बैटनोफर तथा अन्य दूसरे विद्वानो के अनुसार कनिष्क ने ७८ ई० मे शकसम्वत् की स्थापना की।"[5]

रैप्सन आदि शकसंवत् का सम्बन्ध नहपान महाक्षत्रप शकराज से जोड़ते हैं—प्रो० रैप्सन इस मत से सहमत हैं कि नहपान की जो तिथियाँ दी गई हैं, वे सन् ७८ ई० से आरम्भ होने वाले शकसंवत् से सम्बन्धित हैं।[6]

तथाकथित कुछ विद्वान शकसंवत् का सम्बन्ध शातकर्णि (सातवाहन आन्ध्रो) से जोड़ते हैं—(१) गौतमीपुत्र शातकर्णि की तिथि के सम्बन्ध मे विद्वानो म

१-५. प्रा० भा० रा० इ० (रायचौधरी पृ० ३४४-३४६)
६. वही (पृ० ३५६),

बहुत मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि उसके लिए जो उपाधियाँ वरचारणविक्रम, वारविक्रम ' अर्थात् शकों का विनाशकरनेवाला दी गई हैं, उनसे विदित होता है कि पौराणिककथाओं में आने वाला राजा विक्रमादित्य वही था, जिसने ईसापूर्व ५८ वाला विक्रमसंवत् चलाया।"[1]

कुछ लोग शालिवाहनशक के नाम पर सातवाहनों से शकसंवत् का सम्बन्ध जोड़ते हैं।

इस प्रकार शकसंवत् और विक्रमसम्वत्, आधुनिक इतिहासकारों को ऐसी कामधेनु मिल गई, जिससे सभी राजाओं की दुग्धरूपीतिथियाँ काढ़ते हैं। एक झूठ को मानने का जो परिणाम होता है, वह प्रत्यक्ष है कि सभी जानबूझकर भटक रहे हैं और सत्य को नहीं मानते; जो 'सत्य' प्राचीनग्रन्थों और परम्परा मे कथित हैं, उसे मानने मे कठिनाई आती है—मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः। (गीता) इस प्रकार अज्ञान या मोहवश असन्मतों का प्रवर्तन और ग्रहण कर रखा है।

शकसंवत् के सम्बन्ध मे सत्यमत क्या है, इस सम्बन्ध मे अब प्राचीन ग्रन्थों के मूलवचन द्रष्टव्य हैं—

(१) शका नाम म्लेच्छा राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्येन व्यापादिताः स शकसम्बन्धीकालः शक इत्युच्यते।[2]

(२) शकान्ते शकावधौकाले।[3]

(३) शकनृपकालातीतसंवत्सरः।

(सत्यश्रवाकृत शकासइनइण्डिया, पृ० ४४-४६)

(४) अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्तः शकपति मशातयत्।' (बाणभट्टकृत हर्षचरित षष्ठ उच्छवास पृ० ६९६)

(५) शकभूपरिपोरनन्तर कवयः कुत्र पवित्रसंकथाः।

(अभिनन्दकृत रामचरित)

ख्याति कामपि कालिदासकृतयो नीताः शकरातिना।

(अभिनन्दकृत रामचरित)

---

१. वही (पृ० ३६६)

२. खण्डकखाद्यवासनाभाष्य आमराजकृत, पृ० २, तथा बृहत्संहिता।

(८।२० भट्टोत्पलटीका)

३. श्रीपति की मक्किभटकृतटीका, ज०इ०हि० मद्रास, भाग १६ पृ० २५६।

(६) स्त्रीवेशनिह्नुतश्चन्द्रगुप्तः शत्रोः स्कन्धावारमरिपुरं शकपतिवधायागमत् । (भोजकृत शृंगारप्रकाश)

(७) हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद् देवीं च दीनस्ततो लक्षं ।
कोटिमलेखयन् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः ॥
(एपि० इण्डिया, भाग १८ पृ० २४८)

(८) विक्रमादित्यः साहसाकः शकान्तकः ।
(अमरकोश क्षीरस्वामीटीका २।८।२)

(९) ख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्को नृपः ।
(सुभाषितावली)

(१०) भ्रात्रादिवधेनफलेन ज्ञायते यदयमुन्मत्तश्छद्मप्रचारी चन्द्रगुप्त इति (चरकसहिता, चि० स्था० चक्रपाणिटीका ४।८) ।

(11) The epoch of the era of Saka or Sakakala falls 135 years later than that of Vikramaditya. They have mentioned Saka tyrannised over their Country between the river Sindh and ocean...The Hindus had much suffer from him, till at last they received help from the east, when Vikramaditya marched against him, put him to plight and killed him. Now this date become famous, as people rejoiced in the news of the death of the tyrant, and was used as the epoch of an era, especially by the astronmers They honour the conquerer by adding Shri to has name, so as to say shriVikramaditya"
(Alberuni's India p. 6)

(12) In the book "Srudhava" by Mahadeva, I find as his name Chandrabija" (चन्द्रबीज - चन्द्रवीर=चन्द्र गुप्त) वही पृ० ६

(१३) "जब रासल (समुद्रगुप्त) की मृत्यु हो गई तो उसका ज्येष्ठपुत्र रव्वाल (रामगुप्त) राजा बना। उस समय एक राजा की बडी बुद्धिमानी पुत्री (ध्रुवस्वामी) थी। बुद्धिमान् और विद्वान् लोगो ने कहा था कि जो पुरुष इस कन्या से विवाह करेगा.. । परन्तु बरकमारीज के अतिरिक्त कोई उस कन्या को पसन्द नहीं आया।···जब उनके पिता रासल को निकाल देने वाले विद्रोही राजा ने इस लड़की की कहानी सुनी तो उसने कहा 'जो लोग ऐसा कर सकते हैं, क्या वे इस प्रतिष्ठा के अधिकारी हैं? वह सेना लेकर आ गया और उसने रव्वाल को भगादिया। रव्वाल अपने भाइयो और सामन्तो के साथ

एक पर्वत शिविर पर चला गया जिस पर दृढ़ दुर्ग बना हुआ था।''' जब दुर्ग छीनने वाला था तो रव्वाल ने सधिप्रस्ताव भेजा तो शत्रु ने कहा 'तुम लड़की मेरे पास भेज दो'''बरकमारीस ने सोचा मे स्त्री का वेश पहनूं। प्रत्येक युवक अपने केशों मे खंजर छिपा ले।'''योजना सफल हुई शत्रु का एक भी सैनिक नहीं बचा'''तदनन्तर ग्रीष्म में नगे पैर नगर में घूमता बरकमारीस राजप्रसाद के द्वार पर पहुंचा'''बरकमारीस ने (अपने ज्येष्ठ भ्राता) रव्वाल के पेट में चाकू घोंप दिया'''वह राजसिंहासन पर बैठ गया। उस लड़की (ध्रुवस्वामिनी) से विवाह कर लिया। बरकमारीज और उसके राज की शक्ति बढ़ने लगी और सारा भारत उसके अधीन हो गया।" (भारत का इतिहास, प्रथम भा० पृ० ७६-७८, इलियट एव डासन कृत—युनमलुक तवारीख मे उद्धृत)।

उपर्युक्त तेरह उद्धरण आमराज, भट्टोत्पल, शिलालेख, मकिभट, भोज, क्षीर पाणि, सुभाषितावली, चक्रपाणि, अलबेरूनी और युनमलुक तवारीख सभी एक ही तथ्य के बोलते हुए चित्र हैं कि जिस विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त साहसांक ने अपने ज्येष्ठ भ्राता का वध किया, शकराज (नृपति) का विनाश किया, ध्रुवस्वामिनी मे विवाह किया, वही शकसवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य था। इसके अतिरिक्त और कोई व्यक्ति भारतीय इतिहास मे नही हुआ, जिसने ये सभी काम साथ-साथ किये हो, इसीलिए राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थ ने भी उत्तरकाल (शकसवत् ७६३) मे साहसाक पदवी धारण की, परन्तु प्रथम साहसाक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दोषो को ग्रहण नही किया—

> सामर्थ्ये सति निन्दिता प्रविहिता नैवाग्रजे क्रूरता।
> बंधुस्त्रीगमनादिभिः कुचरितैरावर्जितं नायशः।
> शौचशोचपराङ्मुखं न च भिया पैशाच्यमङ्गीकृत।
> त्यागेनासमसाहसैश्च भुवने यः साहसांकोऽभवत्॥[1]

उपर्युक्त विशत्यधिक सभी प्राचीन देशी विदेशी विद्वान् प्रमत्त नही थे, जो लिखते कि शकराज के वध के अनंतर विक्रमादित्य ने १३५ वि० सं० में शक-संवत् चलाया। यह तथ्य ऊपर के उद्धरणो से स्वयं सिद्ध हो जाता है, हमारी किसी कल्पना की आवश्यकता नही है। अलबेरूनी मे कोई आधुनिक भारत का विद्वान यह कहने नही गया था कि तुम लिख दो जब "शककाल के २४० वर्ष पश्चात् गुप्तो का अंत और बलभी भग हुआ, तब बलभीसम्वत् चला।" अलबेरूनी ने स्पष्ट लिखा है कि ३७५ विक्रम सवत् में गुप्तराज्य का अंत हो गया था, तब कौन हतबुद्धि मानेगा कि इस समय (३७५ वि० मे) गुप्तराज्य

१. एपि० इण्डिया, भाग ५ पृ० ३८;

की स्थापना हुई। भारतीयज्योतिषी एवं अलबेरूनी स्पष्ट लिखते हैं १३५ वि० सं० में शकराज्य का अंत करने वाला विक्रमादित्य ही था, तब शकसंवत् का संबंध चष्टनादिशकों या कनिष्क से जोड़ना विपरीत एवं मिथ्याबुद्धि का काम है।

पं० भगवद्दत्त गुप्तों का सम्बन्ध विक्रमसंवत् से जोड़ने का प्रयत्न करते रहे, परन्तु तथ्य को जानते हुए भी कि समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक प्रसिद्ध विक्रमसवत् (५७ ई० पू०) से ९३ वर्ष पश्चात् हुआ था, इस तथ्य को नहीं ग्रहण कर सके कि शकसम्वत् का प्रवर्तक समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त साहसांक था।[१]

अतः दो प्रधानगुप्तसम्राटों की तिथि निश्चित हो जाने पर शेष गुप्त-राजाओं की तिथियाँ सरलता से निश्चित हो सकती हैं। जिस प्रकार भारतयुद्ध की तिथि, (स्वायम्भुव से युधिष्ठिरपर्यन्त) सभी प्राचीन राजाओं की तिथि निर्णीत करने मे परमसहायक हैं, उसी प्रकार चन्द्रगुप्त विक्रम (१३५ वि०) तिथि से युधिष्ठिर से हर्षपूर्वतक के राजाओं और घटनाओं की सभी तिथियाँ निश्चित हो जायेंगी। अब मालवगणस्थितिसंवत् और मन्दसौर के प्रसिद्ध भवन की तिथि भी सरलता से निकाली जा सकती है। समुद्रगुप्त का समय ९३ वि० सं० था, उसका राज्यकाल ४१ वर्ष, अर्थात् १३४ वि० सं० मे समाप्त हुआ, कुछ मास के लिए उसका पुत्र रामगुप्त राजा बना। १३५ वि० सं० मे रामगुप्त के कनिष्ठ भ्राता चन्द्रगुप्त ने शकवध और रामगुप्तवध करके उससे गद्दी छीन ली। उसने ३६ वर्ष राज्य किया, अतः उसके पुत्र कुमारगुप्त के समय १६१ वि० सं० में भवन बना और उसके ५२९ वर्ष बीतने पर ६९० वि० सं० में उसका जीर्णोद्धार हुआ। अतः एतदनुसार ३३२ वि० पू० से मालवगणसम्वत् का आरम्भ हुआ न कि ५७ ई० पू०।

---

१. पुरातन वंशावलियों मे समुद्रपाल अर्थात् समुद्रगुप्त का राज्यकाल अवन्ति के विक्रमादित्य के ९३ वर्ष पश्चात् माना जाता है। इससे एक बात सर्वथा निश्चित होती है कि समुद्रगुप्त का राज्य विक्रम से ३८० वर्ष पश्चात् कभी नहीं था। फ्लीट ने अलबेरूनी के मत को बिगाड़कर यह कल्पना की है। अलबेरूनी का गुप्त-वलभी संवत् गुप्तों की समाप्ति पर आरम्भ होता है। अलबेरूनी के अनुसार गुप्तो के आरम्भ से चलने वाला गुप्तसंवत् और शक संवत् एक थे।" (भा० बृ० इ०, भाग १, पृ० १७२)

५

दीर्घजीवीयुगप्रवर्तक महापुरुष

प्राचीनमनुष्यो के दीर्घजीवन (दीर्घायु) और दीर्घराज्यकाल को बिना जाने और बिना माने प्राचीन सत्यइतिहास को नहीं जाना जा सकता, अतः यहाँ संक्षेप मे सोदाहरण दीर्घजीवन पर प्रकाश डालते हैं।

दश विश्वसृज या दश ब्रह्मा

आधुनिकयुग मे प्राचीन भारतीय (प्राग्महाभारतीय) इतिहास को सम्यग् रूप मे न समझने का एक प्रधान कारण है प्राचीनमनुष्य के दीर्घजीवन पर अविश्वास। प्राचीन मनुष्य (विशेषतः देव और ऋषि[1]) योग एवं रसायन (अमृत) सेवन के द्वारा दीर्घायुपर्यन्त जीवित रहते थे। इनमे से आदिम दश विश्वसृजों या नव ब्रह्मा (नौ ब्रह्मा) या सप्तर्षि इतिहासपुराणो एव वैदिकग्रन्थो मे बहुधा उल्लिखित है—

> भृग्वाङ्गिरोमरीचीश्च पुलस्त्य पुलह क्रतुम्।
> दक्षमत्रिं वसिष्ठं च निर्ममे मानसान्सुतान्॥ (ब्रह्माण्ड १।२।९।१८)
> नव ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चलं गताः॥
> (ब्रह्माण्ड १।२।९।१८, १९)

२१ प्रजापतियो की संज्ञा 'ब्रह्मा' थी, इनको स्वयम्भू भी कहा जाता था, ऐसे और भी अनेक ब्रह्मा थे, इनमे एक ब्रह्मा वरुण आदित्य था, जिसका परिचय इसी अध्याय में लिखा जायेगा।

उपर्युक्त नौ ब्रह्माओं के अतिरिक्त प्रजापति धर्म[2], प्रजापति रुचि[3] और

---

१. प्राचीन या आदिम युगो मे मनुष्य की तीन श्रेणियाँ थीं—
ततो वै मनुष्याश्च ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्त्वभ्यायन (ऐ० ब्रा० ६।१);
त्रयः प्राजापत्या देवा मनुष्याः असुराः (बृ० उ० ५।२) प्रजापतिगण स्वयं ऋषि ही होते थे।

२. ततोऽसृजत्ततोब्रह्मा धर्मं भूतसुखावहम्।

३. प्रजापतिं रुचिं चैव पूर्वेषामपि पूर्वजौ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।९।२०,

प्राचीनतम प्रजापति स्वायम्भुव मनु[1] या बाइबिल के आदम—ये मिलाकर आदिम १२ प्रजापति या ब्रह्मा थे—

इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा प्रजाद्यौ द्वादशस्मृताः ।
भृग्वादयस्तु ये तेषां द्वादश वंशा दिव्या देवगुणान्विताः ।
द्वादशैते प्रसूयन्ते प्रजा: कल्पे पुनः पुनः ।। (ब्रह्माण्ड० १।२।६।२७)

इनके अतिरिक्त रुद्र (या नीललोहित) आदिम प्रजापतियो में से एक थे—

अभिमानात्मकं रुद्रं निर्ममे नीललोहितम् । (ब्रह्माण्ड० १।२।६।२३)

क्योंकि ये आदिसृष्टा प्राणी थे, बुद्धि, जन्म, आयु मे बडे थे, अतः 'ब्रह्मा' कहे जाते थे । बुद्धि, महान्, ज्येष्ठ, ब्रह्मा, बृहत, महत् आदि पद सभी पर्यायवाची हैं—

बृहद् ब्रह्म महच्चेति शब्दा पर्यायवाचकाः ।
एभिः समन्वितो राजन् गुणैर्विद्वान् बृहस्पतिः ।।
(महाभारत, शान्तिपर्व० ३३६।२)

तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः । (अथर्ववेद १०।८।१)
तस्मात् पुराबृहन् महान् अजनि । (काठक सं० ६।८)
महाँ भूत्वा प्रजापतिः । (श० ब्रा० ७।५।२१)
बृहत्या बृहन्निर्मितम् । (अथर्व० ८।६।४)
महाँस्तुसृष्टिं कुरुते नोद्यमानः सिसृक्षया । (वायु० ४।२७)
महिनाजायतैकम् । (ऋ० १०।१२६।२)

इसी प्रकार सुभू, प्रभू, स्वयम्भू, प्रजापति, ब्रह्मा, पुरुष, आत्मभू नारायण, आदिदेव, परमेष्ठी, विश्वसृज, गरुत्मान्, ज्येष्ठ, महिष आदि पद वेदों और पुराणो मे समानार्थक कहे गये हैं, जो सभी 'प्रजापति' के वाचक हैं ।

प्रजापतियो से आदिम प्रजाओ की सृष्टि हुई एवं वे प्रजाओ का पालन करते थे अतः प्रजापति कहलाते थे । विश्व (समस्त) प्रजा की सृष्टि इन्हीं प्रजापतियों से हुई, अतः वे विश्वसृज कहलाये—

एतेन वै विश्वसृज इदं विश्वमसृजन्त तस्माद्विश्वसृजः
विश्वमेनाननुप्रजायन्ते ।। (आप० श्रौतसूत्र २३।१४।१५)

अतः स्वयम्भू या ब्रह्मा एक ही नही था, जैसा कि भगवद्दत्त मानते हैं, ब्रह्मा अनेक थे । जहाँ कहीं पुराणों या वैदिकग्रन्थों मे यह लिखा है कि अमुक शास्त्र

१- स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते । (१।२।६।३६)

ब्रह्मा, स्वयम्भू या प्रजापति ने ऋषियों से कहा, वहाँ यह समझना महान् भ्रम होगा कि वह आदिम स्वयम्भू ब्रह्मा ही था, यथा—

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्रायप्राह ।
(मुण्डक० १।१।१)

यहा पर ब्रह्मा वरुण आदित्य हैं क्योकि भृगु या अथर्वा वरुण का ही ज्येष्ठ पुत्र था। इसी प्रकार निम्न विद्यावंशों मे कौन-सा ब्रह्मा था, यह निश्चय करना कठिन है—

(१) ब्रह्मा स्मृत्वायुषोवेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।[1]

(२) प्रजपतिर्हि—अध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच ।[2]

(३) ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच ।[3]

(४) पुरा ब्रह्माऽसृजत् पंचविमानान्यसुरद्विषाम् ।[4]

(५) ब्रह्मणोक्त ग्रहगणितम् ।

जो विद्वान् मन्वन्तर को ३० करोड़ ६७ लाख २० सहस्र वर्ष का मानते हैं और यह मानते हैं कि अनेक ऋषियो ने लाखो-करोड़ो वर्ष[५] तपस्यायें की, हिरण्यकशिपु आदि ने तीन लाख वर्ष[६] राज्य किया, इत्यादि कथन कोरी गप्पें हैं।' इसी प्रकार युगपुराण के निम्न वचन प्रमाणहीन है कि कृतयुग मे मनुष्य की आयु एक लाख वर्ष और त्रेता में दशसहस्रवर्ष होती थी—

शतवर्षसहस्राणि आयुस्तेषां कृतयुगे ।
दशवर्षसहस्राणि आयुस्त्रेतायुगे स्मृतम् ।।[७]

---

१. अष्टांगहृदय (१।३।४),

२. कामशास्त्र (१।१।५),

३. ऋक्तन्त्र (१।४),

४. समरांगणसूत्र, (पृ० ४६, भोजकृत),

५. पुरूरवा तया सह रममाणः षष्टिवर्षसहस्राणि (विष्णु० ४।६।४०)

६. पुराकृतयुगे राजन् हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ ।
तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः
अशीतिश्च सहस्राणि त्रैलोक्येश्वरोऽभवत् ।। (वायु० ६७।८८-६१);

७. युगपुराण (पंक्ति १६, ४२),
शतं वर्षसहस्राणा निराहारोऽह्यधशिरा. । (ब्रह्माण्ड० २।३।३।१५)

इसी प्रकार बुद्धघोषकृत निदानकथाग्रन्थ मे २५ बुद्धों की आयु लाख-लाख वर्ष या नब्बे सहस्र वर्ष बताई गई है (द्रष्टव्य निदानकथा—अनु० डा० महेश तिवारी), जैनशास्त्रों मे भी तीर्थंकरों के आयुष्य का ऐसा ही वर्णन मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनग्रन्थों मे अनेक स्थानों पर सहस्र और शत पद निरर्थक भी हैं जहाँ आयु या राज्यकाल षष्टिसहस्र वर्ष बताया है वहाँ उसका अर्थ यह हो सकता है केवल साठ वर्ष अथवा द्वितीय पद्धति है उनको दिन मानना, जैसा राम का राज्यकाल ११००० वर्ष था तो वास्तव में उन्होंने इतने दिनों राज्य किया, यह लगभग ३१ वर्ष होते हैं, दीर्घराज्यकालों पर भी विचार इसी अध्याय मे करेंगे।

पोगापंथी पंडितो के अतिवादों के विपरीत, जो लोग दीर्घायु या दीर्घराज्यकाल में विश्वास नहीं करते और अपने अनुमान या मनमानी कल्पना के अनुसार आयु या राज्यकाल का निर्णय कर लेते हैं, उनके अनुमान, अनुमानकोटि में नहीं, केवल धूर्त या भ्रष्ट कल्पनाएँ हैं अतः अप्रमाणिक हैं, यथा मैक्समूलर, पार्जीटर या रमेशचन्द्र मजूमदार आदि बिना किसी प्रमाण के राजाओ का राज्यकाल या ऋषिजीवन १८ वर्ष औसत मानते हैं—Pargiter worked out a detailed Synthesis and Sychronism of all the known dynasties. Taking Manu as c. 3100 B. c (the date of the flood and Pariksit at about 1400 B. c.) a rough basic frame can be drawn which gives the reasonable age difference of 18 years per king.'[1]

इसी प्रकार डा० काशीप्रसाद जायसवाल, वासुदेवशरण अग्रवाल, स्व० चतुरसेन शास्त्री आदि ने तथाकथित औसतगणना द्वारा मनमाना कालनिर्णय किया है। यथा स्व० चतुरसेन शास्त्री स्वायम्भुव मनु की ४५ पीढ़ियों और ६ मनुओं का औसत २८ वर्ष मानकर सत्ययुग का काल ४५ × २८ = १२६० वर्ष, त्रेतायुग का १०९२ वर्ष और द्वापर का ३९२ वर्ष मानते थे।[2] और भी बहुत से लेखक इसी प्रकार औसत द्वारा आयु या राज्यकाल निकालते हैं, उनका मत किसी प्रकार भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

यह पहिले ही बता चुके हैं कि प्रजापति (ऋषिगण), और देवों की आयु अत्यन्त दीर्घ होती थी, सामान्यः प्रजापति ७०० या ७२० या एकसहस्रवर्ष

१. Date of Mahabharat Battle. p. 61, S. B. Roy,

२. भारतीय संस्कृति का इतिहास—प्रारम्भिक अंश, ले० आचार्य चतुरसेन शास्त्री।

जीवित रहते थे और देवता ३०० सौ से ५०० वर्ष तक। कुछ अपवाद भी थे, जिनमें कश्यप जैसे प्रजापतिऋषि और इन्द्रतुल्यदेव अनेक सहस्रोंवर्षतक जीवित रहे। इस दीर्घायुष्ट्व के रहस्य को न समझकर पार्जीटर लिखता है—It is generally rishis who oppear on such occassion in defiance of chronology and rarely that kings appear[1] दीर्घयज्ञप्रसंग में जैमिनीय-ब्राह्मण (१।३) में कथन है कि प्रजापति ७०० वर्ष और देवो ने ३०० वर्ष में एक दीर्घसत्र को समाप्त किया।[2]

कल्पसूत्रकारो एवं दार्शनिकों मे दीर्घसत्रयज्ञो के सम्बन्ध में विवाद होता था कि विश्वसृजों या प्रजापतियों के दीर्घसत्र कलियुग मे कैसे सम्भव है जबकि इस समय मनुष्यो की दीर्घायु नही होती—

"सहस्रसंवत्सर तथायुषामसम्भवान्मनुष्येषु।"[3]

"सहस्रसवत्सर मनुष्याणामसम्भवात्।"[4]

कुछ आचार्यों के मत मे ये कुलसत्र[5] थे, अर्थात् एक ही कुल के वंशज क्रमशः यह यज्ञ करते रहते थे—पीढ़ी दर पीढ़ी, यथा आसुरिगोत्र के आचार्यों ने एकसहस्रवर्ष तक यज्ञ किया—

आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम्।
पञ्चस्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसाहस्रिकम्॥[6]

कुछ लोग यज्ञ में सहस्रवर्ष का अर्थ सहस्रमास यासहस्र दिन लेते थे, परन्तु पूर्वयुगो मे प्रजापतियो की आयु अत्यन्त दीर्घ होती थी, अतः उन्होंने वास्तविक सहस्र वर्षपर्यन्त यज्ञ किये थे, तभी यह यज्ञपरम्परा चली, ब्राह्मणवचनो के प्रमाण से यह तथ्य पुष्ट होता है।[7]

---

१. A. I. H. T. P. 41;

२. प्रजापतिसहस्रसंवत्सरमास्त।
स सप्तशतानिवर्षाणा समाप्येमामेवजितिमयजत्।
देवान्नंब्रवीदेतानियूयं शतानि वर्षाणां समापयथेति॥ (जै० ब्रा० १।३)

३. जै० मी० सू० (६।७।११३',

४. का० श्रौ० (१।६।१७),

५. कुलसत्रमिति कार्ष्णाजिनिः (का० श्रौ० १।६।२२);

६. महा० (१२।२।८।१०),

७. जै० ब्रा० (१।३) तथा आप० श्रौ० का वचन द्रष्टव्य है—
'विश्वसृजः प्रथमाः सत्रमासत सहस्रसमं प्रसुतेन यन्तः।
ततो ह जज्ञे भुवनस्य गोपा हिरण्मयः शकुनिर्ब्रह्म नामेति॥ (२३।१४।१७)
ये प्रथम विश्वसृज् मरीचि, वसिष्ठादि ही थे।

दक्ष विश्वसृज, संप्तर्षि, २१ प्रजापति या नव ब्रह्मा—मरीचि, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठादि तप और योग या जन्मसिद्धि से दीर्घजीवी थे, आदिम ऋषियों की आयु का कोई बन्धन नहीं था, वे सन्तान भी दीर्घायु पर्यन्त उत्पन्न करते रहे, यथा कश्यप ऋषि (प्रजापति) ने लगभग २००० वर्ष के दीर्घकाल के मध्य मे देवासुरो एवं अन्य प्रजा को उत्पन्न किया।

स्वयम्भू=ब्रह्मा और स्वायम्भुव मनु की आयु—स्वयम्भू का इतिहास एक जटिल समस्या है। इतिहासपुराणो में अनेक प्रजापतियों को स्वयम्भू या ब्रह्मा कहा गया है और अनेकत्र ऋषियों को ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा गया, जैसा कि त्रितादि के सम्बन्ध मे लिख चुके हैं कि वे आङ्गिरस आप्त्य के पुत्र होने से 'आप्त्य' कहे जाते थे, परन्तु महाभारत (१२।३३६।२१) मे उनको ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा गया है, इस प्रकार के वर्णनो से स्वयम्भू ब्रह्मा के काल (समय) के सम्बन्ध में—भ्रम होना स्वाभाविक है। महाभारत, शान्तिपर्व (३४७।४०-४३) मे ब्रह्मा स्वयं अपने सात जन्मो का वर्णन करते हैं—

त्वत्तो मे मानस जन्म प्रथमं द्विजपूजितम् ।
चाक्षुष वै द्वितीय मे जन्म चासीत् पुरातनम् ।।
त्वत्प्रसासाद् तु मे जन्म तृतीय वाचिकं महत् ।
त्वत्तः श्रवणज चापि चतुर्थं जन्म मे विभो ।।
नासिक्यं चापि मे जन्म त्वत्तः परमुच्यते ।
अण्डज चापि मे जन्म त्वत्तः षष्ठं विनिर्मितम् ।।
इदं च सप्तमं जन्म पद्जन्मेति वै प्रभो ।।

अतः ब्रह्मा के न्यूनतम सात जन्म उपर्युक्त श्लोको मे वर्णित हैं—(१) मानस ब्रह्मा, (२) चाक्षुष ब्रह्मा, (३) वाचस्पत्य ब्रह्मा, (४) श्रावण ब्रह्मा, (५) नासिक्य ब्रह्मा, (६) हिरण्यगर्भ अण्डज ब्रह्मा और सप्तम (७) पद्मज कमलोद्भव ब्रह्मा।

कमलोद्भव ब्रह्मा—बाइबिल में इसी को मिट्टी (कर्दम=कीचड़) से उत्पन्न 'आदम' कहा है। अतः प्रथम मानव स्वयम्भू या आत्मभू (आदम) कीचड़-मिट्टी से कमल सदृश उत्पन्न हुआ।

Bible—"And the lord god formed man of the dust of the ground and breathed into his nostril the breath of life and man became a living soul. Holy Bible p. 6)

वर्तमान मानव का ज्ञात इतिहास सप्तम पद्मज ब्रह्मा से प्रारम्भ होता है। वर्तमानमानवसृष्टि से पूर्व न जाने कितनी बार मानवसृष्टि हुई होगी, इसे कौन

जाने, वेद के नासदीयसूक्त में कथन है—'अर्वाग् देवा:' अब देवता ही ब्रह्माण्ड (पृथ्वी) के उत्तरकाल मे उत्पन्न हुए तब देवों से पूर्व के इतिहास को मनुष्य कैसे जान सकता है, फिर भी सात ब्रह्माओं की स्मृति इतिहासपुराणो मे विद्यमान है, जिससे सातबार मानवसृष्टि हुई। प्राणियो मे ब्रह्मा सर्वप्रथम उत्पन्न हुये—

भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे (अथर्व० १८।२२।२१)
आकाशप्रभवो ब्रह्मा (रामायण २।११०।५)

ब्रह्मा = स्वयम्भू स्वय आकाश मे उत्पन्न हुए, अतः आदिमानव ब्रह्मा थे, अतः मनुष्य आदिकाल से इसी रूप मे था, जैसा आज है, इससे विकासवाद का पूर्ण खण्डन होता है। आत्मभू या स्वयम्भू का पुत्र होने से मनु को स्वायम्भुव मनु कहा जाता है। पं० भगवद्दत्त ब्रह्मा का समय भारतयुद्ध से ११००० वर्षपूर्व अथवा १४००० वि० पू० मानते थे—(१) 'ब्रह्माजी का काल भारतयुद्ध से न्यूनातिन्यून ११००० वर्ष पूर्व का है।"[1]

आदम या स्वायम्भुव की आयु बाइबिल मे ९३० वर्ष बताई गई है, जो सत्य प्रतीत होती है—"And all the days that Adam lived were nine hundred and thirty years (Holy Bible p. 9).

बाइबिल के आधार पर भविष्यपुराण मे 'आदम' को प्रथमपुरुष और हव्यवती (हौवा) को प्रथमस्त्री बताया गया है—

आदमो नाम पुरुषः पत्नी हव्यवती तथा।

अतः आदम स्वायम्भुव मनु था, स्वय स्वयम्भू नही। आदम का समय भी भविष्यपुराण मे वैवस्वतमनु से १६०००-वर्षपूर्व बताया गया है—

षोडशाब्दसहस्रे च शेषे तदा द्वापरे युगे।

यह गणना हमारी उपर्युक्त गणना से मेल खाती है कि स्वाम्यभुव मनु का समय विक्रम से लगभग तीस सहस्रवर्षपूर्व या वैवस्वतमनु से सोलहसहस्र वर्ष पूर्व था। मूल मे स्वायम्भुवमन्वन्तर के ७१ परिवर्तयुग ही स्वायम्भुव मन्वन्तर कहे जाते थे—

१. भा० बृं० इ० भाग-२ (पृ० १८), वही भाग। (पृ० २५४);

२. शरीरार्दधमथो भार्यां समुत्पादितवान्शुभाम्। (हरिवंश ३।१४।२२)

३. स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते। लब्ध्वा तु पुरुषः पत्नी शतरूपामयोनिजाम् (ब्रह्माण्ड १।२१९।३६,३७७)

स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ (हरिवंश० १।२।४)
स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।६।३६)

इन वर्षों को दिव्यवर्ष मानना और ७१ चतुर्युग मानना भ्रममात्र और कल्पनामात्र है ।

यह हम पूर्व संकेत कर चुके हैं कि आदिमब्रह्मा ही अनेक शास्त्रों का मूलप्रवक्ता था ।[1] वरुणादि को भी भ्रम से आदिब्रह्मा समझ लिया गया है, उत्तरकाल में विभिन्न युगों में २१ प्रजापतियों एवं १४ सप्तर्षिगणों ने शनैः-शनैः प्रारम्भिकशास्त्रों की रचना की, उन्हें भ्रमवश आदिब्रह्मा के मत्थे मढ़ दिया है । उदाहरणार्थ छान्दोग्योपनिषद् (३।११।४) का यह विद्यावंश द्रष्टव्य है—तद्वैतद् ब्रह्मा प्रजापतये प्रोवाच प्रजापतिर्मनवे, मनुः प्रजाभ्यः ।" यहाँ प्रजापति विवस्वान् की ओर संकेत है, मनु वैवस्वत मनु थे, जो पंचम परिवर्त में हुए । यहाँ ब्रह्मा स्वयं कश्यप का अभिधान संकेतित है, इसी परम्परा को गीता में वासुदेव कृष्ण इस प्रकार कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥[2] (गीता ४।१)

उपर्युक्त श्लोक में 'अहम्' (श्रीकृष्ण) स्वयं ब्रह्मा कश्यप ऋषि थे और विवस्वान् उनके पुत्र तथा उनके पुत्र मनु वैवस्वत तथा पुत्र इक्ष्वाकु आदि (प्रजा) ।

अतः ब्रह्मासम्बन्धीसमस्या अत्यन्त जटिल है । पं० भगवद्दत्त ने छान्दोग्य-प्रसंग में ब्रह्मा स्वयम्भू को और प्रजापति, कश्यप को माना है, जो अलीक एवं अनुचित है, क्योंकि विवस्वान् स्वयं एक महान् प्रजापति थे, जिन्होंने अपने दोनों पुत्रों यम और मनु को शिक्षा दी ।

पं० भगवद्दत्त सभी प्रजापतियों को एक ब्रह्मा मानकर लिखते हैं—'ब्रह्मा पितृयुग और तत्पश्चात् देवयुग में जीवित थे ।"[3] देवयुग के ब्रह्मा कश्यप

---

१. द्रष्टव्य भा० बृ० इ० भाग २ (अध्याय श्री ब्रह्माजी), यह कुछ शास्त्रों का प्रवक्ता अवश्य था, पुराण और हिन्दू ग्रन्थों से पुष्ट होता है ।

2. Son and father walked together...Son of Vivahvat, great yim (Avesta).

३. भा० बृ० इ० भाग २ (पृ० २७),

प्रजापति थे, स्वयम्भू ब्रह्मा नहीं ।

बाइबिल में आदम (स्वयम्भू ब्रह्मा या स्वायम्भुव मनु) की आयु ९३० वर्ष बताई है, तदनुसार भविष्यपुराण मे लिखा है—

"त्रिशोत्तरं नवशतं तस्यायुः परिकीर्तितम् ।"

यदि आदम स्वायम्भुव मनु था तो उसकी यही (९३० वर्ष) आयु थी, देवासुर युग में न स्वयम्भू जीवित था और न स्वायम्भुव मनु ।

वरदपितामहसम्बन्धी भ्रान्ति का निराकरण—इतिहासपुराणों में बहुधा चर्चा मिलती है कि पितामह ब्रह्मा ने अमुक असुर या राक्षस का राजा को तपस्या से प्रसन्न होकर वर दिया, यथा रामायण मे पितामह, रावणादि को वर देते हैं—

पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं देवैरुपस्थितः
एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ।
विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः ।[1]

इसी प्रकार पितामह असुरों यथा हिरण्यकशिपु आदि को वर देते हैं—

चराचरगुरुः श्रीमान्वृतो देवगणैः सह ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदा श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ।"[2]

इत्यादि प्रसंगों में पितामह असुरों के पिता कश्यप या पुलस्त्यादि को ही समझना चाहिए, क्योंकि राक्षसों के पितामह पुलस्त्य या पुलस्ति थे, (आदिम पुलस्त्य नहीं, विश्रवा के पिता पुलस्त्यवंशीय ऋषि) और असुर दैत्यों के पिता या पितामह कश्यप थे, वे ही प्रायः देवदानवों को वरदान देते थे, यथा अदिति, दिति, कद्रू, विनता आदि को उन्होंने ही वर दिये थे—

दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ।
तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ।
वरेणच्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः ॥

(हरिवंश १।३।१२३-१२४)

अतः ऐसे प्रसंगों वरद पितामह ब्रह्मा स्वयम्भू नहीं तत्तत्कालीन पूर्वज प्रजापति को समझना चाहिए और कुछ प्रसंगों में तो ब्रह्मा का अर्थ है विद्वत्पूर्ण (ब्राह्मणादि) यथा रामायण में आदिकवि वाल्मीकि और महाभारत में पाराशर्य व्यास को उनकी रचनाओं में सन्तुष्ट ब्रह्मा आशीर्वाद देते हैं, यथा—

---

१. रामायण (७।१०।१३,२६,२७)

२. हरिवंश (३।४१।१०)

आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयं प्रभुः ।
वाल्मीकये च ऋषये संदिदेशासनं ततः ।

(रामा० १।२।२३,२६)

तस्य तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ऋषेर्द्वैपायनस्य च ।
तत्राजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकगुरुः स्वयम् ।।

(महा० १।१।५६,५७)

उपर्युक्त प्रसगों में ब्रह्मा किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं और आदिब्रह्मा स्वयम्भू का तो कतई नहीं । विद्वानों या ब्राह्मणों द्वारा उनकी कृति को मान्यता देना ही यहाँ 'ब्रह्मा' से अभिप्रेत है ।

दश विश्वस्रज, नवब्रह्मा या सप्तर्षियों की आयु—उपर्युक्त, जो विवेचन स्वयम्भू ब्रह्मा के सम्बन्ध है, लगभग वही—मरीचि, भृगु, पुलस्त्य, अंगिरा, पुलह, क्रतु, अत्रि, दक्ष और मनु के सम्बन्ध में समझना चाहिए, जो विश्वस्रज, ब्रह्मा या सप्तर्षि इत्यादि विभिन्न नामो से अभिहित किये जाते हैं, ये भी वरद, ईश्वर, पितामह और ब्रह्मा कहे जाते थे, ये ही वेदमंत्रों के आदिस्रष्टा या द्रष्टा थे । इन सब महर्षियो या प्रजापतियो मे प्रत्येक की आयु एक-एक सहस्र वर्ष से अधिक अवश्य थी । बाइबिल मे आदिम प्रजापतियो की आयु ६०० से १००० वर्ष तक कथित है । क्योंकि इन्होंने सहस्रोंवर्षों तक तप या यज्ञ किये—

प्रजापतिः सहस्रसंवत्सरमास्त । (जै० ब्रा० १।३)
विश्वस्रजः प्रथमाः सत्रमासत सहस्रसमम्···।"

(आ० श्रौ० २३।१४।१७)

उपर्युक्त दश प्रजापतियो मे देवासुरयुग पर्यन्त कोई भी जीवित नही था, प्रजापतियुग ३५०० वर्ष का था, इसी प्रजापतियुग मे अधिकांश आदिम प्रजापति दिवंगत हो चुके थे, मरीचि के किसी देवासुरसम्बन्धी घटना मे दर्शन नहीं होते । देवासुरजनक कश्यप यदि साक्षात् मरीचि के पुत्र थे, तब पितापुत्र दोनों की आयु छः-सात सहस्र वर्ष माननी पड़ेगी और यदि देवासुरयुग से पूर्व भी कश्यप एक गोत्र का नाम था तो कश्यप साक्षात् मरीचि के पुत्र न होकर वंशज ही हों, अतः मारीच कहलाते थे, तो इन दोनों की आयु कुछ न्यून हो सकती है, फिर भी इनकी आयु सहस्रोंवर्ष अवश्य थी ।

यह भी सम्भव है कि उपर्युक्त दश विश्वस्रज या प्रजापति विभिन्न युगों मे हुए हों, यथा षष्ठ मनु प्रजापति चक्षु के पौत्रों का नाम अंगिरा और अंग

था, जो वेन के पिता और पितृव्य एवं पृथु के पितामह थे,[1] देवयुग में इसी अंगिरा के वंशज बृहस्पति आदि आंगिरस ऋषि हुए। आदिम अत्रि के दत्तक-पुत्र थे स्वायम्भुव मनु के पुत्र उत्तानपाद। अतः आदिम सप्तर्षियों या प्रजापतियों का कालनिर्णय एक दुष्कर कर्म है।

ध्रुव—यह भी एक दीर्घजीवी और युगप्रवर्तक महापुरुष थे, हरिवंश-पुराणानुसार ध्रुव ने तीन सहस्रवर्षपर्यन्त तप किया—

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत।
तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन् सुमहद् यशः॥ (१।२।१०)

ध्रुव ने निश्चय ही दीर्घकालतक राज्य किया होगा, इसकी अतिमात्रवृद्धि महिमा और यश के गीत असुरगुरु शुक्राचार्य ने गाये थे।[2]

परन्तु ध्रुव का भक्तिचरित प्रमाणिक पुराणपाठों से आकाशकुसुम और काल्पनिक वस्तु ही सिद्ध होता है।

ऋषभदेव—जैनों के आदितीर्थंकर प्रियव्रत के प्रपौत्र और नाभि के पुत्र थे, ये निश्चय ही अत्यन्त दीर्घजीवी पुरुष थे। जैनग्रन्थो मे मरीचि ऋषि को तपोभ्रष्ट मुनि के रूप मे चित्रित किया है, जिन्होंने ऋषभ के विरुद्ध विद्रोह किया। यह साम्प्रदायिक वर्णन है, परन्तु इससे यह सिद्ध होता है कि ऋषभ और मरीचि मे धार्मिक मतभेद तो थे ही और वे समकालिक थे।

ऋषभ ने न केवल दीर्घकाल तक राज्य किया, बल्कि दीर्घकाल तक तपस्या भी की, भरत और बाहुबली इनके पुत्र थे।

कपिल (सांख्यप्रणेता)—अनेक कपिलों मे—आदिविद्वान् महर्षि कपिल विरजा (प्रजापति) के प्रपौत्र एव कर्दम के पुत्र थे, इनकी माता का नाम देवहूति था। ये अत्यन्त दीर्घजीवी पुरुष थे, सगरकाल तक ही नही भारतयुद्ध से कुछ शती पूर्व आसुरि महायाज्ञिक को इन्होंने अपना प्रधान शिष्य बनाया। अत. इस दृष्टि से इनकी न्यूनतम आयु चौबीस सहस्रवर्ष निश्चित होती है, यदि इन्होने सिद्धरूप मे या निर्माणकाय बनाकर आसुरि को उपदेश दिया तो और बात है, जैसा कि पं० गोपीनाथ कविराज उन्हें केवल सिद्धपुरुष के रूप

---

१. सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरंगिरसःसुतैः।
आदिराजो महाराजः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्॥ (वायु० ६२।१३६)

२. तस्यातिमात्रमृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य च।
देवासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ॥ (हरि० १।२।१२)

में मानते हैं।[1] पं० उदयवीर शास्त्री ने पं० गोपीनाथ कविराज के मत की बहुत ऊहापोह की है कि कपिल ने बिना शरीर के आसुरि को किस प्रकार उपदेश दिया होगा। यदि जन्मसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ सिद्ध[2] कपिल 'निर्माणचित्त' नही बना सकते तो उदयवीर शास्त्री को समझना चाहिए कि योगसिद्धियाँ सब कल्पना और ढकोसला है जिनका स्वयं शास्त्रीजी ने विस्तार से वर्णन किया है, अन्यथा कपिल के 'निर्माणचित्त' को एक ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार करना पड़ेगा। सरस्वती के विनाश के आधार पर[3] पं० उदयवीरशास्त्री कपिल का समय विक्रम से लगभग १८ या २० सहस्र वर्ष पूर्व मानते हैं, जैसा कि श्री अविनाशचन्द्रदास ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वैदिक इण्डिया' मे भौगोलिक रूप से प्रमाणित किया है, अतः स्वायम्भुव मनु, कर्दम और कपिल का समय अबसे न्यूनतम बीससहस्रवर्ष पूर्व था, जबकि सप्तसिन्धुप्रदेश मे सरस्वतीनदी बहती थी।

यदि कपिल ने अपने भौतिक शरीर से ही आसुरि को सांख्य का उपदेश दिया जैसा कि उदयवीर शास्त्री मानते हैं तो उनकी आयु चौबीससहस्रवर्ष की माननी पड़ेगी, यदि निर्माणचित्त[4] या सिद्धरूप मे उपदेश दिया, तब भी सगरकाल तक कपिल जीवित रहे फिर भी आठ-नौ हजार वर्ष तो उनकी आयु, अवश्य थी। इतनी आयु, जन्मसिद्धयोगी, जो सर्वोत्तम योगी था, के लिए असम्भव नही है।

सोम—दक्ष के नाना अथवा दक्ष का मातामह सोम उसके जामाता सोम से पृथक् हो सकता है। और श्वसुर सोम[5] निश्चय दीर्घजीवी व्यक्ति थे। दक्ष की २७ नक्षत्रनाम्नी रोहिणी आदि कन्यायें सोम की पत्नी थी, पुनः सोम की

---

१. Before he had plunged into निर्वाण, कपिल furnished himself with a सिद्धदेह and appeared before आसुरि to impart to him the Secret of सांख्यविद्या (सांख्यदर्शन का इतिहासः पृ० २८ पर उद्धृत उदयवीर शास्त्री)

२. सिद्धानां कपिलो मुनिः (गी० १०।२६),

३. श० ब्रा० (१।४।१।१०-१७),

४. "आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् भगवान् परमर्षिरासुरये तन्त्रं प्रोवाच।" (व्यासभाष्य),

५. कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः।
दौहित्रश्च सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः (हरिवंश १।२।५३)

पुत्री मारिषा से दस प्रचेताओं ने दक्ष को उत्पन्न किया। अतः दक्ष सोम के श्वसुर और नाना (मातामह) दोनों ही थे। सोम के पिता, यदि आदिम अत्रि थे, तो सोम की आयु बारसहस्र वर्ष से कम नहीं थी, क्योंकि आदिम अत्रि उत्तानपाद के पालक थे[1] और सोम के पुत्र बुध वैवस्वत मनु के समकालिक थे। उत्तानपाद से बुध या मनु पर्यन्त, पुराणो मे ४८ पीढ़ियाँ कथित हैं, परन्तु पुराणों मे ये प्रधान पुरुष[2] ही कथित हैं, न्यूनतम ७१ पीढियाँ थी, जैसा कि मन्वन्तर मे ७१ मानुषयुगो की गणना से सिद्ध है। सम्भावना है कि सोमपिता अत्रि आदिम अत्रि नही थे, उनके वंशज थे, क्योंकि प्रत्येक ऋषिनाम प्रायः गोत्रनाम से ही प्रथित होता था, अतः सोमपिता अत्रि आदिम नहीं थे। तो भी सोम की आयु सहस्राधिक वर्ष अवश्य होगी।

कश्यप— यदि मारीच (मरीचिपुत्र या वंशज) कश्यप को साक्षात् मरीचि का पुत्र माना जाय तो प्रजापतियुग से देवयुग तक ही नही मानुषयुगों-कृतयुगान्त पर्यन्त जीवित रहने वाले महर्षि प्रजापति कश्यप की आयु आठ सहस्रवर्ष से कम नही होगी। यदि मरीचि के वशज भी मारीच कहे जाते थे, तब भी कश्यप की आयु पाँचसहस्र वर्ष अवश्य थी। बाइबिल का केनान और महालील (मारीच), ईरानियों का आदिपुरुष केओमर्ज (कश्यप मारीच)[3] यही कश्यप हो सकता है—दृष्टव्य बाइबिल—And all the days of caınan were nine hundred and ten years and he died (Holy Bible p. 9). "And all the days of Mahalel were eight hundred ninty and five years (वही पृष्ठ) सम्भावना है कि मारीच और कश्यप गोत्रनाम थे, क्योंकि स्वायम्भुवमन्वन्तर के कुछ शती पश्चात् होने वाले स्वारोचिष मन्वन्तर के सप्तर्षियो मे एक काश्यप ऋषि भी थे, जो देवासुरपिता कश्यप से सहस्रोंवर्ष पूर्व हुए। काश्यप को ही कश्यप भी कहा जाता था। कश्यप का काश्यप ऋषि से उत्तरकालीन होना सिद्ध करता है कि एक गोत्रनाम था और कश्यप ही एक मात्र मारीच या एकमात्र कश्यप नही थे, अतः मारीच (मरीचिपुत्र) कश्यप अनेक थे, अर्थात् मारीच या कश्यप एक गोत्रनाम था। प्रजापतियुग के उत्तरकाल में कश्यप एक सर्वाधिक महत्तम प्रजापति थे, जिन्हें प्रायः ब्रह्मा कहा जाता था,

---

१. उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः। (हरि० १।२।७)

२. नाम्नां बहुत्वाच्च साम्याच्च युगे युगे (ब्रह्माण्ड०)
एतेषां यदपत्यं वै तदशक्यं प्रमाणतः। बहुत्वात्परिसंख्यातुं पुत्रपौत्रमनन्तकम्। (ब्रह्माण्ड० १।२।१३।१५०)।

३. A History of Persia Vol I p. 133)

इससे देव, असुर, नाग, गन्धर्व और सुपर्ण-संज्ञक पंचजन जातियाँ उत्पन्न हुई जिन्होंने समस्त भूमण्डल पर दीर्घकालपर्यन्त शासन किया, इन्हीं के एक पुत्र विवस्वान् आदित्य के पुत्र वैवस्वत मनु के वंशजों ने सम्पूर्ण भारतवर्ष पर चिरकाल तक शासन किया, वस्तुतः भारतवर्ष का इतिहास वैवस्वतमानववंश का इतिहास है।

नारद—देवर्षि नारद पूर्वजन्म मे परमेष्ठी प्रजापति के पुत्र थे, पुनः वे दक्ष के पुत्र हुए अथवा कश्यप के पुत्र हुए, अतः नारद दक्षपुत्रो के भ्राता थे।[१] नारदजन्म एक जटिल समस्या है, उसी प्रकार उनका दीर्घायु भी एक परम जटिल प्रहेलिका है। दक्षकश्यप से श्रीकृष्णपर्यन्त[२] (प्रजापतियुग से द्वापरान्त) जीवित रहने वाले देवर्षि नारद की आयु दशसहस्रवर्ष से अधिक निर्णीत होती है। इन्ही देवर्षि नारद ने राजा सृंजय को षोडशराजोपाख्यान[३] सुनाया था। इससे पूर्व देवर्षि ने मानव हरिश्चन्द्र को उपदेश दिया था।[४] नारद का भागिनेय पर्वत (हिमालय) भी दीर्घजीवी ऋषि था। इसी पर्वत की पुत्री पार्वती महादेव की द्वितीय पत्नी थी। नारद के उपदेश से पर्वत (राजा) परिव्राजक ऋषि बन गया था।[५]

महादेव शिव—दक्ष की दशपुत्रियो का विवाह धर्मप्रजापति से हुआ, उनमे से वसु नामी पत्नी से साध्यगण, धर और एकादश रुद्र उत्पन्न हुए। इनमे महादेव शिवरुद्र प्रधान थे, कालिदास के समय मे शिव अलक्ष्यजन्मा[६] माने जाते थे, इनके माता-पिता का नाम विस्मृत सा हो गया था। कालिदाससदृश महाकवि दक्षपुत्र पर्वतराज को नगाधिराज हिमालय (पत्थर का पहाड) समझते थे, जो कि नारद का भागिनेय और दक्ष पार्वति[७] (द्वितीय दक्ष) का पिता था। यह पुराणो मे कश्यपपुत्र भी कहे गये हैं।

इनकी दीर्घायु इतिहासपुराणो से प्रमाणित हैं।

---

१. य कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः (हरि० १।३।६)
२. विनाशशंसी कसस्य नारदोमथुरा ययौ। (हरि० २।१।१)
३. शान्तिपर्व (३०-३१)
४. हरिश्चन्द्रो हवैधसः तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः (ऐ० ब्रा० ८।१)
५. नारदो मातुलश्चैव भागिनेयश्च पर्वतः (महा० १२।३०।६)
६. कुमारसम्भवआरम्भ
७. श० ब्रा० (२।४।४।१-६)।

स्कन्द सनत्कुमार—इन्हीं को कार्तिकेय कहा जाता है, ये रुद्र नीललोहित (शिव) के ज्येष्ठ पुत्र थे—

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः॥

(हरि० १।१३।४३)

छान्दोग्योपनिषद् मे भी सनत्कुमार को ही स्कन्द कहा गया है—'तं स्कन्द इत्याचक्षते (छा० उ०), इनके ही चार भ्राताओं को सनत्, सनातन सनन्दन, सनत्कुमार या शाख, विशाख, नैगम और सनत्कुमार कहते हैं। इन्होंने पंचम तारकामय देवासुर संग्राम[१] मे देवसेनाओं का सेनापत्य किया था। नारद को सनत्कुमार ने ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। ये सब देवयुग से पूर्व की घटनायें हैं, जबकि इन्द्रादि का जन्म नही हुआ था। इतिहासपुराणों में सनत्कुमार का दीर्घायुष्य प्रमाणित है। गीता मे इनको सप्तर्षियों से पूर्व का ऋषि माना है।[२]

वरुण आदित्य—मुण्डकोपनिषद्[३] मे वरुण को 'ब्रह्मा कहा गया है, जिन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा (भृगु) को ब्रह्मविद्या प्रदान की। आचार्य-चतुरसेन शास्त्री ने बाइबिल के प्रमाण मे लिखा है कि प्रजापति वरुण ने ही पृथ्वी को दो भागो मे विभक्त किया।[४] प्रकारान्तर से म० म० पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने भी यही लिखा है कि सिन्धु नदी के उत्तर का सम्राट वरुण और दक्षिणी भाग (भारतवर्ष) का सम्राट इन्द्र था।[५] इतिहासपुराणों और पारसी धर्मग्रन्थ जेन्दावेस्ता से भी उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है कि पाताल या समुद्र का अधिपति वरुण था—अपा तु वरुण राज्ये' (हरि० १।४।३), अदितिपुत्र आदित्यो या देवों में प्रथम या ज्येष्ठ था, इसीलिए पारसी इसको असुरमहत् (अहुरमज्दा) कहते थे, वह पश्चिमीदेशो—ईरान (पातालादि) का प्रथम शासक था, यूरोप, अफ्रीका और अरब देशो तक इसका साम्राज्य फैला

१. संग्रामः पंचमश्चैव सुघोरस्तारकामयः। (वायुपुराण)
२. महर्षयः सप्तपूर्वे चत्वारो मनवस्तथा (गीता १०।६),
३ मु० (१।१।१),
४. The next act. of the Diety was to make a division (ordial), This operation divided the waters into Two parts as well as into two States (Genesis I).
५. भारतीय संस्कृति और वैदिकविज्ञान

हुआ। वरुण के पौत्र मयासुर या विश्वकर्मा ने अमेरिका में मयराज्य की स्थापना की। वर्तमान अरब ही वरुण की प्रजा – प्राचीन गन्धर्व थे। आज भी अरब अपना पूर्वज यादसांपति या दाज या ताज को मानते हैं। अथर्ववेद या छन्दोवेद (जेन्दावेस्ता) का प्रवर्तक भी वरुण था। वरुण और उनके पुत्र भृगु दैत्यराज हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के पुरोहित थे। वरुण राज्यशासन के साथ-साथ महान् पौरोहित्यकर्म भी करते थे, इनकी राजधानी सूषानगरी के अवशेष ईरान मे मिले हैं। वरुण ने यम से पूर्व पातालदेशो मे दीर्घकाल तक राज्य किया था।

विष्णु—आदित्यो मे विष्णु ये कनिष्ठ, परन्तु ये परमतेजस्वी। इनकी आयु परमदीर्घ प्रतीत होती है। विष्णु के साथ ही इनके वैमातृज भ्राता कश्यपात्मज वैनतेय गरुड भी दीर्घजीवी थे। पुराणो मे गरुड़ का अस्तित्व पाण्डवो और श्रीकृष्णपर्यन्त प्रदर्शित किया गया है, परन्तु यह प्रमाणित तथ्य नही है।

मय विश्वकर्मा—शुक्र का पौत्र और त्वष्टा का पुत्र मयासुर दीर्घजीवी था। परन्तु देवासुरयुगीन मय और पाण्डवकालीन मय एक नही हो सकते, जैसा कि पं० भगवद्दत्त उन्हें एक मानते थे।[1] मय एक जातिगत या वशगत नाम था, एक मय दाशरथि के समकालीन रावण का श्वसुर था, जो दशरथकालीन देवासुर संग्राम मे मारा गया।[2] रामायणकालीन मय की पत्नी हेमा और पुत्री मंदोदरी थी, यह प्रसिद्ध ही है। अत: मय अनेक थे, परन्तु आदिम मय दीर्घजीवी अवश्य था, जिसने मिस्र, अमेरिका आदि मे भवन (पिरामिड आदि) बनाये। यह विवस्वान् का शिष्य और श्वसुर था।

अगस्त्य—ऋग्वेद (१।१७०।१) मे अगस्त्य और इन्द्र का सवाद है—अगस्त्य इद्राय हविनिरूप्य मरूद्भ्यः संप्रदित्साचकार स इन्द्र एत्य परिदेवयाचक्रे।[3] अगस्त्य ने नहुष को शाप दिया था। अगस्त्य मित्रावरुण का पुत्र था। इसको दाशरथिरामपर्यन्त जीवित बताया गया है। परन्तु यह भी गोत्र नाम था, तथापि देवयुगीन अगस्त्य दीर्घजीवी पुरुष होगा।

अश्विनीकुमार—ये विवस्वान् के पुत्र देवभिषक् और अन्तरिक्षचारी देव थे, इन्होने च्यवनभार्गव को चिरयौवन दिया, ये सुदीर्घकालपर्यन्त जीवित रहे।

---

१. भ० भा० बृ० इ० भाग १ (पृ० १४६),

२. रामायण (३।५१),

३. निरुक्त (१।३।५),

दीर्घजीवी सप्तर्षि—वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, जमदग्नि, कश्यप और भरद्वाज वैवस्वतमन्वन्तर के सप्तर्षि माने गये हैं, इनमे कश्यप साक्षात् न होकर उनका पुत्र वत्सर,[1] सप्तर्षियों के अन्तर्गत था न कि स्वयं देवासुरपिता प्रजापति कश्यप, अत कश्यप के स्थान पर 'काश्यप' पाठ होना चाहिये।

दत्तात्रेय—हैहय अर्जुन को वर देने वाले अत्रिवंशीय दत्तात्रेय विष्णु के चतुर्थ अवतार माने जाते थे, ये दशम त्रेतायुग[2] (परिवर्त) मे हुए, हैहय अर्जुन का विनाश उन्नीसवें त्रेता में हुआ, अतः दत्तात्रेय भी दीर्घतमा मामतेय के तुल्य दशयुगपर्यन्त (मानषयुग नही, दिव्य दशयुग) अर्थात् ३६०० वर्ष जीवित रहे।

हनुमदादि—पुराणों मे हनुमान्, विभीषण, कृप, अश्वत्थामा आदि को चिरंजीवी कहा गया है, निश्चय ही हनुमदादि पुरुष दीर्घकाल तक जीवित रहे। महाभारत वनपर्व मे हिमालयपर्वत पर भीमसेन की पवनात्मज हनुमान् से भट हुई, अतः हनुमान् द्वापरान्तपर्यन्त अवश्य विद्यमान थे अर्थात् २५०० वर्ष जीवित रहे। अन्य विभीषणादि की आयु का हमे ज्ञान नही है।

परशुराम—जामदग्न्य परशुराम का जन्म हरिश्चन्द्रकालीन विश्वामित्र से एक दो पीढी पश्चात् हुआ सभवत अष्टादश परिवर्तयुग मे अर्थात् ७५०० वि० पू० और उन्नीसवें युग (७२०० वि०पू०) मे इन्होने हैहयअर्जुन का वध किया। दाशरथि राम (द्वापरादि) एव पाण्डवो के समय तक परशुराम का अस्तित्व ज्ञात होता है, अतः परशुराम न्यूनतम चार हजार वर्ष तक जीवित रहे, जो परमाश्चर्यजनक घटना प्रतीत होती है। परशुराम एक ही थे, अनेक की कल्पना व्यर्थ है।

दीर्घजीवी व्यासगण

इनमे से निम्न सात व्यासो का किंचित् इतिहास ज्ञात है, जिससे प्रतीत होता है कि वे अतिदीर्घजीवी थे—(१) उशना, (२) बृहस्पति, (३) विवस्वान्, (४) वैवस्वतयम, (५) इन्द्र, (६) वसिष्ठ और (७) अपान्तरतमा।

उशना—देवासुराचार्य शुक्राचार्य आयु मे देवगुरु बृहस्पति से बड़े थे - इनका जन्म हिरण्यकशिपु के समय मे ही हो गया था और बलि और बाण के समय सप्तम युग तक जीवित रहे, अतः इनकी आयु ७ युग (दिव्ययुग) अर्थात्

---

१. वत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।
वत्सारान्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशाः॥ (वायुपुराण),

२. त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह। (वही)

२५०० न्यूनतम अवश्य थी। ये तृतीय व्यास थे। ये भृगुवंशीय ब्राह्मणों के शासक बनाये गये—

भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्।[1]

बृहस्पति—देवगुरु[2] आङ्गिरस का जन्म प्रजःपतियुग के अन्त और देवयुग के प्रारम्भ मे हो चुका था। अंगिरा के वंशजो और बृहस्पति के पूर्वजों ने आदिराजा पृथु वैन्य का अभिषेक किया था।[3] बृहस्पति की आयु उशना से किंचित् ही न्यून थी। ये भी सप्तम-अष्टम परिवर्तयुग पर्यन्त जीवित रहे, इनकी आयु दो सहस्र वर्षों से अधिक होगी, सम्भव है कि बृहस्पति की आयु वक्ष्यमाण सप्तम व्यास इन्द्र की आयु के ही तुल्य हो, जो लगभग दशयुग (३६०० वर्ष) पर्यन्त जीवित रहा।

विवस्वान्—मुख्यतः विवस्वान् की प्रजा ही आदित्य कहलाती थी। इनके वंशज भारत के प्रमुख शासक बने—(१) देवा आदित्याः। विवस्वानादित्यस्तम्येमाः प्रजा'।[4] विवस्वान् पंचमत्रेतायुग (परिवर्त) के व्यास थे, यद्यपि इनका जन्म इससे पूर्व द्वितीय युग मे हो चुका था। अतः इनकी आयु देवराज इन्द्र से कुछ ही न्यून होगी, लगभग २०० वर्ष कम। इनके प्रमुख पुत्र—यम, मनु और अश्विनीकुमार थे, जो सभी परमदीर्घजीवी और देवपुरुष एव प्रजापति हुए।

अवेस्ता मे जहाँ वैवस्वत यम का राज्यकाल १२०० वर्ष लिखा है, उधर बाइबिल मे वैवस्वतमनु नूह (Nooh) की आयु आदि का विवरण द्रष्टव्य है—

(१) मनु की आयु जब ५०० वर्ष की थी, तब उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए—"And Nooh was five hundred years old and Nooh begot Sham Ham and Jopheth".

बाइबिल का वर्णन पुराण से सर्वथा भिन्न हैं, जहाँ मनु के इलासहित दशपुत्र (इक्ष्वाकु इत्यादि) कथित हैं। प्रतीत होता है कि भ्रान्ति से अत्रिपुत्र सोम का बाइबिल मे मनुपुत्र साम (Sham) के नाम से उल्लेख है। हाम—

१, वायु (७०।४),

२. बृहस्पतिर्देवाना पुरोहित आसीद्, उशना काव्योऽसुराणाम्।
(जै० ब्रा० १।१२५)

३. सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरंगिरससुतैः। (वायु ६२।१३६);

४. श० ब्रा० (३।१।३।५),

हेम हो सकता है अनुवंशज और तथाकथित तृतीय पुत्र—जोफेट (Jopheth) 'ययाति हो सकता है।

(२) पुत्र उत्पत्ति के सौ वर्ष पश्चात् 'जलप्रलय' आई तब मनु की आयु ६०० वर्ष थी—'And Nooh was six hundred years old when the Flood of waters was upon the earth (Holy Bible, p. 10).

(३) वैवस्वतमनु (नूह) की आयु और प्रलय का समय - जलप्रलय की अवधि के सम्बन्ध मे बाइबिल का वृत्त सत्य प्रतीत होता है, जो वर्तमान पुराणो मे अनुपलब्ध है—"In the six hundredth years of Nooh's life the second month, the Seventh day of the month, the sameday they were all mountains of great deep broken up.

(Bible p. 11)

(4) And the waters prevailed upon the earth one hundred and fifty days. (p. 11)

(४) आयु—मनु की पूर्ण आयु ६५० वर्ष थी—"And all the days of Nooh were nine hundred and fifty years. And he died (p. 13) इस प्रकार प्रतीत होता है वैवस्वत मनु का जन्म सम्भवत तृतीययुग (१३००० वि० पू०) मे हुआ और वह षष्ठयुग पर्यन्त लगभग एक सहस्रवर्ष (१२००० वि० पू०) जीवित रहे।

वैवस्वतयम—यम का पितृव्य (चाचा) इन्द्र आयु मे उनसे छोटा था, यम षष्ठ युग के व्याम थे और इन्द्र सप्तम युग के व्यास हुए, अतः यम इन्द्र से न्यूनतम ३६० वर्ष बडा था। वैवस्वतयम की दीर्घआयु के सम्बन्ध मे पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता का निम्न उद्धरण प्रकाश डालता है—"जरथुस्त्र ने अहुरमज्द से पूछा, 'मेरे पहिले आपने किसको धर्म का उपदेश दिया। अहुरमज्द (वरुण) ने उत्तर दिया—"मैंने विवनघन्त के लडके यम को धर्मोपदेश दिया। तब मैंने उसको पृथ्वी का राजा बनाया'''। इस प्रकार यम को राज्य करते हुए ३०० वर्ष व्यतीत हो गये। इतने दिनों मे मनुष्यो और पशुओ की सख्या इतनी बढ गई कि वहाँ जगह की कमी पड़ी। तब यिम ने पृथ्वी का आकार पहिले से एक तिहाई बढा दिया। इस प्रकार ३००-३०० वर्ष उसने चार बार राज्य किया। इस बारह सौ वर्षों मे पृथ्वी का आकार तो पहिले से दूना हो गया।" (फर्गद २) इस काल के पश्चात् पृथ्वी पर हिमप्रलय आई, अतः सिद्ध होता है कि यम, प्रलय से पूर्व ही १२०० वर्ष राज्य कर चुका था। प्रलय के मध्य में 'हर चालीसवें साल एक मिथुन सन्तान उत्पन्न होती थी' अतः प्रलय भी दीर्घ-

कालीन थी, प्रलय के पश्चात् भी यम बहुत दिनों तक जीवित रहा। अतः उसकी आयु २००० वर्ष से अधिक ही थी।

इन्द्र—यह वेदो का उद्धर्ता सप्तम व्यास था, अतः इसका जन्म सप्तमयुग मे (१२००० वि० पू०) हुआ। इसने १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन किया[1] और आयुर्वेद के प्रवर्तक भरद्वाज को ४०० वर्ष की आयु[2] प्रदान की इससे समझा जा सकता कि स्वयं इन्द्र की कितनी दीर्घायु हो सकती है, प्रतर्दन, मान्धाता और हरिश्चन्द्रपर्यन्त इन्द्र का अस्तित्व ज्ञात होता है। प्रतर्दन ययाति द्वितीय का दौहित्र और माधवी-दिवोदास का पुत्र था, इसतथ्य को जानते हुए भी पं० भगवद्दत्त[3] और सूरमचन्द[4] प्रतर्दन को दाशरथि राम के समकालीन मानते हैं, प्रतर्दन, राम से न्यूनतम ३००० वर्ष पूर्व हुआ। प० भगवद्दत्त की यह कल्पना (धारणा) रामायण के भ्रामकपाठ के आधार पर है।[5] इन्द्रसमकालीन (देवयुगीन) प्रतर्दन रामसमकालिक कैसा हो सकता है, यह पण्डितद्वयी ने बिलकुल नही सोचा। मान्धाता, पन्द्रहवें युग में हुआ, राजा हरिश्चन्द्र[6] और दो युग पश्चाद् अर्थात् सत्रहवे युग मे हुए, अतः सप्तम से अष्टादशयुग तक जीवित रहने वाले इन्द्र की आयु दशयुग (३६०० वर्ष) से अधिक थी।

वसिष्ठ—अष्टमव्यास—पुराणो मे वैवस्वतमनु से बृहद्‌बल (महाभारतयुग) पर्यन्त जिस मैत्रावरुणि वसिष्ठ का वर्णन किया है, वह एक ही प्रतीत होता है परन्तु यह सत्य नही, वसिष्ठ या वासिष्ठ अनेक हुये हैं, वह गोत्रनाम था, फिर भी आद्य मैत्रावरुणि वशिष्ठ दीर्घजीवी थे।

अपान्तरतमा—सारस्वत, वाच्यायन, प्राचीनगर्भ अपान्तरतमा नाम के नवम व्यास ने अपने पितृव्यआदि आङ्गिरस ऋषियो को वार्तघ्नदेवासुरसंग्राम के पश्चात् वेद पढ़ाया था, वही कलियुग मे पाराशर्य व्यास हुए, ऐसा महाभारत

---

१. छा० उ० (८।७);

२. इन्द्र उपव्रज्योवाच—भरद्वाज। यत्ते चतुर्थमायुर्दद्याम् किमनेन कुर्या इति। (तै० ब्रा० ३।१०।११।४५)

३. भा० व्र० इ० भाग १

४. आयुर्वेद का इति०

५. रामायण, उत्तरकाण्ड

६. हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को स्थविर इन्द्र ने अरण्य में आकर उपदेश दिया—

'सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रःरूपेण पर्येत्योवाच। (ऐ० ब्रा० ८।१८)

का मत है; इनके एक शिष्य पराशर थे, इससे सिद्ध होता है कि ये ऐक्ष्वाक राजा कल्माषपाद पर्यन्त जीवित रहे।

मार्कण्डेय—मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय घोरशिरा अत्यन्त दीर्घजीवी ऋषि थे, इन्होंने जलप्रलय का दृश्य देखा था और इससे पूर्व देवासुरों के दर्शन किये तथा द्वापरान्त में इन्होंने युधिष्ठिर पाण्डव को मार्कण्डेयपुराण सुनाया। दशम-युग में मार्कण्डेय दत्तात्रेय के सहयोगी थे—

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सरः॥ (वायु०)
बहुसवत्सरजीवी च मार्कण्डेयो महातपाः।
दीर्घायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं तथा॥ (वनपर्व १८१)[1]

लोमश—यह भी उपर्युक्त मार्कण्डेय के समान बहुसंवत्सरजीवी थे जो देवासुरयुग से पाण्डवकालतक जीवित रहे।

दीर्घतमा मामतेय = गौतम—इनकी आयु एक सहस्र वर्ष थी, जैसा कि ऋग्वेद (१।१५८।६) और शांखायन आरण्यक (२।१७) से प्रमाणित होता है कि वे दश मानुषयुग (= १००० वर्ष) जीवित रहे।[2]

भरद्वाज और दुर्वासासम्बन्धी भ्रान्ति—पं० भगवद्दत्त इन दोनों को देवासुर युग से महाभारतकालतक जीवित मानते हैं जो एक महती भ्रान्ति है। इन्द्र ने जब भरद्वाज को बड़ी कठिनाई से और उपकार करके ४०० वर्ष की आयु दी, तब वह भरद्वाज प्रतर्दन से युधिष्ठिरपर्यन्त ५००० वर्ष कैसे जीवित रह सकता है। निश्चय भरद्वाज एक गोत्रनाम था, द्रोण आदिम भरद्वाज का नहीं, किसी भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण का पुत्र था। इसी प्रकार दत्तात्रेय के भ्राता दुर्वासा को कुन्ती के साथ व्यभिचार करने वाला दुर्वासा नहीं माना जा सकता, इन दोनों में भी ५००० वर्ष का अन्तर था। ५००० की आयु में भरद्वाज या दुर्वासा का स्त्री या सन्तान की इच्छा करना बुद्धिगम्य नहीं है वस्तुतः यह पं० भगवद्दत्त को बिना सोचे-समझे भ्रान्ति हुई है।[3] भरद्वाज और दुर्वासा अनेक थे।

मुचुकुन्दसम्बन्धी पौराणिक भ्रान्ति—प्रायः अनेक पुराणों में मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्दसम्बन्धी भ्रान्ति मिलती है कि कालयवन को गिरिगुहा में भस्म

---

१. द्रष्टव्य वनपर्व (६२।५);
२. दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव (शां० आर० २।१७).
३. भा० बृ० इ० भा० (पृ० १४८),

करने वाला, श्रीकृष्ण को दर्शन देनेवाला, वही देवासुरयुगीन मुचुकुन्द था। वस्तुतः यह भ्रान्ति नामसाम्य के कारण हुई है। हरिवंशपुराण में इस भ्रान्तिजनक प्रसंग[1] का उल्लेख है और इसी पुराण से इस भ्रान्ति का निराकरण भी होता है। तथाकथित मुचुकुन्द वासुदेव श्रीकृष्ण का पूर्वज यदुवंशी मुचुकुन्द था यह यदु ऐक्ष्वाक राजा हर्यश्व का पुत्र था—'मधुमत्यां सुतो जज्ञे यदुर्नाम महायशाः।'[2]

मधु यादव था, दैत्य नही—भ्रम से पुराणों मे इसे दानवेन्द्र लिखा है, जो नामसाम्यकृतभ्रान्ति है। उसकी पुत्री मधुमती और ऐक्ष्वाक हर्यश्वपुत्र यदु के पाँच पुत्र हुये—

मुचुकुन्द महाबाहु पद्मवर्णं तथैवच।
माधवं सारसं चैव हरितं चैव पार्थिवम्॥[3]

माधव का पुत्र सत्वत और उसका पुत्र भीम था जो राम दाशरथि के समकालीन था[4] माधववंश मे ही लवण हुआ।

उपर्युक्त माधवभ्राता मुचुकुन्द ही श्रीकृष्ण को दर्शन देने वाला मुचुकुन्द था, जिनकी आयु द्वापरकालतुल्य = २००० वर्ष थी, वह मान्धातृपुत्र मुचुकुन्द नही। निसंदेह मुचुकुन्द दीर्घजीवी था, परन्तु उतना नही, जितना पौराणिक-भ्रान्ति से प्रतीत होता है।

महाभारतकालीन दीर्घजीवीपुरुष

महाभारतकाल मे अनेक पुरुष दीर्घजीवी हुए जिनकी आयु सौ से अधिक वर्ष या तीनसौवर्षपर्यन्त अवश्य थी, अतः उनकी आयु का यहाँ संक्षेप मे निर्देश करेंगे।

पंचशिख पाराशर्य—यह पराशरगोत्रीय सुप्रसिद्ध साङ्ख्याचार्य दार्शनिक थे, जिनका धर्मध्वज (अपरनाम जनदेव) से वार्तालाप हुआ था। पाणिनिसूत्रोल्लिखत भिक्षुसूत्रों के रचयिता भी सम्भवतः ये ही थे। इनको महाभारत (१२।२२०।११०) मे चिरजीवी (दीर्घजीवी) और वर्षसहस्रयाजी कहा गया है—

---

१ हरि० (२।५७)
२. हरि० (२।३७।४४);
३. हरि० (२।३८।२)
४. हरि० (२।३८।३६)

आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम् ।
पञ्चस्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसहस्रिकम् ॥[1]

भिक्षु पंचशिख, सम्भवतः पाण्डवों के समय तक जीवित थे ।

पाराशर्य व्यास—उपर्युक्त प्रसंग से सिद्ध होता है कि पाराशय व्यास शक्तिपुत्र पाराशर के साक्षातपुत्र नही तद्‌गोत्रीय पुरुष थे, तभी तो उनके पूर्ववर्ती भिक्षु पंचशिख को पाराशर्य कहा गया है । यदि शक्तिपुत्र पराशर को ही व्यास का पिता माना जाय तो सौदास कल्माषपाद ऐक्ष्वाक से शन्तनुपर्यन्त लगभग ३००० वर्ष होते हैं, इतनी दीर्घआयु मे पराशर द्वारा मत्स्यगन्धा से संग करना और पुत्र उत्पन्न करना बुद्धिगम्य नही, अन्यथा भी सिद्ध है कि व्यास से पूर्व अनेक पाराशर ब्राह्मण हो चुके थे यथा पंचशिख पाराशर्य और व्यास के गुरु जातूकर्ण्य पाराशर्य, इसमे समझा जा सकता है व्यास के पिता आदिपराशर नही, उत्तरकालीन तद्‌गोत्रीय पाराशर या पाराशर्य कोई अन्य ऋषि थे ।

पाराशर्य व्यास की आयु एक युग (= ३६० वर्ष) के तुल्य अवश्य थी, क्योकि भीष्म के तुल्यवया व्यासजी परीक्षित् जनमेजय के पश्चात् सम्भवतः अधिसीमकृष्णपर्यन्त जीवित रहे, अतः उनकी आयु ३०० वर्ष से अधिक ही थी । प्रतीप से परीक्षित् तक ३०० वर्ष का समय व्यतीत हुआ । व्यासजी पारीक्षित् जनमेजय कालोपरान्त भी जीवित रहे ।

उग्रसेन और वसुदेव और वासुदेव कृष्ण—इतिहासपुराणो मे श्रीकृष्ण की आयु १२५ या १३५ वर्ष कथित है, श्रीकृष्ण की मृत्यु के समय उनके पिता वसुदेव और मातामह राजा उग्रसेन जीवित थे, अतः उन दोनों (वसुदेव और उग्रसेन) की आयु २०० वर्ष के लगभग थी ।

पाण्डवों की आयु—पं० भगवद्दत्त ने लिखा है "महाभारत के एक कोश (हस्तलिखितप्रति) के अनुसार युधिष्ठिर का आयु १०८ कहा गया है ।"[2] सभी पाण्डवो मे एक-एक वर्ष का अन्तर था अतः भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव क्रमशः १०७, १०६, १०५, १०४ वर्ष मे दिवंगत हुए । श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से १७ या १८ वर्ष बड़े थे, भारतयुद्ध के समय इनकी आयु इस प्रकार थी—

---

१. मैथिलो जनको नाम धर्मध्वज इति श्रुतः (महाभा० १२।३२५।४) तथा द्र० (विष्णु० ६।६) एवं महा० (१२।२२०),

२. वै० वा० इ० भाग १, पृ० २६२,

श्रीकृष्ण	=	९० वर्ष +	३६ वर्ष	= १२६ वर्ष में देहान्त	
युधिष्ठिर	=	७२ "	"	= १०८	"
भीम	=	७१ "	"	= १०७	"
अर्जुन	=	७० "	"	= १०६	"
नकुल	=	६९ "	"	= १०५	"
सहदेव	=	६८ "	"	= १०४	"

द्रोणाचार्य की आयु—महाभारत मे स्पष्टतः उल्लिखित है कि उनकी आयु ८५ वर्ष थी।[1] पं० भगवद्दत्त 'अशीतिपंचक' का अर्थ ४०० वर्ष करते हैं जो अन्यथा उपपन्न नहीं होता। द्रोण द्रुपद के समवयस्क और सतीर्थ्य थे, उनका कनिष्ठ पुत्र धृष्टद्युम्न द्रौपदी से बहुत छोटा था, अतः द्रुपद की आयु युद्ध के समय १०० से ऊपर नही हो सकती, पुनः कृपाचार्य और द्रोणपत्नी कृपी का पालन शन्तनु ने ही किया था, जो दोनो ही भीष्म से कम आयु के थे, भीष्म की आयु डेढ़ सौ वर्ष से अधिक नहीं थी, तब द्रोण की आयु ४०० वर्ष कैसे हो सकती है, अतः 'वयसा अशीतिपंचकः' का अर्थ ८५ वर्ष ही उपयुक्त एवं उपपन्न होता है। द्रोणाचार्य अपने शिष्यों—पाण्डवादि से पन्द्रह-सोलह वर्ष अधिक बड़े थे, जो एक गुरु के उपयुक्त आयु है, शिक्षा देते समय द्रोण की आयु पैंतीस-चालीस के मध्य में थी।

द्रोण के समान द्रुपद भी इतनी ही आयु के थे।

नागार्जुन—आन्ध्रसातवाहनयुग मे आचार्य नागार्जुन की आयु ५२९ वर्ष थी। तिब्बती आचार्य लामा तारानाथ के अनुसार वाट्टर्स ने नागार्जुन की आयु ५२९ या ५७१ वर्ष थी, वह २०० वर्ष मध्यप्रदेश मे, २०० वर्ष दक्षिण मे १२९ वर्ष श्रीपर्वत पर रहा। नागार्जुन आंध्रसातवाहन युग, ६८४ वि० पू० में जन्मा और १५५ वि० पू० कनिष्क के राज्यकाल के अन्तर्गत दिवंगत हुआ।[2]

पुरातन राजाओं का दीर्घराज्यकाल

अवेस्ता के आधार पर ऊपर लिखा जा चुका है कि वैवस्वत मनु ने जल-प्रलय से पूर्व १२०० वर्षराज्य किया, बाइबिल के अनुसार स्वायम्भुवमनु

१. आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपंचकः।
संख्ये पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत्॥" (महाभारत, द्रोणपर्व)

२. द्र० वाट्टर्स भाग २, पृ० २०२;

(आदम)ने ९३० वर्ष राज्य किया, इन्द्र ने इससे भी अधिक वर्ष राज्य किया। बाइबिल में नूह (वैवस्वत मनु) का राज्यकाल ५०० वर्ष लिखा है, रऊ और नहुर का राज्यकाल क्रमश: २३७ वर्ष और १६० वर्ष लिखा है, इनमें रऊ पुरूरवा और नहुर नहुष प्रतीत होता है। अतः पुरूरवा का राज्यकाल २३७ वर्ष और नहुष का राज्यकाल १६० वर्ष था।

पुराणो मे कुछ राजाओ का राज्यकाल सहस्रोवर्ष बताया गया है, इस सम्बन्ध मे हम पूर्व विवेचन कर चुके है कि पुराणों मे दिव्यवर्ष के घटाटोप में दिनों को वर्ष बना दिया अथवा सामान्यवर्षों को दिव्यवर्ष समझकर उसमें ३६० का गुणा कर दिया, फल एक ही है, किसी प्रकार समझ लिया जाय। अत प्रसिद्ध कुछ राजाओं का राज्यकाल इस प्रकार था—

अलर्क—षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
नालर्कादपरोराजा मेदिनी बुभुजे युवा ॥ (भागवत ९।१८।७)

हैहय अर्जुन—पञ्चाशीति महस्राणि वर्षाणा नै नराधिप ॥
(हरि० ७।३३।२३)

दाशरथि राम—दश वर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोक प्रयाग्यति ॥ (रामा० १।९९)

भरत दौष्यन्ति—समास्त्रिणवसास्त्रीदिक्षु चक्रमवर्तयत् (भाग० ९।२०।३२) अन्य राजाओ का राज्यकाल पुराणो मे इस प्रकार उल्लिखित है—

इक्ष्वाकु - ३६०००वर्ष, सगर - ३००००वर्ष

तदनुसार उपर्युक्त राजाओ का राज्य काल इस प्रकार था—

(१) अलर्क	६६००० वर्ष	(दिन)	=	१८५ वर्ष
(२) अर्जुन (हैहय)	८५००० ,,	,,	=	२३६ वर्ष
(३) दाशरथि राम	११००० ,,	,,	=	३१ वर्ष
(४) भरत दौष्यन्ति	२७००० ,,	,,	=	५७ वर्ष
(५) इक्ष्वाकु	३३००० ,,	,,	=	१०० वर्ष
(६) सगर	३०००० ,,	,,	=	८३ वर्ष

मान्धाता जातक (म० २५८) मे चक्रवर्ती मान्धाता का जीवनकाल इस प्रकार लिखा है—

बालक्रीडा	=	८४ वर्ष	(सहस्रवर्ष)	निरर्थकमहस्रपद	
यौवराज्य	=	८४ वर्ष	(,)	,,	,,
राज्यकाल	=	८४ वर्ष	( )	,,	,,
कुल	=	२५२ वर्ष			

भारतोत्तरकाल मे अनेक राजाओं का दीर्घराज्यकाल इस प्रकार था, यथा—

प्रद्योत पालक	=	६० वर्ष
सोमाधि बार्हद्रथ	=	५८ वर्ष
श्रुतश्रवा	=	६४ वर्ष
सुक्षत्र	=	५६ वर्ष
महापद्मनन्द	=	१०० वर्ष
बृहद्रथ मौर्य	=	७० वर्ष
समुद्रगुप्त	=	५१ या ४१ वर्ष

शूद्रक विक्रम—शूदक (क्षुद्रक) (विक्रम मृच्छकटिक का लेखक) विक्रम सवत्प्रवर्तक ने सौ वर्ष १० दिन की आयु प्राप्त की थी और दीर्घकाल (लगभग ८० वर्ष) राज्य किया था—

लब्ध्वा चायु, शताब्द दशदिनसहित शूद्रकोऽग्नि प्रविष्ट· ।।

अत. इतिहास मे औसत राज्यकाल निकालना या अटकलपच्चू से औसत राज्यकाल १८ वर्ष कह देना, इतिहास नही कहानी से भी निकृष्टतर व्यर्थ — अर्थहीनकल्पनामात्र है ।

पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम

(पूर्वभागात्मक)

१

पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम

आदिवंशों का कालक्रम

आदिकाल के आदिवंशो का प्राचीनतमपुराणो मे सक्षिप्त विवरण मिलता है। वर्तमान पुराणो मे यह विवरण इतना जटिल, संश्लिष्ट एवं संकीर्ण (मिश्रित) है कि उसके विश्लेषित, प्रत्यक्ष एवं निर्भ्रान्त परिणाम निकालना एक अत्यन्त जटिल या दुष्कर कार्य है। फिर भी हम अपनी बुद्धि, अध्यवसाय एवं योग्यतानुमार आदिकाल (प्रजापतियुग) के आदिवशो का स्पष्टतः विवरण प्रस्तुत करने एव उनका कालक्रम निश्चित करने का प्रयत्न करेगे।

चौदह मनुओं का क्रम और कालक्रम :—यह पहिले ही संकेत कर चुके है कि वर्तमान पुराणो मे यह पाठ पूर्णतः भ्रामक है कि स्वायम्भुव मनु से वैवस्वत मनुपर्यन्त सप्त मनु भूतकालीन है और सार्वणादि सप्त मनु भविष्य मे होगे। वर्तमानकाल मे पुराणपाठो में इस प्रकार की अनेक बाते जुड गई, जिनमें यह सर्वप्रथम और सर्वाधिक भ्रष्ट और भ्रामक है, अतः अनेक इतिहासकार इन सार्वणादि मनुओं को भविष्यकालिक समझकर उनका इतिहास मे उल्लेख करना ही छोड देते है[२]।

---

१ पुराणेहि कथा दिव्या आदिवशाश्च धीमताम् कथ्यन्ते ये पुरास्माभिः। (महा० १।५।२)

२. इन सब मे सावर्णि वाले मन्वन्तर भविष्य से सम्बन्ध रखते हैं—

चौदह मनुओं में प्रारम्भिक चार (स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत मनु) प्रियव्रत के वशज ही थे, अतः इनका क्रमपुराणो मे उचितरूप से संनिविष्ट है—

स्वारोचिषश्चोत्तमोपि तामसो रैवतस्तथा ।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवः स्मृताः ॥[1]

स्वायम्भुव मनु के अनन्तर उसके वशज प्रियव्रत के वंश मे चार मनु-स्वारोचिष, उत्तम (या औत्तम) तामस और रैवत हुये और षष्ठ चाक्षुष मनु उत्तानपाद के पुत्र प्रसिद्ध लोकाधिपति ध्रुव के वश मे हुये जो आदिराज पृथु वैन्य के पूर्वज थे और इन्ही के वंश मे ही दक्षादि हुये । सप्तम प्रसिद्ध सावर्ण मनु विवस्वान् के पुत्र थे और पाच सावर्ण मनुओ मे से एक थे, चार सावर्ण मनु वैवस्वत मनु के प्राय: समकालीन थे अतः उपर्युक्त सभी मनु भूतकाली-पुरुष थे, अत: इनका कालक्रम इस प्रकार था .—

१. स्वायम्भुव मनु
२. स्वारोचिष मनु
३ उत्तम मनु
४ तामस मनु
५. रैवत मनु
६. रौच्य मनु
७. भौत्य मनु
८. चाक्षुष मनु
९ दक्ष या मेरुसावर्णि मनु
१०. ब्रह्मसावर्णि (कश्यप) मनु
११. धर्मसावर्णि मनु
१२. रुद्र (रौद्र) सावर्णि मनु
१३. वैवस्वत मनु
१४. सावर्ण मनु

रुचि प्रजापति पुलह के वशज और कर्दम के पिता थे, जो चाक्षुषमनु से अनेक पीढ़ी पूर्व हुये, इसी प्रकार भूति के पुत्र भौत्य मनु चाक्षुषमनु के पूर्व-

---

अतः इनका कथन अनावश्यक है...............बुद्ध पूर्व का भारतीय इतिहास, पृ० ७२

१. ब्रह्माण्ड० (१२।३६।६५)

वर्ती थे। चारो सावर्णि मनु भी वैवस्वत मनु से पूर्ववर्ती थे अतः सभी तेरह मनु वैवस्वत मनु के पूर्ववर्ती थे और सर्वान्तिम मनु विवस्वान् के पुत्र ही थे शेष समस्त मनु उनसे प्राचीन थे, इनका समय क्रमशः निर्णय करेंगे।

आदिम प्रजापतिगणः—प्राचीन पुराणों (वायु और ब्रह्माण्ड) में प्राचीनतम द्वादश प्रजापतियों के नाम हैं—भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, पुलस्त्य पुलह क्रतु, दक्ष, अत्रि, और वसिष्ठ (नव ब्रह्मा), रुचि, धर्म और नीललोहित (रुद्र) और त्रयोदश प्रजापति हुये स्वायम्भुव मनु। ये सभी त्रयोदश प्रजापति ब्रह्मा या स्वयम्भू के मानससुत (पुत्र) कहे गये हैं। कही पुराणों मे सात, कही आठ, कहीं नौ, कही दश और कही बारह और कही तेरह ब्रह्मा के मानसपुत्रो का कथन है। इनमें से अनेक किसी विशिष्ट प्रजापति के पुत्र कहे गये हैं, यथा रुचि को पुलह का पुत्र बताया गया है, धर्म को रुचि का पुत्र कहा गया है इसी प्रकार कर्दमादि के सम्बन्ध मे विभिन्न कथन है। प्रतीत होता है कि जब किसी प्रजापति के पिता का नाम विस्मृत हो जाता था तब उसको ब्रह्मा का पुत्र बना दिया जाता था, यथा इक्ष्वाकु या पुरूरवा के अनेक वंशजों को ब्रह्मपुत्र बना दिया गया, यथा रामायण मे आयु के वशज (बलाकाश्व के वशज) राजा कुश को ब्रह्मपुत्र कहा गया है।[1] इतिहासपुराणों मे और भी इस प्रकार के बहुत उदाहरण दिये जा सकते हैं।

स्वायम्भुव मनु के प्रसिद्ध दो पुत्र—प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा दो कन्याये थी—आकूति तथा प्रसूति-प्रमूति आदिम दक्ष की पत्नी बनी और आकूति प्रजापति रुचि की पत्नी हुई। रुचि के पुत्र दक्षिणा और यज्ञ मिथुन सन्तति उत्पन्न हुये। यज्ञ द्वारा दक्षिणा मे याम नाम के द्वादश पुत्र उत्पन्न हुये। यहा पर पुराणपाठ कुछ भ्रामक हुआ है। यज्ञ के स्थान पर "यम" पाठ होना चाहिये, क्योकि यम की पत्नी का नाम दक्षिणा था, अत: उसके पति को "यज्ञ" बना दिया[2] इस प्रकार के अनेक भ्रम पुराणों बहुधा मिलते है।

दक्ष द्वारा प्रसूति से २४ पुत्रिया उत्पन्न हुई, इनमें धर्मसज्ञक प्रजापति का त्रयोदश कन्याओ के साथ विवाह हुआ, इनके तेरह कन्याओ के नाम थे—

---

१. ब्रह्मयोनिर्महानासीत् कुशो नाम महातपाः (रामा० १३२।१)

२. यमस्य पुत्रयज्ञस्य तस्माद्यामास्तु ते स्मृताः। (ब्रह्माण्ड० १।२।६।४५)

श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वसु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति[1] । शेष एकादशपुत्रियों का विवाह निम्न महर्षियो के साथ हुआ ।

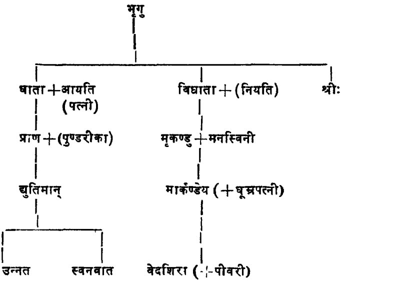
सती	+	भव
ख्याति	+	भृगु
संभूति	+	मरीचि
स्मृति	+	अङ्गिरा
प्रीति	+	पुलस्त्य
क्षमा	+	पुलह
संतति	+	क्रतु
अनसूया	+	अत्रि
ऊर्जा	+	वसिष्ठ
स्वाहा	+	अग्नि
स्वधा	+	पितृ

इनमे से स्वधा और स्वाहा और उनके पति अग्नि और पितृ ऐतिहासिक व्यक्ति प्रतीत नही होते । परन्तु है ये ऐतिहासिक भले पुराणपाठ मे कुछ व्यभिचार किया गया हो । जिस प्रकार कीर्ति आदि गुण प्रतीत होते है, उसी प्रकार श्रद्धा आदि के पुत्र काम, दर्प, नियम, सतोष आदि मानसिक भाव प्रतीत होते है, इसमे कोई सन्देह नही पुराणपाठो मे कुछ न कुछ कल्पना से काम लिया है और ऐतिहासिक नामो को काल्पनिक भावादि से समिश्रण कर दिया है । यह सब होते हुये भी अधिकांश ऐतिहासिक नामो को पहिचाना जा सकता है यथा महर्षियो कीपत्नियो अनुसूया आदि मानसिक भावमात्र नही, स्त्रिया ही थी । इसी प्रकार दक्षिणादि भी स्त्रिया थी, क्योकि दक्षिणादि के पुत्र यामादि देवगण थे ।

भृगु—आदिम भृगु की सन्तति इस प्रकार वर्णित है :—

---

१. तुलना कीजिये.—कीर्ति· श्रीर्वाक्च नारीणा स्मृतिर्मेधा, धृति. क्षमा (गीता १०।३४)

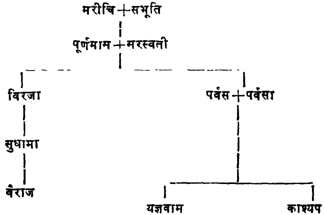


उपर्युक्त वंशावली मे भृगु की पुत्री श्री या लक्ष्मी का नाम सम्मिलित करना अयुक्त एव भ्रष्टपाठत्व है, यह लक्ष्मी चाक्षुष या वैवस्वतमन्वन्तर के भृगु द्वितीय (वारुणि) की पुत्री थी, न कि आदिम भृगु की, क्योकि जघन्यज (कनिष्ठ) आदित्य विष्णु का जन्म वैवस्वतमन्वन्तर के आदि या चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त मे हुआ था, क्योकि वरुणादि आदित्य चाक्षुषमनु से क्या, पृथु से भी बहुत उत्तरकालीन थे, प्राचेतसदक्षादि का पृथु पूर्वज था, पुनः प्राचेतसदक्ष और कश्यप का वंशज वरुण या भृगु और उनकी सन्तति स्वायम्भुवमन्वन्तर मे कैसे हो सकते है। विष्णु आयु मे बहुत छोटे थे, क्योकि वरुण, विष्णु का ज्येष्ठतम भ्राता था अत. वरुणपुत्रभृगुद्वितीय, विष्णु के भतीजे थे, जो उनके श्वसुर भी बने, अतः महर्षि भृगु विष्णु से अनेक पीढी पूर्व हुये, यद्यपि महर्षि उनके भतीजे थे। अत. देवयुग मे ज्येष्ठत्व और कनिष्ठत्व या सनाभि विवाहादि पर कोई आपत्ति या विचार नही था, इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी देवयुग या उससे पूर्व मिलते है यथा सोम, दक्ष प्राचेतस (द्वितीय) का जामाता था और श्वसुर भी।[1] इन उदाहरणो से आदिकाल मे प्रजाओ का विरलत्व एवं पुरुषो का दीर्घायुष्ट्व भी प्रमाणित होता है।

---

१ दौहित्रश्चैव सोमस्य कथ श्वसुरता गतः।
ज्येष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषा पूर्वं नासीज्जनाधिप ॥ (हरि० १।३।५३,५६)

मरीचि वश और महर्षि परमेष्ठी काश्यप—स्वायम्भुव मनु और भृगु के अनन्तर मरीचि, आदियुग के प्रधान पुरुष एव प्रजापति थे, वरन् उनके वशज (तथाकथित पुत्र) देवयुग के प्रधानतम वशकर महर्षि कश्यप थे, जिनसे समस्त देवासुर एवं पचजन[1] जातिया समुद्भूत हुई। मरीचि का वश इस प्रकार उल्लिखित है :—



प्राचीन पुराणो मे महर्षि कश्यप, प्रजापति मरीचि के साक्षात् पुत्र कहीं भी कथित नही हैं, केवल महाभारत[2] मे उन्हे मरीचि के साक्षात्पुत्र कहा है। बृहद्देवता मे उन्हे प्रजापति[3] मरीचि का पुत्र कहा है। पुत्र का अर्थ वशज भी हो सकता है। पुराणपाठो मे मरीचि के पुत्र साक्षात् कश्यप का उल्लेख दृष्टिगोचर नही होता, अत: कश्यप मरीचि के साक्षात् पुत्र नही वशज थे, क्योकि पुराणो मे स्पष्ट लिखा है कि इनमे केवल सक्षेप मे प्रधान वशकरों का उल्लेखमात्र है, पूर्ण वशवृक्षो का नही, अत: कश्यप साक्षात् मरीचि के पुत्र नही, वशज थे। स्वायम्भुव मनु से दक्ष प्राचेतस तक ४५ पीढियां कथित हैं और ये भी प्रधान पुरुष कथित हैं, हमारा अनुमान है कि स्वायम्भुव मनु से दक्षप्राचेतसपर्यन्त ४३ परिवर्तयुग हो चुके थे, अतः स्वायम्भुव

---

१. पचजन = देव, असुर, नाग, सुपर्ण और गन्धर्व।
२. मरीचे: कश्यप: पुत्र. (महा. १।६५।११), (४)
३. मारीच: कश्यपो मुनि: (बृहद्दे० ५।१४३)

मनु के समकालीन प्रजापति मरीचि के कश्यप साक्षात् पुत्र नही हो सकते जो प्राचेतस दक्ष के समकालीन, और उनके जामाता थे। ऋषियों के दीर्घायुष्टव को स्वीकार करने पर भी मरीचि और कश्यप मे न्यूनतम २३ पीढिया अवश्य व्यतीत हुई होगी, क्योकि दोनो के समय मे न्यूनतम १६००० वर्ष का अन्तर था, मरीचि का समय २६००० वि० पू० और कश्यप का समय १४००० वि० पू० था, मरीचि के प्रत्येक वशज की आयु ७०० वर्ष मानने पर भी न्यूनतम बीस पीढियो का अन्तर मरीचि से कश्यप पर्यन्त अवश्य होना चाहिए, यह अधिक हो सकता है, न्यन नही, और वर्तमान पुराणपाठों मे भी कश्यप को मरीचि का साक्षात्पुत्र कही नही कहा गया। पर्वस के दो पुत्र यज्ञवाम और काश्यप कहे गये है। यहा काश्यपपद भी विचारणीय है। कश्यप या काश्यप एक गोत्रनाम है, कश्यप के प्रत्येक वशज को कश्यप या काश्यप कहसकते है, आज भी अनेक कश्यपगोत्रीय पुरुष अपने को "कश्यप ही कहने है, अत मूल या आदिम कश्यप देवासुर पिता कश्यप से भी प्राचीनतर कोई प्राजापति मारीच कश्यप हो सकते हैं। हमारे इस मत की पुष्टि पुराणो के सप्तर्षिगण प्रकरण से होती है कि देवासुरजनक कश्यप का पूर्वज कोई अन्य कश्यप था, क्योकि निम्न मन्वन्तरो मे जो वैवस्वत मन्वन्तर से पूर्वकालीन थे, निम्न कश्यप ऋषि हुये :—

द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तर मे स्तम्ब काश्यप[1]

प्रथममेरुसावर्णि मन्वन्तर (नवम) मे वसु काश्यप[2]

दशम सावर्ण मन्वन्तर मे	नभोग काश्यप[3]
एकादश ,, ,, मे	हविष्मान् काश्यप[4]
द्वादश ,, ,, मे	तपस्वी काश्यप[5]
त्रयोदश रौच्य ,, ,, मे	निर्मोह काश्यप[6]

---

१. हरिवश (१।७।१२)
२. हरिवश (१।७।६६)
३. हरिवश (१।७।७५)
४. हरिवश (१।७।६६)
५. हरिवंश (१।७।७०)
६. हरिवश (१।७।७६)

उपर्युक्त छः काश्यप ऋषि देवासुरजनक काश्यप (कश्यप) से पूर्ववर्ती या न्यूनतम समकालीन पुरुष थे, अतः सिद्ध है कि देवासुरपिता काश्यप आदिम या मूल कश्यप नही थे, देवासुरपिता काश्यप का नाम सभवत "परमेष्ठी"[1] काश्यप प्रजापति था—हरिवशपुराण (१।३ अध्याय) मे इस कश्यप को सर्वत्र "परमेष्ठी" कहा गया है, अतः देवासुरजनक काश्यप मारीच का नाम 'परमेष्ठी' था और उनका मूल नाम काश्यप नही था, वे काश्यप ब्राह्मण ही थे ।

मारीच पूर्णमास का पुत्र विरजा एक महान् प्रजापति था इसको महाभारत (१२।५७।८८) मे नारायण का मानसपुत्र कहा गया है ।

ततः सचिन्त्य भगवान् देवो नारायणः प्रभुः ।
तैजस वै विरजस सोऽसृजन्मानस सुतम् ।।

यहा विरजा को नारायण (विष्णु) का मानसपुत्र कहना एक कल्पना मात्र है, वस्तुतः विरजा मरीचि के पौत्र और पूर्णमास के पुत्र थे । इन्ही विरजावश मे पूर्वदिशा के दिग्पाल राजा सुधन्वा हुये[2] । आगे विरजा का वशवृक्ष इस प्रकार कथित है :—

विरजा
|
कीर्तिमान्
|
कर्दम प्रजापति
|
अनग
|
अतिबल
|
वेन
|
पृथु

१. य कश्यप सुतवर परमेष्ठी त्यजीजनत् (हरिवश १।३।६)
पूर्व स हि समुत्पन्नो नारद परमेष्ठिना (हरिवश १।३।११)
ततो दक्षस्तु ता प्रादात् कन्या वै परमेष्ठिने (हरि० १।३।१४)
ततोऽभिसधि चक्रुस्ते दक्षस्तु परमेष्ठिना (हरि० १।३।१३)
२. पूर्वस्या दिशि पुत्र वैराजस्य प्रजापतेः ।
दिशापाल सुधन्वान राजानम् । (हरि० १।४।१८)

कर्दम नाम के अनेक पुरुष हुये थे, एक कर्दम रुचि के वश मे हुये, एक पुलस्त्य के वश मे और एक पुलह के वश—

(१) कर्दमस्य तु पत्नी पौलहस्य प्रजापते : । (ब्रह्माण्ड १।२।१०।२३)
(२) क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलस्त्यस्य प्रजापतेः । कर्दमश्च... ।
(ब्रह्माण्ड० १।२।१०।३१)

भागवतपुराण (४।१) मे स्वायम्भुवमनुशतरूपा की तीन कन्याये हैं— आकूति, देवहूति और प्रसूति । ब्रह्माण्डादि प्राचीनपुराणपाठो मे आकूति और प्रसूति ही स्वायम्भुव मनु की कन्याये बताई गई है, देवहूति का नाम नही । प० भगवद्दत्त ने महाभारत के उक्त प्रसग (१२।५७) मे कर्दम के दो पुत्र बताये हैं[1] अनग और कपिल, जबकि वहा पर एकमात्र पुत्र अनग का उल्लेख है । अत. कर्दम के पैतृक उद्‌भव के विषय मे पर्याप्त मतमतान्तर हैं अथवा अनेक कर्दम थे या पुराणो के पाठों मे शुद्धिकरण की महती आवश्यकता है । भागवत मे देवहूति के पति कर्दम कहे गये है[2] । भागवत का वर्णन कितना प्रमाणिक है या नही, निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता ।

भागवतपुराण (४।१।१३) मे मरीचि की पत्नी का नाम सभूति के स्थान पर कला है, जिसके दो पुत्र हुये-कश्यप और पूर्णिमान[1] । यह "कला" कर्दम की पुत्री बताई गई है । पूर्णिमान के पुत्र हुये विरज और विश्वग और पुत्री देवकुल्या । यह सभव है कि भागवत का वर्णन सत्य हो और उपर्युक्त कश्यप मरीचि के साक्षात् पुत्र हो, जिनके वश मे अनेक कश्यप हुये हो और इन्ही कश्यप के सुदूर वशज देवासुरजनक परमेष्ठी कश्यप हो । अत मरीचि पुत्रकश्यप और परमेष्ठी कश्यप मे अनेक पीढियो का अन्तर होना चाहिए ।

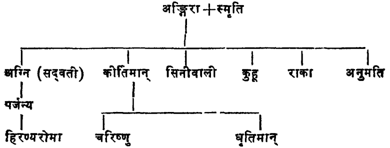
आदिम अङ्गिरा —आदिम अङ्गिरा मरीच्यादि और स्वायम्भुव मनु के समकालीन ३०,००० वि. पू के ऋषि थे, इन्ही के किन्ही वशजो ने आदिराज पृथुवैन्य का अभिषेक किया था[3] । बृहस्पति आङ्गिरस पृथुवैन्य और दक्षादि

---

१. भा० बृ० इ० भाग २ (पृ० ४२)
२. भागवत (४।१।१०)
३. सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरङ्गिरससुतैः । आदिराजो महाराजो पृथुवैन्य प्रतापवान् । (वायु० ६२।१३६)

से भी बहुत उत्तरकालीन ऋषि थे। जो देवयुग (चतुर्थ परिवर्त १३००० वि० पू०) मे हुये। अतः आदिम अङ्गिरा और बृहस्पति आङ्गिरस मे लगभग १७००० वर्षों का अन्तर था। आदिम अङ्गिरा बृहस्पति के साक्षात् पिता कदापि नही हो सकते। उन दोनो में अनेक पीढियो का अन्तर था। बृहस्पति अङ्गिरावंशीय होने के कारण ही आङ्गिरस कहे जाते थे।

आदिम अङ्गिरा के प्रारम्भिक वशज थे :—



सिनीवाली आदिनाम, अमावस्या आदि के भी होते है, अतः ऐसे नामों से भ्रान्ति होना स्वाभाविक है, परन्तु उपर्युक्त नाम निश्चय ही स्त्रियों के हैं, चन्द्रकलाओ से इनका कोई सम्बन्ध नही।

उत्तरदिशा मे पर्जन्य प्रजापति के पुत्र हिण्यरोमा का राज्य था[1]। चरिष्णु और धृतिमान् आङ्गिरसो के शतसहस्रश. वशज हुए जो सभी आङ्गिरस कहे जाते थे[2]।

अग्नि एक आङ्गिरस ऋषि का नाम था, न कि कोई भौतिक वस्तु। अग्नि और आङ्गिरस का एक ही कुल था, जिसका इतिहासपुराणो मे बहुधा उल्लेख मिलता है।

आदिमप्रजापति अत्रि—आदिम प्रजापति अत्रि स्वायम्भुवमनुपुत्र उत्तानपाद के संरक्षक थे—

---

१. तथा हिरण्यरोमाण पर्जन्यस्य प्रजापते। उदीच्यां दिशि दुर्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत्। (हरि० १।४।२१)

२. तयो. पुत्राश्च पौत्राश्च अतीता वै सहस्रशः (ब्रह्माण्ड० १।२।१०।२१)

उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ।
दत्तकः स नु पुत्रो राजा ह्यासीत् प्रजापतिः ।
स्वायम्भुवेन मनुना दत्तोऽत्रे. कारणं प्रति ।।[1]

अत· उत्तानपाद अत्रि के दत्तकपुत्र थे, जो मनु द्वारा किसी कारण उन्हें दे दिये गये । अनसूया आदिम अत्रि की पत्नी थी, उत्तरकालीन अत्रियो से अनुसूया का सम्बन्ध जोडना सर्वथा काल्पनिक है, यथा दाशरथिराम के समकालीन किसी अत्रिवशी आत्रेय को भी रामायण मे अत्रि कहा गया है और उनकी पत्नी को अनसूया—

त चापि भगवानत्रिः पुत्रवत् प्रत्यपद्यत ।
अनसूया महाभागां तापसी धर्मचारिणीम् ।।[2]

मूलरामायण (वाल्मीकिरामायण प्रथम अध्याय) मे भी अनसूया सीता संवाद का सकेत न होने से यह सवाद पूर्णत· काल्पनिक सिद्धहोता है। आदिम अत्रि (अनसूयापति) और दाशरथिराम में २४००० (चौबीस सहस्र) वर्षों का अन्तर था, इस दृष्टि से भी यह सवाद अनैतिहासिक सिद्ध होता है ।

आदिम अत्रि के आदिमपुत्र या वशज थे—सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनैश्चर और सोम । ये पाचो यामदेवो के समकालीन थे ।[3] सोम एक वश का नाम था, क्योकि बुधसोमायन और आदिम अत्रि मे भी न्यूनतम १५००० सहस्रवर्षों का अन्तर था, अत. सोम भी एक वश का नाम था। आदिम सोम से दक्ष की २७ कन्याओ का विवाह हुआ, जिनके नाम पर २७ नक्षत्रों के नाम पडे । ये सोमपत्नी दक्षकन्याये उत्तरकालीन प्राचेतस दक्ष की पुत्रियां थी,[4] अतः दक्ष जामाता और श्वसुर सोम अत्रि का साक्षात् पुत्र न होकर वशज ही था ।

---

१. ब्रह्माण्ड० (१।२।३६।८४-८५)
२. रामा० (२।११७।५,८)
३. यामदेवैस्सहातीता पचात्रेयाः प्रकीर्तिता. । (ब्रह्माण्ड० १।२।१०।२४),
४. या राजन् सोमपत्न्यस्तु दक्षः प्राचेतसोददौ, सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्यौतिषे परिकीर्तिता. ।। (हरि० १।३।३६);

कुछ पुराणों मे अत्रि के साक्षात पुत्र बताये गये हैं—दत्तात्रेय, दुर्वासा, और सोम।[१] ये तीनो ही आदिम अत्रि के पुत्र न होकर सुदूर वंशज थे, जो अत्रि या आत्रेय कहे जाते थे, ऐसे ही एक अत्रि (अत्रिवंशज) का उल्लेख वैदिकग्रन्थो (बृहद्देवतादि) मे है, यह अत्रि अर्चनाना कहा गया है, वहाँ पर अत्रि का स्पष्टता नाम अर्चनाना है, अत्रिपुत्र का अर्थ है अत्रिवंशज—

'श्यावाश्वश्चात्रिपुत्रस्य पुत्रः खल्वर्चनानसः।'[२] अर्चनाना को अत्रि कहना और श्यावाश्व को आत्रेय कहने से स्पष्ट है कि किसी भी अत्रिवशज को 'अत्रि' या 'आत्रेय' कहा जाता था और इससे आदिम अत्रि का भी भ्रम होता था, यह भ्रम सभी गोत्र प्रवर्तक ऋषियो के साथ था, यथा वसिष्ठ (वासिष्ठ), अगस्त्य (आगस्त्य=अगस्ति), विश्वामित्र (वैश्वामित्र-कौशिक), कश्यप (काश्यप) इत्यादि।

आदिम अत्रि की एक कन्या थी—श्रुति,[३] जो पुलहपुत्र कर्दम की पत्नी थी, जिसका पुत्र हुआ शखपद, जो दक्षिणदिशा का दिक्पाल था[४] शखपद आदि सभी आदिम प्रजापति थे जिनका समय परमेष्ठी काश्यप से छ. सात सहस्रवर्ष पूर्व था।

आदिम पुलस्त्य प्रजापति—आदिम पुलस्त्य और विश्रवा के पिता और कुबेर या रावण के पितामह पुलस्त्य मे लगभग २२००० सहस्रवर्षों का अन्तर था। यक्षराक्षसो के पितामह पुलस्त्य का समय ५००० वि० पू० था और आदिम स्वायम्भुव पुलस्त्य २९००० या ३०००० वि० पू० हुए, अतः दोनो पुलस्त्यो के एक होने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। इसी प्रकार एक

---

१. अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे निष्कल्मषान् सुतान्।
सोम दुर्वाससं दत्तात्रेय स योगिनम्॥ (विष्णु० १।१०।९)

२ बृहद्देवता (५।५२)

३ कन्या चैव श्रुतिर्नाम माता शखपदस्य सा।
कर्दमस्य तु पत्नी सा पौलहस्य प्रजापते.॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।१०।२२)

४. दक्षिणस्या महात्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः।
पुत्र शखपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत्॥ (हरि० १।४।१९-२०)

पुलस्त्य महाभारतकाल से कुछ शतीपूर्व हुए, जो पाराशर (पाराशर्य) और भीष्मपितामह के गुरु थे। इस द्वापरयुगीन पुलस्त्य ने किसी पाराशर को विष्णुपुराण सुनाया था।[1] अतः पुलस्त्य के वंशज भी सहस्रोंवर्षों के अनन्तर भी 'पुलस्त्य' ही कहलाते थे।

आदिम प्रजापति पुलस्त्य की पत्नी प्रीति से तीन पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई, पुत्र थे—दत्तोलि, देवबाहु और अत्रि, कन्या का नाम था—सद्वती। सद्वती अग्नि की पत्नी और पर्जन्यप्रजापति की माता थी, पर्जन्य का पुत्र हिरण्यरोमा दिक्पाल हुआ, जिसका उल्लेख पूर्वपृष्ठो पर किया जा चुका है।

पुलस्त्य पुत्र 'दत्तोलि' को पूर्वजन्म का 'अगस्त्य' कहा गया है।[2] दत्तोलि के सभी वंशज पौलस्त्य या पुलस्त्य कहलाये—

> दत्तोलेः सुषुवे पत्नी सुजघी च बहून सुतान्।
> पौलस्त्या इति विख्याताः स्मृताः स्वायम्भुवेऽन्तरे॥
> (ब्रह्माण्ड० १।२।१०।२६)

दत्तोलि को पूर्वजन्म का अगस्त्य कहने का कारण था कि यक्षराक्षसो के पितामह पुलस्त्य, राजा तृणविन्दु (वैशाल) और अगस्त्य, रामायणकाल से पर्व साथी थे, जिन्होने लवणाम्भस् समुद्र को पार करके सुदूरद्वीपो की यात्राये की थी। इसका इतिहासपुराणो मे सकेत है।

पुलहवंश—प्रतीत होता है कि पुलस्त्य, पुलह और क्रतु के वशज भारतवर्ष मे कम रहे, बाह्यदेशो मे उपनिवेश बसाकर अधिक बसे। कुबेर और रावण के उदाहरण प्रत्यक्ष हैं, इन्होने और इनके पूर्वज पौलस्त्यो (यक्ष राक्षसो) ने दक्षिणपूर्वीद्वीपसमूहो मे आस्ट्रेलिया पर्यन्त तथा उत्तर मे हिमालयप्रदेश (कैलाशपर्वत अलका=ल्हासा तिब्बत) एव अफ्रीका मे उपनिवेश बनाये। इन देशो की कृष्णवर्णप्रजा (हब्सी, पिग्मी आदि) पुलस्त्य एव पुलह के वशज है। इसी कारण प्राचीन भारतीय इतिहास मे पुलह और वक्ष्यमाण प्रजापति क्रतु के वंशजो का नामशेष भी नही मिलता। आज भारतीय ब्राह्मणो मे पुलस्त्य, पुलह और क्रतुगोत्र के ब्राह्मण कोई भी नही

---

१. पुलस्त्यवरदानेन ममाप्येतत्स्मृतिं गतम्। (विष्णु० ६।८।४६)
२. पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृत स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।१०।२६)

मिलते, इसका प्रमुख कारण है कि इन प्रजापतियो के वशज बाह्यदेशों में उपनिविष्ट होकर वहाँ की प्रजा बन गये ।

पुलह की पत्नी क्षमा से तीन पुत्र उत्पन्न हुए—कर्दम, उर्वरीयान् और सहिष्णु । आत्रेयी श्रुति और कर्दम से पुत्र शखपद और पुत्री काम्या हुई ।

प्रजापति कर्दम—पुलह के पुत्र कर्दम आदिम प्रधान प्रजापतियो मे से एक थे ।[1] इनकी पुत्री काम्या का विवाह स्वायम्भुवमनुपुत्रप्रियव्रत से हुआ । वर्तमान पुराणपाठो मे पर्याप्त अशुद्धियाँ है, कही कर्दम को पुलस्त्य का पुत्र बताया है, कही विरजा का । यह भी सम्भव है कि प्रजापति विरजा का पुत्र कर्दम अन्य व्यक्ति हो । आदिम कर्दम पुलह के ही पुत्र थे, भागवतपुराण मे कर्दम की पत्नी देवहूति बताई गई है, जो स्वायम्भुव मनु की पुत्री कही गई है, भागवतपुराण का यह वर्णन अप्रमाणिक और असत्य है । कर्दम की पत्नी का नाम श्रुति था, जो अत्रि की पुत्री थी, इनके पुत्र प्रजापति शखपद हुए ।[2] सहिष्णु का पुत्र कनकपीठ और पुत्री पीवरी । कनकपीठ, की पत्नी यशोधरा से 'कामदेव' उत्पन्न हुआ ।

क्रतुसन्तति बालखिल्य—क्रतु की पत्नी सनति थी, इनके पुत्र साठ सहस्र बालखिल्य कहे गये हैं । ये वस्तुतः इनके वशज होंगे । इनकी यवीयसी-पुत्रियाँ पुण्या और सत्यवतो पूर्णमास (मारीच) की पुत्रबधुयें थी, इनके पति का नाम सम्भवत. सुधन्वा था ।

वसिष्ठ—पुराणो मे सर्वाधिक भ्रम वसिष्ठगोत्र के सम्बन्ध मे है । आदिकाल से कलिपर्यन्त इतिहास मे लाखो वासिष्ठ ब्राह्मण हुये जिनको एक समझना महान् भ्रम ही नही कहना मूर्खता भी है । इस भ्रम का कारण है, कि वसिष्ठ के वंशजों का यथार्थ नाम न लेकर अथवा वश परिचायक नाम 'वासिष्ठ' न कहकर 'वसिष्ठ' ही कहना ।

पुराणो मे ही दो प्रमुख वसिष्ठो का उल्लेख है, प्रथम स्वायम्भुव वसिष्ठ और द्वितीय मैत्रावरुणि वसिष्ठ, जो प्राय वरुण के पुत्र कहे जाते हैं । इन दोनों मे भी प्राय. सोलह सहस्रवर्षों का अन्तर था । आदिम वसिष्ठ

---

१. पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन् ।
कर्दमः प्रथमस्तेषाम्......।। (रामा० ३।१३-६-७)

२. स वै श्रीमाँल्लोकपालः प्रजापति (ब्रह्माण्ड० १।२।१०।३३)

२६००० वि० पू हुए तो द्वितीय वसिष्ठ मैत्रावरुणि १३००० वि० पू० हुये। आदिम वसिष्ठ के अनेक वशज १४ मन्वन्तरो के सप्तर्षियो मे सम्मिलित थे, यथा, उदाहरण द्रष्टव्य है—

मन्वन्तर	सप्तर्षियो मे वासिष्ठ ऋषि
स्वायम्भुव में स्वय	आदि वसिष्ठ
स्वारोचिष मे	औवं वासिष्ठ
औत्तम मे	सप्त वासिष्ठ (सप्तर्षि)[1]
रोहित (मेरुसावर्णि) मे	सावन वासिष्ठ
दक्ष सावर्णि ,,	अष्टम सज्ञक वासिष्ठ
रुद्र सावर्णि ,,	अनघ वासिष्ठ
सावर्णि ,,	द्युति वसिष्ठ
रौच्य ,,	सुतपा ,,
भौत्य ,,	शुक्र ,

उपर्युक्त सभी सप्तर्षि वासिष्ठ मैत्रावरुणि वसिष्ठ मे पूर्ववर्ती वासिष्ठ थे। पूर्वमन्वन्तरो के समान वैवस्वत मन्वन्तर (अन्तिम) मे मैत्रावरुणि के अनेक वशज वासिष्ठ न कहलाकर वसिष्ठ कहलाते थे। यही भ्रम का मूल कारण है।

वैवस्वतमन्वन्तर मे भी साक्षात् मैत्रावरुणि वसिष्ठ सप्तर्षियों में सम्मिलित नही थे, जैसा कि अधिकाश पुराणपाठो से आभास होता है। विश्वामित्र, जो स्वय सप्तर्षियो के अन्तर्गत थे, शेष छः ऋषि वसिष्ठादि के वशज थे, न कि वे स्वय वशकर ऋषि—

गाधिज कौशिको धीमान् विश्वामित्रो महातपा.।
भार्गवो जमदग्निश्च और्वपुत्र प्रतापवान्॥
बृहस्पतिसुतश्चापि भरद्वाजो महायशा।
चतुर्थो गौतमो विद्वाञ्छरद्वान्नाम धार्मिक॥

१ वसिष्ठपुत्रा सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुता। (हरि० १।७।१७)
२ अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः।
गौतमोऽह भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च॥ (हरि० १।७।३७)

स्वायम्भुवोऽत्रिर्भगवान् ब्रह्मकोशः सप्तमः ।
षष्ठो वसिष्ठपुत्रस्तु वसुमाल्लोकविश्रुतः ॥
वत्सार. काश्यपश्चैव सप्तैते साधुसम्मता. ।
(ब्रह्माण्ड० १।२।३८।२६-२९)

हरिवश के पाठ मे केवल वसिष्ठ और कश्यपपाठ है, परन्तु प्राचीन पाठ (ब्रह्माण्डपु०) के अनुसार वसिष्टपुत्र वसुमान् और वत्सार काश्यप सप्तर्षियो मे सम्मिलित थे, स्पष्ट है किस प्रकार कालान्तर मे गोत्रनामो से मूलगोत्रप्रवर्तको का भ्रम होना गया। अत वैवस्वतमन्वन्तर के सप्तर्षि मैत्रावरुणि वसिष्ठ और परमेष्ठी काश्यप न होकर इन दोनो के कोई वशज (क्रमश वसुमान् और वत्सार) ही सप्तर्षियो मे से थे।

काठकसहिता (३४।१७।२५) और मैत्रायणीसहिता मे एक वासिष्ठ सात्यहव्य का उल्लेख है, स्पष्ट है यह वासिष्ठ (वशिष्ठवशज) 'सत्यहवि' का पुत्र था। जिसको 'सात्यहव्य' कहते थे।

पार्जीटर[1] ने इक्ष्वाकुवशीय राजाओं के पुरोहित दशाधिक वासिष्ठो (वसिष्ठो) का अनुमान किया है, उनके नाम उसने क्रमशः देवराज वसिष्ठ, आपव वसिष्ठ, अथर्वनिधि वसिष्ठ, ब्रह्मकोश वसिष्ठ इत्यादि लिखे हैं। महाभारत युग मे भी अनेक वासिष्ठ ब्राह्मण ऋषि प्रसिद्ध थे। एक वासिष्ठ रोमहर्षण सूत का शिष्य था[2] जिसका नाम मित्रयु वासिष्ठ था। अतः निश्चय ही वसिष्ठवशज अनेक वासिष्ठ थे, जिनका विशेषवर्णन 'वासिष्ठ' प्रकरण मे किया जायेगा। वही पर पाराशर्य के पूर्वज वासिष्ठ का विवेचन होगा। उपर्युक्त विवेचन का मन्तव्य यह है कि जो लोग एक ही सनातन वसिष्ठ को मानते है उनकी आखे खुल जाय कि वसिष्ठ या वासिष्ठ अनेक थे और उनके पृथक् पृथक् नाम भी थे, परन्तु कालान्तर मे वे केवल एक 'वसिष्ट' ही सनातन और एकमात्र समझे जाने लगे।

स्वायम्भुवमनुसमकालिक वसिष्ठ प्रथम (२९००० वि० पू०) के ऊर्जस् सज्ञक सात पुत्र स्वारोचिषमनु के समकालीन सप्तर्षि हुए, उनके नाम थे—रज, उर्ध्वबाहु, सवन, पवन, सुतपा, शकु और गत, वसिष्ठ की ज्येष्ठ पुत्री थी पुण्डरीका। रज वासिष्ठ से मार्कण्डेयी ने केतुमान् को उत्पन्न किया जो

---

१. ए० इ० हि० ट्रे० अध्याय २८, शीर्षक वासिष्ठ, पृ० २०३—२१७,

२ वसिष्ठो मित्रयुश्च (वायु० ६१।२६), जै० ब्रा० मे एक जीत वासिष्ठ का उल्लेख है।

पश्चिमी दिशा का प्रमुख प्रशासक (दिक्पाल) था[1]। उत्तरकाल (चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त) मे मैत्रावरुणि वसिष्ठ के पिता वरुण (१३००० वि० पू०) इन्ही पश्चिमी देशो के प्रधान शासक हुये और जिनके वशज-गन्धर्वों और असुरो ने ईरान, ईराक अरब देशो और योरोप मे चिरकालतक शासन किया।

आदिम भृगु के पौत्र प्राणपत्नी महिषी वासिष्ठी पुण्डरीका थी, जिसका पुत्र हुआ द्युतिमान्[2]।

उपर्युक्त भृग्वादि सप्तर्षि द्वितीयजन्म मे आदित्य वरूण के पुत्र हुए, वैवस्वत मन्वन्तर मे, इस विषय का विवेचन 'सप्तर्षि' प्रकरण में किया जायेगा।

रुचि—ये आदिम द्वादश प्रजापतियो मे एक थे। स्वायम्भुवमनु की पुत्री आकूति इनकी पत्नी थी, जिनके दो पुत्र हुए-यज्ञ और दक्षिण। यज्ञ द्वारा दक्षिणा पत्नी से द्वादश याम नाम के देव उत्पन्न हुए[3] इन्ही को भागवत पुराण[4] में तुषिता नाम के देव कहा है, जो स्वारोचिष मन्वन्तर के द्वादश देव कहे गये हैं, इनके नाम थे—तोष, प्रतोष, सतोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह, सुदेव, रोचन और द्विषट्। तथ्य यह है कि स्वायम्भुव और स्वारोचिष मनुओ के मध्य मे कुछ शताब्दियो का अन्तर था, अतः याम सज्ञक द्वादशदेव और तुषितसज्ञक द्वादश देव या तो एक ही थे, अथवा पृथक् पृथक् भी हो तो प्रायः समकालीन ही थे।

रुचि प्रजापति का पुत्र या वशज ही रौच्य मनु हुआ, जिसको पुराणो मे भविष्य का चतुर्दश (चौदहवाँ) मनु बताया है वास्तव मे रौच्य मनु, स्वायम्भुव मनु के अनन्तर कुछ शती पश्चात् होनेवाले स्वारोचिष मनु के समकालीन था। रौच्य मनु और स्वारोचिष मनु का समय अधिक से अधिक स्वायम्भुव मनु के एक सहस्राब्दी पश्चात् (३०,००० या २९००० वि० पू०) समझना चाहिए।

---

१. पश्चिमायां दिशि तथा रजस पुत्रमच्युतम्।
केतुमन्त महात्मान राजानं सोऽभ्यषेचयत्॥ (हरि० १।४।२०)

२. ब्रह्माण्ड० (१।२।१०।४०),

३. हरिवंश (१।७।९)—यामा नाम ते देवा आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे

४. तुषिता नाम ते देवा स्वायम्भुवेऽन्तरे (भाग० ४।१।८)

धर्मप्रजापतिवंश—धर्म की आदिम द्वादशप्रजापतियो मे यत्र तत्र गणना है। वस्तुतः धर्म और नीललोहित महादेव प्राचेतस दक्ष के समकालीन प्रजापति थे, क्योकि दक्ष प्राचेतस ने ही धर्म प्रजापति को अपनी दश कन्याओं प्रदान की थी। अतः दक्ष, धर्म और महादेव का समय त्रेतायुगमुख या कृतयुग के आदि और प्रजापतियुग के अन्त मे अथवा देवयुग के प्रारम्भ मे था (१५०००-१४००० वि० पू. के मध्य मे)। आदिमदक्ष (स्वायम्भुव) और प्राचेतस दक्ष के समय मे न्यूनतम षोडश सहस्राब्दी का कालान्तर था।

धर्म की दश पत्निया थी—अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती संकल्पा मुहूर्ता, साध्या और विश्वा। इनमे धर्मपत्नी साध्या से साध्यगण[1] नाम प्रसिद्ध द्वादश पूर्वदेव उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे—मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, अपान, विनि, नय, हय, हम, नारायण, विभु और प्रभु।

धर्म की द्वितीयपत्नी वसु से आठ वसु उत्पन्न हुए-आप, सोम, ध्रुव, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। आप के पुत्र हुये-वैतण्ड्य, श्रम, शान्त, मुनि। ध्रुव का पुत्र हुआ काल, धर के पुत्र द्रविण, हुतहव्य, रज, सोमपुत्र वर्चा, बुध, धर, उर्मि, कलिल और धर की दूसरी पत्नी मनोहरा से शिशिर, प्राण और रमण, अनिलपुत्र मनोजव और अविज्ञातमति और चतुर्थांश तेज से स्कन्द सनत्कुमार कार्तिकेय। प्रत्यूष का पुत्र हुआ देवल और देवल के पुत्र-क्षमावान् व तपस्वी। अष्टम वसु प्रभास की भार्या थी आङ्गिरसी भुवना[2]

---

१. ऋग्वेदपुरुषसूक्त (१०।) मे साध्यो का उल्लेख है—"ये पूर्वे सन्ति साध्या देवा.।" इन्होने यज्ञसस्था का प्रवर्तन किया था।

देवयुग मे साध्यो की उसी प्रकार उपासना होती थी, जिस प्रकार रामायणमहाभारत मे विष्णु की पूजा। पुत्र कामना से देवमाता अदिति ने साध्यो की उपासना की थी—"अदिति पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत्" (तै० स० ६।५।६।१), 'साध्या वै नाम देवा आसन् पूर्वेभ्यो देवेभ्यस्तेषा न किंचन स्वमासीत् (काठक २६।३।१८) साध्या वै नाम देवा आसस्ते सर्वेण यज्ञेन सह स्वर्ग लोकमायन् (ताडयब्रा० ८।४।१)

२ कश्यपो विश्वकर्माण भौवनमभिषिषेच—मेध्येनेजे भूमिर्हजगावित्युदाहरन्ति न मा मर्त्यं कश्चन दातुमर्हति विश्वकर्मन्।
भौवन! मा दिदासिथ निमङ्क्ष्येऽह सलिलस्य मध्ये, मोघस्ते एष कश्यपाय सगरः।" (ऐ० ब्रा० ८।३।३)

बृहस्पति की भगिनी। इस तथ्य से भी सिद्ध है कि वसु, बृहस्पति, धर्म, साध्य-देव, महादेव, स्कन्द, दक्षप्राचेतस, कश्यप परमेष्ठी आदि सभी समकालीन (१४००० वि० पू०) थे। भुवना का पुत्र हुआ विश्वकर्मा भौवन जिसके यज्ञ परमेष्ठी काश्यप ने करवाये थे। इस विश्वकर्मा का शिल्पविद्या से कोई सम्बन्ध नही था जैसा कि त्वाष्ट्र विश्वकर्मा मयासुर का था।

धर्म की पत्नी विश्वेदेवा से दश विश्वेदेव उत्पन्न हुए—क्रतु, दक्ष, श्रवः, सत्य, काल, काम, मुनि, पुरूरवा, माद्रवस और रोचमान।

अन्य पत्नियो के ऐतिहासिकपुत्रो को ज्योतिष के मुहूर्त आदि से सम्बन्धित कर दिया गया है जिससे उनकी ऐतिहासिकता प्रणष्ट हो गई है।

नारायण ऋषि (प्रमुख साध्यदेव)-देवयुग मे विष्णु को और द्वापरान्त में श्री कृष्ण वासुदेव को नारायण का अवतार माना जाता था। श्रीकृष्ण और अर्जुन को नारायण और उनके पुत्र नर का अवतार माना जाता था।

नारायण ऋग्वेद १०।६० सूक्त के ऋषि है। शतपथब्राह्मण (१३।६।१।१) के अनुसार सर्वप्रथम नारायण ने पुरुषमेधपचरात्र यज्ञ का दर्शन और अनुष्ठान किया—पुरुषो ह नारायणोऽकामयत अतितिष्ठेय ..। स त पुरुषमेधं पंचरात्र यज्ञक्रतुनपश्यत् तमाहरत ।।" महाभारत के नारायणीयोपाख्यान नाम बृहदुपाख्यान मे नारायणधर्म (भक्तिमार्ग) का विस्तार से कथन है। तदनुसार सर्वप्रथम नारायण ने रुद्र को परास्त किया। नारद ने श्वेतद्वीप मे जाकर नारायण के दर्शन किये, इत्यादि वर्णन है। नरनारायण का आश्रम बद्रीनाथ (बदर्याश्रम] हिमालय पर था, उन्होने कृतयुग मे बदर्याश्रम मे घोर तपस्या की थी। उनका कनममय अष्टचक्र मनोरम शकटयान था।[२] नारद ने पाचरात्रधर्म राजा वसु को सुनाया था। मरीच्यादि के वशज चित्रशिखण्डीसज्ञक सप्तर्षियों[३] ने पाचरात्रसहिता (लक्षश्लोकात्मक)[४] की रचना की थी। जिसका उपदेश सप्तर्षियों को सर्वप्रथम नारायण ने किया था।[५] शतपथब्राह्मण (१३।६।१।१) से इसकी पुष्टि होती है कि पाचरात्र

१. शान्तिपर्व (३३४।३५ अध्याय)

२. कृते युगे महाराज स्वायम्भुवेऽन्तरे। नरो नारायणश्चैव हरिः कृष्ण स्वयम्भुवः। (महा० १२।३३४।६)

३. ये हि ते ऋषय. ख्याता सप्त चित्रशिखण्डिनः। (महा० १२।३३५।२७)

४. कृतं शतसहस्र हि श्लोकानामिदमुत्तमम् (महा० १२।३३५।३६)

५ ऋषीनुवाच तान् सर्वानदृश्यः पुरुषोत्तमः। (महा० १२।६३५।३८)

धर्म का प्रवर्तन नारायणपुरुष ने किया। नारायण को ही पुरुष या पुरुषोत्तम कहा जाता था।

अतः साध्यदेव नारायण पुरुषोत्तम, रुद्र महादेव, नारद, बृहस्पति, राजा वसु, इन्द्र, एक, द्वित और त्रित सभी समकालीन थे। इनका समय कृतयुग के आदि या देवयुग मे (१२००० वि० पू०) था। नारायण ने अपने तपोबल से दम्भोद्भव नामक राजा का विनाश किया था। इसका सकेत कौटल्य अर्थशास्त्र[1] और महाभारत मे है। अत. नारायणमाध्य पूर्व देवयुग के एक प्रधान पुरुष या पुरुषोत्तम थे।

नीललोहित रुद्र—यद्यपि पुराणो मे नीललोहित रुद्र को स्वयम्भू का मानसपुत्र बताया गाया है,[2] परन्तु रुद्रमहादेव प्रथम दक्ष (स्वायम्भुव) के समय (२६००० वि० पू०) नहीं थे, वे प्राचेतम दक्ष (१५००० वि० पू०) के जामाता थे। पुराणो मे इस प्रकार के अनेक भ्रष्ट एव अस्तव्यस्त पाठ परिवर्तित हो गये है, अतः उनमे सशोधन अनिवार्य है। नीललोहित रुद्र से अनेकविध एव भयकर प्रजा की उत्पत्ति हुई। उनकी सन्तानो मे पिगल, निषग, कपर्दी, नीललोहित, विशिख, हीनकेश, अन्ध, कपाली, महारूप, विरूप, विश्वरूप, स्थूलशीर्ष, नष्टशीर्ष, द्विजिह्व, त्रिलोचन, अन्नाद, पिशिताशन, अतिभद्रकाय, शितिकठ, नीलग्रीव पुरुष उत्पन्न हुए, परन्तु ऐसी प्रजा की अधिक वृद्धि नही हुई।[3]

पुराणो मे रुद्र के प्रारम्भिक नाम ये मिलते है—कुमार, नीललोहित रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम और उग्र। महादेव के ये आठ नाम थे।

पुराणो के अनुसार कश्यप प्रजापति ने अपनी पत्नी सुरभि से एकादश रुद्रो को उत्पन्न किया[4] जिनके नाम थे—हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषा कपि, शम्भु कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली। इस तथ्य से भी सिद्ध होता है कि महादेव रुद्र परमेष्ठी काश्यप से उत्तरकालीन और उनकी सन्तान थे, उनको आदिम प्रजापतियो मे सम्मिलित करना अतथ्य है।

आचार्य चतुरसेन ने धर्म की सन्तानो मे रुद्र को माना है—

---

१. मदाद्दम्भोद्भवः (अर्थ० १।१६)

२. अभिमानात्मक रुद्र निर्ममे नीललोहितम्। (ब्रह्माण्ड० १।३।६।२३)

३. मा स्राक्षीरीदृशी प्रजाः। (ब्रह्माण्ड० १।२।६।७६)

४. सुरभी कश्यपाद् रुद्रानेकादश विनिर्ममे (हरि० १।३।४६),

धर्म + दक्षपुत्री वसु
|
साध्यगण (नारायणादि)
|
धर
|
रुद्र (त्र्यम्बकादि एकादश)[1]

द्वादश देवासुर संग्रामो मे सप्तम देवासुर संग्राम[2] के प्रमुख नायक स्थाणु रुद्र या महादेव शिव थे। तारक असुरेन्द्र के तीन पुत्रो[3] ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली ने अफ्रीका (वर्तमान त्रिपोली) मे त्रिपुरो का निर्माण कराया था, वे तीनो पुर क्रमश काञ्चन, रौप्य और कार्ष्णायस (सौवर्ण, राजत और लोह) आकाश, अन्तरिक्ष और भूमि पर उपनिविष्ट थे। इन त्रिपुरो का निर्माण शिल्पाचार्य मयासुर ने किया था[4] तारकाक्षसुत हरिसंज्ञक असुरेन्द्र ने अपने काञ्चनपुर मे एक वापी का निर्माण कराया था, जिससे मृत असुर जीवित हो जाते थे।[5] वापी मे स्नान करने पर मृत असुर पूर्ववत् जीवित हो जाते थे।

इस समयतक सभवत· इन्द्रादि देवों का उत्कर्ष नही हुआ था। यह त्रैपुरयुद्ध जलप्लावन से पूर्व चतुर्थपरिवर्तयुग (१२५००) मे लडा गया था। सोमादि देवो ने प्रार्थना करके शिव से नेतृत्व करने का आग्रह किया और विजयार्थ एक अद्भुत रथ का निर्माण कराया। कृत्तिवासा धूम्रवर्ण नीललोहित ने त्रैपुरयुद्ध मे असुरो का वध करके त्रिपुरो का नाश किया एव विजय प्राप्त की।

स्कन्द - कुमार = सनत्कुमार = कार्तिकेय -- महादेवशिव के पुत्र के ये

---

१. भारतीयसस्कृति का इतिहास आरम्भ;
२. सप्तमस्त्रैपुर स्मृत.। (वायु०)
३. तारकस्य सुतास्त्रय· ताराक्ष· कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव। (कर्णपर्व ३३।५),
४. कर्णपर्व (३३।१७-१८),
५. ससृजे तत्र वापी ता मृताना जीवनी प्रभो (कर्ण० ३३।३०)

अनेक नाम थे—स्कन्द, कुमार, सनत्कुमार, षण्मुख कार्तिकेय, वैशाख, नैगमेय इत्यादि ।

सनत्कुमार नारद के गुरु थे, इन्होने देवर्षि को ब्रह्मविद्या प्रदान की;[1] इससे निश्चित होता कि सनत्कुमार का जन्म देवयुग के पूर्वभाग (१४००० वि० पू०) मे हुआ था । स्कन्द षण्मुख का पालन कृत्तिका[2] सज्ञक छः देवपत्नियो ने किया था, अत उनका नाम कार्तिकेय या षण्मुख हुआ । युद्ध में विजयार्थ देवो ने रुद्रसुन स्कन्द का सैनापत्यपद पर विशेषरूप से अभिषेक किया ।[2] उनका अभिषेक कश्यपादि देवर्षियो ने किया था । महायुद्ध मे स्कन्द ने पूर्वोक्त त्रिपुरी के पूर्वज तारकासुर का वध किया था, अत: तारकामय देवासुरयुद्ध त्रैपुरयुद्ध से पूर्व लडा गया, इसको पुराणो मे पचम देवासुर संग्राम कहा गया है ।

स्कन्द को कुछ विद्वान् ब्रह्मपुत्र, कुछ पुराण महेश्वरसुन और कुछ अग्निपुत्र कहते थे, यह विवाद[3] महाभारत मे पूर्व ही था, अत इनके पैतृक वंश का यथार्थ निर्णय करना एक विषमसमस्या है । हरिवश (१।२।४१) में स्कन्द सनत्कुमार को धर्म प्रजापति के पुत्र वसु के पुत्र अनल (अग्नि) का पुत्र कहा गया है—

अग्निपुत्र. कुमारस्तु शरस्तबे श्रियान्वित· ।

शाख, विशाख और नैगमेय इनके अनुज गये है—

तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजा. ।।

स्कन्द को महिषासुर का हन्ता बताया गया है[4] । यह महिषासुर वही है जिसका वध, मार्कण्डेयपुराण के अनुसार दुर्गा ने किया तो यह भी विवाद का विषय हो जाता है, परन्तु इससे स्कन्द और देवी का समय सावर्णि मनु के

---

१. त स्कन्द इत्याचक्षते (छा० उ०) उपससाद सनत्कुमार नारद:; (छा०उ० ७।१।१);

२. द्र० महा० शल्यपर्व ४५ अध्याय ,

३. केचिदेन कथयन्ति पितामहसुतप्रभुम् । केचिन्महेश्वरसुतं केचित् पुत्र विभावसोः ।। शल्यपर्व ४६।९८-९९

४. शल्यपर्व ४६।७४ तथा वनपर्व २३१।९६;

समकालिक सिद्ध होता है। पाच सावर्ण मनु प्राचेतसदक्ष के दौहित्र थे, अतः समकालिक थे, अत; इनका समय षष्ठ परिवर्तयुग (१२००० वि० पू०) निश्चित होता है।

इस शोधप्रबन्ध मे घटनाओ का विस्तृत उल्लेख नही किया जायेगा। केवल वशक्रम एव तिथिक्रम निश्चित करने मे जिन घटनाओ या इतिवृत का उल्लेख अनिवार्य है, केवल उन्ही का सकेत किया जायेगा।

अब वैवस्वतमनु के पूर्ववर्ती १३ मनुओ का वशक्रम एव तिथिक्रम क्रमशः निश्चित किया जायेगा।

स्वायम्भुवमनु का समय प्राचेतसदक्ष से ४३ परिवर्तयुग या १६००० वर्षपूर्व था, प्राचेतसदक्ष का समय १४००० वि० पू० था, अत. स्वायम्भुव मनुका समय न्युनतम २८००० वि०पू था। इससमय से पूर्व सूर्यदाह' और तदनन्तर जलप्लावन हुआ। सूर्यदाह से पृथ्वी के पृष्ठ पर स्थित समस्त स्थावर जगम (जीव, वनस्पति आदि) जलकर भस्म हो गये, ताप का केवल भूपृष्ठ के आवरण पर विशेष प्रभाव पडा, परन्तु पर्वतो की गुहाओ एवं पृथ्वी गर्भ मे अनेक चिन्ह प्राप्त हुए है। जिससे सिद्ध होता है कि कुछ किलोमीटर (३ या ४ कि० मी०) पर्यन्त ही सूर्यताप का अधिक प्रभाव पडा। योरोप और अफ्रीका और अमेरिका की पर्वत कन्दराओ मे विशालकाय डायनासोर जीवों के भित्तिचित्र मिले हैं, जो पाच से सात करोडवर्ष पूर्वतक के अनुमानित किये गये है, पोलेंड की एक कोयले की खान मे पाच करोडवर्षपूर्व का एक पादप मिला है, और भी ऐसे अनेक चिन्हे प्राप्त हुए है, जिनसे प्रतीत होता है कि अनेक बार सूर्यताप एव अनेक जलप्रलयो से पूर्व पृथ्वीपर अनेकबार मानवीसृष्टि हुई थी। सूर्यदाह एवं जलप्रलय कितने समय पर्यन्त रही, इसका अनुमान लगाना कठिन है परन्तु एक उत्सर्पिणीकाल (२१००० वर्ष) अवश्य ही होगी, जैसा जैनग्रन्थों मे सकेत है। सूर्यताप एव जलप्रलय दोनो का सम्मिलित योगकाल ४२००० वर्ष होना चाहिए। सूर्यताप के अनन्तर वराहसज्ञक, विशालमेघ ने पृथ्वी पर

१. वायुपुराण, अध्याय ७, एव ब्रह्माण्डपुराण, पूर्वभाग पचम अध्याय,
२. ततः प्रलीने सर्वस्मिन् स्थावरे जङ्गमे तथा।
अकाष्ठा निस्तृणा भूमिर्दृश्यते कूर्मपृष्ठवत्॥ (महा० ३।१३६।४)
ददाह भगवान् वह्निर्भूतानीव युगक्षये। (द्रोणपर्व १५७।१३४),

अनेक शताब्दियो पर्यन्त घनघोरवर्षा की। इस वराहमेघ (या ब्रह्मा) का उल्लेख वैदिक एव पौराणिकग्रन्थो मे इस प्रकार है—

शत महिषान् क्षीरपाकमोदन वराहमिन्द्र एमुषम्[1]।

"शतश महान् मेघो ने क्षीर (जल) को पकाने और भूमि को आर्द्र करने पृथ्वी को घेर लिया।"

स प्रजापतिर्वराहो भूत्वा उपन्यमज्जत्[2]।

"स वराहो रूप कृत्वोपन्यमज्जत्। स पृथ्वीमध आर्च्छत[3]"।

"वराह (मेघ) बनकर स्वयभू प्रजापति नीचे तक डूबा और पृथ्वी को बाहर निकाला"।

इस वराहमेघ प्रजापति का स्पष्ट वर्णन वायुपुराण मे है—

ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरन्।
स तु रूप वराहस्य कृत्वाऽप प्राविशत् प्रभु.।।
अद्भि सछादितामुर्वी समीक्ष्याथ प्रजापति।
उद्धृत्योर्वीमथाद्भ्यस्तु अपस्तासु स विन्यसन्[4]।।

"ब्रह्मा वायु (मेघ) रूप मे आकाश मे विचरने लगा, वह वराहमेघ का रूप बनाकर सलिलो (आपो=गैसो) मे प्रवेश कर गया और जल से आवृत भूमि को जल से बाहर निकाला"।।

इस वराहमेघ की वर्षा के बिना न तो भूमि का उद्धार होता और न पृथ्वी पर जीवोत्पत्ति सभव थी, अत यह वराह ब्रह्मा चराचर बीजो का स्रष्टा था। प्रथम वनस्पति (उद्भिज) सृष्टि हुई, तदनन्तर मानव स्वयभू ब्रह्मा दश विश्वस्रजो, दक्षादि के साथ उत्पन्न हुआ[5]।

१. ऋ० (७।७७।१०)
२. काठकस (८।२)
३ तै० ब्रा० (१।१।७।६)
४. वायुपुराण (६।२।७।८)
५. तत समभवद् ब्रह्मा स्वयभूर्दैवतैः सह। असृजच्च जगत्सर्वं सहपुत्रैः कृतात्मभि ।। (रामा० ३।११०।३-४),

जीवोत्पत्ति में उतना करोडो वर्षों का समय नही लगा, जैसा कि विकास वादी की कल्पना करते हैं, समस्त वनस्पति एव जीव (प्राणी) सृष्टि शीघ्र कुछ शतियो या सहस्रोवर्षों मे मे हो गई और जो वृक्ष, पशु, पक्षी या मनुष्य जिस रूप मे आज हैं उसीरूप में उत्पन्न हुआ और आरम्भ मे बीजमात्र उत्पन्न हुआ।[1] सर्वप्रथम मनुष्य स्वयम्भू ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, जो आकाश (अन्तरिक्ष) मे उत्पन्न होकर पृथ्वी पर स्थित हो गया।[2]

स्वयंभू ब्रह्मा ने अपने शरीर को पुरुष और स्त्री के रूप मे दो भागो मे विभक्त किया, जो क्रमश. स्वायम्भुव मनु और शतरूपा कहलाये—

स्वां तनु स तदा ब्रह्मा समपोहत भास्वराम् ।
द्विधा कृत्वा स्वकं देहमर्द्धेन पुरूषोभवत् ॥
अर्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत ।
स वै स्वायभुव. पूर्व पुरुषो मनुरुच्यते ॥[3]

इसी स्वायम्भुवमनु को बाइबिल मे आदम और उसकी पत्नी शतरूपा को "हौवा कहा गया है ।

स्वायम्भुवमनु को ही वैराजपुरुष कहते है। पुराणपाठो मे कही कही प्रियव्रत और उत्तानपाद को स्वायम्भुवमनु का पौत्र बताया गया है, परन्तु यह पाठ भ्रामक ही है। ये दोनो मनु के पुत्र ही थे ।

प्रियव्रतपुत्रों द्वारा पृथ्वीनिवेशन—कर्दम प्रजापति की पुत्री काम्या का विवाह प्रियव्रत के साथ हुआ, जिनसे दो पुत्रिया और दश पुत्र उत्पन्न हुये—पुत्रियो के नाम थे—सम्राट् और कुक्षि । पुत्रो के नाम थे—आग्नीध्र, अग्नि बाहु, मेघ, मेधातिथि वसु. ज्योतिष्मान्, द्युतिमान् हव्य, और सवन । मन्वन्तर वर्णन मे पुराणकार इन्हे स्वायम्भुव के पुत्र कहते है ।[4] वस्तुत. ये मनु के पौत्र ही थे, पुत्र नही—

---

१. बीजमात्र पुरासृष्टम् (शान्ति० १८४।१५)
२. भूताना ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे (अथर्व० १८।१२।२१)
आकाशप्रभवो ब्रह्मा (रामा० २।११०।५)
३. ब्रह्माण्डपु० (१।२।६।३२,३६)
शरीरादर्धमथोभार्या समुत्पादितवाञ्छुभाम । (हरि० ३।१४।22)
४. मनो. स्वायम्भुवस्यैते दशपुत्रा महौजस. ॥ (हरि० २।७।११)

प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य च ।। (ब्रह्माण्ड० १।२।१४।६)
ससमुद्रा वसुमती प्रतिवर्षं निवेशिता ।। (ब्रह्माण्ड० १।२।१४।५)

प्रियव्रत ने अपने सातपुत्रो को सातमहाद्वीपो का अधिपति नियुक्त किया, वे थे—

१ आग्नीध्र,	२ मेधातिथि,	३ वपुष्मान्	४ ज्योतिष्मान्
जम्बूद्वीप	प्लक्षद्वीप	शाल्मलिद्वीप	कुशद्वीप
५ द्युतिमान्	६ भव्य	७ सवन	
क्रौञ्च	शाकद्वीप	पुष्करद्वीप	

इस समय उपर्युक्त जम्बूद्वीपादि सप्त महाद्वीपो की ठीक-ठीक पहिचान एक कठिन समस्या है. यद्यपि कुछ महाद्वीपो की पहिचान सही बताई जा सकती है, यथा जम्बूद्वीप दक्षिणीपूर्वीएशिया का प्राचीननाम था, जिसमे जम्बू वृक्ष की प्रधानता थी, कुशद्वीप अफ्रीका का प्राचीन नाम था. पुराणो मे नील नदी एव अन्य ऐतिहासिक चिन्होसे इसकी पहिचान हो चुकी है, शाल्मलि द्वीप पश्चिमी एशिया के ईराक आदि देशो की सज्ञा थी । कुछ लोग शाकद्वीप शकमगजातियो के आधार पर ईरान और मध्य एशिया को मानते हैं तो कुछ विद्वान् पूर्वीद्वीपसमूह को, क्योकि वहा पर साखू (शाक) के पेड अधिक पाये जाते है ।

सभी द्वीपों की पहिचान आज हो भी नही सकती क्योकि स्वायम्भुव मनु के समय भूलोक पर महाद्वीपों और समुद्रो की जो स्थिति थी, वह आज नहीं है, क्योंकि पृथ्वीतल पर अनेक द्वीप, पर्वत, नदी आदि समुद्र मे डूब चुके हैं और अनेक नये द्वोपादि बन गये है । किसी युग मे अन्टार्कटिक द्वीप (दक्षिणीध्रुव) मे पेडपौधे उगते थे, पशु और मानव विचरण करते थे, वहाँ डायनासौर के चित्र गुफाओ मे मिले है, वहाँ कोयले की खाने भी विद्यमान है, पृथ्वी के पुराने मानचित्र (पीरीरईस के पुस्तकालय से प्राप्त हुआ) इस से सिद्ध होता है, कि उस समय अतार्कटिक महाद्वीप पर हिम नही था । मानचित्र के निर्माता मयजाति के अन्तरिक्षयात्री माने जाते है, इसका सकेत डेनीकेन ने अपनी पुस्तक 'चैरियट्स आफ गॉडस' मे किया है ।

पुराणों के सप्तपातालों मे एक अतल (महाद्वीप) पाताल का उल्लेख है, जहां नमुचि, महानाद, शकुकर्ण, कबन्ध, निष्कुलाद, धनजय, आदि असुरों के नगर (पुर) बसे हुये थे। इसी 'अतल' को प्राचीन यूरीपवासी (यूनानी आदि) 'अटलाटिक' महाद्वीप कहते थे। प्रसिद्धग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने अपने ग्रन्थ डायनोग्ज मे अटलाटिक (अतल) महाद्वीप के समुद्र मे डूबने का वर्णन किया है यह घटना वैवस्वतमनु के समय (१२००० वि० पू०) जलप्रलय काल मे सम्भव है या उसके बाद की हो सकती है, परन्तु इससे पूर्व 'अतलमहाद्वीप' जो योरोप और अमेरिका के मध्य मे था, (जहाँ आज अटलाटिक महासागर है), और मयादि असुरों की नगरियाँ वहाँ थी, अत. आज उपर्युक्त सप्त महाद्वीपो (प्लक्षादि) की ठीक ठीक पहिचान एक दुःस्वप्नमात्र है। प्रियव्रतपुत्रहव्य या भव्य के सातपुत्रो के नाम पर शाकद्वीप के सातवर्ष (देश) प्रथित हुए—जलदवर्ष, कुमारवर्ष, सुकुमारवर्ष मणीवकवर्ष, कसुमवर्ष, मोदकवर्ष और महद्रुमवर्ष।

द्युतिमान् ने सातपुत्रो के नाम पर क्रौंचद्वीप के सातवर्ष प्रसिद्ध हुये कुशल, मनुग, उष्ण, पावन, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभिसज्ञकवर्ष।

ज्योतिष्मान् के सातपुत्रों के नाम पर कुशद्वीप के सात जनपद प्रसिद्ध हुए—उद्भिद, वेणुमान्, वैरथ, लवण, धृति, प्रभाकर और कपिल।

वपुष्मान् के सातपुत्रों के नाम शाल्मलिद्वीप के सात देश थे— श्वेत, हरित, सुहरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ।

मेधातिथि के सातपुत्रों के नाम पर प्लक्षद्वीप के सात देश विख्यात हुए— ज्येष्ठ, शान्तभव, शिशिर, सुखोदय, नन्द शिव, क्षेमक और ध्रुव।

पुष्करद्वीप मे सवन के दोपुत्रो के नाम पर केवल दो महाखण्ड प्रसिद्ध हुये—धातकिखण्ड और महावीतखण्ड। जम्बूद्वीप मे आग्नीध्र के नौपुत्रों के नाम पर निम्न सातवर्ष प्रसिद्ध हुए— नाभि (हिम) वर्ष किंपुरुष या हेमकूटवर्ष, हरिवर्षया नैषधवर्ष, सुमेरु या इलावृतवर्ष, रम्यवर्ष या नीलवर्ष, हिरण्यवान् या श्वेतवर्ष, शृगवान् या उत्तरकुरुवर्ष, माल्यवान् या भद्राश्ववर्ष, केतुमाल या गन्धमादनवर्ष।

जम्बूद्वीप के नौ भाग हुए और उनके दो दो नाम होने का कारण है कि देश पर्वत के नाम पर भी प्रसिद्ध हुआ जैसे हिमालय के नाम पर हिमवर्ष और आग्नीध्रपुत्र नाभि के नाम पर नाभिवर्ष, पुनः नाभि के पौत्र भरत

के नाम पर इस वर्ष का नाम भारतवर्ष प्रथित हुआ जो[1] आज भी इसी नाम से जगत्प्रसिद्ध है। हरिवर्ष को तुर्किस्तान, इलावृत को पामीर (मेरुपर्वत), रम्यक को चीनी तातार, हिरण्यवान् को मंगोलिया, उत्तरकुरु को साइबेरिया, भद्राश्व को चीन और केतुमाल को वंक्षुप्रदेश (ईरान) कहते हैं।

प्रियव्रतवंशवृक्ष

१. स्वायम्भुव मनु=वैराजपुरुष
२ प्रियव्रत
३. आग्नीध्र
४ नाभि
५. ऋषभ
६. भरत
७. सुमति
८. तेजस
९. इन्द्रद्युम्न
१०. परमेष्ठी
११. प्रतीहार
१२. प्रतिहर्त्ता
१३. उन्नेता
१४. भूमा
१५. उद्गीथ
१६. प्रस्तावि
१७. विभु
१८. पृथु
१९ नक्त
२० गय
२१. नर
२२ विराट्
२३. महावीर्य

१, ब्रह्माण्डपुराण, प्रथमभाग, अनुषंगपाद, अध्याय १३-१५,

२४. धीमान्

२५. महान्

२६. भौवन

२७. त्वष्टा

२८. विरजा

२९. रजा

३०. शतजित्

३१. विश्वज्योति आदि शतपुत्र या सैंकड़ो वंशज ।

जैनग्रन्थो मे ऋषभ की पत्नियो के नाम यशस्वती और सुनन्दा है ।

उपर्युक्त वंशावली मे नाभि, ऋषभ, भरत और सुमति के अतिरिक्त अन्य किसी राजा के विषय मे किसी घटनाक्रम का सकेत नही प्राप्त होता ।

राजा नाभि (या अजनाभ) की पत्नी मेरुदेवी से ऋषभदेव की उत्पत्ति हुई । अजनाभ से ही पूर्वकाल मे भारतवर्ष का नाम 'अजनाभवर्ष' था[1] भागवतपुराण (पचम स्कन्ध) मे विस्तार से ऋषभ का इतिहास वर्णित है, तदनुसार उनके सौ पुत्र हुए ।[2] ऋषभ को सर्वक्षत्रों का पूर्वज और आदिदेव कहा गया हैं ।[3] ऋषभ की पत्नी का नाम जयन्ती था ।[4] भागवतपुराण (५।४) मे उनके सौ पुत्रो मे से केवल १९ के नाम लिखे मिलते हैं— (१) भरत (२) कुशावर्त (३) इलावर्त (४) ब्रह्मावर्त (५) मलय (६) केतु (७) भद्रसेन (८) इन्द्रस्पृक् (९) विदर्भ (१०) कीकट (११) कवि (१२) हरि (१३) अन्तरिक्ष (१४) प्रबुद्ध (१५) पिप्पलायन (१६) आविर्होत्र (१७) द्रुमिल (१८) चमस (१९) करभाजन ।

---

१ अजनाभ नामैतद् वर्ष भारतमिति यद् आरभ्य व्यपदिशन्ति । (भागवत० ५।७।३),

२. ऋषभ पार्थिवश्रेष्ठ सर्वक्षत्रस्य पूर्वज । ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशतानुजः । (ब्रह्माण्ड० १।२।१४।६०)

३. क्षात्रोधर्मो तथादिदेवात् प्रवृत. पश्चादन्ये शेषभूताश्च धर्माः । (महाभारत शा० ६४।२०)

४. भागवतपुराणकार को यहा इन्द्रपुत्री जयन्ती का भ्रम हुआ है ।

भरत और अन्तिम नौ (दश) पुत्र श्रमणधर्म के अनुयायी और प्रचारक हुए, शेष ८१ पुत्र महाशालीन, महाश्रोत्रिय, यज्ञशील ब्राह्मण हुए।

भगवान्‌ऋषभदेव स्वयं श्रमणधर्म के आदिप्रवर्तक थे, अत उ हे जैनी प्रथम तीर्थंकर और आदिदेव मानते है। ऋग्वेद (१०।१३६।२) मे वातरशना पिशंग मुनियो का उल्लेख मिलता है—

"मुनयो वातरशनाः पिशंगा वसते मला.।"

यही बात भागवत (५।३।२०) मे ऋषभपुत्रो और उनके अनुयायियों के सम्बन्ध मे कही है—"मेरुदेव्या धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनाना श्रमणामूर्ध्वरेतसा शुक्लया तन्वाततार।"

जैनग्रन्थो के अनुसार मरीचिऋषि ने ऋषभ से विद्रोह किया, वहाँ मरीचि को तपोभ्रष्ट मुनिवेशी बताया गया है। इससे प्रतीत होता है कि ऋषभ के मरीच्यादि ऋषियो से मतभेद एव तज्जन्यसघर्ष हुआ। जैनग्रन्थों मे ऋषभपुत्र भरतानुज बाहुबली[1] की विशेष महिमा है और भरत के सघर्ष से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है। पुराणो मे बाहुबली का कोई उल्लेख नही है, परन्तु जैनग्रन्थो मे भरत के ऊपर बाहुबली की महान् विजय एवं उत्कर्ष दिखाया गया है बाहुबली की गोमटेश्वर (आन्ध्रप्रदेश) मे विशाल मूर्ति उनकी ऐतिहासिकता की पुष्टि करती है। विष्णुपुराण[2] मे एक हरिणी के गर्भपातजन्य ममता से भरत को ससार से विरक्ति होगई और मुनिधर्म का पालनकरने लगे। यहाँ पर भरत को सौवीरनरेश और परमर्षि कपिल का समकालिक बताया गया है। इसमे भरत की सौवीरनरेश से समकालिकता तो भ्रामक है परन्तु कपिल से समकालिकता उचित एवं ऐतिहासिक है। भरत और कपिल का समय स्वायम्भुवमनु से छ. पीढ़ी पश्चात् और लगभग डेढ दो सहस्राब्दी पश्चात् अर्थात् २६००० वि० पू० से २८००० वि० पू० था। आदिम प्रजापति दीर्घजीवी होते थे, बाइबिल के अनुसार स्वायम्भुव (आदम) की आयु ही ९३० वर्ष थी, अन्य ऋषभादि पाँच पुरुष भी दीर्घजीवी होंगे, परन्तु हमने उनकी अवधि ६०० वर्ष ही मानी है, यद्यपि कुछ अधिक होनी चाहिए।

---

१. जैनग्रन्थो मे ऋषभ के इन पुत्रो के नाम मिलते है—भरत, बाहुबली, वृषभसेन, अनन्तविजय, अनन्तवीर्य, अच्युतवीर।
(अभिधर्मराजेन्द्रकोष पृ० ११२९)

२. विष्णु० (३।१३ अध्याय)।

जैनग्रन्थों के अनुसार ऋषभ् ब्राह्मीलिपि एव अंकों के आविष्कारक थे एवं अपने पुत्रों को शिल्प एवं विज्ञान की शिक्षा दी। उन्होंने कृषि, वाणिज्यादि का प्रवर्तन किया।

भरत के पुत्र सुमति जैनियों द्वारा द्वितीय तीर्थंकर माने जाते हैं। पुराणों में प्रियव्रत की उपरोक्त वंशावली पूर्ण हो, ऐसा समझना महती भ्रान्ति होगी, क्योंकि स्वयं पुराणकारों ने कहा है कि पूर्णवंशो का वर्णन करना असंभव सा है। हमारा अनुमान है केवल आधे नाम ही उल्लिखित है, पूर्ण नाम ६० लगभग होने चाहिए। मनु से प्राचेतसदक्ष तक ७१ मनु या मानुष[1] (पीढ़ियाँ) हुईं, इससे भी हमारे अनुमान की पुष्टि होती है। मनु या मानुष या मन्वन्तर का अर्थ है पीढ़ी का अन्तर।

उपर्युक्त प्रियव्रतवंशावली अपूर्ण है।, इसकी पुष्टि महाभारत के एक प्रकरण से होती है, जहाँ पर शतज्योति के पूर्वज देवभ्राट्, सुभ्राट् और दशज्योति तथा वंशज सहस्रज्योति आदि बताये गये हैं, जिनसे इक्ष्वाकु आदि क्षत्रियों के अनेक वंश प्रादुर्भूत हुए।[3]

प्रियव्रतवंश के अन्तिम शासक शतज्योति आदि विवस्वान् आदि आदित्यों के पूर्ववर्ती थे जो चाक्षुषमन्वन्तर मे या पूर्वदेवयुग मे १४००० वि० पू० हुये। शतज्योति आदि से विपुल प्रजायें उत्पन्न हुई, जैसा कि महाभारत के प्रारम्भिक अध्याय से ज्ञात होता है। पुराणादि मे इन वंशो का विस्तृत एवं स्पष्ट वर्णन नही मिलता।

ध्रुव का समय—प्रियव्रत के अनुज उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थी, सुमति और सुरुचि। सुरुचि के उत्तमनाम का पुत्र और सुमति के ध्रुव

१. तस्यैकमप्ततियुग मन्वन्तरमिहोच्यते। (हरि० १।२।४)

२. भरतस्यात्मजसुमतिरित्यभिहितो यमु ह वात्र केचित् पाखण्डिन ऋषभ पदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमास्नाता देवता स्वमनीषया पापीयस्या कल्पयन्ति।

३. देवभ्राट्तनयस्तस्य सुभ्राडिति ततः स्मृत। सुभ्राजस्तु त्रय पुत्रा प्रजावन्तो बहुश्रुता दशज्योति· शतज्योति सहस्रज्योतिरेवच। दशपुत्र सहस्राणि दशज्योतेर्महात्मन. बहुश्रुता.। ततो दशगुणाश्चान्ये शतज्योतेरिहात्मजा। भयस्ततो दशगुणा. सहस्रज्योतिषः सुता। सम्भूताः बहवो वंशा भूतसर्गा सुविस्तरा ॥ (आदिपर्व १।४३-४७),

हुआ।[1] यद्यपि ध्रुव ज्येष्ठ भ्राता था, परन्तु राजा उत्तानपाद ने पहले उत्तम को ही राजा बनाया। पुराणो में, यद्यपि स्वारोचिष को द्वितीय मनु माना है, परन्तु कालक्रम की दृष्टि से उत्तम ही द्वितीय मनु था, अतः हम उत्तम का द्वितीय मनु के रूप मे यथास्थान उल्लेख करते हैं। ध्रुव के वंश की भी यथास्थान चर्चा की जायेगी।

स्वायम्भुवमनु के लगभग सहस्रवर्ष पश्चात् ध्रुव और उत्तम हुए अत इन दोनों का समय २८००० वि पू० था।

भागवतपुराण (४।१०) में ध्रुववर्णन मे ज्योतिषविद्या का समिश्रण कर दिया है—

> प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः।
> उपयेमे भ्रमिनामतत्सुतौ कल्प वत्सरौ॥

यहाँ पर शिशुमार, पुराणों मे उल्लिखित हमारी नीहारिका (नक्षत्रमण्डल) का नाम है, भूमि पृथ्वी की संज्ञा है और कल्प और वत्सर कालमात्र है। भागवत मे ही ध्रुव द्वारा वायु की पुत्री इला से उत्कल नाम के पुत्र उत्पन्न होने का उल्लेख है।[2] परन्तु अन्य प्राचीनपुराणो मे ध्रुव की पत्नी का नाम शम्भु है,[3] ब्रह्माण्ड मे उसका नाम भूमि है।[4] शम्भु के दो पुत्र हुए—श्लिष्टि और भव्य। श्लिष्टि ने छाया या सुच्छाया से पाँच पुत्रो को उत्पन्न किया—प्राचीनगर्भ, वृक, वृषभ, वृकल और धृति।[5] प्राचीनगर्भ से सुवर्चा (पत्नी) ने उदारधी से एक पुत्र उत्पन किया, जो एक इन्द्र था[6] उदारधी ने भद्रा से दिवजय को उत्पन्न किया, दिवजय की पत्नी वरागी ने रिपु और रिपुञ्जय को उत्पन्न किया। इसके अनन्तर की पीढियाँ अर्थात् न्यूनतम ६-३५ तक चक्षुपर्यन्त पीढियो के नाम पुराणो मे लुप्त हैं, चक्षु के पुत्र

१. हरिवंश मे सुनीति के स्थान पर सूनृता नाम हैं, जिसके चार पुत्र हुये—'उत्तानपादाच्चतुर सूनृताजनयत् सुतान्। (हरि० १।२।७) उनके नाम थे—ध्रुव, कीर्तिमान्, शिव और जयस्वति।
२. भागवत (४।१०।२),
३. हरि० १।२।१४)
४. ब्रह्माण्ड (१।२।३६।९६)
५. हरिवंश (१।२।१५ औरब्रह्माण्ड० (१।२।३६।९८),
६. नाम्ना उदारधिय पुत्रमिन्द्रो य पूर्वजन्मनि (ब्रह्माण्ड० १।२।३६-३८)

चाक्षुष से षष्ठ मन्वन्तर प्रसिद्ध हुआ, जिसका विवेचन यथास्थान किया जायेगा।

उत्तममनु—कालक्रम की दृष्टि से उत्तम द्वितीय मनु था। स्वायम्भुव मनु और उत्तममनु में अधिक से अधिक एक सहस्रवर्ष का अन्तर था, यद्यपि उत्तम स्वायम्भुव मनु का पौत्र था। अतः मन्वन्तरों में करोड़ों (३० करोड़ ६७ लाख २० सहस्र) वर्षों की कल्पना कितनी हास्यास्पद है, यह विज्ञ पाठक समझ सकते हैं।

उत्तम के तेरह पुत्र हुये—अज, परशु, दिक्, दिकोर्पाध, नय, नवाम्बुज, अप्रतिम, गज, विनीत, सुकेत, सुमित्र, सुमति और प्लुति।[1] आदिम किसी वासिष्ठ के पुत्र सप्त वासिष्ठ ऋषि उत्तम मनु के समकालिक सप्तर्षि थे।[2] इनके नाम पुराणो मे अन्यत्र उल्लिखित है—रक्ष, गर्त अर्धबाहु, सवन, पवन सुतपा और शकु। आदिम वसिष्ठवंशवर्णन के अवसर पर इनका उल्लेख किया जा चुका है।

उत्तम के समकालिक देवों के पाँच गण थे—सुधामा, देव, अतनि, शिव और सत्य, इनमे प्रत्येक के साथ द्वादश देव सम्मिलित थे। इन में ६० देवो का ऐतिहासिक महत्व अज्ञात होने के कारण उनका नामोल्लेख अनावश्यक है।

भागवतपुराण (४।१०।३) का यह उल्लेख तथ्यों के विपरीत है कि उत्तम का विवाह नही हुआ था और वह पुण्यजन यक्षो द्वारा मृगयारत वन मे मारा गया।[3] यह कल्पना ध्रुव की काल्पनिक वैष्णवभक्ति और प्राचीनता के अन्धकार मे की गई है, क्योकि वैष्णवपुराणो के अनुसार ध्रुव विष्णुभक्त था, इसलिए उसके वैमातृज भ्राता एव माता की उपर्युक्त दुर्गति प्रदर्शित की गई है। विष्णु की भक्ति का अस्तित्व द्वापरयुग के पूर्व संभवतः वासुदेवकृष्ण से पूर्व नही था, परन्तु देवयुग मे देवमाता अदिति ने नारायणसंज्ञक साध्यदेव की उपासना की थी।[4] परन्तु, नारायणभक्ति

१. वायु० (अध्याय ६२),
२. ब्रह्माण्ड० (१।२।३६।३८),
३. उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा।
हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्य गतिंगता॥
४. अदितिः पुत्रकामाः साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत् (तै० सं० ६।५।६।१)

का बहीरूप उस समय नहीं था, जो कलियुग में हुआ। विष्णु का जन्म मनु या ध्रुव से १६००० वर्ष पश्चात् हुआ अतः ध्रुव की विष्णुभक्ति एक कोरी कल्पनामात्र है। आगे कथन करेगे कि विष्णु का जन्म देवासुर-युग के अन्त में हुआ, प्रह्लाद से लगभग एक सहस्र पश्चात्, अतः प्रह्लाद, की विष्णुभक्ति भी नितान्त कल्पनामात्र है। विष्णुपुराण और भागवतपुराण की रचना के समय वैष्णवसम्प्रदाय का प्राबल्य था, अतः किसी भी तपस्वी की तपस्या को, पुराणकारों ने वैष्णवभक्ति के रंग मे रंग दिया। ध्रुव ने बालकाल मे लगभग ३१ वर्ष कठोर तपस्या की होगी, इसीलिए प्राचीन पुराणों में लिखा है—

> ध्रुवो वर्षसहस्राणि दश दिव्यानि वीर्यवान्।
> तपस्तेपे निराहार प्रार्थयन् विपुलं यशः।[1]

ध्रुव के तेज, प्रताप और यशः को देखकर ही, उनसे लगभग पन्द्रह सहस्रवर्ष पश्चात् होने वाले देवासुरगुरु शुक्राचार्य ने यह गाथा रची—

> तस्यातिमात्रामृद्धि च महिमान निरीक्ष्य च।
> देवासुराणमाचार्य श्लोकमप्युशना जगौ॥
> अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो बलम्।
> यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुव सप्तर्षयः स्थिताः॥(हरि०१।२।१३-१४)

देवासुरयुग मे जब पार्थिव ऐतिहासिक महापुरुषो के नाम पर दिव्यनक्षत्रों का नामकरण किया गया, तब ही उशना शुक्राचार्य ने यह श्लोक गाया होगा। अधिकाश ग्रहनक्षत्रो के नाम देवासुरयुग के महापुरुषो के नाम पर हैं, परन्तु ध्रुवनक्षत्र का नाम ही अतिपुरातन प्रजापतियुगीन महापुरुष के नाम पर है। इससे ध्रुव की महिमा प्राकाशित होती है कि देवासुर युग से सोलहसहस्रवर्ष पश्चात् भी ध्रुव का गौरव देदीप्यमान, ज्वलन्त या यथावत् स्मृत था और २६ सहस्रवर्ष व्यतीत होनेपर आज भी धूमिल नही है।

स्वारोचिष मनु—मार्कण्डेयपुराण (अध्याय ५४) मे कथा है कि वरूथिनी नामक अप्सरा ने कलिगन्धर्व के समागम से स्वारोचि का जन्म

---

१ ब्रह्मा०३० (१।२।३६।६०-६१)। हरिवंश मे तप की अवधि दिव्य तीन सहस्रवर्ष बताई गई है —(१।२।१० हरिवंश),

हुआ। स्वारोचिषमुनि की तीन पत्नियाँ हुई मनोरमा, कलावती, और विभावरी इनसे स्वारोचि ने तीन पुत्र उत्पन्न किये विजय, मेरुनन्द और प्रभाव। स्वारोचि ने छः सौ वर्ष पर्यन्त भोग किया। और तीन पुरो का निर्माण किया। पूर्व में कामरूपपर्वतपर विजयपुर विजय हेतु, उत्तरदिशा में नन्दवती नगरी मेरुनन्द को और दक्षिणा मे 'तालसंज्ञक' नगर प्रभावसंज्ञकपुत्र को दिया। तदन्तर मृगी अप्सरा से स्वारोचि ने द्युतिमानसंज्ञकपुत्र उत्पन्नकिया उसी का नाम स्वारोचिषमनु हुआ।

अन्यत्र स्वारोचिषमनु को स्वायम्भुव मनु के अन्वय (वंश) का ही ही कहा है—स्वारोचिष, उत्तम, रैवत और चाक्षुष मनु स्वायम्भुव मनु के ही अन्वय है।[1]

स्वारोचिष के समय मे देवो के दो गण थे—वासिष्ठ और पारावत इनमें द्वादश २ कुल २४ देवता थे, जिन्हें छन्दज भी कहा जाता था। इन देवों को ऋतु (यज्ञ) के पुत्र भी कहा गया हैं। इनके नाम है—वशिष्ठगण में दिवस्पर्श, जामित्र, गोपद, भासुर, अज, भगवान्, द्रविण, आयु, महौजा, चिकित्वान् निभृत और अंश।

पारावतगण मे द्वादश देव थे—प्रचेता, विश्वदेव, समञ्जस, विश्रुत, अजिह्म, अरिमर्दन, आयु, दान, महिमान, दिव्यमान, अज; द्रव, यवीय, होता, और यज्वा।[2]

स्वारोचिषमनु के समकालिक देवेन्द्र का नाम विपश्चित् थ।[3] उपर्युक्त देवताओ की संज्ञा तुषित थी, क्योंकि ऋतु ने ये तुषितापत्नी से उत्पन्न किये थे। भागवत में इनके नाम तोष, प्रतोष इत्यादि हैं।[4]

इस मन्वन्तर के ऋषि थे ऊर्ज वासिष्ठ, स्तम्ब काश्यप, प्राण (या द्रोण) भार्गव, ऋषभ आङ्गिरस, दत्तात्रिपौलस्त्य, निश्चलआत्रेय और अर्वरीवान्

---

१. स्वायम्भुवो मनुस्तात मनुः स्वारोचिषस्तथा।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥ (हरि० १।७।४) तथा विष्णु पु० (३।१।२४)

२. वायुपुराण (अध्याय ६२)। ब्रह्माण्ड (१।२।३६।१६),

३. तुषितायां समुत्पन्नाः ऋतोः पुत्रा स्वारोचिषः॥ (१।२।३६।८)

४. भाग० (४।१।७),

या चाक्षुषौ नह।[1] अन्य पुराणों (यथा हरिवंश १।७।१२ एवं विष्णु० ३।१।११) में इनके नाम भ्रष्ट हुए हैं, यथा हरिवंश में उनके नाम-और्व, स्तम्ब, प्राण, दत्त, बृहस्पति और काश्यप। ये नाम भ्रामक है अतः त्याज्य है।

स्वारोचिष मनु के दश या नौ पुत्रों के नाम भी विभिन्न पुराणों में पर्याप्त भ्रष्ट हुये हैं—ब्रह्माण्ड में नाम[2] हैं—चैत्र, किंपुरुष, कृतान्त, विभृत, रवि, बृहदुक्थ, नव, सेतु और श्रुत (नौ पुत्र), वायुपुराण मे ये नाम मिलते जुलते हैं—चैत्र, कविस्त, कृतान्त, विभृत, रवि, बृहत् द्रुह, नव और शुभ।[3] परन्तु हरिवंश[4] के नामो में पर्याप्त अन्तर है—हविर्ध्र, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, अयस्मय, प्रथित, नमस्य, ऊर्ज और नभ। यहा 'आपोमूर्ति' एक नाम को आप और मूर्ति मे विभक्त करके दश सख्या पूर्ति कर दी है। वस्तुतः मनु के नौ पुत्र थे।

उपर्युक्त सप्तर्षियों के नामों से सिद्ध है कि वसिष्ठ, कश्यप, भृगु, अङ्गिर आदि के वंशज स्वारोचिष मनु के समकालीन थे, अतः देवासुरजनक कश्यप आदिम कश्यप नहीं थे, उनका नाम परमेष्ठी था। वैदिकग्रन्थो मे भी उनका नाम 'परमेष्ठी' ही मिलता है, कश्यप नही—

परमेष्ठीनो वा एष यज्ञोऽग्र आसीत्—तेन प्रजापति......।[5] उपर्युक्त सप्तर्षियो का समय पृथु आदि से बहुत पूर्व था। स्वारोचि मनु का समय २८००० वि०पू० होना चाहिए, स्वायम्भुव मनुसे लगभग १००० वर्ष पश्चात्।

तामस मनु—यह मनु भी प्रियव्रत का वंशज था। तामस के दश पुत्र हुए—द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, कल्माष, तन्वी, धन्वी और परंतप। वस्तुत ये सब मनु के वंशज थे, केवल पुत्र नहीं जिसप्रकार आग्नीध्र को स्वायम्भुवमनु के पुत्र कहा गया है, परन्तु ये के पौत्र।

---

१. वायु० (अध्याय ६२) वायुपुराण (६२ अध्याय)
२. ब्रह्माण्ड (१।२।३६।१६),
३. वायुपुराण (६२ अध्याय)
४. हरिवंश (१।७।१४),
५. तै० सं० (१।६।१।२७)

पुलस्त्य के पुत्र (या वंशज) सत्य, सुरूप, सुधिय और हरि—ये देवताओं के चार गण थे, एक-एक गण मे पच्चीस देवता थे, अत. १०० देव हुए। सप्तर्षियों के नाम—काव्य आङ्गिरस पृथुकाश्यप, अग्नि आत्रेय, ज्योतिर्धाम भार्गव, चरकपौलह, पीवरवासिष्ठ और चैत्रपौलस्त्य।[1] हरिवंश (१।७।२१) मे इनके नाम है—काव्य पृथु; अग्नि, जन्यु धाता, कपिवान्, अकपीवान्। इन्द्र का नाम शिवि था।

तामसमनु, स्वायम्भुव, स्वारोचिष और उत्तममनु के कुछ शताब्दी पश्चात् हुए, इनका समय भी २८००० वि० पू० होना चाहिए।

मार्कण्डेयपुराण के अनुसार स्वराष्ट्र ने दृढधन्वा की पुत्री उत्पलावती से तामसमनु को उत्पन्न किया।[2] परन्तु उनके वंश का पूर्णवंशवृक्ष न मिलने के कारण क्रम नही जोडा सकता।

रैवतमनु—ऋतवाक् नाम के मुनि ने रेवती नाम की पुत्री का विवाह दुर्गम मशक राजा से, किया, जो प्रियव्रतवंश के राजा विक्रमशील की कालिन्दीनाम की पत्नी से उत्पन्न हुए थे। दुर्गम की अन्य पत्नियां थीं—सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरी, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा, विपाटा, और नन्दिनी। दुर्गम ने रेवती से रैवतमनु को उत्पन्न किया।[3]

रैवतमनु के सप्तर्षि थे—वेदबाहु, यदुध्र, वेदशिरा, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, सोमपुत्र ऊर्ध्वबाहु, सत्यनेत्र अत्रेय।[4] ब्रह्माण्ड मे इनके नाम है—हिरण्यरोमा आङ्गिरस, वेदश्रीभार्गव, ऊर्ध्ववाहुवासिष्ठ, पर्जन्यपौलह, सत्यनेत्र आत्रेय, पौलस्त्य देवबाहु और सुधामा काश्यप।[5] युग के इन्द्र का नाम विभु था।

---

१. मनो, स्वायंभुवस्यैते दश पुत्रा महौजस. (हरि० १।७।११) ब्रह्माण्ड (१।२। ३६) मे तामस के पुत्रो के नाम हैं—जानुजघ, शान्ति, नर, ख्याति, शुभ, प्रियभृत्य, परीक्षित्, प्रस्थल, दृढेषुधि, कृशाश्व, कृतबन्धु, (११ पुत्र), ब्रह्माण्ड० (१।२।३६।४८)
२. मा० पु० (अध्याय ६६),
३. मा० पु० (अध्याय ६७),
४. हरि० (१।७।२५-२६),
५. ब्रह्मा० (१।२।३६।६६, ६९)

चरिष्णुवसिष्ठ के पुत्र या वंशज चार चार देवगण थे—अमृतात्मा, आभूतरज, विकुण्ठ और सुमेधा।[1] इनमे प्रत्येक गण मे चौदह देव थे। रैवत के पुत्रो के नाम थे—धृतिमान्, अव्यय, मुक्त, तत्वदर्शी, निरुत्सुक, अरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक्, परहा, शुचि, बलबन्धु, निरामित्र, कबु, शृग, और धृतवान्।[2]

रैवत का वायुपुराण मे 'चरिष्णु' नाम भी मिलता है।[3]

रौच्यमनु—आदिम दश विश्वसृजों या प्रजापतियो मे पुलह के पुत्र या वंशज रुचि प्रजापति थे।[4] स्वयम्भुव मनु की पुत्री आकूति का विवाह रुचि के साथ हुआ था।[5] अत. रुचि के वशज रौच्य या तो कर्दम का नाम है या कोई अन्य वशज। ब्रह्माण्ड और वायु मे स्पष्ट रूप से रौच्य को रुचि का पुत्र और पुलह का पौत्र बताया गया है, इतने स्पष्ट वर्णन से सिद्ध है कि रौच्य मनु का समय स्वायम्भुव मनु से कुछ शताब्दी का अनन्तर ही था और वे चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्ण आदि सभी मनुओ से बहुत पूर्व हो चुके थे। रौच्य मन्वन्तर के देवताओ को भी ब्रह्मा के मानसपुत्र और पुलहपुत्र रुचि के पुत्र कहा है अतः इन्हे भविष्य का मनु मानना महती विडम्बना और उत्तरकालीन भ्रान्ति है।

रौच्य मनु के समकालिक सप्तर्षि, आदिम दश प्रजापतियो, वसिष्ठादि के पुत्र या वशज थे, न कि प्रचेना वरुण के पुत्र द्वितीय जन्म के वसिष्ठादि के पुत्र; इस तथ्य से भी रौच्य मनु का समय वैवस्वतादि मनुओं से बहुपूर्व सिद्ध होता है। रौच्य मनु का समय स्वायम्भुव मनु के पश्चात् २८००० वि० पू० पश्चात् का नहीं हो सकता क्योंकि रौच्यमनुसमकालिक सप्तर्षि आदिम प्रजापतियों के निकटतम वशज थे।

वे सप्तर्षि थे—धृतिमान् आङ्गिरस, अव्ययपौलस्त्य, तत्वदर्शीपौलह, निरुत्सुकभार्गव, निष्प्रकम्प्य आत्रेय, निर्मोहकाश्यप और सुतपा वासिष्ठ।

---

१. हरि० (१।७। २६),
२. ब्रह्माण्ड० (१।२।३६। ६३-६४)
३. वायु० (अ० ६२),
४. पुलहात्मज पुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुताः ॥ (ब्रह्माण्ड० ३।४।१।१०१),
५. रुचेः प्रजापतेश्चैव आकूतिं प्रत्यपादयत्। (ब्रह्माण्ड० १।२।२३),

उपर्युक्त रौच्य के पिता साक्षात् रुचि प्रजापति न होकर उनके कोई वंशज होंगे, जिनका विवाह एक अप्सरा से हुआ जो विंसीवारुण पुष्कर की पुत्री प्रम्लोचना नाम की सुन्दरी थी, यही रौच्य मनु की माता थी।[1]

रौच्य मनु के पुत्रों या वशजों के नाम थे—चित्रसेन, विचित्र, नय, धर्म, धृत, भव, अनेक, संभव, सुरस और निर्भय।

उस समय 'दिवस्पतिसंज्ञक' महाबली देवेन्द्र था, जो सुत्रामाण, सुधर्मा और सुकर्मासंज्ञक आज्यादिभक्षी ३३ देवो का शासक था। सुत्रामादि उपर्युक्त देवों के तीन प्रसिद्ध गण थे।

भौत्यमनु—हरिवंश (१।७।४५) में रुचि की पत्नी भूति में उत्पन्नपुत्र ही भौत्यमनु हुआ।[2] अतः रौच्य और भौत्य समकालिक मनु थे, पुनः एक पिता के दो पुत्रों मे कितने वर्षों का अन्तर हो सकता है, सम्यग्बोध्य तथ्य है, इनमे तो शताब्दियो का क्या, कुछ वर्षों का ही अन्तर था; भौत्यमनु को भविष्यकालिक मनु मानना पूर्ववत् विडम्बना एवं भ्रान्तिमात्र है।

मार्कण्डेयपुराण (अ० ९१) में भौत्य को अङ्गिरा के पुत्र भूति का पुत्र बताया गया है। भूति के अनुज का नाम सुवर्चा था। इन्हीं भूतिमुनि का पुत्र भौत्य मनु हुआ।

ब्रह्माण्डपुराण (३।४।१।११६) मे रौच्य और भौत्य मनुओं को क्रमशः पौलह (पुलहवशीय) और भार्गववशीय बताया गया है।[3] अतः भौत्य मनु का वंश विवादास्पद है, वे संभवत भार्गव आङ्गिरसवश के ही थे, हरिवश मे उन्हे रुचि का पुत्र बताया गया है, वह भ्रान्ति ही प्रतीत होती है। भौत्यमनु भूति ऋषि के पुत्र ही थे।

भौत्यमनु समकालिक सप्तर्षि थे—अग्नीध्रकाश्यप, मागध पौलस्त्य, अग्निबाहुभार्गव, शुचिआङ्गिरस, शुक्रवासिष्ठ, मुक्तपौलह, श्वाजित आत्रेय।[4] श्वाजित का पाठ अन्यत्र अजित है।[5]

---

१. प्रम्लोचनानामतन्वङ्गीतत्समीपे वराप्सराः।
जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेणा महात्मना ॥ (मा० पु० ९०।१,३),

२. भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचेः सुतः ॥

३. रौच्यो भौत्यश्च यौ तौ मतौ पौलह भार्गवौ।

४. ब्रह्माण्ड० (३।४।१।११२-११३)

५. हरि० (१।०।८४) ;

भौत्य मनु समकालिक देवो के पाँचगण थे—चाक्षुष, पवित्र कानिष्ठ भ्राजित और वाचावृद्ध। स्वायम्भुवमन्वन्तर के ऋषियो को ही वाचावृद्ध कहा जाता था।[1] इससे भी भौत्यमनु और स्वायम्भुव मनु के समयो में नैकट्य सिद्ध होता है।

चक्षु या चाक्षुष मनु औत्तानपादि ध्रुव का वंशज था, भौत्य मनु के समकालिक चाक्षुष देवो का एक गण था, इससे भौत्यमनु का समय निश्चित करने मे सहायता मिलती है। वर्तमान पुराणपाठो के अनुसार चक्षु का समय स्वायम्भुव मनु से ३६ पीढी पश्चात् और दक्ष प्राचेतस से दो सहस्र पूर्व होना चाहिए अर्थात् चाक्षुषमनु का समय १६००० वि० पू० होना चाहिए।

प्रजापतियुग या आदिमयुग मे सभी मनु प्रमुखराष्ट्रो के वंशप्रवर्तक प्रशासक थे, यथा वैवस्वतमनु ने भारतवर्ष मे शासन का प्रवर्तन किया और अनेक क्षत्रिय जातियाँ उनसे उत्पन्न हुई, इसी प्रकार प्राचीन मिश्र देश का आदि प्रवर्तक कोई मनु ही था, इसी प्रकार अन्य मनु गण प्राचीनदेशों के आदिमवंश प्रवर्तकप्रशासक थे, वे किन किन देशो के क्षत्रधर्मप्रवर्तक थे, आज इस इतिहास से हम प्रायेण अनभिज्ञ ही हैं, सभवँ है भविष्य मे कुछ तथ्यो से हम अवगत हो जायें।

चाक्षुषमनु का वृतान्त और कालनिर्णय

चाक्षुष मनु की तिथि और इतिवृत निश्चित करने से पूर्व, तत्सम्बन्धी वंशवृक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे तिथ्यादि निर्णय करने मे सहाय्य प्राप्त हो—

(१) स्वायम्भुवमनु
|
(२) उत्तानपाद
|
(३) ध्रुव
|

1. वाचावृक्षानृषीन्विद्धि मनोःस्वायम्भुवस्य वै। (ब्रह्माण्ड० ३।४।१।१०६),

(४) श्लिष्टि

(५) प्राचीनगर्भ (+सुवर्चा) | वृषभ | वृक | वृकल | धृति

(६) उदारधी (+भद्रा)

(७) दिवंजय (+वरांगी)

(८) रिपु (+बृहती)

(३८) चक्षु (वारणी पुष्करिणी) (८ से ३७ पर्यन्त पीढ़ियां अज्ञात)

(३९) चाक्षुषमनु+नड्वला

(४०) उरु | पुरु | शतद्युम्न | तपस्वी | सत्य-वाक् | कृति | अग्नि ष्टुत् | अत्रि-रात्र | सुद्युम्न | अभिमन्यु

(४१) अग | सुमनस | ख्याति | गय | शुक्र | अजाजिन

(४२) वेण

(४३) पृथु

(४४) अन्तर्धान

(४५) हविर्धान

(४६) प्राचीनबर्हि

(४७) प्रचेतस

(४८) दक्ष प्राचेतस

पुराणो मे रिपु से चक्षु पर्यन्त (८ से ३७ पीढियां ३००० वर्ष) अज्ञात या लुप्त हैं। जो प्रियव्रत की वंशावली में समुपलब्ध है। वेद मे मानुषयुग या मनु का समय १०० वर्ष है, चाक्षुषमनु, पुराणठाठानुसार दक्षप्राचेतस से १० पीढ़ी पूर्व हुआ जिसका समय १००० वर्ष हुआ, क्योंकि २३ पीढियाँ लुप्त हैं तो चाक्षुषमनु से दक्ष तक न्यूनतम २३ पीढ़ियाँ अवश्य होनी चाहिए, तदनुसार चाक्षुषमनु दक्षप्राचेतस से लगभग दो सहस्रवर्ष पूर्व अर्थात् १६००० वि० पू० हुए। दक्ष प्रजापति प्रजापतियो के प्रजापति थे; तदुपलक्ष मे एक नवीन युगारम्भ हुआ, जिसको पुराणो मे परिवर्तयुग कहा गया है, दक्षप्राचेतस से युधिष्ठर पर्यन्त ऐसे २८ युग = ३६० = १००८० वर्ष व्यतीत हुए, दक्ष दीर्घजीवी पुरुष थे, उनकी आयु सात आठ सौ वर्ष थी; महाभारतयुद्ध वि० से० ३०८० वर्ष पूर्व लडा गया, तदनुसार दक्षप्राचेतस का समय आज से १६००० (सोलहसहस्र) वर्ष पूर्व था। महाभारत मे नहुष और युधिष्ठिर का अन्तर १०,००० वर्ष बताया गया है, यह नहुष दक्ष की आठवी पीढी मे हुआ, अत: दक्ष और नहुष का अन्तर १००० वर्ष या इससे कुछ अधिक ही था।

उपर्युक्त कालगणना से चाक्षुषमनु का समय विक्रम से १६००० वर्ष पूर्व या आज से १८००० वर्ष पूर्व निश्चित होता है। चाक्षुषमनु से आदिराजा पृथुवैन्यपर्यन्त लगभग १००० वर्ष व्यतीत हुए थे और पृथु से दक्षपर्यन्त अग्रिम १००० वर्ष। अत: दक्षचाक्षुषमनु मे २००० वर्षों का अन्तर था। पृथु का समय १५००० वि० पू० था।[1] मानव इतिहास की

---

१ ऋग्वेद दशममण्डल के ८६ वां वृषाकपिसूक्त है, कुछ लोग इसको १८००० वर्ष पुराना मानते हैं, इसी प्रकार दशम मण्डल ८५ वें सूक्त का १३ वाँ मन्त्र १७००० वर्ष पुराना माना जाता है।

सूर्याया वहतुः प्रागात्सवितायमवासृजत्। (आर्यों का आदिदेश पृ० ४६)
अघासु हन्यते गावोऽर्जुन्योः ॥ (ऋ० १०।८५।१६)

विवस्वान् (सूर्य) की पुत्री का विवाह आज से १६००० वर्ष हुआ था विवस्वान् के पिता कश्यप (काश्यप) प्रजापति थे—कश्यप ने सूर्य की वृषाकपिनाम से स्तुति की थी—

तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः (शा० २४२।८७) अत: कश्यप, विवस्वान आदि का समय आज से १६०००-१७००० वर्ष पूर्व था।

महत्वपूर्ण घटनायें चाक्षुषमन्वन्तर में घटी, जिनका संकेतमात्र आगे किया जायेगा। पृथु द्वारा पृथ्वीदोहन और देवासुरों द्वारा समुद्रमन्थन इस युग की दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनायें थी; देवासुरों की उत्पत्ति और द्वादश देवासुरसंग्राम भी चाक्षुषमनु से वैवस्वतमनु पर्यन्त हुए, जिनका विस्तृत उल्लेख एवं कालनिर्णय अग्रिम अध्याय में होगा।

चाक्षुषमनु के दशपुत्र—चाक्षुषमनु के पितामह 'उदारधी' संज्ञक इन्द्र एकसहस्रवर्ष पर्यन्त तपस्या करने के अनन्तर आहार करते थे—"संवत्सर-सहस्रान्ते सकृदाहारमाहरन्" (ब्रह्माण्ड० १।२।३६।१००)।

चाक्षुषमनु के दशपुत्रों में चार का विशेष उल्लेख वृत्तान्त विचारणीय है अत्यरातिजानन्तपि, अभिमन्यु, उरु और पुरु। जानन्तपि अत्यराति १२ चक्रवर्तियों मे सर्वोपरि था, जिनका ऐतरेयब्राह्मण (८।४।१) में वर्णन है। विकुण्ठा के पुत्र वैकुण्ठ के नाम रूसी तुर्किस्तान मे वैकुण्ठ नाम का एक प्रसिद्ध नगर था। जानन्तपि अत्यराति की यह राजधानी थी। आद्रसागर (Adcatic sea), सत्यगिदी (Saty gdia) पूर्वी ईरान=सत्यलोक) और वैकुण्ठधाम (Mount Diamond) या यम का नगर= स्वर्ग था। इस समस्त प्रदेश पर अत्यराति का राज्य था।

ऐ० ब्रा० के अनुसार सात्यहव्य वासिष्ठ ने अत्यराति जानन्तपि का ऐन्द्र महाभिषेक कराया था और उसने समष्त पृथ्वी को जीता था। उसने उत्तरकुरु (साइबेरिया) प्रदेश को जीतने का विचार किया, परन्तु सात्य हव्य वासिष्ठ ने उसे उत्तरकुरु पर आक्रमण करने का निषेध किया। जानन्तपि अमित्रतपन शुष्मिण शैब्य द्वारा मारा गया।[२] जानन्तपि वैकुण्ठ का शासक था।

प्राचीन सुमेरिया (मैसोपोटामिया-ईराकादि) से अभिमन्यु, उर, पुर और अङ्गिरा ने शासन, सभ्यता और संस्कृति का प्रवंतन किया। संभवत सुमेर

---

१. द्र० अवेस्ता फर्गद द्वितीय,

२. द्र० ऐ० ब्रा० (८।४।७-६) उत्तरकुरन् जयेय मथ........ पृथिव्ये राजा स्या.......वासिष्ठ सात्यहव्यो देवक्षेत्र वैतन्न वैनन्मत्यों जेतुमर्हत्यद्रक्षो ..... हात्यरति जानन्तपिमात्तवीर्यं निशुक्रममित्रतपनशुष्मिण: शैब्यो राजा जघान।

में सूषा नगरी शुष्मी ने बसाई थी, वहां पर उर और पुर नगर इन्ही भ्रातृद्वयी द्वारा बसाये गये, जो इतिहास में इसी नाम (उर और पुर) नाम से प्रसिद्ध हैं। उर प्राचीन ईलाम के शासक थे और पुर ईराक में पुर के। उत्तरकाल मे यहा पर असुरों (हिरण्यकशिपु आदि) एवं वरुण का शासन हुआ। उत्खनन मे सूषा नगरी के प्राचीन अवशेष मिले हैं।

आज सुमेर की सभ्यता को विश्व की प्राचीनतम सभ्यता माना जाता है, परन्तु वह चाक्षुषमनु के उर आदि पुत्रों ने स्थापित की थी, जिनका समय १८००० वर्ष पूर्व १६००० वि० पू० था, आधुनिक इतिहासकार उसकी केवल ८००० वर्ष ही प्राचीन मानते हैं, इस पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नही है कि यह सब पाश्चत्य षड्यन्त्र और अज्ञान का परिणाम है। प्राचीन सुमेरवासी अपने इतिहास को कितना प्राचीन मानते थे। पं० भगवद्दत्त ने बेबीलन के इतिहासकारो के आधार पर बैरोसस का मत उद्धृत किया। यह बैरोसस बैबीलन का प्राचीन इतिहासकार था- "बैरोसस के अनुसार जलौघ के पश्चात् प्रथम राजवश मे ८६ राजा थे। उनका राज्यकाल ३३०६० वर्ष था।'

हमे सन्देह कि सभी देशो के प्राचीनग्रन्थपाठो के समान बैरोसस के पाठ मे कुछ भ्रष्टता हुई है, ३४०६० के स्थान पर मूलपाठ ३४६० होना चाहिए, क्योंकि प्राचीनयुगों में भी औसत राज्यकाल ४० या ५० वर्ष से अधिक नही था, अपवादस्वरूप किसी किसी राजा ने १०० वर्ष या इससे अधिक राज्य किया हो। यह भी सभव है कि यह राज्यकाल (३४०००) पाँच या छ. राजवंशो का सम्मिलित राज्यकाल हो।

सुमेरुनाम ही संभवत: मेरुसावर्णि मनु (प्रथम सावर्ण मनु) के नाम से प्रथित हुआ। निम्न साम्य से भी सिद्ध होता कि सुमेरसभ्यता और भारतीय सभ्यता में घनिष्ठ संम्बन्ध था और उसका मूल भारत ही था—

---

१. भा० बृ० इ० भाग १ (पृ० २०६) पर A History of Balylon- L. W. king p. 114. से उद्धृत।

2. "At that time there lived. too the (Seven) sages." (Encyclopedia of Religion and Ethies (Ages);

३. द्र० महाभारत शान्ति० अध्याय ३३५।२६ ;

सुमेरीनाम		भारतीयनाम
सुमेरु	=	मेरु (सावर्णि)
अक्काद	=	इक्ष्वाकु
इन्दरु	=	इन्द्र
विहएशन (विकशन) =		विष्णु = (मत्स्यावतार)
ऐमेराइत =	=	एवायमरुत् (ऋग्वेद के एक ऋषि)
क्षत्री = क्षत्रिय		पुरशसिन = पुरुषसेन (परशुराम)
नस्साति = नासत्य		शुअससिन्न = सुषेण
बरगु = भृगु		उरिकि = उशिक्
बरम = ब्रह्मा		उऋकि = वृचया
उर अश = उर अश (उर्वशी) =		दशरत्त = दशरथ
औवंश (वसिष्ठ)		
मद्गल = मुद्गल		सुतर्ण = सुतर्ण
वि अश्नादि = पसनेदि = बध्यश्व		अर्तंतम = ऋततम
एनतर्षि = दिवोदास		कसियो = काशि
गुदिय = गाधि		सूर्य अस = सूर्य
अरु अश = कुश वलाकाश्व		वरेन = वरुण
कुश = कुश		बग = भग
उरु आशतिन गिर्सु = उरु ऋचीक		नमसिन = नृसिंह
शमु दुकगिन = जमदग्नि		निपुर = हिरण्यपुर
उर = उर		सरगान = सहस्रर्जुन
पुर = पुर		मेसनी पाद— = मसृणपाद
इस्तर = सिंहका		सरमर = सगर
शरयतिमास = शर्यात		कसिपु = (हिरण्य) कशिपु
शरसिन = शूरसेन		मन = मनु

उपर्युक्त नामसाम्य की ओर सर्वप्रथम ध्यान किसी भारतीय ने नहीं, वाडेल नाम के पाश्चात्य विद्वान् ने आकर्षित किया था, एतदर्थ—तद्रचित ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं—

"A sumer Aryan Dictionary"!

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में लिखित रूप से सिद्ध होता है कि चाक्षुष मनु के पुत्रों उर, पुर आदि ने जलप्रलय से पूर्व सुमेरिया मे राज्य स्थापित

किया; वैवस्वत मनु के पूर्ववर्ती मेरु सावर्णि मनु ने पुनः सुमेरिया में सभ्यता स्थापित की, १४००० वि० पू० । चाक्षुषमनु और वैवस्वतमनु में लगभग ४००० वर्षों का अन्तर था । मेरुमनु के नाम से देश को मेरु (या सुमेरु) कहा जाने लगा ।

सप्तर्षि—चाक्षुष मन्वतर के सप्तर्षि विभिन्न पुराणों में इसप्रकार कथित हैं ।

ब्रह्माण्ड पुराण—उत्तमभार्गव, हविष्मान् आङ्गिरस, सुधामाकाश्यप, विरजावासिष्ठ, अतिनाम पौलस्त्य, सहिष्णु पौलह और मधुआत्रेय ।[1]

हरिवंशपुराण—भृगु, नभ, विवस्वान्, सुधामा, विरजा, अतिनामा, और सहिष्णु ।[2]

हरिवंशपाठ में विवस्वान् और भृगुनाम कालनिर्णय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । चाक्षुषमन्वन्तर का प्रारम्भ १६००० वि० पू० हुआ, परन्तु भृगुवारुणि और विवस्वान् आदित्य का समय १२००० वि० पू० से १४००० वि० पू० था, वैवस्वतमनु या मन्वन्तर का प्रारम्भ पंचमयुग अर्थात् १२५०० वि० पू० के पश्चात् हुआ । विवस्वान् पचमयुग (१२५०० वि० पू० प्रारम्भ) के व्यास थे; जिन्होने शुक्लयजुर्वेदसम्प्रदाय का प्रवर्तन किया । यही समय वरुण के पुत्र भृगु का था, वरुणद्वितीयव्यास थे अतः उनका समय १३२८० वि० पू० था । अतः वारुणि भृगु और विवस्वान् आदित्य चाक्षुष मन्वन्तर के पूर्वार्द्ध के नही, उत्तरार्ध के ही सप्तर्षि हो सकते हैं । पूर्वार्ध के सप्तर्षि उत्तम,, हविष्मान् आदि ही होगे , अत ब्रह्माण्ड का पाठ अधिक प्रामाणिक है ।

उत्तम भार्गव आदिमभृगु के वंशज थे और वरुणपुत्रभृगु द्वितीय सप्तर्षियो मे से थे, जैसाकि पुराणो में स्पष्ट लिखा है ।

पृथु की वंशावली पर मतभेद—आदिराजपृथु चाक्षुषमन्वन्तर का सर्वप्रधान शासक था, जिन्होने सर्वप्रथम पृथ्वी पर वास्तविक अर्थ मे राज्य स्थापित किया जिससे कि वह 'आदिराजा' कहलाया ।[3]

---

१. ब्रह्माण्ड० (१।२।३६।७६-७७),

२ हरि० (१।७।३०-३१),

३ (क) पृथुर्वैन्यो मनुष्याणां प्रथमोऽभिषिषिचे (श० ब्रा० ५।३।५।४)

(ख) तस्मै क्षेत्र प्रायच्छत् । स एष पृथुर्वैन्य. (जै० ब्रा० १।१८६)

(ग) पृथुर्वैन्य उभयेषां पशूनामाधिपत्यमाश्नुत (ताण्ड्य० १३।५।२०)

(घ) आदिराजा तदा राजा पृथुर्वैन्य. प्रतापवान् । (हरि० १।५।२६),

इतिहासपुराणो मे ही पूर्णवशावली नही मिलती और जो मिलती है, वह पूर्ण नहीं मिलती। पुराणो और महाभारत मे पृथु के पूर्वजों का वशवृक्ष इस प्रकार है—

पुराणो मे	महाभारत मे
(१) चाक्षुषमनु	(१) विरजा (नारायणपुत्र)
(२) उरु	(२) कीर्तिमान्
(३) अग	(३) कर्दम
(४) वेन	(४) अनग (या अग)
(५) पृथु	(५) अतिबल
	(७) पृथु[1]

महाभारत मे पृथ का सम्बन्ध विरजा, कीर्तिमान् और कर्दम जैसे आदिम प्रजापतियो से जोडा गया है, वह अत्यन्त भ्रामक है। ब्रह्माण्ड पुराण (१।२।११।१३) के अनुसार विरजा प्रजापति मरीचि के पौत्र थे, परन्तु महाभारत मे उन्हे नारायण का मानसपुत्र कहा गया है, जो स्पष्ट ही कल्पनामात्र है। यहाँ नारायण परमात्मा का पर्याय है, परन्तु प० भगवद्दत्त इसको ऋग्वेद १०।६० सूक्त का द्रष्टा (सभवतः एक साध्यदेव) मानते है। पृथु का (नारायण ?) विरजा या कर्दम से कोई सम्बन्ध नही था, ये आदिम प्रजापति थे, जो पृथु से लगभग १५००० वर्ष पूर्व हुए। पृथु का समय १५००० वि० पू० और कर्दम का समय २६००० वि० पू० था। अत. महाभारत की पृथुवशावली का भ्रामककल्पना के अतिरिक्त और कोई आधार नही है। इसमे एक और त्रुटि है महाभारत (१२।५६।६३) मे मृत्युदुहिता सुनीथा अतिबल की पुत्री कही गई है, परन्तु पुराणों मे सुनीथा अग की पत्नी कथित है।[2] अतः पुराणो की वशावली ही अधिक प्रामाणिक है। वंशवर्णनसम्बन्धी महाभारतप्रसग हीनकोटि के हैं और रामायण के एतत्सम्बन्धी प्रसंग अत्यन्त हेय एव अप्रामाणिक है। इस प्रामाण्याप्रामाण्य की मीमासा अन्यत्र की गई है।

---

१. महाभारत १२।५६।८८-१००),

२. अंगात्सुनीथापत्य वै वेनमेक व्यजायत। (ब्रह्माण्ड० १।२।३३।१०८)'

अतः पृथु के पूर्वज अंग, उरु, और चाक्षुषमनु ही थे न कि कर्दमादि प्रजापति। हरिवंश (१।५।१) में पृथु को अत्रिवंशसमुत्पन्न कहा गया है।[1] अंग को अत्रि का वंशज क्यों कहा है, यह दुर्बोध्य है, सत्य यह है है कि महाभारतयुग में ही पृथु का इतिहास श्रुतिमात्र था और उसके पूर्वजो का यथार्थ ज्ञान नही था, परन्तु उसके पितामह अंग और पिता वेन थे, यह एक सुनिश्चित तथ्य था।

इतिहासपुराणों में पृथु का जन्म एक अद्भुत प्रकार से कथित है, वेन एक निर्गुण (दुष्टात्मा) राजा कहा गया है, जो ब्राह्मणो के वश मे नही रहता था, तब ऋषियो ने उसके दोनो करो को मथना आरम्भ किया उसके वाम हस्त से निषाद, दक्षिणहस्त से पृथु का जन्म हुआ। हरि० (१।५।१६)[2] मे वेन के सव्योरु (दक्षिणजाघ) से निषाद की उत्पत्ति कथित है। इस सम्बन्ध मे पुन ब्रह्माण्डपुराण (१।२।३६।१४१) का पाठ प्रामाणिक है।[3] हाथ से सन्तान की उत्पत्ति आधुनिकविज्ञान मे अभी अज्ञात है, परन्तु प्राचीनभारतीय मनीषी इस विद्या मे पूर्ण विश्वास करते थे।[4]

वेनपुत्रनिषाद से निषाद (कृष्ण) जातियाँ उत्पन्न हुई, ऐसा पुराणों मे कथन है—"निषादः वंशकर्त्ताऽसौ बभूवानन्तविक्रमः"।[5]

शबर, खश, तम्बुर, तुबुर, भीलादि जातियो का वह पूर्वज था, सम्भवतः अफ्रीका और पूर्वीद्वीपसमूह के पिग्मी बौने नीग्रो आदि का आदिपूर्वज यही निषाद था।

पृथु शीघ्र ही कवच और आद्य आजगव धनुष ग्रहण कर प्रजा की रक्षा मे तत्पर होगया—ब्रह्माण्ड० १।२।४६।१४०)—

आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम्।
शरांश्च बिभ्रद्रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम्॥

---

१. अत्रिवंश समुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः। (हरि० १।५।१),
२. ततोऽस्य सव्यमुरु ते ममन्थुर्जातमन्यव॥ (हरि० १।।५१६),
३ ततोऽस्य वामहस्तं ते ममन्थुर्भृशकोपिताः। (ब्रह्माण्ड० १।२।३६।१४१)
४. पृथोश्च हस्तात्। (बुद्धचरित १।१०);
५ निषाद को निम्नवर्ण का मानने के कारण हरिवंश मे यह कल्पना की है—शूद्रो की उत्पत्ति पादोसे मानी जाती है—पद्भ्यां शूद्रोऽजायत। (पुरुषसूक्त), (हरि० १।५।१६)

महाभारत (१२।१६६।८६) में पृथु को आदिधनुष का निर्माता (या उपभोक्ता) कहा गया है—पृथुस्तूत्पादयामास धनुराद्यमरिंदमः ।।

धनु का निर्माण तो विशेषज्ञों ने ही किया होगा, पृथु के उपयोगार्थ केवल व्यंजना से यह कहा गया है कि पृथु ने धनु बनाया।

पृथु का राज्याभिषेक—पृथ्वी पर राजा के रूप मे अथवा विधिविधान से सर्वप्रथम पृथु का ही अभिषेक कियागया, सर्वप्रथम पृथु के लिए नदी, समुद्रो और पर्वतो से सर्वप्रकार के जल एव रत्नादि लाये गये, इसीलिए उसे वास्तविक अर्थ मे आदिराजा कहा गया है। उसी समय से पौरोहित्यकर्म का निष्पादन हुआ और अङ्गिरा के वशज आङ्गिरसो (ब्राह्मणो) ने पृथु का सर्वप्रथम अभिषेक किया। पृथु के समय से ही यह राज्याभिषेक की रीति चली और आङ्गिरसब्राह्मणो को उसी समय से पौरोहित्य महत्व प्राप्त हुआ, जो देवयुग मे चरमसीमा पर जा पहुँचा, जब आङ्गिरस बृहस्पति देवो का पुरोहित बन गया।

यह ध्यातव्य है कि बृहस्पति आङ्गिरस बहुत उत्तरकालीन ऋषि थे, उनसे पूर्व निम्न आङ्गिरस उल्लेखनीय है जो विभिन्न युगो मे सप्तर्षियों में सम्मिलित थे—

स्वारोचिष मन्वन्तर मे	ऋषभ आङ्गिरस	(ब्रह्माण्ड० १।२।३६)
तामस मन्वन्तर मे	काव्य आङ्गिरस	(,, १।२।३६।४७)
रैवत ,, मे	हिरण्यारोमा ,,	(,, १।२।३६।६२)
चाक्षुष ,, मे	हविष्मान् ,,	(,, १।२।३६।७७)
मेरुसावर्णि ,, मे	द्युतिमान् ,,	(,, ३।४।१।६३)
द्वितीय सावर्णि ,,	अभिमन्यु ,,	(,, ३।४।१।७१)
सावर्णि तृतीय ,, ,,	पुष्टि ,,	(,, ३।४।१।७६)
सावर्णि चतुर्थ ,, मे	तपोमूर्ति ,,	(,, ३।४।१।८२)
रौच्यमनु के समय	धृतिमान् ,,	(,, ३।४।१।१०२)
भौत्यमनु के समय	शुचि ,,	(,, ३।४।१।११३)

अत. न्यूनतम १० ऋषभादि आङ्गिरस ऋषि बृहस्पति से पूर्व प्रसिद्ध हो चुके थे, अतः बृहस्पति आङ्गिरस अङ्गिरा के साक्षात्पुत्र नही, सुदूर वशज थे, अङ्गिरा और बृहस्पति में न्यूनतम २५ पीढियाँ अवश्य थी।

---

१. सोऽभिषिक्तो महाराज देवैरङ्गिरससुतैः (ब्रह्माण्ड० १।२।३६।१५४)

पृथु का अभिषेक हविष्मान् आदि आङ्गिरसो ने किया, जो सप्तर्षियों में से एक थे, सभवत इन्ही सप्तर्षियों की सज्ञा चित्रशखण्डी थी, जो मरीच्यादि के वशज थे। इन्होने ही चित्रशिखण्डीधर्मशास्त्र की रचना की थी।[1] बृहस्पति आङ्गिरस के उत्तरकालीन होने की पुष्टि महाभारत के उक्त प्रकरण से होती है कि युगो के पश्चात् बृहस्पति आङ्गिरस ने ऋषियो से चित्र-शिखण्डीशास्त्र का अध्ययन किया —

> उत्पन्नेऽऽङ्गिरसे चैव युगे प्रथमकल्पिते ।
> साङ्गोपनिषद शास्त्र स्थापयित्वा बृहस्पतौ ॥[2]

सूतमागध—प्रजा का रजन (पालन) करने के कारण पृथु की संज्ञा 'राजा' हुई,[3] उससे पूर्व शासक की प्रजापति दिक्पाल आदि संज्ञायें थी। सर्वप्रथम राजा होने से ही पृथु को 'आदिराजा' कहते हैं। पृथु के महाभिषेक महायज्ञ मे राजा की स्तुति के हेतु सूत और मागध सर्वप्रथम उपस्थित हुए, सूतमागधो या चारणभाटो की परम्परा भी सर्वप्रथम इसी समय से प्रवर्तित हुई, इसीलिए कहा गया है कि महायज्ञ के सौत्याग्नि से सूत की उत्पत्ति हुई।[4] स्तुति से प्रसन्न होकर राजा पृथु ने सूत को अनूपदेश और मागध को मगधदेश दान मे दिया।[5]

पृथ्वीदोहन का अर्थ—प्रजापालनार्थ सर्वप्रथम, विशालरूप से, पृथु ने पृथ्वी का दोहन किया। इसका अर्थ है कि राजा ने पर्वतो, नदियो, वनो और समुद्रो को प्रजा के उपयोग के योग्य बनाया, विषमस्थलो को सम

---

१. मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्य. पुलह क्रतुः ।
वसिष्ठश्च महातेजास्ते हि चित्रशिखण्डिनः । (महा० १२।३३५।२९)
ये मरीच्यादि आदिम ऋषि नही, उनके वशज थे जिन्होने धर्मशास्त्र की रचना की।

२. महाभारत (१२।३३५।५४)।

३. अनुरागात् ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत् (हरि० १।५।३०),

४ आदिराजा महाभाग. पृथुर्वैन्य। (हरिवंश० १।५।३१)

५. सूत सूत्या समुत्पन्न सौत्येऽहनि महामति प्रतापवान्। तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञेऽथ मागधः ॥ (हरि० १।५।३३-३४)

६. हरिवश (१।५।४२),

बनाया गया, सर्वप्रथम पर्वतों को तोडकर राजपथ एवं भवनों का निर्माण कराया। पशुपालन, कृषि, धातु, उत्खनन, और वाणिज्यकर्म का यथार्थ आरम्भ पृथु से हुआ। उससे पूर्व पृथ्वी पर न नगर थे, न ग्राम, न सस्य, न गोरक्षा, न कृषि, न वणिक्पथः—

> चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं तदाकिल।
> न प्रविभाग पुराणां च ग्रामाणां वा तदाभवत्
> न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः।[1]

पर्वतों के किनारों से पत्थरो के हटाने के कारण वे और ऊंचे होते हुए प्रतीत हुए और ऊपर चढ़ना दुष्कर होगया, इसीलिए कहा गया है कि पृथु ने धनुष्कोटि से पृथ्वी को सम किया और पर्वतों को ऊँचा किया—

> धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः।
> इत्थं वैन्यस्तदा राजा मही चक्रे समा पुनः॥ (हरि० १।६।११-१२)

पृथु का कर्म चाक्षुषमन्वन्तर में प्रवर्तित हुआ। हमारे मत की पुष्टि पुराणो के इस उल्लेख से भी होती है कि पृथ्वी दोहन का जो क्रम पृथु के समय से चला तदनन्तर असुर, ऋषि, देव, पितृ, नाग, यक्षराक्षस और गन्धर्वप्रजाओं ने क्रमश इसका दोहन किया। जिन असुरादि ने पृथु के पश्चात् पृथ्वी का दोहन किया वे पृथु के पश्चात् और वैवस्वतमनु से बहुत पूर्व हुए थे, यथा, प्रह्लाद, प्राह्लादि विरोचन, द्विमूर्धा, मधु आदि असुर वैवस्वत मनु (सप्तमयुग) से पूर्व, द्वितीय और तृतीय युग में अर्थात् मनु से लगभग १००० वर्ष पूर्व से ही असुरो का पृथ्वी पर साम्राज्य था, पितृनरेश यम (मनु का कनिष्ठ भ्राता) ही मनु से लगभग ५०० वर्ष पूर्व शासन करता था।

पुराणों मे विभिन्न पंचजन प्रजाओ द्वारा पृथ्वी दोहन का जो इतिवृत उल्लिखित है, उसकी पुष्टि अथर्ववेद काण्ड ८, प्रपाठक १९, अनुवाक ५ से होती है, जिसकी सक्षिप्त तालिका इस प्रकार है :—

---

१. हरि० १।६।१३,१४,१५),

पंचजन जाति	वत्स	पात्र	दोग्धा	शिल्पनाम
१. असुर (दैत्यदानव)	विरोचन (प्राह्लादि)	अयस्पात्र	द्विमूर्धा	माया-(विज्ञान)
२. पितृ	यम वैवस्वत	रजतपात्र	मार्त्यंव (अन्तक)	स्वधा
३. मनुष्य	मनु वैवस्वत	पृथ्वीपात्र (मिट्टी)	पृथु	कृषि
४. ऋषि	सोमराजा	छन्दपात्र	वृहस्पति	वेद
५. देव	इन्द्र	चमस	विवस्वान्	ऊर्जा
६. गन्धर्वाप्सरा	सौर्यवर्चा चित्ररथ	पुष्करपर्ण	वसुरुचि	पुण्यगन्ध
७. यक्षराक्षस (इतरजन)	कुबेर वैश्रवण	आमपात्र	रजतनाभि	तिरोधान (रहस्य)
८. नाग	तक्षक वैशालेय	अलाबुपात्र	धृतराष्ट्र	विष

उपर्युक्त तालिका से सुस्पष्ट है कि अयस् और रजत का प्रयोग मनुष्य ने साथ साथ किया न कि शनैः शनैः और विज्ञान, रसायन, कृषि, शक्ति, आदि विद्याओं का भी पृथ्वी पर साथ साथ प्रादुर्भाव हुआ।

उपर्युक्त तालिका से (स० ३) से यह भ्रम भी हो सकता है कि पृथुवैन्य और वैवस्वत मनु समकालिक थे, परन्तु तथ्य का भान इतिहास पुराण से ही होता है कि पृथु से नौवी पीढी मे वैवस्वतमनु हुए थे तथा प्रत्येक पुरुष की आयु सहस्रवर्ष के लगभग थी, मनु की आयु ९५० वर्ष थी, जैसा भी बाइबिल मे नूह (मनु) की आयु लिखी है। अवेस्ता मे वैवस्वत यम का राज्यकाल १२०० वर्ष (प्रलय से पूर्व) लिखा है, यम प्रलय के पश्चात भी अनेक शताब्दियो पर्यन्त जीवित रहा, नचिकेता और सत्यवान् के समयपर्यन्त, इसी तथ्य से दक्ष, कश्यप, पृथु आदि की आयु का अनुमान किया जा सकता है, अतः पृथु वैवस्वत मनु से ३००० वर्ष से अधिक वर्ष पूर्व हुये, भले ही उनमें नौ पीढियों का अन्तर था।

उपर्युक्त तालिका या विवरण मे माया और तिरोधान का रहस्य भी समझना चाहिए। असुरो की माया और राक्षसो की माया (तिरोधा) मे सुक्ष्म अन्तर था। असुरों की माया उच्चकोटि का विज्ञान या शिल्प ही था, जैसे कि मयासुर अपने विज्ञान से श्रेष्ठतम भवनादि का निर्माण करता

था—शिल्पी होने के कारण ही उसका नाम 'मय' (=निर्माता=शिल्पी) पड़ा, मयजातीय असुरो से बढ़ चढ़ कर इस निर्माणकला मे कोई भी राष्ट्र आजतक नही हुआ, प्राचीन देशो (मैक्सिको, पेरू, मिश्र, बोलिविया) के प्रस्तर भवनो मे इसके निदर्शन आज भी देखे जा सकते है। महाभारतीलिखित मयनिर्मित युधिष्ठिरसभा से भी इसका आभास होता है।

यक्षराक्षसों की माया या तिरोधान का आभास राक्षस मारीच और विद्युज्जिह्व की माया से होता है कि मारीच किस प्रकार सुवर्णमृग[1] बना और विद्युज्जिह्व ने राम का धनुरादि किस प्रकार बनाये[2] और इन्द्रजित् ने मायासीता का निर्माण किया।[3]

पृथु का वंश

पृथुवैन्य
- अन्तर्धान (+शिखण्डिनी)
  - हविर्धान (+आग्नेयी धिषणा)
    - प्राचीनबर्हि (+सवर्णा (=सामुद्री))
      - दशप्रचेता (=मारिषा सौमी)
        - दक्षप्राचेतस
    - शुक्ल
    - गय
    - कृष्ण
    - व्रज
    - अजिन
- पालित

पृथु और उसका पौत्र हविर्धान प्राचीनतम मन्त्रदृष्टा थे, पृथु ऋग्वेद १०।११,१२ सूक्तो का दृष्टा था। ऋग्वेद और और सर्वानुक्रमणी मे पितामह के नाम से हविर्धान को आङ्गि कहा है जिस प्रकार मान्धाता, हरिश्चन्द्र आदि को वंशधर इक्ष्वाकु के नाम से ऐक्ष्वाक कहा जाता है।

---

१. रामायण (३।४२ सर्ग,)

२. शिरोमायामयगृह्यराघवस्यनिशाचर।
मां त्व समुपतिष्ठस्व यच्च सशरं धनु ॥ (राम० ७।३१।१८,)

३. इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयी तदा ॥ (रामा० ७।८१।४)

प्राचीनबर्हि—पुराणों के अनुसार भगवान् प्राचीनबर्हि महान् प्रजापति थे। जिन्होने प्रजा का श्रेष्ठ संवर्धन किया।[१] इस महान् प्रजापति ने संभवतः कुशासन (बर्हि) का प्रचलन किया, जिससे उनका यह प्राचीनबर्हि प्रथित हुआ। प्राचीनबर्हि का विवाह 'समुद्र' संज्ञक व्यक्ति की पुत्री सवर्णा से विवाह हुआ यह समुद्र किसी महासमुद्र पार का शासक हो सकता है जिसे पुराणकारों ने 'समुद्र' का नाम दे दिया हो। सवर्णा से प्राचीनबर्हि के दश महान् पुत्र हुए। जिन सब का नाम प्रचेता था। उत्तरकाल में अदिति के ज्येष्ठपुत्र वरुण को भी यदा कदा 'प्रचेता' कहा गया है, हो सकता है कि इस नामसाम्य से दश प्रचेताओं और आदित्य वरुण (प्रचेता) सम्बन्धी इतिवृत्त या संसृष्ट (मिश्रित) हो गया हो।

प्रचेता के समय द्रुमक्षय—प्रचेता अपनी प्रजासहित अनेक समुद्रोंद्वीपों मे विचरण करते रहे। इनके समय की पार्थिव इतिहास की प्रमुखतम घटना थी पृथ्वी पर वृक्षों की अपरम्पार वृद्धि, जिससे मनुष्यो और पशुओ को महान् कष्ट होने लगा, जीवो को चेष्टा करना यहा तक कि श्वास लेना भी कठिन हो गया, तब प्रचेताओ ने वनो का घोर विनाश किया, उन्हें विशाल रूप मे जलाया, पृथ्वी के गर्भ में तेल और कोयला सभवतः उसी समय निर्मित हुआ हो।

दश प्रचेताओं ने सोमपुत्री मारिषा से दक्ष नाम का पुत्र उत्पन्न किया जो इतिहास मे 'दक्ष प्राचेतस' के नाम से विख्यात हुआ। यह प्रजापतियो का राज बना।

(दक्षप्राचेतस—युगप्रवर्तक महान् प्रजापति)

दक्ष से नव्य युगारम्भ—दक्ष से एक नवीनयुग का आरम्भ हुआ, जिसको वायुपुराण एव ब्रह्माण्डपुराण मे त्रेतायुगमुख कहा है। इन पुराणों में स्वायम्भुव मनु से दक्ष प्राचेतस, असुरों एव द्वादश आदित्यो—आदि सभी को आदित्रेतायुगमुख में हुआ बतलाया हैं, यहातक कि वैवस्वतमनु के वशज प्रांशु के सातवें पुरुष (पीढी मे उत्पन्न) करन्धम को वायुपुराण (८३।७) में आद्यत्रेतायुग मे बतलाया गया है, हमें इतिहास

१. प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः।
हविर्धानान्महाराज येन संवर्धिताः प्रजाः॥ (हरि० १।२।३०),

पुराणों से ज्ञात है कि स्वायम्भुवमनु से दक्षप्राचेतसतक ५८ पीढ़ियाँ अवश्य व्यतीत हो चुकी थी, तथा करन्धमादि तो दक्ष प्राचेतस से सहस्रों वर्ष पश्चात् हुए, अतः इन सबको एक ही आद्यत्रेतायुगमुख में रखना पुराणपाठों की भ्रष्टता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। पुराणों के ही अनुसार स्वायम्भुव मनु से दक्षप्राचेतसपर्यन्त त्रयोदश मनु या मन्वन्तर व्यतीत हुए, प्रत्येकमनु का कलान्तर ठीक ज्ञात नहीं है, परन्तु दक्षप्राचेतस और परमेष्ठी काश्यप[1] प्रजापति के समय से एक नवीनयुग 'कृतयुग' का प्रारम्भ हुआ। अतः त्रेतायुगमुख का अन्तिम पाद कृतयुग था, जो ४८०० वर्षों का था। परन्तु, इस युग (दक्ष प्राचेतस और परमेष्ठी के समय) की एक और महत्वपूर्ण परंपरा उल्लेख्य है—व्यासपरंपरा का प्रवर्तन, जो कि भारतयुद्ध से पूर्व और दक्ष प्राचेतस के पश्चात् के भारतीय इतिहास की कालगणना की मूलाधारशिला है। यह पहिले ही सप्रमाण निर्णय किया जा चुका है कि प्रत्येक व्यास ३६० वर्षों (—एक दिव्ययुग = देवयुग) के अन्तर से हुआ, अतः युगनिर्णय या तिथिनिर्णय हेतु २८ व्यासो की तिथि तालिका प्रस्तुत करते हैं—

व्यासक्रम	व्यासनाम	युगप्रारम्भ	युगान्ततिथि
(१)	परमेष्ठी = ब्रह्मा—काश्यप	१४००० वि०पू०	१३७४० वि०पू०
(२)	वायु	१३७४० वि०पू०	१३३८० वि०पू०
(३)	सत्य	१३३८० वि०पू०	१३०२० वि०पू०
(४)	उशना	१३०२० वि०पू०	१२६६० वि०पू०
(५)	बृहस्पति	१२६६० वि०पू०	१२३०० वि०पू०
(६)	विवस्वान्	१२३०० वि०पू०	११९४० वि०पू०
(७)	यम वैवस्वत	११९४० वि०पू०	११५८० वि०पू०

---

१. ब्रह्माण्ड (२।३।२।१३) में परमेष्ठी को कश्यपसुत कहा गया है और नारद को इस काश्यप (परमेष्ठी) का 'मानसपुत्र, कहा गया है, अत. देवासुरपिता परमेष्ठी स्वय कश्यप नहीं उसके वंशज 'काश्यप' थे—

८. इन्द्रकाश्यप	११५८० वि०पू०	११२२० वि०पू०
९ वसिष्ठ	११२२० वि पू०	१०८६० वि०पू०
१०. सारस्वत = अपान्तरतमा	१०८६० वि०पू०	१०५०० वि०पू०
११. त्रिधामा	१०५०० वि०पू०	१०१४० वि०पू०
१२. शरद्वान्	१०१४० वि०पू०	९७८० वि०पू०
१३. त्रिविष्ट	९७८० वि०पू०	९४२० वि.पू०
१३. नारायण	९४२० वि०पू०	९०६० वि०पू०
१४. अन्तरिक्ष	९०६० वि०पू०	८७०० वि०पू०
१५. त्र्यारुणि	८७०० वि०पू०	८३४० वि०पू०
१६. सजय	८३४० वि०पू०	७९८० वि०पू०
१७. कृतञ्जय	७९८० वि०पू०	७६२० वि०पू०
१८. ऋनतजय	७६२० वि०पू०	६२६० वि०पू०
१९. भारद्वाज	७२६० वि०पू०	६९०० वि०पू०
२०. वाजश्रवा	६८०० वि०पू०	६५४० वि०पू०
२१ वाचस्पति	६५४० वि०पू०	६१८० वि०पू०
२२ शुल्कायन	६१८० वि०पू०	५७२० वि०पू०
२३ तृणविन्दु	५७२० विपू०	५३६० वि०पू०
२४ ऋक्ष—वाल्मीकि	५३६० विपू०	५००० विपू०
२५. शक्ति वासिष्ठ	४१०० वि०पू०	४६४० वि०पू०
२६ पराशर	४६४० वि०पू०	४२८० वि०पू०
२७. जातूकर्ण्य	४२८० वि०पू०	३८२० वि०पू०
२८ कृष्णद्वैपायन	३८२० वि०पू०	३४६० वि०पू०

कृष्णद्वैपायन पाराशर्य व्यास ३३६० वि० पू० के आसपास उत्पन्न हुए. वे पारीक्षत् जनमेजयपर्यन्त ३००० वि० पू० तक अवश्य जीवित रहे, अतः उनकी आयु ३६० के लगभग ही थी। उनके जीवनकाल में कुरुराष्ट्र मे इतने राजाओं ने राज्य किया—

(१) काश्यपस्याथ द्वितीयो मानसोऽभवत्। (ब्रह्माण्ड० २।३;२।१४)

(२) यः कश्यपसुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत ॥ (ब्रह्माण्ड० २।३।२।१३)

शन्तनु	५० वर्ष
विचित्रवीर्य	१२ वर्ष
भीष्मशासन	२० वर्ष
पाण्डु	५ वर्ष
धृतराष्ट्र	४० वर्ष
दुर्योधन	३६ वर्ष
युधिष्ठिर	३६ वर्ष
परीक्षित्	२४ वर्ष
जनमेजय	४४ वर्ष
कुलयोग	२३१ वर्ष

पाराशर्यव्यास का जन्म शन्तनु के राज्याभिषेक से अनेक वर्षों पूर्व हुआ था, वह उस समय वे स्नातक अर्थात् २५ वर्ष के अवश्य होंगे, व्यासजी जनमेजय के पश्चात् भी सभवत जीवित रहे, इससे सिद्ध है कि व्यास की आयु ३०० वर्ष से अधिक थी, और इतिहास साक्षी है कि ऋषिगण प्राय: राजाओ की दश-दश पीढियो से भी अधिक समयतक जीवित रहते थे। दक्ष प्राचेतस से युधिष्ठिरपर्यन्त राजाओ की १२० से अधिक पीढ़िया हुई, परन्तु इतने दीर्घमय मे व्यास (ऋषि) केवल २७ ही हुए, अत ऋषियो का दीर्घजीवन एक ऐतिहासिक तथ्य था।

पाराशर्य व्यास को 'व्यासक' अर्थात् कनिष्ठ (छोटा) व्यास कहा जाता है और इमी से उनके पुत्र का तद्धितान्त नाम हुआ 'वैयासकि,'[1] शुक। जब छोटा व्यास तीन शताब्दी से अधिक कालपर्यन्त जीवित रहा, तब उनसे वरिष्ठ व्यास = ऋक्ष (वाल्मीकि) आदि की आयु और भी दीर्घतर होनी चाहिए।

वायुपुराण अध्याय २६ मे २८ व्यासो और उनके शिष्यो का विस्तार से वर्णन मिलता है। यहाँ पर पुराणपाठ मे पर्याप्त व्यत्यास और अस्तव्यस्तता प्रतीत होती है। जिसकी दो चार उदाहरणो द्वारा परिक्षा करेंगे।

---

१. पाणिनिसूत्र द्रष्टव्य है—'सुधातुरकङ्च' (अष्टा० ४।१।९७) इस पर कात्यायन का वार्तिक है—"व्यासवरुडनिषादचाण्डालविम्बानांचेति वक्तव्यम्।"

प्रथम व्यास का नाम श्वेतमुनि कथित हैं, उनके चारशिष्यों के नाम थे—श्वेत, शिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित। इन सभी का समस्त इतिहास अन्यथा अज्ञात है। अतः अविचारणीय है। इसी प्रकार द्वितीय युग मे 'सत्य, नाम के प्रजापति व्यास हुए. जिनके चार शिष्य थे—दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक और केतुमान्। इनमे ऋचीक भार्गव सभवत जमदग्नि के पिता का उल्लेख है शेषनामो का इतिहास तिमिरावृत है। हमारे मत में यह सत्यसंज्ञक प्रजापतिकाश्यप परमेष्ठी होनी चाहिए, जिन्होने पंचलक्षाधिक जातवेदास=ऋग्मन्त्रो का दर्शन किया था, जिनकी १२००० ऋचाओ का संकलन पाराशर्य व्यास ने किया, जिसको आज दाशतयी ऋग्वेद कहते हैं।

तृतीय और चतुर्थ व्यास क्रमशः उशना और बृहस्पति थे, जो असुरों और देवो के पुरोहित थे।[1] इनदोनो व्यासो ने वेदमन्त्रो के अतिरिक्त इतिहासपुराणों का प्रणयन किया था तथा धर्मशास्त्र-अर्थशास्त्र रचे थे। उशना अर्थशास्त्र को 'औशनस अर्थशास्त्र' और बृहस्पति के ग्रन्थ को 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' कहा जाता था। कौटल्य के समय तक मे ये शास्त्र उपलब्ध थे।

पचम व्यास प्रसिद्ध आदित्य 'विवस्वान्' थे, जिनके चार शिष्य प्रसिद्ध ऋषि सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार (कार्तिकेय पार्वतीय)[2] हुए। कार्तिकेय पावकि को मेरुसावर्णि के समय का इन्द्र भी कहा गया है।[3] अतः विवस्वान्, मेरुसावर्णिमनु, कार्तिकेय सनत्कुमार सभी समकालीन थे। और वैवस्वत मनु से पूर्व मेरुसावर्णि या चाक्षुषमन्वन्तर के अन्त मे हुए। इनका समय १३२०० वि० पू० था।

षष्ठ व्यास, वैवस्वतयम (११८४० वि० पू०) के तुल्यकालीन सुधामा, विरजा, शंख और पादप नाम के प्रजापति या ऋषि हुए।[4]

---

१. बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद्, उशना काव्योऽसुराणाम् (जै० ब्रा० १।१२५)।

२. सनक सनन्दनश्चैव प्रभुः सनत्कुमारश्चनिर्भया निरहंकृताः (वायु०)

३. तेषामिन्द्रस्तदा कालेऽद्भुतो नाम नामतः।
स्कन्दोऽसौ पार्वतीयोवैकीतिकेयस्तु पावकिः ॥ (ब्रह्माण्ड० ३।४।१।६१)

४. वायु० (२३।१२३-१४२), यमवैवस्वत की आयु अतिदीर्घ थे, जैसा कि अवेस्ता और पुराणों से प्रमाणित हैं।

सप्तमव्यास इन्द्र (११४८० वि० पू०) के समकालिक जैगीषव्य थे, जैगीषव्य का देवयुगीन होने मे हमे सन्देह है। इनका समय अन्यत्र लिखा जायेगा।

अष्टमयुग (१११२०-१०७३० वि० पू०) का व्यास वसिष्ठ को कहा गया है, यह वसिष्ठ मैत्रावरुणि वसिष्ठ का पुत्र या वंशज कोई वासिष्ठ ऋषि होगा, क्योंकि वारुणि वसिष्ठ वैवस्वत मनु से पूर्व पिता वरुण के समकालिक ऋषि थे। कपिल आसुरि और पंचशिख इनके शिष्य कहे गये है। परन्तु हमें इस तथ्य मे सन्देह है।

इन्द्र का शिष्य सारस्वत अपान्तरतमा, दध्यङ् आथर्वण और सरस्वती[1] का पुत्र था, जो नवमयुग का व्यास (१०७३० वि० पू०) था, उसने पितरो को वेद पढाया था।

"अध्यापयामास पितृञ्छिशुराङ्गिरसः कवि·।" (म० स्मृ० २) सारस्वत के शिष्य पराशर, गार्ग्य, भार्गव और अङ्गिरा कहे गये है, सरन्तु यह पाठ विवादग्रस्त है।

त्रयोदश नारायण (९६८० वि० पू०) के शिष्य सुषामा, काश्यप, वासिष्ठ, और विरजा थे। यह नारायणव्यास पूर्वकथित साध्यदेव नारायण[2] पुरुषोत्तम नही हो सकता, जो कि देवयुग (चाक्षुषपूर्व) अमर विभूति हो गया था, यद्यपि वह वैवस्वतमन्वन्तर के प्रारम्भतक जीवित रहा।

पन्द्रहवेंव्यास त्र्यारुण या आरुणि के विषय मे प० भगवद्दत्त ने जो यह लिखा है 'सम्भव है यह त्र्यारुण ऐक्ष्वाक राजा हो' सो यह कालक्रम की दृष्टि से अनुचित है। पुराणों के अनुसार पञ्चदशव्यास त्र्यारुणि और मान्धाता ऐक्ष्वाक राजा समकालिक थे, जो पन्द्रहवेयुग (८६०० वि० पू० से ८२४० के मध्य) मे हुए—[3]

---

१. तथाङ्गिरा रागपरीतचेतः सरस्वती ब्रह्मसुत. सिषेवे सारस्वतो यत्र सुतोऽस्यजज्ञे नष्टस्यवेदस्य पुनः प्रवक्ता (बुद्धचरित)।।

२. धर्मान्नारायणस्तस्माद् सभूतश्चाक्षुषेऽन्तरे। यज्ञ प्रवर्तयामासचैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे (वायु०...)

३. भा० बृ० उ० भा० २ (पृ० १००), (४) वायु० श्लोको मे 'त्रेता' और 'द्वापर' शब्दो का भ्रामक प्रयोग हुआ है, युग का नाम 'परिवर्तयुग' उपयुक्त है।

पंचमः पंचदश्यान्तु त्रेतायां संबभूवह ।
मान्धातुश्चक्रवर्तित्वे तस्थौ उतथ्यपुरस्सरः ।।
तत् प्राप्ते पंचदशे परिवर्ते क्रमागते ।
त्र्यारुणिस्तु यदा व्यासो द्वापरे भविता प्रभुः ।।

प० भगवद्दत्त ने पुराणों के आधार पर ही मान्धाता को २१ वी पीढी का ऐक्ष्वाक राजा लिखा है ।[1] जबकि त्र्यारुण ३० वां ऐक्ष्वाक राजा था । अत. मान्धाता और त्र्यारुण ऐक्ष्वाक मे १० पीढियो का अन्तर था, इससे निष्कर्ष निकलता है कि पंचदश व्यास त्र्यारुण और ऐक्ष्वाक राजा त्र्यारुण एक नही हो सकते, उनके समय में न्यूनतम तीन युगो अर्थात् एक सहस्रवर्ष का अन्तर था ।

षोडशम व्यास सजय (८२४० वि० पू० ७८८० वि० पू० मध्य समय मे) काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति को रखना अनुचित है, जो किसी प्रकार भी इतिहास मे उपपन्न नही होता । काश्यप (परमेष्ठी), उशना, और बृहस्पति क्रमशः द्वितीय, तृतीय और चतुर्थयुगो के व्यास हो चुके थे ।

सप्तदश व्यास कृतंजय (७८८० वि० पू० से ७५2० वि० पू०) औतथ्य वामदेव के समकालीन कथित हैं, जो पूर्णतः सभव है ।

अष्टादश व्यास ऋतञ्जय के समकालिक (६५२० वि० पू०) वाजश्रवा ऋचीक, और श्यावाश्व कथित है । इनमे वाजश्रवा स्वय बीसवेयुग (६८०० वि० पू०) व्यास हुए, ऋचीक सभवतः आर्चीक (ऋचीकवशज) थे और श्यावाश्व आत्रेय (अर्चनाना) ऋग्वेद (५।६१) सूक्त के द्रष्टा हैं, जिन्होने रथवीतिदार्म्य की पुत्री से विवाह किया (द्र० बृहद्देवता ५।५०-८१), इस इतिहास का विवरण अन्यत्र प्रस्तुत किया जायेगा ।

उन्नीसवे युग में कोई भरद्वाज (भारद्वाज)व्यास (७१६० वि० पू०) हुए, यह भारद्वाज आदिम वार्हस्पत्य भारद्वाज नही हो सकते, जो देवगुरु बृहस्पति के पुत्र और इन्द्र के शिष्य थे, जिनका समय ११४८० वि० पू० था, यह व्यास भरद्वाज आदिम भरद्वाज से लगभग तीनसहस्र वर्ष पश्चात् हुये (७१६० वि० पू० से ६८०० वि०पू०) इन्ही भरद्वाज के समय मे हिरण्यनाभ कौसल्य हुआ । इसको नामसाम्य के त्रुटि के कारण जैमिनी की शिष्यपरम्परा मे प्रदर्शित किया गया है । इस त्रुटि का सशोधन

---

१ भा० बृ० इ० भा० (पृ० ८०)

ऐक्ष्वाक वंशावली के कालनिर्णय के अवसर पर किया जायेगा। परन्तु हमारी कालगणना के अनुसार हिरण्यनाभ कौसल्य का समय ४५०० वि० पू० था, न कि महाभारतकाल, प्रतीत होता है कि कौसल्यवंश में हिरण्यनाभ के अनेक, न्यूनतम तीन राजा हुए, प्रथम हिरण्यनाभ का समय दाशरथिराम (५2६० वि०पू०) से भी ८०० वर्ष पूर्व था। द्वितीय हिरण्यनाभ कौसल्य सामसंहिताकार था, जो विश्वसह का पुत्र और द्विजमीढवंशीय राजा कृत का सामसंहिताकार शिष्य था और तृतीय हिरण्यनाभ कौसल्य जैमिनि की शिष्यपरम्परा मे हुआ।[1]

बीसवे व्यास वाचश्रवा या वाजश्रवा (६४७० वि० पू०) का पुत्र नचिकेता गौतम था, जिसका आख्यान कठोपनिषद् मे मिलता हैं।[2]

बाइसवे शुक्लायन व्यास के समय (६०८० वि० पू०) मधु, पंङ्ग और स्वेयकेतु को उनके शिष्य बताना पुराणपाठो की महती त्रुटि है, जबकि शिवावतार लाङ्गली का अवतार कलियुग मे कहा गया है।[3] श्वेतकेतु आदि वाजसनेय याज्ञवल्क्य के समकालिक (३१०० वि० पू०) कहोड कौषीतकि के शिष्य थे। वायुपुराण मे एक स्थान पर तृणविन्दु जो २३ वे युग के व्यास थे, तृतीययुग मे रखदिया, पुराणपाठ की ऐसी त्रुटिया कालक्रम निश्चित करने में अत्यन्त बाधक है। तदनुसार तृणविन्दु वैशालेय जो विश्रवा और तत्पिता पुलस्त्य और आगस्त्य (पौलस्त्य और आगस्त्य) ऋषियो के साथी थे। ५३२० वि० पू० से ५२६० वि० पू० मध्य मे हुए। यही आगस्त्य ऋषि सभवत: राम दाशरथि तक जीवित रहे।

चौबीसवे व्यास ऋक्ष वाल्मीकि (५२६० वि० पू० से ४६०० वि०पू०) और पच्चीसवे व्यास शक्ति मे सम्बन्ध मे भी पुराणो मे त्रुटि प्रतीत होती है। यद्यपि वाल्मीकि और शक्ति वसिष्ठ-दोनो ही दीर्घजीवी थे, परन्तु शक्ति वासिष्ठ ऐक्ष्वाक सौदास कल्माषवाद का समकालिक था। और दशरथि राम कल्माषपाद के दश पीढी पश्चात् हुए, अतः कल्माषपादपूर्ववर्ती

---

१. वै० वा० इ० भाग १ (पृ० २५६)।
२. वाजश्रवस सर्ववेदसं ददौ तस्य है नचिकेता नाम पुत्र आस (कठो० १।१।१)
३ नाम्ना लाङ्गली भीमो यत्र देवा सवासवाः। द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्नवतीर्णं हलायुधम् (वायु०)

राजा था और राम उत्तरवर्ती, ऋक्ष वाल्मीकि को पूर्ववर्ती दिखाया गया है। इस समस्या के दो ही समाधान हो सकते हैं कि शक्ति व्यास आदिम शक्ति वासिष्ठ का उत्तरवर्ती वंशज हो सकता है, अथवा वाल्मीकि दीर्घजीवी थे ही कि कल्माषपाद से ही पूर्व उन्होंने वेदप्रवचन किया होगा।

सत्ताइसवे व्यास जातूकर्ण्य (४१८०-३७२० वि० पू०) के समय प्रसिद्ध दार्शनिक अक्षपाद गौतम (न्यायसूत्रकार), कणाद (वैशेषिकसूत्रकार), उलूक और वत्स (या वात्स्यायन) हुए।[२]

यहाँ पर अस्थान पर व्यास परम्परा का संक्षिप्त उल्लेख इसलिए किया गया है, जिससे कालक्रम का सम्यक्बोध हो।

दक्षसन्तति—प्राचेतस दक्ष की दो पत्नियाँ थी असिक्नी और वीरिणी। असिक्नी के दक्ष से ५००० हर्यश्वसंज्ञकपुत्र उत्पन्न हुए बताये गये है. नारद के उपदेश को मानकर वे पृथ्वी नापने दूर दूर तक चले गये और नष्ट हो गये, पुनः दक्ष ने असिक्नी से १००० शवलाश्वसंज्ञकपुत्र उत्पन्न किये, परन्तु वे भी नष्ट हो गये। प्रतीत होता है कि दक्ष की शताधिक पत्नियां होंगी, जिनसे ६००० पुत्र उत्पन्न हुए, यह भी सभव है कि हर्यश्व और शबलाश्व दक्ष के पौत्रादि की सन्तति हो, जो सभी दक्षसन्तति कहलाये, क्योंकि इन दोनों को ही 'प्रजाविवर्धयिषु' कहा है।[३] स्पष्ट है जब वे प्रजा बढ़ाने के इच्छुक थे तो उन्होंने सन्तति अवश्य उत्पन्न की होगी तथा उनकी संज्ञा 'हर्यश्वाः' और शबलाश्वा से भी स्पष्ट है कि हर्यश्वादि पुत्र नहीं दक्ष के प्रभूतसंज्ञक पौत्रादि थे। स्वय दक्ष अत्यन्त दीर्घजीवी थे ही।

तदनन्तर दक्षप्राचेतस ने ६० कन्याओं को उत्पन्न किया, जिनमे से दश कन्याओं का धर्म प्रजापति को २७ कन्याओं का सोम को, ४ अरिष्टनेमिको ४ भृगुपुत्र को २ आङ्गिरस (दोनो ही अज्ञातनामा) को, ४ कृशाश्व को, और १३ कन्यायें परमेष्ठी काश्यप को प्रदान की। धर्म की सन्तति वसु आदि का पूर्व वर्णन किया जा चुका है और परमेष्ठी की सन्तति का अग्रिम

---

१. कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्चशक्तिना। (वायु० २।११),
सौदासस्य महायज्ञे शक्तिना गाथिसूनवे ॥ (बृहद्दे० ४।११२),

२. वायुपुराण (प्र० २३)

३. दक्षस्य पुत्रा हर्यश्वा विवर्धयिषवः प्रजाः।
विवर्धयिषवस्ते शबलाश्वाः प्रजास्तदा ॥ (हरि० १।६।१६,२१)

'पांचजन्ययुग' (देवासुरयुग)संज्ञक अग्रिम अध्याय में उल्लेख होगा। देवासुर-युग चाक्षुषमन्वन्तर का अन्तिम चरण था।

नारद का पैतृककुल—प्रतीत होता है कि नारद मूलरूप मे दक्ष के पुत्र और हर्यश्वादि के भ्राता ही थे, परन्तु पिता दक्ष के क्रोध के कारण वे परमेष्ठी काश्यप की शरण मे चले गये और परमेष्ठी के पुत्र कहलाने लगे इसलिए दक्ष के पुत्र नारद को परमेष्ठी काश्यप का मानस (दत्तक) पुत्र कहा है—

मानस. कश्यपस्यासीद् दक्षशापभयवशात्पुन ।
तस्य स काश्यपस्य च द्वितीयो मानसोऽभवत् ॥[1]

देवर्षिनारद सभव है किसी विवादग्रस्त लोभ (राज्य-ग्रहणादि) के कारण अपने बन्धुओ को नष्ट करने का षड्यन्त्र किया होगा, जिसमे दक्ष को महान् क्रोध होना स्वाभाविक था।[2]

दक्ष के वशजो मे ही हिमालय या पर्वत नामक राजर्षि हुआ, जो नारद का परममित्र था, इसी पर्वतकन्यापार्वती उमा का विवाह देवयुग मे महादेव रुद्र से हुआ। दक्षपार्वतीय ने पूर्वज दक्ष के राज्य को प्राप्त किया।[3]

महादेव का कालनिर्णयः समस्या—चाक्षुषयुग मे दक्ष प्राचेतस (प्रथम) की पुत्री सती का विवाह महादेव रुद्र से हुआ था, यह पुराणऐतिह्य अत्यन्त जटिल समस्याकारक है। दक्ष से महादेव नीललोहित का वैमनस्य सती का यज्ञाग्नि मे मरण और दक्ष-महादेव का परस्परशाप, देवयुग (१२००० वि० पू०) की घटनाये थी, तब महादेव का चाक्षुषमन्वन्तर के अन्त (१२००० वि०पू०) मे पुनर्विवाह, कार्तिकेयपुत्रोत्पत्ति और देवासुरयुद्ध मे सक्रिय भाग लेना विस्मयकारक है, जबकि सतीदाह के अनन्तर महादेव तपस्या मे लीन हो गये और १००० (एक सहस्र) वर्ष पश्चात् वृद्ध तपस्वी महायोगी महादेव पुनः विष्णुसदृशयुवा देवो के साथ असुरो से युद्ध करने लगे और पुनर्विवाह करने लगे।

रुद्रकृतदक्षयज्ञविध्वंस और देवासुरसंग्रामों का समय—पुराणो के वर्तमानपाठो मे प्रजापतिधर्म और रुद्र को स्वयम्भू के आदिम द्वादश

---

१. ब्रह्माण्ड० (२।३।२।१४),
२. तस्योद्यतम्तदादक्षः क्रुद्ध. शापाय वै प्रभु । ब्रह्माण्ड० २।३।२।१६),
३. दक्षः पार्वतिस्त......दाक्षायणो (ब्र० ब्रा० २।४।४।३),

पुत्रों में मानना उस मूल इतिहास के विपरीत है जिसमें आदिम विश्वसृजों या स्वयम्भू के मानसपुत्रों की अधिकतम संख्या केवल दश कही गई है—

भृगुमरीचिरत्र्यत्रिरङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
मनुर्दक्षो वशिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेतितेदश।। (महा० १२।१२२।४४)

मनु के बिना इनकी संख्या नौ (नवब्राह्मण) ही कथित है ।[1]

रुचि, धर्म और रुद्र तीनों ही इनमें सम्मिलित नहीं है, इनमें रुचि तो स्वायम्भुवमनु के तुल्यकालीन थे, परन्तु धर्म और रुद्र को आदिम ब्रह्मपुत्रों में सम्मिलित करना अतथ्य एवं इतिहास के विपरीत है, क्योंकि धर्म की दश पत्नियां दक्ष प्राचेतस की साठ पुत्रियों मे से थी, जिनके अन्य समकालिक पति, काश्यप परमेष्ठी, कृशाश्व, अरिष्टनेमि, भृगुपुत्रादि थे ।[2] अतः कश्यप परमेष्ठी के पुत्ररुद्रमहादेव देवासुरयुगीन महापुरुष ही थे, इन्ही महादेव ने वरुणपुत्रभृगु को अपना पुत्र कल्पित किया था । 'चाक्षुष मन्वन्तर के समकालिक प्रजापति थे—काश्यप (परमेष्ठी), शेष, महादेव विक्रान्त, सुश्रवा, बहुपुत्र, कुमार(कार्तिकेय), विवस्वान्, प्रचेता, अरिष्टनेमि और बहुल प्रजापति ।[3] स्पष्ट है जब शिवपुत्रकार्तिकेयकुमार विवस्वान् आदित्य के समकालीन थे तो उनके पिता शिव, आदिम स्वायम्भुव मन्वन्तर के व्यक्ति नहीं हो सकते ।

अतः शिव की प्रथमपत्नीसती दक्षप्राचेतस की पुत्री थी, न कि स्वायम्भुव दक्ष की, इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि यज्ञसंस्था का प्रवर्तन पृथुवैन्य से पूर्व था ही नही, इसका प्रवर्तन धर्म के पुत्र नारायण[4] (सा॰ध्य) ने किया, जो देवासुरपिताकाश्यप परमेष्ठी के समकालिक थे । अतः स्वायम्भुवयुग मे यज्ञों का अभाव था और जिस दक्ष ने महान् यज्ञ किया, वह प्राचेतस दक्ष ही था, इसी के यज्ञ मे प्रथम शिवपत्नी ने

---

१. नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः (ब्रह्माण्ड० १।२।६।१६)
२. पुत्रत्वे कल्पयामास महादेवस्तदा भृगुम् । (ब्रह्माण्ड० २।६।१।६६)
३. कश्यपः कर्दमः शेषो: विक्रान्तः सुश्रुवास्तथा ।
ब्रह्मपुत्रः कुमारश्च विवस्वान्स शुचिव्रतः ।।
प्रचेतोऽरिष्टनेमिर्बहुलश्च प्रजापतिः (ब्रह्माण्ड० २।६।१।५६-५४)
४. धर्मान्तरायणस्तस्माद् संभूतश्चाक्षुषेऽन्तरे ।
यज्ञं प्रवर्तयामास चैत्ये वैवस्वतऽन्तरे ।। (वायुपु०)

आत्महत्या की और शिव के द्वितीय श्वसुर पर्वत राजर्षि भी दक्ष प्राचेतस के निकटसम्बन्धी, संभवत पुत्र या पौत्रादि थे। पितृकन्यामेना, जो राजर्षि पर्वत की पुत्री थी, वे भी देवासुरयुग में हुई न कि स्वायम्भुव मन्वन्तर में, उसकी भगिनी धरणी मानसी मेरुसावर्णि की पत्नी थी, उसकी एक पुत्री वेला का विवाह समुद्र से हुआ, जिसकी पुत्री सवर्णासामुद्री प्राचीनबर्हि (दक्षप्राचेतस के पितामह) से हुई थी, अतः पर्वत, प्रचेता, प्राचीनबर्हि, रुद्र आदि सभी एक ही युग में हुए और इसी युग में रुद्र का प्रथम श्वसुर प्राचेतसदक्ष हुआ. इसका द्वितीय श्वसुर पर्वत प्रायः प्राचेतस दक्ष के समकालिक था, न कि उनमें सहस्रोंवर्षों का अन्तर।

रुद्र का जन्म चाक्षुषमन्वन्तर के देवासुरयुग मे हुआ, इसकी पुष्टि देवासुरसग्रामो से भी होती है, द्वादशदेवासुरसग्रामो मे कमसेकम दो युद्धो के नायक रुद्र महादेव थे—सप्तमत्रैपुर और अष्टम अन्धकारकदेवासुरसग्राम।

सप्तमस्त्रैपुरः स्मृतः अन्धकारोऽष्टमस्तेषाम्। (वायुपु०) देवसेनाओ का सेनापत्य रुद्रपुत्र कुमार कार्तिकेय[1] ने किया, जो इन्द्रादि के समकालीन थे, अत महादेव का समय ११००० वि० से १४००० वि० पू० के मध्य था, जो कि दक्ष प्राचेतस और काश्यप देवेन्द्र इन्द्र का समय हैं। शिव को स्वायम्भुवयुग मे मानना पुराणों की महती त्रुटि है, ऐसी अनेक त्रुटियां पुराणों मे मिलती हैं जिनका सशोधन करना, इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है।

शिव अत्यन्त दीर्घजीवी पुरुष थे, जो दक्ष प्राचेतस से इन्द्र के समयतक लगभग तीन सहस्रवर्षपर्यन्त इस पृथ्वी पर अवश्य रहे।

अग्निवंश—इतिहासपुराणों मे इन दोनो वशो का सक्षिप्तसाविवरण मिलता है, परन्तु अग्निवश को वर्तमान पुराणपाठों में यज्ञाग्नियो एव अन्य भौतिक अग्नियो से सम्मिश्रित करके इस वश की ऐतिहासिकता नष्ट भ्रष्ट कर दी गई है। चाक्षुषमन्वन्तर मे एक या अनेक 'अग्नि'सज्ञकपुरुष या प्रजापति हुये। एक प्रसिद्ध 'अग्नि' की पुत्री धिषणा[2] थी, जिसका विवाह चाक्षुषमनु के ज्येष्ठपुत्र उससे हुआ था, इनके छ. पुत्र हुए, अगादि यह

१. द्र० महाभारत वनपर्वः स्कन्दोपाख्यान (अध्याय २२४-२३१),

२. उरोस्त्वजनयत्पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान्॥
(ब्रह्माण्ड० १।२।३३।१०७),

'अग्नि' अङ्गिरा के वश मे हुआ, इसी अग्नि के वश मे बृहस्पति आङ्गिरस का जन्म हुआ।[1] यह बृहस्पति आङ्गिरस, उन आङ्गिरसो के बहुत समय पश्चात् उत्पन्न हुआ, जिन्होने पृथुवैन्य का राज्याभिषेक किया।

द्वितीय सप्तर्षियों की पत्नियां षट् कृतिकायें भी उपर्युक्त अग्नि के वश मे उत्पन्न हुई, जिन्होने रुद्रपुत्र कार्तिकेय का पोषण किया—

अथ सप्तर्षयः श्रुत्वा जात पुत्र महौजसम्।[2]
तत्यजुः षट् तदा पत्नीर्विना देवीमरुन्धतीम्॥

अग्नि आङ्गिरस से बृहस्पति, बृहत्कीर्ति, बृहज्योति, बृहद्ब्रह्म, ब्रह्ममना, ब्रह्मन्मन्त्र और बृहद्भास—ये सात पुत्र हुए (वनपर्व २१८।१), अग्नि आङ्गिरस की पुत्रियां थी—भानुमती, राका, सिनीवाली, महिष्मती, कुहू और महामति इत्यादि।

बृहस्पति की भार्या चान्द्रमसी से छ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई—पुत्र थे, शयु, भरद्वाज, भरत, निश्च्यवन, निष्कृति और स्वप्रभु। इसके साथ ही पुराणो मे पावक, पवमान, शुचि, आहवनीय, गार्हपत्यादि प्राकृतिक और यज्ञाग्नियो के नामसाम्य से मिश्रण करके इतिहास को कल्पना मे परिवर्तित कर दिया।[3]

ऐतिहासिक अङ्गिरा, अग्नि आदि स्वायम्भुवमनु समकालीन यामदेवो के साथी थे, परन्तु पुराणो मे इनकी पर्याप्त ऐतिहासिकता नष्ट भ्रष्ट कर दी गई है। भृग्वङ्गिरस की गुत्थी इसी कल्पना की देन है।

भृग्वङ्गिरस—वरुण के पुत्र भृगु अग्नि के आविष्कारक कहे गये हैं और अङ्गिरा को अग्नि का प्रथमपुत्र कहा गया है—

अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयो ह्यग्निरथर्वण. स्मृतः।[4]
ज्ञात्वा प्रथमजं तं तु वह्नेरङ्गिरसं सुतम्।[5]

---

१. राजन् बृहस्पतिर्नाम तस्याप्यङ्गिरसः सुत। ज्ञात्वा प्रथमज त तु वह्नेराङ्गिरसं सुतम् (महा० ३।२१७।१८),
२. महा० (३।२२६।८),
३. द्र० ब्रह्माण्डपुराण १।२।१२ अध्याय,
४. वही (१।२।१२।१०),
५. महा० (३।२१७।१६),

महाभारत, आदिपर्व (अ० ७) में भृगु द्वारा अग्नि का निर्भर्त्सन (शाप), अन्तर्धान और पुनः प्रकट होने की कथा है, जब अग्नि ने भृगुपत्नी पुलोमा का अपहरण करनेवाले पुलोमा असुर का गोपन किया। अतः अग्नि का आविष्कार करने के कारण भृगु का 'अथर्वा' नाम प्रथित हुआ। अग्नि के ऋषिसदृश अनेक नाम कहे गये हैं—यथाकाश्यप, वासिष्ठ, प्राण, आङ्गिरस, च्यवन पाञ्चजन्य, भरत, शिव, पुरन्दर, मनु, शम्भु, कपिल[1] इत्यादि। अग्निवंश का भौतिकाग्नि से संमिश्रण करने के कारण इन सब अग्निवंशजों का यथार्थ ऐतिह्य निश्चित करना दुष्कर कर्म है।

महाभारत (३।२२२) में अग्नि द्वारा महार्णव में प्रवेश और उसकी अथर्वा आदि द्वारा पुनः प्राप्ति का सकेत वेदमन्त्रो मे भी मिलता है।[2]

दृष्ट्वा ऋषीन् भयाच्चापि प्रविवेश महार्णवम्।
तस्मिन् नष्टे जगद्भीतमथर्वाणमाश्रितम्॥
अर्चयामासुरेवैनमथर्वाणं सुरर्षयः॥
एवमग्निर्भगवता नष्टः पूर्वमथर्वणा।
आहूत. सर्वभूताना एव वहति सर्वदा॥ (वनपर्व २२२।१५-१६)

अथर्वा (भृगु) का आङ्गिरसवंश में सयोग होने के कारण इतिहास में उभयऋषि का भृग्वङ्गिरस या अथर्वाङ्गिरसवंश प्रसिद्ध हुआ, जिनका छन्दोवेद (अवेस्ता)—अथर्ववेद से विशेष सम्बन्ध था, प्राचीन ईरान में ब्राह्मणों को आथर्वण कहते थे, क्योंकि वे अथर्वा (भृगु) के वंशज थे।

पितृवंश—इतिहासपुराणों में पितृ एकजाति का नाम है, जिनका अधिपति वैवस्वतयम हुआ।

१ वैवस्वत पितृणाञ्चयम राज्येऽभ्यषेचयत्।[3]
२. यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशः।[4]
३. देवाः पितरो मनुष्यास्तेऽन्यत आसन्। असुरा रक्षांसि पिशाचास्ते अन्यत.।[5]

---

१ अग्निः स कपिलो नाम साङ्ख्ययोगप्रवर्तकः (महा० ३।२२२।२१),
२. यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ्ङ्धियमत्नत'। यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्ते।
(ऋ० १।८०।१६)
३. हरि० (१।४।६),
४. श० ब्रा० (१३।४।३।६),
५. जै० ब्रा० (१।१५४),

पंचजन जातियों में पितृ एक थे—सर्वेषां वा एतत् पञ्चजनानामुक्थ्यं-देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितृणां वै ।[1] पितृदेवपक्षीय जाति थी जो युद्धों में देवों का साथ देती थी ।

पितृगणों के दो वंश थे, मरीचि के वंशज बर्हिषद्सोमयसंज्ञक पितर और पुलह के वंशज अग्निष्वात्तपितरगण । इनको स्वधापितर भी कहा जाता था । देवयुग में स्वधापितरों की दो मानसी कन्यायें थी—मेना और धरणी, इनमें मेना का विवाह राजर्षि दाक्षायण पर्वत से हुआ, जिसका पुत्र हुआ मैनाक (मेना का पुत्र; तद्धित) मेरुसावर्णि की पत्नी थी—धरणी, जससे मन्दर (पुत्र) और तीन कन्यायें बेला, नियति और आयति, ये क्रमशः धाता और विधाता की पत्नी हुई । वेला का विवाह सवर्ण या समुद्र से हुआ, जिसकी पुत्रा सवर्णा का विवाह—प्राचीनबर्हि से हुआ, जिनके पुत्र हुए दक्ष प्रचेता, और उनका पुत्र हुआ प्राचेतस दक्ष । अतः पर्वत, प्रचेता, शिव, मेरुसावर्णि आदि समकालीन पुरुष थे, वे चाक्षुषमन्वन्तर १४००० वि० पू०) में हुये ।

बर्हिषद्पितरो की कन्या अच्छोदा ने ऐलपुत्र अमावसु को पितृरूप में वरा ।[2] इसको अष्टाविंशयुग मे उत्पन्न अद्रिका की पुत्री सत्यवतीमत्स्य गन्धा माना है । पुराणो ने भूल से पुलह प्रजापति की कन्या पीवरी को पाराशर्य व्यासपुत्र शुक की पत्नी बताया है, वस्तुत. यह शुक्र की पत्नी थी, जिससे पांच योगाचार्य उत्पन्न हुए—कृष्ण, गौर, प्रभु, शभु और भूरिश्रुत । पुत्री कीर्तिमती को पाचालनरेश अणुह की पत्नी और ब्रह्मदत्त की माता बताया गया है, यह भी नामसाम्यजन्यत्रुटि है । इसके अतिरिक्त पितृ कन्याये प्रसिद्ध हुई—उशना (शुक्र) की पत्नी—एकशृंगा, यशोदा (खट्वांग की माता), पुलहपुत्र कर्दम की मानसीकला, नहुष की पत्नी विरजा ययाति की माता थी, वसिष्ठ के वंशज पितृ थे सुकाल, इनकी मानसीकन्या थी नर्मदा, पुरुकुत्स की पत्नी और त्रसदस्यु की माता, जिसके नाम पर प्रतिष्ठित नदी का नाम नर्मदा पड़ा ।

हिमालयपर्वत (राजर्षि-दाक्षायण) की पत्नी मेना की तीन पुत्रिया हुई—अपर्णा, एकपर्णा और एकपाटला । इनमे अपर्णा (उमा) इत्यादि क्रमशः

१. ऐ० ब्रा० (१३।७),
२. ब्रह्माण्ड० (१।२।१३।३०-३६).

महादेव, असित और जैगीषव्य की पत्नियां हुई, जिनके पुत्र क्रमशः कार्तिकेय, देवल और शखलिखित थे। जैगीषव्य के पिता मुनि शतशलाक्ष थे और उशना, महादेव, के दत्तकपुत्र हुए।

जो सप्तर्षि भृग्वादि वरुणादिदेवों से पुत्ररूप में उत्पन्न हुए, वे ही पुनः देवों के पितर बने।[1] दध्यङ् आथर्वण के पुत्र सारस्वत ने अपने वृद्ध पितरो को वेद पढ़ाया[2] और विश्वामित्र ने इन्द्र को वेद पढ़ाया।[3] पहिले विश्वामित्र ने इन्द्र से वेद पढा था।[4]

(चार सावर्णि मनु)

वंश—प्राचेतसदक्ष के पुत्र रोहित और प्रिया के पुत्र थे।[5] कुछ पुराणपाठो मे इनको भविष्य के मनु समझकर इस मन्वन्तर के भविष्य कालिक (अनागत) सप्तर्षियो मे जोड दिये हैं—कृष्णद्वैपायन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा द्रोणि, दीप्तिमान् आत्रेय, ऋष्यश्रृंग काश्यप, गालव कौशिक और जामदग्न्य राम भार्गव।[6] ये सभी ऋषि विभिन्न युगो मे हुए, जिनमे द्वैपायन, कृप और अश्वत्थामा भारतयुद्ध मे प्रसिद्ध पात्र थे,[7] यह पाठ भविष्य वर्णन की भ्रामक धारणा से आक्रान्त है।

मेरुसावर्णि—दक्षसावर्णि ब्रह्माण्डपुराण मे ही मेरुसावर्ण प्रथम मनु के सप्तर्षि सही पढे गये—मेधातिथि पौलस्त्य, वसुकाश्यप, ज्योतिष्मान् भार्गव, द्युतिमान् आङ्गिरस, वसुमन् वासिष्ठ, हव्यवाहन आत्रेय और सुतपा पौलस्त्य। एक ही स्थान पर दो पाठो से भ्रम की पुष्टि और असत्य का निराकरण हो जाता है, अधिकांश पुराणो मे अश्वत्थामा आदि के ही नाम

---

१ देवानसृजत् ब्रह्मा मां यक्ष्यन्तीति च प्रभुः।
तमुत्सृज्यात्मानमयजस्ते फलार्थिनः॥
ते पुत्रानब्रुवन्प्रीता लब्धसंज्ञा दिवौकसः।
यूय वै पितरोऽस्माकं वै वय प्रतिबोधिताः॥
पुत्रा पितृत्वमाजग्मुः पुत्रत्वपितरस्तु पुनः॥

२. मनु० स्मृ० (२),

३. जै० ब्रा० (२।७६),

४. शा० आरण्यक।

५. ब्रह्माण्ड० (३।४।१।२४),

६. ब्रह्माण्ड० (३।४।१।१०-१२),

७. प्राचेतसमनु के प्रतीक (शान्तिपर्व)।

हैं, केवल ब्रह्माण्ड मे सत्य पाठ अवशिष्ट है। ब्रह्माण्ड में स्पष्ट लिखा है कि मेरुसावर्णि (प्रथम) रोहित के देवत्रयगण वैवस्वत अन्तर मे ही हुये—

परामरीचिगर्भाश्च सुधर्माणश्चते त्रयः।
संभूताश्च महात्मानः सर्वे वैवस्वतेऽन्तरे ।।
(ब्रह्माण्ड० १।४१।५५)

अतः वैवस्वत मनु के समकालीन[1] उपर्युक्त चार मनुओं को भविष्य के मनु मानना पूर्णत भ्रान्तिमात्र है। इस मेरुसावर्णि मनु के इन्द्र पार्वतीनन्दन स्कन्द षण्मुख कार्तिकेय देवो के इन्द्र थे।[2] स्पष्ट ही मेरुसावर्णि और स्कन्द देवयुग के अन्त मे (१२००० वि० पू०) के पुरुष थे।

धर्मपुत्र सावर्णमनु—द्वितीय सावर्णिमनु का नाम था धर्मपुत्र सावर्णि। इस युग का इन्द्र था—शान्ति और सप्तर्षि थे हविष्मान् पौलह, सुकीर्ति भार्गव, आपोमूर्ति आत्रेय, आपव वासिष्ठ, अप्रतिम पौलस्त्य, नाभग काश्यप और अभिमन्यु आङ्गिरस। मनु के दशपुत्र या वंशज थे—सुमेध, उत्तमौजा, भूरिसेन शतानीक, निरामित्र. वृषसेन जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा।

रुद्र सावर्णि—एकादशपर्याय (युग) मे रुद्रसावर्णि (काश्यप) वृषसञ्ज्ञक इन्द्र हुआ और सप्तर्षि थे—हविष्मान् काश्यप, वपुष्मान्, भार्गव आरुणि-आत्रेय, अनघवासिष्ठ, पुष्टि आङ्गिरस, निश्चर पौलस्त्य और अतितेजा पौलह। मनु के नव पुत्र हुए—संवर्तक, सुशमी, देवानीक, पुरोवह, क्षेमधर्मा, दृढायु, आदर्श, पौण्ड्रक और मरु।

द्वादशमनु—इन्द्रसावर्णि या ब्रह्मसावर्णि—इसमे इन्द्र (देवराज) ऋतधामा था और सप्तर्षि—धृतिवासिष्ठ, सुतपाआत्रेय तपोमूर्ति आङ्गिरस, तपस्वी काश्यप, तपोधन पौलस्त्य, तपोरति पौलह, और तपोधृति भार्गव। मनु के दशपुत्र—देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रसेन, चित्रसेन, अमित्रहा, मित्रबाहु, और सुवर्चा।

---

१. वैवस्वतेऽन्तरे जातौ द्वौ मनू तु विवस्वतः।
वैवस्वतो मनुर्यश्च सावर्णो यश्चश्रुतः।
सावर्णमनवो ये चत्वारस्तु महर्षिजाः।। (ब्रह्माण्ड० ३।४.१।५१-५३)

२. स्कन्दोऽसौ पार्वतीयो वै कीर्तिकेयस्तु पावकिः। (ब्रह्माण्ड०)

पुराणो में उपर्युक्त मनुनामों, इन्द्रो और सप्तर्षियो के नाम क्रमादि में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि अन्य तुलनात्मक या समकालिक घटनाओं के अभाव मे सावर्णिमनुओं के ऐतिह्य का महत्व न्यून ही है परन्तु पुराणोल्लिखित सम्पूर्ण मानव इतिहास का सार प्रस्तुत करने की दृष्टि से इनका महत्व अतिरोहित है।

२

पाञ्चजन्ययुग (देवासुरयुग)

परमेष्ठी या कश्यप (काश्यप ?) या अरिष्टनेमि—देवासुर या वक्ष्यमाण पंचजन जातियो के जनक का नाम परमेष्ठी था, परन्तु सुपुष्ट प्रमाणो से ज्ञात होता है कि वे कश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे, स्वय उनका नाम कश्यप नही था, इसका प्रमाण पूर्व पृष्ठ (२३३) पर दिया जा चुका है कि परमेष्ठी काश्यप से पूर्व मनुओ के समकालीन मारीच कश्यप के वशज अनेक काश्यप सप्तर्षियो मे सम्मिलित थे, इसका एक सुपुष्ट प्रमाण है वैदिक ग्रन्थो मे इनको कही भी कश्यप नही कहा 'परमेष्ठी' नाम से अभिहित किया है—'स परमेष्ठी प्रजापति पितरमब्रवीत्......स प्रजापतिरिन्द्र पुत्रमब्रवीत्'[1] ब्रह्माण्डपुराण[2] मे वैवस्वतमन्वन्तर के सप्तर्षियो मे वत्सर काश्यप की गणना है न कि आदिम कश्यप या परमेष्ठी की, अन्यत्र प्राय इसे कश्यप ही कहा है केवल कश्यप नाम से आदि कश्यप (मारीचपुत्र) का भ्रम होता है, जो देवासुरपिता नही थे, ब्राह्मणग्रन्थो मे भी सप्तर्षियो मे कश्यप का ही नाम है वत्सार का नही, गोत्र नाम से किसी ऋषि का व्यक्तिगत नाम लोप करने की वेद की परम्परा वेदमन्त्रो से ही प्रारम्भ होगई थी, परन्तु प्राचीन इतिहासपुराणो मे (यथा वायु और ब्रह्माण्ड) मे पैतृक नाम के साथ व्यक्ति का नाम लिया जाता है, अतः केवल 'कश्यप' नाम से यह निश्चय नही हो सकता कि वह कौनसा काश्यप था, यथा विश्वकर्मा भौवन के पुरोहित कश्यप के विषय मे यह निश्चय नही कर सकते कि वह कौनसा काश्यप था।[3]

---

१. श० ब्रा० (११।१।३।१५-१६)
२. ब्रह्माण्ड० (१।२।३८।२६)
३. तेन ह तेन विश्वकर्मा ईजे......तं ह कश्यपोयाजयाचकार
(श० ब्रा० १३।७।१।१५)

पुराणो में भ्रम से परमेष्ठी प्रजापति को अरिष्टनेमि कहा गया है, जो स्पष्ट ही भ्रामक है, इसका प्रमाण है कि अरिष्टनेमि को दक्ष प्राचेतस ने केवल चार कन्याये[1] विवाही थी। अरिष्टनेमि, परमेष्ठी के तुलकालीन अन्य प्रजापति थे।

पंचजन :—ये देवाअसुरेभ्यः पूर्वे पचजना आसन्।[2]

पचजना ममहोत्र जुषध्वम्।[3]

परन्तु, शतपथब्राह्मण मे दशजन या दशविध प्रजाओ का उल्लेख है—

(१) असुर (दैत्यदानव=असुर) (२) देव (+मनुष्य) (३) गन्धर्व (+अप्सरा) (४) नाग (५) सुपर्ण (६) पितृ (७) निषाद (८) यक्ष राक्षस (९) अप्सरा और (१०) मत्स्यजीवी (दाशजन)।

ये सभी परमेष्ठी की सन्तति थे, पूर्वार्ध जन प्रथम पाच प्रधान थे, और शेष (उत्तरार्ध) पचजन गौण थे। अब उपर्युक्त पचजनजातियो का ऐतिह्य एव कालक्रम समासव्यासरूप से निश्चित करेंगे।

पूर्वदेव :- (दैत्यदानवअसुर)

प्राचेतसदक्ष की त्रयोदश कन्याओं का विवाह परमेष्ठी काश्यप प्रजापति से हुआ था, जिनके नाम थे—दिति, अदिति, दनु, अरिष्ठा, सुरसा खशा, सुरभि, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, मुनि, और विनता। इनमे से दिति सबमे बडी थी और उसकी सन्तान 'दैत्य' कहलाई, इनको 'पूर्वदेव' कहा जाता था, द्वितीयपुत्री 'दनु' के पुत्र 'दानव' कहलाये, जो दैत्यो के साथी हुए, दैत्यदानवो का सम्मिलित नाम ही 'असुर' या 'पूर्वदेव' था।

शक्र (इन्द्र) आदि देवो से पूर्व सम्पूर्ण भूमण्डल पर असुरो या पूर्व देवो का साम्राज्य था, इसका साहित्यिक उल्लेख द्रष्टव्य है—

असुराणां वा इयं पृथिवी अग्रे आसीत्।[5]

असुराणा वा इयं पृथिव्यासीत्।[6]

---

१ चतस्रोऽरिष्टनेमिने (हरि० १।३।२९)

२. जै० उ० ब्रा० (१।४१।१७)

३ निरुक्त (२।३)

४. महा० (२।१।१५)

५. तै० ब्रा० (३।२।९।६)

६. काठकसं० (३१।८)

दितिस्त्वजनयत् पुत्रान् दैत्यांस्तात यशस्विनः।
तेषामियं वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा।'

असुरसाम्राज्य के प्रत्यक्षसाक्ष्य—उपर्युक्त तथ्य केवल वैदिक या पौराणिकग्रन्थो की कल्पना या उडानमात्र नही है, इमके आज भी दो प्रमुख पुरातात्विक प्रमाण मिल चुके हैं—प्रथम (१) प्रमुख प्रमाण है देश, नगर, पर्वत, नदी, नामो मे आसुरनाम आज भी सुरक्षित है (२) द्वितीय पुरातात्विक उत्खनन सम्बन्धी प्रमाण। इन दोनो का सक्षेप मे परिचय देते है।

देशादि में आसुर प्रभाव

जिस प्रकार स्वायम्भुवमनु के दश मे से सात पौत्रो ने पृथिवी को जम्बूद्वीप आदि सात महाद्वीपो मे विभक्त किया था, उसी प्रकार असुरो ने देवो से पूर्व प्रथम, द्वितीय और तृतीययुग (१४००० वि० पू० से १२५०० वि० पू०) मे पृथ्वी पर अपने साम्राज्य को सात तलो मे विभक्त किया था।[2]

अतल महाद्वीप अतल (अतलांतिक) सागर में डूबा—सप्ततलो मे यह अतल महाद्वीप सर्वप्रधान था, जिसमे असुरो ने अपनी महान् सभ्यता और संस्कृति का विस्तार और पल्लवन किया था—'अतलातिक' महासागर के नाम मे आज भी 'अतल' की स्मृति सुरक्षित है, अत. इसे केवल पुराणो की या भारतीयो की कल्पना कहकर नही उडाया जा सकता। अभी हाल मे 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' पत्र मे एक लेख इस सम्बन्ध मे प्रकाशित हुआ है। "जिमके अनुसार किसी युग मे अतलातिक (अतल) नामक एक महाद्वीप था और जिसमे कोई महान् सभ्यता विकसित थी। इस महाद्वीप की संस्कृति निरन्तरता अमेरिका की 'मय'[3], इन्का आदि सभ्यताओ से प्रारम्भ होकर (आज का सयुक्तराष्ट्रअमेरिका, मैक्सिको तथा द० अमेरिका के कुछ क्षेत्र) जिब्राल्टर, कालासागर, आदि से होती हुई मृतसागर मिश्र, यमन,

---

१ रामा० (३।१४।१५-१६),

२ अतल, सुतल, तलातल, महातल रसातल. वितल और पाताल (ब्रह्माण्ड १।२।२१।११-१५), भागवत मे इनका क्रम है—अतल, वितल, सुतल, तलातल महातल, रसातल, और पाताल (भागवतपु० ६।२४।७),

३. भागवत के अनुसार अतल मे मय के पुत्र बल का राज्य था (स्कन्ध ५)

मध्य एशिया की सुमात्रा जावा, कम्बोडिया आदितक बनी हुई थी। फिर कहा जाता है कि यह महाद्वीप डूब गया और एटलांटिक महासागर बन गया।

३५० ई० पू० में प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने अपने ग्रन्थ (डायलाग्स) टाइमस क्राइटिप्रस में एटलांटिक थ्योरी का वर्णन किया है। (सा० हि० पृ० २०, दि० २० जून १९८२)।

उपर्युक्त बात थ्योरी नहीं एक तथ्य था, जिसकी पुष्टि पुराणों के साक्ष्य से होती है कि "इस महाद्वीप को पोसेडियन[1] (या वरुणदेव) ने बसाया था।" यह वरुण यद्यपि पश्चाद्देव था, परन्तु हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के समकालीन और उनका पुरोहित था, इसकी प्रजा असुर गन्धर्व=अरब—जो यूरोप, एशिया, और अफ्रीका मे बसी हुई थी), यादस् कहलाती थी, वरुण के प्रपौत्र और उशना शुक्र के पुत्र वरूत्री के नाम से आज बेरुतनगर प्रसिद्ध है।

अरबदेश लेबनान में 'बेरूत'नगर प्रसिद्ध है, यह 'बेरूत वरूत्री का ही बसाया हुआ था। वरुण को न केवल जेन्दावेस्ता बल्कि वेदमन्त्रो मे भी असुर महान् (अहुरमज्दा) कहा गया है। अतः असुरों के साथी होने के कारण 'पश्चाद्देव' होते हुए भी वह 'असुर' और 'राजेन्द्र'[2] कहा गया है।

वरुण के वशजो में मय[3] ने 'अतल' महाद्वीप सभ्यता की स्थापना की थी।

'अतल' मे मयपुत्र बल का साम्राज्य था, जिसमें ९६ प्रकार के विज्ञानों (माया) का व्यवहारिक प्रयोग किया था।[4]

मयपुत्र बल के अतिरिक्त अतल मे इन असुरो के पुर (नगर) बसे हुए थे—नमुचि, इन्द्रशत्रु, महानाद, शकुकर्ण, कबन्ध, भीम, शूलदन्त, लोहिताक्ष, तक्षक, श्वापद, धनंजय, कालिय, कौशिक आदि के अनेक नगर बसे हुए थे।[5]

१. पोसेडियन=पश्चाद्देव।
२ ऋ० (२।१।६),
३. मय सभ्यता के विशेष अवशेष मैक्सिको मे मिले हैं, यद्यपि इस सभ्यता का विस्तार पूरे अतल महाद्वीप (लुप्त) मे था।
४. भागवत० (५।२४।१३),
५. पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् (ब्रह्माण्ड० १।२।२१।२४),

वरुण के अन्य प्रपौत्र दानवमर्क के नाम पर यूरोप का डेनमार्क देश आज भी उसी के नाम से कहा जाता है। शण्डमर्क और वरूत्री शुक्र के पुत्र, असुर पुरोहित थे—

शण्डामर्कौ वा असुराणांपुरोहिता आस्ताम्।[1]
अथ तर्हि त्वष्टा वरूत्रीआस्तामसुरब्रह्मौ।[2]

षण्ड के नाम से यूरोप का देश स्केन्डेनिविया प्रसिद्ध है, मयपुत्र बल के नाम पर बेलजियम (बलदैत्य), विप्रचित्तिदानव के पुत्र श्वेत के नाम पर स्विज और स्वीडन देश प्रथित हुए, निकुम्भ के नाम से म्यूनिख, दानव माता दनायु के नाम से देन्यूब (डेन्यूब) नदी प्रथित हुई। कालकेय के वंशज 'केल्ट' कहलाते हैं।

अफ्रीका, मध्यएशिया और योरोप में 'तल' नाम के अनेक स्थान आज भी हैं—यथा मिस्र मे तल-अमर्ना, इजरायल मे तल (तेल)अबीब, तुर्की में अनातोलिया (अनतल) इत्यादि, ये सभी स्थान सप्ततलों (पातालों) और अतल (अतलांतिक) महाद्वीप के अवशेषइनकी ऐतिहासिकता को तथ्यत प्रमाणित कर रहे हैं। अत. इन प्रमाणो के रहते हुए शका या संन्देह के लिए कोई स्थान नही है।

सप्ततलों में असुरनगर और देश—अतल की भूमि को पुराणों में कृष्ण (काली) भूमि कहा है, यह कृष्णसागर और भूमध्यसागर के निकट के अफ्रीका, अरबदेशो सहित 'अतल' महाद्वीप था, जिसका अधिकांश किसी पुरातनयुग मे समुद्रतल मे डूब चुका है।

द्वितीय, सुतल मे असुर हयग्रीव, कृष्ण, निकुम्भ, शंख, गोमुख, नील, मेघ, कथन, ककुत्पाद्, महोष्णीष, कम्बल, अश्वतर और तक्षक नाग के नगर थे, ये योरोप के आष्ट्रिया आदि देश हो सकते हैं; जहां निकुम्भ आदि के नाम पर म्यूनिख आदि नगर बसे हुए हैं।

तलातल में मायावी (वैज्ञानिकशिल्पी) मय, प्रह्लाद, अनुह्लाद, अग्निमुख, तारक, त्रिशिरा, शिशुमार, त्रिपुर, पुरंजन, च्यवन, कुम्भिल, खर, विराध, उल्कामुख, हेमकर (नाग) नन्दक, विशालाक्ष, कपिल आदि असुरों के नगर थे, यह निश्चय ही शाल्मलिद्वीप (ईराक=सुमेरिया) और मिश्र

१. मै० सं० (४।६।३),
२. काठकसं० (२७।२२)।

में अफ्रीका आदि देशों के नगर थे। आज भी उ० अफ्रीका के त्रिपोली नगरनाम में त्रिपुर की स्मृति विद्यमान है। इस त्रिपुर[1] का वैदिकग्रन्थों और इतिहासपुराण दोनो मे ही विशेष उल्लेख है। ये त्रिपुर अयस्मय, राजत और स्वर्णमय थे, और क्रमश पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश मे बसे हुऐ थे, तारक असुर के तीन पुत्रो—ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली ने ये नगर बसाये थे।[2] अफ्रीका मे त्रिपोली आदि स्थानों की खुदाई होने पर इन नगरो के प्राचीन अवशेष मिल सकते है। तलातल (अफ्रीका) में लीबिया, प्रह्लाद या किसी उसके भ्राता ह्लाद आदि का देश था, इसी प्रकार लेबनान अरबदेश भी प्रह्लाद के किसी अनुज असुर का राज्य था, लीबिया और लेबनान के 'लीब' और 'लेब' शब्दो मे 'ह्लाद' की स्मृति सुरक्षित है, लेबनान का 'बेरूत'नगर प्रह्लाद के पुरोहित असुर 'वरूत्री' के नाम पर आज भी प्रसिद्ध है।

राक्षसराजसुमाली के नाम पर विशाल सुमालीलेंड देश आज भी अफीका में स्थित है। तलातल की नीलमृत्तिक भूमि नीलनदी की स्मृति कराती है। शाल्मलिद्वीप प्राचीन ईराक का नाम था, जहा मय ने तपस्या की थी ऐसा सूर्यसिद्धान्त मे लिखा है। सम्भवत रहा यही रसातल था, जहा यह नदी आज भी बहती है, दैत्यनदी के नाम से अवेस्ता मे इसका उल्लेख है। रसातल मे पणि, निवात, कालेय, पौलोम, विरोचन, विद्युज्जिह्व, अर्कजिह्व हिरण्याक्ष, किर्मीर आदि के पुर बसे हुए थे। महाभारत[3] (वनपर्व

---

१. द्र० ऐ०ब्रा०(२।२।६) 'असुराणामिमाःपुर आसन्नयस्मयीयं रजतान्तरिक्ष हरिणीं अनायतना देवा; द्योस्ते...... । (काठक सं०२४।१०।२४),

२. महाभारतकर्णपर्व (३३।५) तथा ३३।२१, २२),
काचन दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम्।
आयस चाभवद् भौम चकस्थ पृथिवीपते (वही ३३।१८),
असुरो का एक नगर समुद्रमध्य मे नावो पर बसा हुआ था......"नौ नगर पारिप्लवम् आस;" (जै० ब्रा० १।१२५);

३. पुलोमा नाम दैतेयी कालका च महासुरी।
दिव्यवर्षसहस्रन्ते चेरतुः परमं तपः॥
तदेतत् खपुरं दिव्यं चरत्यमरवर्जितम्।
पौलोमाध्युषित वीर कालखजैश्च दानवै.॥
हिरण्यपुरमित्येवं ख्यायते नगरं महत्। (वनपर्व १७३)।

१६८-१७०) में निवातकवच, पौलोम और कालखंज असुरो का उल्लेख है। ये असुर महाभारतयुद्ध से दशसहस्रवर्षपूर्व से वहीं बसे हुए थे। देवयुग में वैश्वानर असुर की पुत्रियां पुलोमा और कालका से कालकेय (या कालखंज)[1] और पौलोम असुर उत्पन्न हुए। देवयुग में पौलोम और कालखंजों का संहार इन्द्र ने (१२००० वि० पू०) किया था।[2]

पणि (फिनिशियन) भी रसातल में रहते थे, जिनके नाम पर आज योरोप में एक देश फिनलैंड कहलाता है। रसातल में असुरों के साथ वासुकि, तक्षक आदि नागों के नगर भी उपनिविष्ट थे। रसातल की भूमि शर्करामय कही गई है।

वितल की सौवर्णभूमि में असुर केसर, पौलोम, महिष, पुरोष, सारमेय शतशीर्ष आदि के नगर थे, यह भी 'रसातल के निकट का भूभाग होना चाहिए।

पाताल में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका का मैक्सिको, पेरू, बोलविया, ब्राजील आदि देश सम्मिलित थे, यहा पर हाटकपुर और सरित्प्रवरा हाटकी का उल्लेख है (द्र० भागवत ५।२४१) ऐरिचवान् डेनीकेन ने 'दी गाल्ड आफ गाड' पुस्तक मे दक्षिण अमेरिका की इस सौवर्ण सम्यता का उल्लेख किया है, वहा पर पर्वत 'कन्दराओ में स्वर्णपत्रों पर लेख मिले हैं, यहां पाताल के निवासी 'रक्तारविन्दाक्ष' थे जिन्हें आज भी रेड इण्डियन' कहा जाता है—पातालान्ते च विप्रेन्द्रा विस्तीर्णे बहुयोजने। आस्ते रक्तारविन्दाक्षो महात्मा ह्यजरामरः। रुक्मभृगावदातेन दीप्तास्येन विराजता॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।२१।४६।४८) दक्षिण और उत्तरी अमेरिका मे पाताल का अन्त हो जाता था।

पं० चमनलालने हिन्दू अमेरिका' पुस्तक में इस सम्यता का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया है। पाताल में बलि, मुचुकुन्द आदि असुरों एवं शेषनागादि के नगर स्थापित थे।

उपर्युक्त पुष्ट साक्ष्यों से सिद्ध है कि लुप्त अतलांतिक या पाताल सम्यता जिसकी स्थापना मयादि महान् असुरों, शेषनागादि महान् नागों

---

१. कालखञ्जा वै नामासुराआसन् (काठक० ८।१।१) तथा मै० स० (६।६),
२. अन्तरिक्षे च पौलोमान् पृथिव्यां कालखंजान् (शां० आ० ५।१),

और पश्चाद्‌ वरुण के वंशज गन्धर्वों (अरबों) ने की थी, कोई काल्पनिक वस्तु नहीं, एक महान्‌ ऐतिहासिक तथ्य था, जिसका भारतीयग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है कि देवो से पूर्व पूर्वदेवों (असुरों) का पृथ्वी पर राज्य था। अब उपर्युक्त सभ्यता के संस्थापक असुर, नागादि, पूर्वदेवों का देवयुगीन कालक्रम और परिचय प्रस्तुत करते हैं।

दैत्यवंश (असुर)=पूर्वदेव

असुरों का मूलवंश पुराणों में इस प्रकार उल्लिखित है—

- कश्यप + दिति दाक्षायणी
  - हिरण्याक्ष
    - शिवि
    - शबर
    - वाष्कल
    - शकुनि
    - कालनेमि
      - ब्रह्मजित्
  - हिरण्यकशिपु + दिव्या
    - प्रह्लाद
      - विरोचन, कुम्भ, निकुम्भ
        - दीर्घजिह्वी
        - बलि
          - चन्द्रमा, सूर्य, धृतराष्ट्र, बाण
            - इन्द्रधनु
        - कमलादि
        - निवातकवच
          - दक्ष
            - सुरन्ड
              - यशोधरा + त्वष्टा
                - विश्वरूपत्रिशिरा
    - अनुह्लाद
    - संह्लाद
      - जंभ, शतदुन्दुभि
    - ह्लाद
  - सिंहिका + विप्रचित्ति
    - राहु आदि पुत्र

हिरण्याक्ष—आदिम दैत्येन्द्र - सामान्यतः पुराणपाठो के अनुसार यह समझा जाता है कि हिरण्यकशिपु दैत्येन्द्र, दिति का ज्येष्ठपुत्र और दैत्यों का प्रथम राजा था, परन्तु पुराणपाठों के सूक्ष्म परिशीलन से सिद्ध होता

है कि हिरण्याक्ष ही दिति का ज्येष्ठपुत्र एवं प्रथम दैत्यराज था। हरिवंश पुराण के एक पाठ में यह सत्य सुरक्षित रह गया है—कि दैत्यों का प्रथम प्रभु (राजा) हिरण्याक्ष हुआ और हिरण्यकशिपु युवराज बनाया गया—

> दैत्यानां तु महातेजा हिरण्याक्षः प्रभुः कृतः ।
> हिरण्यकशिपुश्चैव यौवराज्येऽभिषेचितः ॥ (हरि० ३।३७।१४),

स्पष्ट है कि वरिष्ठ प्रथम दैत्यराज हिरण्याक्ष था और कनिष्ठ दैत्यपति हुआ हिरण्यकशिपु। प्रकारान्तर से इस तथ्य की पुष्टि वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य, भागवत आदि पुराणों से इस प्रकार होती है कि प्रत्येक पुराण मे सर्वप्रथम हिरण्याक्ष के कृत्यों का वर्णन है, वराह द्वारा हिरण्याक्षवध एवं उसकी सन्तति का वर्णन सभी पुराणों में पहिले है, उसके पश्चात् हिरण्यकशिपु का वर्णन किया गया है। तथ्य है कि सम्पूर्ण भूमण्डल के दो भाग सर्वप्रथम हिरण्याक्ष ने ही किये थे—दंष्ट्रया तु वराहेण समुद्रस्तु द्विधा कृतः।[1]

अतः हिरण्याक्ष ज्येष्ठ एव प्रथम दैत्येन्द्र था, उसके मरणोपरान्त ही हिरण्यकशिपु, जो युवराज था, दैत्यों का अधिपति बना।

हिरण्याक्ष का सम्पूर्ण भूमण्डल पर साम्राज्य था, बलिबन्धन से पूर्व से ही असुरो की यह सपर्वतपत्तना भूमि थी, वामनविष्णु द्वारा वंचित भारतीय असुरगण भारतवर्ष को छोड़कर 'अतल' महाद्वीप जहां हिरण्याक्ष के वशज पहिले से ही बसे हुए थे, वही बसने चले गये, अतः असुरगण सर्वप्रथम बलि के पश्चात् नही, पहिले ही लगभग एक सहस्रपूर्व (१३००० वि०पू०) से सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैले हुए थे, परन्तु बलि के पश्चात् केवल सप्ततलो मे सीमित रह गये।

---

१. मत्स्यपुराण (४७।४७),

सूची

आदिम असुर	अंशावतार
देवासुरयुगीनअसुर	महाभारतकालीन राजा
(१३००० वि०पू० से १०००० वि०पू०)	(३२०० वि०पू० से ३०८० वि० पू० तक)

१. विप्रचित्ति	१. जरासन्ध
२. हिरण्यकशिपु	२. शिशुपाल
३. संह्लाद	३. शल्य
४. अनुह्लाद	४. धृष्टकेतु
५. शिबि	५. द्रुम
६. बाष्कल	६. भगदत्त
७. अश्वशिरा आदि पांच असुर	७ ५ कैकय राजकुमार
८. केतुमान्	८. अमितौजा
९. स्वर्भानु	९. उग्रसेन
१०. अश्व	१०. अशोक
११. अश्वपति	११. हार्दिक्य-कृतवर्मा
१२. वृषपर्वा	१२. दीर्घप्रज्ञ
१३. अजक (वृषपर्वा अनुज)	१३. शाल्व-सौभपति
१४. अश्वग्रीव	१४. रोचमान
१५. सूक्ष्म	१५. बृहद्रथ
१६. तुहुण्ड	१६. सेनाबिन्दु
१७. इषुपाद्	१७. नग्नजित्
१८. एकचक्र	१८. प्रतिविन्ध्य
१९. विरूपाक्ष	१९. चित्रमूर्धा
२०. हर	२०. सुबाहु
२१. अहर	२१. बाह्लीक
२२. निचन्द्र	२२. मुञ्जकेश
२३. निकुम्भ	२३. देवाधिप
२४. शरभ	२४. पौरव
२५. कुपट	२५. सुपार्श्व
२६. क्रथ	२६. पार्वतेय
२७. शलभ	२७. प्रह्लाद बाह्लीक
२८. चन्द्र	२८. चन्द्रवर्मा
२९. अर्क	२९. ऋष्टिक
३०. मृतपा	३०. अनूपक
३१. गविष्ठ	३१. द्रुमसेन

३२. मयूर	३२. विश्व
३३. सुपर्ण	३३. कालकीर्ति
३४. चन्द्रहन्ता	३४. शुनक
३५. विनाशन	३५. जानकि
३६. दीर्घजिह्व	३६. काशिराज
३७. सैंहिकेय राहु	३७. क्राथ
३८. विक्षर	३८. वसुमित्र
३९. विक्षरानुज	३९. पाण्ड्य
४०. बलवीर	४०. पौण्ड्रमात्स्यक
४१. वृत्र	४१. मणिमान्
४२. क्रोधहन्ता	४२. दण्ड
४३. क्रोधवर्धन	४३. दण्डधार
४४. कालेय प्रथम	४४. जयत्सेन
४५. कालेय द्वितीय	४५. अपराजित
४६. ,, तृतीय	४६. निषादराज
४७. ,, चतुर्थ	४७. श्रेणिमान्
४८. ,, पंचम	४८. महौजा
४९ ,, षष्ठम	४९. अभीरु
५०. ,, सप्तम	५०. समुद्रसेन
५१. ,, अष्टम	५१. बृहन्नाभ
५२. कुक्षि	५२. पार्वतीय
५३ क्रथन	५३. सूर्याक्ष
५४. सूर्य	५४. दरद
५५ क्रोधवशगण	५५. मद्रक, कर्णवेष्ट, सिद्धार्थ, कीटक, सुवीर, सुबाहु, महावीर वाह्लिक, क्रथ, विचित्र, सुरथ, नील, चीरवासा, रुक्मी, जनमेजय
५६. ,, ,,	५६. दन्तवक्त्र
५७. ,, ,,	५७. आषाढ़, वायुवेग,
५८. ,, ,,	५८. एकलव्य
५९. कालनेमि	५९. कंस

हिरण्याक्ष के पांच प्रधान पुत्र हुए—शिबि, शंबर, बाष्कल, शकुनि, और कालनेमि (या कालनाभ)। ये सभी असुर पृथ्वी के विभिन्न देशों के शासक थे, इनमे कालनेमि, संभवत सर्वाधिक प्रतापी दैत्येन्द्र था। हरिवंशपुराण में विशेषरूप से दैत्यों का इतिहास वर्णित है प्रतीत होता है कि महाभारत काल में असुर इतिहास की विशेष सामग्री उपलब्ध थी, जिसका हरिवंश के लेखक वैशम्पायन या सौति ने विशेष उपयोग किया, अतः हरिवंश के अध्ययन से उपर्युक्त असुरो का कुछ विशिष्ट इतिहास ज्ञात हो जाता है। चाक्षुषवंशज अत्यराति जानंपति का विजेता असुर अमित्रतपन शुष्मिण शैब्य सभवत उपर्युक्त हिरण्याक्षपुत्र शिबि का वंशज (या पुत्र) था।[1]

शम्बर का एक अतिमायावी (शतमाय) असुर के रूप में बहुधा उल्लेख मिलता है, इसके वंशज चिरकाल तक शम्बर ही कहलाते थे। इसी प्रकार मय, वज्रनाभ, नरक, बाण आदि के वंशज महाभारतकाल में इन्ही नामो से प्रथित थे, अन्यथा देवयुगीन शंबरमयादि का दशसहस्रवर्षों से अधिक जीवित रहना या राज्य करना असंभव और अतथ्य ही है। महाभारत मे शम्बरादि का यादवो से युद्ध हुआ था।[2] अतः मयशम्बरादि महाभारतकालीन असुरदेवयुगीन असुरो के वंशज ही थे, इसकी पुष्टि महाभारत के संभवपर्व से ही होती है जहा कौरवादि को उपर्युक्त असुरों का अंशावतार कहा गया है।[3]

कालनेमि—हिरण्याक्षपुत्र कालनेमि या कालनाभ ने देवासुरयुद्ध में देवो को बुरी तरह पराजित किया था।[4] यह पंचम तारकामय देवासुरसंग्राम था। हिरण्याक्ष का समय १३८००-१२७५० वि० पू० और कालनेमि का समय १२००० वि० पू० था। हिरण्याक्ष का वध वराह ने किया। यहां "वराह" का रहस्य प्रायेण अज्ञेय है। यह 'वराह' संज्ञक कोई पुरुष हो सकता है या जंगली शूकर या महामेघ या समुद्रीय विस्फोट (ज्वालामुखी)।

---

१. ऐ० ब्रा० (८।४।६) - 'अत्यरातिं जानन्तपिमासवीर्यं निःशुक्रममित्रतपनः शुष्मिणः शैब्यो राजा जघान"

२. जहार कृष्णस्य सुतं शिशुं वै कालशम्बरः। (हरि० २।१०४।३) बाणकृष्णयुद्ध दृष्टव्य-(हरिवंश, विष्णुपर्व अध्याय ११६-१२७ पर्यन्त),

३. द्रष्टव्य-आदिपर्व (अंशावतार प्रकरण पूर्वपृष्ठ ३०७;)

४. हरिवंश० (१।४७ अध्याय)।

हिरण्यकशिपु (१२७५० वि० पू० से १२५५० वि० पू०—हिरण्याक्ष के मरणोपरान्त पृथ्वी पर हिरण्यकशिपु असुरसाम्राज्य का सर्वेसर्वा बन गया, वह पहिले युवराज था। यह दीर्घायु एवं प्रभावशाली पुरुष था, जिसने चिरकाल तक शासन किया। प्रथम अदितिपुत्र वरुण (आदित्य या पश्चाद्देव) उसके समकालीन और संभवत दैत्येन्द्र के पुरोहित या मन्त्री थे, यही वरुण हिरण्यकशिपु के सम्बन्धी बने, वरुणपुत्रभृगु का विवाह हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या के साथ हुआ, अत: भृगु दैत्येन्द्र के जामाता थे, यह घनिष्ठ सम्बन्ध इतना बढ गया कि भृगुपुत्र काव्य उशना और उनके पुत्र त्वष्टा, वरूत्री, शण्ड, मर्क, और पौत्र शालावृक, पृथुरश्मि, रंजन, त्रिशिरा (विश्वरुप) वृत्र (अहिदानव) और मय आदि असुरदेशों के प्रथित शासक हुए। जिनके इतिहास का आगे संकेत किया जायेगा।

मनुष्य, हिरण्यकशिपु के वध की बात सोच ही नही सकते थे, उसको ऋषियों से भय था कि वे कभी मुझे राजा वेन की भांति न मार दे, अतः उसने ऋषिगण, आदि से अभय प्राप्त करलिया था, तथा उसका कवच और महल इस प्रकार था कि शस्त्रादि का कोई प्रभाव नही हो सकता, यह कार्य उच्चकोटि के विज्ञान के बिना नही हो सकता था, अतिमानुष वरो का यही अर्थ है कि वह एक प्रकार से विज्ञानबलपर अवध्यतुल्य था। परन्तु दैत्येन्द्र के शत्रुओं ने नरसिंहनाम के महापुरुष द्वारा हिरण्यकशिपु का वध करा दिया।

दैत्येन्द्रसन्तति—हिरण्यकशिपु के किसी पुराण में चार तो किसी मे पांच पुत्र उल्लिखित हैं। हरिवंश मे उसके पाच पुत्र कथित हैं - प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद, अनुह्लाद।[1] संभवत उसके चार पुत्र ही थे, अनुह्लाद का नाम ही पाठच्युति के कारण अनुह्लद और अनुह्लाद दो नाम पड़े गये हैं।

विष्णुपुराण और भागवतपुराण के विपरीत हरिवंश जैसे प्राचीनग्रन्थ में प्रह्लाद की भक्ति, आकाशकुसुम सिद्ध होती है, यद्यपि हरिवंश भी एक प्राचीन वैष्णवसम्प्रदाय का ग्रन्थ है, परन्तु इसग्रन्थ मे प्रह्लाद की भक्ति का संकेतमात्र भी नहीं है। हिमालयपार्श्व से जब नृसिंह हिरण्यकशिपु के

१, हरि० ३।३६।३३-३४),

सभा में आये तब प्रह्लाद ने न तो उनकी स्तुति की और न कोई वार्तालाप, यहां पर नृसिंह न तो खंभा फाड़कर निकलते हैं और न प्रह्लाद का अपने पिता से कोई वैमनस्य, बल्कि वह अपने पिता से नृसिंह के सम्बन्ध में कहता है कि इस विचित्र प्राणी से दैत्यों को भय है।[१] प्रह्लाद नृसिंह के अद्भुत शरीर को देखकर नीचा मुख कर चुपचाप ध्यानमग्न बैठ जाता है।[२]

जिस प्रकार संभवतः जंगली शूकर (वराह) ने हिरण्याक्ष को मारा, उसी प्रकार जगली सिंह ने हिरण्यकशिपु को मारा, हरि० पुराण में उसे बारम्बार मृगेन्द्र और सिंह कहा गया है—

> मृगेन्द्रो गृह्यतां शीघ्रमपूर्वां तनुमास्थितः। (हरि ३।४४।२)
> तच्छ्रुत्वा दानवाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम्। (३।४४।३)
> दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यत् देवमागतम्। (३।४३।५)
> सिंहनादं च कृत्वा तु पुनः सिंहो महाबलः। (३।४४।४)

अतः यह विचित्रसिंह ही था, जिसे दैत्येन्द्र के शत्रुओं ने प्रशिक्षित करके षड्यन्त्र से वधार्थ भेजा होगा, यद्यपि वरुण के अतिरिक्त अन्य इन्द्रादि आदित्यों का जन्म भी नहीं हुआ था, अथवा वे आदित्य अल्पवयस्क थे, अतः यह देवों का काम नहीं था क्योंकि इस घटना के बहुत समय पश्चात् ब्राह्मण स्नातक इन्द्र को प्रह्लाद ने उपदेश दिया था।[३] अतः इन्द्र का जन्म हिरण्यकशिपु के मरणोपरान्त हुआ, इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि प्रह्लादपुत्र विरोचन और इन्द्र सतीर्थ्य थे।[४] और वरुण तथा हिरण्यकशिपु में मैत्री थी, दोनों सम्बन्धी थे।

---

१. ... .किमिदं रूपमद्भुतम्।
दैत्यान्तकरणं घोरं शंसन्तीव मनांसि नः॥ (हरि० ३।४३।८)

२. दध्यौ च दैत्येश्वरपुत्र उग्रं महामति किञ्चिदधोमुखः प्राक्।
(हरि० ३।४३।१७)

३. ततो ब्राह्मणो भूत्वा प्रह्लादं पाकशासनः। ब्राह्मणोऽपि यथान्यायं गुरुवृत्तिमनुत्तमाम् स शक्रोः ब्रह्मचारी यस्त्वतश्चैवोपशिक्षितः।
(शान्तिपर्व० १२४।२८, ३२, ६०)

४. छा० उ० (८।७)।

हिरण्यकशिपु की सभा अतिविशाल और विस्तृत थी, जिसकी लम्बाई डेढ़ सौयोजन और चौड़ाई सौयोजन थी,[1] यह उसके दुर्ग का प्रमाण होना चाहिए, यद्यपि हिरण्यकशिपु चार हाथ मात्र लम्बे दिव्य सिंहासन पर विराजमान था।[2]

पुराणों में सिंह और दैत्यों के घोर युद्ध का वर्णन है, यह अधिकांशतः काल्पनिक प्रतीत होता है, प्रशिक्षित सिंह ने सभा में तोड़-फोड़ अवश्य की होगी और सिंहासनस्थ हिरण्यकशिपु को घसीट कर अपने तीक्ष्ण नखों से चीरकर मार डाला। हरिवंश में इस कल्पना का अभाव है कि उसकी मृत्यु के समय न दिन था, न रात्रि, न घर के बाहर न अन्दर, ये उत्तरकालीन कल्पनायें हैं।

दैत्येन्द्र प्रह्लाद—हिरण्यकशिपु वध के पीछे किसी की राज्यलिप्सा नहीं थी, इस तथ्य की पुष्टि इससे होती है कि उसके वधानन्तर उसका ज्येष्ठपुत्र प्रह्लाद असुर साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ, इससे यह भी सिद्ध होता है कि प्रह्लाद का अपने पिता से कोई द्वेष या वैमनस्य नहीं था। ऋषियो और ब्राह्मणों के द्वारा हिरण्यकशिपु की निन्दा और प्रह्लाद की प्रशंसा का कारण यही था कि वरुण और भृगु को छोड़कर अन्य ब्राह्मणो की उसने अधिक पूछ नहीं की, उनकी उपेक्षा की, उनको कोई अधिकार नहीं दिये, इसके विपरीत प्रह्लाद ने अधिक निष्पक्षता से काम लिया, इस निष्पक्षता का एक प्रमाण इस ऐतिह्य मे मिलता है जब सुधन्वा आङ्गिरस और प्रह्लादपुत्र विरोचन ने दोनों एक ही कन्या से विवाह करना चाहते थे, तब विवाद के निर्णयार्थ वे दैत्येन्द्र प्रह्लाद के पास गये। प्रह्लाद ने अपने पुत्र की अपेक्षा सुधन्वा आङ्गिरस ब्राह्मण को राजन्य (पुत्र) की अपेक्षा श्रेष्ठतर ठहराया और कन्या का विवाह सुधन्वा से ही हुआ।[3]

प्रह्लाद का राज्य यद्यपि सम्पूर्ण भूमण्डल पर था, परन्तु वितल में जो वर्तमान उत्तरी अफ्रीका का नाम था, विशेष शासन था, अथवा उसके अनुज अनुह्लाद आदि का राज्य था, इस तथ्य की स्मृति लीबिया और लेबनान नामों में सुरक्षित है, वितल में ही तारक, त्रिपुर, वरुत्री आदि के नगर थे,

---

१. हरि० (३।४१।४७)।

२. आसने दिव्ये नल्वमात्रे प्रमाणतः। हरि० (३।४२।१)।

३. उद्योगपर्व, अ० ३५;

त्रिपुरनगर आज त्रिपोली और बक्त्री का नगर बेक्त्र कहलाता है। ये ही प्रदेश प्राचीन वितल थे।

संह्लाद के वंश में जम्भ, सुजम्भ, शतदुन्दुभि, निवातकवच, दक्ष और सुरण्ड नाम के असुरेन्द्र हुए, इनका राज्य रसातल (पश्चिमी एशिया बैबीलन आदि) में था। जम्भ का राज्य सभवत जर्मनी में था, जिसके नाम से देश का यह नाम (जम्भनी = जर्मनी) प्रथित हुआ। जर्मनी का एक प्राचीन नाम डीट्शलेंड था। ह्लाद के दो पुत्र सुन्द और उपसुन्दपुत्र प्राचीनतम असुरेन्द्र हुये, जो तिलोत्तमा नामक सुन्दरी के कारण परस्पर लड़कर स्वयं मर गये।[1] उत्तरकाल मे भी सुन्द के वंशज सुन्द ही कहलाते थे, रामायण काल में किसी सुन्द की पत्नी ताड़का[2] थी, जिसके पुत्र सुबाहु और मारीच थे, इस अर्वाचीन सुन्द को प्राचीन देवयुगीन सुन्द एक समझने की भूल नही करनी चाहिए। रावण इसी सुन्द के नामसे उपनिविष्ट सुन्दद्वीप का शासक था, जिसकी राजधानी लंका नगरी थी, रामायण के पंचमकाण्ड का नाम इसे द्वीप के कारण सुन्दकाण्ड था, जिसे भ्रम से उत्तरकाल में सुन्दर काण्ड कहने लगे। सुन्दद्वीप की पहिचान अभी होनी है।

प्रह्लाद के वंश में कुम्भ, निकुम्भ और कपिल आदि दैत्यराज उत्पन्न हुए जिनका सुतल आदि मे राज्य था, सुतल संभवत योरोप के कुछ भूभागों का नाम था, आष्ट्रिया का म्यूनिख नगर निकुम्भ के नाम से बसाया गया।

पुराणपाठों मे उपर्युक्त अपत्यनामादि में पर्याप्त गड़बड़ है, जिसमे संशोधन की आवश्यकता है। कही सुन्द को ह्लाद का पुत्र बताया कही निकुम्भ का। प्रह्लाद का राज्यकाल निश्चय ही दीर्घकालीन था, उसने १२५०० वि० पू० से १२००० वि० पू० के मध्य में शताब्दियों पर्यन्त राज्य किया। वह बलिशासनपर्यन्त जीवित रहा। प्रह्लाद तक, यहांतक विरोचनपर्यन्त देवासुरों में कोई बड़ा संघर्ष या युद्ध नहीं हुआ। युद्धों का प्रारम्भ इन्द्र की राज्यलिप्सा से हुआ, जब उन्होंने बलि (१२०००

---

१. निकुम्भो नाम दैत्येन्द्रस्तेजस्वी बलवानभूत्। तस्यपुत्रौ......... सुन्दोपसुन्दौ दैत्येन्द्रौ ..(सभापर्व २०८।२,३), तथा वही (२०७।२०)

२. ताटका नाम भद्रंते भार्या सुन्दस्य धीमतः। मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्याः। (रामा० १।२५।१६)

वि० पू० से ११००० वि० पू०) से राज्य का भाग मांगा।[1] देवगण, पहिले युद्ध द्वारा भूभाग नहीं ले सके तब विष्णु ने छल के द्वारा भूभाग हथिया लिया।[2] वृद्ध प्रह्लाद ने प्रथम देवासुर संग्राम में भाग लिया था। प्रह्लाद और बलि किसी युद्ध में नहीं मारे गये।

विरोचन[3]—प्रह्लादपुत्रविरोचन और इन्द्र साथ-साथ परमेष्ठी प्रजापति काश्यप से पढ़े थे और दोनों ३२ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर विद्याध्ययन करते रहे। सुधन्वा आङ्गिरस विरोचन के समवयस्क थे। सुधन्वा के तीन पुत्रऋभु, विभ्वा और वाज सौधन्वना नाम के प्रसिद्ध हुए, जिनको ऋग्वेद में पर्याप्त स्तुति मिलती है—

मर्तासः सन्तो अमृत्वमानशुः।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः॥ (ऋग्वेद० १।११०।४)

पुराणों के अनुसार विरोचन ने देवासुरसंग्राम मे भाग लिया। पचम देवासुरसंग्राम में विरोचन (इन्द्र) शक्र के द्वारा मारा गया—

विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः।
इन्द्रेणैव तु विक्रम्य निहतस्तारकामये॥ (मत्स्य० ४७।४८।४६)

इस इन्द्र का वास्तविक नाम शक्र था, क्योंकि इसके पुत्रों के नाम वसुक्रादि से यही अनुमान होता है। इन्द्र का इतिहास आगे लिखा जायेगा।

---

१ असुराणां वा इयं पृथिव्यासीत् ते देवा अब्रुवन् दत्त नोऽस्या इति (काठक ३१।८)

२. अपयातो रणाच्छक्र-सार्धं वै सर्वैः सुरोत्तमैः (हरि० ३।६४।२६),

३. असुरा मेनिरेऽस्माकमेवेदं खलु भुवनमिति। तद्ध देवाः शुश्रुवुः।...... वामनो ह विष्णुरास.........॥" (श० ब्रा० २।५।१-६),

विरोचन की गायें—य इमा विरोचनस्य प्राह्लादेः कामदुघाः। (जै० ब्रा० १।१२६)

प्रह्लाद द्वारा छिपाना—प्रह्लादोहवै कायधवो विरोचनं स्वं पुत्रमपन्यधत्त (तै० ब्रा० १।५।६)।

पृथ्वीदोहन में वत्स—विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीत् (अथर्व० ८।१०), विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वत्सस्तेषामभूत् तदा (हरि० १।६।१०),

अतः प्राह्लादि विरोचन एक प्रमुख असुरेन्द्र था।

एक इन्द्र विकुण्ठा आसुरी का पुत्र इन्द्रवैकुण्ठ पृथक् था। विरोचन गदायुद्ध में विशेष रुचि रखता था—

विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः (हरि० १।४।३।१३)

विरोचन के रथ में एक सहस्र अश्व जोते जाते थे—

युक्तानां वाजिमुख्यानां सहस्रेणाशुगामिनाम्। (हरि० ३।५१।१०)

विरोचन के अनुज का नाम कुजम्भ था—

विरोचनानुजश्चैव कुजम्भो नाम दानवः। (हरि० ३।५१।१३)

ये सभी भूमण्डल के पृथक् पृथक् देशो के राजा थे, विशेषतः योरोपीय देशो मे इनका प्रमुख उपनिवेश था। विरोचन के अन्य भ्राता-कुम्भ, निकुम्भ, कपिल आदि का यहीं राज्य था।

वैरोचनबलि—विरोचन का पुत्र वैरोचनबलि असुरो का प्रमुख सम्राट् था, जो सप्तम परिवर्तयुग (११८४० वि० पू०) में त्रिविक्रम वामन विष्णु द्वारा वञ्चित होकर केवल पाताल या अतल महाद्वीप मे चला गया।[1] बलि दैत्यों का इन्द्र था।[2] इन्द्र एक पदवी का नाम था, जो आदित्य शक्र को बहुत उत्तरकाल में मिली। बलि के समय तक पृथ्वी पर असुरो का एकछत्र शासन था।[3] इसी समय जब इन्द्रादि राज्य की कामना करने लगे तब उन्होने असुरों से राज्य माँगा। असुरो ने इसका विरोध किया। बलि ने विष्णु को पृथ्वी का अल्पांश देना स्वीकार कर लिया। इस समय तक बलि का पितामह प्रह्लाद जीवित था, उसने देवोको या विष्णु को कोई भी भूभाग देने का विरोध किया ; प्रह्लाद के वचनो से प्रकट है कि उसका विष्णु के प्रति कोई भी आदरभाव या भक्तिभाव नही था, यह सब नितान्त कृत्रिम कल्पनायें हैं —

---

१. बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमेयुगे।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥ (वायु०)

२. दैत्या देववधार्थाय बलिमिन्द्रं प्रचक्रिरे। (हरि० ३।४८।१७)

३. ते होचुः हन्तेमां पृथिवी विभजाम है......ते होचुः
नोऽप्यस्यां भाग इति ते हासुरा असूयन्त...............विष्णुरभिशेते
तान् वो दद्म् इति......(श० ब्रा० १।२।५।४)

मा ददस्व जलं हस्ते बटोर्वामनरूपिणः ।
स त्वसौ येन ते पूर्वं निहतः प्रपितामहः ।।
विष्णुरेष महाप्राज्ञस्त्वां चंचयितुमागतः ।। (हरि० ३।७१।२७-२८)

प्रह्लाद ने भूमिदान का घोर विरोध किया—

दानेश्वर मा दास्त्वं विप्रायास्मै प्रतिग्रहम् ।
नेमं विप्रमिशुं मन्ये नेदृशो भवति द्विजः ।। (हरि० ३।११।३२)

परन्तु बलि वामन विष्णु (ब्राह्मण) को भूमिदान का पहिले ही वचन दे चुका था, अतः उसने गुरु शुक्र और पितामह प्रह्लाद के निषेध का विरोध करते हुए विष्णु को भूमिदान दे दी—

दृष्ट्वा वामनरूपेण याचन्तं द्विजपुङ्गवम् ।
एष तस्मात् प्रदास्यामि न स्थास्यामि निवारितः ।।
(हरि० ३।७१।३६)

इससे पूर्व सेन्द्रदेव बलि से युद्ध मे बुरी तरह पराजित हो चुके थे, परास्त देवो ने षड्यन्त्रपूर्वक तैयारी करके असुरो पर आक्रमण कर दिया; जिससे वे भारतभूमि पर से (११८४० वि० पू०) पलायन कर 'सुतल' संज्ञकतल (महाद्वीप) मे ही रहकर राज्य करने लगे ।[१] यह सुतल योरोप और पश्चिमी एशिया का भूभाग था । देवो ने असुरों को वंचित करने का षड्यन्त्र आङ्गिरस बृहस्पति की मन्त्रणा से बनाया था ।[२] इसमे देवो और आङ्गिरसो का घोर स्वार्थ था ।

यद्यपि वामन विष्णु ने बलि का धोखे से वध नही किया, उसके राज्य के कुछ भाग पर ही अधिकार किया, और बलि को बन्धनमुक्त कर दिया । वामन ने आस्तीक नागपुत्र के समान बलि के क्रतु की ब्राह्मणोचित प्रशंसा की थी ।[३]

---

१. सुतलनाम पातालममध्स्ताद् वसुधातले । बलेर्दत्त भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना । (हरि० ३।७२।३२),

२. ततो बृहस्पतिर्धीमानयत् वामनं प्रभुम् । (हरि० ३।७१।५६),

३. तुलना कीजिये हरिवंश अध्याय ३।७१ और महाभारत १।५५ अध्याय से; यहा आस्तीक ने पारीक्षित जनमेजययज्ञ की प्रशंसा करके नागों को मुक्त कराया । प्रतीत होता है देवयुग से चिरकालतक राजन्य, ब्राह्मणो की चाटुकारिता से सर्वस्वदेने उद्यत हो जाते थे ।

११८४० वि० पू० के पश्चात् भारतवर्ष में असुरराज्य समाप्त हो गया और देवेन्द्र शक्र (इन्द्र) का राज्य स्थापित हो गया—

समुद्रवसना चोर्वी नानानगविभूषिता।
हृत्वा दत्ता सुरेन्द्राय शक्राय प्रभविष्णुना॥ (हरि० ३।४८।६)

असुरों में यज्ञों का, देवों की अपेक्षा अधिक प्रचार और प्रसार था—

असुरेषु वा एव यज्ञ अग्र आसीत्। (श० ब्रा० १२।६।३।७)
कनीयांसि वै देवेषु छन्दांस्यासन् ज्यायांस्यसुरेषु (तै० सं० ६।६।११

असुरो मे विज्ञान और प्रज्ञा का बाहुल्य था। प्राचीन मय (मैक्सिको) और सुमेरु, मिश्र आदि की सभ्यता में इसके प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं।

बलिकाल (११८४० वि० पू०) से पूर्व असुर और देव भारतवर्ष मे साथ रहते थे, इसीलिए आज भी भारतीय भाषाओ का योरोपीय भाषाओ से अत्यधिक साम्य मिलता है। प्राचीन ईरानी और सुमेरु का साहित्य भी इसका प्रमाण है।

देवयुग में वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था स्थिर या सुदृढ़ नही थी। यह उसी प्रकार थी, जैसे आज भारतेतर देशो मे है, इन्द्र, विष्णु प्रारम्भ में ब्रह्मकर्म करते थे, जीवन के उत्तरभाग में वे क्षत्रिय बने, वरुण, विवस्वान् इन्द्र, विप्रचित्ति (दानव) आदि ऋषि हुए है, वे ही क्षत्रियकर्म करने लगे, त्वष्टा, मय आदि शिल्पी (इंजीनियर) थे, भार्गव और आङ्गिरस के वंशज ऋभुगण देवत्व प्राप्त करके भी बढई (रथकार) का काम करते थे, विवस्वान् के पुत्र अश्विनीकुमार वैद्य (चिकित्सक) बने। विश्वामित्र और परशुराम के उदाहरणो से सिद्ध है कि वर्णव्यवस्था चिरकालतक दृढ़ नही हुई। भारतीय क्षत्रिय और ब्राह्मण असुरों से विवाहसम्बन्ध करते थे, यथा ऋषि काण्वनार्षद[1] का विवाह असुर कन्याओं से हुआ था, जिसका उल्लेख यथा स्थान होगा।

प्रह्लाद के पुत्र असुरकपिल[2] ने सर्वप्रथम वर्णव्यवस्था का प्रचलन किया था।

---

१. कण्वो वै नार्षदोऽसङ्गस्यासुरस्य दुहितरमविन्दत। (जै० ब्रा० ३.७२)
२. तत्रोदाहरन्ति प्राह्लादि र्वैकपिलो नामासुर आस।
स एतान् भेदाञ्चकार रैवैस्सह स्पर्धमानः (बौ० ध० २।११.३०)

बाणासुर—पुराणों में बलि के सौ पुत्र बताये गये है, यह हो सकता है वे बलि के सुदूर वंशज हों, जो बालेय दैत्यगण कहलाते थे। प्रमुख बलि पुत्र थे - बाण, धृतराष्ट्र, सूर्य चन्द्रमा, इन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष और कुक्षि। बाणासुर का पुत्र लोहिती (स्त्री) से इन्द्रदमन हुआ, जिसने संभवत इन्द्र से लोहा लिया होगा।

देवयुगीन बाणासुर को महाभारत और हरिवंश में कृष्णवासुदेवकालीन बाणासुर को नामसाम्य के कारण भ्रान्ति से एक करके माना है।

देवासुरयुगीन बाणासुर को, संभवतः शिव (महादेव) ने अपना दत्तकपुत्र बना लिया था, क्योंकि उसे इन्द्रादि देवों से भय होगा अतः वह शिव की शरण में जाकर उनका पुत्र बन गया—

> शंकरस्तु तथेत्युक्त्वा रुद्राणीमिदब्रवीत्।
> कनीयान् कार्तिकेयस्य पुत्रोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥[1]

महाभारतकालीन बाणासुर भी महान् शिवभक्त था, उसकी राजधानी शोणितपुर थी, संभवतः यह लालसागर के निकट का पश्चिमी एशिया का भूभाग (देश) होगा, जहां पर सुतल में चिरकाल से बालेयदैत्य असुरो का राज्य था।

इसमे कोई सन्देह नही, बाणासुर चिरजीवी था, परन्तु, वह, महाभारत काल तक जीवित नही रह सकता, जबकि महाभारतकालीन बाण की पुत्री उषा का विवाह कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से हुआ।

सभवतः, बालेय बाण के सुदूर वंशजो ने वि० पू० से दो, तीन सहस्राब्दी पूर्व बैबीलन मे असुर साम्राज्य स्थापित किया, जिनमे असुर नसिरपाल, और असुर बनिपाल प्रसिद्ध हैं। पं० भगवद्दत्त ने असुर बनिपाल के नाम को बाण शब्द का अपभ्रंश माना है। परन्तु इसका शुद्धरूप है— 'अवनिपाल' यही शब्द बिगड़कर 'बनिपाल' होगया।[2]

दानववंश

दनु काश्यप पत्नी दनु के वंशज दानव कहलाये, ये दैत्यो के साथी थे, अतः दोनों मिलकर असुर कहेजाते थे। इतिहासपुराणो में दनु के कही

---

१. हरि० (२।११६।१७)

२. वै० वा० इ० भाग-१ (पृ० ८०),

सौ पुत्र[1] कहे गये तो कहीं चौंतीस (३४) पुत्र।[2] इनमें ३४ संख्या ही यथार्थ पाठ है। इन ३४ दानवों के नाम है—विप्रचित्ति, शम्बर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा केशी, दुर्जय अयःशिरा, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा, वेगवान्, केतुमान, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुण्ड, इषुपाद, एकचक्र, विरुपाक्ष, हर, अहर, निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, सूर्य और चन्द्रमा।

उपर्युक्त दानवों में केवल विप्रचित्ति, शम्बर, नमुचि, पुलोमा, स्वर्भानु वृषपर्वा, अजक, और निकुम्भ का 'यत्किंचित्' इतिहास ज्ञात हैं शेष के नाममात्र ही ज्ञात है।

विप्रचित्ति—दानवों मे ज्येष्ठ और उनका प्रमुख आदिम शासक विप्रचित्ति था। यह एक प्राचीन विद्वान् और ऋषि भी था। शतपथ (१४।७।३) मे इसकी गुरुशिष्यपरम्परा द्रष्टव्य है, जो गुरु और शिष्य देवासुर युग मे हुए—

पूर्वगुरु	शिष्यपरम्परा
परमेष्ठी (काश्यप) प्रजापति	विप्रचित्ति
सनग	एकर्षि
सनातन	प्राध्वंसन
सनारु	मृत्यु प्राध्वसन
व्यष्टि	अथर्वा दैव
विप्रचित्ति	दध्यङ् आथर्वण
	अश्विनीकुमारद्वयी
	विश्वरूप त्वाष्ट्र

उपर्युक्त विद्यावंश से स्पष्ट है कि विप्रचित्ति विद्यावंश मे प्रजापति परमेष्ठी से छठा था और वह अथर्वा आदि प्राचीनतम अथर्वाङ्गिरसो का पूर्वगुरु था। ऋषियो की आयु सहस्राधिक वर्ष पर्यन्त होती थी, परन्तु, यदि एक गुरुशिष्य के हुये १०० वर्ष भी माने तो विप्रचित्ति काश्यप परमेष्ठी के

१. अभवन् दनुपुत्राश्च शत तीव्रपराक्रमाः। (हरि० अध्याय ३)
२. चतुस्त्रिंशत् दनोः पुत्राः ख्याताः सर्वत्र भारत। (महा० १।३५।२१-२६),

लगभग ६०० वर्ष पश्चात् अर्थात् लगभग १३००० वि०पू० हुआ और दध्यङ् आथर्वण इन्द्र के समकालीन थे, अत उनका समय १२०००-११००० वि० पू० के मध्य था। अतः विप्रचित्ति इन्द्र से न्यूनतम पांच पीढ़ी पूर्व एक पुरातन ऋषि था, जिसकी शिष्यपरम्परा मे अथर्वा, दध्यङ् आथर्वण अश्विनीकुमार, विश्वरूपत्वाष्ट्र, जैसे शिष्यप्रशिष्य हुये।

दिति की पुत्री सिंहिका विप्रचित्ति दानवेन्द्र की पत्नी थी, जिसके १४ पुत्र सैंहिकेय कहलाते थे—राहु, शलभ, केश, श्वेत, इल्वल, नमुचि, वातापि, सुपुञ्जिकि, हरकल्प, कालनाभ, कनक, नरक, वज्रनाभ और मूक।[1]

इनमें राहु ज्येष्ठ था, जिसको सूर्यचन्द्रविमर्दन कहा गया है, इसने समुद्रमन्थन के समय अमृतपान कर लिया था, तब विष्णु ने चक्र द्वारा उसका शिरश्छेदन किया। सैंहिकेय दानवो का वश इतना बढ गया कि वे बढते बढते दश सहस्र होगये और कहा गया है कि उनका वध जामदग्न्यराम ने किया,[2] यह कथन सन्देहास्पद प्रतीत होता है क्योंकि जामदग्न्यराम का समय बहुत उत्तरकाल में था और भार्गवो की असुरो से प्रगाढ़ मैत्री थी।

दनुवंश या दानववंश मे और भी अनेक विख्यात असुर हुए, जिनमें कुछ प्रसिद्ध दानवों के नाम थे द्विमूर्ध, कपिल, वज्रनाभ, वैश्वानर, पुलोम, तारक और मय।

इनमे द्विमूर्धा दानव असुरो द्वारा पृथ्वीदोहन का दोग्धा[3] कहा गया है। इनके नाम से प्रकट होता है कि इस दानव असुर के दो शिर थे।

शम्बर—यह दानव बड़ा मायावी या 'शतमाय' असुर कहा गया है, ऋग्वेद के मन्त्र मे उल्लेख है कि इन्द्र ने शम्बर को ४० वर्षो के सतत प्रयत्न के पश्चात् मारा था, किसी पर्वत शिखर पर सोते हुए को।[4]

---

१ हरि (अ० ६)

२. दश तानि सहस्राणि सैंहिकेया गणाः स्मृता.। निहता जामदग्न्येन भार्गवेण बलीयसा (ब्रह्माण्ड० २।३।६।२२)

३. अथर्व० (८।१०।२२) ऋत्विग्द्विमूर्धा दैत्यानाम् (हरि० ११६।३०),

४. यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्। (ऋ० २।१२।११)

उत्तरकाल में शंबर नाम के अनेक असुर हुए, एक दशरथकालीन शम्बर[1] और द्वितीय महाभारतकालीन शम्बर[2] जिसका वध कृष्णपुत्र प्रद्युम्न ने किया। या तो ये पूर्वोक्त देवयुगीन शम्बर के वंशज होंगे या तत्सनामा विभिन्नकालीन असुर नरेश।

नमुचि—इसका देवेन्द्र शक्र से युद्ध हुआ, जो उसके द्वारा मारा गया, इसका उल्लेख इन्द्र प्रसंग में ही करेंगे।

पौलोम और कालकेय—इस नामका एक दानव भी था, जिसकी पुत्री शची पौलोमी का विवाह शक्र से हुआ था, एक पुलोमा, भृगु की पत्नी थी, और वैश्वानर दानव की दो पुत्रियां पुलोमा और कालिका के वंशज कालकेय और पौलोम दानव कहलाये, जो देवयुग मे इन्द्र द्वारा बध्य हुए,[3] और इनके वंशज महाभारतकाल तक रसातल के हिरण्यपुर या नुपुर (बैबीलन) में रहते थे, जिनका वध अर्जुन पाण्डव ने किया।

केशी—कन्यापहरण के अपराधी महाबलीदानव केशी का इन्द्र से युद्ध हुआ[4] था, यह केशीदानव किस विशिष्ट असुरदेश का शासक था, अज्ञात है।

वृषपर्वा—यह नाहुष ययाति का समकालीन (१०८०० वि० पू०) असुरनरेश था, जो वैवस्वत यम के अनेक शताब्दियो पश्चात् ईरान का राजा हुआ। शाहनामा आदि पारसीग्रन्थों में इसका नाम अफरासियाब और अवेस्ता म 'फ्रान ह्रास्यान' विकृत नाम मिलता है। बलि (११००० वि०पू०) और वृषपर्वा (१००० वि० पू०) के समय मे लगभग एक सहस्र वर्ष का अन्तर था। असुरगुरु शुक्राचार्य तो दीर्घजीवी हो सकते हैं, यह वृषपर्वा इतना दीर्घजीवी नही हो सकता।

वृषपर्वा का एक अनुज अजक[5] उत्तर एसिया का शासक था। यूनानी

---

१. रामा० (का० २),
२ शम्बरान्तकरो जज्ञे प्रद्युम्नः कामदर्शनः। (हरि० २।१०४।२)
३. प्रतृणमहमन्तरिक्षे पौलोमान् पृथिव्यां कालखञ्जान्। (कौ० उ० ३।१)
४. महा० (३।२२३),
५. एजियन द्वीप में जिस उत्कृष्ट सभ्यता के निदर्शन प्राप्त हुए हैं, वह अजक के वंशजों ने स्थापित की थी। असुरो द्वारा स्थापित प्राचीन उपवन वहा पर आज भी विद्यमान है।

लोगों ने भी इस नाम को धारण किया, जिसका अपभ्रंश वे अजेज (Azes) लिखते थे। परन्तु यह बात बहुत उत्तरकाल की है। अजक देवासुर-युग के अन्त (१०००० वि० पू०) का शासक था। यदि अजक विप्रचित्ति का अनुज होता तो उसे वृषपर्वा का अनुज नही कहा जाता। सत्य यह है कि तथाकथित सौ दनुपुत्र विभिन्नकाल के विभिन्न असुरों के पुत्र थे।

श्वेतदानव—विप्रचित्ति का एक पुत्र श्वेत, जो शरीर से ही श्वेत था तारकामय पंचम देवासुर संग्राम में लड़ा था।[1] इसका समय (१२००० वि० पू०) था। श्वेत नाम के अनेक दानव, उत्तरकाल मे हो सकते हैं। परन्तु विप्रचित्ति पुत्र श्वेत का राज्य यूरोप के स्वीडन और स्विज (स्विजट्रलैंड) देशों मे था, इसी दानव के नाम पर आज तक देशो का नाम श्वेत (श्वेतदानव) = स्वीडन और श्वेत = स्विज् है।

दानव, विशेषरूप से श्वेत या गौरवर्ण के उत्पन्न हुए थे, आज भी यूरोपवासी दानववंशज श्वेत ही हैं।

गवेष्ठी या गाथ[2]—दानव गवेष्ठि के वशज गाथ[3] हुए, जो फ्रास आदि देशों मे बसते थे। अतः असुर गवेष्ठि प्राचीन फ्रास का राजा था। दानवो के दश वशों मे यह एक दानववंश था—अन्य वंश थे—एकाक्ष, मृतपा, प्रलम्ब, नरक, इल्वल, वातापि, शत्रुतपन, शठ, वनायु और दीर्घजिह्व।

एकाक्ष—इस दानव के वशज लीबिया के निकट वर्तमान एकोत्री द्वीप में रहते, जिन्होने वहा एक महान् सभ्यता की स्थापना की, जिसके भग्नाव शेषो में विशाल प्रस्तरनिर्मित प्राचीन प्रासाद (महल) और गुहाचित्र मिले हैं।

---

१. विप्रचित्तिसुतःश्वेत. श्वेतकुण्डलभूषणः श्वेतशैलप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखो ययौ। (हरि० १।४३।१८)

२. महा० (१।६५।३०)

३. वायु० (३८।३)

४. इल्वलो नाम दैतेय आसीत् कौरवनन्दन। मणिमत्यां पुरि पुरा वातापिस्यतस्यचानुजः। महाभारत। (६९·४), तथा रामायण= वातापिरपि चेल्वलः भ्रातरौ सहितावास्तामब्रह्मण्यौ महासुरौ।

(६।११।५५)

मृतपा—'माल्टा' शब्द मृतपा का ही अपभ्रंश है, स्वीडन के निकट मृतपा दानव के वंशजों ने आजसे लगभग १५००० पूर्व नगर बसाये, जिनके अवशेष उत्खनन मे प्राप्त हुए हैं। यहा के वृत्ताकारभवन मे ७००० प्राचीन नरकंकाल मिले है, जिसमे 'मृतपा' दानवसंज्ञा सार्थक होती है कि ये दानव मानवो की की बलि देते थे और उनका भक्षण करते थे।

इल्वलवातापि—ये दोनो दानव (असुर) देवासुरयुग में (१२००० वि० पू०) मैत्रावरुणि (वरुणपुत्र) कुम्भज अगस्त्य द्वारा मारे गये। रामायण में इस असुरद्वयी का सम्बन्ध दशरथिरामसमकालिक अगस्त्य से जोडा गया है, जो भ्रामक है।

प्रलम्ब—देवासुरयुगीन प्रलम्ब असुर की, कंस के मल्ल प्रलम्ब से भ्रान्ति पुराणों में उत्पन्न की गई है जो कृष्ण द्वारा मारा गया।

नरक—भूमि या भुवनसंज्ञकस्त्री का पुत्र नरकासुर था, जो देवयुग में इन्द्र का प्रबल शत्रु हुआ, जिसने देवमाता अदिति के कुण्डल अपहरण करके उसकी घर्षणा की थी। उसने त्वष्टा की पुत्री कशेरु का अपहरण किया था।[1] त्वष्टा और अदिति को भारतकाल मे मानना हास्यास्पद एव निर्मूल है। महाभारत और हरिवंशादिपुराणो मे उपर्युक्त देवासुरकालीन नरकासुर को कृष्णवासुदेवकालीन असुर मे मिला दिया गया है, त्वाष्ट्री कशेरु और अदिति सम्बन्धी घटना (कुण्डलहरण) भगदत्त के पिता नरक के ऊपर आरोपित कर दी गई हैं। यह भ्रम स्पष्ट ही नामसाम्य के कारण एवं विस्मृति या मिथ्याज्ञान से उत्पन्न है। इसी प्रकार देवयुगीन हयग्रीवादि असुरो को भारतकालीन नरक का साथी बताया गया है।[2] निकुम्भादि असुरो के सम्बन्ध मे भी यही धारणाये हैं। महाभारत मे नामसाम्य की ऐसी भ्रान्तियो का बाहुल्य है।

दीर्घजिह्व—इस नाम के एक या अनेक असुर देवासुरयुग में हुये थे। रामायण मे दीर्घजिह्वी को विरोचनसुता मन्थरा कहा गया है।[3] हमारे मत

---

१. त्वष्टुर्दुहितरं भौमः कशेरुमगमत् तदा। (हरि० २।६३।७),
२. हरि० (२।६३।१८),
३. श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुता नृप। पृथिवी हर्तुमिच्छन्ती मन्थरामभ्यसूदयत (रा० १।२५।२०),

में दीर्घजिह्व दानव की पुत्री दीर्घजिह्वी थी। दीर्घजिह्वदानव दनु का पुत्र कहा गया है। इसकी पुत्री दीर्घजिह्वी, जो सोम यज्ञों में सोम को चट कर जाती थी, सुमित्र ऋषि ने मारा—'दीर्घजिह्वी ह वा असुर्याम सहास्य सोमम् अवलेढ़ि उत्तरे समुद्रे आस ....तां हेन्द्रो जिघृक्षन् न शशाक गृहीतुम्। अथ ह सुमित्रः कौत्सो दर्शनीय आस।'[1]

तारक—त्रिपुरो का प्रधानशासक था। इसके तीन पुत्र थे—ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली, ये तीनों ही त्रिपुरों के अधिपति थे।[2] ताराक्ष का पुत्र था असुरहरिसंज्ञकदानव, जिसने एक अद्भुत वापी बनवाई थी, जिसमे डालने पर मृत जीवित हो जाता था। इन त्रिपुराध्यक्ष असुरो का वध महादेव ने त्रैपुर देवासुरसग्राम मे (११८६० वि० पू०) किया था।

मय—यह तारक का साथी था, जिसने त्रिपुरों का निर्माण किया था—ये पुर, सौवर्ण, रौप्य और कार्ष्णायस क्रमश द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूमण्डल पर निविष्ट थे। इनका नामावशेष अफ्रीका में त्रिपोली स्थान है, इसका प्राचीन नाम तलातल[3] था जहा पर आज भी तत्र अमर्ना, तेल अबीब जैसे स्थान सन्निकट है।

वज्रनाभ—यह भी एक वशनाम था। देवासुरयुगीन दानव वज्रनाभ के वशज भी इसी नाम से कहे जाते थे। महाभारतयुग मे वज्रपुर का शासक वज्रनाभ असुर कृष्णपुत्र प्रद्युम्न द्वारा मारा गया। वज्रनाभ को महासुर[4] कहा गया है, अत वह किसी विशाल देश का राजा था। उसने त्रिभुवन (सम्पूर्ण भूमण्डल) को जीतने का उद्योग किया। वज्रपुर के निकट ही सुपुर था। अत. ये नगर असुरो के श्रेष्ठ नगर थे। इन नगरो मे यादवो ने नाटको का अभिनय किया था।

---

१. जै० ब्रा० (१।१६१),

२. कर्ण० (३३।१७)।

३. तृतीये तु तले ख्यातं प्रह्लादस्य महात्मन। अनुह्लादस्य च पुरम ग्निमुखस्य च। तारकाख्यस्य च पुरं पुरं त्रिशिरसस्तथा। शिशुमारस्य च पुरं त्रिपुरस्य तथा पुरम्॥ (ब्रह्माण्ड० १।२०।२५-२७)

४. मेरोः सानौ नरपते तपश्चक्रे महासुरः। वज्रनाभ इति ख्यातः।
(हरि० २।९१।५)

आज वज्रनाभ का अपभ्रंश बंजनाभ है, अत. संभावना है कि देवयुगीन और महाभारतयुगीन वज्रनाभ असुर का राज्य रूस में ही होगा।

अन्धक और निकुम्भ—त्रिपुरों के समान ही दानवों के छः पुर और प्रसिद्ध थे, जिन्हें असुरों के नाम ही षट्पुर कहा जाता था, इन षट्पुरो का अस्तित्व महाभारतयुग तक रहा। महाभारतकालीन निकुम्भादि षड्असुरों ने पांचालराज्य ब्रह्मदत्त की कन्याओं का अपहरण किया था, तब श्रीकृष्ण षट्पुर गये थे। इन षट्पुरों के नाम इस समय अज्ञात हैं, षट्पुर में इसी नाम की एक या अनेक पर्वतगुहाये थी, जिनमे निकुम्भ ने यादवो को बन्दी बना लिया था,[1] जिन्हें कृष्ण ने मुक्त कराया। निकुम्भ का राज्य वर्तमान योरोप का आष्ट्रिया (म्यूनिख) होना चाहिए, क्योंकि म्यूनिख शब्द निकुम्भ का अपभ्रंश हैं। योरोप के फ्रान्स, स्वीडन, आस्ट्रिया आदि देशों में अनेक पर्वतगुफाओं मे भित्तिचित्र एवं असुरसभ्यता के अवशेष मिले हैं।

देवासुरयुग का अन्धकसज्ञक अष्टमसंग्राम था, जिसमे विश्वजिगीषु अन्धकासुर का वध महादेव ने किया था।[2] नारद की प्रेरणा से अन्धक युद्धार्थ मन्दराचल,[3] के निकट गया था। अतः यह युद्ध १२००० वि० पू० के पूर्व के निकट हुआ था, जो अष्टम देवासुरसंग्राम के नाम से विख्यात हुआ।

नाग

वंशोत्पत्ति—काश्यपपत्नी कद्रू के पुत्र पचजनजातियो मे से एक थे। कद्रू के एक सहस्रपुत्र नाग कहे गये हैं।[4] यहां सहस्र का अर्थ अनेक समझना चाहिए अथवा कद्रू के पुत्रमात्र नही, वंशज सहस्रो थे ही। हरिवंश तथा अन्य पाठो में कद्रू का ही नाम सुरसा है, जिसके अनेक पुत्र कहे गये हैं। परन्तु प्राचीन प्रामाणिक पाठों में कद्रू नाम ही हैं।[5] वस्तुतः नागो

---

१. स्तम्भयित्वानयद् वीरं गुहां षट्पुरसंज्ञिताम्। (हरि० २।६४।२७),

२. द्र० हरिवंशपुराण (२।८६-८७),

३. अन्धक के नाम पर 'एण्डीज' पर्वत हो सकता है।

४. वव्रे कद्रूः सुतान्नागान् सहस्रं तुल्यवर्चसः। (आदिपर्व १।१३।८)

५. सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम्। (हरि० १।३।११०)

६. कद्रूर्नागसहस्रं वै विजज्ञे धरणीधरम् (ब्रह्माण्ड० २।३।७।३१)

का एक पृथक्वंश क्रोधवशा नामक काश्यपपत्नी से उत्पन्न हुआ था। क्रोधवशा की द्वादश कन्यायें हुई—मृगी, मृगमन्दा, हरिभद्रा. इरावती, भूता, कपिशा, दंष्ट्रा, ऋषा, निर्मीता, श्वेता, जरमा, और सुरसा। इसी अन्तिम पुत्री सुरसा से कद्रू का भ्रम उत्पन्न हुआ है। सुरसा, सरमा आदि के पुत्र भी क्रोधवशनाम के नाग थे जिनकी संख्या चौदह सहस्र कही गई है।[1] नागों का यह गण असुरों का पक्ष ग्रहण करता था और कुछ नाग देवों का पक्ष ग्रहण करते थे। असुरों के सप्ततलो मे अनेक नागराजों के पुर बसे हुए थे, यथा, अतल में तक्षक, श्वापद, धनजंय, कालिय, कौशिकादि नागों के सहस्रों पुर थे। इसी प्रकार अन्य तलों में भी नागों के नगर थे।[2]

इरावती का पुत्र धृतराष्ट्र ऐरावत प्रसिद्ध था। नागों ने जब पृथ्वीदोहन किया तब धृतराष्ट्र ऐरावत दोग्धा था और तक्षक वैशालेय (विशाला का पुत्र) वत्स था।[3] अन्यत्र पुराणो में तक्षक को कद्रू का पुत्र बताया है, जो पाठ त्रुटिमात्र है, इससे हमारे उक्तमत की पुष्टि होती है कि कद्रू के सहस्र पुत्र नही, वे उसके वशज थे, जो विभिन्न नागस्त्रियो से उत्पन्न हुए।

इतिहासपुराणों मे कद्रू के प्रमुखपुत्र (या वशज) निम्न बताये गए है—शेष, वासुकि, तक्षक, अकर्ण, हानिकर्ण, पिंजर, आर्यक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, शख, कर्कोटक, धनंजय, महाकर्ण, महानील, धृतराष्ट्र, करवीर, पुष्पदष्ट्र, सुमुख, दुर्मुख, सूनामुख, कान्यि, कपिल, अम्बरीष, अक्रूर, प्रह्लाद, गंधर्व, मणिस्थक, नहुष, कररोमा इत्यादि।[4] इनमे से अनेक नाग विभिन्न युगो में हुए, यथा कर्कोटक नाग नलके समकालीन था और महाभारतयुग मे तक्षक, वासुकि, कालिय, आदि नामो के नाग विद्यमान थे, इन नामों के आदिमनाग देवयुग में हो चुके थे। इनमे प्रमुख नागो के नाम महाभारत (११२५), उद्योगपर्व (१०६ अध्याय) और हरिवश (१।३।१०-११५) मे द्रष्टव्य है। उपर्युक्त नामो

---

१. चतुर्दशसहस्राणि क्रूराणां पवनाशिनाम्। गणं क्रोधवशंविद्धि तस्य सर्वे च जिह्मगाः। (हरि० १।३।११३)

२. पुरसहस्राणि नागदानवरक्षासम् (ब्रह्माण्ड......)

३. तक्षको वैशालेय वत्स आसीत्......ता धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक्

(अथर्व० ८।१०।५)

४. ब्रह्माण्ड० (२।३।७।३१-३७),

में अनेक नामों की वहाँ आवृत्ति है। अतः उनकी पुनरावृत्ति निरर्थक होगी।

नागों का प्रमुख आदिमराजा अर्बुद काद्रवेय था, जिसकी सभा में नाग और सर्पविद् एकत्रित होते थे, जहा पर सर्पविद्यावेद की कथा होती थी।[1]

नाग एक मनुष्य जाति थी, इसमें कोई सन्देह नहीं आज भी नागालेंड के नागा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इतिहास में अनेक नागकन्याओं का विवाह ऋषियों एवं राजर्षियों से हुआ था, उदाहरणार्थ ऐक्ष्वाक पुरुकुत्स सम्राट् का विवाह नर्मदा नाम की नागकन्या से हुआ था। पुरुकुत्स के पिता चक्रवर्ती मान्धाता द्वारा रसातलविजय[2] के समय तन्निवासी नागों से सम्पर्क हुआ होगा, वहा उसने अपने पुत्र पुरुकुत्स का विवाह नागकन्या नर्मदा से कराया। दाशरथिराम के सुपुत्र कुश का विवाह कुमुदनाग की पुत्री कुमुद्वतीसंज्ञक नागकन्या[3] से हुआ था। महाभारत मे प्रसिद्ध है वासुकि भगिनी जरत्कारु का विवाह ऋषि जरत्कारु से हुआ था। जिसका पुत्र आस्तीक हुआ, जिनसे जनमेजय के नागयज्ञ में नागो की प्राणरक्षा की।[4]

जनमेजय का नागयज्ञ (नागसंहार) भारतीय इतिहास की एक अपूर्व घटना है। इसका सम्बन्ध देवयुग के नागो से जोडा गया है, जो निश्चय ही उत्तरकालीन कल्पना है। श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल मे यमुनातट पर कालिय नाग का दमन किया था। बौधायन श्रौतसूत्र[5] मे नागों के पुरुषरूप का उल्लेख है, इनके राजा, राजपुत्र, खाण्डवप्रस्थ मे एकत्रित होते थे, इन्द्रप्रस्थ के निकट आज भी नागों का स्मृतिकारक नागलोई (नागलोक) ग्राम विद्यमान है। महाभारतकालीन तक्षकादि नाग खाण्डववन (मेरठ दिल्ली)

१. अर्बुदः काद्रवेयो राजेत्याह तस्यसर्पा विशस्त इम आसत...तानुपदिशति सर्पविद्यावेदः (श० ब्रा० १३।४।३।६)

२. मान्धाता मार्गणव्यसनेन सपुत्रपौत्रो रसातलमगात्, (हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास), 'पुरुकुत्सः कुत्सितकर्म तपस्यन्नपिमेकलकन्याकामकरोत् (हर्षचरित तृतीय उच्छ्०),

३. रघुवंश (१६।८८)

४. महाभारत (१।४८ अध्याय)

५. बौ० श्रौ० (१७।१८)।

में रहते थे। गंगातट इक्षमतीतट एवं कुरुक्षेत्र में नाग बस्तियां थी।[1]

नागों को देवता[2] मानने की परम्परा देवयुग से अद्यपर्यन्त विद्यमान है।

ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के नागऋषि हैं, यथा अदर्बुदकाद्रवेय (ऋ० १०।९४) जरत्कर्ण ऐरावत (ऋ० १०।७६) सूक्त, और ऋग्वेद (१०।१८३) की द्रष्टा सर्पराज्ञी है। अतः नागो के मनुष्य होने मे कोई सन्देह नहीं, अनेक ऐतिहासिक घटनायें इसकी पुष्टि करती हैं और सप्ततलो में नागों के नगर (बस्तियां) एक प्रबल प्रमाण है।[3] गुप्तराज्यकाल के आसपास भारतीय इतिहास मे तो नागो के शासकों का पर्याप्त नाम आता है, पुराणो में इसका प्रमुखता से उल्लेख है।[4]

महाभारत (२।२१।९) के अनुसार मगध मे अर्बुद, शक्रवापी, स्वस्तिक और मणिनाग के प्राचीनभवन (महल) बने हुए थे। कीडे-मकोडे सांपमहल बना कर नही रह सकते, वे निश्चय पुरुषरूपनागों के राजा थे। श्लेषार्थ या नामार्थसाम्य के कारण प्राचीनकाल से ही इस सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न हो गया। महाभारतादिग्रन्थ भी भ्रमोत्पादन मे सहायक हैं।

भारत से प्रस्थित होकर नागजाति देवयुग मे ही अनेक समुद्रपार देशो (सप्त पातालों) मे बसकर सहस्रों नगरों का निर्माण कर चुकी थी, जिनका पुराणों में संकेत है। नागों के नाम पर ही एक भारतीय उपद्वीप नागद्वीप (निकोबार) प्रसिद्ध हुआ।

वासुकि और गरुड़ के समय (१२८०० वि० पू०) क्षीरसागर के निकट रामणीयक द्वीप[5] (संभवतः सीरिया) नागों का प्राचीन निवास था, जहा

---

१. महाभारत (१।३।१३६, १३९, १४१),
२ देवा वै सर्पाः (तै० ब्रा० २।२।६।३५),
३. द्र० हिन्दू अमेरिका में नागपूजा के प्रमाण,
४. नवनागास्तु भोक्ष्यन्ति पुरीं चम्पावतीं नृपाः। मथुरां च पुरीरम्यांनागाः सप्तवै। (वायु०......)
५. रामणीयकमागच्छन् मात्रा सह भुजंगमाः। तं द्वीपं मकरावासं विहितं विश्वकर्मणा (आदिपर्व अ० २६।१ तथा २७।२)

पर कद्रू विनता ने पणिबन्ध किया था। 'विश्वकर्मद्वारानिर्मित' कथन का स्पष्टार्थ है कि वहां नागों के उत्तमभवन एवं नगर बने हुए थे। पणिबन्ध में (मिथ्या) पराजय के कारण वैनतेय गरुड़ को नागों की निकृष्ट सेवा करनी पड़ती थी।[1]

क्रोधवशा नाग जो सुरसापुत्र थे, विशेषरूप से असुरों के साथ रहते थे, तभी महाभारत में उन्हें कौरवों का पक्ष लेने के कारण निन्दा की है।[2]

यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने शकों के साथी न्यूरियन जाति पर विशाल नागों के आक्रमण का उल्लेख किया है,[3] पाश्चात्य और यूनानी लेखक इसे मिथ्या कल्पना समझते थे। नदलालदे के मत मे ईरान की कुद्र जाति कद्रू (काद्रवेय) पुत्रों की सन्तति है, इसी प्रकार उन्होंने अनेक हूणजातियों के नामों में नागनामों से साम्यता प्रदर्शित की है।[4]

सुपर्ण जाति

सुपर्ण, संभवत: ऐसी मनुष्यजाति थी, जिसके उड़ने के लिए पंख होते थे, देवयुग में ऐसे सुपुंख मानवों की संख्या पर्याप्त थी, परन्तु शनै. शनैः इनकी संख्या न्यून होती गई और देवयुग (१२५०० वि० पू०) से मात आठ सहस्र पश्चात् रामायणकाल में इनके इक्का दुक्का प्रतिनिधि शेष रह गये जिनका नाम मिलता है—जटायु, सुपार्श्व और सम्पाति। महाभारतयुग मे इनका कोई प्रतिनिधि शेष नहीं था।

परमेष्ठी काश्यप प्रजापति की पत्नी विनता के दो पुत्र हुए—अरुण और गरुड वैनतेय।[5]

वैनतेय गरुड सुपर्णजाति के आदिम पुरुष थे, परन्तु इस जाति का प्रथम शासक हुआ तार्क्ष्य वैपश्यत (विपश्यत का पुत्र)।[6] वैनतेयवश मे

---

१. महा० (१।२७।६-१२),
२ महाभारत (१।६७।५६-६६),
३. Herodotus, Book IV.
४. रसातल और अंडरग्राउन्ड वर्ल्ड—नन्दलाल दे पृ० २०१
५. द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु विख्यातौ गरुडारुणौ। (महा० १।६६।७१);
६. तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजेत्याह तस्य वयांसि विशः।
(श० ब्रा० १३।४।३।१२);

विभिन्न युगों में अनेक सुपर्ण विख्यात हुए, जिनके नाम हैं—वैनतेय के छः पुत्र—सुमुख, सुनाम, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरुच, और सुबल। अन्यसुपर्ण थे—सुवर्णचूड़, दारुण, चण्डतुण्डक, अनिल, अनल, विशालाक्ष, वज्रविष्कम्भ, वामन, वातवेग, विराव, दैत्यद्वीप, सरिद्वीप, सारण, पद्मकेतन, विष्णुधर्म, मातरिश्वा इत्यादि।[1]

वैनतेय सुपर्ण (गरुड़) का पराक्रम—सुपर्ण जाति के इतिहास में इस जाति के आदिपुरुष वैनतेयगरुड़ का इतिहास ही अद्वितीय है।

गरुड़ का जन्म देवासुरों द्वारा समुद्रमन्थन की अप्रतिम घटना (११२५० वि० पू०) के अनन्तर हुआ, इससे पूर्व कद्रूपुत्रनागों का जन्म हो चुका था। समुद्रमन्थन में उच्चैःश्रवा की पुच्छ के रंग के ऊपर कद्रू और विनता में पणबन्ध हुआ था।[2] पणबन्ध में परास्त विनता कद्रू की दासी बनी। साथ में चिरकाल तक गरुड ने नागों की चाकरी की।[3] नागों ने माता विनता और गरुड के दास्यभाव से मुक्ति के लिए अमृतघट के आहरण की शर्त रखी।[4] गरुडमाता की आज्ञा के लिए स्वर्गलोक (देवलोक) से अमृत लाने के उद्यत हो गये, उन्होंने विश्वावसु गन्धर्व द्वारा रक्षित अमृतघट के लाने के लिए देवो से घोर युद्ध किया।[5] और आयसीपुर (लोहनगर) का अतिक्रमण किया, इसका संकेत वेदमन्त्र मे भी है—

मनोजवा अयमान आयसीमहरत् पुरम्।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोम वज्रिण आभरत्॥ (ऋ० ८।१००।८)

आयसीपुर में गरुड ने देखा कि अमृतघट के समन्ततः चतुर्दिक सक्षुर एक भयंकर आयस (कार्ष्णायस) घोर चक्र घूम रहा था, और दो भयंकर नाग

---

१. उद्योगपर्व (अध्याय १६),

२. यं निशम्य तदा कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत्। उच्चैःश्रवा हि किं वर्णो प्रब्रूहिमाचिरम्। (आदि० २०।२)
कद्रू वै सुपर्णी चात्मरूपयोरस्पर्धेताम् (श० ब्रा० ६।७।११।६),

३. अजुवंश्च महावीर्यं सुपर्णं पतगेश्वरम्। वहास्मानपरं द्वीपंसुरम्यं विमलोदकम्। (आदि० २१।१०-११)

४. आदि० (२७।१६),

५. उलूकश्वसनाभ्यां च निमिषेण च पक्षिराट्। प्रुरुजेन च संग्रामं चकार पुलिनेन च॥ (महा० १।३२।१८)

भी उसकी रक्षा कर रहे थे। नागों और परिभ्रमणशील यन्त्र को उन्मथ करके गरुड ने शीघ्र अमृतघट को उठालिया।[1] मार्ग मे लौटते समय गरुड की अपने ज्येष्ठ भ्राता वैमातृज काश्यप विष्णु नारायण (आदित्य) से भेंट और मैत्री हो गई—गरुड के अलौल्यकर्म[2] और वीरता से विष्णु प्रसन्न हुए और परिणामस्वरुप गरुड, उनके वाहन हो गये—

> विष्णुना च तदाकाशे वैनतेयः समेयिवान् ।।
> स वव्रे तव तिष्ठेयमुपरीत्यन्तरिक्षगः ।। (आदि० ३३।१२-१३),

प्रतीत होता है गरुड, विमान से अधिक तीव्र गति से स्वयं उड़ते ही थे और विष्णु को भी युद्धार्थ अभीष्ट स्थानपर्यन्त शीघ्र पहुंचा देते थे।

दितिपुत्र मरुत्गण—वेदों मे मरुद्गण रुद्र के पुत्र कहे गये हैं[3], परन्तु इतिहास में इनको दिति के पुत्र और इन्द्र के भ्राता और अनुचर बताया गया है। इस सम्बन्ध मे पुराणों मे एक अदभुत कथा मिलती है कि इन्द्र ने भावी भय की आशंका से दिति के उदर मे प्रवेश करके वज्र से गर्भभेदन किया।[4] उत्पन्न होकर मरुतों के सात-सात के गण (कुल ४९) इन्द्र के सहायक बन गये। परन्तु वैदिकग्रन्थों मे मरुतों की ६३ संख्या बताई गई है।[5] मरुतों को देवविश्[6] कहा गया है। इनको श्रेष्ठ दानव (सुदानव) भी बताया है।[7] मरुत् प्रायः गणवेश (सैनिकरूप) मे रहते थे, वे घोर, घोरवर्प, सुक्षत्र और शत्रुहन्ता थे, तथा वे वाशीमन्त (बर्छीधारक), ऋष्टिमन्त, सुधन्वान इषुमन्त निषङ्गिण, सुरथा, स्वायुध आदि विशेषणो से विभूषित किये गये हैं।

---

१. स चक्र क्षुरपर्यन्तमश्यदमृतान्तिके। परिभ्रमन्तमनिश तीक्ष्णधारमयस्मयम् (महा० १।३३।२),
२. अपीत्वाऽमृत पक्षी परिगृह्याशु निःसृतः (आदि० ३३।११)।
३ मरुतो रुद्रियासः (ऋ० १।८५।८)
४. ततो विवेश दित्या वै ह्युपस्थेनापरं वृषा।
   भीतस्तं सप्तधागर्भं बिभेद रिपुमात्मनः ।। (ब्रह्माण्ड० २।६।३।६६)
५. त्रिषष्टि. त्वा मरुतो वावृधान. (ऋ० ८. ९ ६ ८) तथा तै० स० (४. ६ ५. ५.)
६. देवानां मरुतो विट्। (श० ब्रा० ४।५।२।१६)
७. कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः। (तै० ब्रा० २।४।८।७)

मरुत् युद्ध के देवता थे, गणेश, हनुमान, भीम आदि इसी राशि के थे, अतः उन्हें भी रुद्रपुत्र कहा गया है। मंगलग्रह का पाश्चात्यनाम मार्स (Mars) इसी 'मरुत्' शब्द का अपभ्रंश है, जो युद्ध का देवता है।[1]

मरुतों के वाहन विचित्र थे, प्रतीत होता है कि मरुद्गण अन्तरिक्ष एवं दूसरे नक्षत्रों की यात्रायें करते थे, उनके रथ (विमान) अश्वरहित थे—

ते म आहुर्मे आययु उप द्युभिर्विभिर्मदे। (ऋ० ५।५३।३),

वयः इवमरुतः केनचित् पथा। (ऋ० १।८७।२),

वयो नये श्रेणीः पप्तुरोजसो अन्तान् बृहतः सानुनस्परि।
(ऋ० ५।५९।७),

अनवसो अनभिशू रजस्तु विरोदसी पथ्या यातिसाधत्।
(ऋ० ३।६६।७),

उपर्युक्त सदर्भों से प्रतीत होता है कि मरुद्गण अन्तरिक्षयात्रा में सिद्धहस्त एवं निपुण थे, जो अन्य लोको की यात्रायें किया करते थे, वैदिक ग्रन्थों मे मरुतो को देवों की अपेक्षा मानुष ही माना गया है—

यूय मर्तासः स्यातन। (ऋ० १।३८।४)
मरुत् मर्त्य (मनुष्य) हैं।
मरुतः सगणा मानुषासः। (अथर्व० ७।७७।३)

ये मरुद्गण (सैनिक) सब मनुष्य ही हैं।

दनायुपुत्र—कश्यपपत्नी दनायु के पाच पुत्र या वशज महान् असुरेन्द्र हुए—अरुरु,[2] बल, वृत्र, विज्वर, और वृष। इन्द्र प्रतर्दन दैवोदासि से स्वयं अपना आत्मचरित वर्णन करते हुए कहता है मैंने अररु प्रमुख यति (ब्राह्मण) असुरो को शालावृक असुरो को (मारने) दे दिया।[3] इस सम्बन्ध मे प० भगवद्दत्त की टिप्पणी द्रष्टव्य है—अररु का राज्य अरबमें प्रतीत

---

१. गणशो मरुतः। (ताण्ड्य० १९।१४।२)

२. ब्रह्माण्ड० (२।३।६।३०-३१) दनायुषायाः पुत्रास्ते स्मृताः पच महाबलाः।
अररुर्बलो वृत्रश्चापि विज्वरश्च वृषस्तथा॥

३. अररुर्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्य. प्रायच्छम्। (कौषी० ३।५।१),

होताहै ....अरब का खर्जूर प्रसिद्ध है।[1] इस सम्बन्ध में पण्डित जी ने मै० स० का प्रमाण दिया है—

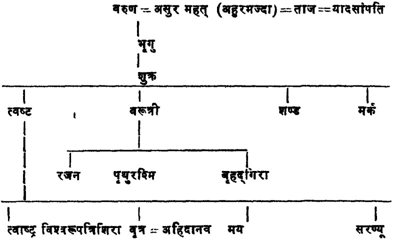
इन्द्रो वै यतीन् सालवृकेभ्य प्रायच्छत् ।
तेषां एतानि शीर्षाणि यत् खर्जूराः ॥[2]

वरुत्री असुरयाजक के प्रसंग में शालावृकों का विशेष उल्लेख होगा। महाभारत में इन शालावृक असुरों की संख्या अठ्ठासी सहस्र बताई गयी हैं।[3]

अरब का पुत्र या वंशज धुन्धु नामक महासुर हुआ, जिसका वध ऐक्ष्वाक राजा कुवलाश्व ने किया, जिससे उसका नाम धुन्धुमार पड़ा।[4]

बल का राज्य सम्भवतः बेलजियम (=बल दैत्य) मे था और वृष का राज्य फ्रान्स में था। फ्रान्स' पद वृष का ही अपभ्रंश है। वलिवन्धन के अनन्तर वृषादि असुर स्थायीरूप से यूरोप मे बस गये।

वृत्र=त्वाष्ट्र—देवासुरयुग में दो त्वष्टा हुए थे[5] एक वरुणादि द्वादश आदित्यों का भ्राता। त्वष्टा और द्वितीय वरुण का प्रपौत्र और शुक्राचार्य का पुत्र। वरुण का वंश वृक्ष द्रष्टव्य हैं—



१. भा० वृ० इ० भाग १ (पृ० २६३),
२. मै० सं० (१।१०।११),
३. महाभारत (१२।३४।१३-१७),
४. वायु० (६८।३०),
५. त्वष्टा पूषा च भारत। (हरि० १।३।६०)

वृत्र का जन्मस्थान संभवतः बभ्रुनगर (बेबीलन) था, परन्तु इन्द्र से उसका युद्ध शर्यहाणवत[1] में हुआ था, जिसको महाभारत में कुरुक्षेत्र और समन्तपंचक कहा है।[2] शर्य वृत्र का ही नाम था, शर्य को मारने के कारण इन्द्र का नाम शर्यहा और स्थान का नाम शर्यहाणवत हुआ।

वैदिकग्रन्थों में वृत्र का त्वाष्ट्रवृत्र नाम से बहुधा उल्लेख मिलता है, परन्तु त्वष्टा के तीनों पुत्र—त्रिशिरा (विश्वरूप), वृत्र और मय तीनों ही त्वाष्ट्र कहे जाते थे। वृत्र का एक नाम अहि (दानव) भी था। इसके नामों की व्युत्पत्तियां ब्राह्मणग्रन्थों में इस प्रकार दी हुई है—'स यद्वर्तमानः समभवत्। तस्माद् वृत्रो अथ यदपात् समभवत् तस्मादहिः त दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव च परिजग्रहतुः तस्माद् दानव इत्याहुः।[3] वह (पुरुषरूप में) उपस्थित था अतः वृत्र कहलाया, वह पतित (गिरा) नहीं इसलिए अहि कहलाया अथवा (कश्यपपत्नी) दनु और दनायु ने माता पिता के समान उसकी रक्षा की और पालनपोषण किया इसलिए अहिदानव कहलाया।" दनायु और वृत्र मे सात पीढ़ियो का अन्तर था, अतः वृत्र पालन के समय दनायु अतिवृद्धस्त्री होगी। दनायु ने वृत्र का क्यों पालन किया यह अज्ञात है।

पारसीकग्रन्थों में अहिदानव को अजिदहाक और अरबी में ज़हहाक कहते हैं। इसको अरबी लोग ताज की चतुर्थ पीढ़ी मे मानते थे, भारतीय ग्रन्थों मे भी वृत्र वरुण की चौथी पीढ़ी में है।

इन्द्र ने दशम देवासुर संग्राम मे वृत्र का वध किया था।[4] यह घटना नहुष के समय (१२००० वि० पू०) की है जबकि ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र छिप गया और नहुष देवेन्द्र बना।[5]

वृत्रवध के कारण इन्द्र को 'महेन्द्र' कहा जाने लगा।[6]

---

१. शर्यहाणवद्ध वै नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे सरः स्कन्दते। (सायणभाष्य, ऋग्वेद १।८४।१४ पर शाट्यायनब्राह्मण का वचन उद्धृत)।
२. समन्तपचके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः। (आदिपर्व २।६)
३. श० ब्रा० (१।६।३।६)
४. वार्तघ्नश्चदशमः (वायु०......)
५. उद्योगपर्व (११।१),
६. इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा स महेन्द्रोऽभवत् (काठकसंहिता)

त्रिशिरा विश्वरूप (त्वाष्ट्र)—यह त्वष्टा का ज्येष्ठपुत्र था, जिसके तीन शिर और छः आखें थी, जिससे वह त्रिशिरा कहा जाता था—

"त्वष्टुर्ह वै पुत्रः। त्रिशीर्षा षडक्ष स आस, तस्य त्रीण्येव मुखानि।"[1] यह विश्वरूप भी कहा जाता था, क्योकि शरीरिक दृष्टि से वह अनेक रूप वाला था। वह असुरों का स्वस्रीय (भगिनीपुत्र) था,[2] त्वष्टा को कोई असुर कन्या विवाही थी। प० भगवद्दत्त ने इसका नाम यशोधरा विरोचना लिखा है।[3] परन्तु हमे इसमे सन्देह है कि त्वष्टा की पत्नी विरोचनपुत्री यशोधरा थी।[4] इसे ईरानीग्रन्थो में इसे विश्वरूप कहते हैं, यह वेदो का ज्ञाता और महान् असुरयाजक था। ऋग्वेद (१०।८-९) के दो सूक्तों का द्रष्टा था।

पश्चाद्देव

देव या आदित्य - (पूर्वाभास) — *काश्यपपत्नी अदिति के द्वादशपुत्र आदित्य* कहलाते थे। दैत्यदानवों की सज्ञा पूर्वदेव थी, क्योकि वे इन देवों से पूर्व उत्पन्न हुये थे और पृथ्वी पर उन्होंने दीर्घकाल तक दिव्यशरीरो से शासन किया। पूर्वदेवो-असुरों के अनन्तर पृथ्वी पर देवों का शासन हुआ।

पुराणो मे देवों के प्रत्येक मन्वन्तर के पृथक् जन्मों का उल्लेख है। स्वायम्भुव मन्वन्तर मे देवो की सज्ञा 'याम' थी, स्वारोचिष मन्वन्तर मे तुषिता के पुत्र तुषिता अभिधानदेव हुए, उत्तम मन्वन्तर (उत्तर समसामयिक) मे 'सत्य' नाम के देव हुए, तामसमें 'हरि', रैवत मे वैकुण्ठ और चाक्षुष मे साध्यसंज्ञक देवगण हुए। चाक्षुषमन्वन्तर मे वे प्रजापति धर्म के पुत्र थे, जिनमे नरनारायण प्रमुख हुए। इनका इन्द्र विपश्चित्सज्ञक था।[5] चाक्षुषयुगीन नारायण वैवस्वतयुग मे विष्णु आदित्य हुये ऐसा पुराणो का अभिमत है।

---

१. श० ब्रा० (१।६।३),
२. विश्वरूपो वै त्रिशीर्षासीत् त्वष्टुः पुत्रोऽसुराणां स्वस्रीयः।
३. भा० वृ० इ० भाग १। (पृ० ६३)
४. रामायण मे विरोचनसुता का नाम मन्थरा है। (१।२६।२०)
५. ब्रह्माण्ड० (२।३१।३)

इतिहासपुराणों[1] एवं वैदिकग्रन्थों[2] में—द्वादश आदित्यों के नाम—हैं धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा और विष्णु। इनमे आठ आदित्य प्रमुख थे—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र और विवस्वान्—ऋग्वेद और वायुपुराण मे आठ देवो को मुख्य माना है...(१) अष्टौ पुत्रासो अदितेः।[3] (२) अष्टाना देवमुख्याना मिन्द्रादीनां महात्मनाम्।[4]

ये द्वादश देव भी असुरों के समान भारत के बाह्यदेशों के शासक थे, यथा भग के नाम पर ईराक मे बगदाद (भगदत्त) नगर प्रसिद्ध हुआ, विवस्वान् के अतिरिक्त अन्य किसी आदित्य की वंशावली पुराणो मे नही मिलती।

दनायुपुत्र—दनायु के पुत्र या वंशज महान् प्रसिद्ध हुये—अररु, बल, वृत्र, विज्वर और वृष। इन्द्र प्रतर्दन दैवोदासि से स्वय अपना आत्मचरित वर्णन करते हुये अररुप्रमुख यति (ब्राह्मण) असुरो को शालावृक असुरो को (मारने) दे दिया।[5] इस सम्बन्ध मे पं० भगवद्दत्त की टिप्पणी द्रष्टव्य है—अररु का राज्य अरब मे प्रतीत होता है......अरब का खर्जूर प्रसिद्ध है।[6] इस सम्बन्ध मे पण्डितजी ने मैं० सं का प्रमाण दिया है—

इन्द्रो वै यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्। तेषां एतानि शीर्षाणि यत् खर्जूराः।[8] वरूत्री असुरयाजक के प्रसग में सालावृको का विशेष उल्लेख

---

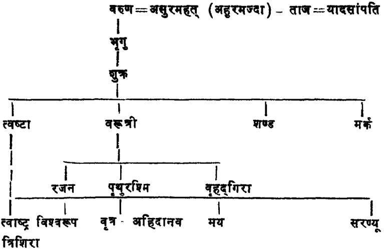
१. हरि० (१।३।६०-६१)
२ तै० ब्रा० (१।१।६।३५)
३. ऋ० (१०।७२।८)
४. वायु० (३४।६२),
तुलना करो The twelve gods Were, they affirm produced from eight. (Herodotus p. 136)
५ ब्रह्माण्ड० (२।३।६।३०-३१) दनायुषायाःपुत्रास्तेस्मृताः पंच महाबलाः। अररुर्बलवृत्रौश्च च विज्वरश्च वृषस्तथा।
६. अररुर्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्। (कौ० उ० ५।१),
७. भा० वृ० इ० भाग १ (पृ० २६३),
८. मैं० सं० (७।१०।११),

होगा। महाभारत में इन शालावृक असुरों की संख्या साठसहस्र बताई गई है।[1]

अरु का पुत्र या वंशज धुन्धु नामक महासुर हुआ, जिसका वध ऐक्ष्वाक राजा कुवलाश्व ने किया जिससे उसका नाम धुन्धुमार पड़ा।[2]

बल का राज्य सम्भवत. बेलजियम (=बलदैत्य) में था और वृष का राज्य फ्रान्स मे था। 'फ्रान्स' पद वृष का ही अपभ्रंश है। बलिबन्धन के अनन्तर वृषादि असुर स्थायीरूप से योरोप में बस गये।

वृत्र=त्वाष्ट्र—देवासुरयुग मे दो त्वष्टा हुये थे[3] एक वरुणादि द्वादश आदित्यों का भ्राता त्वष्टा और द्वितीय वरुण का प्रपौत्र और शुक्राचार्य का पुत्र-वरुण का वंशवृक्ष द्रष्टव्य है :—



वृत्र का जन्मस्थान सभवत बभ्रुनगर (बेबीलन) मे हुआ था, परन्तु इन्द्र से उसके युद्ध शर्यहाणवत[4] में हुये थे जिसको महाभारत मे कुरुक्षेत्र

१. महाभारत (१२।३४।१६-१७),
२. वायु० (६८।३०),
३. त्वष्टा पूषा च भारत। (हरि० १।३।६०)
४. शर्यहाणवद्ध वै नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे सरः स्कन्दते।
(सायणभाष्य, ऋग्वेद १।८४।१३ पर शाट्यायनब्राह्मण का वचन उद्धृत)

और समन्तपंचक कहा है।[1] शर्य वृत्र का ही नाम था, शर्य को मारने के कारण इन्द्र का नाम शर्यहा और स्थान का नाम शर्यहाणवत हुआ।

वैदिकग्रन्थों में वृत्र का त्वाष्ट्र वृत्र नाम से बहुधा उल्लेख मिलता है, परन्तु त्वष्टा के तीनों पुत्र—त्रिशिरा (विश्वरूप), वृत्र और मय-तीनों ही त्वाष्ट्र कहे जाते थे।। वृत्र का एक नाम अहि (दानव) भी था। इसके नामों की व्युत्पत्तिया ब्राह्मणग्रन्थों मे इस प्रकार दी हुई है— स यद्वर्तमान. समभवत्। तस्माद् वृत्रो अथ यदपात् समभवत् तस्मादहिः त दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतुः तस्माद् दानव इत्याहुः।[2] 'वह (पुत्ररूप मे) उपस्थित था अतः वृत्र कहलाया, वह पतित (गिरा) नही, इसलिये अहि कहलाया अथवा (कश्यपपत्नी) दनु और दनायु ने माता पिता के समान उसकी रक्षा की और पालनपोषण किया इसलिये अहि दानव कहलाया।" दनायु और वृत्र मे सात पीढ़ियो का अन्तर था, अतः वृत्रपालन के समय दनायु अतिवृद्धस्त्री होगी। दनायु ने वृत्र का क्यों पालन किया, यह अज्ञात है।

पारसीकग्रन्थों में अहिदानव को अजिदहाक और अरबी मे डहडाक कहते हैं। इसको अरबीलोग ताज की चतुर्थ पीढी में मानते थे,[3] भारतीय ग्रन्थों मे भी वृत्र वरुण की चौथी पीढी में है।

इन्द्र ने दशम देवासुरसग्राम[4] मे वृत्र का वध किया था। यह घटना नहुष के समय (१२५०० वि० पू०) की है। जबकि ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र छिप गया और नहुष देवेन्द्र बना।

वृत्रवध के कारण इन्द्र को 'महेन्द्र' कहाजाने लगा।[5]

त्रिशिरा विश्वरूप (त्वाष्ट्र)—यह त्वष्टा का ज्येष्ठ पुत्र था, जिसके तीन शिर, और छ आंखे थी, जिससे वह त्रिशिरा कहा जाता था—"त्वष्टुर्ह वै पुत्रः। त्रिशीर्षा षडक्ष आस, तस्य त्रीण्येव मुखानि[6]" यह विश्वरूप भी

---

१. समन्तपचके युद्ध कुरुपाण्डनसेनयोः। (आदिपर्व २।६),
२. श० ब्रा० (१।६।२।६)
३. आलइण्डिया ओ० का० तिरूपति (१६४१) पृ० १४६-१४६,
४. वार्तघ्नश्च दशमो ज्ञेयः (वायु०)
५. इन्द्रो वै वृत्र हत्वा स महेन्द्रोऽभवत् (काठकसंहिता)
६. श० ब्रा (१।६।३७।

कहा जाता था, क्योंकि शारीरिक दृष्टि से वह अनेक रूपवाला था। वह असुरों का स्वस्रीय (भगिनीपुत्र) था[1], त्वष्टा को कोई असुरकन्या विवाही थी। प० भगवद्दत्त ने इसका नाम यशोधरा विरोचना लिखा है।[2] परन्तु हमें इसमें सन्देह है कि त्वष्टा की पत्नी विरोचनपुत्री यशोधरा थी।[3] ईरानी ग्रन्थों मे इसको विस्वरूप कहते है, यह वेदो का ज्ञाता और महान् असुरयाजक था। यह ऋग्वेद (१०।८-९) के दो सूक्तो का द्रष्टा है।

पश्चाद्देव

देव या आदित्य पूर्वाभास—कश्यपपत्नी अदिति के द्वादशपुत्र आदित्य कहलाते थे। दैत्यदानवों की संज्ञा पूर्वदेव थी, क्योंकि वे इन दोनों से पूर्व उत्पन्न हुये थे और पृथ्वी पर उन्होंने दीर्घकाल तक दिव्यशरीरों से शासन किया। पूर्वदैत्यअसुरों के अनन्तर पृथ्वी पर देवो का शासन हुआ।

पुराणो मे देवों के प्रत्येक मन्वन्तर मे पृथक् जन्मो का उल्लेख है। स्वायम्भुवमन्वन्तर मे देवो की सज्ञा 'याम' थी, स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषिता अभिधानदेव हुये, उत्तममन्वन्तर (उत्तमसमसामयिक) 'सत्य' नाम के देव हुये, तामस में 'हरि'; रैवत मे वैकुण्ठ और चाक्षुष मे साध्य संज्ञक देवगण हुये। चाक्षुषमन्वन्तर मे वे प्रजापति धर्म के पुत्र थे, जिनमे नरनारायण प्रमुख हुये। इनका इन्द्र विपश्चित्संज्ञक था।[4] चाक्षुषयुगीन नारायण ही वैवस्वतयुग मे विष्णु आदित्य हुये, ऐसा पुराणो का अभिमत है।

इतिहासपुराणों एव वैदिकग्रन्थों मे—द्वादश आदित्यो के नाम है—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा और विष्णु।[5] इनमे आठ आदित्य प्रमुख थे—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र और विवस्वान्[6]—ऋग्वेद और वायुपुराण मे आठ देवो को मुख्य माना है —(१) "अष्टौ पुत्रासो अदितेः।[7]"

---

१. विश्वरूपो वै त्रिशीर्षासीत् त्वष्टुः पुत्रोऽसुराणा स्वस्रीयः।
२. भा० वृ० भा० १ (पृ० ६६),
३. रामायण मे विरोचनसुता का नाम मन्थरा है (१।२५।३०)
४. ब्रह्माण्ड० (२।६१।३)
५. हरि० (१।३।६।६०-६१)
६ तै० ब्रा० (१।१।६।३५)
७. ऋ० (१०।७२।८);

(२) अष्टानां देवमुख्यानामिन्द्रादीना महात्मनाम्।[1] ये द्वादश देव भी असुरों के समान भारत के बाह्यदेशो के शासक थे, यथा भग के नाम पर ईराक में बगदाद (भगदत्त) नगर प्रसिद्ध हुआ, विवस्वान् के अतिरिक्त अन्य किसी की सन्तति का पुराणों मे वर्णन नही मिलता, इससे यही प्रकट होता है कि पुलस्त्य, कतु सदृश प्रजापतियो, सावर्णि आदि मनुओ, विप्रचित्ति आदि असुरों के समान भगादि आदित्यों की सन्तति का राज्य भूमण्डल के विभिन्न देशों में था। वरुण के सन्तति के इतिहास से इस ग्रन्थ मे प्रकट होगा कि एशिया, अफ्रीका योरोप और अमेरिका के अनेक देशों (तलों) मे वरुणप्रजा का राज्य था। शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थो में गन्धर्व (अरब) जाति वरुण की प्रजा कही गई है, यह प्राथम्यता से वक्ष्यमाण है।

हमारे शोध की दृष्टि से चार ही आदित्य (देव) प्रमुख थे—वरुण, विवस्वान्, इन्द्र और विष्णु। अन्य शेष आदित्यो[2] का इतिहास भारतीय ग्रन्थो से ज्ञात नही होता, केवल नाममात्र ही उनके ज्ञात हैं—पश्चाद्देव वरुण = यादसाम्पति (ताज) = मसुरमज्दा) (अहुरमज्दा) प्रारम्भ में एक ही पिता परमेष्ठी काश्यप की सन्तति असुरों और देवो मे कोई वैमनस्य नही था, इसका स्पष्ट प्रमाण है कि हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या का विवाह आदित्य वरुण से हुआ था।[3] असुरों के वरुण और विवस्वान् मे मधुर सम्बन्ध थे। परन्तु उत्तरकाल मे विष्णु के जन्म के अनन्तर इन्द्र के लौल्यभाव एव महत्वाकाक्षा से बलि (१२००० वि० पू०) के समय से देवासुरों मे चिरस्थायी वैर हो गया, यद्यपि ब्राह्मण इन्द्र, विरोचनप्राह्लादि का सतीर्थ्य और प्रह्लाद का शिष्य था। परन्तु आदित्य वरुण और उसकी सन्तति का आदि से अन्त तक दानव-दैत्यो से सौहार्द बना रहा। वरुण के पुत्रपौत्र

---

१. वायु० (३४।७२) तुलना करो—The twelve gods were, they a ffirm, produced from eight (Herodotus) 136.

२. आदित्या इमाः प्रजाः (काठक, पृ० १०२), ह वा इदमग्रे प्रजा आसुः। आदित्याश्चाङ्गिरसश्च (श० ब्रा० ३।५।१।१३)

३. इन्द्र, की पत्नी शची पौलोमी (पुलोमादानव) की पुत्री थी, इन्द्र की पुत्री जयन्ती का विवाह शुक्र से हुआ, इन्द्रानुज विष्णु की पत्नी लक्ष्मी शुक्र की भगिनी (भृगुपुत्री) थी। इससे भी देवासुरो का सौहार्द प्रकट होता है।

और प्रपौत्र क्रमशः भृगु, शुक्र, त्वष्टा, वरूत्री, शण्ड और मर्क असुरों के पुरोहित थे और राज्य मे उनका भी पूर्ण भाग होता था तथा बलि के साथ ये सब सप्त पातालों मे चले गये, जहां अपने नाम के नगर व देश (वरूत्री= बेरूत, दानवमर्क- डेनमार्क आदि) बसाकर शासन करते रहे।

यद्यपि असुर शब्द का मूलार्थ है 'बलवान्'; परन्तु, प्रायः दैत्य और दानवो को ही यह सज्ञा प्राप्त हुई थी। दैत्य और दानवों के साथ देववरुण (आदित्य) को वेदमन्त्रों तक में असुर और राजेन्द्र कहा है—

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा।
नृन्पाह्यसुर त्वमस्मान्।। (ऋ० २।१७४।१)

वरुण की सन्तति मय, मर्कादि को तो दानव ही कहा जाता था, जैसे मय को मयासुर और मर्क को दानवमर्क कहा गया है। अवेस्ता (पारसी धर्मग्रन्थ) में तो वरुण का नाम ही असुरमहत् (अहुरमज्दा) है।[1] असुरों के साथ वरुण और उसकी सन्तति समुद्रीयभूभागो (द्वीपों और तलो) मे रहती थी, अतः समुद्र को भारतीयग्रन्थो में वरुणालय[2] और वरुण को यादसांपति कहा जाता था। वरुणालय का स्पष्ट अर्थ है, वरुण का निवासस्थान। पाश्चात्य ग्रीक आदि के वाङ्मय मे यह इतिहास स्मृत है कि अतल (और सप्ततलों) महाद्वीप को पश्चाद्देव ने बसाया था, वे इस शब्द के विकृतरूप 'पोसेडियन' का प्रयोग करते थे।[3] अमेरिका, यूरोप, ईरान ईराक[4] आदि के अतिरिक्त अरबदेशो में भी वरुण का राज्य था। वरुण की प्रजा 'यातु' या 'यादस्' भी कहलाती है, जिन्हे गन्धर्व और उनकी स्त्रियों को अप्सरा कहा जाता था। अप्सरा को यूरोप मे फेयरी, अरब-ईरान मे हूर और हिन्दी मे परी कहते हैं, आदिम गन्धर्वों और अप्सराओ के वश

---

१. जरथुस्त्र ने अहुरमज्दा से पूछा—अहुरमज्दा ने एक सभा बुलाई— इत्यादि। अवेस्ता, फर्गद द्वितीय, आर्यों के आदिदेश, पृ० ७४-७६ पर उद्धृत।
२. आकर सर्वरत्नानामालयं वरुणस्य च। (महा० १।२२।८)
३. द्र० प्लेटो कृत डायलोग्सग्रन्थ।
४. ईराक मे एलम की राजधानी सुशन का पुराणों में 'सुषा' नाम से उल्लेख है —'सुषा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः। (मत्स्यपु०) अतः सुषा वरुणराज्य का केन्द्र था।

का इसी प्रकरण में उल्लेख होगा। 'यादस्' का विकृत रूप था 'ताज'। यादसांपति या 'यादः' वरुण का ही नाम था, अतः वरुण का ही नाम 'ताज'[1] था। वरुण को वे अरब अपना संस्थापक मानते थे।

यह पूर्व लिख चुके हैं कि अजिदहाक वृत्रासुर का ही नाम था, जो वरुण का प्रपौत्र, शुक्र का पौत्र और त्वष्टा का पुत्र था, अतः वह वरुण की चौथी पीढ़ी में हुआ।

वरुणप्रजा गन्धर्व और सोमप्रजा अप्सरा

पुराणों मे काश्यपपत्नी मुनि के १५ पुत्र देवगन्धर्व[2] कहे गये हैं—(१) भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, वरुण, धृतराष्ट्र, गोमान्, सूर्यवर्चा, पत्रवान, अर्कपर्ण, प्रयुत, भोम, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्जन्य और कलि। इनमे सूर्यवर्चा, चित्ररथ और कलि का यत्किंचित् ऐतिह्य उल्लेख्य है।

अथर्ववेद मे चित्ररथ और वसुरुचि, सूर्यवर्चागन्धर्व के पुत्र कहे गये हैं, जिन्होने पृथिवीदोहन किया, इसमे चित्ररथ सौर्यवर्चा वत्स था और वसुरुचि सोर्यवर्चा दोग्धा।[3] देवयुगीन चित्ररथ का वंशज महाभारतकालीन अङ्गारपर्ण गन्धर्व,[4] था जिसका अर्जुन पाण्डव से युद्ध हुआ, गन्धर्वो ने दुर्योधन[5] को कारावास मे डाल दिया था, जिसे पाण्डवो ने मुक्त कराया।

जै० ब्रा० (१।२५) मे त्रिशीर्ष गन्धर्व का उल्लेख है, जिसका अन्तः समुद्र मे प्लवनशील नौनगर था। वह त्रिशीर्षा (जिसके तीनशिर थे), देवासुरो की विजय की भविष्यवाणी कर सकता था।[6]

---

१. आ० इ० आर० का० तिरुपति (१९४१) पृ० १४५, १४६
२. देवगन्धर्व सज्ञा से स्पष्ट है कि 'असुरगन्धर्व' भी थे, वरुण की प्रजा अरब (गन्धर्व) ही समझने चाहिये, क्योकि वरुण की असुरो से घनिष्ठता थी।
३. चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्...वसुरुचि· सौर्यवचसो ऽधोक्...... (अथर्व० ८।१०।५)
४. चित्ररथवशज गन्धर्व का नाम अङ्गारपर्ण था—अङ्गारपर्णमित्येव गन्धर्वं वित्त स्वबलाश्रयम्। (आदि० ६९।१३)
५. वनपर्व (२४२।६),
६. तेषांह त्रिशीर्षा गन्धर्वो विजयस्यावेत्। तस्य हाऽस्याप्स्व अन्तरं नौनगरं परिप्लवम् आस (जै० ब्रा० १।१२३)

कलि वैतदन्य (वितदनपुत्र) गन्धर्व के नेतृत्व में पंचजनों से राज्य में भाग मांगा था; कलि गन्धर्व ने कलिन्द साम का दर्शन किया था— 'अथ ह कलयो गन्धर्वा अन्तस्थाश्चेरुर्नेतरान् आद्रियमाणाः। त इमान् लोकान् व्यभजन्त... स एतत् कलिर्वैतदन्यः सामापश्यत्।"[1]

विश्वावसु गन्धर्व सोम (अमृत) घट का रक्षक था, जबकि वैनतेय गरुड़ ने घट का हरण किया— 'तं सोममाह्रियमाणं गन्धर्वो विश्वावसुः पर्यमुष्णात्।'[2]

गन्धर्वों के राजा आदित्य वरुण था, जो कि उपर्युक्त सभी देवासुरयुगीन गन्धर्वों का अधिपति हुआ।[3] यद्यपि गन्धर्वों का आदि राजा चित्ररथ कहा गया है।[4] ब्राह्मणग्रन्थों से स्पष्ट है वरुण अतिविद्वान्, वेद का महान् ऋषि, और अथर्ववेद का प्रवर्तक ही था।[5] वरुण आदित्यों में सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, अतः ज्येष्ठ होने से उसे ब्रह्मा कहा जाता था। उसका ज्येष्ठपुत्र हुआ भृगु या अथर्वा।[6] वरुण सौवर्षतक प्रजापति पिता परमेष्ठी के यहां एक शतवर्ष ब्रह्मचारी[7] रहकर वेद पढ़ता रहा, तदनन्तर स्वयं उसने अपने पुत्रों—भृगु, वासिष्ठ आदि सप्तर्षियों को वेद पढ़ाया। विद्याध्ययन में वरुण ने अपने पुत्र एवं शिष्य भृगु का निग्रह भी किया।[8] वरुण का सभी देवों—वसु, रुद्र, विश्वदेव, मरुत, साध्य, आदित्य आदि ने राज्याभिषेक किया;[9] अतः वरुण सभी देवजातियों का शासक था।

---

१. जै० ब्रा० (१।१५५)
२. श० ब्रा० (६।१।६।६)
३. वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विश. (श० ब्रा० १३।४।३।७) अपा च वरुण (राज्येऽभ्येषचयत्) (ब्रह्माण्डपु० २।३।८।८)
४. गंधर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं तथा। (वही २।३।८;१०)
५. तानुपदिशत्यथर्वाणो वेद. । (श० ब्रा० ३।४।४।७)
६. मु० उ० (१।१।१)
७. वरुणो वै राजा सवमादम् इवान्याभिर्देवताभिरासीत्। सोऽकामयत सर्वेषा देवानां राज्याय सूयेयेति। स प्रजापतौ शतं ब्रह्मचर्यम् अवसत् (जै० ब्रा० १।१५२)
८. वही, (१।१५२)
९. भृगुर्ह वारुणिरनूचान आस स ह्यात्य एव पितरं मेने......स ह वरुण ईक्षांचक्रे......तस्य ह प्राणान् अभिजग्राह। (जै० ब्रा० १।४२) तथा ब्र० तै० उ०;

गन्धर्वों की स्त्रियां अप्सरायें सोमवैष्णव की प्रजायें कही गई हैं— 'सोमो वैष्णवो राजेत्याह तस्याप्सरसो विश.—युवतयः शोभना उपसमेता भवन्ति।'[1] उपर्युक्त सोम वामन विष्णु काश्यप का पुत्र था, न कि अत्रिपुत्र सोम। प्राचीनयुगों में सोमनाम के अनेक पुरुष हुये थे, जिनमें एक अप्सराओं का शासक था। प्राचीनतम प्रमुख अप्सराओं के नाम है—अरुण, अनपाया, विमनुष्या, वरांवरा, मित्रकेशी, असिपर्णिनी, अलुबुषा, मारीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अद्रिका, लक्ष्मणा, क्षेमका, दिव्या, रम्भा, मनोभवा, असिता, सुबाहु, क्षुप्रिया, पुण्डरीका, अजगन्धा, सुदती, और सुरसा। इनके पुत्र या वंशज कथित है—पर्वत, तुम्बरु, नारद, सुबाहु, हाहा-हूहू, वसुरुचि, वरूथ, वरेण्य, हंस, ज्योतिष्टोम दारुण, सुरुचि, विश्वावसु। अन्य प्रसिद्ध अप्सरायें हुई —मनुवन्ती, सुकेशी तुम्बरुपुत्री), पञ्चचूडा, मेनका, सहजन्या, पर्णिनी, पुंजिकस्थला, क्रतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पूर्वचित्री, प्रम्लोचा, अनुम्लोचना मेनका, सरस्वती और उर्वशी (ब्रह्माण्ड० २।३।७)। इनमे से उर्वशी का वरुण के साथ, रम्भा का नलकूबर से तिलोत्तमा का सुन्द उपसुन्द दैत्योंमे, अद्रिका का उपरिचरवसु से, मेनका का विश्वामित्र से सम्बन्ध प्रसिद्ध है, अन्य अप्सराओ का अन्यपुरुषों से सम्बन्ध अन्वेष्टव्य है। ये अप्सराओ सुन्दर होती थी, अतः गन्धर्वजाति अत्यन्त कामुक थी इतिहासपुराणो मे इनकी कामुकता की अनेक घटनाये प्रमाणित है। आज अरबो या मुस्लिमों की कामुकता जगत्प्रसिद्ध है, यह गुण (?) परम्परा से अरबो को गन्धर्वों से प्राप्त हुआ। कुरान[1]प्रतिपादित लिंगच्छेदन भी इसी परम्परा का प्रतीक है।

वरुण की सभा

महाभारत सभापर्व में नारदजी ने जिन दिव्य सभाओं का वर्णन किया है, उनमे वरुण की अमितप्रभायुक्त सभा का वर्णन किया है, जिसका विस्तार और आयाम (लम्बाई चौडाई) सौ योजन था।[2] यह समुद्र के मध्य में

---

१. वरुणकृत आथर्वणमन्त्रों का कुरान पर प्रभाव स्पष्ट है, इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त की टिप्पणी भा० वृ० इ० भा० १, पृ० २३६ पर द्रष्टव्य है।

२. सभापर्व (४।२)

अवस्थित थी और जिसमें रत्नमय फलपुष्पवान् वृक्ष लगे हुये थे।[१] इस सभा के अन्य अनेक दिव्य पदार्थों और गुणो का उल्लेख सभापर्व, अध्याय नवम मे द्रष्टव्य है। वरुण की सभा में असुर, नाग, गन्धर्व अप्सरा और विविध जलचर जीव विशेषरूप से विराजते थे, असुरों मे वैरोचनबलि, नरक, प्रह्लाद, विप्रचित्ति, कालखज, विश्वरूप और नागों में वासुकि, तक्षक, धृतराष्ट्र, कर्कोटक, धनञ्जय आदि का उल्लेख है, मन्त्री सुनाम और उसके पुत्रपौत्र गो तथा पुष्कर, वरुण की सेवा करते थे।

वारुण क्रतु

वैदिकग्रन्थों एवं इतिहासपुराणों में वरुण के इस यज्ञ में सप्तर्षि जन्म का विशेष उल्लेख है, जिसमें भृगु आदि महर्षियों का द्वितीयजन्म (चाक्षुष-वैवस्वत मन्वन्तर की सन्धि १३००० वि० पू०) में हुआ। एतत्सम्बन्धी सन्दर्भ महत्वपूर्ण होने से यहां उद्धृत किये जा रहे है —

भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयम्भुवा।
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम्॥ (आदिपर्व ५।७,८)
पूर्वसप्तर्षय. प्रोक्ता ये वै स्वायंभुवऽन्तरे।
मनोरन्तरमासाद्य पुनर्वैवस्वतेकिल॥
एत एव महाभागा वारुणे विततेऽध्वरे।
सर्वे वय प्रसूयामश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो.॥
जज्ञिरे ह पुनर्ये वै जनलोकादिहागताः।
देस्य महतो यज्ञे वारुणी विभ्रतस्तनुम्॥
ऋषयो जज्ञिरे दीर्घे द्वितीयमिति नः श्रुतम्।
भृग्वंगिरामरीचयश्च पुलस्त्यश्च पुलहः क्रतुः॥
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च ह्यष्टौ ते ब्रह्मण. सुता.।[२]

(ब्रह्माण्ड० २।३।१)

---

१. अतल (अटलांटिक) संस्कृति के अवशेष निर्जन साओ मीगल द्वीप में हजारों वर्ष पूर्व लगाये गये उद्यान आज भी हरे भरे हैं, जो अपनी दिव्यता को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार का वरुण का उद्यान होगा।

२. तुलना कीजिये—द्वन्द्व तस्यास्तु तज्जज्ञे मित्रश्च वरुणश्च ह।
तयोरादित्ययो. सत्रे दृष्टाप्सरसमुर्वशीम्।
रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः॥

(बृहद्देवता ५।१४८-१५०)

इस यज्ञ में भृगु, वसिष्ठ, अगस्त्य और संभवतः द्वितीय अत्रि का जन्म अवश्य हुआ, परन्तु मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु का जन्म सन्देहास्पद है, क्योंकि वैवस्वतमन्वन्तर की किसी भी घटना में मरीचि का उल्लेख का सम्बन्ध ज्ञात नही होता और वे तथाकथित वरुण पिता कश्यप के पिता थे, अतः पितामह मरीचि का द्वितीय जन्म काल्पनिक प्रतीत होता है, हा, द्वितीय भृगु, द्वितीय वसिष्ठ और अगस्त्यप्रथम, अवश्य ही वरुण के पुत्र थे, यह इतिहास से प्रमाणित है। अन्य ऋषियों के वंशजों को सम्भवत वरुण ने अपना मानसपुत्र बना लिया हो।

चाक्षुष और वैवस्वत मन्वन्तरो में कोई अधिक कालान्तर नही था, इसीलिये पुराणो में पृथुवैन्य और वरुण के समकालिक घटनाओं को दोनो मन्वन्तरो मे मानने का भ्रम प्राप्त होता है, इस कालावधि के सम्बन्ध मे हम पूर्वपृष्ठो पर स्पष्टीकरण कर चुके हैं।

भृगु, वसिष्ठ अगस्त्य और अत्रि द्वितीय का जन्म (वारुण क्रतु मे) दक्ष प्राचेतस से लगभग ५०० वर्ष पश्चात्, वि० पू० से १३००० वि० पू० समझना चाहिये। इन ऋषियो का वंशवृक्ष का वर्णन ऋषिप्रकरण' मे किया जायेगा। वरुण के असुरवंशज वृत्रादि का ऐतिह्य देवासुरप्रकरण मे वर्णन किया जा चुका है।

विवस्वान्

वरुण के अनन्तर विवस्वान् आदित्य का इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान था, इनकी प्रजा ही विशेषरूप से आदित्यप्रजा कही जाती थी।[1] भारतवर्ष और ईरान के आदिम शासक वैवस्वतमनु और वैवस्वतयम विवस्वान् के पुत्र थे। आदित्य विवस्वान् वेदों के महान् ऋषि थे, ये शुक्ल यजुर्वेद के प्रवर्तक और पचम परिवर्तयुग के व्यास थे,[2] तदनुसार उनका

---

१. स वाव मार्तण्डो यस्येमे मनुष्या प्रजाः। (मै० सं० १।६।१२)
विवस्वानादित्यस्तस्येमा प्रजाः। (श० ब्रा० ३।१।३।१५)

२. पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा (वायु० २३)
आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि (बृ० उ० ६।५।४)
शिष्यपरम्परा द्वारा महाभारतयुद्ध (३०८० वि० पू०) से कुछ पर्व वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने आदित्य शुक्लमन्त्र प्राप्त किये—आदित्यानीनानि शुक्लानि।

ऋषित्वकाल १२५६० वि० पू० था और जन्म १३००० वि० पू० से पूर्व हुआ होगा। विवस्वान् के पुत्र यम ने जलप्रलय से पूर्व १२०० वर्ष राज्य किया, अतः यम के पिता की आयु सहस्रवर्ष से अधिक अवश्य होनी चाहिये। विवस्वान् की शिष्यपरम्परा द्रष्टव्य है—

१. आदित्य विवस्वान्
२. अम्भिणी वाक्
३. नैध्रुवि कश्यप (काश्यप)
४. शिल्प कश्यप (काश्यप)
५ हरित कश्यप (कश्यप) (बृ०उ०)

विवस्वान् की एक अन्य शिष्यपरम्परा का संकेत गीता (४।१) में है—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

पारसीधर्मग्रन्थ अवेस्ता से सिद्ध है कि विवस्वान् के पुत्र वैवस्वत यम उनके शिष्य भी थे, वे दोनो दीर्घायु होते हुये भी पचदशवर्षदेशीय युवकोपम प्रतीत होते थे—

Fifteen years in age so seemed it......
Son and father walked together
While he reigned ... .
Son of Vivahvant, great yim [2]

वेदमन्त्रो मे अदितिपुत्र विवस्वान् के जन्म को आकाशीय सूर्य से मिला दिया है। वेदमन्त्रों तथा पुराणो से प्रतीत होता है कि विवस्वान्, इन्द्र और विष्णु के समान अदिति के (अर्यमादिसे) कनिष्ठ और इन्द्रविष्णु से ज्येष्ठ थे—

---

१. यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते (बृ० उ० ३।५।४) तथा महाभारत में याज्ञवल्क्य जनक से कहते हैं—मयाऽऽदित्यान्यवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप, (महा० १२।३।८।३) महाभारत में 'आदित्यात् पाठ भ्रामक है, क्योंकि याज्ञवल्क्य विवस्वान् के साक्षात् शिष्य नहीं थे।

२. भण्डारकर मैमोरियल वोल्यूम: सम अवेस्टन ट्रान्सलेशन, पृ० ६१,३३

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुत्प्रैत् पूर्वं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्तण्डमाभरत् ।। (ऋ०)

अतः आदित्य विवस्वान् अदिति का अष्टमपुत्र था। सम्भवतः अदिति के आठ पुत्र युवावस्था मे उत्पन्न हुये और शेष चार इन्द्र, विष्णु आदि बहुत उत्तरकाल मे उत्पन्न हुये। इसीलिये कही आठ और कही बारह पुत्रों का उल्लेख है।

विवस्वान्सन्तति

पुराणो मे विवस्वान् को महान् प्रजापति कहा गया है।[1] वैवस्वतमनु की पत्नी त्वाष्ट्री सरण्यू, संज्ञा या सुरेणु विभिन्न नामों से उल्लिखित है। एक त्वष्टा, स्वय आदित्य विवस्वान् के भ्राता थे और द्वितीय त्वष्टा शुक्र भार्गव के पुत्र थे, विवस्वान् की पत्नी सम्भवतः शुक्रपुत्र त्वष्टा की पुत्री थी,[2] क्योंकि त्वष्टा के पुत्र मय (विश्वकर्मा) विवस्वत् के शिष्य थे, ऐसा ज्योतिष ग्रन्थो (सूर्यसिद्धान्तादि) से ज्ञात होता है।

सरण्यू से यम और यमी मिथुन (जुड़वा) सन्तान उत्पन्न हुई, इसलिये उनका ऐसा नाम (यमयमी) पड़ा, यम ज्येष्ठ थे। त्वाष्ट्री सरण्यू के पिता त्वष्टा उत्तरकुरु (साइबेरिया-रूस) के शासक थे।[3] सरण्यू का नाम 'अश्वा' भी था, इसलिये पुराण मे कह दिया है कि वह घोडी का रूप बनकर घास चरने उत्तरकुरु चली गई।[4] यह अर्थसाम्यजनित भ्रामक कल्पनामात्र है। अपने समान रूपरग (सवर्ण) या छायासञ्ज्ञक स्त्री को त्वाष्ट्री सरण्यू विवस्वान् के घर छोड गई जिससे राजर्षि वैवस्वतमनु हुये।[5] तदनन्तर सरण्यू द्वारा ही दो पुत्र और उत्पन्न हुये, जिनका नाम था—नासत्य और

---

१. मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः। (हरि० १।९।५६)

२. अभवन्मिथुनं त्वष्टु: सरण्यूस्त्रिशिरा सह।
स वै सरण्यूं प्रायच्छत् स्वयमेव विवस्वते। (बृहद्दे० ६।१६२)

३. गच्छ देव निजां भार्या कुरूंश्चरति चोत्तरान् (हरि० १।९।५०)

४. अगच्छद् बडवा भूत्वा......कुरूनथोत्तरान् गत्वा (हरि० १।९।१७)
अपक्रान्ता सरण्यूमश्वरूपिणीम् (बृहद्दे० ७।४)

५. बृहद्दे० (७।२)

दस्र, जो अश्विनीकुमार के नाम से अधिक विख्यात हैं,[1] क्योंकि इनकी माता का नाम 'अश्वनी' (अश्वा=सरण्यू) था।

वैवस्वत यम

पितृवंशप्रसंग में लिख चुके हैं कि पितृ एक जाति थी, जिसके अधिपति यम हुये। वैवस्वतमनु इस लोक (भारतवर्ष) के शासक हुये तो वैवस्वत यम[2] दूसरे देश—पितृदेश (ईरान) के शासक बने—"स वाव विवस्वानादित्यो यस्य मनुश्च वैवस्वतो यमश्च। मनुरेवास्मिंल्लोके यमो ऽमुस्मिन" (मैत्रायणीय संहिता १।६।३२)। ईरानीसाहित्य विशेषतः अवेस्ता मे वैवस्वतयम को 'यिम ख्सित औस्त' कहा गया है जो वैवस्वतयम शब्द का ही विकार है और उसे पिश्दादियनकुल का राजा कहा गया है। यह 'पश्दादियन' शब्द भी 'पश्चाद्देव' का विकार है, इसमे कोई संदेह नही, ग्रीकलेखक वरुण को पोसेडियन (पश्चाद्देव) कहते थे, ऐसा लेख हम पहिले लिख चुके हैं, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि वरुण, विवस्वान्, इन्द्र, विष्णु आदि आदित्य 'पश्चाद्देव' ही थे।

वैवस्वतयम को पुराणों में षष्ठ परिवर्तयुग का व्यास कहा गया है।[3] इस गणना से यम का समय १२२०० वि० पू० निश्चित होता है, परन्तु ईरानीग्रन्थो के अनुसार यम जलप्लावन से पूर्व १२०० वर्ष राज्य कर चुके थे।[4] अतः यम का जन्म जलप्रलय से न्यूनतम १२०० वर्ष पूर्व हो चुका था अर्थात् न्यूनतम साढ़े तीन युग पूर्व (३६०×३½=१२६० वर्ष)। प्रलय के पश्चात् नहुष का राज्य, बलिबन्धन आदि सप्तमयुग (१२००० वि० पू०) की घटनायें थी; अतः यम का जन्म १३००० वि० पू० हुआ, आज से लगभग पन्द्रहसहस्र दोसौवर्ष पूर्व। यम वेदो का व्यास प्रलय के पश्चात् ही बना, जब उसने वेदमन्त्रों का सकलन और पुराण की रचना की।[5]

---

१. देव्या तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजा वरौ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति। (हरि० १।०।५५)

२. पितृणामाधिपत्य च लोकपालत्वमेव च। (हरि० १।०।५६)

३. परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा प्रभुः। (वायुपु०)

४. इस प्रकार ३००-३०० वर्ष पर उसने चार बार राज्य किया। अवेस्ता द्वितीय फर्गद)

५. पुराणप्रवक्ताओं की सूची में भी यम का षष्ठ स्थान है (द्र० वायुपुराण अ० २३);

यम की भगिनी यमी के नाम पर नदी का नाम यमुना पड़ा। ऋग्वेद के यमयमीसूक्त से ज्ञात होता है कि यमी ने अपने भ्राता का पतिरूप मे वरण करने की इच्छा की थी, यम ने इस प्रस्ताव का प्रत्याख्यान किया और कहा कि पूर्वयुगों में ऐसा होता था, उत्तरयुगो में नही।[1]

यम ने सम्भवतः चित्रशिखण्डी धर्मशास्त्र के आधार पर एक धर्मशास्त्र लिखा था, जिसका कोई संस्करण यमस्मृति कहलाता था।[2]

यमसन्तति

यम के पांच पुत्र थे, जो ऋग्वेद दशममण्डल के निम्न सूक्तो के द्रष्टा हुये—

शंख यामायन	ऋग्वेद १०।१५ सूक्त
दमन यामायन	ऋग्वेद १०।१६ सूक्त
देवश्रवा यामायन	ऋग्वेद १०।१७ सूक्त
सकुसुक यामायन	ऋग्वेद १०।१८ सूक्त
मथित[3] यामायन	ऋग्वेद १०।१९ सूक्त

विद्वान्, ऋषि, ब्राह्मण व्यास इन्द्र

जीवन के प्रारम्भ में इन्द्र (शक्र) जन्म और कर्म दोनो से ही ब्राह्मण[4] था। इन्द्र अपने पिता परमेष्ठी के विद्यालय में १०५ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचारी रहा।[5] विष्णु के द्वारा याचित दैत्येन्द्र बलि[6] की पराजय के पश्चात् ही

---

१. ऋ० (१०।१० सूक्त)

२. यम का एक प्रसिद्ध वचन बहुधा उद्धृत किया जाता है—"पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।"

३. अवेस्ता मे मथित का अपभ्रंशरूप 'थितम' मिलता है।

४. इन्द्रो वै ब्राह्मणः पुत्र कर्मणा क्षत्रियो भवत्। ज्ञातीनां पापवृतीनां जघान नवतीर्नव (शान्ति० २२।११); 'तानिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण' (मै० स० १।६।९), स ततो ब्राह्मणो भूत्वा प्रह्लादं पाकशासनः। प्रह्लादोऽपि महाराज ब्राह्मण वाक्यमब्रवीत्। (शान्ति० २४।२८,३३)

५. (छा० उ० ८।७)

६. बलिसंस्थेषु त्रेताया सप्तमेयुगे (वायु०)

और तदनन्तर वृत्रवध के पश्चात् ही शक्र क्षत्रिय और देवेन्द्र राजा बना, इससे पूर्व शताब्दियोंपर्यन्त शक्र ऋषि रूप या ब्राह्मण रूप मे ही था। शक्र, आयु से संभवतः वैवस्वतमनु से छोटा था और वैवस्वत यम का तो शिष्य ही था। शक्र ब्राह्मण ने का यज्ञ कराया था।[1] इन्द्र सप्तम युग (१२२०० वि० पू० से ११८४० वि० पू०) तक व्यास या वेदो का महान् ऋषि रहा, अतः उसका जन्म १२५०० वि० पू० से पूर्व हुआ होगा। १०५ वर्ष तक वह ब्रह्मचारीही रहा, और शास्त्ररचना[2] भी शताब्दियोंपर्यन्त करता रहा। अतः वह तीन चार सौ वर्षशास्त्र रचना करता रहा और युद्धो में वेद को भूल गया। इन्द्र के पाच विद्यागुरु थे— परमेष्ठी (पिता), बृहस्पति, यम अश्विनीकुमार और कौशिक। परमेष्ठी से वेद, बृहस्पति से व्याकरण, यम से इतिहासपुराण और अश्विनीकुमारो से उसने चिकित्साशास्त्र पढ़ा। महायुद्धों के पश्चात् पंचमगुरु कौशिक हुये, जिससे इन्द्र भी कौशिक कहलाया।

इन्द्र ने वेदमन्त्रो की रचना के साथ न्यूनतम सात शास्त्रों की रचना और की थी।[2] इन्द्र ने पूर्व महर्षियो के मन्त्रो का सकलन करके वेदसहिता बनाई। धर्मशास्त्र या अर्थशास्त्र का सक्षेप किया।[3] इन्द्र वसिष्ठ को ब्राह्मणग्रन्थ (वेदव्याख्यान) पढ़ाया।[4] ऋषि शक्र को बहुतकाल पश्चात् सत्ता की लालसा हुई। पं० भगवद्दत्त ने १७ शीर्षकों के अन्तर्गत इन्द्र-सम्बन्धी इतिहास का सचलन किया है।[5] यहा पर हम, उनकी पुनरावृत्ति नही करना चाहते अतः उनकी सूचीमात्र लिखकर अन्य नवीन इन्द्रविषयक घटनाओ पर विचार करेंगे—

---

१. तै० सं० (६।६।६)

२. प० युधिष्ठिर मीमांसक ने 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास' (प्रथम भाग, पृ० ६३ पर इन्द्रोपदिष्ट और कृतियो का उल्लेख इस प्रकार किया है—(१) ऐन्द्रव्याकरणशास्त्र, (२) आयुर्वेद अर्थशास्त्र, (३) मीमासाशास्त्र, (४) इतिहासपुराण, (५) गाथा और छन्दःशास्त्र, (६) ब्राह्मणग्रन्थ, (७) मन्त्र (वेद)।

३. महाभारत, आदिपर्व, पूना स० (१५१।४२)

४. स एवमब्रवीद् ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि (ताण्ड्य० १५।१।२५)

५. भा० बृ० इ० भाग १, (पृ० २५८ से २६४ पर्यन्त)

१. इन्द्र का जन्म	९. गुप्तचर इन्द्र
२. इन्द्र का १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य और उपनिषद् ज्ञान	१०. असुरों से इन्द्र की संधियाँ
	११. वृत्रहन्ता महेन्द्र बना
	१२. इन्द्र कौशिक हुआ
३. शास्त्रों की रचना	१३. इन्द्र का नाम अर्जुन
४. आयुष्कामशास्त्र	१४. इन्द्रशिष्य भरद्वाज
५. शिथिलशरीर इन्द्र	१५. इन्द्र का आत्मचरित-प्रदर्शन से
६. ब्राह्मण इन्द्र क्षत्रिय हुआ	१६. इन्द्र कुरुक्षेत्र मे यज्ञ
७. इन्द्र और उशना के सम्बन्ध	१६. इन्द्र कुरुक्षेत्र में यज्ञ
८. विश्वरूप हन्ता इन्द्र	१७. इन्द्रकृत मनुयज्ञ

उपर्युक्त घटनाओं के अतिरिक्त इन्द्र सम्बन्धी निम्न घटनायें और विचारणीय है जिनकी प० भगवद्दत्त ने आर्यसमाजी विचारधारा होने से उपेक्षा की या उनके ध्यान मे नही आई, इनका अनुसधान वेदादि से हमने किया है—

१. आसुरीविकुण्ठा और इन्द्र	२. दीर्घजिह्वीवध
३. प्रह्लादशिष्य इन्द्र	४. इन्द्र की राजधानी इन्द्रप्रस्थ
५ इन्द्रकृत कुरुक्षेत्र में यज्ञ	६. इन्द्रकृत दध्यङ् आथर्वणवध
७. गृत्समदइन्द्रमैत्री धुनिचुमुरिवध	७. यतिवध-पृथुरश्मि पृथुर्वैन्य नही
९. यज्ञ मे पशुवधसमर्थन	१०. उशना का श्वसुर इन्द्र
११. सरमा, पणि और इन्द्र	१२. इन्द्रनिलयन-वीर्यधान
१३. नहुष को ऐन्द्रपदप्राप्ति	१४ इन्द्र अगस्त्य और मरुत्
१५. केशीवध	१६. वेद मे इन्द्रकृत कर्म
१७. कार्तिकेय—महादेवकृत सहाय्य	१८. देवासुरसग्राम—९९ पुरों का भेदन—पुरन्दर

असुरी विकुण्ठा और इन्द्र

प्रजापति की विकुण्ठा नाम की एक असुरी पुत्री थी,[1] यह कौन सा प्रजापति था, यह अज्ञात है, विकुण्ठा ने इन्द्रतुल्य पुत्र प्राप्ति के हेतु महान् तप

---

१. प्राजापत्यासुरी त्वासीद् विकुण्ठा नाम नामतः। (बृहद्दे० ८।४९)

किया,[1] इन्द्र विकुण्ठा का पुत्र बन गया, संभवतः विकुण्ठा ने शक्र को अपना दत्तकपुत्र बना लिया। इस समय इन्द्र ने समानरूप से दैत्य और देवों का वध करना आरम्भ कर दिया।[2] इन्द्र इस अवसर पर निन्यानवें और उनन्चास असुरों का वध और उनके पुरो का भेदन किया।[3] कहा गया है कि इन्द्र ने असुरों के हैम, रौप्य और आयसी – त्रिपुरों का भजन किया।[4] प्रतीत होता है कि यह इन्द्र के मिथ यहाँ महादेव की छाया का वर्णन है, महादेव शिव द्वारा त्रिपुरो का विनाश इतिहासपुराणों मे विशेषरूप से उल्लिखित है। यदि इन्द्र ने त्रिपुरो का विनाश किया तो यह द्वितीय बार किया।[5] तदनन्तर बैकुण्ठ इन्द्र (शिव ?) ने देवो को त्रस्त करना प्रारम्भ कर दिया। असुर इन्द्र से त्रस्त देवगण एवं ऋषिगण तत्शमनार्थ सप्तगु ऋषिश्रेष्ठ की शरण में गये, जो इन्द्र का सखा था। सखा सप्तगु की सम्मति मानकर इन्द्र ने सत्पुरुषों को सताना बन्द कर दिया। ऋग्वेद (१०।४८-५०) में इन्द्र आत्मस्तुति करता हुआ कहता है कि उसने वसिष्ठशाप से त्रस्त व्यस विदेह[6] (माथव या मैथिल) को भय से मुक्त कर कीकट देश का राजा बनाया और सरस्वती तट पर यज्ञ करवाया।

दीर्घजिह्वी असुरीवध — इसको रामायण में विरोचनसुता मन्थरा[7] कहा है, जिसका इन्द्र ने वध किया, परन्तु यह किसी दीर्घजिह्वदानव की पुत्री थी, ऐसा पुराणो से प्रतीत होता है। दीर्घजिह्वी अनुपम सुन्दरी थी, जो

---

१. विकुण्ठा नामासुरी इन्द्रतुल्य पुत्रमिच्छन्ती महत्तपस्तेपे (ऋक्सर्वा०)

२. तस्या चेन्द्रः स्वय जज्ञे जिघासुर्दैत्यदानवान् (बृहद्दे० ७।५०)

३. बृहद्दे० (७।५१) तथा ऋग्वेद (१।८४।१३), महाभारत (२।२४।१६)

४. भित्वा सबाहुवीर्येण हैमरौप्यायसीः पुरीः। पृथिव्यां कालेयाश्च पौलोमांश्चैव धन्विनः प्रह्लादतनयान्दिवि। (बृहद्दे० ७।५२,५३)

५. इन्द्र प्रतर्दन दैवोदासि (१०००० वि० पू०) से कहता है—'दिवि प्रह्लादीयाननृणमहमहन्। अन्तरिक्षे पौलोमान्पृथिव्या कालखंजान् (शा० आ० ५।१) यहा दिवि और अन्तरिक्षस्थपुरों का तात्पर्य स्पष्ट नहीं है, यह भावी खोज का विषय है।

६. यथाकरोच्च वैदेहं व्यंस सोमपति नृपम् (बृहद्दे० ७।५८)

७. रामा० बालकाण्ड।

अपने सहायकों के साथ यज्ञ के सोम को चट कर जाती थी। अपने सखा सुमित्र कौत्स के द्वारा षड्यन्त्रपूर्वक दीर्घजिह्वी को निगृहीत कर वध किया।[1]

प्रह्लादशिष्य इन्द्र—शक्र ने राजनीति की शिक्षा दैत्येन्द्र प्रह्लाद से ग्रहण की।[2] उस समय इन्द्र केवल ब्राह्मणमात्र था, सत्ता का स्पर्श उसने नहीं किया था। आयु में इन्द्र प्रह्लाद के पुत्रवत् (विरोचनतुल्य) था।[3]

पुत्र—इन्द्र का ज्येष्ठ पुत्र जयन्त था। मन्त्रद्रष्टा वसुक्र[4] और विमद[5] उसके पुत्र या पौत्र थे, जिन्हें वैदिकग्रन्थो मे ऐन्द्र कहा है।

जयन्ती-उशना पत्नी—असुरो की सत्ता को निर्बल बनाने के लिये शक्र ने दुरभिसंधि की—उशना को मित्र बनाया[6] और वृद्ध उशना से अपनी युवती कन्या का विवाह किया।[7] उशना जयन्ती और इन्द्र की आयु का अनुमान इसी तथ्य से किया जा सकता है कि उशना के पुत्र त्वष्टा की पुत्री—सवर्ण शक्रके ज्येष्ठ भ्राता विवस्वान् की पत्नी थी।[8]

शर्यणावत और कुरुक्षेत्र में इन्द्र—समन्तपचक (कुरुक्षेत्र) के पाच सरोवरों मे से शर्यणावत एक सर था, जहा पर इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था, यही पर इन्द्र ने दध्यङ् आथर्वण का शिरच्छेद किया था। यही कुरुक्षेत्र मे इन्द्रादि देवो ने मख किया था।[9]

---

१. दीर्घजिह्वी ह वा असुर्यास। स ह स्म सोम अवलेढ़ि। उत्तरे समुद्रे आस...... । सुमित्रः कौत्सोदर्शनीय आस। तां होवाच दीर्घजिह्वि कामयस्व मेति।.........हेना एवाभिजग्राह। (जै० ब्रा० १।१६३)

२. महा० शान्ति

३. छा० उ० (८।१)

४. ऋग्वेद सूक्त (१०।२०) का द्रष्टा

५. ऋ० सू० (१०।२७) का द्रष्टा

६. जै० ब्रा० (१।१२६)

७. जयन्त्यां देवयानी तु शुक्रस्य दुहिताऽभवत् (ब्रह्माण्ड० २।३१।८६)

८. इछन्न् अश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपाश्रितम्। तद् विदच्छर्यणावति- शर्यणावद्ध नामैतत् कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे सरस्कम्। (जै० ब्रा० ३।६५)

९. देवाः सत्रमासत... ..तेषां कुरुक्षेत्रं वेदिरासीत्—खाण्डव आसीत् (तै० आ० ५।१।६)

राजधानी—इन्द्रप्रस्थ (खाण्डवप्रस्थ)—महाभारतकालीन इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) का मूल संस्थापक इन्द्र था, जिसके नाम से इसका नाम इन्द्रप्रस्थ पड़ा, इसी को खाण्डवप्रस्थ कहते थे। पाण्डवों ने इसे दुबारा बसाया।[1] कृष्णार्जुन से पूर्व भी देवयुग में श्वेतकि के राज्यकाल में खाण्डववन को जलाया गया था।[2] पूर्वकाल में ही यहां मयदानव और तक्षकनाग के वंशज रहते थे।[3] कृष्णार्जुन ने उनकी रक्षा की थी।

देवकिल्विषी इन्द्र—इन्द्र ने अनेक अनुचित दुष्कर्म किये थे, इनका संक्षिप्त परिगणन जै० ब्रा० (२।१३४) में इस प्रकार किया है—"उसने विश्वरूप त्रिशीर्षा त्वाष्ट्र (ब्राह्मण पुरोहित) का वध किया, यतियों को सालावृक दैत्यों के हवाले किया, अरुः प्रमुख यतियों का वध किया, बृहस्पति (दध्यङ् आथर्वण) आङ्गिरस का वध किया, संधि का उल्लंघन करके नमुचि का शिरश्छेद किया। इन देवकिल्विषों (अपराधों) के कारण वह जंगलों में भटकता रहा। उसने देवों से यज्ञ करने का अवरोध किया, देवों ने निषेध किया कि हम तुम्हारा यज्ञ नहीं करायेंगे, क्योंकि तुमने घोर पाप किये है।"

उपर्युक्त अपराधों में सबसे गंभीर अपराध दधीचि (दध्यङ् आथर्वण) आङ्गिरस (बृहस्पति) का वध था। उत्तरकालीन पुराणों कथाओं में दधीचि के अस्थिदान को एक पुण्यकर्म (श्रेष्ठकर्म) के रूप में चित्रित किया गया है, जिस प्रकार सबसे बड़े मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र (द्र० ऐ० ब्रा० ८।१) को पुराणों में सबसे बड़ा सत्यवादी चित्रित किया गया है। इस प्रकार पुराणों में अनेकविध मिथ्या कल्पनाओं की भरमार है। तथ्यों को उल्टा गया है, ये दो तथ्य इसके ज्वलन्त उदाहरण है।

इन्द्र ने दध्यङ् आथर्वण का अश्वशिरः काट दिया, जिसे अश्विनीकुमारो

---

१. इदमिन्द्रः सदा दावं खाण्डवं परिरक्षति।

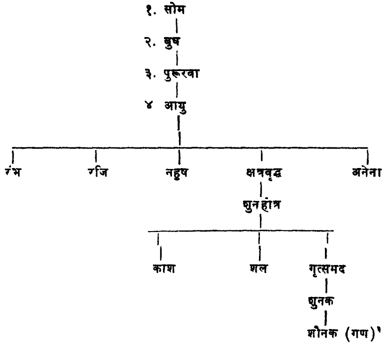
२. पुरा देवनियोगेन यत्त्वयाभस्मसात् कृतम्। आलयं देवशत्रूणां सुघोरं खाण्डववनम् (महाभारत १।२२३।६,७५)

३. वसत्यत्र सखा तस्य तक्षकः पन्नगः सदा। (महा० १।२२३।७), तथा (वही १।२२६।५) तथासुरं मयं नाम तक्षकस्य निवेशनात्।
(महा० १।२२७।३९)

ने पुनः संधान किया।[1] दध्यङ् की अस्थियों से वज्र बनाकर इन्द्र ने असुरों को निन्यानवें बार मारा।[2]

गृत्समद इन्द्रमैत्री—धुनिचुमुरिवध

यह गृत्समद मूल मे ऐलपुरूरवा के वंश में हुआ, जिसका वंशवृक्ष इस प्रकार है—



---

१ तद् इन्द्रोऽन्वबुध्यत—तस्यानुद्रुत्य शिरः प्राच्छिनत्.. ...अथ यद् अश्वस्य शिरं आसीत् तद् इमौ मनीषिणौ प्रतिसमधत्ताम्। (जै० ब्रा० ३।१२७)

२. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कृत जघान नवतीनंव। (जै० ब्रा० ३।६५)

३. ब्रह्माण्डपु० (२।३।६७।३-४)

अतः गृत्समद सोम की सातवीं पीढी में हुये। गृत्समद का समय वह था, जब शक्र इन्द्र देवेन्द्र और क्षत्रिय हो गया था, यह सप्तमयुग के अन्त या अष्टमयुग के प्रारम्भ की घटना है अर्थात् ११८४० वि० पू० से ११४८० वि०पू० के मध्य में।

गृत्समद और उसके वंशज शौनकगण ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के द्रष्टा हैं। यह मूल में क्षत्रिय था, परन्तु आङ्गिरस और भार्गव दोनो के वंशों में सम्मिलित किया जाता था।[1] ऋक्सर्वानुक्रमणी से ज्ञात होता है कि भृगुवंशी शुनक[2] के पुत्र या वंशज के रूप मे गृत्समद की ख्याति थी, अतः शुनक भार्गव, गृत्समद के पूर्वज थे, न कि वंशज।

गृत्समद और शुक्र मे घनिष्ठ मैत्री हो गई, उनका रूपरंग एवं वेशभूषा भी तुल्य थी, जिससे धुनि और चुमुरि नाम के असुर गृत्समद को शक्र समझकर मारने दौडे। मित्र गृत्समद की सहायतार्थ शक्र ने उन दोनो असुरो को मारा। बृहद्देवता में यहा पर शक्र के अनेक विशेषण दिये है— शचीपति, शक्र, तुराषाड, रथीतर, इन्द्र, महेन्द्र, हरिवाहन, पुरन्दर इत्यादि। गृत्समद ने इन्द्र की अत्यधिक प्रशंसा (चाटुकारिता) की, जिससे प्रसन्न होकर शौनहोत्र (शुनहोत्रपुत्र) का नाम, देवराज ने 'गृत्समद' रख दिया।[3]

यतिवध और शालावृक—जै० ब्रा० (१।१८६) का यह कथन भ्रामक

---

१. य आङ्गिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत्स गृत्समदो द्वितीय मण्डलमपश्यत्। (ऋक्सर्वानुक्रमणि १।१३)

२. भृगुवश इस प्रकार है—भृगु—च्यवन—प्रमति—रुरु—शुनक—शौनक (गृत्समद) और शौनक ब्राह्मणगण (आदिपर्व १।८।१।३)

३. सयुज्य तपसात्मानम् ऐन्द्र बिभ्रन्महद्वपुः। तमिन्द्रमिनि मत्वा तु दैत्यौ भीमपराक्रमौ। धुनिश्च चुमुरिश्चोभौ सायुधावभिपेततुः। इदमन्तर-मित्युक्त्वा ताविन्द्रस्तु निबर्हयत्। निहत्य तौ गृत्समदमृषिं शक्रो-ऽभ्यभाषत। वरं गृहाण मत्तस्त्वम् अक्षयं चास्तु ते तपः। तथेत्युक्त्वा तुराषाड तु पाणौ जग्राह दक्षिणे। सहितौ जग्मतुश्चैव महेन्द्रसदनंप्रति। सखित्वाच्च पुनश्चैनम् उवाच हरिवाहनः। गुणन्मादयसे यस्मात् त्वमस्मानृषि। तस्माद् गृत्समदो नाम शौनहोत्रो भविष्यसि। (बृ० ४।६६-७८)

या पाठपरिवर्तन है कि पृथुरश्मि ही पृथु वैन्य था।[1] इन्द्र ने इस पृथुरश्मि को क्षेत्र (भूमि) दी। वरूत्री के तीन पुत्र थे रंजन, पृथुरश्मि बृहद्गिरा।[2] पृथुवैन्य शक से कई सहस्रवर्ष पूर्व हो चुका था, यह हम चाक्षुषमन्वन्तर के प्रसंग में लिख चुके हैं कि पृथुवैन्य शक से न्यूनतम तीन सहस्रवर्ष पूर्व हो चुका था, अतः वरूत्रीपुत्र पृथुरश्मि को पृथुवैन्य बताना सरासर भ्रम और इतिहासविरुद्ध कथन है।

उपर्युक्त तीन वरूत्रीपुत्रो के साथी अनेक मुनि या यति थे, जिनको इन्द्र ने शालावृक संज्ञक भोजनभट्ट असुरब्राह्मणों को दे दिया, जिनकी संख्या अट्ठासी सहस्र थी—

तथैव पृथिवीं लब्ध्वा ब्राह्मणाः वेदपारगाः।
सश्रिता दानवाना वै साह्यार्थे दर्पमोहिताः।
शालावृका इति ख्यातास्त्रिषु लोकेषु भारत ॥
अष्टाशीतिसहस्राणि ते चापि विबुधैर्हताः॥
(महाभारत, शान्ति० ३४।१६-१७)

इन्द्र ने यतियो को शालावकों के हवाले कर दिया जिनको उन्होने मार दिया, केवल तीन इन्द्र की शरण मे जाने के कारण अवशिष्ट रहे। ये शालावृक कुत्ते या वृक (भेडिये) नही थे, परन्तु मनुष्य ही थे, जैसाकि महाभारत के उपर्युक्त विवरण से पुष्टि होती है, बृहद्देवता से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है कि त्रित आप्त्य को सालवृकीपुत्र असुर ब्राह्मणो ने कूप मे ढकेल दिया।[3]

इन्द्र द्वारा यज्ञ में पशुबध का समर्थन—महाभारत,[4] वायुपुराण,[5] एव

---

१. अथाब्रवीत् पृथुरश्मिः क्षेत्रकामोऽहमस्मीति। तस्मै क्षेत्र प्रायच्छत् स एव पृथुर्वैन्यः (जै० ब्रा० १।१८६)

२. रजतः पृथुरश्मिश्च विद्वान्यश्च बृहद्गिराः। (ब्रह्माण्ड० २।३।१।७६) वरूत्रिणः सुता ह्येते ब्रह्मन् दैत्ययाजकाः॥

३. त्रितं गास्त्वनुगच्छन्तं क्रूराः सालावृकीसुताः। कूपे प्रक्षिप्य गाः सर्वास्तत एवापजह्रिरे। (बृहद्दे० ३।१३२)

४. महाभारत (शान्तिपर्व ३३७)

५. वायुपु० (अध्याय ३९)

ब्रह्माण्डपुराण[1] में उल्लिखित है कि जब देवो और ऋषियो में यज्ञ में पशुवध पर विवाद हुआ तब उभय देव और ऋषिगण राजा वसु के पास निर्णयहेतु पहुंचे। राजा वसु ने देवो का पक्ष लिया, जिससे वह रसातलगामी हुआ,[2] पहिले विमान मे चलने के कारण, उसका नाम उपरिचरवसु था। महाभारत मे, नामसाम्य की भ्रान्ति के कारण इस चैद्यवसु (कसु ?[3]) को शान्तनु पिता प्रतीप (३८०० वि० पू०) से मिला दिया है, परन्तु इन दोनो वसुओं में न्यूनतम दशसहस्रवर्ष का अन्तर था। परन्तु ब्रह्माण्ड (१।२।३०।२४) में इस वसु को औत्तानपादि अर्थात् उत्तानपाद का पुत्र या वंशज कहा है, इससे उपर्युक्त इन्द्र और राजा वसु स्वायम्भुवमन्वन्तर के व्यक्ति होने से, इन्द्र आदित्य (शक्र) से सहस्रोंवर्ष पूर्व हुये, तब तो यह घटना शक्र, त्रित, बृहस्पति आदि के समय (१२००० वि० पू०) की न होकर और पूर्व समय की माननी पड़ेगी।

सरमा, इन्द्र और पणि असुर—वेद और बृहद्देवता मे रसानदी का उल्लेख मिलता है, जो वर्तमान ईराक की रंहा (रंधा) नदी है, इसी के निकटवर्ती क्षेत्र को रसातल कहा जाता था। इसी के तट पर निवातकवच पौलोम, कालकेय (कालकंज) और पणिसंज्ञकअसुर रहते थे।[4] यही पर हिरण्यपुर (बैबीलन का नुपुर) था। ये पणि असुर जाति को ग्रीक प्यूनिक कहते थे, जो नणिक्वर्ग के थे, आधुनिक फिनलैण्डवासी फिनिश लोगो के ये पूर्वज थे।

परमेष्ठी काश्यप प्रजापति की पत्नी क्रोधवशा की चौदह पुत्रियो मे एक सरमा थी, उसके पुत्र (वंशज) सारमेय कहलाते थे। इस सरमा को देवशुनी और देवदूती कहा गया है। जब पणियो ने इन्द्र की गौ या सम्पत्ति चुराकर छिपा दी, तब यही सरमा देवदूती बनकर रसातल गई थी, जहा पर उसने

---

१. ब्रह्माण्डपु० (१।२।३० अध्याय)

२. ऊर्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत् (१।२।३०।३१) चेतियजातक (४२२ सं) में चेतियवसु (चैद्य) उपचर की सात बार पृथिवी मे धंसने की कथा है।

३. ब्रह्माण्डपु० (१।२।३० अध्याय)

४. ततोऽधस्तात् रसातले दैतेया दानवा. पणयो नाम निवातकवचाः कालकेया हिरण्यपुरवासिन......वसन्ति। भागवत० ५।२४।३०

पणियों से वार्तालाप किया था। इन्द्र ने रसातल (रसातट) जाकर पणियों से युद्ध किया और उनका संहार किया।[1]

इन्द्रनिलयन—नहुष के समय तक इन्द्र को पूर्णसत्ता (देवेन्द्रपद) प्राप्त नहीं हुई थी। नहुष का समय, युधिष्ठर से ठीक दशसहस्रवर्षपूर्व बताया गया है,[2] अतः १३०८० वि० पू० पर्यन्त शक्र ने देवेन्द्रपद ग्रहण नहीं किया था, यह पद उसे १२२०० वि० पू० के निकट प्राप्त हुआ। इन्द्र वृत्रवध के अनन्तर अपने को निर्बल समझकर दूर भागकर छिप गया।[3] अश्विनी सरस्वती आदि ने ढूढ़कर उपचार करके इन्द्र के दौर्बल्य को दूर किया।[4]

केशीवध—इन्द्र ने केशी दानव का वध किया था, जो देवसेना को पराजित कर चुका था—

> बिभेद राजन् वज्रेण भुवि तन्निपपात ह।
> पतता तु तदा केशी तेन वज्रेण ताडितः॥[5]
>
> (महा० ३।२२३।१४)

बलिकृत इन्द्रपराजय—किसी प्राचीन इतिहासपुराण के आधार पर हरिवंशपुराण ने अतिविस्तार से भविष्यपर्व अध्याय ४८ से ६४ पर्यन्त विस्तार से देवासुरयुद्ध और बलिद्वारा इन्द्रपराजय का वर्णन है। स्पष्ट ही

---

१. असुरा पणयो नाम रसापारनिवासिनः। गास्तेऽपजह्रुरिन्द्रस्य न्यगूहंश्च प्रयत्नतः प्राहिणोत्तत्र दूत्येऽथ सरमां पाकशासनः। शतयोजनविस्ताराम् अतरत्तां रसा पुनः। यस्याः पारे परे तेषा पुरमासीत्सुदुर्जयम्। पदानुसारिपद्धत्या रथेन हरिवाहनः। गत्वाजघान च पणीन् गाश्च ताः पुनराहरत्॥ (बृहद्दे० ८।२४-३६)

२. दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि (महा० उद्योग० ७।१५)

३ इन्द्रो ह यत्र वृत्राय वज्रं प्रजहार। सो बलीयान् मन्यमानो—बिभ्यन्निलयांचक्रे स परां परावतो जगाम। देवा...तमन्वैष्टुं दधिरे
(श० ब्रा० १।६।४।१-२)

४. तावश्विनौ च सरस्वती च इन्द्रियं वीर्यं नमुचेराहृत्य तदस्मिन् पुनरधुस्तं पाप्मनोत्रायन्त (श० ब्रा० ।२।७।१।१४)

५ विक्रमोर्वशीयनाटक मे सकेत है कि केशीवध पुरूरवा के समय मे हुआ। द्रष्टव्य—प्रथम अक...वयस्य केशिनाहृतामुर्वशी नारदाद् उपश्रुत्यप्रत्याहरणार्थं यस्या शतक्रतुना गन्धर्वसेना।

हरिवंश में कहा गया है कि यह इतिहासपुराण (प्राचीन) कवियों (ऋषियों) द्वारा प्रोक्त है—

शृणु राजन् कथां दिव्यामर्चितामृषिपुङ्गवैः।
पुराणे कविभिः प्रोक्तां ब्रह्मोक्तां ब्रह्मणेरिताम् ॥[१]

'यह दिव्यकथा (इतिहास) महान् ऋषियों द्वारा पूजित, पुराणों या प्राचीन कवियों द्वारा तथा वेद एवं ब्राह्मणग्रन्थो द्वारा कथित है।'

हिरण्यकशिपु के मरने के पश्चात् प्रह्लाद और विरोचन ने त्रैलोक्य का शासन किया। बलि के समय तक त्रैलोक्य (भूमण्डल) पर असुरों का वर्चस्व रहा।[२] उस समय तक किसी देवपुरुष मे शक्ति नही थी वह असुर राज्य को हथिया सके. असुरों ने बलि वैरोचनि का बडे धूमधाम से राज्य पर दिव्य अभिषेक किया[३] उस समय (१२००० वि० पू०) तक ससार के देशो पर दैत्येन्द्रों का शासन था।[४]

युद्ध के संनद्ध दैत्येन्द्रों के रथो मे एकएकसहस्र ऋक्ष (रीछ), गर्दभ उष्ट्र, व्याघ्र आदि जुते होते थे।[५] उनके रथ कृष्ण, नील, लौह, स्वर्ण, राजन आदि धातुओं एवं व्याघ्रचर्म आदि से मण्डित होते थे।[६] बलिविजयार्थ जिन दैत्य दानवो ने प्रमुखता से भाग लिया, वे थे दानवबल, बाणासुर, नर्मुचि, मयासुर, पुलोमा. हयग्रीव, शम्बर, प्रह्लाद, विरोचन कुजम्भ, असिलोमा, वृत्र, एकचक्र राहु, विप्रचित्ति. केशी, वृषपर्वा इत्यादि।

दैत्य-दानवों के अस्त्र शस्त्र, कवच, रथादि मे हिरण्य (सुवर्ण) का प्रयोग

---

१. हरि० (३।४८।६)

२ त्रैलोक्यमासीदखिल जगत्स्थावरजंगमम्। (हरि० ३।४८।२५)

३. अभिषेकेण दिव्येन बलिं वैरोचनिं तथा।
दैत्याधिपत्ये दितिजास्तदा सर्वेऽभ्यपूजयन् ॥ (हरि० ३।४८।२०)

४. तेजस्विना सुरारीणां दैत्येन्द्राणां मनस्विनाम्।
गणाः सुबहुशो राजन् देशे देशे सहस्रशः ॥ (हरि० ३।४८।१६)

५. युक्तमृक्षसहस्रेण रथमारुह्य वीर्यवान्।
रथो व्याघ्रसहस्रेण युक्तः परमवेगवान्।
उष्ट्रसहस्रेण संयुक्त वायुवेगिना ॥ (हरि० ३।४६।३३,३० तथा ३।४६।४)

६. नीचायसमयं घोरं वायसाकं सुदुर्जयम्। (३।४६।३३)

अनेकशः होता था ।[1] अतः असुर स्वर्ण का अधिक प्रयोग करते थे । इस युद्ध में निम्न दैत्यों दानवों ने निम्न देवों से घोर संघर्ष किया—

असुर	देव
नमुचि	धर (वसु)
मयासुर	त्वष्टा आदित्य
पुलोमा	वायु
हयग्रीव	पूषा
शम्बरासुर	भग
विरोचन	विष्वक्सेन
कुजम्भ	अश, अश्विनीकुमार
एकचक्र	रणाजि
बलासुर	मृगव्याध
राहु	अजैकपाद्
केशी	सुधूम्राक्ष
वृषपर्वा	निकुम्भ (विश्वेदेवे)
प्रह्लाद	काल[2]

यहा काल संभवतः यमराज का नाम है, युद्ध मे प्रह्लाद की विजय हुई और यमराज परास्त होकर युद्ध से भाग गये ।[3]

अनुह्लाद ने धनाध्यक्ष[4] (कुबेर नही) को और विप्रचित्ति ने वरुण को परास्त किया । इस युद्ध मे देवसेना असुरसेना से बुरी तरह परास्त हुई और इन्द्र बलि से परास्त होकर पलायन कर गया[5] और बलि दैत्यों का इन्द्र

---

१. सर्वे हिरण्यकवचाः, जाम्बूनदविचित्राङ्गाः, सर्वकांचनसंयुक्तम् दिव्यस्तत्र केतुर्हिरण्मयः (हरि० ३।४८।४६)

२. कालप्रह्लादयोर्युद्धमभवद् यादृश पुरा ।
तादृशं सर्वलोकेषु न भूतं न भविष्यति ।। हरि० (३।५६।१०२),

३. प्रह्लादस्त्वथ वृद्धोऽत्र कालस्त्वपसृतो रणात् । (हरि० ३।५९।१०२-३)

४. देवयुग में वैश्रवण कुबेर का जन्म नही हुआ था, किसी अन्य यक्षाधिपति को यहां पुराण मे भ्रम से कुबेर बना दिया है । (द्र० हरि० ३।६० अध्याय)

५. अपयातो रणाच्छक्रः सार्धं सर्वैः सुरोत्तमैः । (हरि० ३।६४।२६)

(सम्राट्) बन गया।[1] बलि देवों के लिए अजेय था।[2]

विष्णु का जन्म—इस युद्ध के समयपर्यन्त जिसमें देवों की ओर पराजय हुई थी, विष्णु, जो अदिति का द्वादश (बारहवें) और अन्तिम पुत्र था, उसका जन्म नहीं हुआ था, अतः विष्णु आयु में अनेक शताब्दियों छोटे थे।

सभी देवगण परास्त होकर अपने परमपिता परमेष्ठी की शरण में गये, जिसको 'आदित्यालय' कहा जाता था, यह स्थान क्षीरसागर (कैस्पियन) के उत्तर में 'अमृत' नाम का स्थान था, जहां पर चिरकाल तक प्राणी मरता नहीं था—

क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि देवताः।
अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः॥ (हरि० ३।६७।६)

बहुत दिनतक देवगण कश्यप की शरण मे रहे और दैत्यों की पराजय हेतु विचारविमर्श करते रहे। कुछ समय के अनन्तर अदिति द्वारा विष्णु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

विष्णु का समय—मिस्रीकालगणना में—भारतीयकालगणना के अनुसार विष्णु का जन्म सप्तम परिवर्तयुग—११८४० वि० पू० के अनन्तर हुआ अर्थात् आज से लगभग १४००० वर्ष पूर्व हुआ। परन्तु पं० भगवद्दत्त ने यूनानी इतिहासकार हेरोडोट्स के आधार पर विष्णु का जन्म विक्रम से लगभग १८५०० वर्ष पूर्व माना है।[3]

इस सम्बन्ध में हमें शंका है कि प० भगवद्दत्त ने मिस्री और यूनानी लेखकों द्वारा उल्लिखित हरकूलीज की ठीक पहिचान नहीं की है। मिस्री विद्वानों ने ही हेरोडोट्स को बताया था कि मनु से सैथोज तक ११३४० वर्ष व्यतीत हुये थे यह सावर्णि मनुओं में से एक था, जो मिस्र का आदिम राजा हुआ। वैवस्वतमनु, सावर्णिमनु और विष्णु—सभी प्रायः समकालिक थे, अतः उपर्युक्त द्वादश देवान्तर्गत हरकुलीस विष्णु नहीं, किसी पूर्वकाल (पूर्वमन्वन्तर) का कोई देव होना चाहिये, जैसे कि पुराणों मे उल्लखित है कि पूर्वमन्वन्तरों में अनेक बार द्वादशदेव हो चुके थे, तथा चतुर्थ व पंचममन्वन्तर तामस और औत्तम में तुषिता और विकुण्ठा के पुत्र

१. बलीन्द्रो विबभौ दैत्यः। (हरि० ३।६४।३३)

२. अजेयस्त्रिदशैः सर्वैर्बलिर्दानवसत्तम। (हरि० ३।६६।१४)

3. From Pan to this period, they count a still longer time; and even from Baccus, who is the youngest of the three, they reckon fifteen thousand years (Herodotus p. 189).

सत्य या हरि नाम के द्वादश पुत्र हुये थे। अतः द्वादशदेव अनेक बार हो चुके हैं, इसी कारण मिस्री या हेरोडाट्स और पं० भगवद्दत्त भ्रम मे पड़ गये। मिश्रीलोगों द्वारा उल्लिखित प्रथम द्वादशदेव १६५०० वर्ष पूर्व तामस मन्वन्तर मे हुये थे, जिनमें वैकुण्ठ 'हरि' को पूर्वजन्म का विष्णु बताया गया है, अतः यह १७५०० वि० पू० का समय वैकुण्ठ 'हरि' (हरकुलीज) का था न कि आदित्य विष्णु का। विष्णु का समय अन्य प्रमाणों से ११८४० वि० पू० के पश्चात् ही सिद्ध होता है, इसमें कोई शंका नहीं।

विप्रचित्ति और बाणासुर (B..ccusand Pan) का समय भी इन्द्र और विष्णु के आसपास ही था, अतः या तो मिश्रीगणना मे कुछ भ्रम है या प० भगवद्दत्त की पहिचान उचित नही।

देवराज्यस्थापना में विष्णु का सहाय्य

असुरो के सहार, उनके राज्य के पतन और देवराज्य की स्थापना और इन्द्र को महेन्द्रपदप्राप्ति में विष्णु ने परमसहायता की। बलिबन्धन मे विष्णु का प्रधान हाथ था। किस प्रकार विष्णु ने वामन बनकर बलि[1] को छला और पुनः त्रिविक्रमरूप धारण करके परमपराक्रम किया, इसका उल्लेख ऋग्वेद के मन्त्रो तक मे है।[2] वंचित बलि को सुतलनाम के तल मे जाना पडा।[3] यह सुतल योरोप के डेनमार्क आदि देश होने चाहिये, जहा आज भी असुरो के नाम पर देशनाम विख्यात हैं।

वामनविष्णु के देवसहाय्य का उल्लेख शतपथादिग्रन्थों मे मिलता है—'असुरा मेनिरेऽस्माकमेवेदं खलु भुवनमिति। ते होचुः हन्तेमा पृथिवी विभजाम......। ते हासुरा असूयन्ततेहवोचुर्यो विष्णुरभिशेते तावद्वो दद्म इति। वामनोवैविष्णुरास।'[4]

वृत्रवध के समय भी विष्णु ने इन्द्र की विशेष सहायता की। जब इन्द्र ने वृत्रासुर पर वज्रप्रहार किया, तब विष्णु इन्द्र के साथ थे—साथ ही दोनों स्पर्धाशील थे—इन्द्रो वृत्राय वज्रम् उदयच्छत्। त विष्णुरन्वतिष्ठत् ......। तौ ह प्रजापतावपृच्छेताम्। ताभ्यां हैतया व्युवाच—उभा जिग्यथुर्न

१. गुर्वर्थंमे प्रयच्छस्व पदानि त्रीणि दानव (हरि० ३।७१।११)
२. इद विष्णुविचक्रमे त्रेधा निदधे पदम (ऋ० १।२२।१७)
३. सुतलं नाम पातालं तत्र त्वं सानुगो वस।
सर्वदैत्यगणैः सार्धं मत्प्रसादान्महासुर ॥ (हरि० ३।७२।४०)
४. श० ब्रा० (१।१।१।७।३४)

पराजयैथे न पराजिग्ये कतमश्चैनो: । इन्द्रश्च विष्णुर्यद् अस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितद् ऐरयेथाम् ।।[1]

विष्णु ने भयशील इन्द्र के भय को दूर कर विजयश्री प्राप्त कराके महेन्द्रपद दिलवाया । (ब्र० श० ब्रा० २।४।१२।३-५) ।

द्वादश देवासुरयुद्ध

द्वादश देवासुरसंग्रामों का कालक्रम

पुराणों मे द्वादश देवासुर महासंग्रामों का उल्लेख है जो दशयुग[2] (३६०० वर्ष) पर्यन्त होते रहे । इस सम्बन्ध मे प० भगवद्दत्त का मत आलोच्य है—

१. पांचवां संग्राम बृहस्पति की स्त्री तारा के कारण हुआ था । इसलिये इस संग्राम का नाम तारकामय है । यह संग्राम सोम के काल मे हुआ था, अतः यह संग्राम त्रेतायुग के आरम्भ अथवा सत्ययुग के अन्त मे हुआ ।[3]

२. छठा देवासुरसंग्राम बाण (ककुत्स्थ ऐक्ष्वाक) के राज्यारम्भ मे हुआ प्रतीत होता है । उसके पश्चात् अगले छः संग्राम लगभग पचासवर्ष के अन्दर ही अन्दर हो गये होंगे ।

३ मत्स्यपुराण के अनुसार ये संग्राम ३०० वर्ष रहे ।[4] वायुपुराण के अनुसार दशयुग तक रहे । शान्तिपर्व ३२।१४) के अनुसार—"युद्ध वर्षसहस्राणि द्वात्रिंशदभवत् किल ।" लगभग ३२ वर्ष का काल है ।[5]

प० भगवद्दत्त ने स्वयं लिखा है कि 'कश्यप और दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु के काल से लेकर बाणासुर के काल तक ये जगद्विख्यात युद्ध हुये ।[6]

पुराणो मे असुरो का राज्यकाल, देवासुरो का समय, इत्यादि का समय दशयुग बारम्बार कहा गया है –

---

१. जै० ब्रा० (२।२४२,२४३)

२. युगं वै दश (वायुपुराण ९७।७०)

३. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० ५५)

४ अथ देवासुरं युद्धमभूद्वर्षशतत्रयम् (मत्स्य० ३४।३७)

५. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० ६४)

६. वही, (पृ० ६५)

सख्यमासीत्परं देवानामसुरैः सह ।
युगाख्या दश सम्पूर्णा ह्यासीदव्याहतं जगत् ।
दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद्दशयुगं किल ।
अशपत्तु ततः शुक्रो राष्ट्रं दशयुगं पुनः ।[1]

अतः यह अत्यन्त प्रमाणिक वचन (इतिहास) है। हम पहिले ही द्वितीय अध्याय (भारतीयकालमान) मे प्रतिपादित कर चुके हैं कि वायु आदि के समय में ऐतिहासिक कालगणना परिवर्तों या युगो मे होती थी, इस युग का कालपरिमाण ३६० वर्ष था, अतः १० युग का अर्थ हुआ ३६०० वर्षपर्यन्त देवासुरयुद्ध होते रहे और इतना ही समय असुरों के राज्यकाल का था। युगारम्भ दक्ष प्राचेतस और परमेष्ठी प्रजापतिकाश्यप से अर्थात् १४००० वि० पू० से १०४०० वि० पू० पर्यन्त असुरों का राज्य रहा और इसी कालावधि के मध्य में देवासुरयुद्ध हुये। अत. द्वादश देवासुरमहासंग्रामों को ३०० वर्ष या ५० वर्ष के अन्दर सीमित करना कोरी कल्पना ही मानी जायेगी। मत्स्यपुराण मे अन्तिम (द्वादश) देवासुरसंग्राम का समय ही ३०० वर्ष लिखा है, इस युद्ध मे नहुष का अनुज रजि विजेता था।[2] यह ३०० वर्ष द्वादश संग्रामो का औसत युद्धकाल है, अतः १२ देवासुर संग्रामो का समय (३००×१२=३६०० निश्चित है। हिरण्यकशिपु का समय १४००० वि० पू० से १३५०० वि० पू० के मध्य था और उसका प्रपौत्र बाणासुर १०४०० वि० पू० के आसपास दैत्येन्द्र था। पुराणों में हिरण्यकशिपु और बलि का राज्यकाल अविश्वसनीयरूप से अत्यधिक बताया गया है—एक अरब बहत्तरलाख अस्सी हजारवर्ष—हिरण्यकशिपु और बलिराज्य—एक अरब तीसलाख साठहजारवर्ष।[3] इतना दीर्घ-राज्यकाल, पुराणों मे क्यों लिखा गया, यह बुद्धि की समझ से परे है, परन्तु प्रमाणिक ब्रह्माण्ड० (२।३।७२।८८-९०), वायुपुराण (अध्याय ९७) में शक्र

---

१. ब्रह्माण्ड० (२।३।७२।९१,९२,९३)

२. रजेः पुत्रशत जज्ञे राजेयमिति श्रुतम्। (म० पु० २४।३५)
देवासुरमनुष्याणामभूत् स विजयी तदा।
अथ देवासुरं युद्धमभूद्वर्षशतत्रयम्। (म० पु० २४.३७)

३. हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुद बभौ। तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्तति:। अशीतिश्च सहस्राणि त्रैलोक्येश्वरोऽभवत्। पारम्पर्येण राजा तु बलिवर्षार्बुदं पुनः षष्टिश्चैव सहस्राणि त्रिंशच्च नियुतानि च।

के समान दैत्येन्द्र बलि आदि भी दीर्घजीवी थे, इन्द्र के समान विरोचन भी शताधिक वर्ष ब्रह्मचारी रहा। असुर भी पूर्वदेव थे। असुरों का राज्यकाल सहस्राब्दिशोपर्यन्त रहा।

पुराणों मे द्वादशसंग्रामों का यह क्रम मिलता है—(१) नारसिंह, (२) वामन, (३) वाराह (४) अमृतमन्थन (५) तारकामय (६) आडीबक (७) त्रैपुर (८) आन्धक (६) ध्वज (१०) वार्तघ्न (११) हालाहल और (१२) कोलाहल।[1] इनमे अन्तिम दो संग्राम षण्डामर्क से सम्बन्धित थे—

द्वौ च षंडामर्कान्तिकौ स्मृतौ। (ब्रह्माण्ड० २।३।७२.७२)

उपर्युक्त पुराणोल्लिखित क्रम उत्तरकाल मे परिवर्तित किया गया है, इसका एक कारण अवतारसम्बन्धी भ्रम है कि इन युद्धो का सम्बन्ध विष्णु के अवतारो से मान लिया गया।

पुराणों के प्रमाण से ही ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम देवासुर संग्राम वाराह था, जिसमे वाराह (शूकर) ने हिरण्याक्ष के दो टुकड़े कर दिये...

दंष्ट्रया तु वराहेण स दैत्यस्तु द्विधाकृतः (ब्रह्माण्ड० २।३।७२-७८)

द्वितीय संग्राम नारसिंह था, जिसमे नृसिंह या सिंह ने हिरण्यकशिपु को मारा। ये दोनों संग्राम वस्तुतः देवासुरसग्राम थे ही नही, उस समयतक आदित्य वयस्क नही हुये थे और शक्र और विष्णु का तो जन्म भी नही हुआ था, भाग्यवशात् दोनो असुरेन्द्र दो पशुओ (शूकर--वराह और सिंह) द्वारा मारे गये।

अनेक युद्धों का नेता या विजेता इन्द्र नही था, यथा त्रैपुर (सप्तम) और आन्धक देवासुरसग्रामो के विजेता महादेव थे, षष्ठ आडीबक युद्ध के विजेता ऐक्ष्वाक ककुत्स्थ थे, जिसमे विष्णु ने जम्भ (जर्मनों का पूर्वज) को मारा था। एकादश (कोलाहल और हलाहल) युद्धों का विजेता नहुष भ्राता रजि था, जिसमे षण्डामर्कदानवों का पतन हुआ।

पुराणो में जिसको द्वितीय, वामनदेवासुरसग्राम कहा है, वह बहुत कालान्तर पश्चात् सभवतः चतुर्थयुद्ध था। इन्द्र ने पचम तारकामयसंग्राम से सक्रिय भाग लिया। इस युद्ध का नाम 'तारकामय' क्यों पडा, इस सम्बन्ध मे पुराणों से आभास मिलता है कि बृहस्पति की पत्नी तारा के कारण हुआ, परन्तु इसमे सन्देह है। इसका नाम तारक और मय असुरो के नाम पर 'तारकामय' पड़ा होगा। तारक असुर मय का वशज था,

१. इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जयते पुरा। पूर्वमाडीबके युद्धे।
(ब्रह्माण्ड० २।३।६३)

जिसको कार्तिकेय ने मारा था। महाभारत में तारकामय को प्रथम देवासुर संग्राम माना है।[1] और प्रतीत होता है कि 'तारक' असुर (तथा मय) के नाम पर ही संग्राम का नाम 'तारकामय' पड़ा।[2] तदनन्तर 'तारक' के तीन पुत्र, एक ताराक्ष या तारकाक्ष हुआ, जिनका पुत्र हुआ 'हरि'।[3] अतः बृहस्पति पत्नी तारा से इस युद्ध का सम्बन्ध जोड़ना भ्रामक ही है। हरिवंश पु० (३।३।१६) में युद्ध का सम्बन्ध सोम से जोड़ा है—

राजसूयस्तु सोमेन श्रूयते पूर्वमाहृतः।
तस्यान्ते सुमहद् युद्धमभवत् तारकामयम्॥

हरिवंश मे ही वृत्रवध के अनन्तर तारकामय संग्राम माना है, वार्तघ्न दशम संग्राम था (वार्तघ्नो दशमो ज्ञेयः—वायु०), इस प्रकार तारकामय एकादश संग्राम मानना पड़ेगा—

वृत्ते वृत्रवधे तात वर्तमाने कृतेयुगे।
आसीत् त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः॥

(हरि० १।४२।१०)

अतः वतमान पुराणपाठों में देवासुरसंग्रामों का क्रम और नामादि एवं मूल कारण का ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता। हमारा विचार है कि तारक और मयदानव इस युद्ध के प्रमुख नायक थे, अतः इस संग्राम के नाम के मूल कारण मे असुरद्वयी ही थी।[4]

पं० भगवद्दत्त इस युद्ध का समय त्रेता के आरम्भ अथवा सत्ययुग के अन्त में मानते हैं। परन्तु हम 'कालमान' सञ्ज्ञक द्वितीय अध्याय मे सप्रमाण विवेचन कर चुके हैं कि ब्रह्माण्ड और वायु के वर्तमानपाठों में 'त्रेता' और विष्णुपुराण में द्वापरसञ्ज्ञा अधिकांशतः भ्रामक है यथा २८ व्यासों[5] को विभिन्न त्रेताओं और द्वापरों में माना है—

---

१. बभूव प्रथमो राजन् संग्रामस्तारकामयः। निर्जिताश्च तदा दैत्या दैवतैरिति नः श्रुतम् (कर्णपर्व ३३।४)

२. तारकस्य सुतास्त्रयः —ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव।
(कर्णपर्व ३३।५

३. तारकाक्षसुतो वीरो हरिर्नाम महाबलः। (वही, ३३।२७)

४. मयस्तु कांचनमयं त्रिनल्वान्तरमव्ययम्।
तारस्तु क्रोशविस्तारायामं वायसध्वजम (हरि० १।४३।२,८)

५. वायुपुराण (अ० २३)

चतुर्थे द्वापरे चैव व्यासोऽङ्गिराः स्मृतः ।
पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा ।।

पुराण में परिवर्त या युगसंज्ञा ही प्रमाणिक और सत्य थी, वह पाठ भी यत्र तत्र मिलता है यथा—

पंचदशेपरिवर्ते क्रमागते व्यासणास्तु यदा व्यासः ।[1]

'त्रेता' पद का भ्रामक प्रयोग भी द्रष्टव्य है—

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह ।[2]

निम्न श्लोक मे 'युग शब्द का प्रयोग उचित है—

चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा ।[3]

अतः पं० भगवद्दत्त 'युग' का परिमाण न जानने के कारण युगवर्षसंख्या का निर्णय न कर सके और त्रेतादिसम्बन्धी भ्रमपाश में आबद्ध रहे अतः बलिबन्धन सप्तमयुग (११८४० वि० पू०) और वृत्रवध अष्टमयुग मे हुआ था ।[4]

चतुर्थ देवासुरसंग्राम अमृतमन्थन माना गया है, कुछ पुराणपाठों के अनुसार इस युद्ध मे इन्द्र ने प्रह्लाद को मारा तो कुछ के अनुसार जीता थे, दोनों ही पाठ भ्रामक प्रतीत होते हैं ।[5]

इन्द्र ने सम्भवतः तारकामय, वार्तघ्न, हलाहल और कोलाहल और ध्वजसज्ञक पांचसंग्रामो में भाग लिया और नेतृत्व तो और भी कम युद्धों मे किया । आडीबक (षष्ठ) देवासुरयुद्ध का नेता ऐक्ष्वाक ककुत्स्थ अयोध्यापति था, यह हम देख चुके हैं । दशम, देवासुर (वार्तघ्न) मे ही इन्द्र ने विशेष उत्कर्ष प्राप्त किया, जिससे उसे महेन्द्र[6] पद की प्राप्ति हुई । इन्द्र ने वृत्र को भी संधिभंग करके मारा था ।[7] जैसाकि नमुचि क

---

१. वायु० (पु० २३);

२. ब्रह्माण्डपु० (२।३।७३।८८)

३. वही (२।३।७३।८९)

४. बलिसंस्थेषु त्रेतायां सप्तमे युगे । (वायु०)

५. प्रह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमंथने (ब्रह्माण्ड० २।७२।७६)

६. इन्द्रो वै वृत्रमहन्त्सोऽन्यान् देवानत्यमन्यत । स महेन्द्रोऽभवत् । (मै० सं० ४।६।८)

७. स वृत्र इन्द्रमब्रवीत् मा मा अन्योऽन्यमवधीदिति । तौ वै समामेतामनभिद्रोहाय । (वही, ४।३।४)

मारा।[1] सत्ताप्राप्ति एवं समर्थन होने के कारण इतिहासपुराणों मे इन्द्र के उक्त दोषों की अधिक चर्चा नही हुई। इससे पूर्व नवम ध्वजसंज्ञकदेवासुर संग्राम में भी इन्द्र ने मायाच्छन्न (छिपकर) प्रथम दानवेन्द्र विप्रचित्ति का वध किया था।[2]

अतः उपर्युक्त देवासुरसंग्रामो का क्रम और कालक्रम निश्चित करना एक दुरूह कार्य है, जिसमें अभी महान् अनुसंधान कर्त्तव्य है।

अनुमान से इनका यथोचित क्रम यह प्रतीत होता है—

१. प्रथम वाराह देवासुरसंग्राम
२. द्वितीय नारसिंह देवासुरसंग्राम
३. तृतीय वामन देवासुरसग्राम
४. चतुर्थ अमृतमन्थन देवासुरसंग्राम
५. पचम तारकामय देवासुरसंग्राम
६. षष्ठ आडीबक देवासुरसग्राम
७. सप्तम त्रैपुर देवासुरसग्राम
८. अष्टम आन्धक देवासुरसग्राम
९. नवम ध्वज देवासुरसंग्राम
१० दशम वार्तघ्न देवासुरसंग्राम
११. एकादश हालाहल देवासुरसग्राम
१२. द्वादश कोलाहल देवासुरसग्राम

---

१. ताण्ड्यब्रा० (१२।६।४)

२ हतो ध्वजे महेन्द्रेण मायाछन्नश्चायोधयत्।
ध्वजे लक्ष्य समाविश्य विप्रचित्तिर्महाभुजः॥ (वायु०)

१. मनवे ह वै प्रातः —तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे स हास्मै वाचमुवाद । बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसी त्योघ इमाः सर्वा प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मि ।

(श० ब्रा० १।८।१।३)

२. विवस्वतः सुतो राजन् महर्षिः सुप्रतापवान् ।
चीरिणीतीरमासाद्य मत्स्यो वचनमब्रवीत् ।
तस्माद् जलौघान्मह्तो मज्जन्त मां विशेषतः ।
मनुर्वैवस्वनोऽगृह्णात् तं मत्स्यं पाणिना स्वयम् ।।

(महाभारत ३।१८७)

ततः स मनुना क्षिप्तो गङ्गायामप्यवर्धत ।
यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः

भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना ।। (मत्स्यपुराण, प्रथम अध्याय)

मनुसन्तति —इतिहासपुराणों के अनुसार मनु के नौ पुत्र और एक कन्या इला[1] हुई । इला (इडा) स्त्री और पुरुष दोनों ही रूप मे हो जाती थी, पुरुषरूप में उसका नाम सुद्युम्न[2] होता था । इतिहासपुराणों के कुछ वर्तमानपाठो मे मनु के नौ पुत्रों के नामों मे पर्याप्त अन्तर है—

हरिवंश	वायुपु०	ब्रह्माण्डपु०	मत्स्यपु०	विष्णुपु०	महाभारत	भागवत
इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	वेन	इक्ष्वाकु
नाभाग	नभाग	नृग	कुशनाभ	नृग	धृष्णु	नृग
धृष्णु	धृष्ट	धृष्ट	अरिष्ट	धृष्ट	नरिष्यन्त	शर्याति
शर्याति	शर्याति	शर्याति	धृष्ट	शर्याति	नाभाग	दिष्ट
नरिष्यन्	नरिष्यन्त	नरिष्यन्त	नरिष्यन्त	नरिष्यन्त	इक्ष्वाकु	धृष्ट
प्रांशु	प्रांशु	प्रांशु	करूष	प्रांशु	करूष	करूष
नाभागा-रिष्ट	नाभागो-रिष्ट	नाभागो-दिष्ट	शर्याति	नाभाग	शर्याति	नरिष्यन्त
करूष	करूष	करूष	पृषध्र	दिष्ट	पृषध्र	पृषध्र
पृषध्र	पृषध्र	पृषध्र	नाभाग	करूष	नाभागा-रिष्ट	नभग

१. ततः सवत्सरे यांचित् सम्बभूव—सैषा निदानेन यदिडा (श० ब्रा० १।८।१)
२. इलानामकन्या बभूव । सैव च मित्रावरुणयोः प्रसादात्सुद्युम्नो नाम मनोः पुत्रो मैत्रेय आसीत् (विष्णु० ४।१।९-१०)

३

वैवस्वतमनुवंशविस्तार

समय

वैवस्वतमनु, वैवस्वतयम के अग्रज थे, दोनों भ्राताओं का जन्म प्रसिद्ध जलप्रलय से बहुत समयपूर्व हो चुका था, इसका संकेत शतपथब्राह्मण, पुराणों एवं पारसीधर्मग्रन्थ अवेस्ता में है। वैवस्वतयम पुराणों मे षष्ठयुग[1] (१२२०० वि० पू० से ११७४० वि० पू०) के व्यास थे। जलप्रलय से पूर्व यम १२०० वर्षपर्यन्त ईरान पर शासन कर चुके थे।[2] अत: यम का जन्म तृतीय युग[3] मे अवश्य हो चुका था। जलप्रलय का समय १२२०० वि० पू० के पश्चात् ही समझना चाहिये, अतः मनु का जन्म १२५६० वि० पू० ही हो चुका था, प्रलय के समय मनु की आयु ६०० वर्ष के आसपास अवश्य होगी, अत: इनका जन्म १२५६० वि० पू० के लगभग हुआ। जलप्रलय का भी यही समय था। जलप्रलय कितने वर्ष रही, यह ज्ञात नही, परन्तु अवेस्ता के उल्लेख से अनुमान होता है कि ४० वर्षों से बहुत अधिक थी।[4]

वैवस्वतद्वयी के समय मे आई जलप्रलय एक ध्रुवसत्य ऐतिहासिक घटना थी, इसका उल्लेख हिब्रू (यहूदी), बैबीलन, सुमेरिया, ग्रीक एवं अन्य देशो प्राचीन इतिहास मे मिलता है। भारतीयवाङ्मय मे इसके प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

---

१. परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा प्रभुः। (वायु०)

२. फर्गद द्वितीय, अवेस्ता (आर्यों का आदिदेश, पृ० ७४-७६ पर उद्धृत)

३. तृतीययुग (परिवर्त) = १२९२० वि० पू० प्रारम्भ

४. हर चालसवें साल मनुष्यो और पशुओ के हर जोड़े को दो बच्चे होते थे, एक नर और एक मादा। यिम के बनाये उस वर में बड़े सुख से जीवन बिताते थे। (वही पृ० वही)

वैदिकग्रन्थों के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि पुराणों का नाभागोदिष्ट या नाभाग या नभाक का शुद्ध नाम नाभानेदिष्ट था,[1] नभक पृथक् पुत्र था और दिष्ट पृथक्। विष्णुपुराण में दोनों को मिलाकर नाभागोदिष्ट कर दिया है। शर्याति का वैदिकग्रन्थों में शर्यात[2] नाम मिलता है। सभी प्रमाणों से मनुपुत्रों का शुद्धक्रम और शुद्धनाम इस प्रकार निश्चित ज्ञात होते हैं—

१. इक्ष्वाकु, २. नृग ३. धृष्ट, ४. शर्याति, ५. नरिष्यन्त, ६. प्रांशु, ७. नभाक,[3] ८. करूष और ९. पृषध्र।

सभी प्रमाणों से इक्ष्वाकु मनु के ज्येष्ठ और प्रमुख पुत्र सिद्ध होते हैं।[4]

मनु का एक नाम 'श्राद्धदेव'[5] भी था। श्राद्ध का प्रवर्तन करने के कारण उनका यह नाम प्रथित हुआ।[6] मनु के यज्ञ, मित्र, वरुण[7] और इन्द्र[8] ने कराये थे, इससे यह सिद्ध होता है कि मनु के पितृव्य आयु में लगभग उनके तुल्य ही थे और प्रारम्भिक बाल्यावस्था में ही थे, वरुण और इन्द्र का राज्याभिषेक मनु के राज्याभिषेक के बहुत काल पश्चात् हुआ। नहुष अनुज रजि को शक्र (इन्द्र) पितृतुल्य मानता था, इससे ही मनु और इन्द्र की आयु और राज्यकाल का समय समझा जा सकता है। नहुष, मनु की पाँचवी पीढ़ी में हुआ था।

---

१ मैत्रायणी संहिता (१।५८) (क) हरि० (१।१०।१-२), (ख) वायु० (८५।४), (ग) ब्रह्माण्ड० (३।६०।२-३), (घ) मत्स्य० (११।४१), (ङ) विष्णु० (४।१।७), (च) महा० (१।७०।१३-१४), (छ) भागवत० (९।१।१२)

२. शर्यातो वै मानवः (जै० ब्रा० ३।१५९)

३. बृहद्देवता ३।१२८ में नभाक और उसके पुत्र को ३।५६ मे नाभाक कहा है।

४ मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् (गी० १०।४)

५. भागवत (८।२४।११) तथा हरिवंश (१।१८।७०-७१)

६. प्रवर्तयति श्राद्धानि नष्टे धर्मे प्रजापतिः।
तस्मादेवं स्वधर्मेण श्राद्धदेवं वदन्ति वै। (आप० धर्म० २।७।१।१)

७. तत्रापि पाकयज्ञेनेजे—तथा मित्रावरुणौ संजग्माते'।
(श० ब्रा० १।८।१।११)

८. इन्द्रः पत्निया मनुमयाजयत् (तै० सं० ६।६।६१)

वैवस्वत मनु ने सर्वप्रथम भारतवर्ष में अयोध्यानगरी की स्थापना की थी।[1]

इक्ष्वाकु के शतपुत्र

पुराणों में इक्ष्वाकु के सौ पुत्र कथित हैं, जिनमें विकुक्षि, निमि, शकुन, विराट्, दण्डक और दशाश्व—इन छः के नाम ही ज्ञात होते हैं।[2] शकुन आदि पचास पुत्र उत्तरापथ या उत्तरीदेशों के शासक हुये और विराट् आदि ४८ पुत्र दक्षिणापथ के शासक हुये। विकुक्षि अयोध्याशाखा का उत्तराधिकारी हुआ और निमिमैथिल जनकवंश का प्रवर्तक था। शकुनि के विषय में कोई इतिवृत ज्ञात नहीं है। पं भगवद्दत्त ने लिखा है, "इसी प्रकार विराट्प्रमुख अड़तालीस दक्षिणापथ के शासक हुये। इस बात में हमे कुछ सन्देह है।"[3] पण्डितजी का यह सन्देह निराधार है। इतिहासपुराणों से ज्ञात होता है कि इक्ष्वाकु के न्यूनतम दो पुत्र दक्षिणापथ के शासक थे। दण्ड या दण्डक दक्षिणापथ का शासक था, जो इक्ष्वाकु का एक अवरपुत्र था, यह इतिवृत रामायण उत्तरकाण्ड, सर्ग ७९ में विस्तार से वर्णित है, तदनुसार दण्डक विन्ध्यपर्वत के उस पार का शासक था—

राम तस्य च दण्डेति पिता चक्रेऽल्पमेधसः।
विन्ध्यशैवलयोर्मध्ये राज्य प्रादादरिंदम ॥[4]

उत्तरकाण्ड (७।७९।१८) में दण्डक के पुरोहित का नाम उशना भार्गव बताया गया है, जो नामसाम्यजनित भ्रम है, वस्तुतः उसका पुरोहित कोई भार्गव ब्राह्मण होगा, उशना के पुरोहित होने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता, वे असुरो के प्रधान पुरोहित थे। भार्गवकन्या से व्यभिचार एवं उनके शाप के कारण दण्डक का विनाश हुआ।[5] इसी दण्डक के नाम से वन

---

१. अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता। मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥ (रामा० १।५।३)

२. ब्रह्माण्ड० (२।३।६३।८-११), विष्णु० (४।२।१२-१३)

३. भा० बृ० इ०, भा० १, (पृ० ६०)

४. रा० (७।७९।१५,१६)

५. रा० (७।८०), भार्गवस्य सुतां विद्धि देवस्याक्लिष्टकर्मण.। अरजां नाम राजे.इ ज्ये.ठामाश्रमवासिनीम्।

का नाम दण्डकारण्य विख्यात हुआ ।[1]

दशमपुत्र दशाश्व—दक्षिणापथपति

इक्ष्वाकु का दशमपुत्र दशाश्वसंज्ञक था, जो माहिष्मती का शासक था ।[2] इसकी वंशावली, अनुशासनपर्व (द्वितीय अध्याय) में दी हुई है,[3] जो किसी दृष्टि से भी पूर्ण नहीं कही जा सकती—

१. वैवस्वतमनु	६. सुवीर
२. इक्ष्वाकु	७. दुर्जय
३. दशाश्व	८. इद्रवपुः
४. मदिराश्व	९. दुर्योधन'
५. धृतिमान्	

उपर्युक्त दुर्योधन ऐक्ष्वाक अतिपुरातन राजा प्रतीत होता है, जिसकी कन्या सुदर्शना का विवाह 'अग्नि' संज्ञक ऋषि से हुआ था, जिसको भ्रम से उत्तरकाल मे भौतिक 'अग्नि' बना दिया गया ।[4] अग्नि और सुदर्शना का पुत्र 'सुदर्शन आग्नेय' कहलाया । प्रसिद्ध राजा नृग के पितामह ओघवान् राजा की पुत्री ओघवती का विवाह आग्नेय सुदर्शन से हुआ ।

उपर्युक्त ऐक्ष्वाक दुर्योधन का वंशज पाण्डवसमकालिक माहिष्मतीराज नील था, भ्रम से यहा सुदर्शना को इस नील की पुत्री बताया गया है ।[5] उपर्युक्त विवेचन का केवल यह तात्पर्य है कि अतिप्राचीनयुगों मे दक्षिणापथ में ऐक्ष्वाक राजाओं का शासन था ।[6]

---

१. ततःप्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुच्यते । (रामा० ७।८१।१९), दण्डक की राजधानी का नाम मधुमन्त था—पुरस्य चाकरोन्नाम मधुमन्तमिति प्रभो ।

२. दशमस्तस्यपुत्रस्तु दशाश्वो नाम भारत । माहिष्मत्यामभूद् राजा परमधार्मिकः (महा० १३।२।६)

३. अनुशा० (३।५।१३)

४. प्रतिजग्राह चाग्निस्तु राजकन्यां सुदर्शनाम् (अनुशा० २।३४)

५. सभापर्व (३१।३०)

६. अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद् वालिमथाब्रवीत् इक्ष्वाकूणामियं भूमिः स शैलवनकानना । (रामा० ४।१८।३,६) तुलना कीजिये—दितिस्त्वजनयत् पुत्रान् दैत्यांस्तात यशस्विनः ।
तेषामियं वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा ।। (रा० ३।१४।१५)

(अयोध्याशाखा—ऐक्ष्वाकवंश)

दीर्घतम वंशावली—परन्तु अपूर्ण

इतिहासपुराणों में सर्वाधिक पूर्णवंशावली केवल इसी ऐक्ष्वाक शाखा (अयोध्या) की मिलती है, जिसके भारतयुद्धपर्यन्त ९१ राजा और भारतोत्तर से कल्यन्त के २४ राजाओं के नाम मिलते हैं जिनमें सर्वान्तिम राजा सुमित्र था। इस प्रकार इक्ष्वाकु से सुमित्रपर्यन्त ११५ राजाओं के नाम कथित हैं, फिर भी यह वंशावली पूर्ण नही है, परन्तु यह भी एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि इक्ष्वाकु (१२५०० वि० पू०) से सुमित्र[1] (१८०० वि० पू०) तक इस वंश के लगभग डेढ़ सौ राजाओं ने लगातार दशसहस्रवर्षों से अधिक राज्य किया, इतना दीर्घतम शासनकरनेवाला एक राजवंश भारत या संसार मे संभवतः द्वितीय नही हुआ।

यह संभव है कि बीच बीच मे स्वल्प या दीर्घकाल के लिये इस वश का कुछ उच्छेद हुआ हो, एकाध सकेत पुराणों में मिलते हैं, जब सगर के पिता बाहु को परास्त करके हैहय तालजंघक्षत्रियो ने न्यूनतम बीसवर्ष अयोध्या राज्य पर अधिकार जमाये रखा, क्योंकि सगर का जन्म बाहु के निर्वासन काल में ही हुआ और जब उसने तालजघो को परास्त किया, तब निश्चय ही उसकी आयु २ वर्ष से अधिक होगी।[1] सगर ने दिग्विजय के पश्चात् विदर्भराज कन्या केशिनी से विवाह किया था।[2]

यह वंशावली पूर्ण नही है, इसके कारण वैदिकग्रन्थों से ढूढ़े जा सकते हैं, इस तथ्य की पुष्टि के लिये तीन चार उदाहरण ही पर्याप्त होगे। प्रथम जैमिनीयब्राह्मण (३।९४) और बृहद्देवता (५।१४) मे त्रिवृष्ण ऐक्ष्वाक का उल्लेख मिलता है, पुराणों में त्रिवृष्ण का नाम नही मिलता।[4] यदि त्रिधन्वा और त्रिवृष्ण एक ही हैं तो पृथक् बात है।[5] ऋग्वेद

---

१. इक्ष्वाकूणामयं वशस्तु सुमित्रान्तो भविष्यति (वि० ४।२२।९)

१. ब्रह्माण्ड० (२।३।४८ अध्याय)

२. ततो विदर्भराट् तस्मै स्वसुतां प्रीतिपूर्वकम्। केशिन्याख्यामनुरूपामनुरूपाय न्यवेदयत्॥ (ब्रह्माण्ड० २।३।४९।२)

३. पुरुकुत्सो दौर्गहणेजे ऐक्ष्वाको राजा (श० ब्रा० १३।५।४।५)

४. (क) भा० बृ० इ०, भाग १, पृ० ९९-१००
वृशो वै जान त्र्यरुणस्य त्रैवृष्णस्यैक्ष्वाकस्य राज्ञः पुरोहित आस (जै० ब्रा० ३।९४), ऐक्ष्वाकस्त्र्यरुणो राजा त्रैवृष्णो रथमास्थितः। (बृहद्दे० ५ (१४)

(१०।३३।४-५) में मान्धाता पौत्र सुहस्त्य के पुत्र कुरुश्रवण[1] की दानस्तुति वर्णित है। पुराणवंशावलियो में कुरुश्रवण का नाम कही भी दृष्टिगोचर नहीं होता। ऐतरेयब्राह्मण (८।१) में हरिश्चन्द्र को वेधा[2] का पुत्र कहा गया है, पुराणों में वेधा का नाम नहीं मिलता। ऋग्वेद में पुरुकुत्स को दौर्गह[3] और त्रसदस्यु को गैरिक्षित[4] भी कहा गया है। यह विवादग्रस्त विषय है कि दौर्गह या गैरिक्षित विशेषण हैं या वास्तविक नाम। दान-स्तुतियों में उल्लिखित विश्वमना वैयश्व (ऋ० ८।२३।१६), व्यश्व (८।२३।१६), कानीतपृथुश्रवा (ऋ० ८।४६) इत्यादि भी ऐक्ष्वाक राजा प्रतीत होते है, परन्तु पुराणों में इनमें से किसी का भी नाम नही मिलता। इससे यही तथ्य सिद्ध होता है कि पुराणोल्लिखित ऐक्ष्वाकवंशावली पूर्ण नहीं है, स्वयं पुराणों में भी कहा गया है कि इक्ष्वाकुकुल के केवल प्रधान या प्रसिद्ध राजाओं का ही उल्लेख किया गया है[5] अतः इक्ष्वाकुवंशावली सहित कोई भी वंशावली पूर्ण नहीं है।

इक्ष्वाकु का राज्यकाल

पुराणो के अध्ययन से आभास होता है कि इक्ष्वाकु राज्यकाल दीर्घ था, परन्तु प्रामाणिक उल्लेख नही मिलता, भविष्यपुराण में इक्ष्वाकु राज्यकाल ३६००० वर्ष बताया है, जिसका अर्थ है पूर्ण १०० वर्ष उनका राज्यकाल रहा।

इक्ष्वाकु को यद्यपि प्रजापति नही कहा गया, परन्तु वंशधर होने से वह वैवस्वतमनु से भी महान् प्रजापति और वंशविस्तारक शासक था। मनु ने परम्परा से इक्ष्वाकु को योग (कर्मयोग) का उपदेश दिया।[6] उसके नाम से उसके समस्त वंशज भारतोत्तरकालपर्यन्त 'ऐक्ष्वाक' कहे जाते थे, जो कि दशसहस्रवर्षपर्यन्त हुये।

---

१. कुरु श्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्

२. हरिश्चन्द्रो—ह वैधस ऐक्ष्वाको राजा (ऐ० ब्रा०)

३. न दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः (ऋ० ८।६५।१२)

४. पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रदस्योर्हिरण्यिनो—गौरिक्षितस्य क्रतुभिः (ऋ० ५।३३।७-१०)

५. एते इक्ष्वाकुभूपालाः प्राधान्येन मयेरिताः। (विष्णु० ४,४।११३)

६. मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् (गीता० १०।४)

नृग-नभाक=नाभाग

पुराणों में नृग का नाम बहुधा नभग या नाभाग मिलता है, नृग नाम केवल ब्रह्माण्डपुराण और विष्णुपुराण में ही मिलता है। इसी नृग या नभाक या नाभाग का पुत्र अम्बरीष महाप्रतापी कृतयुगीन सम्राट् था।[1] इसका षोडशराजोपाख्यान में उल्लेख है। आचार्य विष्णुगुप्त कौटल्य ने इसे चिरंजीवी कहा जिसने अतिदीर्घकालपर्यन्त शासन किया।[2] वैदिकग्रन्थो में इसे नाभाक अम्बरीष कहा। यह इन्द्र के समकालीन सम्राट् था।[3] अतः इसका समय १२००० वि०पू० था।

नाभाग का वंशवृक्ष पुराणों मे इस प्रकार मिलता है—

नभग (नभक)[4]
|
नाभाग
|
अम्बरीष
|
विरूप
|
पृषदश्व
|
रथीतर

अम्बरीष नभाक (नभाग) का पौत्र या वंशज था। अम्बरीष के वंशज विरूप, पृषदश्व और रथीतर प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टा ऋषि हुये, स्पष्ट है अम्बरीष के पश्चात् उसके वंशज प्रायेण ब्राह्मण हो गये और उनका क्षत्रियत्व (राज्य) समाप्त हो गया। पृषदश्व विरूप और रथीतर को आंङ्गिरस कहा

---

१. अम्बरीषं च नाभागम् (महा० १२।२९।१००)
२. अर्थशास्त्र (अ० ६) जामदग्न्यो रामो—नाभागो अम्बरीषश्च चिरं बुभुजाते महीम् ॥
३. अम्बरीषस्य संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठर ! अम्बरीषो हि नाभागिः (महा० १२।९८।२-३), मान्धातापुत्र अम्बरीष इस से पृथक् और उत्तरकालीन था।
४. बृहद्देवता (३।१२८)

गया है।[1] ये तीनों ऋग्वेद के सूक्तों के द्रष्टा हुये थे। रथीतर गोत्र के ब्राह्मण यास्काचार्य के समय तक प्रसिद्ध थे, यास्क और शौनक ने राथीतर नामक किसी आचार्य के मत उद्धृत किये हैं।

शर्यातिवंश

ऋग्वेद के सूक्त १०।९२ का द्रष्टा शर्यातमानव (मनुपुत्र) था।[2] पुराणों मे इसका नाम बहुधा शर्याति मिलता है, जबकि वैदिकपाठ शर्यात है।[3] शर्याति मानव के पुरोहित भृगुपुत्र च्यवन ऋषि थे, जिन्होने उसका ऐन्द्र महाभिषेक किया था।[4] च्यवन ऋषि ने अश्विनीकुमारों को सोमभाग का अधिकारी बनाया, इससे पूर्व अश्विनीकुमार वृद्ध च्यवन को युवा कर चुके थे। शर्याति की पुत्री सुकन्या का विवाह च्यवन से हुआ था। पुराणों में शर्यातिमानव का केवल निम्न वंशवृक्ष मिलता है—

शर्याति
|
आनर्त तथा सुकन्या
|
रेव
|
रेवत
|
ककुद्मी

शर्याति के भयाक्रान्त वंशज पुण्यजन नामक राक्षसों से परास्त होकर विद्रुत शर्यात क्षत्रिय ब्राह्मण हो गये। आनर्त वर्तमान गुजरात का नाम था, जहां पर कुशस्थलीनगरी शार्यातों की राजधानी थी रेवत ककुद्मी की पुत्री रेवती को वासुदेव बलराम की पत्नी कहा गया है जो निश्चय ही

---

१. वायु० (८६।१००) तथा ब्रह्माण्ड० (२।३।६३।७)—
एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः॥

२. यज्ञस्य शर्यातो मानवो वैश्वदेवं तु जागतद् (ऋक्सर्वा० पृ० ३८)

३. शर्यातो वै मानवः (जै० ब्रा० ३।१५६)

४. एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण च्यवनो भार्गवः शार्यातं मानवम् अभिषिषेच (ऐ० ब्रा० ८।२१)

नामसाम्य के आधार पर बनाया गया गपोड़ा है।[1] ककुद्मी रैवत और बलदेव में न्यूनतम ६००० वर्षों का अन्तर था।

धृष्ट से धाष्टिक क्षत्रिय

मनुपुत्र धृष्ट के तीन पुत्र हुये—धृतकेतु, चित्रनाथ और रणधृष्ट—वे सभी धार्ष्टिक क्षत्रिय कहलाये।

करूष से कारूष क्षत्रिय

मनुपुत्र करूष का द्वितीय नाम पृषध्र था। पुराणपाठों में कहीं-कहीं पृषध्र और करूष को पृथक्-पृथक् बताया गया है। करूष के वंशज कारूष क्षत्रिय कहलाये।[2] च्यवन के शाप से पृषध्र शूद्र हो गया। रामायण मे ताटकावध के प्रसग मे करूष का उल्लेख है।[3] महाभारत मे कारूषो का बहुधा उल्लेख है।[4]

नरिष्यन्तवशज शक

पुराणों में मनुपुत्र नरिष्यन्त के वंशज शक कहे गये है।[5] भारतवर्ष मे नरिष्यन्तवश का सर्वथा लोप हो गया। इसके वशज शकक्षत्रिय ईरानादि देशों मे राज्य करते थे।

पृषध्र

मनुपुत्र पृषध्र के वंशजो को ही रामायण (१।२४।२६) में सभवत: मलद कहा गया है, क्योंकि करूष और मलद साथ-साथ रहते थे और च्यवन के शाप से पृषध्र वशज शूद्र हो गये थे।[6]

---

१. कन्यां तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम्। (ब्रह्माण्ड० २।३।३३।२४)
२. करुषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः। (ब्रह्माण्ड० २।३।६१।२)
३. मलदाश्च करूषांश्च ताटका दुष्टचारिणी (रामा० १।२४।२६)
४. कारूषाश्चराजानः (उद्यो० ४।१८)
५. नरिष्यन्तः शकाः पुत्राः (हरि० १०।३१)
६. शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनाय महात्मनः (ब्रह्माण्ड० २।३।६०।२)

नाभानेदिष्ट मानव के वंशज वैश्य

पुराणो के वर्तमान पाठो में इसको नाभागारिष्ट'[1] या नाभागोदिष्ट'[2] कहा गया है। वैदिकग्रन्थों से ज्ञात होता है कि शुद्ध नाम नाभानेदिष्ट था।

मानव (मनुपुत्र) काल (१३००० वि० पू०) से विश्वामित्र कौशिक (८००० वि० पू०) कालपर्यन्त जातिव्यवस्था स्थिर या दृढ़ नहीं थी। जो व्यक्ति जिस कार्य का वरण कर लेता था, वह उसी वर्ण का हो जाता था। अतः नाभानेदिष्ट मानव, जन्म से क्षत्रिय (कर्मतः) मनु का पुत्र, कर्म से ब्राह्मण और वैश्य था। ब्राह्मण के रूप में उसने वेदमन्त्रों का दर्शन किया। ऋग्वेद दशममण्डल के ६१ और ६२ सूक्तो का द्रष्टा यही नाभानेदिष्ट है। मन्त्र में ऋषि ने स्वयं अपना संक्षिप्त नाम नाभा कहा है।[3] मन्त्रस्तुति से सिद्ध होता है कि स्वयं नाभानेदिष्ट आङ्गिरस देवपुत्रों की शरण मे जाकर ब्राह्मण हो गया था। सूक्त ६२ मे आङ्गिरसों की स्तुति की है और उन्हें नाभानेदिष्ट देवपुत्र कहता है। पिता मनु ने नाभानेदिष्ट को रिक्थभाग (सम्पत्ति) के रूप में ये दो सूक्त दिये थे, इसका इतिहास तै० सं० (३।१।६।-३०), मैत्रायणी सं० (१।५८), और ऐ० ब्रा० (५।१४) है।

नाभोनेदिष्ट का पुत्र भलन्दन बहुधा ग्रन्थों में वैश्य कहा गया है। प्रवरसूचियो मे तीन प्रसिद्ध वैश्य ऋषि—भलन्दन, वत्सप्रि और संकील तीनों ही नाभानेदिष्ट के वंशज थे। भलन्दन के वैश्य होने का उल्लेख पुराणो और वैदिकग्रन्थो के अतिरिक्त अवन्तिसुन्दरीकथा पृ० १७५ और कथासार ४।४-६ मे भी है। नाभानेदिष्ट का वंशवृक्ष पुराणो में इस प्रकार मिलता है।

नाभानेदिष्ट
|
भलन्दन
|
वत्सप्रि
|
संकील

---

१. वायुपुराण और हरिवंश
२. ब्रह्माण्डपुराण
३. अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन

(ऋ० १०।६२।४)

भलन्दन के वैश्यत्वप्राप्ति की कथा मार्कण्डेयपुराण अध्याय ११३ में विस्तार से कही गई है।

भलन्दन का पुत्र वत्सप्रि[1] वेदमन्त्रों का प्रसिद्ध ऋषि है।[2] वेदांगों में वात्सप्र सूक्त के पाठ का बहुधा उल्लेख मिलता है।

मानव प्रांशु के सम्बन्ध में पुराणपाठभंग और पार्जिटर की भूल

पुराणो मे मानव (मनुपुत्र) प्रांशु (मनु का अष्टम पुत्र) को बहुधा भ्रम से वत्सप्रि (वत्सप्रीति) का पुत्र बना दिया है।[3] वायुपुराण मे प्रांशु को भलन्दन का पुत्र कहा गया है।[4] इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त का मत सत्य प्रतीत होता है—'हमें यहा पुराणों का पाठ टूटा हुआ प्रतीत होता है। पार्जीटर ने इस ओर ध्यान नही दिया।'[5] अतः त्रुटित पुराणपाठों के अनुसार पार्जीटर ने नाभानेदिष्ट की बारहवी पीढ़ी में प्रांशु को रखा है।[6] वस्तुतः यह भ्रम है कि प्रांशु नाभानेदिष्ट के कुल में हुआ, यह प्रांशु वैवस्वत मनु का अष्टम पुत्र था, नाभानेदिष्ट के वंशज भलन्दनादि वैश्य हो गये थे, अतः शासन (राज्य) से उनका सम्बन्ध नहीं रहा। इस सम्बन्ध में पुराणो में परस्पर विरोधी कथन है, जिससे निर्णय करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु पं० भगवद्दत्त का यह कथन अवश्य ही विचारणीय है—"मनुपुत्र प्रांशु एक क्षत्रिय राजा था। उसका वर्णन पुराणो मे अवश्य मिलना चाहिये। वर्तमान पुराणपाठो में भलन्दन, वत्सप्रि और प्रांशु को एक कर दिया गया है। यह निश्चय ही पाठ-भ्रंश के कारण हुआ है।[7] अतः पुराणो मे वैशाली राजवंश की जो वंशावली नाभानेदिष्ट के नाम से दी गई है, वस्तुतः वह मानव प्रांशु की वंशावली है।

---

१. पुराणो में इसका पाठ वत्सप्रीति भी मिलता है।
२. ऋग्वेद सूक्त ९।६८, १०।४५ और १०४६ का द्रष्टा वत्सप्रि भालन्दन था।
३. वत्सप्रीतेः प्रांशुरभवत् (विष्णु ४।१।२०)
४. वायु० (८६।४)
५. भा० बृ० इ०, भाग २, (पृ० ५३)
६. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १४५
७. भा० बृ० इ०, भाग २ (पृ० ७४)

ब्रह्माण्डपुराणात्

प्राशु मानव (मनुपुत्र)
|
प्राजानि
|
खनित्र
|
क्षुप
|
विंश
|
विविंश
|
खनिनेत्र
|
सुवर्चा
|
करन्धम
|
अविक्षित्
|
मरुत्त
|
नरिष्यन्त
|
दम
|
राष्ट्रवर्धन
|
सुधृति
|
नर
|
केवल
|
बन्धुमान्
|
वेगवान्

महाभारत (१४।४)

मनु
|
प्रसन्धि
|
क्षुप
|
इक्ष्वाकु
|
शतपुत्र, ज्येष्ठ विंश
|
कल्याण विविंश
|
दशपुत्र खनित्रादि
|
करंधम = सुवर्चा
|
कारन्धम - - अविक्षित्
|
मरुत्त

|
बुध
|
तृणबिन्दु
|
विशाल + कन्या इडविडा
|
हेमचन्द्र
|
सुचन्द्र
|
धूम्राश्व
|
सृंजय
|
सहदेव
|
कृशाश्व
|
सोमदत्त
|
जनमेजय
|
प्रमिति

रामायण मे वैशालवश की आशिक वशावली उल्लिखित है..

१ इक्ष्वाकु + अलम्बुषा (पत्नी)
२ विशाल
३. हेमचन्द्र
४ सुचन्द्र
५. धूम्राश्व
६. सृंजय
७. सहदेव
८. कृशाश्व

९. सोमदत्त
१० सुमति[1]

रामायण में यह वंशावली, यद्यपि पुराणपाठ के आधार पर ही लिखी है, तथापि वैशालवंश को राजा तृणविन्दु से प्रारम्भ न करके, अपना तृतीय श्रेणी के ज्ञान का परिचय देते हुये क्षेपककार ने अलम्बुषा का पति इक्ष्वाकु बना दिया है, जबकि विशाल का पिता पुराणों में तृणविन्दु प्रसिद्ध है। अन्यत्र रामायण (७।२) में तृणविन्दु का उल्लेख है, जिसकी कन्या का विवाह पुलस्त्य नाम के ऋषि से हुआ, जिसके पुत्र विश्रवामुनि हुये और विश्रवा के पुत्र वैश्रवण कुबेर और रावणादि हुये। पुलस्त्य के साथी आगस्त्य थे। इन दोनों ऋषियों ने सुदूरपूर्वी द्वीपों तक संभवत: आस्ट्रेलिया पर्यन्त राक्षससंस्कृति से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किये। पुराणों में तृणविन्दु का समय त्रयोविंश (तेईसवां) त्रेतायुग (परिवर्तयुग) बताया गया है।[2] पुराणों में राम दाशरथि का समय सुविख्यात है चौबीसवां परिवर्त।[3] एक परिवर्तयुग का कालमान ३६० वर्ष था, अत: दाशरथि राम से लगभग चारशती पूर्व (५५०० वि० पू०) में पुलस्त्य, अगस्त्य, विश्रवा, तृणविन्दु, विशाल आदि का समय निश्चित होता है। ऋषि दीर्घजीवी होते थे, अत यही अगस्त्य दाशरथि राम को दण्डकारण्य में मिले थे जहां उन्होंने ऐन्द्रधनुष राम को राक्षसवधार्थ समर्पित किया था।[4] यह धनुष मूल में एन्द्र (इन्द्र का) था, परन्तु जब विष्णु की महिमा का उपबृंहण हुआ एवं ऐन्द्रयश का लोप होने लगा, तब उस धनुष को वैष्णव बना दिया गया।[5]

दाशरथि राम के समकालीन राजा का नाम पुराणों में प्रमति है, जिसको रामायण में सुमति कहा गया है।

तृणविन्दु से प्रमिति पर्यन्त ११ राजा हुये जिनका राज्यकाल चार शताब्दी पर्यन्त रहा, जो अधिक नहीं है, औसत राज्यकाल ३० और ४० वर्ष

१. रामा० (१।४७)
२. ब्रह्माण्डपु०
३ हरि० (१)
४ अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् (रामा० १।१।४२)
५ इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम्। वैष्णवं पुरुषव्याघ्र।
(रा० ३।२२।३२)

ही आता है जो भारतीय राजाओ के लिये अधिक नही है। **तृणबिन्दु के पुत्र विशाल अत्यन्त प्रतापी वशकरशासक थे, जिन्होंने वैशाली नगरी और वैशालवंश की स्थापना की।**

मार्कण्डेयपुराण मे अतिविस्तार से प्राशुमानववश के राजाओ का चरित्र और इतिहास का उल्लेख है, यहा पर उन तथ्यो का सक्षेप मे पर्यालोचन करते है।

नाभागभलन्दन— मार्कण्डेयपुराण मे दिष्ट (नाभानेदिष्ट) के पुत्र का नाम नाभाग लिखा है।[1] इसने किसी वैश्य कन्या से विवाह किया, उसका पुत्र हुआ भलन्दन। इसने हिमवान् पर्वतवासी राजा नीप के सहाय्य से अपने कुटम्बी राजा असुगत को जीतकर अपना पैतृक राज्य हस्तगत किया। नाभाग की पत्नी सुप्रभा भलन्दन की माता थी।[2] सुप्रभा के पिता पूर्वकाल मे सुदेव नाम के राजा थे, उनका मित्र नल धूम्राश्व का पुत्र था, इस नल ने च्यवनपुत्र प्रमिति भार्गव ऋषि की पत्नी से बलात्कार किया, जिससे नल नाश को प्राप्त हुआ और ऋषिशाप से सुदेव वैश्य हो गया, सुप्रभा इन्ही की पुत्री थी।

भलन्दन को मार्कण्डेयपुराण (अ० १०६) मे अद्वितीय एव अति प्रतापी राजा बताया गया है।

वत्सप्रि

भलन्दनपुत्र वत्सप्रि या वत्सप्रीति का विवाह राजा विदूरथ की कन्या सौनन्दा (सुनन्दा ?) मे हुआ, जिसका मूल नाम मुदावती था। निर्विन्ध्या नदी (सभवत विन्ध्याचल के निकटवर्ती प्रदेश रसातल) के शासक कुजुम्भ दानव ने मुदावती का अपहरण कर लिया। राजा विदूरथ ने पुत्र सुनीति और सुमति को रसातल युद्धार्थ भेजा, परन्तु वे दानवद्वारा निगृहीत हुये, तदनन्तर वत्सप्रि ने जाकर कुजुम्भ का वध करके मुदावती को मुक्त किया और उससे विवाह किया। वत्सप्रि के सहायक नागराज अनन्त भी थे।

अत राजा सुदेव, विदूरथ, दानव कुजुम्भ, नागराज अनन्त, वत्सप्रि, भालन्दन, प्रमतिभार्गव (च्यवनपुत्र) इत्यादि समकालीन व्यक्त थे।

---

१ मार्क०—दिष्टपुत्रस्तु नाभाग. स्थित: प्रथमयौवने (१०१।२)

२ भार्या सुप्रभानाम भामिनी (मार्क० १०२।२४)

इक्ष्वाक, पुरूरवा, इन्द्रादि इसी समय हुये थे अत. इन सबका समय १२००० वि० पू० था।

प्रांशु -वत्सप्रि द्वारा सुनन्दा से द्वादश पुत्र उत्पन्न हुये—प्राशु. प्रवीर, शूर. सुचक्र, विक्रम, क्रम, बली, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम, और सुनभ। इनमे प्रतापी प्राशु उत्तराधिकारी हुआ।

प्रजानि –प्राशु का पुत्र प्रजानि हुआ। पुराणो मे इसका नाम प्रजानि और महाभारत मे प्रसन्धि मिलता है, इसका उत्तराधिकारी खनिनेत्र हुआ। प्रजानि ने बल और जम्भ नामके दैत्यो का वध किया। पुराणो मे जम्भ का सहारक इन्द्र प्रसिद्ध है. निश्चय ही प्रजानि ने जम्भवध मे इन्द्र की सहायता की होगी। जम्भ प्राचीन जर्मनी (जम्भनी) का शासक था।

खनिनेत्र—खनिनेत्र ने अपने भ्राताओ को विभिन्न प्रदेशो का शासक बनाया, यथा शौरि पूर्व देश का उदावसु दक्षिणका, सुनभ पश्चिम का और महारथ को उत्तरी प्रदेश का शासक बनाया। इनके पुरोहित क्रमश. सुहोत्र आत्रेय, कुशावर्त गौतम, प्रमिति काश्यप और वासिष्ठ (अज्ञातनाम) थे।

क्षुप खनिनेत्र विरक्त होकर तपहेतु वन चले गये और क्षुप नाम का पुत्र प्रसिद्ध राजा हुआ। वन मे खनिनेत्र ने ३५० वर्ष तपस्या की।[1]

विविंश—क्षुप का पुत्र विविंश हुआ।

खनित्र—विविंश का पुत्र खनित्रेत्र द्वितीय अतिप्रतापी राजा था जिसने त्रेसठ हजार सरसठ यज्ञ किये।[2]

करन्धम—खनिनेत्र का पुत्र बलाश्व या सुवर्चा या करन्धम हुआ। अश्वबलप्राधान्य के कारण बलाश्व, तेजस्वी होने से सुवर्चा और कराधान करने के कारण उपर्युक्त अन्वर्थक नाम प्रथित हुये। करन्धम का समय वायुपुराण मे त्रेतायुगमुख मे बताया गया है, परन्तु यह पाठभ्रंश के कारण

---

१ शतानि त्रीणिवषाणामर्धानिनृपसत्तम.। (मार्क० १०५।१७)

२ सप्तषष्टिसहस्राणि सप्तषष्टिशतानि च।
सप्तषष्टिश्च .. । (मार्क० १०७।५)

है।[1] वस्तुतः करन्धम मरुत्त का पितामह था, मरुत्त मान्धाता ऐक्ष्वाक के समकालीन था।[2] मान्धाता का समय पंचदशत्रेता (युग=परिवर्त) था। मरुत, मान्धाता करन्धम आदि सभी दीर्घजीवी पुरुष थे, अतः करन्धम का समय त्रयोदशयुग मे अर्थात् मान्धाता से ७२० वर्ष पूर्व (दो युग) से अधिक पूर्व नही हो सकता है, अत 'त्रेतायुगमुखे' स्थान पर त्रयोदश त्रेताया पाठ होना चाहिये। अत करन्धम का समय ६६८० वि०पू० था जबकि मरुत्त और मान्धाता का समय ६००० वि० पू० था।

आवीक्षित् मरुत्त—करन्धमपुत्र अवीक्षित् को भी पुराणो मे अतिप्रतापी सार्वभौम राजा बताया गया है। मार्कण्डेयपुराण (अ० १०६) के अनुसार निम्न राजाओ की पुत्रियां उसकी पत्निया बनी—

धर्मपुत्री वशा
सुदेवपुत्री - गौरी
बलिपुत्री (आनव)= सुभद्रा
वीरभसुता = निभा
भीमपुत्री – मान्यवती

प० भगवद्दत्त ने चित्ररथ, बलि, मतिनार, युवनाश्व द्वितीय और अवीक्षित् को समकालीन माना है, वह सत्य और पुराणसम्मत है।[3] ये सभी मतिनार, बलि आदि राजा मान्धाता पूर्ववर्ती थे। बलि के पाच पुत्रो ने अपने नाम से अग वग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्म नाम के राज्य स्थापित किये। बलि के समकालिक दीर्घतमा मामतेय, कक्षीवान् आदि ऋषि थे।[4]

अवीक्षितपुत्र मरुत्त चक्रवर्ती महान् सम्राट् हुआ, जिसने गुण और

---

१ करन्धमस्तस्य पुत्र त्रेतायुगमुखेऽभवत् (वायु० ८६।७)
यही भ्रमता तृणबिन्दु के सम्बन्ध मे पूर्वसंकेत कर चुके है कि वह 'तृतीये मत्रभूव ह' (वायु० ८६।१५) मे हुआ लिखा है वह त्रयोविंश त्रेता (परिवर्तयुग) मे हुआ। प० भगवद्दत्त को यह सशोधन नही सूझा। (भा० ब० इ०, भा० २, पृ० ८६)

२ शान्तिपर्व (२८।८८)

३. वायु० (६८।६०)

४. भा० बृ० इ०, भा० २ (पृ० ८६)

प्रताप मे अपने पिता अवीक्षित् का अतिक्रमण किया।[1] ब्राह्मणग्रन्थो एवं पुराणो मे मरुत्त के महान् यज्ञ के सम्बन्ध मे गाथाये मिलती हैं कि मरुत्त के यज्ञ मे मरुद्गण भोजन परोसते थे और विश्वदेव सभासद् थे।[2] देवगुरु बृहस्पति का अनुज संवर्त आङ्गिरस मरुत्त का पुरोहित था।[3] महाभारत मे संवर्त को वाराणसी का निवासी बताया है।[4] मरुत्त ने अपनी कन्या का विवाह भी संवर्त से किया था।[5]

मरुत्त अतिप्रतापी होते हुये भी अयोध्यापति ऐक्ष्वाक मान्धाता से परास्त हुआ।[6] सम्राट् मरुत्त दीर्घजीवी था। मान्धाता के समकालीन होने से मरुत्त का समय पचदशयुग (त्रेता—परिवर्त) अर्थात् ६००० वि० पू० से कुछ पूर्व था। महाभारत मे मरुत्त का राज्यकाल एकसहस्रवर्ष बताया गया है, यदि अतिशयोक्ति हो तो भी उसका राज्यकाल एक शती से अधिक अवश्य होगा। मार्कण्डेयपुराणमतसे मरुत्त ने सत्तरसहस्र पन्द्रहवर्ष राज्य किया—[7]

> वर्षाणां च सहस्राणि सप्तति. पच च।
> बुभुजे पृथिवी कृत्स्ना मरुत्त क्षत्रियर्षभ ॥ (११६।४)

इसका अर्थ है उसने १६४ वर्ष १ मास और १ दिन राज्य किया।

नरिष्यन्त—सभी पुराणवंशपाठो मे मरुत्त का पुत्र नरिष्यन्त कथित है, जिसका पुत्र हुआ 'दम'। परन्तु प० भगवद्दत्त इसे पुराणपाठ का भ्रश (च्युति) मानते है, अत उन्होने वैवस्वतमनुपुत्र नरिष्यन्त से इस वंशावली

---

१ तस्य पुत्रोऽतिचक्राम पितर गुणवत्तया। मरुत्तो नाम धर्मज्ञश्चक्रवर्ती महायशा। (शा० ४।२३)

२ मरुत परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे।
आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवा सभासद ॥
(ऐ० ब्रा० ८।२१, श० ब्रा० १३।५।४।६)

३. संवर्त आङ्गिरसो मरुत्तमाविक्षितमभिषिषेच (ऐ० ब्रा० ८।२१)

४. वाराणस्या महाराज दर्शनेप्सुर्महेश्वरम्। (महा० १४।६।२२)

५. शान्तिपर्व (२४०।२८)

६. महा० (१२।२८।८८)

७. यौवनेन सहस्राब्द मरुत्तो राज्यमन्वशात् (महा० द्रोणपर्व ५५।२६)

को जोडकर कारन्धम मरुत्तवश से इसे पृथक् कर दिया है।[1] पुराणपाठ के सर्वसम्मत पाठ के साक्ष्य के सम्मुख यह पण्डितजी की कल्पना केवल कल्पना ही सिद्ध होती है। भगवद्दत्तजी का कल्पना प्रौढत्व पुराण के ही प्रामाण्य से असिद्ध है, क्योंकि मरुत्तपुत्र नरिष्यन्त का दशम वशज तृणविन्दु ज्योतिषयुग (५६०० वि०पू०) का तेईसवा व्यास था, जिसे पण्डितजी ने भ्रंश पुराणपाठ के आधार पर तृतीय त्रेतायुग मे माना है।[2] सभी पुराणों मे तृणविन्दु को तेईसवा व्यास माना है। तृणविन्दु के शिष्य चौबीसवें व्यासऋष वाल्मीकि थे, जो चौबीसवे युग मे हुये, अत व्यासपरम्परा सत्य है, तृणविन्दु को मान्धाता और मरुत्त के पूर्ववर्ती श्रावस्तादि का समकालीन नही माना जा सकता। तृणविन्दु का पुलस्त्य, तत्पुत्र विश्रवण कुबेर रावणादि से सम्बन्ध भी हमारे मत (पुराणमत) की पुष्टि और प० भगवद्दत्त की कल्पना का खण्डन करता है कि तृणविन्दु आदि नरेश मरुत्त के उत्तरवर्ती थे, वे प्रांशुवश मे हुये नकि मनुपुत्र नरिष्यन्त (मानव) के वंश मे।

अत यह नरिष्यन्त मरुत्त का पुत्र था यह मरुत्त के अठारह पुत्रो मे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ था।[3] नरिष्यन्त ने राज्यकाल मे अठारहकरोड यज्ञ किये।[4]

दम—नरिष्यन्तपुत्र दम को मार्क० पु० मे वृषपर्वा के वशज दैत्यवर दुन्दुभि का शिष्य बताया गया है। दम ने इन असुरो से उनकी सन्यस्त एव वृद्धावस्था मे ही शिक्षा ली होगी, क्योकि ययाति के समकालिक वृषपर्वा का पुत्र दुन्दुभि युवावस्था मे दम का गुरु नही हो सकता, क्योंकि इनमे न्यूनतम दो सहस्रवर्ष का अन्तर था। शक्ति और आर्ष्टिषेण भी दम के गुरु बताये गये है। यह शक्ति नही, कोई वासिष्ठ ऋषि को भ्रमवश शक्ति बना दिया गया है। दम का समकालिक दाक्षिणात्य नृप सक्रदन का पुत्र वपुष्मान् था, जिसने वानप्रस्थ दमपिता नरिष्यन्त का वध किया, तब पितृघाती वपुष्मान् का वध दम ने किया।

---

१. भा० बृ० इ०, भा० (पृ० ८५)

२ त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह (वायु० ८६.१५)

३. नरिष्यन्त इति ख्यातो मरुत्तस्याभवत्सुतः।
अष्टादशानां पुत्राणा स ज्येष्ठ. श्रेष्ठ एव च॥ (मार्क० ११६।३)

४. मार्क० (११६।३२-३३)

राष्ट्रवर्धन—दम के पुत्र राष्ट्रवर्धन ने सूर्य की तपस्या करके अपनी और प्रजा की वृद्धि की मार्कण्डेयपुराण (अ० १००) के अनुसार राष्ट्रवर्धन पहिले ७००० दिन[1] (=१९ वर्ष) राज्य किया, सूर्यतपस्या के अनन्तर उसने और १०००० दिन[2] (२७ वर्ष, ५ मास) कुल ४६ वर्ष५ मास राज्य किया।

नृग और नरिष्यन्त

नृग (वश) (भागवत ९।१।२)	नरिष्यन्त (मानव)
सुमति	चित्रसेन
भूतज्योति	ऋक्ष
वसु	मीढवान्
प्रतीक	कूर्च
ओघवान्, कन्या ओघवती	इन्द्रसेन
(सुदर्शनपति)	वीतिहोत्र
	सत्यश्रवा
	उरुश्रवा
	देवदत्त
	(अग्नि अग्निवेश्य (जतूकर्ण्य)
	अग्निवेश्यायन

इक्ष्वाकु के दशम पुत्र दशाश्व का वंशवृक्ष पूर्वपृष्ठ (३५२) पर दिया गया है, तदनुसार दशाश्व की सप्तम पीढी मे दुर्योधन नामक प्रतापी राजा हुआ। नरिष्यन्त की एकादश पीढी मे अग्नि या अग्निवेश नाम का ऋषि हुआ'

१. सप्तवर्षसहस्राणि जग्मुरेकमहर्यथा (मार्क० १००।९)

२ दशवर्षसहस्राणि नीरुज स्थिर यौवन। (मार्क० १०१।११)

जिसने दशाश्ववशीय औघवान् की भगिनी औघवती से विवाह किया जिसे महाभारत (१३।२।२१) मे साक्षात् अग्नि[1] और साथ ही दरिद्र ब्राह्मण[2] कहा है। यह अग्निसंज्ञक ऋषि सम्भवत: दुर्योधन का पुरोहित था। इस दरिद्र असवर्ण पुरोहित अग्नि ब्राह्मण को उत्तरकालीन क्षेपककारो ने साक्षात् अग्निदेव बना दिया।[3] क्षेपककारो की इस प्रकार की भ्रष्ट एवं भ्रामक कल्पनाओ ने इतिहासपुराणो को वर्तमान आलोचकों की दृष्टि मे अश्रद्धेय बनाया, जिससे पार्जीटर ने क्षत्रिय और ब्राह्मणपरम्पराओ की कल्पना की, यद्यपि पार्जीटर की कल्पना निरर्थक और अनावश्यक है, क्योकि इस प्रकार की पृथक् पृथक् परम्पराये नही थी—The distinction between Ksatriya Tr dition and Brahmanic Tradition is very important.

पार्जीटर के मत मे ब्राह्मण इतिहासबुद्धिशून्य थे। यह कथन उत्तरकालीन ब्राह्मणो के सम्बन्ध मे ही सत्य है।

---

१ तामग्निश्चकमे साक्षाद् राजकन्या सुदर्शनाम् ॥

२ दरिद्रश्चासवर्णश्च ममायमिति पार्थिव । दित्सति सुता तस्मै ता विप्राय सुदर्शनाम ॥ (महा० ३।२ २२)

३ ददौ दुर्योधनो राजा पावकाय महात्मने । राजकन्या सुदर्शनाम् । (महा० १३।२।३४)

4 A I H T (P 6)

४

ऐक्ष्वाकवंश

इतिहासपुराणो के विभिन्न पाठो मे अयोध्या के ऐक्ष्वाक राजाओ की वशावली और उसमे जो अन्तर मिलता है, वह निम्न तालिकाओ से प्रकट होगी—

	ब्रह्माण्ड०	वायु०	विष्णु०	भगवत०	हरिवंश०	मत्स्य०	रामायण
१	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु
२.	विकुक्षि	विकुक्षि (शशाद)	विकुक्षि	विकुक्षि	विकुक्षि	विकुक्षि	विकुक्षि
३	ककुत्स्थ	ककुत्स्थ	पुरजय	पुरजय	ककुत्स्थ	ककुत्स्थ	विकुक्षि
४	अनेना	अनेना	अनेना	अनेना	अनेना	पृथु	वाण
५	पृथु	पृथु	पृथु	पृथु	पृथु	विश्वग्	अनरण्य
६	दृढाश्व	वृषदश्व	विष्टाराश्व	विश्वरन्धि	जिष्टाराश्व	इन्द्र	पृथु
७	अन्ध्र	अन्ध्र	चान्द्र	चन्द्र	आर्द्र	युवनाश्व	त्रिशकु
८.	युवनाश्व	युवनाश्व	युवनाश्व शावस्त	युवनाश्व	युवनाश्व	श्रावस्त	धुन्धुमार
९	श्राव	श्राव	बृहदश्व	शावस्त	श्राव	वत्सक	युवनाश्व
१०	श्रावस्तक	श्रावस्तक	कुवलायाश्व	बृहदश्व	श्रावस्तक	बृहदश्व	मान्धाता
११	बृहदश्व	बृहदश्व	दृढाश्व	कुवलाश्व	बृहदश्व	कुवलाश्व	सुसधि
१२.	कुवलाश्व	कुवलाश्व (धुन्धुमार)	हर्यश्व	दृढाश्व	कुवलाश्व	दृढाश्व	ध्रुवसंधि
१३	दृढाश्व	दृढाश्व	निकुम्भ	हर्यश्व	दृढाश्व	प्रमोद	भरत
१४.	हर्यश्व	हर्यश्व	अमिताश्व	निकुम्भ	हर्यश्व	हर्यश्व	अमित
१५	निकुम्भ	निकुम्भ	कृशाश्व	वर्हणाश्व	निकुम्भ	निकुम्भ	सगर
१६.	संहताश्व	सहताश्व	प्रसेनजित्	कृशाश्व	सहताश्व	सहताश्व	असंमजा
१७.	कृशाश्व	कृशाश्व	युवनाश्व	सेनजित्	अकृशाश्व	रणाश्व	अशुमान्

	ब्रह्माण्ड०	वायु०	विष्णु०	भागवत०	हरिवंश	मत्स्य०	रामायण०
१८	प्रसेनजित्	प्रसेनजित्	मान्धाता	युवनाश्व	प्रसेनजित्	युवनाश्व	दिलीप
१९	युवनाश्व	युवनाश्व	पुरुकुत्स	मान्धाता	युवनाश्व	मान्धाता	भगीरथ
२०	मान्धाता	मान्धाता	त्रसद्दस्यु	(त्रसद्दस्यु) पुरुकुत्स	मान्धाता	पुरुकुत्स	ककुत्स्थ
२१	पुरुकुत्स	पुरुकुत्स	अनरण्य	त्रसद्दस्यु	पुरुकुत्स	नमुत्स	रघु
२२	युवनाश्व	त्रसद्दस्यु	बृहदश्व	अनरण्य	त्रसद्दस्यु	सम्भूति	कल्माषपाद
२३	सभूत	सभूत	हर्यश्व	हर्यश्व	सभूत	त्रिधन्वा	शखणा
२४.	अनरण्य	अनरण्य	हस्त	अरुण	सुधन्वा	त्र्यारुण	सुदर्शन
२५.	हर्यश्व	त्रसदश्व	सुपनस्	(त्रिबन्धन) सत्यव्रत	त्रिधन्वा	त्र्यारुण	अग्निवर्ण
२६	सुमति	हर्यश्व	त्रिबन्धन्	हरिश्चन्द्र	त्र्यारुण	सत्यव्रत	शीघ्रग
२७	त्रिधन्वा	वसुमत	त्र्यारुणि	रोहित	त्रिशंकु	सत्यरथ	मरु
२८	त्र्यारुणि	त्रिधन्वा	सत्यव्रत	हरित	हरिश्चन्द्र	हरिश्चन्द्र	प्रशुश्रुक
२९	सत्यव्रत (त्रिशंकु)	त्र्यारुण	हरिश्चन्द्र	चम्प	रोहित	रोहित	अम्बरीष
३०	हरिश्चन्द्र	सत्यव्रत	रोहिताश्व	सुदेव	हरित	वृक	नहुष
३१	रोहित	हरिश्चन्द्र	हरित	भसुक	चचु	बाहु	ययाति
३२.	हरित	रोहित	चचु	वृक	विजय	सगर	नाभाग
३३	विजय	चचु	रुरुक	सगर	वृक	अंशुमान्	दशरथ
३४	रुरुक	विजय	वृक	असमजा	बाहु	दिलीप	राम
३५	वृक	रुरुक	बाहु	अंशुमान	सगर	भगीरथ	
३६.	बाहु	वृनक	सगर	दिलीप	असमजा	नाभाग	
३७.	सगर	बाहु	असमजा	भागीरथ	अंशुमान्	अम्बरीष	
३८.	बर्हिकेतु	सगर	अंशुमान्	श्रुत	दिलीप	सिन्धुद्वीप	
३९.	अंशुमान्	असमजा	दिलीप	नाभ	भगीरथ	अयुतायु	
४०.	दिलीर	अंशुमान्	भगीरथ	सिन्धुद्वीप	श्रुत	ऋतुपर्ण	
४१	भगीरथ	दिलीप	सुहोत्र	अयुतायु	नाभाग	कल्माषपाद	
४२	श्रुत	भगीरथ	श्रुत	ऋतुपर्ण	अम्बरीष	सर्वकर्मा	
४३	नाभाग	श्रुत	नाभाग	सर्वकाम	सिन्धुद्वीप	अनरण्य	
४४	अम्बरीष	नाभाग	अम्बरीष	कल्माषपाद	अयुताजित्	निघ्न	

	ब्रह्माण्ड०	वायु०	विष्णु०	भागवत०	हरिवंश०	मत्स्य०
४५.	सिन्धुद्वीप	अम्बरीष	सिन्धुद्वीप	अश्मक	ऋतुपर्ण	रघु
४६	अयुतायु	सिन्धुद्वीप	अयुतायु	मूलक	आर्तापर्णि	दिलीप
४७	ऋतुपर्ण	अयुतायु	ऋतुपर्ण	दशरथ	सुदास	अजक
४८	सर्वकाम	ऋतुपर्ण	सर्वकाम	ऐडबिड	कल्माषपाद	दीर्घबाहु
४९	सुदास	सर्वकाम	सुदास	विश्वसह	सर्वकर्मा	अजपाल
५०	कल्माषपाद	सुदास	कल्माषपाद	रघु	अनरण्य	दशरथ
५१	अश्मक	कल्माषपाद	अश्मक	अज	निघ्न	राम
५२	मूलक	अश्मक	मूलक	दशरथ	अनमित्र	कुश
५३	शतरथ	उरुकाम	दशरथ	राम	दुलिदुह	अतिथि
५४	इडविड	मूलक	इलिविल	कुश	दिलीप	निषध
५५	कृशशर्मा	शतरथ	विश्वसह	अतिथि	रघु	नल
५६	विश्वमहस्र	ऐडविड	खट्वाग	निषध	अज	पुण्डरीक
५७	दिलीप	विश्वमह	दीर्घबाहु	नभ	दशरथ	क्षेमधन्वा
५८	दीर्घबाहु	दिलीप	रघु	पुण्डरीक	राम	
५९	रघु	रघु	अज	क्षेमधन्वा	कुश	
६०	अज	अज	दशरथ	देवानीक	अतिथि	
६१	दशरथ	दशरथ	राम	अनीह	निषध	
६२	राम	राम	कुश	पारियात्र	नल	
६३	कुश	कुश	अतिथि	बल	नभ	
६४	अतिथि	अतिथि	निषध	स्थल	पुण्डरीक	
६५	निषध	निषध	अनल	वज्रनाभ	क्षेमधन्वा	
६६	नल	नल	नभस्	खगण	देवानीक	
६७	नभ	नभ	पुण्डरीक	विधृति	अहीनगु	
६८	पुण्डरीक	पुण्डरीक	क्षेमधन्वा	हिरण्यनाभ	सुन्धवा	
६९	देवानीक	देवानीक	अहीनक	ध्रुवसधि	उक्थ	
७०	अहीनगु	अहीनगु	रुरु	सुदर्शन	वज्रनाभ	
७१	पारियात्र	पारियात्र	पारियात्र	शीघ्र	शख	
७२.	दल	दल	देवल	मरु	पुष्य	
७३	बल	बल	वच्चल	प्रसुश्रुत		

	ब्रह्माण्ड०	वायु०	विष्णु	भागवत०	हरिवंश०
७४.	उलूक	औक	उत्क	संधि	सुदर्शन
७५.	वज्रनाभ	वज्रनाभ	वज्रनाभ	अमर्षण	अग्निवर्ण
७६	शंखण	शख (व्युषिताश्व)	शखण	महस्वान्	शीघ्र
७७	व्युषिताश्व	विश्वसह	व्युषिताश्व	विश्वसाह्व	मरु
७८	विश्वसह	हिरण्यनाभ	विश्वसह	प्रसेनजित्	बृहद्बल
७९.	हिरण्यनाभ		हिरण्यनाभ	तक्षक	
८०	पुष्य		पुष्य	बृहद्बल	
८१	ध्रुवसधि		ध्रुवसधि		
८२	सुदर्शन		सुदर्शन		
८३	अग्निवर्ण		अग्निवर्ण		
८४.	शीघ्रक		शीघ्रग		
८५	मरु		मरु		
८६	सुमधि		प्रशुश्रुक		
८७	मरु		सुसधि		

इक्ष्वाकुवश (अयोध्याशाखा)

इक्ष्वाकु और इक्ष्वाकुवश की प्रधान अयोध्याशाखा की वशावली पर सक्षिप्त विचारविमर्श पूर्वपृष्ठो पर कर चुके है। अब इस वश के प्रधान राजाओ का और उनके समकालिक अन्य ऐतिहासिक पुरुषों का कालक्रम निश्चित करने का प्रयत्न करेंगे।

इक्ष्वाकवश की यह सूची प्राय प्रत्येक पुराण (तीन चार को छोडकर) मे मिलती है और सामान्यत सभी पुराणो के अनुसार इक्ष्वाकु से बृहद्बल तक अधिकतम ९३ नाम मिलते हैं यह हम पहिले ही बता चुके है कि यह वशावली अन्यो की अपेक्षा दीर्घतम होते हुये भी अपूर्ण है, इसकी पुष्टि वैदिकग्रन्थो से होती है, जहा अनेक ऐसे ऐक्ष्वाक राजाओ का उल्लेख है, जो पुराणो मे अनुल्लिखित है।[1]

---

१. बृहद्देवता मे ऐक्ष्वाक असमाति और उसके पुत्र रथप्रोष्ठ का उल्लेख है, जिसने गोपायन (गोप ऋषि के पुत्र) सुबन्धु आदि को छोडकर किरात आकुली असुरो को पुरोहित बनाया—'राजासमातिरैक्ष्वाकोरथप्रोष्ठ. पुरोहितान्। व्युदस्य बन्धुप्रभृतीन् .. .. ॥ बृहद्दे० ७।८५-१०२; यह राजा पुराणो मे अनुल्लिखित है।

रामायण मे जो इक्ष्वाकुवशावली मिलती है वह अत्यन्त आधुनिक, पूर्णतः भ्रामक एव सर्वथा हेय है, इस वशावली के लेखक ने न तो पुराणो के दर्शन किये और यहातक कि रघुवश जैसे महाकाव्य से भी क्षेपककार पूर्णत· अनभिज्ञ था, क्योंकि कालिदासद्वितीय ने पुराणों के अनुसार ही रघु से अग्निवर्णपर्यन्त ऐक्ष्वाक राजाओ का काव्यमय वर्णन किया है, इस सम्बन्ध मे पार्जीटरकृत रामायण की आलोचना उपयुक्त है और प० भगवद्दत्त ने इस सम्बन्ध मे प्रतिलिपिकर्त्ता को दोष दिया है, वह उपयुक्त नही है—

Hence the Ramayana Genealogy must be put aside as eroneous and the Puranic Genealogy accepted. This is not surprising, because the Ramayana is a brahmanical poem, and the brahmans notoriously lacked historical sense (A.I.H.T., p. 94).

रामायण के उपर्युक्त अश कालिदासोत्तरकालीन चारणभाटो द्वारा प्रक्षिप्त है, क्योंकि वाल्मीकि ने केवल १२००० श्लोकों की मूल रामायण की रचना की थी। वाल्मीकि से कालिदास के समय तक ब्राह्मण पूर्ण इतिहासवेत्ता थे, अत· यह दोष प्राचीनतम ब्राह्मणो का नही, उन चारणभाटो का है जो इतिहासबुद्धिशून्य थे, ऐसे ही चारणभाटो के सम्बन्ध मे वाकरनागल ने लिखा है कि वे न तो पुरोहित थे और न विद्वान्।[2] ऐसे ही धूर्त एव मूर्ख चारणभाटो के कारण परम विद्वान् इतिहासकार वाल्मीकि और व्यास को आज अपयश मिलता है।

(२) **विकुक्षि - शशाद** (इक्ष्वाकु का ज्येष्ठपुत्र)—विशाल वक्षस्थल होने के कारण उसका नाम विकुक्षि, और शशभक्षण के कारण उसका नाम 'शशाद'[3] हुआ।

(३) **ककुत्स्थ = पुरजय**—यह वशप्रवर्तक प्रतापी सम्राट् था, जिसके कारण इसके उत्तराधिकारी काकुत्स्थ कहलाते थे। रामायण मे राम को बहुधा 'काकुत्स्थ' कहा है, वह इसी कारण।

---

१ भा० बृ० इ०, भा० २, पृ० ७१

2 Bards were neither priest nor soholars (Atlind grammar Vol. I, p. XLV).

३. भक्षयित्वा शश तात शशादो मृगयागतः। (हरि० १।११।१७)

पुराणो मे कल्पना मिलती है कि इन्द्र[1] ही बैल (ककुद्) बना, जिस पर बैठकर पुरजय ने षष्ठ देवासुर सग्राम मे असुरो को जीता और जम्भ या कुम्भ नाम असुरेन्द्र का वध किया। वस्तुत: इन्द्र बैल नही बना। किसी पशु बैल पर बैठकर ही पुरजय ने असुरो से युद्ध किया था, अत: ककुत् की पीठ पर बैठने के कारण उसका नाम ककुत्स्थ पडा।

मार्कण्डेयपुराण मे मनुपुत्र प्राशु के पुत्र राजा प्राजानि को असुरेन्द्र जम्भ का वधकर्त्ता बताया है। प्राजानि और ककुत्स्थ ऐक्ष्वाक निश्चय ही समकालीन राजा थे। ऐलवश के आयु और नहुष भी इनके समकालीन थे। प्रजानि, ककुत्स्थ और नहुष इन्द्र से पूर्ववर्ती शासक थे, जिन्होने षष्ठ देवासुर सग्राम मे जम्भ का वध किया। इन्द्र का महात्म्य बढ़ाने के लिये जम्भ[2] का विजेता इन्द्र को कल्पित किया गया। इन्द्र अब तक (सप्तमयुग) पर्यन्त दैत्येन्द्र बलि को नही जीत सका, इन्द्रानुज विष्णु ने छल द्वारा ही बलि का राज्यहरण किया।

षष्ठ देवासुर सग्राम[3] और ककुत्स्थ जम्भ आयु, प्राजानि, नहुषादि का समय इन्द्र से पूर्व लगभग १२००० वि०पू० था। नहुष और युधिष्ठर का अन्तर दश सहस्र वर्ष बताया भी गया है।[5] नहुषादि के पश्चात् ही इन्द्र का प्राबल्य हुआ। षष्ठ देवासुर सग्राम का नेतृत्व ककुत्स्थ ने किया था।

पं० भगवद्दत्त ने रामायण के आधार पर ककुत्स्थ का नाम बाण[6] लिखा है, जो सर्वथा अप्रामाणिक है। रामायण के वशावलीसम्बन्धी वर्णन कितने अप्रमाणिक एव हेय हैं, पुनरावृत्ति की आवश्यकता नही है।

अनरण्य—ककुत्स्थ के पुत्र अनरण्य का द्वितीय नाम अनेना[7] भी मिलता है जो प्राचीन नाम प्रतीत होता है, अनरण्य नाम उत्तरकालीन कल्पित

१. इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जयतेऽसुरान्। (हरि० १।११।१६)

२ दानवाना सुवीर्यणा जघाननवतीर्नव। बल बलिना श्रेष्ठो जम्भ वासुरसत्तमम्॥ (मार्क० १०४।८)

३. विष्णु० ४।६।१४)

४ षष्ठो ह्याडीबकस्तेषाम् (वायु० ९७।७५)

५ दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्। (महा० उद्यो० १७।१५)

६ विकुक्षेस्तु महातेजा बाण पुत्र. प्रतापवान् (रामा० १।७०।२३)

७ महा० वनपर्व (१९३।२)—तथा अनेनास्तु ककुत्स्थस्य (हरि० १।११।२०)

प्रतीत होता है। रामायण के क्षेपकारो की इतिहासबुद्धिशून्यता का एक ज्वलन्त उदाहरण है, जहा उत्तरकाण्ड (१६ अध्याय) में रावण के द्वारा अनरण्य का वध कराया गया है। अनरण्य सभवत किसी देवयुगीन (१२५०० वि०पू०) असुरेन्द्र या राक्षसेन्द्र द्वारा मारा गया होगा, जिससे उत्तरकालीन क्षेपककारो ने भ्रमवश रावण मान लिया, अन्यथा अनरण्य रावण से ७००० वर्ष पूर्व हो चुका था। अत रावण द्वारा अनरण्यवधादि सर्वथा काल्पनिक है।

५ **पृथु**—यह अनेना का पुत्र था।

६ **विश्वगश्व**—इसके पुराणो मे अनेक पाठान्तर मिलते है—यथा ब्रह्माण्डपुराण मे दृढाश्व, वायु० मे वृषदश्व, विष्णु मे विष्टराश्व, भागवत मे विश्वरन्ध्रि, हरिवश मे जिष्टराश्व, मत्स्य मे विश्वग। महाभारत (३।१६३।३) और मत्स्य के एक पाठ मे विष्वगश्व पाठ है, जिसे प भगवद्दत्त ने उचित माना है।[1]

७ **आर्द्र**—इसके विभिन्न पाठान्तर मिलते है—अन्ध्र (ब्रह्माण्ड), चन्द्र (विष्णु, भागवत), आर्द्र (हरि०) और इन्द्र (मत्स्य)। शुद्ध नाम आर्द्र था, जो विष्वगश्व का पुत्र था।

८ **युवनाश्व**—आर्द्र का पुत्र युवनाश्व प्रथम था।

९ **श्रावस्त**—युवनाश्व का पुत्र था। इस नाम के पाठान्तर श्राव और और श्रावस्त मिलते हे। इसके नाम से श्रावस्ती[2] नगरी बसी।

१०. **बृहदश्व**—इसके पाठान्तर प्राय नही मिलते, सभी ग्रन्थो मे यही नाम है।

११ **कुवलाश्व**—**धुन्धुमार**—इनका नाम कुवलयाश्व भी मिलता है। धुन्धु नाम के दानव के वध करने के कारण कुवलाश्व का नाम धुन्धुमार पडा। यह धुन्धु दानव दनायु का पौत्र, वृत्रासुर का भ्रातृज (भतीजा) और

---

१ रामायण मे पृथु के पश्चात् त्रिशकु का नाम है, जो अज्ञान की पराकाष्ठा का लक्षण है। प० भगवद्दत्त के अनुसार विष्वगश्व से बृहदश्व के पाठ टूट गया है। (भा० बृ० इ०, भाग १, पृ० ७१) यह पाठ टूटा नही है, चारणभाटो की घोर अज्ञानता का प्राकट्य है।

२ श्रावस्ती वर्तमान बस्ती जिला है, 'बस्ती' नाम मे श्रावस्ती का अपभ्रंश विद्यमान है।

अररु का पुत्र था।[1] धुन्धुदानव अरब देशों का शासक था। वृत्र का समय सप्तमयुग के अनन्तर संभवत अष्टमयुग ११२०० वि० पू० था। अतः कुवलाश्व, धुन्धु, उतंक, आदि समकालिक एवं अष्टमयुग (११२०० वि० पू० से १०८४० वि०पू०) में हुये।[2] कुवलाश्व (धुन्धुमार) वृत्र और इन्द्र के कुछ शती पश्चात् ही हुआ। इन्द्र उस समय जीवित था और हरिश्चन्द्र के समय तक जीवित रहा।

१२. **दृढ़ाश्व**—ऐक्ष्वाकवंश का द्वादश सम्राट् दृढाश्व हुआ, जो कुवलाश्व के तीनो पुत्रो मे ज्येष्ठ था। इतिहासपुराण मे कुवलाश्व के २१ सहस्र पुत्र कहे गये हैं, जो सभवत उसके सम्बन्धी या सैनिक थे, जो धुन्धु द्वारा मारे गये, इनमे से केवल तीन अवशिष्ट रहे—दृढाश्व, चन्द्राश्व और कपिलाश्व।

१३. **प्रमोद**—केवल मत्स्यपुराण मे दृढाश्वपुत्र प्रमोद का उल्लेख है, अन्य पुराणो मे यह नाम लुप्त हो गया है।

१४ **हर्यश्व प्रथम**—सभी पुराणो मे यही नाम मिलता है। प० भगवद्दत्त ने लिखा है—इक्ष्वाकु हर्यश्व के पास गालव ऋषि गया था। (भा० बृ० इ० भा० १, पृ० ७३) परन्तु यह हर्यश्व द्वितीय था, जिसका पुत्र वसुमना था। हर्यश्व के अनन्तर ऐक्ष्वाकवंश के निम्न राजा हुये जिनका समय इस प्रकार अनुमानित है—

१५ निकुम्भ—१११०० वि० पू०

१६. सहताश्व—११०५६ वि०पू०

१७. कृशाश्व—११००० वि०पू०—हिमवत्प्रदेश मे हिमवान् या दृषद्वान् नाम के अनेक राजा हुये, उनको हिमवान् या दृषद्वान् भी कहते थे

---

१. दनायुषायाः पुत्रास्ते पचमहाबलाः। अररुर्बलवृत्रौ च विज्वरश्च वृषस्तथा। अररोस्तनयः क्रूरो धुन्धुर्नाम महासुरः॥

(ब्रह्माण्ड २।३।७।२०-३१)

२. प० भगवद्दत्त के अनुसार ईरान के कवि फिरदौसी के शाहनामा मे यम वैवस्वत की सप्तम पीढ़ी मे कैर एसप (कुवलाश्व) राजा हुआ। इससे भी भारतीय परम्परा की पुष्टि होती है और सिद्ध होता है कुवलाश्व का राज्य अरब और ईरान तक विस्तृत था। (द्र० भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ७३)

उनकी पुत्री हैमवती या दृषद्वती कहलाती थी। कृशाश्व की पत्नी भी ऐसी ही एक हैमवती दृषद्वती थी[1]—

तस्य हैमवती कन्या सता माता दृषद्वती। (हरि० १.१२।४)

१८. **प्रसेनजित्**—कृशाश्व और हैमवती दृषद्वती का पुत्र प्रसेनजित् हुआ, इसका अनुमानित समय १०६०० वि०पू० था।

प्रसेनजित् की कन्या सुयशा का विवाह पुरु की दशम पीढी मे हुए पौरव राजा महाभौम चक्रवर्ती मे हुआ। अत. पौरव महाभौम और प्रसेनजित् समकालीन नृपति थे, जिनका समय ११००० वि०पू० से १०६०० वि० पू० के मध्य था।

१६. **युवनाश्व द्वितीय**—महाभारत (१।६५।२७) के अनुसार पौरव महाभौम की सप्तमी पीढी मे पौरववश मे प्रसिद्ध अतिनार या मतिनार राजा हुआ, जिसकी पुत्री गौरी से युवनाश्व द्वितीय ने विवाह किया। पौरवश मे महाभौम से मतिनारपर्यन्त इतने राजा हुये—

१. महाभौम
२. अयुतनायी
३. अक्रोधन
४. देवातिथि
५. अरिह
६. ऋक्ष
७ मतिनार

यह अत्यन्त आश्चर्यजनक तथ्य है कि पुराणो मे जिस पौरववश के राजा इक्ष्वाकुवंश के राजाओ की अपेक्षा केवल लगभग आधे है, उस वश की ७ पीढियो के मध्य मे इक्ष्वाकुवंश मे केवल प्रसेनजित् और युवनाश्व ही हुये। प्रतीत होता है यहा पर प्रसेनजित् से युवनाश्व द्वितीय के मध्य कुछ

---

१. केवल नारद के भागिनेय पर्वत (राजर्षि) की पुत्री पार्वती कहलाई, जो शिव को ब्याही। कुछ विद्वानो के मत मे गगा का पुरातन नाम दृषद्वती था—द्र० प० उदयवीर शास्त्री ने महाभारत के प्रामाण्य से लिखा है कि दृषद्वती गंगा ही थी—दृषद्वती चाप्यवगाह्य...ते विविशुर्गंजसाह्वयम्...शा० ५८।२८-३० द्र० सां० द० इ०, पृ० ८७)

पीढियो के नाम छूट गये है, भले ही ऐक्ष्वाक राजा कितने ही दीर्घजीवी रहे हो।

२० **मान्धाता**—यह युवनाश्व द्वितीय का अत्यन्त प्रतापी पुत्र था, जिसका राज्यविस्तार उतना था जितना उन्नीसवी शती मे अंग्रेजो का, सम्भवत· वर्तमान योरोप, अफ्रीका और एशिया का बडा भूभाग इसके राज्य के अन्तर्गत था,[१] जिन्हे पाताल या रसातल कहा जाता था, इन रसातलो का परिचय पूर्वपृष्ठों पर लिखा जा चुका है। सम्राट् मान्धाता ने स्वय जाकर पातालविजय की थी, जहा असुरो एव नागो का राज्य था।[२] मान्धाता का जन्म अपने पिता की कुक्षि (उदर) से हुआ था, सभी पुराणो, महाभारत एव अश्वघोष[३] जैसे कवियो ने इसे तथ्य माना है, परन्तु पार्जीटर[४] और प० भगवद्दत्त[५] आदि इसे सर्वथा काल्पनिक कथा समझते है। आधुनिकयुग मे ऐसी अनेक घटनाये प्रकाशित हो चुकी है[६] कि अमुक व्यक्ति (पुरुष) के उदर से भ्रूण निकला, तब प्राचीनयुगमे ऐसी घटनापर अविश्वास क्यो किया जाय। परम वैद्य देवराज इन्द्र ने, जो उस समय तक जीवित था (६००० वि०पू०), शिशु मान्धाता का औषधोपचार किया और उसके पिता युवनाश्व को भी जीवित रखा।[७] मान्धाता के जन्म का यह अद्भुत इतिहास केवल इसीके साथ सम्बद्ध है, अन्य किसीके साथ नही। अत· इसे केवल ब्राह्मणो की कपोलकल्पना नही माना जा सकता।

---

१ यावत्सूर्य उदेति यावच्च प्रतितिष्ठति। सर्व तद्यौवनाश्वस्य माधातु क्षेत्रमुच्यते वायु० ८८।६८)

२ मांधाता मार्गणव्यसने सपुत्रपौत्रो रसातलमगात् (हर्षच० तृ० उच्छ्वास)

३. बुद्धचरित (१।१०)

४ पार्जीटर A.I H.T.P. 165

५ भा० बृ० इ०, भा० २, (पृ० ७४)

६ हिन्दुस्तानदैनिक १६८१, नवम्बर १७, मे यह छपा है कि पटना मैडिकल कालेज मे छ·वर्षीय बालक के पेट से २३० कि० ग्रा० का ७८ से० मी० लम्बा भ्रूण डाक्टरो ने निकाला।

७ मान्धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात्।
न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः॥ (भागवत ९।६।३१-३२)

मान्धाता का समय

वायुपुराण,[1] ब्रह्माण्डपुराण और मत्स्यपुराण के अनुसार—

पंचमः पचदश्या तु त्रेताया संबभूव ह।
मान्धाता चक्रवर्ती तु तदोतङ्कपुर.सरः॥

पंचदश त्रेतायुग का अर्थ है मान्धाता दक्ष प्रजापति से ४६०० (३६०×१४=५०४०) या लगभग पाच सहस्र वर्ष पश्चात् अर्थात् ६००० विपू० या भारतयुद्ध से ६००० वर्ष पूर्व और आज से ११००० (ग्यारहसहस्र) वर्षपूर्व हुये, क्योकि युग का मान ३६० वर्ष निश्चित था। व्यास ने वायुपुराण मे गणना इसी युगपद्धति के अनुसार की थी। माधाता को पन्द्रहवे युग के आदि में और चौदहवेयुग के अन्त मे मानने पर ६००० वि० पू० यह समय आता है।

मान्धाता के समकालीन राजा—इतिहासपुराणो के प्रामाण्य से ज्ञात होता है कि निम्न राजा और ऋषि मान्धाता के समकालीन थे—

राजा	ऋषि
अगार गान्धाराधिपति[2]	कण्व
मरुत्त चक्रवर्ती	सौभरि काण्व
असित (धान्व असुरसम्राट्)	काण्व मेधातिथि
जनमेजय[3]	सवर्त आङ्गिरस
सुधन्वा	दीर्घतमा मामतेय
गय	अप्रतिरथ पौरव
अग बृहद्रथः	उतथ्य[4] या उतक

१ वायु० (८८।६०)

२. यश्चाङ्गार तु नृपति मरुत्तमसित गयम्। अङ्ग बृहद्रथ चैव माधाता समरेऽजयत। यौवनाश्वो यदाङ्गार समरे प्रत्ययुध्यत (महा० १२।२८।८८-८६)

३ जनमेजय सुधन्वान गय पुरु बृहद्रथम्। असित च नृग चैव माधाता मानवोऽजयत्॥ (द्रोणपर्व ६२।१०)

४ उतथ्य या उतक मान्धाता के पुरोहित थे, मान्धाता को विष्णु का पचम अवतार माना जाता था। यह उतक वही थे या अन्य जो धुन्धुवध मे निमित्त बने, कहा नही जा सकता, वैसे ऋषि दीर्घजीवी होते थे अत. एक ही उतंक सम्भव है। कुवलाश्व और मान्धाता मे दशपीढी और लगभग १००० वर्ष का अन्तर था, ऋषि आयु उतनी सभव थी।

पुरु	पौरव (राजा)
नृग	त्र्य्यारुण व्यास (पंचदश)
शशिबिन्दु	(पं० भगवद्दत्त भ्रम से इसे ऐक्ष्वाक त्र्यारुण समझते हैं)

राजा अगार उत्तरी सीमान्त (गान्धार) का शासक था, जो द्रुह्यु की चौथी पीढी मे हुआ, उसका पुत्र गान्धार हुआ, जिससे देश का नाम पडा। मरुत्त मानव, प्राशु कुल का अतिप्रतापी राजा था। पार्जीटर ने मरुत्त को मान्धाता के बहुत उत्तरकाल मे माना है जो भ्रामक है। महाभारत के साक्ष्य के सम्मुख पार्जीटर की कल्पना कोई मूल्य नही।[1] प० भगवद्दत्त असित की पहिचान नही कर कके।[2] इस राजा असित का उल्लेख महाभारत के उक्त श्लोक (शा० २८।८८) के अतिरिक्त इतिहासपुराणो मे अन्यत्र कही नही मिलता, अतः इसकी पहिचान निश्चय ही दुष्कर कार्य है। परन्तु शतपथ ब्राह्मण मे असित धान्व असुरो का प्रधान और प्रमुख शासक या आदिम राजा था—'असितो धान्वो राजेत्याह तस्यासुरा विश.।[3]" यह असुर सम्राट् असित धान्व रसातल ता पातालवासी आसुरी प्रजाओ का शासक था, इसीको जीतने के लिये मान्धाता ने पातालगमन किया होगा। यह माधातृकृत पातालविजय का इतिहास महाकवि बाणभट्ट के समय तक विख्यात घटना थी। अत· अषित धान्व असुर पाताल सम्राट् के अतिरिक्त और कोई नही हो सकता, जिसे मैगस्थनीज डायनोसिस (धान्व का अपभ्र श) कहता है और जिसका समय वह सिकन्दर से ६४५१ वर्ष पूर्व मानता था,[4] जो पुराणगणना के निकट और तत्सम्मत है। मैगस्थनीज की गणना से धान्व (डायनोसस) का समय ८७६० वर्ष पूर्व निकलता है।

पौरव मतिनार मान्धाता के मातामह (नाना) थे, मतिनार का पुत्र

१. A I H T. (p. 145 and p. 141-142—"Mandhata conquerened the Anga Brahdrath, who was long posterior.

२. 'असित—मान्धाता का समकालीन यह कौन राजा था, इसका हम निश्चय नही कर सके।'' (भा० बृ० इ०, भा० २, पृ० ८१)

३. श० ब्रा० (१३।४।३।१२), स्वय पण्डितजी ने इसका परिचय वैदिक वाङ्मय का इति० (प्रथम भाग, पृ० ८३) पर लिखा है 'विरोचन का पुत्र शम्भु और उसकापुत्र धनुकधनु था। धनु के वंश मे धान्व हुये। असित उनमे से कोई एक था।''

४. भा० बृ० इ०. भाग १ (पृ० १६०) पर मैगस्थनीज के उद्धरण।

और दुष्यन्त पौरव का पितामह तंसु मान्धाता का समकालीन था। पार्जीटर भरत दौष्यन्ति को मान्धाता की २३वी पीढ़ी पर रखता है,[1] जो सर्वथा भ्रामक कल्पना है। प० भगवद्दत्त ने ठीक ही लिखा है "भरत उनसे २३ पीढी नही, प्रत्युत् पांच छः पीढी पश्चात् हुआ।" इसी प्रकार पुरुवशी पौरव बृहद्रथ आङ्ग नरेश मान्धाता के समकालीन था, जिसे मान्धाता ने जीता था तथा दीर्घतमा मामतेय ने बृहद्रथ आङ्ग और भरत दोनो को ही ऐन्द्र महाभिषेक कराया था, यद्यपि बृहद्रथ भरत से छः पीढ़ी पूर्व हुआ था। इसका कारण मामतेय दीर्घतमा १००० वर्ष तक जीवित रहा, इसका विवरण 'दीर्घजीवी पुरुष' अध्याय मे प्रस्तुत कर चुके हैं।

अमूर्तरयस् का पुत्र गय मान्धाता के समकालीन था, ये सभी पूर्वी भारत के शासक थे, गय के नाम से गया तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

मान्धाता के समकालीन जनमेजय और सुधन्वा का परिचय अज्ञात है, परन्तु नृग, सम्भवत मनुपुत्र नृग की पाचवी पीढ़ी मे हुये ओघवान् का पौत्र नृग द्वितीय था, जिसका महाभारत अनुशासनपर्व (२।३८) मे उल्लेख है—

> अथौघवान् नाम नृपो नृगस्यासीत् पितामह. ।
> तस्यौघवती कन्या पुत्रश्चौघरथोऽभवत् ॥

पौरव मतिनार के पुत्र अप्रतिरथ के पुत्र कण्व वेदप्रवर्तक ऋषि थे, उनके वश मे सौभरि, मेधातिथि आदि अनेक काण्व ऋषि हुये। सौभरि काण्व, या तो कण्व के पुत्र थे या पौत्र। ऋग्वेद (५।२७)[2] के अनुसार मान्धाता पौत्र त्रसदस्यु ने सौभरि काण्व को पचासकन्याये ब्याही, जबकि विष्णुपुराण (४।२) मे कन्याओ का पिता मान्धाता बताया है। परन्तु पं० भगवद्दत्त वेद मे इतिहास न मानने कारण विष्णुपुराण के मत को मानते हैं।[3] अतः कण्वादि ही मान्धाता के समकालीन थे न कि पौत्रादि सौभरि, क्योकि उनका विवाह मान्धातृपौत्र त्रसदस्यु के समय हुआ, जबकि वे युवा थे। प० भगवद्दत्त का यह मत भी, जो रामायण (७।६७।२१) के आधार

---

१ द्र० प्रा० भा० परम्परा (१४५ पर द्रष्टव्य सूची)

२. "अदान्मे पौरुकुत्स्यः पंचाशत त्रसदस्युर्वधूनाम् यह स्वय सौभरि ऋषि मन्त्र मे कहता है, अत ऋग्वेद के प्रामाण्य के सम्मुख विष्णुपुराण का मत त्याज्य है।

३. सौभरि के साथ मान्धाता की ५० कन्याओ का विवाह हुआ (भा० वृ० इ०, भा० १, (पृ० ८३)

पर लिखा है कि 'मान्धाता लवण से मारा गया।'[१] रामायण उत्तरकाण्ड के क्षेपक कितने भ्रामक है यह दुहराने की आवश्यकता नही है, पुनः सोचने की बात है मान्धाता की ४४ पीढी पश्चात् होने वाले दाशरथि राम के भ्राता शत्रुघ्न द्वारा घातित लवणासुर मान्धाता का वध कैसे कर सकता है। मान्धाता राम से ४००० वर्ष पूर्व हो चुका था। अन्य किसी ग्रन्थ मे भी इस घटना का सकेत तक नही है, अत. रामायण के इस अनर्गल प्रलाप पर पण्डितजी ने कैसे विश्वास कर लिया यह हमारी बुद्धि से परे है, यही भूल पण्डितजी ने प्रतर्दन को राम के समकालीन मानकर की है, जिसका अन्यत्र विस्तृत विवेचन किया जायेगा, यह सम्भवत सीतानाथप्रधान के प्रभाव के कारण है, जो सभी प्राचीन राजाओ को रामकाल मे घुसेडते है।[२]

मान्धातासन्तति—इतिहासपुराणो मे मान्धाता की सन्तति का जो विवरण मिलता है, वह इस प्रकार है—

मान्धाता
- पुरुकुत्स
  - त्रसदस्यु
    - सभूत
      - अनरण्य
      - विष्णुवृद्ध
      - हारीत (आङ्गिरस)
- अम्बरीष
  - युवनाश्व तृतीय
    - हरित
- मुचकुन्द

क्षत्रब्रह्म- आदिकाल मे वर्णव्यवस्था सुदृढ नही थी, अम्बरीष और उसके वशज हरितादि प्रसिद्ध आङ्गिरस ब्राह्मण प्रथित हुये। सामान्यजनों को केवल विश्वामित्र का उदाहरण ही ज्ञात है, परन्तु ऐसे सैकडो उदाहरण थे जबकि क्षत्रवर्ण ब्राह्मणवर्ण बन गया और ब्राह्मणवर्ण क्षत्रवर्ण बन गया। युवनाश्वतृतीय के पुत्र हरित आङ्गिरसगोत्र के ब्राह्मण बन गये, जो भारतोत्तरकाल तक हारीत नाम से प्रसिद्ध रहे। इसी प्रकार विष्णुवृद्ध या विष्णु ऐक्ष्वाक के किसी वशज ने विष्णुस्मृति लिखी।

१ भा० वृ० इ०, भा० १, (पृ० ८४)
२ Chronology of ancient India

मुचुकुन्द—पुराणों मे मान्धाता के तृतीय पुत्र मुकुचुन्द के सम्बन्ध मे यह गपोडा ठोक रखा है कि वह देवासुरयुद्ध मे थककर पर्वत गुहा मे छिप कर सोता रहा और द्वापरान्त मे कृष्ण के द्वारा कालयवन का वध मुचुकुन्द के चाक्षुषतेज से हुआ।[1] यह मुचुकुन्द ऐक्ष्वाक मुचुकुन्द न होकरकृष्ण का पूर्वज यादव मुचुकुन्द था, जिसका उल्लेख हरिवंशपुराण (२।३८।२) मे मिलता है कि हर्यश्व ऐक्ष्वाक नाम का इक्ष्वाकुवंशीपुरुष मधुपुर मे यादव मधु की शरण मे आया, जहा उसने मधु की पुत्री मधुमती से विवाह करके यदु नामक पुत्र उत्पन्न किया, इस यदु के पाच पुत्रों मे एक मुचुकुन्द था,[2] जो कृष्ण से लगभग ३० पीढी पूर्व एव दाशरथि राम के समकालीन था, यह मुचुकुन्द विन्ध्यप्रदेश का शासक था।[3]

पुरुकुत्स—पुराणो मे इतिहास मानने के कट्टर विरोधी और मैकाले योजना के महान् स्तम्भ मैकडानल के कुख्यात शिष्य कीथ ने वेदमन्त्रो से अनर्गल इतिहास निकाला है, इसके कारण कुछ निष्पक्ष पार्जीटर भी भ्रम मे पड गया और तदनुयायी तथाकथित भारतीय इतिहासज्ञो को तो भ्रम मे पडना ही था, अत भ्रमनिवारणार्थ सर्वप्रथम उपर्युक्त लेखको के मतों का प्राक्दिग्दर्शन करना आवश्यक है—

1 The earlier prince (of the purus) recorded seems to have been Durgaha, who was succeeded by Girikshit, neither of these being more than names The son of Girikshit, Purukutsa, was the contemporary of Sudas, and one hymn tells in obscure phrase of the distress to which his wife was reduced by some misfortune, from which she was relieved by the birth of son, Trasadasyu. (Cambridge History of India IV)

2 The various names indicate the following geneology of the Puru kings : Durgaha—Girikshit—Purukutra—Trasadasyu Purukutsa is mentioned as a contemporary of Sudas and a

---

१. मान्धातुस्तु सुतो राजा मुचुकुन्दो महायशा। (हरि० २।५७।४३)
सुष्वाप कालमेत वै यावत्कृष्णस्य दर्शनम्॥ (हरि० २।५७।४७)

२. मुचुकुन्द महाबाहु पद्मवर्ण तथैव च।
माधव सारस चैव हरित चैव पार्थिवम्। (हरि० २।३८।२)

३. मुचुकुन्दश्च राजर्षिविन्ध्यमध्यरोचयत्।
स्वस्थान नर्मदातीरे दारुणोपलसंकटे॥ (हरि० २।३८।१४)

conqueror of the Dasas, a son Trasadasyu is said to have been born to Purukutra at a time of great distress, probably indicating his death of capture in the famous Dasarajna. The mention of Sudas or Divodasa and Purukutsa or Trasadasyu in a friendly relationis, some passages of the Rigveda suggests the union of the Tristus, Bharatas and Purus to form the Kurus. The name "Kuru" is not directly mentioned in the Rigveda, but the amalgamation of these reval tribes in later Vedic period, under Kuru is implied by the name Kurusravana king of the Puru line, as shown by his patronymic Trasada syua (R. X 3²4)... Vedic Age chapter XIII .. Aryan Settlements in India by A D Pusalkar, p. 250).

3 Purukutsa and his son Trasadasyu were kings of Ayodhya The Rigveda (IV,42.8,9) mentions a king Trasadasyu, son of Purukutra, who is a different and later person The former Purukutsa was son of Mandhatr. of the Aiksvaku Genealogies show; The later is called Durgaha and Gairikshita son or descendant of Durgaha and Giriksit. The former Trasadaeyu was prior to Bharata as the synchronims in chapter XIII show the latter Trasadasyu was contemporary with Aswamedha Bharata and is praised bv Sobhari Kanva. Asvamedha was a descendent out of Bharata, and the Kanvas sprang from Bharata's descendant Ajamidha, as will be shown in chapter XIX; hence the latter Trasadasyu was far later than the former There were thus two Purukutra with sons named Trasadasyu (Ancient Indian Historical Tradition by F.E, Pargiter. p. 133).

उपर्युक्त मतो की आलोचना करने के पश्चात् प० भगवद्दत्त ने आशिक रूप से उपर्युक्त मतों का सशोधन किया है, हम उपर्युक्त तीनो इतिहासज्ञो (कीथ, पुसाल्कर और भगवद्दत्त) की आलोचना करने से पूर्व पं० भगवद्दत्त का मत लिखते हैं—

वेदो मे मानुष इतिहास ढूंढने का यह विभ्रष्ट परिणाम है। कारण—

१. ये राजा पुरु नही थे। पुरुकुत्स नाम मे पुरु पद देखकर कीथ आदि नेअसत्य अनुमान किया है। ये ऐक्ष्वाक राजा थे।

२. ये सुदास के समकालिक नही थे ।

३. इनको पुरु मानना और इन्हें इक्ष्वाकु से पृथक् कर देना इतिहास-विरुद्ध है ।

४. जिन ऋषियों ने वेदमन्त्रों पर प्रवचन दिये, उन्होंने ही इतिहासपुराण लिखे । यदि वे वेद में इतिहास मानते, तो वशावलियो मे विपरीत परम्परायें न देते । (भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग २, पृ० ६६)

वेद मे इतिहास मानने के पक्ष में प्राचीन भारतीय सनातनपरम्परा एकमत (सर्वसम्मन) है, ब्राह्मणग्रन्थो, यास्क शौनक से सायणतक के वेदाचार्य इसमे प्रमाण हैं । परन्तु प० भगवद्दत्त के उपर्युक्त शेष तीन परिणाम सत्य है और चतुर्थ आंशिक सत्य है कि वेदो और इतिहासपुराणो के रचयिता ऋषिसमान या एकही थे । हां, वेदमन्त्रो मे उल्लिखित ऐतिहासिक घटनाओ का निष्कर्ष निकालने मे अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है. इस सम्बन्ध मे ज्ञातव्य है कि सायण जैसे अर्वाचीन ही नही वाजसनेय याज्ञवल्क्य, ऐतरेय ऋषि, यास्क और शौनक जैसे प्राचीन आचार्य भी भूल कर सकते थे, जैसा कि अन्यत्र सकेत किया जायेगा । मन्त्रोक्त इतिहास के सम्बन्ध मे प्राचीन आचार्यों मे भी पर्याप्त मतभेद थे । अतः वेदमन्त्रो से निर्भ्रान्त इतिहास निकालना अत्यन्त दुष्कर कर्म है, फिर कीथ जैसे मतान्ध की क्या बिसात है ।

कीथ के भ्रामक मत से पार्जीटर भी मोहित हो गया । और उसने दो पुरुकुत्सों और तत्पुत्रो-दो त्रसदस्युओ की कल्पना की । वेदमन्त्रो मे एक ही पुरुकुत्स का उल्लेख है जो ऐक्ष्वाक सम्राट् मान्धाता का पुत्र और त्रसदस्यु का पिता था । सौभरि काण्व ने ऐक्ष्वाक राजा त्रसदस्यु की प्रशसा की है ।[1]

अत पार्जीटर के निम्न परिणाम भ्रामक हैं—

१. कि ऋग्वेद (४।४२।८)[2] में उल्लिखित त्रसदस्यु ऐक्ष्वाक त्रसदस्यु से से पृथक् और उत्तरकालीन व्यक्ति था ।

---

१. तमागन्मे सोभरया सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिभिः सम्राज त्रासदस्यवम् ।
अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशत त्रसदस्युर्वधूनाम् (ऋ० ८।१९।३२, ३६)

२. सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने --(ऋ०) ।
त आयजन्तत्रसदस्युम् ॥ (तथा श० ब्रा० ३।५।४।५) पुरुकुत्स्यो दौर्गहेणेजे ऐक्ष्वाको राजा ।

२ सौभरि काण्व ने तथाकथित पौरव पुरुकुत्स तथा त्रसदस्यु की प्रशसा की है ।

३. अश्वमेघ भरत का वशज था ।

४. काण्व अजमीढ के वशज थे ।

यह मान्धाता के प्रसग मे लिख चुके है कि मान्धाता के पिता युवनाश्व से पौरव सम्राट् मतिनार की पुत्री गौरी का विवाह हुआ था । मतिनार का पौत्र और अप्रतिरथ का पुत्र कण्व हुआ, इसी कण्व के वशज सोभरि, मेघातिथि आदि हुये । अजमीढ पौरव उत्तरकालीन राजा था, जिसके किसी पुत्र ने कण्वगोत्र ग्रहणकरलिया अत वह भी काण्व कहलाया, अतः सौभरि काण्व ऐक्ष्वाक मान्धाता पुत्र त्रसदस्यु का समकालीन था ।

मन्त्र मे जिस राजा अश्वमेघ का उल्लेख है, उसका मन्त्र मे सकेत नही है कि वह किस वश का था और यदि वह किसी भरत का वशज था तो यह निश्चित नही है कि वह भरत पौरव ही हो, अत ऐसी स्थिति मे मन्त्र से निश्चित इतिहास नही निकाला जा सकता ।

इसी प्रकार उपर्युक्त सूक्त (ऋ० ५।२७) मे उल्लिखित त्रैवृष्ण त्र्यरुण को यद्यपि सर्वानुक्रमणी मे राजा[1] कहा गया है, परन्तु मन्त्र मे ऐसा सकेतमात्र भी नही है । यदि मन्त्रोक्त (ऋ० ५।२७।१) त्र्यरुण राजर्षि भी हो तो, वह न तो पौरव राजा था (जैसा कि कीथ मानता है) और न वह हरिश्चन्द्र का पितामह और त्रिशकु का पिता त्र्यरुण हो सकता जिसका पुरोहित वृशजानमशक ऋषि था ।[2] इस सम्बन्ध मे प० भगवद्दत्त ने एक भ्रामक प्रस्थापना प्रवर्तित करने का प्रयत्न किया है कि यह (पन्द्रहवा व्यास) सम्भव है यह त्र्यारुण ऐक्ष्वाक राजा हो ।[3] त्र्यारुण (त्रय्यारुण) व्यास (पन्द्रहवा) सत्यव्रत (त्रिशकु) का पिता नही हो सकता । क्योकि यह त्र्यरुण पुरुकुत्स या त्रसदस्यु ऐक्ष्वाक के समकालीन था, जैसे कि वेदमन्त्र से भी सिद्ध है ।[4] पुरुकुत्स से आठवी या नौवी पीढी में होने वाला राजा त्र्यरुण ऐक्ष्वाक किस प्रकार पुरुकुत्स का समकालीन हो सकता है यह बुद्धिगम्य नही

---

१ त्र्यरुणत्रसदस्यू राजानौ (सर्वा० ५।२५)

२ ऐक्ष्वाकुस्त्र्यरुणो राजा त्रैवृष्णो रथमास्थित: । सजग्राहाश्वरश्मीश्च वृशो जान पुरोहित (बृहद्दे० ५।१४)

३. भा० बृ० इ०, भा० २, (पृ० १०००)

४. ऋ० (५।२७।३)

है। पुत्र या पौत्र तो समकालिक हो सकता है, परन्तु आठवी पीढी का वशज पुरुकुत्स या मान्धाता का समकालिक व्यास नही हो सकता। अतः पन्द्रहवा व्यास[1] त्र्यरुणऋषि त्रिशकु का पिता नही, वह मान्धाता के युग (पन्द्रहवा युग) मे होने वाला कोई ऋषि था। पुराणो मे मान्धाता को पन्द्रहवें युग में विष्णु का पंचम अवतार माना गया है।[2] अतः मान्धाता के समकालीन त्र्यरुणव्यास (ऋषि) का समय ९००० वि० पू० था। यह त्र्यरुणव्यास पुरुकुत्स और त्रसदस्यु के समय तक जीवित था जैसा कि ऋग्वेद के मन्त्र (५।२७।३) से प्रमाणित है। पुराण से भी इस समय की पुष्टि होती है।

सुदास और दाशराज के सम्बन्ध मे मौलिक उद्भावना एव स्थापना काशिराज प्रतर्दन दैवादासि का समय निर्धारित करके समय की जायेगी। यहा पर इतना ही सकेत पर्याप्त रहेगा कि प्रतर्दन, दाशराज्ञयुद्ध, प्रथम और पैजवन सुदास ऐक्ष्वाक मे न्यूनतम दो सहस्रवर्षों का अन्तर था।

पुरुकुत्स की पत्नी नर्मदा नागकन्या थी, अपने पिता का अनुसरण करते हुए पुरुकुत्स भी रसातल मे विजयार्थ गया, जहा उसने असुरगन्धर्वों को परास्त किया।[3]

२२ त्रसदस्यु

पुरुकुत्स का पुत्र त्रसदस्यु हुआ। पितापुत्र दोनो ही वेदमन्त्रो के द्रष्टा थे। ऋग्वेद के ४।४२ व ९।११० सूक्तो का द्रष्टा त्रसदस्यु है।

त्रसदस्यु का समय सौलहवेयुग अथवा ८७०० वि० पू० समझना चाहिये। ऋग्वेद (८।१९ (३६) से ज्ञात होता है कि इसी त्रसदस्यु ने सौभरिकण्व को पचास कन्याये दान मे दी, जिनसे ऋषि ने विवाह किया। विष्णुपुराण ने इस घटना का सम्बन्ध मान्धाता से जोडा है जो भ्रामक है।[4] प० भगवद्दत्त विष्णुपुराण के मत को प्रामाणिक मानते है, जो सर्वथा अलीक है, वेदमन्त्र के सम्मुख विष्णुपुराण का मत हेय एवं त्याज्य है।

---

१ तत प्राप्ते पचदशे परिवर्ते क्रमागते त्र्यारुणिस्तु यदा व्यासः। (वायु० २३।१९६)

२ पंचम पंचदश्यां तु त्रेताया सबभूव ह मान्धाता चक्रवर्ती.. ...। (मत्स्य० ४७।२४३)

३ रसातलगतश्चासौ—गन्धर्वान्निजघान।

४. वि०पू० (४।२।६८)

त्रसदस्यु का एक पुत्र कुरुश्रवण[1] था जिसकापुराणो मे उल्लेख नही है और यह अनिवार्य भी नही था। प्राचीनराजाओ के शताधिक[2] पुत्र होते थे, उन सबका नाम उल्लेख पुराणो मे नही हो सकता। पुसाल्कर ने कीथ का अन्धानुकरण करते हुये कुरुश्रवण को पुरुवश या कुरुवश का माना है, जिसको अनर्गल प्रलाप और इतिहासविरुद्ध के अतिरिक्त और कुछ नही माना जा सकता।[3] पं० भगवद्दत्त कुरुश्रवण को ऐतिहासिक पुरुष ही नही मानते। अतः उन्होंने लिखा—'उपलब्ध ग्रन्थो मे त्रसदस्यु का पुत्र कुरुश्रवण नामक राजा दिखाई नही देता।'[4] जब स्वय ऋग्वेद (१०।३३।४) मे कुरुश्रवण त्रासदस्यव का उल्लेख है तब अन्य ग्रन्थो मे उल्लेख की क्या आवश्यकता है, पुन ऋग्मन्त्र की पुष्टि बृहदेवता[5] (७।३५) मे शौनक ने की है।

कुरुश्रवण का पुत्र संभवतः उपमश्रवा था, इसको मैत्रातिथि या मित्रातिथि का पुत्र कहा गया है।[6] मित्रातिथि सभवतः त्रसदस्यु या पुरुकुत्स का नाम था। मित्रातिथि के मरने पर कवष एलूष ऋषि ने उपमश्रवा का शोक दूर किया। अत कवष ऋषि त्रसदस्यु के समकालिक था।

२३. **संभूत**—यह त्रसदस्यु का उत्तराधिकारीपुत्र था, जिसका अनुमानित समय ८६५० वि०पू० था।

२४. **अनरण्य द्वितीय**—यह सभूत का पुत्र था। इसका समकालीन कोई रावण था अर्थात् किसी राक्षसेन्द्र से अनरण्य द्वितीय का युद्ध हुआ, यह निश्चय ही कोई ऐतिहासिक घटना थी, जिसका उल्लेख अनेक पुराणो[7] मे

---

१. कुरुश्रवणमावृणि राजान त्रासदस्यवम् (ऋ० १०।३३।४)

२ द्र०—तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः (ऐ० ब्रा० ८।)

३. Vedic Age (पृ० २५०)

४. भा० बृ० इ०, भा० २. (पृ० ६८)

५. "कुरुश्रवणमर्चतः परे द्वे त्रासदस्यवम्।"

६ (क) अधि पुत्रमुपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिह। पितुष्टे अस्मि वन्दिता।

(ख) मृते मित्रातिथौ राज्ञि—उपश्रवसम् (बृह० ७।३५,२६)

(ग) मृते मित्रातिथौ राज्ञि तत्स्नेहादृषिरुपमश्रवस पुत्रमस्य व्यशोकयत्।

७. वि० पू० (४।३।१७), वायु० (८८।७५) तथा रा० (७ सर्ग २१)

है। परन्तु इसको दशमुख रावण, जिसका वध दशरथिराम ने किया, मानना पूर्णतः इतिहासविरुद्ध एव असम्भवकल्पना है। उत्तरकालीन क्षेपककारों ने भ्रमवश किसी पुरातन राक्षसेन्द्र को रावण बना दिया। अत. अनरण्य और दशमुख की समकालिकता एक अतथ्यमूलक कल्पना है, अनरण्य का समकालिक कोई प्राचीनतर राक्षसराज होगा। अनरण्य का समय ८६०० वि० पू० और रावण का समय ५००० त्रि० पू० था। अतः इनके समय मे तीनसहस्रवर्षों या नौयुगो (३६०६=३०६० वर्षों) का अन्तर था।

२५. **त्रसदश्व**—इसका समय ८६०० वि०पू० से ८५५० वि०पू० था।

२३. **हर्यश्व, द्वितीय**—त्रसदश्वपुत्र हर्यश्व द्वितीय था, इसकी भार्या का नाम दृषद्वती[1] था, इसका तात्पर्य है यह गागेय या पार्वतीयप्रदेश के किसी राजा की पुत्री थी, गंगा ही प्राचीन दृषद्वती नदी थी।

२७ **वसुमना**—यह हर्यश्व का पुत्र था और इसकीमाता का नाम वायुपुराण (८८।७५) मे दृषद्वती लिखा है। परन्तु महाभारत, उद्योगपर्व मे एक विस्तृत कथा मिलती है, जो साथ मे अनेक ऐतिह्य सम्बन्धी जटिलताये भी उत्पन्न करती है, तदनुसार[2] विश्वामित्र के शिष्य गालव थे। इनके मित्र थे पक्षिराज (सुपर्ण) गरुड। महाभारत के इस आख्यान के अनुसार विश्वामित्र, गालव गरुड, ययाति नाहुष, इनकी पुत्री माधवी, ऐक्ष्वाक हर्यश्व द्वितीय, तत्पुत्र वसुमना, उशीनर, तत्पुत्रऔशीनर शिवि, काशिराज दिवोदास, तत्पुत्रप्रतर्दन, वैश्वामित्रअष्टक, बृहस्पति, वामदेव,[3] गौतम, इन्द्र, असुर अग्नि आदि पुरुष समकालीन थे। इनमे इन्द्र और बृहस्पति देव होने से दीर्घजीवी थे, परन्तु ययाति के साथ प्रतर्दनदैवोदासि विश्वामित्र, अष्टक, वसुमना और शिविऔशीनर की समकालीनता ऐतिहासिक समस्याये उत्पन्न करती है। इनकी समकालीनता न केवल उद्योगपर्व अपितु आदिपर्वान्तर्गत ययात्युपाख्यान से भी पुष्ट होती है।[5] यहां पर वसुमना

---

१ हर्यश्वात्तु दृषद्वत्यां जज्ञे वसुमान्नृपः। (वायु० ८८।७५)

२. द्र० महाभारत, उद्योगपर्व, गालवचरित (अ० ११२ से १२१ पर्यन्त)

३. महा० (१२।६७।२)

४ वही, (६२।३), द्र० आदिपर्व=ययात्यष्टकसंवाद (८६ अ० से ६३ पर्यन्त)

५. द्र० आदिपर्व—ययात्यष्टकसंवाद (८६ अ० से ६३ पर्यन्त)

के पिता नाम 'उषदश्व'[1] बताया गया है। उषदश्व निश्चय ही हर्यश्व का पर्याय है, अन्यथा हर्यश्व और वसुमना के मध्य एक और पीढी माननी पड़ेगी —'उषदश्व'।

पार्जीटर ने वसुमना को प्रतर्दन आदि के समकालीन नही माना, वह प्रतर्दन को आनव बलि, सगर ऐक्ष्वाक, वैशाल नरिष्यन्त, मरुत्त आदि के समकालीन रखता है,[2] जो सर्वथा इतिहासविरुद्ध एव भारतीय परम्परा की घोर अवहेलना है। इससम्बन्ध मे महाभारत के प्रामाण्य पर सहसा अविश्वास नही किया जा सकता। पार्जीटर[3] ने जो प्रतर्दन को मनु को ४१वी पीढी मे माना है, वह सर्वथा भ्रामक है। पुराणो के अनुसार प्रतर्दन मनु की १९ वी पीढी मे हुआ। यही अन्तर शिवि, अष्टक वैश्वामित्र आदि का था। पुराणो के अनुसार इक्ष्वाकु से वसुमना मे २७ पीढियो का अन्तर है। काशिवशज की दो चार पीढ़िया छोड दी गई हो अथवा दीर्घजीवन के कारण भी अन्तर न्यून हो जाता है। अत ययाति प्रजापति (प्रचेता) मे दशमी पीढी[4] मे हुआ। यह ययाति ऐक्ष्वाक राजा अनना और पृथु के समकालिक था। ययाति का राज्यकाल इन्द्र (सप्तमयुग) के समकालीन (१२२०० वि०पू० से ११००० वि०पू०) था, क्योकि ययाति और इन्द्र से पूर्व स्वर्ग मे नहुष का राज्य था। उसका राज्यकाल भी अत्यन्त दीर्घकालीन था। महाभारत मे बारम्बार सहस्रवर्ष की जरावस्था और यौवन का उल्लेख है।[5] राज्यत्याग के अनन्तर भी वह एकसहस्रवर्षपर्यन्त वन मे तपश्चर्या करता रहा।[6] पुन हिमालय के उत्तरीभाग त्रिविष्टप सज्ञक भौम स्वर्ग मे इन्द्र के साथ दीर्घकालतक रहा, ऐसी श्रुति (इतिवृत्त) है।[7] ययाति के सम्बन्ध मे दीर्घकालजीवन की श्रुति केवल महाभारतलेखक की

---

१ पृच्छामि त्वा वसुमनौषदश्वि.। (महा० १।९३)

२ द्र० A.I H.T (पृ० १४५)

३ And the extra ordinary tale of Gālava aud Yayati's daughter to which was fabricated a seqeual about Yayati and his daughters sons (A 14 I T p. 73)

४ ययाति पर्वजोऽस्माक दशमो य. प्रजापते (आदिपर्व ७१।१)

५ जरा वर्षसहस्रं तु पुनर्दास्यामि यौवनम् (आदिपर्व ८४।१७,२३,२९)

६ पूर्ण वर्षसहस्र च एववृत्तिरभवन्नृप (वही, १।८६।१५)

७ अवसत् पृथिवीपालो दीर्घकालमिति श्रुतिः।

कल्पना नही। ययाति या उसके किसी भ्राता नाहुष (नहुषपुत्र) ने एक सहस्रवर्ष का दीर्घसत्र किया था।[1] ययाति का राज्यकाल सप्तम या अष्टमयुग (१२२०० वि० पू० से ११००० वि०पू०) मे था और वसुमना प्रतर्दन आदि सप्तदशयुग (६००० वि०पू० लगभग) मे थे; अतः ययाति का राज्यकाल लगभग एकसहस्रवर्ष और स्वर्गवास और स्वर्गपतन भी लगभग एक सहस्रवर्ष था। अत अपने राज्यकाल और यौवन के लगभग २००० वर्ष पश्चात् ययाति ने तपोवन मे प्रतर्दन वसुमना आदि से भेंट की।

अब रही समस्या ययाति की तथाकथितपुत्री माधवी और दौहित्र प्रतर्दन आदि की। हमारा विचार है कि यह माधवी ययाति के किसी वंशज मधु की पुत्री थी, जैसा कि नाम से भी प्रतीत होता है, पिता के नाम से राजकुमारियों के ऐसे नाम होते थे जैसे द्रुपद की पुत्री द्रौपदी, जनक की पुत्री जानकी, केकय की पुत्री कैकेयी, इसी प्रकार मधु की पुत्री माधवी थी। अतः प्रतर्दन वसुमना अष्टक और शिवि, ययाति के साक्षात् दौहित्र नही, किसी सुदूरसम्बन्ध से (मधुवशजामाधवी) दौहित्र थे। स्कन्दपुराण मे माधवी को गरुड के मित्र ब्राह्मण की पुत्री बताया है।[3] इससे हमारे सदेह की पुष्टि होती है कि माधवी ययाति की पुत्री नही थी, परन्तु ययात्यष्टक-सवाद एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसका अपलाप नही किया जा सकता।

कूर्मपुराण (उ० २०) के आख्यान से सिद्ध है कि वसुमना के समकालीन वामदेव, गौतम आदि ऋषि थे, इसकी पुष्टि महाभारतोल्लिखित वामदेव-वसुमनाः संवाद से भी होती है।[4] वामदेव गौतम के पुत्र थे। यहा पर वसुमना की उपमा ययाति नाहुष से दी गई है।[5] इस उपमा से ययाति और वसुमना की सगति भी सभावित प्रतीत होती है। वसुमना के समय (८५०० वि०पू०) इन्द्र के अतिरिक्त बृहस्पति आङ्गिरस जीवित थे।[6]

१. राजा वर्षसहस्राय दीक्षिष्यन्नाहुषः पुरा (बृहद्दे० ६।२०)

२ ...पतमानं ययातिम्। सप्रेक्ष्य राजर्षिवरोऽष्टकस्तमुवाच...।
(आदिपर्व ८८।६)

३. स्कन्दपुराण, नागरखण्ड (८०-८२)

४. राजा वसुमना नाम ज्ञानवान् धृतिवाञ्छुचिः। महर्षि परिपप्रच्छ वामदेव तपस्विनम। (शा० ९२।५)

५ हेमवर्णं सुखसीन ययातिमिव नाहुषम् (शान्तिपर्व ९२।५)

६. राजा वसुमना नाम कौसल्यो धीमतां वरः महर्षि किल पप्रच्छ कृतप्रज्ञं बृहस्पतिम्। (शान्ति० ६८।३)

वसुमना के समय मे अयोध्या का नाम कौसल नही था, यह उत्तरकालीन नाम था। पुराणों की इक्ष्वाकुवंशावली में भी किसी 'कोसल' राजा का उल्लेख नहीं है, स्पष्ट है, पुराणों मे अनेक प्रधान-अप्रधान राजाओ के नाम छूट गये हैं। दशरथ से पूर्व कोसलनाम का ऐक्ष्वाकराजा हो चुका था।

पुराणो मे इसका नाम वसुमान् और वसुमत् भी मिलता है, परन्तु प्राचीन या मूलनाम वसुमना ही था महाभारत के परायण से पुष्ट होता है।

२८. **त्रिधन्वा—(त्रिवृष्ण)**—पुराणो मे इसका नाम त्रिधन्वा[1] और वैदिकग्रन्थो मे यह नाम त्रिवृष्ण मिलता है—

१. वृशो वै जानस् त्र्यरुणस्य त्रैवृष्णस्यैक्ष्वाकस्य राज्ञ· पुरोहित आस (जै० ब्रा० ३।९४)

१ ऐक्ष्वाकस्त्र्यरुणो राजा त्रैवृष्णो रथमास्थित· (बृहद्दे० ५।१४) तथा ताण्ड्यब्राह्मण (१३।३।१२) तथा सायण ने भाष्य (ऋग्वेद ५।२) मे शाट्यायन ब्राह्मण से आख्यान उद्धृत किया है। क्योकि वैदिक ऐक्ष्वाक त्र्यरुण का पिता त्रिवृष्ण है और पुराणो मे उसका नाम त्रिधन्वा है, अतः त्रिवृष्ण त्रिधन्वा एक ही राजा का नाम था इनका पुरोहित जन का पुत्र वृशजानसंज्ञक था। यह वृशजान पुरोहित वासिष्ठब्राह्मण प्रतीत होता है, यद्यपि ऋग्वेद सप्तममण्डल के द्रष्टा ऋषिगण अत्रिवंशीय है। सप्तमण्डल के द्वितीय सूक्त का द्रष्टा कुमार आत्रेय या वृशजान कहा गया है।[2] प्रतीत होता है वासिष्ठ वृषगण या वृश एक ही पुरुष का नाम था। इस प्रसग से इस पौराणिक भ्रम का निवारण होता है कि सभी सूर्यवंशीय (ऐक्ष्वाक) राजाओ के पुरोहित आदिम या एक ही वशिष्ठ थे। एकमात्र ऋग्वेद, मण्डल ९, सूक्त ९७ के सूक्त के निम्नलिखित १० वसिष्ठ (या वशिष्ठवंशीय ऋषि द्रष्टा है—इन्द्रप्रमिति, वृषगण, मन्यु, उपमन्यु, व्याघ्रपाद्, शक्ति, कर्णश्रुद् मृडीक, वसुक, ओर पराशर (शाक्तय) इन सबको वासिष्ठ या वशिष्ठ भी कहा जाता था, इस भ्रम का मूल वेदमन्त्रो मे ही है जहा वशिष्ठ के वंशजो को वशिष्ठ और विश्वामित्र के वंशजो को विश्वामित्र कहा गया है, यही बात अत्रि, अगस्त्य, भरद्वाज, गौतम आदि के सम्बन्ध मे है, सभी

---

१ तस्य पुत्रोऽभवद्राजा त्रिधन्वा नाम धार्मिक.॥ (वायु० ८८।७६)

२. सर्वानुक्रमणी (५१)मे मैत्रावरुणि को वसिष्ठ और उनके वंशजो को भी 'वसिष्ठः' कहा गया है—"तृचवशिष्ठो पश्यदुत्तरान्नव पृथग्वसिष्ठा।"

ऋषियों के वंशज उसी गोत्रनाम से बिना तद्धितनाम से अभिहित किये जाते थे।

मूल प्रसंग वृशजान या वृषगण का था, वृश को ही वृष या वृषगण पढ़ा गया है, ऋग्वेद (९।९७।८) मे वृषगण का बहुवचन मे प्रयोग भी मिलता है—

"त वृषगणा अयासुः।"

स्पष्ट है मन्त्ररचना के समय ही अनेक वृषगण (वृषगण के पुत्र) या वृश वासिष्ठ जीवित थे। आदिमवृश (वृष) जनसञ्ज्ञक वासिष्ठ का पुत्र था, यही वृष, वृश या वृषगण[1] त्रिवृष्ण (त्रिधन्वा) ऐक्ष्वाक का पुरोहित था, अत इस तथ्य से एकवसिष्ठसम्बन्धी भ्रम मिट जाना चाहिये।

२९. त्र्यरुण (त्र्यारुण)

त्रिवृष्ण (त्रिधन्वा) का पुत्र त्र्यरुण या त्र्यारुण था। यह मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी था, जिसने ऋग्वेद के सूक्त ५।२७ और ९।११० का दर्शन किया था। इन दोनो सूक्तो के कुछ मन्त्रो का द्रष्टा पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु ऐक्ष्वाक कहा गया है, परन्तु त्र्यरुण और त्रसदस्यु समकालीन राजा नही थे। त्र्यरुण त्रसदस्यु की न्यूनतम आठवी पीढी पश्चात् हुआ, अत वैदिक मन्त्रो से इतिहास निकालने मे भ्रम हो सकता है। एक ही सूक्त मे दो असमकालीन राजर्षियो के मन्त्र क्यो रखे, यह तथ्य अज्ञात है।

हम पूर्वपृष्ठो पर प्रतिपादित कर चुके है कि पन्द्रहवा व्यास त्र्यारुण मान्धाता के समकालीन ऋषि था।[2] अतः इस सम्बन्ध में प० भगवद्दत्त के भ्रम का खण्डन भी वही एकाधिक बार किया जा चुका है। अतः त्र्यरुण ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) तो था, परन्तु वह व्यास नही था।

३०. सत्यव्रत (त्रिशंकु)

त्र्यरुण या त्रिधन्वा का पुत्र सत्यव्रत अपर नाम त्रिशकु था। इतिहास पुराणो मे त्रिशकु और विश्वामित्र की कथा प्रसिद्ध है। परन्तु हम इस ग्रन्थ मे इतिवृत्तो के मध्य मे नही जायेंगे, यहा पर केवल ऐतिहासिक पुरुषो का कालक्रम और उनके समकालीन पुरुषो का समयनिर्धारण हमारा

१. वृषगण के वंशज वृषगण और वार्षगण्य भी कहे जाते थे।

(द्र० शान्तिपर्व, अ० ३२९)

२. भा० बृ० इ०, भा० २ (पृ० १०००)

उद्देश्य है, अतः हमे इतिवृत्तों का संकेतमात्र भी अभीष्ट नही, केवल कालक्रम प्रदर्शित करने हेतु अनिवार्य तथ्यमात्र का सकेतमात्र ही होगा ।

सत्यव्रत के समकालीन यादव विदर्भ राजा था, जिसकी भार्या का सत्यव्रत ने अपहरण किया था ।[1] पार्जीटर ने इस विदर्भ को सगर ऐक्ष्वाक के समकालीन ४०वी पीढ़ीमें रखा है, जो गलत है, इस सम्बन्ध मे पं० भगवद्दत्त का मत समीचीन है—'परन्तु हम सत्यव्रत और विदर्भ की समकालिकता के मानने मे कोई आपत्ति नही देखते ।'[2] पार्जीटर ने यादव विदर्भ को सगर का समकालीन माना है । यह समकालिकता ठीक नही है ।[3]

अतः यादव विदर्भ सत्यव्रत त्रिशकु के समकालिक था, सगर के सगर-कालीन विदर्भराज आदिविदर्भ का कोई वशज था ।

गाधिपुत्र विश्वरथ विश्वामित्र त्र्यरुण का समकालिक था । त्र्यरुण ने विश्वामित्र के बाल-बच्चो का भरण पोषण किया, जबकि विश्वामित्र समुद्रतट पर तप कर रहे थे ।[4] इनकी पत्नी केकयराज की पुत्री सत्यरथा थी ।[5]

अतः सत्यव्रत त्रिशकु, विश्वरथविश्वामित्र और विदर्भ—तीनो ही समकालीन राजा थे और इनका समय अष्टादशयुग (परिवर्त) अर्थात् ८४०० वि० पू० से ८००० वि०पू० मे था ।

३१. हरिश्चन्द्र

इसका एक प्राचीन नाम हरिदश्व था ।[6] ऐतरेय ब्राह्मण (७।१३) और शा० श्रौ० (१५.१७) मे हरिश्चन्द्र को वैधस कहा है,[7] इस शब्द की व्याख्या मे विद्वानो मे मतभेद है, सायण के अनुसार वैधस का अर्थ वेधस् का पुत्र, और भाष्यकार आनन्दतीर्थ के अनुसार वेधा का अर्थ प्रजापति है ।

---

१. तेनभार्या विदर्भस्य हृता हृत्वा दिवौकस (ब्रह्माण्ड० २।३।६३।७७)

२. भा० बृ० इ०, भा० २ (पृ० १००)

३. वही, (पृ० १०६)

४. दारांस्तु तस्य विषयो विश्वामित्रो महातपा । सन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तप । (ब्रह्माण्ड० २।३।६२।८५)

५. तस्य सत्यरथा नाम भार्या केकयवशजा । (वायु० ८८।११७)

६. हरिवश (१।२७।५५)—हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजित. ॥

७. हरिश्चन्द्रो ह वैधसः (ऐ० ब्रा० ८।१)

सायण का अर्थ यदि सत्य है तो यह मानना पड़ेगा कि या तो त्रिशंकु का नाम वेधस् था या त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र के मध्य न्यूनतम एक और पीढ़ी (वेधा) होगी।

हरिश्चन्द्र की सौ पत्नियों का उल्लेख है,[1] स्पष्ट है उस समय राजाओं की अगणित रानियां होती थी। पुराणों में जहां हरिश्चन्द्र को सत्यता की मूर्ति कहा है वहां ऐतरेयब्राह्मणादि वैदिकग्रन्थों से हरिश्चन्द्र पूर्णतः मिथ्यावादी सिद्ध होता है, जहां वह वरुण से बारम्बार मिथ्याभाषण करता है।

हरिश्चन्द्र का श्वसुर और पत्नी सत्यवती शैव्या के पिता को महाभारत (वनपर्व ७७।२८-२९) मे उशीनर कहा है जो इतिहासविरुद्ध है यह उशीनर नरेश राजा उशीनर और शिवि का वंशज था, क्योंकि प्राचीनकाल में वंशज को भी वंशकर के नाम से ही अभिहित करते थे।

हरिश्चन्द्र के समकालीन प्रसिद्धतम ऋषि थे—पर्वत, नारद,[2] जमदग्नि, वसिष्ठ, अयास्य और विश्वामित्र कौशिक।[3]

इनमे पर्वतनारद अत्यन्त दीर्घजीवी ऋषि थे, जिनका जन्म दक्षप्रजापति के समय (१४००० वि०पू०) हुआ था। हरिश्चन्द्र का समय ८००० वि०पू० था। अतः पर्वतनारद की आयु हरिश्चन्द्र के समय ५००० वर्ष से अधिक थी। यही पर्वतऋषि अपने यौवनकाल (१३५०० वि०पू०) मे पार्वती का पिता और शिव का श्वसुर था, जिसे हिमाचलप्रदेश का शासक होने से हिमालय या हिमवान् भी कहा जाता था। पार्वती को केनोपनिषद् मे हैमवती उमा कहा गया है।

जमदग्नि भार्गव ऋचीक के पुत्र थे, अयास्य आङ्गिरस (अङ्गिरागोत्रीय) ऋषि थे और विश्वामित्र (पूर्वविश्वरथ) कुशिक के पौत्र और गाधि के पुत्र थे। हरिश्चन्द्र के राजसूययज्ञ के ब्रह्मा वसिष्ठ का नाम क्या था, ठीक ज्ञात नही, परन्तु हमारा अनुमान है कि वह सात्यहव्य वासिष्ठ[4]

---

१ तस्य ह शतं जाया बभूवु: (ऐ० ब्रा० ७।१३)

२. तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतु.। (ऐ० ब्रा० ८।१)

३. ऐ० ब्रा०—तस्य ह विश्वामित्रो होतासीऽजमदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्मायास्य उद्गाता (ऐ० ब्रा० ८।२१)

४. काठकसंहिता (३४।१७।२५)

अर्थात् वसिष्ठवंशीय सत्यहवि के पुत्र सात्यहव्य; मैत्रावरुणि वसिष्ठ के बहुत उत्तरकालीन ऋषि थे। अब सात्यहव्य को वासिष्ठ कहा गया है, स्पष्ट है वसिष्ठ और वासिष्ठ एकार्थक पद थे।

पर्वतनारदऋषियों के तुल्यजीवी (५००० वर्षआयु) इन्द्र भी हरिश्चन्द्र के समय (८००० वि०पू०) वृद्धरूप मे जीवित था।[1] आदिम विश्वामित्र के ऋषित्वप्रारम्भ का यही समय (८०२० वि०पू०) था, इससे कुछ शती पूर्व विश्वामित्र युद्धों में जर्जर इन्द्र को वेद का उपदेश दे चुके थे।[2]

हरिश्चन्द्र को सप्तद्वीपेश्वर कहा गया है, स्पष्ट है, वह विश्व का एक सार्वभौम सम्राट् था।[3] राजसूय के अनन्तर एक विश्वयुद्ध हुआ।[4] इसको भ्रम से पुराण मे आडीवकयुद्ध कहा है।

३२ **रोहिताश्व (रोहित)**—हरिश्चन्द्र का पुत्र प्रसिद्ध रोहिताश्व था, इसका समय ८००० वि० पू० से ८३५० वि० पू० समझना चाहिये।

३३. **हरित**—रोहिताश्वपुत्र हरित का समय ८३०० वि० पू० जानना चाहिये।

३४ **चञ्चु**—हरितपुत्र चञ्चु का समय ८२५० वि० पू० था।

३५. **विजय**—चञ्चु का द्वितीय पुत्र था सुदेव, ज्येष्ठ पुत्र विजय राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। इसका समय ८२०० वि० पू० था।

३६ **रुरुक**—विजयपुत्र रुरुक का समय ८१५० वि० पू० अनुमानित है।

३७. **वृक**—इसका समय ८१०० वि० पू० निश्चित होता है।

३८ **बाहु**—वृकपुत्र बाहु का समय ८१०० वि० पू० से ८०५० वि०पू० अनुमानित है। यद्यपि किसी यादवनरेश की पुत्री बाहु की पत्नी थी, परन्तु यादव की एक शाखा हैहय तालजघो और वीतिहोत्रो (क्षत्रियो) ने, जो हैहयनरेश सहस्रार्जुन के वशज थे, माहिष्मती से आकर अयोध्या पर आक्रमण करके बाहु को निष्कासित कर दिया। हैहयों के साथी थे बाह्य

१ तमिन्द्र पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच (ऐ० ब्रा० ८।१८)

२ जै० ब्रा० (३)

३. हरिवश (३।२।१८)

४. सभापर्व (१२।१५)

म्लेच्छ पचयवन राजगण—शक, यवन, पारद, काम्बोज और पह्लव ।[1] स्पष्ट है हैहयों का ईरानादि के निवासी यवनादि म्लेच्छराज्यो पर प्रभुत्व था। पुराणो के इस प्रसग से अनेक पाश्चात्य कुकल्पनाओं का निरसन होता है। प्रथम यवनशकादि अत्यन्त प्राचीन क्षत्रिय थे। केवल सिकन्दर के समय से ही भारत यवनो से परिचित नही हुआ। यवनमूल का विस्तृत विवेचन के लिए यहां उपयुक्त स्थान नही है, परन्तु संक्षेप मे यह जानना चाहिये कि मूलतः 'आनव' (अनु) के वशज क्षत्रिय ही यवन कहलाये। 'आनव' शब्द ही बिगड़कर 'यवन' बन गया। साथ ही तुर्वसु, द्रुह्यु आदि के वशज भी शक, पह्लव, गान्धार आदि म्लेच्छगण इनमें सम्मिलित हो गये।

वासिष्ठो और भार्गवो का गन्धर्वादि असुरो, म्लेच्छो के साथ यवनादि पर भी प्रभाव था, क्योकि ये असुर मूलतः वरुण के वशज थे, और भृगु और वसिष्ठ भी वरुण के पुत्र थे, अत इन सबका परस्पर सम्बन्ध आदिकाल से ही था, इसी कारण वसिष्ठविश्वामित्रसघर्ष मे यवनादि म्लेच्छो ने वसिष्ठ का साथ दिया[2] और हैहयऐक्ष्वाक सघर्ष मे हैहयो की सहायता की।

बाहु के सरक्षक और्व नाम के भार्गव ऋषि थे, जिनके पिता या पूर्वज का नाम उरु था। यह उरु ऋषि जमदग्नि, ऋचीक आदि के पूर्वज थे, इनका वशवृक्ष अन्यत्र लिखा जायेगा। यह और्व भी गोत्रनाम है, अत. बाहु के सरक्षक और्व, जमदग्नि और जामदग्न्यराम के पूर्वज न होकर, उनके उत्तरकालीन ऋषि होगे, यद्यपि हमे ऋषियो की दीर्घायुष्ट्व मे श्रद्धा है, परन्तु प० भगवद्दत्त का यह मत असमीचीन है कि जामदग्न्य राम इसी और्व का वशज था।[4]

३६ सगर (समय और राज्यकाल)

निरस्त बाहु का पुत्र सगर वन मे पालित होकर और्वादि की सहायता से विश्वविजय करने के पश्चात् अयोध्या का अधिपति हुआ। किसी विदर्भ वंशज की कन्या केशिनी सगर की पत्नी थी। केशिनी का शुद्धपाठ

---

१. हैहयैस्तालजघैश्च निरस्तो व्यसनी नृप ।
शकैर्यवनैःकाम्बोजैः पारदै पह्लवैस्तथा ॥ (ब्रह्माण्ड० २।३।६३।१२०)

२ द्र० महा० (१।१७४) तथा वाल्मीकि रा० (१।५४)

३. और्वस्तु जातकर्मादीन्कृत्वा तस्य महात्मन (ब्रह्माण्ड० २।३।६३।१३३)

४. भा० बृ० इ०, भा० २ (पृ० १०६)

कैशिकी था, क्योंकि विदर्भ के वंश में ही चेदि और कैशिक हुये ।[1] विदर्भराज कैशिक की पुत्री होने से वह कैशिकी कहलाई, उत्तरकाल में उसी को केशिनी कहने लगे ।

सगर का समय ८००० वि०पू० था । उसका राज्यकाल पुराणों में ३०००० वर्ष=दिन (३००००÷३६०)=७५[1] वर्ष बताया है,[2] अतः उसका राज्यकाल ७६०० के आसपास समाप्त हुआ ।

सगर के समकालिक ऋषि आपव वासिष्ठ और अरिष्टनेमि काश्यप[3] थे । इस काश्यप को भ्रम से पुराणों मे सुपर्ण और गरुड़ से जोड दिया है, क्योंकि गरुड कश्यप के पुत्र थे और सम्भवत उनका नाम अरिष्टनेमि था । यह अरिष्टनेमि काश्यप, सगर की द्वितीय कनीयसी पत्नी सुमति के पिता थे । पं० भगवद्दत्त सुपर्णसम्बन्धी पौराणिकपाठ मे विश्वास करते है, जो अनुचित है ।[4]

यह पूर्व लिखा जा चुका है कि यवनादि पञ्चम्लेच्छगणराज्य बाहु के समकालीन थे, सगर ने तालजघ हैहयो के साथी इन म्लेच्छो को भी परास्त किया था ।

सगर के समकालीन महर्षि कपिल की ऐतिहासिक समस्या भी जटिल है, सम्भवतः सांख्यप्रवर्तक कपिल ही वह थे, जो उस समय तक जीवित थे ।

सन्तति

सगर को महिषी केशिनी (कैशिकी) ने एकमात्र पुत्र असमजा (असमजस) या बर्हिकेतु को उत्पन्न किया और सुमति के साठसहस्र पुत्र हुये, जो अश्वमेधयज्ञाश्व के अनुयायी होकर महर्षि कपिल द्वारा भस्म हुये । साठ सहस्रपुत्रो की समस्या भी जटिल है, सम्भवतः सुमति के पुत्र गिने चुने ही होंगे, उनके नायकत्व में साठसहस्र सगरसैनिको ने अभिप्रयाण किया होगा, जो प्राय नष्ट हो गये, केवल चार सगरपुत्र बचे—असमजा, सुकेतु, शूर और पञ्चजन (वायु० ८८।१४६) सगरपुत्रो या सगरसैनिको के विनाश

---

१. राजपुत्रस्तु विद्वासौ स्नुषार्थे क्रथकैशिकौ । पुत्रौ विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ । (ब्रह्माण्ड० २।३।७१।३७)

२. वाल्मीकि रा० (१।८८।२७)

३. षष्टिपुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तथा (वायु० ८८।१५६)

४. भा० वृ० इ०, भा० २ (पृ० ६७)

का कारण सागरखनन या यात्रा प्रतीत होती है, दिग्विजयार्थ सगरपुत्र सुदूर द्वीपों मे गये होंगे जहां वे समुद्री तूफानादि से नष्ट हो गये होंगे। इसीलिये कहा है कि सर्वप्रथम ऐक्ष्वाक सगर ने समुद्र पर वेला बांधी और समुद्र को खोदा, इसीलिये वह सगर के नाम से सागर कहलाया।[1]

४०. बर्हिकेतु (असमंजा)

सगरपुत्र बर्हिकेतु असमञ्जस् के नाम से अधिक प्रख्यात है। राजा सगर ने उसे बाल्यकाल या यौवनावस्था मे ही राज्य से निष्कासित कर दिया। अतः इसका राज्यकाल नगण्य ही था।

४१ अंशुमान्

अधिकांश पुराणों में इसको असमंजा का पुत्र माना है[2] परन्तु पं० भगवद्दत्त ने प्रकारान्तर से, मत्स्यपुराण के प्रमाण से इसे उसके भ्राता पचजन का पुत्र माना है—अङ्गिराओ की मानसी कन्या यशोदाअशुमान् की पत्नी और पचजन की (पुत्रवधू) थी—

एतेषां मानसी कन्या यशोदा लोकविश्रुता।
पत्नी ह्यंशुमतः श्रेष्ठा स्नुषा पंचजनस्य च।
जनन्यथ दिलीपस्य भगीरथपितामही ।। (मत्स्य० १५।१८-१९)

स्पष्ट है अशुमान् असमञ्जा के भ्राता पचजन का पुत्र था, इसकी पुष्टि हरिवंश (१।१५।१३ से भी होती है।

अशुमान् का राज्यकाल कितना दीर्घ था, यह ठीक ठीक ज्ञात नही। परन्तु रामायण के अत्यन्त भ्रष्ट तथा, अप्रमाणिक पाठ के अनुसार उसने राज्य करने के अनन्तर ३२००० वर्ष (=दिन=लगभग ८० वर्ष) हिमालयपर्वत पर तप किया।[3] यदि यह ८० वर्ष अशुमान् की आयु मानी

१ स त देश सुतैः सर्वै खानयामास पार्थिव। आमेदुश्च ततस्तस्मिस्तदन्ते महार्णवे। सागरत्वलेभे च कर्मणा तेन तस्य च। (वायु० ८८।१४५,१५१), पुराण का अनुकरण करते हुये अश्वघोष ने लिखा है—वेलां समुद्रे सगरश्च दध्रे नेक्ष्वाकवो या प्रथमं बबन्धु।

(बुद्धचरित १।४४)

२. तस्य पुत्रोऽशुमान्नाम असमंजस्य वीर्यवान् (वायु० ८८।१६६)

टि०—पंचजन का शुद्ध रूप 'पिजवन' था, जिससे सुदास ऐक्ष्वाक 'पैजवन' कहलाता था, यह 'पिजवन' वंशकर राजा था।

३. द्वात्रिंशच्छसहस्रवर्षाणि स महायशाः (रामा० १।४२।४)

जाय तो लगभग ६० वर्ष उसने राज्य किया होगा, उसका समय स्वर्गवास ७८०० वि०पू० के निकट हुआ होगा।

४२. **दिलीप प्रथम**—उपर्युक्त रामायण (१।४२।८) मे लिखा है कि दिलीप ने ३०००० वर्ष अर्थात् ७५ वर्ष राज्य किया।[1] अतः स्पष्ट है अनेक ऐक्ष्वाक राजाओ ने ७५ वर्ष से अधिक राज्य किया, तब कृतयुग के राजाओ का औसत राज्यकाल ५० या ६० वर्ष मानना अनुचित या सत्य से दूर नही है। दिलीप की राज्यसमाप्ति ७७२५ वि०पू० होनी चाहिये।

४३ **भगीरथ**—इससे गंगा का नाम भागीरथी हुआ, यह एक ज्वलन्त ऐतिहासिक तथ्य है।[2] इस घटना का वैज्ञानिक वर्णन या विश्लेषण अन्यत्र किया जायेगा। इसमे पूर्व जह्नु से जाह्नवी गंगा का सम्बन्ध प्रसिद्ध था। परन्तु जह्नु विश्वामित्र का पूर्वज राजा था,[3] अत जह्नु और भगीरथ के ऐक्य और समकालिकता का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता।

राजर्षि भगीरथ का समकालीन कोई कौत्स (कुत्स का वंशज) ऋषि था। कुत्स नाम का एक ऋषि इन्द्र के समकालीन था, जिसके वंशज कौत्स कहलाते थे।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (४।६।१) मे भगीरथ का नाम 'भगेरथ' मिलता है।

भगीरथ का राज्यकाल निश्चय ही दीर्घ होगा ७० या ८० वर्ष, अत इसका राज्यकाल ७६५० वि०पू० समझनी चाहिये।

४४. **श्रुत**—भगीरथपुत्र श्रुत का समय ७६०० वि०पू० था।

४५ **नाभाग**—यह श्रुत का वशज था नाभाग भगीरथ के पश्चात् अम्बरीष तक कुछ राजाओ के नाम पुराणो मे छूट गये हो तो कोई आश्चर्य नहीं। वैदिकप्रमाणो से हम लिख चुके है कि अनेक ऐक्ष्वाक राजा पुराणवशावली मे अपरिगणित हैं—यथा असमाति, वेधस्, उपमश्रवस्,

१. दिलीपस्तु महातेजा .त्रिशद्वर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत्॥

२. भगीरथस्तु ता गगामानयामास कर्मभि.। तस्माद् भागीरथी श्रीगङ्गा कथ्यते वशवित्तमै.॥ (वायु० ८८।१६६)

३. अधीयत देवरातो रिक्थयोरुभयोर्ऋषिः।
जह्नुना चाधिपत्ये दैवे वेदे च गाथिनाम् (ऐ० ब्रा० ३३।६)

कुशवन, कोसल, पर, इत्यादि। इसका शुद्ध नाम भी पूर्वोक्त मानव (मनुपुत्र) 'नभाक' की भांति नभाक या नभाग होना चाहिये।

४६. **अम्बरीष**—पूर्वोक्त मानव नभाग (नभाक) के नाम पर इसने भी अपने पुत्र का नाम अम्बरीष रखा।

बृहद्देवता,[1] महाभारत,[2] (षोडशराजीयोपाख्यान) और कौटल्य अर्थशास्त्र[3] में इसी नाभाग अम्बरीष का उल्लेख है।

कौटिल्य चाणक्य के समय तक यह तथ्य विख्यात था कि नाभाग अम्बरीष (और परशुराम) ने चिरकाल तक राज्य किया—(चिरं बुभुजाते महीम्) वानप्रस्थ होकर भी अम्बरीष प्रजाओं के अनुरोध पर राज्य करने नगर आ गया।[4] निश्चय ही उसका राज्यकाल सौवर्ष से कम नहीं होगा, अतः उसका समय (राज्यसमाप्ति) ७५०० वि० पू० के निकट था। यह दाशरथि राम से ठीक दो सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। यह प्राचीन भारत के प्रसिद्धतम षोडश राजाओं म से एक था, जिन्होंने सागरान्ता सपत्तना पृथिवी (विशाल भूभाग) पर चिरकाल तक शासन किया और शतसहस्र यज्ञ किये।[5] इसका शासन तापत्रयविवर्जित था।[6]

४७ **सिन्धुद्वीप**—यह निश्चय अम्बरीष का पुत्र था, इसीलिये ऋक्सर्वानुक्रमणी २ ऋग्वेद १०।६ सूक्त का द्रष्टा सिन्धुद्वीप आम्बरीष कहा है।[7] स्पष्ट है इस समय तक क्षत्रब्रह्म का भेद अधिक स्पष्ट नहीं हुआ था। क्षत्रिय राजा ब्राह्मणवत मन्त्रदर्शन (रचना) करते थे। राजा के नाम से ऐसा प्रकट होता है कि समुद्र (सिन्धु) और द्वीपों से इसका सम्बन्ध था। इसने भी अपने पूर्वज—भगीरथ, अम्बरीष आदि के समान ससमुद्रा द्वीपवती पृथ्वी को विजित किया होगा।

---

१ बृहद्दे० (३।५६)

२ शान्ति० (२८.१००-१०४)

३ अर्थ० (उ० ६)

४. बुद्धचरित (६।६६)

५. यः सहस्रं सहस्राणा राज्ञामयुतयाजिनाम्......।
इत्यम्बरीष नाकमन्वमोदन्त दक्षिणाः ॥ (शा० २८।१०१, १०२)

६. वायु० (८८।१७२)

७. सर्वानु० (५४), सिन्धुद्वीपोऽपनुत्यर्थं तस्याश्लीलस्य पाप्मन
(बृह० ६।१५३)

सिन्धुद्वीप आम्बरीष का राज्यकाल ७५०० वि०पू० से ७४०० वि० पू० के मध्य था।

४८. अयुतायु—यह पुराणो मे सिन्धुद्वीप का पुत्र कहा गया है। इसका समय ७४०० वि०पू० से ७३०० वि०पू० अनुमेय है।

४९. ऋतुपर्ण—पुराणो मे अयुतायु का पुत्र प्रसिद्ध नलसख दिव्याक्षहृदय ऋतुपर्ण कहा गया है। परन्तु महाभारत के एक प्राचीन पाठ के अनुसार ऋतुपर्ण के पिता का नाम भङ्गास्वर और उसको 'भाङ्गास्वरि' कहा है।[1] वैदिक श्रौतसूत्रों मे यह पाठ 'भाङ्गश्विन' या भङ्गयाश्विन है।[2] स्पष्ट है, एक ही नाम के ये पाठान्तर हैं, और सिद्ध होता है ऋतुपर्ण के पिता का नाम अयुतायु नही, भङ्गाश्वी था। प्रतीत होता है यहा पर पुराणो में कुछ साधारण राजाओं के नाम छोड दिये हैं, यह भगवद्दत्त का अनुमान उचित ही है तथापि उन्होने यह अनुमान किया है कि अयतायु का नाम ही भङ्ग हो, अप्रमाणित है।[3] बौधायन ने ऋतुपर्ण को शफलो का राजा कहा है।[4] इससे डा० सीतानाथ प्रधान ने कल्पना की है कि ऋतुपर्ण दक्षिण कोसल का राजा था।[5] प्रधान की कल्पना को प० भगवद्दत्त ने सही नही माना। इस सम्बन्ध मे हम पण्डितजी के मत से सहमत है कि ऋतुपर्ण अयोध्या का ही राजा था, उसका शासन दक्षिणकोसल तक निश्चय विस्तृत होगा, दक्षिण कोसल के निकट ही निषध (नैषध) नल का राज्य था, जो उसका परम मित्र था।[6] वायुपुराण मे ऋतुपर्ण को 'बली' कहा, है स्पष्ट है उसका राज्य विस्तृत होना चाहिये।

ऋतुपर्ण का समय ७३०० वि०पू० से ७२०० वि०पू० के मध्य था। महाभारत नलोपाख्यान मे ऋतुपर्ण का विशिष्ठ वर्णन मिलता है, उससे तथा श्रौतसूत्रो के प्रमाण से प्रतीत होता है कि राजसूयादि यज्ञो मे अक्षद्यूत क्रीडा का विशेष समावेश ऋतुपर्ण के समय मे हुआ, यह हमारी एक नवीन

१ सभापर्व, ८।१५) तथा वनपर्व (६८।२)
२. बौ० श्रौ० (१८।३) तथा आ० श्रौ० (२१।१०।३)
३. भा० बृ० इ०, भा० २ (पृ० ११०)
४ तेन हैतेन ऋतुपर्णो भाङ्गश्विन ईजे शफलानां राजा (बौ० श्रौ० १८।१३)
५ क्रोनोलोजी आफ एशियण्ट इण्डिया (पृ० १४४-१४७)
६ दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा नलसखो बली। (वायु० ८८।१७४)

ऐतिह्य उद्भावना है, सम्भवतः इससे पूर्व यज्ञों मे द्यूत का समायोजन नगण्य था।

प० भगवद्दत्त ने महाभारत, वनपर्व और आदिपर्व के प्रामाण्य से ऋतुपर्ण के समकालीन निम्न राजा निश्चित किये हैं :—

दशार्ण	चेदि	विदर्भ	निषध	कोसल	उत्तरपांचाल
सुदामा	वीरबाहु	भीम	वीरसेन	अयुतायु	
दोकन्यायें	सुबाहु	दम,	नल	ऋतुपर्ण	तृक्ष
		दमयन्ती		सर्वकाम	भृम्यश्व
					इन्द्रसेना
					इन्द्रसेन,
					मुद्गल

प० भगवद्दत्त ने उपर्युक्त समकालिकता सीतानाथप्रधान के आधार पर लिखी है, जिससे प्रायः हम भी सहमत हैं, परन्तु अयुतायु और ऋतुपर्ण के मध्य मे 'भाङ्गाश्वी' नाम होना चाहिये, जैसा कि ऊपर महाभारतादि के प्रमाण से ही लिखा जा चुका है।

दशार्ण का सुदामा, विदर्भ का भीम, निषध का वीरसेन, कोसल का भङ्गाश्वी, पाचाल का भृम्यश्व समकालीन राजा थे। भृम्यश्व के पुत्र मुद्गल को नैषध नल की पुत्री नालायनी इन्द्रसेना विवाही थी।[2] ऋग्वेद (१०। १०२।६) मे मुद्गल की पत्नी इन्द्रसेना को मुद्गलानी कहा है। इस पर विस्तृत विचारविमर्श पाचाल वंशवृक्ष के प्रसग मे किया जायेगा।

ये मुद्गल, नल, ऋतुपर्ण आदि राजा दाशरथिराम से न्यूनतम १६०० वर्ष पूर्व अर्थात् ७१०० वि०पू० मे हो चुके थे।

पार्जीटर ने मुद्गल आदि को राम से पाच पीढ़ी पूर्व और दिलीप

---

१. भा० बृ० इ०, भा० २ (पृ० १०००-१०१)

२. नालायनी सुकेशान्तां मुद्गलस्य चारुहासिनीम् (आदिपर्व) तथा नालायनी चेन्द्रसेना बभूव वश्या नित्य मुद्गलस्यश्चाजमीढ।

(वन० ११४।२४)

द्वितीय के समकालीन माना में, वह इतिहासविरुद्ध है ।[1] ऋतुपर्ण, नल और मुद्गल की समकालीनता इतिहासपुराणो से सिद्ध है । शतपथब्राह्मण मे एक नल नैषध का उल्लेख है, जो एक विवादास्पद विषय है ।[2]

५०. **सर्वकाम**—पुराणों मे इसे ऋतुपर्ण का पुत्र कहा गया है, इसका समय ७१०० वि० पू० अनुमेय है ।

५१ **सुदास**—हरिवश (१।१५।२०) मे इसे इन्द्रसखा बताया है जो सत्य प्रतीत होता है, (७००० वि० पू०) इन्द्र की उपस्थिति सभव है ।

प० भगवद्दत्त ने जै० ब्रा०[3] (३।२३) के प्रमाण से इस सुदास को पैजवन ऐक्ष्वाक का पुत्र बताया है । अत या तो सर्वकाम का नाम पिजवन था, अथवा सर्वकाम के पश्चात् अयोध्या मे विजवन नाम का राजा हुआ, जिसका नाम पुराणो मे छूट गया है । कीथादि वेद के आधार पर पाचाल या साञ्जर्य सुदास पैजवन को ही वैदिकयुग (?) का एकमात्र प्रधान राजा समझते थे, जिसका अन्धानुकरण प्राय. सभी अन्य इतिहासलेखको—पुसाल्कर, अल्तेकर, रायचौधरी आदि ने किया है । इसकी विस्तृत आलोचना सृजयवश के प्रसग मे करेंगे ।

वेद मे सुदास' पद अस्पष्टार्थक या अज्ञेयार्थक किंवा अत्यन्त गूढार्थक एव विवादास्पद है । मूल मे 'सुदास' पद का अर्थ है श्रेष्ठदाता था, अत· वैदिक 'सुदास' पद के आधार पर इतिहासनिर्माण अत्यन्त सदेहास्पद हैं ।

ऐक्ष्वाक सुदास का राज्यकाल अत्यन्त दीर्घ था, जैसा कि कामन्दकी नीति मे लिखा है ।[4] इसका अर्थ है उसका राज्य एकशती के आसपास रहा होगा—७००० वि०पू० से ६९०० वि० पू० पर्यन्त ।

५२ **कल्माषपाद - सौदास - मित्रसह**—सुदास का पुत्र होने से इसे सौदास कहते है । शेष दो नाम पुराणो मे प्रसिद्ध है । कुछ लोग इस सुदास का सम्बन्ध पाचालसुदास से जोड़ते है, जो सर्वथा इतिहासविरुद्ध है ।

---

१ द्र० A.I.H.T. (p. 145) सूचीमात्र ।

२ श० ब्रा० (२।३।२।१,२) तथा प० भगवद्दत्त का मत भा० वृ० इ०, भाग २ (पृ० १११)

३. "वसिष्ठो वै सुदास. पैजवनस्य ऐक्ष्वाकस्य राज्ञः पुरोहित आस ।"

४. धर्माद् वैजवनो राजा चिराय बुभुजे महीम् । (१६)

कल्माषपाद का पुरोहित वासिष्ठ एक वसिष्ठगोत्रीय ब्राह्मण ऋषि था, जिसका पुत्र शक्ति हुआ। इसी वसिष्ठ या वासिष्ठ (शुद्धपाठ वासिष्ठ ही है) से किसी कौशिकविश्वामित्र (आदिम नही) का सघर्ष हुआ, कल्माषपाद से भी इसी वासिष्ठ का संघर्ष हुआ। शक्ति इसी वासिष्ठ का पुत्र था और पराशर इसका पौत्र। इसी वासिष्ठ को रामायण, महाभारत, पुराण, बृहद्देवता और निरुक्त मे आदिम वसिष्ठ (मैत्रावरुणि) के रूप मे प्रदर्शित किया है, जो इस वासिष्ठ से न्यूनतम ७००० वर्ष पूर्व देवयुग मे हुआ था। यह सब इस शिष्ठ का नाम विस्मृति और गोत्रनामशेष के कारण हुआ।

इसी वसिष्ठ ने राजा मित्रसह को शाप दिया जिससे उसके पाद (पैर) काले (कल्माष) हो गये और राजा की पत्नी मदयन्ती से नियोग द्वारा इसी वसिष्ठ ने पुत्र उत्पन्न किया। हमारा विचार है यह वसिष्ठ 'शक्ति' नामधारी था, जिसकी पुष्टि अनेक ग्रन्थो से होती है। ऋग्वेद के दो स्थलो पर शक्ति के पुत्र पराशर को इन्द्र के रूप मे चित्रित्र किया है जिसने राक्षसो का वध किया। यहा पर पराशर की द्वितीयनाम 'शतयातु'[2] मिलता है और उसको वासिष्ठ या 'शाक्त्य' न कहकर केवल 'वसिष्ठ' कहा कहा है, यही वैदिक 'वसिष्ठ'पद वसिष्ठसम्बन्धी ऐतिहासिक भ्रमो का जनक है। महाभारत मे पराशर को राक्षसो का घोरहन्ता कहा गया है,[3] जिसकी पुष्टि ऋग्वेद के राक्षोघ्नसूक्त (७।१०४) से होती है कि पराशर ने राक्षमसत्र किया था।[4] अत शक्ति ही वह वसिष्ठ था, जिसके विषय मे

१ यहा पर व्याख्याकार ने सगर के वश मे इन्द्रसेन और उसके कुल मे वैजबन का उल्लेख किया है। इससे हमारा यह मत पुष्ट होता है कि पुराणो मे इक्ष्वाकुवश अधूरा उल्लिखित है।

२. पराशर' शतयातुर्वसिष्ठः (ऋ० ७।१८।२१), इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरः। (ऋ० ७।१०४।२१)

३. ईजे च स महातेजाः सर्ववेदाविदा वरः। ऋषी राक्षसत्रेण शाक्तेयोऽथ पराशरः...(महा० १।१८०।२)

४. यो मायायी यातुधानेत्याह यो वो रक्षा शुचिरस्मीत्याह।
इन्द्रस्त हन्तु महता वधेन। (ऋ० ७।१०४।१६)
इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनाम्यविवासताम्।
अभीद् शक्रः परशुर्यथा वन पात्रेव भिन्दन् एति रक्षसः।
(ऋ० ७।१०४।२१)

निरुक्त मे लिखा है ।

> पराशर. पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे । (नि० ५।६।३०)
> पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतः ।
> तस्याद्विपाडुच्यते पूर्वमासीदुरुञ्जिरा । (नि० ६।२६)

यह पराशीर्ण वसिष्ठ 'शक्ति' के अतिरिक्त और कोई नही, जिसका पुत्र पराशर था, इसकी पुष्टि एक प्राचीन पुराण-पाठ से होती है —

> कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना ।
> अदृश्यन्त्या समवन्मुनिर्यत्र पराशरः ।
> पराभवो वसिष्ठस्य यस्मिञ्जातेऽवर्तत ॥[1]

द्वितीय दाशराज्ञयुद्ध और सुदास ऐक्ष्वाक

प्राचीन भारत में प्राग्महाभारतयुगो मे न्यूनतम दो दाशराज्ञयुद्ध हुये, जिनका वैदिकग्रन्थो में उल्लेख मिलता है । प्रथम दाशराज्ञयुद्ध का विजेता काशिराज प्रतर्दन का प्रतापी पुत्र क्षत्र[2] (अलर्क) था, जो ऐक्ष्वाक वसुमना और त्रिधन्वा एव विश्वरथ विश्वामित्र के समकालीन (८५०० वि० पू०) था । इस प्रथम दाशराज्ञ पर विस्तृत विचार-विमर्श काशिवशावली के प्रसग मे करेंगे ।

द्वितीय दाशराज्ञ युद्ध का विजेता ऐक्ष्वाक सुदास था, जिसकी पुष्टि वैदिक एव पौराणिक साक्ष्य से होती है । वैदिकग्रन्थो मे रञ्चमात्र भी सकेत नही है कि इस द्वितीय दाशराज्ञयुद्ध का सम्बन्ध साञ्जंय पाचाल पैजवन सुदास से स्थापित होता हो, आगे के वैदिक उद्धरणो से यह सिद्ध किया जायेगा अि ऐक्ष्वाक सुदास ही इस दाशराज्ञ द्वितीय युद्ध का विजेता था । इसका एक और प्रमाण है कि वसिष्ठ के साथ विश्वामित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध ऐक्ष्वाक राजाओ से ही रहा—सत्यव्रत त्रिशकु और हरिश्चन्द्र से रामचन्द्र दाशरथि तक—यह सम्बन्ध इतिहासपुराणों से प्रमाणित है । विश्वामित्र के वशजो का सम्बन्ध पाचालों से रहा हो, इसका सकेत पुराणो मे कही नही है, इस सम्बन्ध मे पार्जीटर का मत उचित प्रतीत होता है कि "**साञ्जंय पांचाल राजागण बहुत प्रतापी या सार्वभौम सम्राट् नहीं थे, जिससे कि**

---

१. वायु० (२।११,१२)
२. जै० ब्रा० ३।२४५)

उनका पुराणों में विशिष्ट उल्लेख हो।"[1] पुराणों में पांचाल सुदासादि का विरुद गाया कैसे जाये, जबकि उनका किसी विशिष्ट यशस्वी महत्कर्म (युद्धादि) से सम्बन्ध था ही नहीं। अतः पूर्वपक्ष के जिन आधुनिक लेखको कीथ, पुसाल्करादि ने दाशराज्ञयुद्ध का सम्बन्ध पाचाल सुदास से जोडा है, उनका निम्न विवरण से स्वतः ही खण्डन हो जायेगा—[2]

सर्वप्रथम ऋग्वैदिक साक्ष्यों का स्पर्श करते हैं—

विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ।
उपप्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्व राये प्रमुञ्चतासुदासः ।
ससर्परीरममतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ॥[3]
अर्णांसिचित् पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत् सुपाराः ।
सुदास इन्द्र सुतुका अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ।
प्रायच्छद् विश्वा भोजना सुदासे ।
प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठ. ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ।
इम नरो मरुत सश्चतानु दिवोदास न पितर सुदास. ।
अविष्टना पैजवनाय केत दूणाश क्षत्रमजरं दुवोयु. ।[4]

उपर्युक्त मन्त्रो मे पैजवन सुदास ऐक्ष्वाक का ही उल्लेख है और रंचमात्र भी संकेत नही कि यह सुदास पाचालराज था। केवल अन्तिम मन्त्र भ्रमोत्पादक कहा जा सकता है जिससे दिवोदास के साथ सुदास का नाम

---

१ Some such as Vadhryasva Divodasa, Srnjaya Sudās. Sahadeva and Somaka are mentioned as Kings in North Panchala genealogy, but no particulars recorded in the epics and puranas about any of them (A.I.H.T p. 8)

२. द्रष्टव्य—(१) कैम्ब्रिजहिस्ट्रीआफइण्डिया (ऋ० प्रथम भाग, अध्याय ४।८१ (२) वैदिक इण्डैक्स, भाग १, पृ० (३५५-३५६), (३) वैदिक ऐज, पृ० २४२, २४५ और ३०७, पुसाल्करकृत तथा अन्य इतिहासग्रन्थ मृग्य, यथा प्रधानकृत क्रो० ए० इ० (पृ० ८४, ८०, ६२), एस० एस० अल्तेकर—'केन वी रिकंस्ट्रक्ट प्रेभारतवार हिस्ट्री' भाषण (पृ० ५१), इत्यादि।

३. ऋ० (३।५३।६,११, १५)

४. ऋ० (७।१८।५,६,१७,२१,२२। २५)

भी है। इस मन्त्र में 'सुदासः' बहुवचन मे है और मरुद्गणो का विशेषण है। दास् शब्द के अनेक अर्थ हैं, परन्तु यहा सुदास का अर्थ श्रेष्ठ दातृगण 'मरुत' अर्थ मे है और 'दिवोदास' का अर्थ है 'दिव्यदाता' (पैजवन सुदास) अत: यहां दिवोदास शब्द भी सुदास पैजवन ऐक्ष्वाक का विशेषण ही है, पाचाल दिवोदास से इसका कोई सम्बन्ध नही, और पाचाल सुदास के पिता का नाम दिवोदास था भी नही। मन्त्र से ही उसका पिता का नाम 'पिजवन' सिद्ध होता है, अतः पाचालदिवोदाससम्बन्धी भ्रम मिट जाना चाहिये।

जैमिनीयब्राह्मण, बृहद्देवता, निरुक्त और कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी के निम्न उदाहरणो से सिद्ध है कि उपर्युक्त पैजवनसुदास ऐक्ष्वाक राजा था और उसके पुत्र सौदास कल्माषपाद ने शक्ति वासिष्ठ को अग्नि मे फेका था—

भरता ह वै सिन्धोरपरतार आसुः। इक्ष्वाकुभिरुद्वाढा· तेषु ह विश्वामित्रजमदग्नी ऊषतु.। स हैन्द्रोऽभयदम् आसमात्य हरी ययाच।

"भरतगण सिन्धु के ऊपर तट पर स्थित थे। वे इक्ष्वाकुओ द्वारा परास्त थे। उन इक्ष्वाकुओं में विश्वामित्र (गण) और जमदग्निगण निवास करते थे। इन्द्र ने असमाति (ऐक्ष्वाक) के पुत्र अभयद से दो घोडे मांगे।"

उपर्युक्त असमाति और अभयद ऐक्ष्वाक राजा सुदासपैजवान ऐक्ष्वाक के सम्बन्धी होगे। क्योकि इक्ष्वाकुओ का वशविस्तार विशाल था, उस समय उनका राज्य दक्षिणकोसल मे ही नही, गान्धार, सिन्धु आदि जनपदो तक था, रामायण से भी इसकी पुष्टि होती है कि भरत दाशरथि के पुत्र तक्ष और पुष्कल ने गान्धार मे तक्षशिला और पुष्करावती नगरियाँ उपनिविष्ट की। दशरथ ने अपने प्रभाव के कारण केकय (कश्मीर) की राजकुमारी कैकयी से विवाह किया।

ऋग्वेद (३।५३।११) से जैमिनीय ब्राह्मण के कथन की पुष्टि होती है कि इन्द्र ने सुदास या अभयद ऐक्ष्वाकुओं से घोडा मागा—'अश्व' राये प्रमुञ्चता सुदास·।" जमदग्नि और विश्वामित्र (इनके वशजो) के इक्ष्वाकुओ के साथ रहने की बात भी ऋग्वेद के मन्त्रो से पुष्टि होती है—

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वम्।
बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता॥ (ऋ० ३।५३।११,)

इसकी आगे पुष्टि बृहद्देवतोल्लिखित आख्यान से होती है कि यह सुदास और सौदास कल्माषपाद ऐक्ष्वाक थे—

सुदासश्च महायज्ञे शक्तिना गाधिसूनवे ।
निगृहीत बलाच्चेत. सोऽवसीदद्विचेतनः ।
तस्मै ब्राह्मी तु सौरी वा नाम्ना वाच ससर्परीम् ।
सूर्यक्षयादिहाहृत्य ददुस्ते जमदग्नयः ।
कुशिकानां ततः सा वाग् अमतिं तामपाहनत् ॥[1]

यहां पर भी शक्ति, कौशिक (गाधिवंशज) और जमदग्नियों का सम्बन्ध सुदास ऐक्ष्वाक से प्रकट है ।

निरुक्त मे यास्क ने विश्वामित्र को इसी "सुदासः पैजवनस्य पुरोहित बभूव ।"[2] लिखा है ।

शक्तिवसिष्ठ को सौदासो (इक्ष्वाकुओ) ने आग मे फेंका था—

"सौदासैरग्नौ प्रक्षिप्यमाण. शक्तिः ।"[3]

जब ऋग्वेद से सर्वानुक्रमणी के सभी प्रमाण सुदास पैजवन का सम्बन्ध इक्ष्वाकुवश से और शक्ति, विश्वामित्र, जमदग्नि तथा दाशराज्ञयुद्ध से जोड़ रहे है, तब कीथादि की प्रमाणशून्य कल्पनाओ का क्या महत्व है, वे केवल प्रलापमात्र है, अत. उनमे सशोधन कर लेना चाहिये ।

उपर्युक्त वैदिक प्रमाणो की पुष्टि हरिवशपुराण के उल्लेख से होती है ऋतुपर्ण ऐक्ष्वाक का पौत्र सुदास 'इन्द्रसखा' था ।[4] अत. वैदिक और पौराणिक आख्यान परस्पर एक ही तथ्य की सपुष्टि करते है कि इन्द्र, और दाशराज्ञयुद्ध मे सम्बन्धित ऐक्ष्वाक सुदास ही था । किसी भी पाचालनरेश की इन्द्रसखा के रूप मे पुराणादि मे ख्याति नही है ।

हा, यह सयोग है कि पाचालसुदास पैजवन भी सुदासपैजवन ऐक्ष्वाक के प्रायः समकालीन था । यह पहिले बताया जा चुका है कि ऋतुपर्ण ऐक्ष्वाक के समकालिक नैषधनल की पुत्री नालायनी इन्द्रसेना (मुद्गलानी) पांचाल राजा मुद्गल की राजमहिषी थी—

---

१. बृहद्दे० (४।११२-११४)
२. नि० (२।७।२४)
३. सर्वानुक्रमणी (३५)
४. सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसखोऽभवत् । (हरि० १-१।२१)

ऐक्ष्वाक	पांचाल
ऋतुपर्ण	मुद्गल
सर्वकाम	वध्यश्व
असमाति	दिवोदास
अभयद	मित्रयु
पिजवन	पिजवनच्यवन
सुदास	सुदाससोमदत्त
कल्माषपाद	सहदेव

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ऐक्ष्वाक पैजवन सुदास और पाचाल सुदास पैजवन दोनो ही समकालीन थे, परन्तु वसिष्ठ शक्ति, विश्वामित्र-गण जमदग्नियो, और दाशराज्ञयुद्ध का सम्बन्ध ऐक्ष्वाक पैजवन[1] सुदास से ही था। पांचालराज कोई बडा प्रतापी राजा नही था। इन्द्र का सखा भी ऐक्ष्वाक सुदास पैजवन ही था, जिसका ऋग्वेद के मन्त्रो मे भी उल्लेख है। यदि इस समय (७००० वि० पू०) इन्द्र जीवित था, तो उसकी आयु इस समय ५००० वर्ष से अधिक थी।

सुदासद्वयी का भी प्राय. यही समय—७००० वि०पू० था।

कल्माषपाद के पश्चात् की वशावली पुराणो मे दो प्रकार से मिलती है, उसके कई नामो मे भेद और गडबड है। अत. कुछ प्रमुखग्रन्थो से उसे उद्धृत करते हैं—

वायुपुराण०	हरिवंश०	मत्स्य०	रामायण
कल्माषपाद	कल्माषपाद	कल्माषपाद	कल्माषपाद
अश्मक	सर्वकर्मा	सर्वकर्मा	शङ्खण
उरुकाम	अनरण्य	अनरण्य	सुदर्शन
मूलक	निघ्न	निघ्न	अग्निवर्ण
शतरथ	अनमित्र	रघु	शीघ्रग
एडविड	दुलिदुह्	दिलीप	मरु

१ सगर का पुत्र 'पिजवन' वशप्रवर्तक राजा था, जिससे उसके वंशज ही 'पैजवन' कहे जाते थे। जिस प्रकार इक्ष्वाकु के वशज ऐक्ष्वाक और रघु के 'राघव'। पुराणो मे इस 'पिजवन' का पाठ 'पञ्चजन'—मिलता है।

विश्वमहत्	दिलीप	अजक	प्रसुश्रुक
दिलीप द्वितीय	रघु	दीर्घबाहु	अम्बरीष
रघु	अज	अज	नहुष

इनमें रामायणोल्लिखित वंशावली 'प्रमत्तप्रलाप' ही है अतः उस पर विचार करना ही निरर्थक है।

इस सम्बन्ध में सीतानाथप्रधान ने उल्टी गंगा बहाई है।[1] पं० भगवद्दत्त ने प्रधानजी से सहमति व्यक्त की है।[2] प्रधानजी के अनुसार कल्माषपाद से इक्ष्वाकुराज्य दो भागो मे बट गया, एक उत्तर कोसल और द्वितीय दक्षिण कोसल। उन्होने वंशावली को इस प्रकार निर्मित किया है—

मित्रसह—कल्माषपाद=सौदास

सर्वकर्मा	अश्मक
अनरण्य	उरुकाम
निघ्न	मूलक
अनमित्र—रघु	

हमारा विचार प० भगवद्दत्त और प्रधानजी से एकदम विपरीत है। पुराणो मे कल्माषपाद के अनन्तर अनेक नाम छूट गये हैं, जिनमे से कुछ नाम वायुपुराणादि ने सग्रहीत किये और कुछ नाम हरिवंशादि ने सग्रहीत किये। हमारे मत मे कल्माषपाद से दाशरथिराम तक १४०० वर्षों के राज्यकाल मे न्यूनतम २५ या ३० राजा होने चाहिये। कल्माषपाद का समय ६८०० वि० पू० था और राम का समय ५४०० वि० पू० था। क्योंकि राम चौबीसवें युग मे हुये कल्माषपाद राम से चार युग (३६०×४ १४४० वर्ष) पूर्व बीसवें युग मे हुआ। अत. एक राजा का औसत राज्यकाल ५० वर्ष मानने पर भी न्यूनतम २५ राजा अवश्य होने चाहिये। दोनो पुराणपाठो के राजाओ को

१. क्रो० आफ ए० इ० (अध्याय १२)

२. "अध्यापक सीतानाथप्रधान ने पुराणो का भेद भले प्रकार ठीक किया है"—पं भगवद्दत्त—भा० बृ० इ०, भा० २ (पृ० १२२)

जोड़ने पर भी कल्माषपाद से राम तक १८ राजा ही बनते हैं। अतः समस्त पुराणपाठों को मिलाने पर हमारे विचार में वंशावली इस प्रकार होनी चाहिये—

१. कल्माषपाद	१०. निघ्न
२. अश्मक	११. अनमित्र
३. उरुकाम	११. दुलिदुह
४. मूलक	१३. विश्वमहत्
५. शतरथ	१४. दिलीप खट्वांग
६. इडविड	१५. रघु
७. कुशशर्मा	१६. अज
८. सर्वकर्मा	१७. दशरथ
९. अनरण्य	१८ राम

५३. अश्मक

शक्ति वासिष्ठ ने नियोगविधि ने कल्माषपाद की पत्नी मदयन्ती से अश्मक नाम का पुत्र उत्पन्न किया, जो द्वादशवर्ष तक माता के गर्भ मे रहा, इसका यह भी तात्पर्य हो सकता है कि राजा कल्माषपाद और उसकी पत्नी मदयन्ती द्वादशवर्षपर्यन्त राज्य से वंचित रहे। राजर्षि अश्मक ने दक्षिण भारत में अश्मकराज्य और पोतन (पौदन्य) नगर की स्थापना की।[1]

अश्मक का समय इक्कीसवें युग मे ६७५० वि०पू० था। इस समय पर्यन्त परशुराम भार्गव का क्षत्रियो के विरुद्ध धर्मयुद्ध समाप्त नही हुआ था, यद्यपि परशुराम का जन्म अठारहवेंयुग (७५०० वि०पू) और उनके द्वारा सहस्रार्जुन का वध उन्नीसवेंयुग (७१४० वि०पू मे सम्पन्न हुआ था।[2]

५४. उरुकाम—इसका राज्यकाल ६७५० वि०पू० से ६७०० वि०पू० के मध्य मे होना चाहिये।

५५. मूलक—यह अश्मक का पौत्र था, जो जामदग्न्य राम के भय से सदा नारियो से घिरा रहता था, जिससे उसका नाम 'नारीकवच' पड़ गया

---

१. ततो द्वादशे वर्षेऽथ जज्ञे पुरुषर्षभः।
अश्मको नाम राजर्षिः पौदन्य यो न्यवेशयत्॥ (महा० १।१७६।४७)

२. एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत्।
जामदग्न्यस्तथा रामः षष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः। (वायु०)

—स हि रामभयाद्राजास्त्रीभिःपरिवृतोऽवसत् स विवस्त्रस्त्राणमिच्छन्वै नारीकवचमीश्वरः ।। (वायु० ८८।१७९)

यह बता चुके हैं कि क्षत्रियों के प्रति जामदग्न्य राम का रोष अभी आठ सौ वर्ष के पश्चात् भी (७५०० वि०पू० से ६७०० वि०पू० तक) समाप्त नहीं हुआ था।

मूलक का समय ६६५० वि०पू० था।

५६. मूलकपुत्र शतरथ, ५७. तत्पुत्र इडविड, तत्पुत्र ५८ कृशशर्मा ने लगभग १०० वर्ष से अधिक राज्य किया होगा अतः उनका राज्यकाल ६६५० वि०पू० से ६५५० वि०पू० तक अवश्य था।

५९. सर्वकर्मा—

महाभारत (शान्ति० ४९।७७) मे सर्वकर्मा को सौदास (कल्माषपाद) का दायाद माना है, परन्तु अन्य पुराणो से सिद्ध नही, महाभारत के प्रामाण्य से पं० भगवद्दत्त ने सर्वकर्मा के समकालीन निम्न राजाओ को माना है[1]—

हैहय	पौरव	ऐक्ष्वाक	शिवि	काशी	अङ्ग
—	विदूरथ	सौदास	शिवि	प्रतर्दन	दिविरथ
हैहय	ऋक्ष	सर्वकर्मा	गोपति	वत्स	दधिवाहन
—	—	—	—	—	बृहद्रथ[2]

पार्जीटर काशिराज वत्स प्रातर्दन को सगर पुत्र असमजा के समकालीन और आनव बलि के समकालीन मानता है। प० भगवद्दत्त प्रतर्दन को प्राय. दाशरथि राम के समकालीन मानते है, महाभारत के इस प्रसङ्ग (१२-४९-७९) मे वत्सप्रातर्दन को सौदास सर्वकर्मा का समकालीन माना है। यहां पर सौदास का अर्थ सुदास का साक्षात् पुत्र न मानकर 'वंशज, समझना चाहिये। हम महाभारत के दोप्राचीनतम आख्यानो– गालवचरित (उद्योगपर्व) और ययात्यष्टकसवाद (आदिपर्व) से अन्यत्र सिद्ध करेंगे कि प्रतर्दन, शिवि औशीनर, ऐक्ष्वाक वसुमना (इक्ष्वाकु से २८वी पीढी), और विश्वामित्रपुत्र अष्टक समकालीन थे। महाभारत के ये दोनो आख्यान काल्पनिक या उत्तरकालीन क्षेपक नही हो सकते। विश्वामित्र विश्वरथ का समय निश्चित है—हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक के समकालिक। अतः महाभारत के

१. महा० १२-४९-७४-८३)
२. द्र० A.I.H.T. (पृ० १४५)

इस प्रकरण में प्रतर्दन वत्स की सौदास सर्वकर्मा से समकालिकता सर्वथा इतिहासविरुद्ध है। उपर्युक्त काशिराज वत्स प्रतर्दनपुत्र न होकर वत्सवंश का कोई अन्य काशिराज होगा, जो वत्सवश के नाम से प्रसिद्ध था। इसी प्रकार गोपति शिवि का पुत्र न होकर शिविवंश का शैब्यनृपति था, एवं बृहद्रथ अंग भी कोई बार्हद्रथ अंगराज होना चाहिये। आङ्ग बृहद्रथ (प्रथम) का अभिषेक दीर्घतमा मामतेय ने किया था जो मरुत्त और मान्धाता के समकालिक (६००० वि०पू०) था अतः ऋक्षपौरव, सर्वकर्मा ऐक्ष्वाक, गोपति शैब्य, वत्सराजकाश्य, बार्हद्रथ आङ्ग (सम्भवतः धर्मरथसंज्ञक) समकालीन नृपति थे और महाभारत के इस प्रकरण में प्रतर्दन आदि का समावेश अनैतिहासिक है। ये सर्वकर्मा ऐक्ष्वाक आदि राजा हैहय अर्जुन के लगभग १००० वर्ष पश्चात् हुये, जैसा कि महाभारत में भी उल्लिखित है।[1] सर्वकर्मा आदि राजा इक्कीसवेंयुग के अन्त या बाईसवेंयुग के प्रारम्भ मे हुए। इस गणना से भी हैहय अर्जुन और सर्वकर्मा का अन्तर लगभग एक सहस्र (१०००) वर्ष निकलता है। अतः उपर्युक्त समकालीन गोपति शैब्य, सर्वकाम ऐक्ष्वाक, बार्हद्रथ आङ्ग और वत्सराज का समय ६५०० वि० पू० था।

६०. **अनरण्य**—सर्वकर्मा का पुत्र यही अनरण्य (तृतीय) यदि रावण के समकालीन था तो रावण का जन्मकाल राम से लगभग ९०० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा।[2] सम्भवतः यही अनरण्य किसी राक्षसराज द्वारा मारा गया होगा, क्योंकि अश्मकमूलक के वंशजों का राज्यविस्तार दक्षिणभारत तक था और अनरण्य ऐक्ष्वाक ने रावण के पूर्वज हेति, विद्युत्केश, सुकेश आदि राक्षसराजों से लोहा लिया होगा। इन सुकेशादि का पराभव विष्णु के हाथ दिखाया गया है।[3] इन अनरण्यादि से पराजित सुमालि आदि ने रसातल मे प्रवेश किया।[4] अनरण्य नाम की सार्थकता है कि उसने अरण्यवन को अनरण्य (नगर) बना दिया।

पहिले बना चुके हैं कि अनरण्य का समय राम से लगभग ९०० वर्ष पूर्व, ६४५० वि० पू० से ६४०० वि०पू० था।

१. ततो वर्षसहस्रेषु समतीतेषु केषुचित्। महा० २।४९।५५
२. रामा० (७।१४ सर्ग) द्रष्टव्य
३ रामायण (७।७)
४ एवं ते राक्षसा राम हरिणा कमलेक्षण।
त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः। (रामा० ७।८।२१,२२)

अनरण्य के अनन्तर निम्न राजाओं का अनुमेय समय इस प्रकार है—

६१. निघ्न—६४०० वि०पू० से ६३५० वि० पू०। इसके दो पुत्र थे—अनमित्र और रघु। अनेक पुराणो में इसीलिये रघु का नाम दो बार आता है, क्योंकि चार पांच पीढियों के अन्तर से ही दो रघु हुये। प्रतापी और प्रसिद्ध रघु दिलीप खट्वाग (द्वितीय) का पुत्र था, जिसके नाम पर महाकवि कालिदास ने प्रसिद्ध रघुवंशमहाकाव्य लिखा। अत पार्जीटर और सीतानाथ प्रधान ने दिलीप के पश्चात् दीर्घबाहु को पृथक् राजा माना है, वह अनुपयुक्त है।

अनमित्र का समय ६२०० वि०पू० अनुमेय है।

६२. निघ्नपुत्र रघु—ने भी कुछ समय राज्य किया होगा, तभी वशावलियो मे उसका नामोलेख है।

६३ दुलिदुह, ६४. विश्वमहत् (या विश्वसह) का राज्यकाल ६००० वि०पू० मे ५६०० वि०पू० तक समझना चाहिये। इस अनुमेय कालक्रम मे थोडा ही अन्तर हो सकता है, अधिक नही।

६५ दिलीप (द्वितीय) खट्वांग—इस दिलीप से अग्निवर्णपर्यन्त राजाओ का इतिहास महाकवि कालिदास ने प्राचीन पुराणादि के आधार पर लिखा है. वे इतिहासपुराण कालिदास को समुपलब्ध थे और आज नष्ट हैं अत. रघुवंशकाव्य के वर्णन काव्यमय होते हुये भी ऐतिह्यपूर्ण हैं, तथापि हम अपनी प्रतिज्ञानुसार घटनाओ का उल्लेख नही करेगे, केवल कालक्रम जोडने हेतु अनिवार्य तथ्य का उल्लेख किया जायेगा।

दिलीप महत्तम षोडश राजाओ मे एक था,[1] अत. इसका यश, राज्य और राज्यकाल अपेक्षाकृत अधिक होना चाहिये। इसका समय ५६०० वि०पू० से ५-०० वि०पू० समझना चाहिये।

६६. रघु विक्रमी—आदिपर्व (१।१७२) मे रघु का विशेषण विक्रमी है जो कालिदास के रघुवंश से व्याख्यात और सिद्ध है। पुराणो मे रघु का एक विशेषण 'दीर्घबाहु' था। शरीर से वह लघु (=रघु रलयोरभेद.) था, परन्तु उसकी भुजाये लम्बी थी अतः अथवा उसके कर्म महान् थे, अतः उसका विशेषण दीर्घबाहु मिलता है।[2] रघु की माता का नाम सुदक्षिणा

१. शान्तिपर्व (३१।७१-८०), यहाँ पर दिलीप का एक नाम शतधन्वा भी है—राजानं शतधन्वानं दिलीप सत्यवादिनम् (श्लोक ७८)

२. दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्नाऽभवत्सुतः (हरि० १।१५।२५)

था, जो मगधवंश की थी।[1] कालिदास के वर्णन काल्पनिक नहीं हैं, इसकी पुष्टि उसके समकालीन कवि सुबन्धु आदि ने की है।[2] जो कोई व्यक्ति इन वर्णनों को काल्पनिक मानता है, वह इतिहास से पूर्णतः अनभिज्ञ है।

विक्रमी रघु का समय ५८०० वि०पू० से ५७०० वि०पू० था। उस समय अनेक राजाओ ने सौ वर्ष से भी अधिक राज्य किया, जैसा कि दशरथ के प्रसङ्ग में निर्दिष्ट किया जायेगा।

रघु की दिग्विजय का विस्तृत वर्णन कालिदास ने किया है, उसकी पुष्टि महाभारत के 'विक्रमीरघुः, (आदिपर्व १।१७२) और हरिवंश के इस उल्लेख से होती है—रघुश्चासीन्महाबलः (१।१५।२५), दिग्विजयीसम्राटो के लिये 'विक्रम' विरुद अतिप्राचीनकाल से प्रचलित था, जैसा कि पुरूरवा को भी विक्रम कहा जाता था।

यद्यपि कालिदास ने दिग्विजय के वर्णन मे अपने समय की जातियो का उल्लेख किया है, जैसे हूण। परन्तु रघु के अपने समय की उन जातियो को जीता होगा जो हूणादि के देशो मे रहती थी। यवनादि म्लेच्छ=जातिया तो मगर (८००० वि०पू०) से पूर्व उत्तरपश्चिमदेशो मे बसी हुई थी। कालिदास के अनुसार रघु ने निम्न जातियो को जीता

१ सुह्यदेश	७ यवन
२. वग	८ पारसीक (पह्लव)
३ उत्कल	९. काम्बोज
४ कलिग	१०. उत्सवसकेत-पार्वतीयगण
५ दक्षिणभारत, केरलादि	११. प्राग्ज्योतिषपुर
६. पाण्ड्य	१२. कामरूप[3]

ये सभी नाम पुराणो मे हैं, परन्तु इन देशो के राजाओ के नाम सभवत कालिदास को ज्ञात नही थे, अत उनका उल्लेख नही किया। कालिदास ने वरतन्तुशिष्य कौत्स ऋषि का रघुकालीन गुरुदक्षिणार्थी कहा है।[4] कुत्स और

१ पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा। (१।:६) रघुवंश

२. दिलीप इव सुदक्षिणान्वितः रक्षितगुश्च (वासवदत्ता)

३. रघुवश, चतुर्थ सर्ग

४. उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः (रघु० ५।१)

कौत्स नाम के अनेक ऋषि पूर्वकाल में हो चुके हैं, परन्तु वरतन्तुनाम सन्देहास्पद है।

६७ अज—सर्वसम्मति से रघु का पुत्र अज था।[1] रघु और अज के समकालीन निम्न राजा स्वयंवर में उपस्थित थे—

१. मागध परंतप (रघु० ६।२१)
२. अंगराज (रघु० ६।२७)
३. अवन्तिराज (रघु० ६।३२-३८)
४ प्रतीप हैहय (रघु० ६।४१-४४)
५. सुषेण शूरसेन नीप (रघु० ६।४५-५२)
६. हेमाङ्गद कालिंग (रघु० ६।५३-५७)
७. पाण्ड्यनरेश (रघु० ६।५६-६५)
८. विदर्भनाथ, क्रथकैशिक (रघु० ५।६१)[2]

अज का समय ५६०० वि० पू० के आसपास था।

६८ दशरथ—रामायण के समयसम्बन्धीपाठ यद्यपि अधिक प्रमाणिक नहीं हैं, तथापि उसमें उत्तरकालिक पुराणसिद्धान्त का पालन किया, जिसके अनुसार दिनों को वर्ष के तुल्य माना गया है—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति।[3]

एक बालक की आयु पाचसहस्रवर्ष बताई गई है—

अप्राप्तयौवन बाल पञ्चवर्षसहस्रकम्॥[4]

अतः रामराज्यकाल ११००० दिन = ३० वर्ष ५ मास २० दिन -३१ वर्ष. बालक की आयु ५००० दिन = १३ वर्ष ७ मास - १४ वर्ष। इसी सिद्धान्त से दशरथ की आयु ६०००० वर्ष दिन थी,[5] तो वह आयु १६५ वर्ष के लगभग होनी चाहिये। अतः दशरथ की मृत्यु त्रेता के अन्त मे चौबीसवेंयुग

---

१. अजः पुत्रो रघोश्चापि (वायु० ८८।१८३), तथा रघुवंश (५।३६)
२. प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रः
३. रामा० (१।१।९७)
४. रामा० (७।७३।५)
५. षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक (रामा १।२०।१०)

परिवर्त के प्रारम्भ में ५४३५ वि०पू० में हुई जो हमारी गणना से एकदम ठीक बैठती है। यह गणना वायुपुराण एवं ब्रह्माण्डपुराण द्वारा समर्थित है।

दशरथसमकालिक ऐतिहासिक पुरुष

दशरथ के समकालिक निम्नलिखित ऐतिहासिक ऋषियो, राजाओ एव राक्षसेन्द्रो आदि का ज्ञान होता है—

ऋषिगण—(१) सुयज्ञ वासिष्ठ (दशरथ के पुरोहित) (२) अज्ञातनाम कोई वैश्वामित्र कौशिक, (३) वाल्मीकि प्राचेतस, (४) विभाण्डक काश्यप, (५) तत्पुत्र ऋष्यशृंग, (६) आगस्त्य (अगस्त्य ?), (७) भारद्वाज (भरद्वाज ?) (८) शतानन्द गौतमवंशज, (९) वामदेव, मार्कण्डेय आदि मन्त्रिगण।

राजगण—(१) अश्वपति कैकेय (उपाधि), (२) सीरध्वज मैथिल जनक, (३) कुशध्वज मैथिल जनक सकाश्याधिपति, (४) सुधन्वा, (५) वैशालनरेश सुमति (प्रमति) (६) दक्षिणकोशलराज भानुमान् (७) अंगराज रोमपाद (लोमपाद), (८) पक्षिराज जटायु।

असुरराक्षसगण—(१) मय (२) शम्बर तिमिध्वज (३) सुन्द (४) सुकेतु, (५) रावण।

वासिष्ठ को वसिष्ठ बनाया—रामायण के वर्तमानपाठो से ऐसा आभास होता है इक्ष्वाकु से रामपर्यन्त सभी ऐक्ष्वाक राजाओ के कम से कम नौ सहस्रवर्षपर्यन्त एक ही मैत्रावरुणिवसिष्ठ पुरोहित रहे।[1] यद्यपि, यह सत्य है है कि तपस्वी ऋषियों की आयु अतिदीर्घ होती थी और प्रायः ८ या १० पीढ़ी तक एक ही पुरोहित बना रहता था। यह भ्रम वसिष्ठ नाम से और पुष्ट होता है, इस भ्रम का मूल ऋग्वेद के मन्त्रो से है, सभी वसिष्ठ अगस्त्य, विश्वामित्र, गोतम, अत्रि आदि के वंशजो को भी इसी नाम से सम्बोधित किया जाता था, परन्तु रामायण मे इस तथ्य के सकेत हैं कि इस दशरथ पुरोहित वासिष्ठ का नाम सुयज्ञ वासिष्ठ था, यह निम्न वाक्यो से पुष्ट होता है—

> गत्वा स प्रविवेशाशु सुयज्ञस्य निवेशनम्।
> सुयज्ञमभिचक्राम राघवोऽग्निमिवार्चितम्।।

---

१. इक्ष्वाकूणा हि सर्वेषां पुरोधा परमा गति.। (बालकाण्ड)

इत्युक्तः स तु रामेण सुयज्ञः प्रतिगृह्य तत् ।
रामलक्ष्मणसीतानां प्रयुयोजाशिषः शिवाः ।
(वा० २।३११।१,४,११)

रामायण मे दशरथपुरोहित वासिष्ठसुयज्ञ का नाम न होना अत्यन्त आश्चर्य की बात होती । इस वासिष्ठ सुयज्ञ को प्राय: वशिष्ठ ही कहा जाता था जैसे अनेक वाशिष्ठ ब्राह्मणों को 'वसिष्ठ' कहा जाता है अतः दशरथ का पुरोहित आदिम मैत्रावरुणि वसिष्ठ नही 'सुयज्ञ' वासिष्ठ था ।

अगस्त्य और कौशिक—इसी अवसर पर (वनवास के समय) राम ने अगस्त्य और कौशिक नाम के दो ब्राह्मणो को दान दिया । [1]स्पष्ट है इन दोनो मे से अगस्त्य वह नही हो सकता जो एक, राम को गोदावरी तट[2] और दूसरा सुग्रीव निर्दिष्ट मलयगिरि पर[3] मिला था । सुतीक्ष्ण के कहने पर राम सर्वप्रथम अगस्त्यभ्राता के आश्रम में गये, फिर अगस्त्य के आश्रम में । स्पष्ट है, उस समय अगस्त्य नाम के अनेक ब्राह्मण थे, एक अयोध्यवासी, द्वितीय गोदावरी तटवासी, तृतीय मलयपर्वतवासी और चतुर्थ अगस्त्यभ्राता नाम से रामायण मे उल्लिखित है—'अगस्त्य च अगस्त्यभ्रातरं तथा'।[4] अत. न्यूनतम चार अगस्त्यो का, (वास्तव मे आगस्त्य ब्राह्मणो का) रामायण मे उल्लेख है । देवयुगीन मैत्रावरुणि अगस्त्य का एकमात्र भ्राता मैत्रावरुणि वशिष्ठ था, जो गोदावरीतटवासी अगस्त्यभ्राता नही हो सकता । स्पष्ट है रामायणकालीन अनेक आगस्त्य ब्राह्मण थे । वैयाकरणनियम के अनुसार अगस्त्यवशज को 'अगस्ति' ता 'अगस्त्य' ही कहा जाता था अत इतिहास मे 'एकमात्र अगस्त्य'सम्बन्धी कल्पना मिट जानी चाहिये ।

इसी प्रकार उपर्युक्त अयोध्यावासी दानग्रहीता कौशिक ब्राह्मण और राम के विद्यादाता कौशिक (विश्वामित्र -- वैश्वामित्र) एक नही हो सकते । इतिहास मे अनेक प्रसिद्ध कौशिक ऋषि हुये है । अथर्ववेद के कौशिकसूत्रों

१. अगस्त्यं कौशिकं चैव तावुभौ ब्राह्मणर्षभौ । (रा० २।३२।१३)
२ अगस्त्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ।
यस्यभ्रात्रा कृतेय दिकशरण्या पुण्यकर्मणा । (रा० ३।११।५३,५३)
३ तस्यासीनं नगस्याग्रे मलयस्य महौजसः ।
द्रक्ष्यथादित्यसकाशमगस्त्यमावसत्तम् ।। (रा० ४।४१।१५, १६)
४. रामा० (१।१।४२)

का रचयिता एक अर्वाचीन कौशिक था। अन्य कौशिकों का यथास्थान उल्लेख होगा। अतः दशरथसमकालिक वह नहीं था, जो हरिश्चन्द्र के यज्ञ में शुन शेप का पिता बना और जिसका पुत्र अष्टक ऐक्ष्वाक वसुमनाःकालीन राजर्षि था। वसुमना से दशरथपर्यन्त ऐक्ष्वाक राजाओं की ४० पीढ़िया और न्यूनतम तीन सहस्रवर्षों का अन्तर था। वसुमना ऐक्ष्वाक का समय ८५०० वि०पू० और दशरथ का समय ५५०० वि०पू० था। प्रकट है विश्वामित्रो की कितनी ही पीढिया व्यतीत हुई होगी।

भारद्वाजादि

इसीप्रकार रामायण मे उल्लिखित दशरथकालिन तथाकथित भरद्वाज नही, वह कोई अन्य भारद्वाज (भरद्वाज का वंशज) होगा। यही स्पष्टीकरण शतानन्द गौतम, वामदेव, मार्कण्डेय और अत्रि के सम्बन्ध मे समझना चाहिये। शतानन्द उस गौतम का पुत्र नही हो सकता, जिसे ऋक्सर्वानुक्रमणी मे रहूगण का पुत्र कहा गया है जो ऋग्मन्त्रो का द्रष्टा है।[1] यही वामदेव गौतम नही है, जो वसुमना का समकालीन था।[3] मार्कण्डेय भी एक गोत्रनाम था। अतः सुदीर्घजीवी मार्कण्डेय और दशरथमन्त्री मार्कण्डेय एक नही थे।

शतानन्द की माता अहिल्या जिस गौतम की पत्नी थी, वह ज्ञात नही है, लेकिन वह गौतम मित्रयु पाचाल का जामाता था और दिवोदास पाचाल अहिल्या[4] का पितामह था। दशरथके समय अहिल्या की आयु लगभग १००० वर्षसे अधिक होनी चाहिये, क्योकि उसका पिता मित्रयु, सहदेवसोमक पाचाल और कल्माषपाद ऐक्ष्वाक के समय ६८०० वि०पू० मे था।

वैभाण्डक—ऋष्यशृग

दशरथ के पुत्रेष्टियज्ञ का सम्पादक वैभाण्डक काश्यप ऋष्यशृग ऋषि, अपने युग का विशिष्ट वैदिककर्मकाण्डविशारद था।[5] जैमिनीयोपनिषद् के

---

१. ऋग्वेद (१।७४) का द्रष्टा, सर्वा० (६), पृ० ७
२. शान्तिपर्व (६२।३)
३. वामदेवो गौतमश्चतुर्थं मण्डलमपश्यत् (सर्वा० २०), इस वामदेव ने इन्द्र को चुनौती दी थी और कहता है—अह मनुरभवं सूर्यश्चाह कक्षीवा ऋषिरस्मि विप्रः।
४. अह्या मैत्रेयी (षड्विंशब्राह्मण १।१)
५. काश्यपस्य च पुत्रोऽस्ति विभाण्डक इति श्रुतः।
ऋष्यशृग इतिख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति ॥ (रा० १।९।३,४)

विद्यावंश में इसी विभाण्डकपुत्र काश्यप ऋषिशृंग का उल्लेख है।[1] इस पाठ में इन्द्र से काश्यपपर्यन्त अनेक काश्यपों का उल्लेख होना चाहिये, वह पाठ नष्ट हो गया है।

दशरथसमकालीन राजगण

अश्वपति कैकेय दशरथ का श्वसुर था। यह एक उपाधि थी, जो अनेक कैकयराजाओं को प्राप्त होती थी। यथा सावित्री के पिता का नाम भी अश्वपति कैकेय था।[2] छान्दोग्योपनिषद् में युधिष्ठिरकालीन कैकेयराज को भी अश्वपति कहते थे — "तान् होवाचाश्वपतिः भगवन्तोऽयं कैकेयः।"[3] भरत का मातुल युधाजित् कैकेय रामकालीन कैकेयराज था।

दाशरथियों (रामादि) के श्वसुर जनक सीरध्वज और संकाश्याधिपति कुशध्वज था। जनक सीरध्वज ने सकाश्य के राजा सुधन्वा को परास्त करके उस राज्य पर, अपने अनुज कुशध्वज को स्थापित किया। (रा० बालकाण्ड सर्ग ७१)।

वैशालनरेश सुमति या प्रमति भी दशरथसमकालिक था—

सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम्॥ (रा० १।४७।२०)

पुराणों में इनका नाम प्रमति है।

अगराज लोमपाद या रोमपाद थे, जिनके जामाता शान्तापति ऋष्यशृंग ने दशरथ का यज्ञ कराया।

दक्षिणकोसलराज का नाम भानुमान् था, जो सम्भवतः दशरथपत्नी कौसल्या का भ्राता था—

तथा कोसलराजानं भानुमन्त सुसत्कृतम॥ (रा० १।१२।२६)

पक्षिराज जटायु दशरथ का परममित्र था, जिसका लघुराज्य पंचवटी प्रदेश में था—

स तु पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः।[4]

दशरथकालीन देवासुरयुद्ध

यद्यपि दशरथ के समय इन्द्रादि देवों का अस्तित्व प्रतीत नहीं होता,

---

१. इन्द्रः काश्यपाय। काश्यप ऋष्यशृंगाय।
ऋष्यशृंग. काश्यपो देवतासे...। (जै० उ०, ४।६)

२. पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम (वनपर्व २६।३।६)

३. छा० उ० (५।११।२)

४. रा० (३।१४।४)

जिन्होंने १२ देवासुर महायुद्ध लड़े थे, परन्तु उनके अनुकरण पर रामायण मे शतमाय महासुर शम्बरसज्ञक असुरेन्द्र का भारतवर्षीय आर्य (क्षत्रिय) नरेशो से कोई घोर सग्राम हुआ था, जिसमे कैकेयी ने दशरथ की प्राणरक्षा की, जिसके कारण राजा ने उसको दोवर दिये थे। रामायण[1] और शिवपुराण[2] मे उस असुराज का नाम शम्बर तिमिध्वज लिखा है। इसी का सहायक प्रसिद्ध असुरेन्द्र मय भी शतयाय मय (अनेक विज्ञानो का वेत्ता असुर) था। मय की दो कन्याये थी—मायावती और मन्दोदरी। मायावती का विवाह तिमिध्वज शम्बर से और मण्डोदरी प्रसिद्ध रावण की महिषी थी। रावण ने अपनी साली मायावती का अपहरण करने का प्रयत्न किया, जिससे शम्बर ने रावण को बन्दी बना लिया, तब उसके श्वसुर मय ने अनुनय करके रावण को मुक्त कराया।

उपर्युक्त शम्बर और मय नाम भी वशबोधक हैं। इस वश मे इन नामो के अनेक असुरेन्द्र हो चुके थे, यथा कृष्णसमकालीन (३१०० वि०पू०) मय ने युधिष्ठिर का राजप्रसाद बनाया था और तत्कालीन शम्बर (कालशम्बर) ने कृष्णपुत्र प्रद्युम्न का अपहरण किया था।[3]

दशरथकालीन मय की पत्नी का नाम हेमा था, मण्डोदरी और मायावती इसी की पुत्री थी। हनुमदादि वानरो को सीतान्वेषण करते समय दक्षिण मे हेमा का दिव्यप्रसाद और उसकी सखी शशिप्रभा (स्वयप्रभा) के दर्शन हुये थे जो मेरुमार्वणिसज्ञक असुर की पुत्री थी। यहा पर इस मय का हन्ता पुरन्दर इन्द्र को बताया है,[4] हमारे विचार मे यह मयासुर उपर्युक्त दशरथकालीन देवासुरसग्राम मे मारा गया होगा।

इस सम्बन्ध मे पं० भगवद्दत्त ने श्रीसीतानाथप्रधान का यह मत उद्धृत किया है कि देवासुरयुद्ध मे दशरथ के साथी राजर्षिदिवोदास आदि थे।

---

१. रा० ६।११

२ शि० पु० ६।१३
अत दिवोदास और दशरथ की समकालिकता असिद्ध है।

३ महा० (सभापर्व० अ० १) तथा हरि० (२।१०४ अ०)

४. मयो नाम महातेजा मायावी वानरर्षभ ॥
तेनेद निर्मित सर्व मायया सर्वं काचनंवनम्।
तमप्सरसि हेमाया सक्त दानवपुङ्गवम्॥
विक्रम्याशनिं गृह्य जघानेन्द्रः पुरन्दरः। (रा० ४।५१)

सीतानाथ प्रधान और भगवद्दत्त की यह कल्पना सर्वथा निस्सार और इतिहासविरुद्ध है, इसको हम सप्रमाण पूर्वपृष्ठो पर सिद्ध कर चुके हैं कि दाशराज्ञद्वितीययुद्ध का विजेता ऐक्ष्वाक सुदास पैजवन और पाचाल सुदास पैजवन पाचाल, दशरथ से लगभग डेढ सहस्रवर्ष (कल्माषपाद) से पूर्व ७००० वि०पू० हो चुके थे, जबकि दशरथ का समय (मृत्यु) ५४३५ वि०पू० निश्चित है।

राक्षसों के शासक सुन्द और सुकेतु भी दशरथ के समकालिक थे। ताडकापति सुन्द विन्ध्यप्रदेश का राजा था, परन्तु इसने सुदूरपूर्वी द्वीपो पर भी आधिपत्य किया।[1] सुकेतु ताडकापिता था।[2] हमारा दृढ मत है कि अन्डमान निकोबार और बोर्नियो का निकटवर्ती सुन्दद्वीप ही प्राचीन 'राक्षसद्वीप' था, जिसकी राजधानी लंका थी, जिसके सुवर्णमयप्रसादो का निर्माण तत्कालोन उपर्युक्त शिल्पी मयासुर ने किया था, जो रावण का श्वसुर था, इसीलिये आजतक पूर्वीद्वीपसमूहो को सुवर्णद्वीप कहते है, 'सुन्दद्वीप' इनका केन्द्र या प्रतिनिधि था। रामायण के वर्तमान पाठ में इस राक्षसद्वीप का नाम लुप्त है, परन्तु 'सुन्दरकाण्ड' पद में इस द्वीप का 'सुन्द' नाम सुरक्षित है, सुन्दरता से इस काण्ड का कोई सम्बन्ध नही, 'सुन्द' सज्ञक राक्षसद्वीप की घटनाओं के वर्णन के कारण ही इसका नाम 'सुन्दकाण्ड' पड़ा, जिसे विस्मृति के कारण 'सुन्दरकाण्ड' कहने लगे। द्वीप का नाम लका कदापि नही था।[3] वह नगरी (राजधानी) थी।

यह सुन्द निश्चय अत्यन्त प्रतापी राक्षसेन्द्र होगा, जिसकी पत्नी ताडका थी। सुन्द भी सम्भवतः एक वशनाम था, जो हिरण्यकशिपु के वश मे हुआ। निकुम्भ का पुत्र सुन्द और उपसुन्द। यदि ताडकापति सुन्द उपसुन्द का भ्राता ही था तो इनका समय ५६०० वि०पू० निश्चित होता है, क्योकि दशरथ के राज्यकाल से पूर्व ही सुन्दादि नष्ट हो गये थे। सुकेतु का समकालीन राक्षसेन्द्र सुकेश था।

---

१. पूर्वमासीन्महायक्षः सुकेतुर्नाम वीर्यवान्।
कन्यारत्नं राम ताटकानाम नामतः जम्भपुत्राय ददौ भार्यां यशस्विनीम्॥ (रा० १।२५।५,३,८)

२. महा० आदिपर्व (२८।२-३)

३. इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने। तस्मिल्लंकापुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा। (रा० ४।५८।२०)

सुकेश का वंशवृक्ष रामायण (७।४) मे इस प्रकार कथित है—

प्रहेति, हेति + भयापत्नी
|
विद्युत्केश + सालकटंकटा
|
सुकेश + वेदवती
|
सुमाली; माली; माल्यवान्
|
राका, कैकसी + विश्रवा पौलस्य
पुष्पोत्कटा
|
प्रहस्त, अनल विरूपाक्षादिराक्षस

रामायण ऐतिह्यपरीक्षण

रामायण मे अत्यन्त विलक्षण, चमत्कारपूर्ण, अविश्वसनीयतुल्य, दुर्बोध्य किंवा अबोध्य घटनाओ का उल्लेख मिलता है, जो वर्तमान तथाकथित इतिहासकारब्रुवो को घोरसमस्या प्रतीत होती है। आधुनिक ऐतिहासिकब्रुवो की एतत्सम्बन्धी अवैज्ञानिक प्रतीति का कारण वे इतिहासविसगतियां हैं, जिनपर हमने पूर्वपीठिका मे विस्तार से विचारविमर्श किया है—मैकाले की आंग्लीकरणयोजना, तथाकथित विकासवाद और अवैज्ञानिक भाषाविज्ञान (?), पाश्चात्यो का भारतीयविषयो के प्रति अज्ञान तथा भारतीयो द्वारा पाश्चात्यो की मूढता को परमप्रमाणिक मानना एव इस कारण उनका अन्धानुकरण करना।

इतिहासविकृति के उपर्युक्त कारणों के घटाटोप मे, जबकि भारतीयो पर मैकाले का योजनाप्रभाव अपने पूर्णरूप मे छाया हुआ था, श्रीचिन्तामणि विनायकवैद्यसज्ञक एक भारतीयविद्वान् ने १६०६ मे दी रिडिल आफ दी रामायण (the Riddle of the Ramayana) नामक एक पुस्तक लिखी थी। यद्यपि वैद्यजी भारतीयसस्कृति के श्रेष्ठज्ञाता थे, परन्तु उन्होने अपनी पुस्तक मे अनक भ्रामक कल्पनाओ का आश्रय लिया। अतः उस पुस्तक के प्रकाश मे हम रामायण की विभिन्न समस्याओ का सक्षेप मे संकेत करते हुये समाधान करेंगे, क्योंकि वे समस्याये इतिहासनिर्माण में बाधाये उपस्थित करती है।

६६ दाशरथिराम की आयु और राज्यकाल— अत्यन्त खेद का विषय है कि राम की सही आयु एवं घटनावर्षों का सत्यज्ञापक विवरण आज प्रायः अन्धकारावृत और लुप्त है, यद्यपि उनके जीवन का विस्तृत वर्णन रामायणादि ग्रन्थों में मिलता है, बल्कि में रामकालसम्बन्धी अनेक भ्रमोत्पादक सन्दर्भ ही वर्तमान रामायणपाठो मे मिलते हैं, यथा वनवास के समय राम की आयु १७ या १८ वर्ष बताई गई है—

दश सप्त च वर्षाणि जातस्य तव राघव ।[२]

आगे के उस उल्लेखसे उक्त कथन का पूर्णविरोध है, जहां सीता रावण से कहती है कि मैं विवाह के उपरान्त १२वर्षपर्यन्त राम के राजप्रसादो मे रही—

उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने ।[३]

इसका अर्थ हुआ कि विवाह के समय राम की आयु ५ वर्ष थी और सीता की तो छः वर्ष बताई गई है—

अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते ।[४]

राम की आयु इस समय २५ वर्ष बताई गई है—

मम भर्त्ता महातेजा वयसा पंचविंशक ।[५]

सीताहरण, वनवास के लगभग १२वें वर्ष माना जाता है, इसको मानने पर वनवास के समय राम की आयु १३ वर्ष और विवाह के समय एक वर्ष और सीता की आयु वनवास के समय ६ वर्ष और विवाह के समय उनका जन्म ही छःवर्ष पश्चात होना चाहिये ।

अतः रामायण के उपर्युक्त आयुसम्बन्धिसन्दर्भ सर्वथा भ्रामक हैं। इस सम्बन्ध मे श्री सी०वी० वैद्य के अनुमान उपयुक्त हैं कि विवाह के समय

१. इस सम्बन्ध मे धर्मयुग (२४ अ० २।१६८२) मे विशिष्ट लेख 'लंका मे श्रीराम के युद्धावशेष' अवलोकनीय है ।
२. रामा० (२।२०।४५)
३. रामा (३।४७।४)
४. रामा० (३।४७।११)
५. रामा० (३।४७।१०)

राम (और सीता की भी) आयु १६ या १८ वर्षकी होगी, वनवास के समय २८ या ३० वर्ष और लका से लौटकर राज्याभिषेक के समय राम की आयु ४२ वर्ष होनी चाहिये ।[1]

राम का राज्यकाल इतिहासपुराणो मे बहुधा ११००० वर्ष बताया गया—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोक प्रयास्यति ॥[2]

इसका अर्थ है कि राम ने ११००० दिन राज्य किया इस सिद्धान्त का हम पहिले ही प्रतिपादन कर चुके है, इतने दिनो के लगभग ३१ वर्ष होते है. इस सम्बन्ध मे मीमासादर्शन और रामायण के टीकाकारो का भी यही मत है परन्तु सी० वी० वैद्य और प० भगवद्दत्त इस ऐतिहासिक गणना को न समझकर लिखते है—The commentator no doubt explains the absurdity by saying that years have meant days But this use of the word "year" certainly unwarranted[3].

'राम का राज्यकाल—राम ने दशसहस्र (अर्थात् लगभग दश) वर्ष तक राज्य करके कई अश्वमेधयज्ञ किये । राम का राज्य लगभग बीस वर्ष था । यह साराकाल २५ वर्ष से कुछ न्यून था—पर सारा पक्ष विचारणीय है ।'[4] (भगवद्दत्त);

उपर्युक्त प्राचीन ऐतिहासिकगणनासे राम का राज्यकाल ३१ वर्ष निकलता है, यदि राम ४२ वर्ष की आयु मे राज्यसिंहासन पर बैठे तो ७२

---

1 Rama, married at 16 or 18, and age which need not to be wonderedat, in connection with a Ksatiyo prince of exhubetant growth and powerful frame; was to be invested with the power of the heir apparent at 28 or 30, but was sent into exile; conquered Lankā, returned to Ayodhyā and was installed in his rightful place at 42, a course of life not much differing from the ordinaryrun of human life (R R p, 37)

२. रामा० (१।१।९६)

3 (R.R p 38)

४. प० भगवद्दत्त भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० ११६)

या ७३ वर्ष की आयु में इनका देहावसान हुआ।

इस सम्बन्ध मे एक अन्य प्राचीनपाठ विचारणीय है, जो बौद्धगन्थ दशरथजातक में मिलता है, तदनुसार—

> दशवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
> कम्बुग्रीवो महाबाहू रामो राज्यमकारयत्॥

यदि उपर्युक्त पाठ ही प्राचीन, मूल एव सत्य हो, तो राम का राज्यकाल लगभग १४ वर्ष और बढ जायेगा, तब मानना पड़ेगा कि राम ने ४४ वर्ष राज्य किया और ८७ वर्ष की आयु मे उनका देहावसान हुआ।

दशरथजातक के उपर्युक्त पाठ के सत्य होने की पूर्ण सम्भावना है, क्योंकि 'दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि' श्लोकार्ध मे प्रथमदशके आधार पर द्वितीय 'दश' भी तुकबन्दी मे पाठपरिवर्तन कर दिया होगा, मूलपाठ 'दशवर्षसहस्राणि' और षष्टिवर्षशतानि ही होगा। इस सम्बन्ध मे एकगाथा और ध्यातव्य है,' दशरथजातक की भांति अन्य प्राचीनग्रन्थो की गाथाओ में राम को कम्बुग्रीव, लोहिताक्ष और अजानुबाहु बताया गया है—

> लोहिताक्ष महाबाहुं मत्तमातगगामिनम्।
> कम्बुग्रीव महोरस्क नीलकुञ्चितमूर्धजम्॥
> आजानुबाहु सुशिरा सुलाट सुविक्रम.॥ (रा० १।१।९-१०)
> विपुलासो महाबाहु. कम्बुग्रीव· शुभानन।
> गूढजत्रु सुताम्राक्षो रामो नाम जनै. श्रुत·। (रा० ६।३५।१५)
> आजानुबाहु: सुग्रीव· सिहस्कन्धो महाभुज.॥ (शान्ति० २९।६०)

यही गाथा द्रोणपर्व ५९।२ मे मिलती है। उपर्युक्त गाथाओं के परिप्रेक्ष्य मे दशरथजातक की उपर्युक्त गाथा के पूर्ण सत्य होने की सम्भावना है अत: राम का सम्भावित राज्यकाल ४४ वर्ष और आयु ८७ ही थी। जो कोई अधिक नही है। बिल्कुल सामान्य है।

दाशरथिरामोत्तरकालीन ऐक्ष्वाकवशावली—श्रीसीतानाथप्रधान और पं० भगवद्दत्त को महान् भ्रम—श्रीसीतानाथप्रधान के भ्रामक मत के प्रभाव में प० भगवद्दत ने रामोत्तरऐक्ष्वाकवश के सम्बन्ध मे अत्यन्त भ्रष्ट एव असत्य कल्पनायें की। जब कोई भी भारतीय किंवा अभारतीय लेखक प्रामाणिक सरणि का परित्याग करके केवल मन:प्रसूतकल्पना का आश्रय

लेना है, तब वह इतिहास से खिलवाड़ करता है, और तभी उस लेखक का मत मनघड़न्त और इतिहासविरुद्ध हो जाता है।

श्रीसीतानाथप्रधान और पं० भगवद्दत्त ने पुराणो के निम्न श्लोकों के आधार पर व्यर्थ ही पाठभ्रंश की कल्पना कर ली—

उत्तरकोसले राज्ये लवस्य च महात्मनः।
कुशवंश निबोधत ॥ (वायु० ४।२००० ब्रह्माण्ड ६४।२००)

इससे पूर्व पं० भगवद्दत्त ने श्रीसीतानाथ का अनुकरण करते हुये लिखा—"राम के पश्चात् की वशपरम्परा का वशावलियो मे स्पष्ट वृत्त नही रहा। पार्जीटर ने राम की उत्तरकालीन ऐक्ष्वाक वशावली को ठीक नही समझा। प्रधान महाशय का परिश्रम बडा स्तुत्य है। उन्होने सत्य का लगभग दर्शन किया हैं।"[1] इसके पश्चात् उन्होंने रामवंश को कुशवशलववशो के ३ भागों मे विभक्त करके कुश से परकौसल्यपर्यन्त १८ पीढी और लव से बृहद्बल पर्यन्त १५ पीढ़ी तथा अहीनगु से श्रुतायु तक ७ पीढी मानकर कल्पना की पूरी उडान भरी है।

इस सम्बन्ध मे पार्जीटर का मार्ग उचित और सत्यपद्धति पर आश्रित है, क्योकि उसने प्राचीनग्रन्थो के आधार पर ही लिखा है, कल्पना का आश्रय नही लिया।

श्रीसीतानाथप्रधान और प० भगवद्दत्त की कल्पनायें पूर्णत. असत्य है, इसमें निम्न हेतु है—

(१) समस्त पुराण और कालिदास (रघुवशमे) रामोत्तरकालीन ऐक्ष्वाक वंश के सम्बन्ध में एकमत हैं।

(२) दाशरथिराम से भारतयुद्धपर्यन्त ६ युग (३६०+६=न्यूनतम २१६०) वर्ष व्यतीत हुये, यही द्वापरयुग का काल माना जाता था।

(३) द्वापरयुग का मान २००० वर्ष, (सन्धिसहित २४००) वर्ष था।

(४) द्वापरयुग राम के ठीक पश्चात् हुआ—राम त्रेताद्वापर की सन्धि मे हुये।

(५) कश्यप से कृष्णद्वैपायनपर्यन्त २८ व्यास, परन्तु ३० युग (३०×३६०=१०८०० वर्ष) व्यतीत हुये।

---

१. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १३४).

(६) तीनो युगों = कृतयुग ४८०० + त्रेता ३६०० और द्वापर २४०० = १०८०० वर्ष है।

अतः ३६० वर्ष के ३०युग तीनमहायुग (कृतत्रेताद्वापर) = १०८०० वर्ष हैं।

कलियुग के १२०० जोडने पर चतुर्युग = १२००० वर्ष हैं।

(७) अतः राम से बृहद्बलपर्यन्त सम्पूर्ण द्वापरयुग (२४०० वर्ष) में न्यूनतम ४० पीढियां अवश्य होनी चाहिये।

पं० भगवद्दत्त का विरोधाभास स्वयं प० भगवद्दत्त ने 'भारतवर्ष का वृहद् इतिहास' भाग २, अध्याय भारतीयइतिहास की तिथिगणना के मूलधार स्तम्भ (एकादश अध्याय) मे इस समस्या पर विचार किया है और त्रेता द्वापर की सन्धि विक्रम ५४०० वर्ष पूर्व मानी है, तथापि वे व्यासपरम्परा और परिवर्तयुग का कालमान ज्ञात करने से असमर्थ रहे। हमने इस परिवर्त युग की समस्या का पूर्ण समाधान कर दिया है।

परन्तु हमारी अभी तक यही धारणा थी कि प्रथम व्यास कश्यप से कृष्णद्वैपायनपर्यन्त २८ युगो मे २८ व्यास ही हुये। परन्तु यह मत निर्भ्रान्त नही है। भारतयुद्धकालपर्यन्त व्यासगण तो २८ ही हुये, परन्तु युगपरिवर्त ३० व्यतीत हुये। उपर्युक्त भ्रान्ति का आभास हमे पुराण के एक अशुद्ध पाठ को शुद्ध करते हुये हुआ। वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण मे एक भ्रशपाठ है—ऐक्ष्वाक अग्निवर्ण की तृतीय पीढी मे एक राजा था मरु, जो शन्तनुभ्राता देवापि के समकालिक हुआ। उसके सम्बन्ध मे पाठ है—

मरुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थितः।
एकोनविंशप्रयुगे क्षत्रप्रवर्तक. प्रभुः।
(ब्रह्माण्ड २।३।६४।२१०-२११) वायु० ८८।२१०)

उपर्युक्त पाठो मे मरु ऐक्ष्वाक ओर देवापि कौरव का समय उन्नीसवेयुग परिवर्त में बताता गया है, परन्तु इसका शुद्धपाठ मत्स्यपुराण (२७२।५५,५६) की इस दुरुक्ति से ज्ञात होता है—

एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे।
सुवर्चा मरुपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ॥
नवविंशे युगेऽसौ वै वंशस्यादिर्भविष्यति।
देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐक्ष्वाकानां भविता नृपः ॥

मरु और देवापि उन्नीसवेंयुग में नही हो सकते, इसपाठ की अशुद्धि इस तथ्य से होती है कि उन्नीसवे युग में जामदग्यराम (परशुराम) ने सहस्रार्जुन हैहय का वध किया था।

जामदग्न्यराम और दाशरथिराम[1] एक ही युग (त्रेताद्वापरसन्धि) में नही हुये, जैसा कि पं० भगवद्दत्तजी मानते है, उनकी यह भ्रान्ति महाभारत के भ्रान्तपाठो पर आधारित है—

त्रेताद्वापरयो: सन्धौ राम: शस्त्रभृता वर:।
असकृत्पार्थिव क्षत्र अघानामर्षप्रचोदित. ।।[2]
सन्धौ तु समनुप्राप्ते त्रेतायाद्वापरस्य च।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पति. ।।[3]

अत जामदग्न्यराम १९वे युग मे तथा दाशरथिराम २४वें युग में हुये; इनमे न्यूनतम ५ युग (३६०×५--१८०० वर्ष) का अन्तर था। अतः रामद्वयी को समकालिक एवं एकही त्रेताद्वापरसन्धि मे मानना महती भ्रान्ति है।

इसी प्रकार मरुदेवापि उन्नीसवें युग मे नही, उन्नीसवें (२९वे) युग मे हुये। भारतयुद्ध देवापि के लगभग ३०० वर्ष पश्चात् अर्थात् ३०वे युग मे हुआ। अत दाशरथिराम मे भारतयुद्ध तक २५वे से ३०वे युग तक(६ युग -२१६० वर्ष) व्यतीत हुये। और द्वापरयुग का मान पुराणादि मे प्रसिद्ध है—

'द्विसहस्र द्वापरे' (भीष्मपर्व ११।६), सन्धिकालों को मिलाकर द्वापर मे २४०० वर्ष होते हैं।

यदि सीतानाथप्रधान की कल्पना को मानलिया जाय तो उपर्युक्त २४०० वर्ष मे केवल १५ लववशीय राजा हुये, अत पूरे द्वापरयुग मे, यदि १५ ही राजा हुये तो उनका औसत राज्यकाल लगभग २०० या १५० वर्ष मानना पडेगा, जो असम्भव है। अत. स्वस्थबुद्धि का तकाजा है कि पूरे द्वापरयुग

---

१ चतुर्विशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोघसा। (वायु० ९।९२)
२. महा० (१।२।३)
३ महा० (१३।३८८।१६)
तथा हरिवंश (२२।१।४१), (वायु० २३।२०६) तथा (वायु० ७०।४०)

में लगभग ४० राजा हुये, जिनका औसत राज्यकाल ५० या ६० वर्ष होता है, जो पूर्णत: सम्भव है। ऐसा ही पुराणो एवं रघुवंश मे कालिदास ने माना भी है।

वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराण (के ६ राजाओ) के वर्णनो के आधार पर निश्चित होता है कि राम से बृहद्बलतक अयोध्या मे लगभग ४० राजा हुये। इनमें कुछ नाम छूटे ही होगे, जैसाकि पुराणो मे बारम्बार कहा गया है कि यहा पर प्रधान प्रधान राजाओ का ही उल्लेख किया गया है, न कि अप्रधान राजाओ का। ये राजा भले ही कुशवश के हों या लव वश के; सभी विभिन्नकालों मे अयोध्या के राजा थे, यह सम्भव है कि दो चार समकालीन राजाओ के नाम भी उल्लिखित हो, परन्तु इससे मूलस्थिति में कोई विशेष अन्तर नही पडता।

अत: तथ्य यह है--

(१) जामदग्न्यराम १९वे परिवर्त में ७२०० वि०पू० हुये।

(२) राम दाशरथि २४वेयुग ,, मे ५४०० वि०पू० हुये।

(३) दाशरथिराम और मरु ऐक्ष्वाकपर्यन्त ५ युग (३६०×५= १८०० वर्ष व्यतीत हुये।

(४) दाशरथिराम से बृहद्बलपर्यन्त छ युग (३६०×६ २५६०) या लगभग २२०० वर्ष व्यतीत हुये। ३०वे युगमे युद्ध हुआ। यही द्वापरयुग की कालावधि थी।

(५) दाशरथिराम और भारतयुद्ध मे न्यूनतम २००० वर्ष का अन्तर था।

(६) भारतयुद्ध ३०वें युग (३१०० वि०पू०) मे हुआ।

(७) दाशरथि राम से बृहद्बलपर्यंन्त ऐक्ष्वाकवंश मे अयोध्या मे न्यूनतम ४० राजा हुये, जिनका राज्यकाल २२०० से २४०० वर्ष था।

अत: सीतानाथप्रधान का मत पूर्णत. भ्रान्त है।

कुशवंश

ब्रह्माण्ड	विष्णु	हरिवंश	भागवत	मत्स्य	रघुवश
कुश	कुश	कुश	कुश	कुश	कुश
अतिथि	अतिथि	अतिथि	अतिथि	अतिथि	अतिथि

निषध	निषध	निषध	निषध	निषध	निषध
नल	अनल	नल	नभ	नल	नल
नभ	नभस्	नभ	पुण्डरीक	नभ	नभस्
पुण्डरीक	पुण्डरीक	पुण्डरीक	क्षेमधन्वा	पुण्डरीक	पुण्डरीक
क्षेमधन्वा	क्षेमधन्वा	क्षेमधन्वा	देवानीक	क्षेमधन्वा	क्षेमधन्वा
देवानीक	देवानीक	देवानीक	अनीह	देवानीक	देवानीक
अहीनगु	अहनगु	अहीनगु	पारियात्र	अहनगु	अहीनगु
पारियात्र	रुरु	सुधनु	बल	सहस्राश्व	पारियात्र
दल	पारियात्रक	अनल	स्थल	पर	शिल
बल	देवल	उक्थ	वज्रनाभ	चन्द्रावलोक	उन्नाभ
उलूक	वच्चल	वज्रनाभ	खगण	तारापीड	वज्रनाभ
वज्रनाभ	उत्क	शख	विधृति	चन्द्रगिगि	शखण
शंखण	वज्रनाभ	पुष्प	हिरण्यनाभ	भानुचन्द्र	व्युषिताश्व
व्युषिताश्व	शंखण	अर्थसिद्धि	पुष्प	श्रुतायु	विश्वसह
विश्वसह	व्युषिताश्व	सुदर्शन	ध्रुनसन्धि		हिरण्यनाभ
हिरण्यनाभ	विश्वसह	अग्निवर्ण	सुदर्शन		कौसल्य
पुण्य	हिरण्यनाभ	शीघ्र	शीघ्र		ब्रह्मिष्ठ
ध्रुवसन्धि	पुण्य	मरु	मरु		पुत्र
सुदर्शन	ध्रुवसन्धि	ब्रह्मदत्त	प्रसुश्रुत		पुण्य
अग्निवर्ण	सुदर्शन		सन्धि		ध्रुवसन्धि
शीघ्रग	अग्निवर्ण		प्रमर्षण		सुदर्शन
मरु	शीघ्रग		महस्वान्		अग्निवर्ण
मुसन्धि	मरु		विश्वसाह्व		
मर्ष	प्रशुश्रुक		प्रसेनजित्		
	सुसन्धि		तक्षक		
			बृहद्बल		

अत सभी पुराणो के पाठो के तुलनात्मक अध्ययन से कुश से बृहद्बल पर्यन्त अयोध्या मे लगभग ४८ राजा हुये, भले ही वे कुशवंश के हो या लव वश के अथवा परम्पर भ्राता हो, जैसे पारियात्र या परीक्षित के तीनपुत्र शल, दल और बल भ्राता क्रमशः अयोध्या के राजा बने,[1] इसका सकेत आगे

१. महा० (३।१९२)

प्रस्तुत करेंगे। इसी प्रकार अनेक उन भ्राताओं के नाम छूटे होंगे जिन्होने स्वल्प या दीर्घ शासन किया।

इनके क्रम में भी कुछ व्यत्यास या व्यतिक्रम हो सकता है क्योंकि कोई एक पुराण सम्पूर्ण राजाओं का उल्लेख नही करता, यहांतक कि कालिदास ने रघुवंश मे अनेक राजाओं के नाम छोड दिये हैं, यथा रघुवंश में दल और बल का नाम छोड दिया है, केवल 'शल' का भिन्न नाम से उल्लेख किया है।[1] अत: पुराणों, महाभारत और रघुवंश के सम्मिलित साक्ष्य के आधार पर इन ऐक्ष्वाक राजाओं का सभावित क्रम इस प्रकार है —

कुश	पर	पुष्य
अतिथि	चन्द्रावलोक	अर्थसिद्धि
निषध	तारापीड	सुदर्शन
नल	चन्द्रगिरि	अग्निवर्ण
नभ	भानुचन्द्र - भानुमित्र	शीघ्रग
पुण्डरीक	श्रुतायु	मरु मनु
क्षेमधन्वा	उलूक	प्रसुश्रुत
देवानीक	उन्नाभ	सन्धि सुसन्धि
अहीनगु	वज्रनाभ	प्रमर्षण
रुरु	शखण	महस्वान्
पारियात्र - परीक्षित्	व्युषिताश्व	सहस्वान्
शल	विश्वसह	विश्वभव
दल	हिरण्यनाभ - अटणार	विश्वसाह्व
बल	पर कौसल्य आटणार	प्रसेनजित्
उक्थ	ब्रह्मिष्ठ	तक्षक
सहस्राश्व	पुत्र	बृहद्बल

७०. कुश—इसका राज्यकाल ५५०० वि०पू० से ५४५० वि०पू० अनुमानित है, क्योंकि महाभारतपूर्व के किसी राजा की राज्यवर्ष सख्या उपलब्ध नही, अत: हमने औसत ५० वर्ष मानकर गणना की है, जो पूर्णत: सम्भव है, कुश से बृहद्बलपर्यन्त अयोध्या में ५० राजा हुये, जिनका राज्यकाल सम्पूर्ण द्वापरयुग = २४०० वर्ष। इस प्रकार औसत राज्यकाल ५० वर्ष

१. रघु० (१।१७)

से कुछ ही कम निकलता है, इनमे कुछ ऐक्ष्वाक राजा समकालिक भी हो सकते हैं अतः औसत राज्यकाल ५० वर्ष मानना ही उपयुक्त है।

कुश की प्रथम राजधानी कुश के नाम पर ही कुशावती थी? पुराणो में इसका नाम कुशस्थली मिलता है, जो विन्ध्यपर्वत के मध्य मे बसी हुई थी।[१] पुराणो में लव की राजधानी श्रावस्ती (बस्ती जिला) बताई है, जबकि कालिदास से उसका नाम शरावती लिखा है। सम्भव है श्रावस्ती का विकार ही 'शरावती' हो। राम ने अपने और अपने भ्राताओं के ८ पुत्रो के ८ राज्य स्थापित किये। शत्रुघ्न के पुत्र सुबाहु और शत्रुघाती (या शूरसेन[३]) संज्ञकपुत्रो को क्रमश. मथुरा और विदिशा का राज्य दिया।[४] लक्ष्मणपुत्र अंगद और चन्द्रकेतु को क्रमशः अगदा और चन्द्रचकापुरी कारुपथदेश (हिमालय) मे थी।[५] भरतपुत्र तक्ष और पुष्कर की राजधानी अफगानिस्तान के गांधार जनपद मे क्रमश· तक्षशिला और पुष्करावती थी।[६]

तक्षस्य दिक्षु विख्याता नाम्ना तक्षशिलापुरी।
पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती।[६]

शीघ्र ही कुश ने कुशावती छोडकर पुनः अयोध्या को ही राजधानी बनाया।[७] कुश के समकालीन एक नागराज का नाम कुमुद था, जिसकी भगिनी (अनुजा) का विवाह कुश से हुआ।[८] यह नाग तक्षकवंश का था— जिसको तक्षक का पचमपुत्र कहा गया है। (रघु० १६।८८)

एक देवासुरसग्राम मे दुर्जयसञक असुर को मारते हुये कुश भी मारा गया। यहां पर इन्द्र की उपस्थिति पुन ऐतिहासिक समस्या उत्पन्न करती है।[९]

---

१ स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागाकुश कुशम्। शरावत्या सता सूक्त कुशावनी श्रोत्रियसात्स कृत्वा। (रघु० १६।२५)। जनिताश्रुलवतावद् (रघु० १५।१७)

२. कुशस्य कोमला राज्य पुरी चापि कुशस्थली।
रम्या निवेशिता तेन विन्ध्यसानुषु (ब्रह्माण्ड० २।६।६६।२००)

३. सुबाहुः शूरसेनश्च शत्रुघ्नस्य सुतावुभौ (ब्रह्माण्ड० २।३।६४।१८७)

४. रघुवंश (१५।३६)

५ ब्रह्माण्ड (२।३।६४।१८६) रघु० (१५६०)

६. रा० (७।१००।१०-१३), तथा रघु० (१५।८६)

७. रघु० (१६।२५)

८. रघु० (१६।५)

९. रघु० (१७।५)

७१. **अतिथि**—कुश के पुत्र अतिथि का राज्यकाल ५४५० वि०पू० से ५४०० वि०पू० समझना चाहिये। कालिदास के अनुसार अतिथि का प्रभाव समुद्रतट तक था।[1] वह सार्वभौम प्रतापी सम्राट् था।[2]

निषधदेश का राजा अर्थपति उसका समकालिक था, जिसकी पुत्री से उसका विवाह हुआ।[3]

७२. **निषध**—पं० भगवद्दत्त ने लिखा है—"हमारा अनुमान है कि इसका वास्तविक नाम निषिध होगा। शतपथब्राह्मण २।३।२।१।२ नल नैषिध पाठ है। यह नाम वीरसेनात्मज नल का नहीं हो सकता।...विन्टर्निट्स् ने शतपथवाले नलको ही वीरसेनात्मज नल मान लिया है"।[4] (भा० बृ० इ० भा० २,१३५) प० भगवद्दत्त की मान्यता हमे मान्य नही है, क्योकि नैषध वीरसेनात्मज को ही पुण्यश्लोक माना गया हैं और उसकी तुलना इन्द्र, यम आदि से की है।[5] नलनैषध (या नैषिध) दक्षिण का ही राजा था। अत शतपथ मे ऐक्ष्वाक नल नैषध का उल्लेख नही, नैषध नल (वीरसेनात्मज) का ही उल्लेख मानना उपयुक्त है। निषिध और निषध एक शब्द के दो पाठान्तर हैं।

७३. **नल**—यह ऐक्ष्वाक नल निषध का पुत्र था, पुराणो मे दो नल विख्यात है,—

नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे भरतर्षभ।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वह.॥ (हरि० १।१५।३५)

इनमे भी वीरसेनात्मज नैषधराज नल ही अतिलोकप्रसिद्धव्यक्ति है, जो आज भी साधारणजनों में विश्रुत है, इसीको पुण्यश्लोक और धर्मात्मा

---

१. तावदेवास्य वेलान्त प्रताप: प्राप दु:सह (रघु० १७।३७)
२ दधु: शिरोभिर्भूपाला देवा: पौरन्दरीमिव। (रघु० १७।७६)
३. रघु० (१८।८)
४. हि० इ० लि० पृ० ३८३
४. तस्मिन्वस तीन्द्रो यमो राजा नडो नैषिध: (श० ब्रा० २.३।२।१)
५. सा समीक्ष्य तु तान् देवान् पुण्यश्लोक च भारत।
नैषध वरयामास भैमी धर्मेण पाण्डव। (महा० ३।५७।२७)
देवो ने आठ वर इसी नल को दिये थे, द्र० (महा० ३।५७।३५—३८),
प्रत्यक्षदर्शन यज्ञे गति चानुत्तमां शुभाम्।

देवोपम माना जाता है, ऐक्ष्वाक नल को नही। शतपथ के प्रमाण से प्रकट है कि यज्ञो मे इन्द्र और यम के समान नैषधनल की पूजा होती थी और कल्पसूत्रो मे वीरसेनात्मज नल के साथी ऋतुपर्ण की गाथायें ही यज्ञ एवं द्यूत में गाई जाती थी।[1] अतः प० भगवद्दत्त की कल्पना प्रमाणाभाव मे निस्सार एव अमान्य है। ऐक्ष्वाक नल अप्रसिद्ध व्यक्ति था।

ऐक्ष्वाक नल का राज्यकाल ५३५० वि०पू० ५२५० वि०पू० के मध्य समझना चाहिये।

७४ **नभ**—नलपुत्र नभ का राज्यकाल ५३०० वि०पू० ५२५० वि०पू० था, इसी को पुराणों मे नभस् कहा गया है।[2]

७५ **पुण्डरीक**—इसका शासनकाल ५२५० वि०पू० से ५२०० वि०पू० समझना चाहिये।

७६ **क्षेमधन्वा**—यह पुण्डरीक ऐक्ष्वाक का विख्यात पुत्र था। श्रीसीतानाथ प्रधान ने ताण्ड्यब्राह्मण (२२।१८।८) के प्रमाण से इसका एक नाम (सभवत प्राचीनमूल नाम) 'क्षेमधृत्वा' अनुसधान किया है—"एतेन वै क्षेमधृत्वा पौण्डरीक इष्ट्वा सुदाम्नस्तीर उत्तरे।[3]" पं० भगवद्दत्त ने महाभारत शान्तिपर्व (अ० ४५ तथा १०४ से १०६ पर्यन्त) के आधार पर कौसल्य क्षेमदर्शी और क्षेमधन्वा को एक माना है।[4] इसके मन्त्री कालकवृक्षीय के पास एक काक था जो, अनागतातीतवर्तमान सब कुछ बना देता था।

> कौसलामाधिपत्य सम्प्राप्त क्षेमदर्शिनम्।
> मुनि कालकवृक्षीय आजगामेति नः श्रुतम्॥
> स काक पञ्जरेबद्धा विषय क्षेमदर्शिनः।
> अनागतमतीत च यच्च सम्प्रति वर्तते॥[5]

---

१ आप० श्रौ० (२१।१०।३), तथा बौधा० श्रौ० (१८।१३)

२ नभश्चरैर्गीतयशाः स लेभे नभस्तलश्यामतनु तनूजम्।
ख्यात नभःशब्दमयेन नाम्ना कान्तं नभोमासमिव प्रजानाम्॥
(रघु० ४।६)

३ क्रो० ए० इ० (पृ० ११८)

४ भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १८५)

५. महा० (१२।८२।६,७,८)

क्षेमदर्शी के समकालीन किसी विदेहराज से कालकवृक्षीय ने सन्धि एवं उसकी दुहिता का विवाह कराया।[1]

क्षेमधन्वा पौण्डरीक की शासनावधि ५२०० वि०पू० से ५१५० वि०पू० अनुमानित है।

७७ देवानीक—इसने सम्भवतः देवो की सहायता की थी और असुरों को पराजित किया था, ऐसा कालिदास के कथन से आभास होता है।[2]

इसका अनुमानित शासनकाल ५१५० वि०पू० से ५००० वि०पू० था।

७८ अहीनगु इसका राज्यकाल ५१०० वि०पू० से ५०५० वि०पू० के मध्य था। पुराणों में अहीनगु के पश्चात् की ऐक्ष्वाकवशावली मे अत्यन्त गडबड है। मत्स्यपुराण मे अहीनगु के पश्चात् क्रमशः सहस्राश्व, चन्द्रावलोक तारापीड, चन्द्रगिमी, भानुचन्द्र और श्रुतायु छः राजा कथित है।[3] अन्य पुराणो मे अहीनगु से बृहद्बल तक लगभग २० राजा उल्लिखित है।[4] सीतानाथप्रधान और पं० भगवद्दत्त ने इस वशावली को तीन भागो मे विभक्त कर दिया है। इस सम्बन्ध में हमारा मत है कि सभी पुराणों की वंशावलिया अपूर्ण या अधूरी है, कोई पुराण (यथा ब्रह्माण्ड) नल (शलण) तक की सूची प्रस्तुत करता है, हरिवश मरुपर्यन्त, गरुडपु० प्रसुश्रुतपर्यन्त, मत्स्य श्रुतायु तक। अत इस अधूरी वशावली को पूरा करने की एक ही विधि है कि तुलनात्मक अध्ययन करके सभी वशावलियो को मिला दिया जाय, इसमे थोडी बहुत त्रुटि सम्भव है, इनको पृथक्-पृथक् वश मानना सर्वथा अयुक्त एव पुराण तथा रघुवश के विपरीत है।

८० रुरु - केवल विष्णुपुराण (४।१०४) मे अहीनक (अहीनगु) का पुत्र रुरु उल्लिखित है, अतः अन्य पुराणों मे यह नाम छूट गया है। हो सकता

१. महा० (१२।१०६।२७,२८)

२ अनीकिनीनां समरेऽग्रयायी तस्यापि देवप्रतिमः सुतोऽभूत्।
व्यूश्रूयतानीकपदावसान देवादिनाम त्रिदिवेऽपि ॥ (रघु० १८।१०)

३. मत्स्य० (अ० १२)

४ After Ahīnagu, most of the Puranas give a list of some twenty Kings Pāripatra (or Sudhanvan) to Brahbdbala, who was killed by Abhimanyu in the Bharatabattle, agreing generally in their names, though some of the lists are incomplete Towards the end (A.I.H.T. p. 94)

है कि रुरु ने स्वल्पकालपर्यन्त ही शासन किया हो, परन्तु इसके अस्तित्व को अस्वीकार नही किया जा सकता।

८० पारियात्र—विभिन्न पुराणो मे इसके सर्वथा विभिन्न नाम मिलते है। विष्णु मे इसका नाम पारियात्रक है। ब्रह्माण्ड और वायु में इसका नाम पारिपात्र है, हरिवंश (१।१५।३०) मे इसका नाम सुधन्वा है।[1] और महाभारत मे सर्वथा पृथक् नाम मिलता है—परीक्षित्।[2]

ऐक्ष्वाक पारिपात्र या परीक्षित् के समकालिक वामदेव ऋषि वह गौतमपुत्र वामदेव नही हो सकते, जो ऋग्वेद के चतुर्थमण्डल के द्रष्टा,[3] सौहोत्र पुरुमीढ और अजमीढ़[4] और वसुमना ऐक्ष्वाक के समकालिक थे। यह वामदेव ५००० वि०पू० हुआ, जबकि वह वामदेव ८५०० वि०पू० मे था। परीक्षित् या परिपात्र के समकालिक वामदेव ऋषि पूर्वोक्त वामदेव गौतम का सुदूरवर्ती वशज हो सकता है।[5]

८१ शल ८२ दल और ८३ बल—पारियात्र या परीक्षित् का विवाह तापसेवषधारी आयुनाम मण्डूकराजकन्या सुशोभना से हुआ, जिसके द्वारा अनेक राजा विप्रलब्ध (ठगे) हुये।[6] मण्डूकराजपुत्री सुशोभना से परीक्षित् ने तीन प्रख्यात पुत्र उत्पन्न किये—शल, दल और बल (तस्या कुमारास्त्रय स्तस्य राज्ञ. सबभूवुः शलो दलो बलश्चेति। महा० ३।८२।३८),। रघुवश १८।१७) मे कालिदास ने इन तीन भ्राताओ में केवल 'शल' का 'शिल' नाम से उल्लेख किया है, महाकवि ने दल और बल के नाम छोड दिये हैं। वामदेव मे सघर्ष मे 'शल' मारा गया।[8] तब इक्ष्वाकुओ ने दल को अभिषिक्त

१ अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः।

२. अयोध्यायामिक्ष्वाकुकुलोद्वहः पार्थिव. परीक्षिन्नाम मृगयामगमत्॥ (महा० ३।९२।३)

३ वामदेवो गौतमश्चतुर्थ मण्डलमपश्यत् (सर्वा० २०)

४. ऋक्स० (४।४३)

५. महा० (शा० ९२।३)

६ महा० (३।९२।४२)

७. महा० (३।९२।२६) 'राजन्नहमरयुर्नाम मण्डूकराजो मम सा दुहिता सुशोभनानाम। .तस्या हि दौःशील्यमेतद् बहवस्तु राजानो विप्रलब्धा पूर्वा इति (महा० ३।९२।३२)

८. महा० (३।९२।५६)

किया—'ततो विदित्वा नृपतिं निपातितमिक्ष्वाकवो वै दलमभ्यषिञ्चन्।' (महा० ३।१९२।५९), वामदेव ने दल के दशवर्षीयपुत्र श्येनजित को भी मार दिया—'जानामि पुत्रं दशवर्षं तवाहं जातं महिष्यां श्येनजितं नरेन्द्र... एवमुक्तो वामदेवेन राजन्नन्तपुरे राजपुत्रं जघान।'[1] संघर्ष के अन्त मे दल ने आत्मसमर्पण करके वामदेव की घोड़िया लौटा दी।[2]

दल के पश्चात् बल भी राजसिंहासन पर बैठा, जिसको जिसको विष्णुपुराण मे 'वञ्चल' कहा है, ब्रह्माण्ड० और भागवत मे इसका बल के नाम से ही उल्लेख है और इसे दल का उत्तराधिकारी बताया है। शल, दल और बल—तीनो ऐक्ष्वाक भ्राताओ का राज्यकाल न्यूनतम ६० वर्ष अवश्य होगा, अतः इनका समय ५००० वि० पू० से ४९४० वि० पू० के मध्य था।

हरिवंश मे परीक्षित् = सुधन्वा का उत्तराधिकारी 'अनल' कहा गया है। यह बलादि मे से ही कोई एक होगा।

८४ **उक्थ**—बल के उत्तराधिकारी का नाम ब्रह्माण्ड० मे उलूक, विष्णु० मे उत्क, हरिवंश मे उक्थ और रघुवंश मे उन्नाभ है, भागवत मे इसका नाम स्थल है। इनमे उक्थ नाम ही अधिक मान्य है। इसका समय ४९४७ वि०पू० से ४८९० वि०पू० मध्य था।

८५ **सहस्राश्व**, ८६ **पर**, ८७ **चन्द्रावलोक**, ८८ **तारापीड**, ८९ **चन्द्रगिरि**, ९० **भानुचन्द्र**, ९१ **श्रुतायु**—इन सात ऐक्ष्वाक राजाओं के नाम केवल मत्स्य० और कूर्म० मे मिलते है अन्य पुराणपाठो में ये नाम छूट गये हैं. मत्स्य० और कूर्म० मे अन्य २० से अधिक नाम छूटे है। हमारा अनुमान है कि ये सात राजा उक्थ के पश्चात् और वज्रनाभ से पूर्व हुए, अतः इनका समय (राज्यकाल) ४८९० वि० पू० से ४५४० वि०पू० के मध्य मे होना चाहिये—लगभग ३५० वर्ष पर्यन्त इन सात राजाओ ने राज्य अवश्य किया होगा।

९२ **वज्रनाभ**—यह यदि उन्नाभ का पुत्र था तो सहस्राश्व आदि सात राजा इसके पश्चात् हुए होगें, इनका क्रम अनिश्चित है, परन्तु ये राजा अयोध्या मे हुए अवश्य, वक्ष्यमाण हिरण्यनाभ कौसल्य से पूर्व। यदि ये

---

१. महा० (३।१९२।६३-६४)

२. महा० (३।१९२।७२)

राजा हुए नहीं होते तो वंशावलियो में इनका नाम हो ही नहीं सकता। वज्रनाभ का समय (अनुमानित) ४५४० वि०पू० से ४५०० वि०पू० था।

६३ **शंखण**—कालिदास के वर्णन से आभास होता है कि यह भी आसमुद्रक्षितीश शासक था।[1] इसका राज्यकाल भी कुछ दीर्घ होना चाहिये, न्यूनतम ४० वर्ष भी हो तो यह राजा ४५०० वि०पू० से ४४५० वि०पू० मध्य था। हरिवंश मे इसका नाम केवल शंख मिलता है।

६४ **व्युषिताश्व**—यह नाम अत्यन्त प्राचीनवैदिक नाम की स्मृति कराता है। इस नाम के अनेक राजा अतिप्राचीनकाल में हुए थे।[2] वायुपुराण मे ऐक्ष्वाक व्युषिताश्व को विद्वान् कहा भी है।[3] विद्वन् का अर्थ पुराण मे वैदिक ऋषि या मन्त्रद्रष्टा के लिये होता है, यह व्युषिताश्व मन्त्रद्रष्टा भी होगा।

व्युषिताश्व का राज्यान्त ४४०० वि०पू० होना चाहिये।

६५ **विश्वसह**—इसका समय (राज्यकाल) ४४०० वि०पू० से ४३५० वि०पू० था।

६६ **हिरण्यनाभ कौसल्य**—इसका अस्तित्व भारतयुद्धकाल (३१०० वि०पू०) तक प्रतीत होता है, यदि इसका राज्यकाल का आरम्भ ४३५० वि०पू० माना जाय तो भारतयुद्ध तक इसकी आयु १२५० वर्ष होनी चाहिये। हिरण्यनाभ कौसल्य निश्चय ही दीर्घजीवी था, परन्तु कितना, इसका निश्चय इस समय नही किया जा सकता।

(१) हिरण्यनाभ सम्बन्धी तथ्य (?) द्रष्टव्य हैं—

हिरण्यनाभः कौसल्योब्रह्मिष्ठस्तत्सुतो ऽभवत्।
पौष्यञ्जैमिनेः शिष्यः स्मृतः सर्वेषु सामसु।
शतानि सामसहितान्तु पच. योऽधीतवास्ततः।
तस्मादधिगतोयोगो याज्ञवल्क्येन धीमता ॥ (वायु० ८८।७-८)

(२) ततो हिरण्यनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मज.।
सोऽकरोच्च तु विंशत्संहिता द्विपदावरः। (वायु० ६१।४४)

---

१. रघु० (१८।२३)
२. हरि० (११५।३२)
३. एकपौरव व्युषिताश्व का उल्लेख महा० १।१२० मे है।
शखणस्य सुतो विद्वान् व्युषिताश्व इति श्रुत. ॥ (वायु० ८८।२०६)

(३) हिरण्यनाभशिष्यस्तु चतुर्विंशतिसंहिताः ।
प्रोवाच कृतिनामासौ शिष्येभ्यश्च महामुनिः ।। विष्णु० ३।६।७

(४) तस्माद् हिरण्यनाभः यो । महायोगीश्वरराज्जैमिनिशिष्याद्
याज्ञवल्क्याद् योगमवाप (विष्णु० ४।४।१०७)

(५) कृतः पुत्रोऽभूत् । ५० । य हिरण्यनाभो योगमध्यापयामास ५१ ।
यश्चतुर्विंशतिः प्राच्यसामगानां संहिताश्चकार: ।। ५२
(विष्णु० ४।१६।५०-५२)

(६) (क) सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकाम...समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः (प्र० उ० १।१)

(ख) अथ हैत सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ ! भगवन् । हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैत प्रश्नमपृच्छत । (प्र० ६।१०)

उपर्युक्त मूल उद्धरणों मे हिरण्यनाभ कौसल्य का सम्बन्ध पौष्यंजि, कृत याज्ञवल्क्य, जैमिनि और सुकेशा भारद्वाज तथा पिप्पलाद से स्थापित किया गया है। उपर्युक्त उद्धरणों के प्रकाश म यह निर्णय करना है कि हिरण्यनाभ कौसल्य का समय क्या था और किस व्यक्ति (ऋषि) से उसका सम्बन्ध हो सकता है। इस सम्बन्ध मे श्रीसीतानाथप्रधान का मत सर्वथा भ्रामक, अयुक्त एवं असत्य है कि हिरण्यनाभ कौसल्य जनमेजय तृतीय के समकालिक और भारतयुद्ध के १०० वर्ष पश्चात् हुआ। प्रधानजी ने हिरण्यनाभ का सम्बन्ध पौरवकृत के स्थान पर जनककृति के साथ जोडा है, वह भी भ्रामक है।

प० भगवद्दत्त के मत हिरण्यनाभ कौसल्य के सम्बन्ध मे परस्पर विरोधी एवं शकास्पद है, इस सम्बन्ध मे उनके मत वैदिकवाङ्मय का इतिहास भाग थम, पृ० २५६ तथा ३१३ पर तथा भारतवर्ष का बृहद् इतिहास भाग २, पृ० १३६-१३७ पर द्रष्टव्य हैं। वे हिरण्यनाभ कौसल्य को कही पर महाभारतयुग मे मानते हैं, तो कही भारतयुद्ध से डेढ़ दो शती पूर्व। वे किसी निश्चय पर नही पहुंच सके हैं।

इस सम्बन्ध मे हमारा मत है कि हिरण्यनाभ कौसल्य मूल में भारतयुद्ध से न्यूनतम एक सहस्र और अधिकतम १२०० वर्ष पूर्व हुआ। वह बृहद्बल से भी न्यूनतम २० पीढ़ी पूर्व उत्पन्न हुआ और अतिदीर्घकाल तक जीवित रहा।

याज्ञवल्क्य एक गोत्रनाम था, पं० भगवद्दत्त एकमात्र शतपथप्रणेता वाजसनेय को ही याज्ञवल्क्य समझते हैं, वह भ्रामक है, जबकि उन्होने स्वय लिखा है—"स्कन्दपुराण, नागरखण्ड ५।६ के अनुसार एक याज्ञवल्क्य सूर्यवंशी राजा त्रिशकु के यज्ञ मे उद्गाता का काम करता था।"[१] वस्तुतः याज्ञवल्क्य एक गोत्रनाम था, जो विश्वामित्र के सौ पुत्रो में से एक था।[२] विश्वामित्रपुत्र यज्ञवल्क्य या याज्ञवल्क्य के सभी वंशज प्रायः ऋषि याज्ञवल्क्य कहलाते थे, अतः याज्ञवल्क्य एक या दो नही अनेक थे, कोई याज्ञवल्क्य हिरण्यनाभ का गुरु भी हो सकता है और अन्य कोई शिष्य भी। यही नियम गोत्रनाम पिप्पलाद, जैमिनि आदि पर चरितार्थ होता है।

हिरण्यनाभ कौसल्य और तच्छिष्य पौरव कृत (उभयक्षत्रियराजा) वेदो के परमोद्धारक—कृष्णद्वैपायन व्यास पाराशर्य से भी अधिक वैदिक विद्वान् थे। हिरण्यनाभ की शिष्यपरम्परा ने पाराशर्य से पूर्व ही ५०० वेदशाखाओ का प्रवचन कर दिया था, जिनमें २४ ऋषि कृत वे साक्षात् शिष्य थे, इतनी वेदशाखाओ का प्रवचन पाराशर्य व्यास की शिष्यपरम्परा मे भी नही हुआ। उत्तरकालीन पुराणकारो ने हिरण्यनाभ को पाराशर्य (जैमिनि) की शिष्य परम्परा मे रख दिया जाय, जबकि वह (कौसल्य) पाराशर्य व्यास से प्राय. एक सहस्रवर्षपूर्ववेदप्रवचन एव शाखाप्रवर्तन कर चुके थे। अत वर्तमान पुराणो के आधार पर प० भगवद्दत्त एव अन्योका यह भ्रम मिट जाना चाहिये 'जैमिनि का पुत्र सुमन्तु और उसका पुत्र सुत्वा था। सुत्वाशिष्य सुकर्मा था। अनेक पुराणो के विपरीत भागवत का मत इस विषय मे ठीक प्रतीत होता है। इसी सुकर्मा मे हिरण्यनाभ ने सामवेद पढ़ा।"[३]

इसके विपरीत हमारा सुदृढ मत है कि पाराशर्य के व्यास के शिष्य जैमिनि सुकर्मा आदि ने ही नही, उनके पूर्व, वरन् अनेक पाराशर्य एव वासिष्ठ ब्राह्मणो ने हिरण्यनाभ, तच्छिष्यकृत एव उनके शिष्यो से शतियोपूर्ववेद पढ़े थे। भ्रान्त व्यक्तियो ने उल्टी गंगा बहाई, कि अत्यन्त अर्वाचीन सुकर्मा का शिष्य हिरण्यनाभ को बना दिया, जबकि वह सुकर्मा से १२०० वर्ष पूर्व हुआ था।

---

१ वै० वा० इ० (पृ० २६०)

२ मधुच्छन्दश्च भगवान् देवरातश्चवीर्यवान् याज्ञवल्क्यश्च विख्यातस्तथा स्थूणो महाव्रतः। (महा० १३।४।५०,५१)

३. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १३७)

हिरण्यनाभ वैदिक ऋषि, राजर्षि एवं परमयोगी था, अतः निश्चय ही सुदीर्घजीवी भी था, वह अनेक शतियोंपर्यन्त जीवित था, परन्तु वह भारत-युद्ध के समय जीवित था या नही, प्रमाणाभाव मे निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। योगवेत्ता जानते हैं कि योगी दीर्घायु होते हैं। अन्य योगियो के समान हिरण्यनाभ भी दीर्घायु था। अत: जो व्यक्ति याज्ञवल्क्य को योग[1] सिखा सकता है, वह निश्चय ही दीर्घायु था। अतः हिरण्यनाभ का वेद प्रवचन पाराशर्यव्यास से एक सहस्राब्दी पूर्व हुआ, य· निश्चित तथ्य है।

प्राचीनभारत मे योगी को अटनगमन (यात्रा) करने के कारण परिव्राजक, चरक, हंस और अट्णार कहते थे। यह शब्द (रमते राम) योगी के लिये प्रयुक्त होता था, अतः अटनशील योगी हिरण्यनाभ का एक नाम (अभिधान) ही 'अट्णार' हो गया[2] जिस प्रकार चरणशील वैशम्पायन का नाम 'चरक' हो गया।

६७ पर हैरण्यनाभ—कौशल्य—वरिष्ठ आट्णार—कालिदास ने हिरण्यनाभ के दायाद का नाम कौसल्य लिखा है।[3] इसको प० भगवद्दत्त कालिदास की भूल मानते है।[4] परन्तु हमे यह कालिदास की भूल प्रतीत नही होती, क्योकि शतपथ (१३।५।४।४) के उद्धृत उद्धरण मे कौशल्य आटणार पर को ही हैरण्यनाभ कौसल्य कहा है, क्योकि हिरण्यनाभ को 'कौसल्य' कहा जाता था, तब उसका पुत्र भी 'कौसल्य' कहलाया, यह कालिदास की भूल नही है, 'पर' के 'कौसल्य' नाम की पुष्टि वैदिकग्रन्थो से होती है।

हिरण्यनाभ के पुत्र को वायु (८८।७) मे 'वरिष्ठ' या 'वशिष्ठ' कहा है, यहा शुद्ध पाठ 'ब्रह्मिष्ठ' होना चाहिये, जिसे कालिदास ने हिरण्यनाभ का का पौत्र माना है।[5]

ताण्ड्य या पचविंशब्राह्मण (२५।१६।३), काठकसंहिता (२२।३) और जैमिनीय आरण्यक (२।६।११) मे 'पर' आट्णार का उल्लेख मिलता है।

---

१. तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता। (वायु० ८८।२०८)

२. तेन ह पर आट्णार ईजे कौसल्यो राजा......।
आट्णारस्य पर. पुत्रोऽश्वं मेध्यमबन्धयत्।
हैरण्यनाभः कौसल्यो दिश. पूर्णा अमहत...(श० ब्रा० १३।५।४।४)

३ रघु० (१८।२७)

४. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १३७)

५. ब्रह्मिष्ठमाधाय निजेऽधिकारे ब्रह्मिष्ठमेव स्वतनुप्रसूतम्॥
(रघु० १८।२८)

ताण्ड्य में आट्णार के स्थान पर 'आह्लार' पाठ है, और काठकसंहिता में 'आह्नार' पाठ है। परन्तु शुद्ध नाम 'आट्णार' ही प्रतीत होता है, क्योंकि शतपथ (१३।५।४।४) और यास्कीयनिरुक्त (१।१४) से 'आट्णार' की शुद्धता सिद्ध होती है। ताण्ड्यादि वैदिकग्रन्थों में 'परआट्णार' की गणना पौरुकुत्स त्रसदस्यु, आयस वीतहव्य और औशिज कक्षीवत् के साथ की है, जिन सब के सहस्रपुत्र बताये गये हैं।[1] इससे अनेक तथ्य उद्घाटित होते हैं, प्रथम 'पर' आट्णार अत्यन्त प्रतिष्ठित और प्राचीन एवं धार्मिक (यज्ञशील) सम्राट् था। द्वितीय, इसके अनेक या सहस्रपुत्र थे। इसका समय महाभारतयुद्ध से न्यूनतम एकसहस्रवर्ष पूर्व था।

'पर' का पिता हिरण्यनाभ लगभग एकशतीराज्य करने के अनन्तर वैदिक ऋषि (वेदव्यास) और योगी (अट्णार - परिव्राट्) बन गया होगा। अत: 'पर' आट्णार का राज्यकाल ४२५० वि०पू० से ४२०० वि०पू० के मध्य में होना चाहिये, हिरण्यनाभ का राज्यकाल ४३५० वि०पू० से ४२५० वि०पू० तक था। अत. 'पर' आट्णार भारतयुद्ध से लगभग ग्यारह शती पूर्व हुआ, युद्ध का समय ३०८० वि०पू० था।

हिरण्यनाभ के शिष्यकृत ऋषि का समय ४३०० वि०पू० से ४२०० वि०पू० होना चाहिये, इसका विस्तृत विवेचन कृतप्रसंग में करेंगे।

९८ ब्रह्मिष्ठ—कालिदास ने रघुवंश (१८।२८) में हिरण्यनाभ का पौत्र और कौसल्य (पर आट्णार) का पुत्र ब्रह्मिष्ठ कहा गया है। वायुपुराण (८८।७) में 'वरिष्ठ' के नाम से इसको हिरण्यनाभ का पुत्र बताया है। इसका समय ४२०० वि०पू० से ४१५० वि० पू० अनुमेय है।

९९ पुत्र कालिदास (रघु० १८।३०)[2] ने ब्रह्मिष्ठ के पुत्र का नाम ही पुत्र' कहा है, पुराणों में यह नाम नहीं मिलता। इसका राज्यस्थितिकाल ४१५० वि०पू० से ४१०० वि०पू० था।

१०० पुष्य—पुराणों में इसे हिरण्यनाभ का पुत्र बताया है, स्पष्ट है पुराणों के वर्तमान पाठों में न्यूनतक तीन राजाओं के नाम छूट गये हैं—१ कौसल्य, २ ब्रह्मिष्ठ और ३ पुत्र—इनका कालिदास ने प्राचीन इतिहास

१ पंचविंशब्राह्मण (२६।१६।३), पृ० ६४२ अनुवाद डा० डब्ल्यु० कालैण्ड १९३१

२. 'तं पुत्रिणा पुष्करपत्रनेत्रपुत्रः समारोहदग्रसंख्याम्।'

के अनुसार ठीक उल्लेख किया है। कालिदास के अनुसार[1] पुष्य 'पुत्र' संज्ञक ऐक्ष्वाक राजा का दायाद था। इस पुष्य के समकालिक कोई जैमिनि (यह गोत्रनाम था) महायोगीश्वर था, जिससे राजा ने योगविद्या सीखी।

पुष्य का स्थितिकाल ४१०० वि०पू०से ४००० वि०पू० मानना चाहिये, क्योंकि योगी होने से इसकी आयु अन्यो की अपेक्षा कुछ दीर्घ[2] ही होनी चाहिये।

१०१ **अर्थसिद्धि**—रघुवंश एवं अन्य पुराणो मे इसका नाम छूट गया है, केवल हरिवंश[3] मे पुष्य का पुत्र विद्वान् अर्थसिद्धि उल्लिखित है। विद्वान् कहने का अर्थ है कि यह अर्थसिद्धि मन्त्रद्रष्टा एव किन्ही शास्त्रो का रचयिता था। इसका समय ४००० वि०पू० से ३९५० वि०पू० होगा।

१०२ **ध्रुवसन्धि**—हरिवंश मे यह नाम छूट गया है, वहां पर अर्थसिद्धि का पुत्र सुदर्शन बताया गया है। अन्य वायु—ब्रह्माण्ड, विष्णु और रघुवंश में पुष्य का पुत्र ध्रुवसन्धि कथित है. कालिदास के अनुसार इसकी मृत्यु वन्य सिंह द्वारा हुई।[4]

ध्रुवसन्धि का समय ३९५० वि०पू० से ३९०० वि०पू० था।

१०३ **सुदर्शन**—यह ध्रुवसन्धि का प्रतापीपुत्र था, जिसका शासन वृद्धावस्था तक चलता रहा, वृद्धावस्था में राजा नैमिषारण्यवासी तपस्वी हुआ।[5] इसका समय ३९०० वि०पू० से ३८५० वि०पू० के मध्य समझना चाहिये।

१०४ **अग्निवर्ण**—कालिदास के अनुसार सुदर्शन ने अतिविलासिता मे इन्द्र और कुबेर को भी पीछे छोड दिया।[6] विलासिता और क्षयरोग से उसका पतन एव मृत्यु हुई। राजा की मृत्यु के अनन्तर अग्निवर्ण की महिषी को शासन चलाने हेतु राजसिहासन पर मन्त्रियो ने नियुक्त किया।[7] अग्निवर्ण का समय ३८५० वि०पू० से ३८२० वि०पू० अनुमत है।

---

१. रघु० (१८।३२)
२. रघु० (१८।३३)
३. पुष्यस्तस्य सुतो विद्वानर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः। (हरि० १।१५।३२)
४. सिंहादवापद्विपदं नृसिंहः (रघु० १८।३५)
५. शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी। (रघु० १९।१)
६. पिबन्त्यजीवदमरालकेश्वरौ (रघु० १९।१५)
७. राज्ञी राज्य विधिवदभिषक्भर्तुर्व्याहृताज्ञा (रघु० १९।५७)

रघुवंश में ऐक्ष्वाक राजाओं का यहीं तक वर्णन है।

१०५ शीघ्रग—यह अग्निवर्ण के मरणोपरान्त अग्निवर्ण का पुत्र हुआ। इसका समय ३८२० वि०पू० से ३७७० वि०पू० अनुमत है।

१०६ मरु=मनु—इसका समय पुराणों में २९ वें युग के प्रारम्भ मे बताया गया है—

मरुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थितः।
एकोनविंशयुगे क्षत्रधर्मप्रवर्तकः ॥ (वायु०, ब्रह्माण्ड २।३।६४-२१०-११)

सुवर्चा मनुपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति।
नवविंशे युगेऽसौ वै वंशस्यादिर्भविष्यति ॥ (मत्स्य० २६२।५५-५६)

२८ वें युग की समाप्ति ३७८० वि०पू० मे हुई। अतः मरु का समय ३७८० वि०पू० से ३६८० वि०पू० के मध्य मे होना चाहिये। इस गणना से मरु ऐक्ष्वाक और देवापि कौरव एक समय मे नही हो सकते। इन दोनो मे मे न्यूनतम एक युग (३६० वर्ष) का अन्तर होना चाहिये। क्योंकि देवापि के पिता प्रतीप और परीक्षित पाण्डव मे केवल ३०० वर्ष और प्रतीप से आन्ध्रारम्भपर्यन्त २५०० वर्ष हुए थे। प्रतीप और परीक्षित् मे केवल ३०० वर्ष का अन्तर था।[1]

अत मरु और देवापि समकालीन नही थे। पुराणो के वर्तमानपाठो मे मरु और देवापि को क्षत्रधर्म का प्रवर्तक बताया है, यह पाठ भी संशययुक्त है, ऐतिहासिक तथ्य इसके विपरीत है कि इन दोनो ने क्षत्रधर्म का परित्याग कर योगधर्म का प्रवर्तन किया। देवापि कभी राजा बना ही नही, यही बात मरु के सम्बन्ध मे भी सत्य होगी। अत पुराण का 'क्षत्रधर्म प्रवर्तक' के स्थान पर 'योगधर्मप्रवर्तकः' पाठ अधिक उपयुक्त होगा।

अत ऐक्ष्वाक मरु का समय उन्नीसवेयुग (३०८० वि०पू० ३४२० वि०पू०) और देवापि का समय तीसवेयुग ३४०४ वि०पू० से ३३००

१. सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम्।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या आन्ध्राणान्तेऽन्वया पुनः। (वायु० ९९।४१८)
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारीक्षिते शतम्।
अन्ध्राणान्ते सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शतसमाः।

वि०पू० के मध्य में था। तीसवेंयुग की समाप्ति भारतयुद्ध (३००० वि०पू०) और श्रीकृष्ण के परमधामगमन के दिन ३०४४ वि०पू० हुई।

निम्नलिखित ऐक्ष्वाक राजाओं का समय इस प्रकार अनुमानित है।

१०७ **प्रसुश्रुत**—३६८० वि०पू० से ३६३० वि०पू० पर्यन्त।

१०८ **सन्धि**—३६३० वि०पू० से ३५८० वि०पू० पर्यन्त।

१०९ **अमर्षण**—३५८० वि०पू०से ३५३० वि०पू० पर्यन्त।

११० **महस्वान**—३४८०वि०पू० से ३४३० वि०पू० पर्यन्त।

१११ **सहस्वान्**—३४३० वि०पू० से ३३८० वि०पू० पर्यन्त।

११२ **विश्रुतवान्**—३३८० वि०पू० से ३३३० वि०पू० पर्यन्त।

११३ **विश्वभव**—३३८० वि०पू० से ३२८० वि०पू० पर्यन्त।

११४ **विश्वाह्न**—३२८० वि०पू० से ३२३० वि०पू० पर्यन्त।

११५ **प्रसेनजित्**—३२३० वि०पू० से ३१८० वि०पू० पर्यन्त।

११६ **तक्षक**—३१८० वि०पू० से ३१३० वि०पू० पर्यन्त।

११७ **बृहद्बल**—३१३० वि०पू० से ३०८० वि०पू० पर्यन्त।

हमारी अनुमानित गणना मे बृहद्बल का समय (अन्त) ठीक ३०८० वि०पू० निकलता है। यही वर्ष भारतयुद्ध का था, इसी युद्ध मे बृहद्बल अभिमन्यु द्वारा मारा गया यह तथ्य महाभारत ग्रन्थ एव पुराणो मे विख्यात है।[1]

महाभारतयुद्ध मे एक अन्य बृहद्बल गान्धरराजा सुबल का पुत्र और शकुनि का भ्राता भी था।

महाभारतकाल मे ही दो अन्य कोसल राजाओ का उल्लेख है—

(१) द्रोणपर्व मे कोसलराज सुक्षत्र का उल्लेख है,[2] सम्भव है वही भागवतोक्त 'तक्षक'[3] हो, जिसे बृहद्बल का पिता कहा है।

---

१. द्रोणपर्व (४७।२२)

२. द्रोणपर्व (२४।४८)

३. शकुनिश्च बलश्चैव वृषत्कश्च व बृहद्बलः।
एते गान्धारराजस्य सुताः सर्वे समागताः। (महा० ३१।७९।५)

(२) एक ऐक्ष्वाकुराज सुबल का पुत्र जयद्रथ का साथी था, जो द्रौपदीहरण के समय उसके साथ था।[१]

तात्पर्य यह है कि पुराणादि मे इक्ष्वाकुराजाओ का जो विवरण मिलता है, वह अपूर्ण है। अनेक इक्ष्वाकुराजाओ का वृत्तान्त आज पूर्णत अज्ञातहै।

१. इक्ष्वाकुराज्ञः सुबलस्य पुत्रः। (महा० ३।२६५।६)
२. ततः प्रसेनजित् तस्मात् तक्षको भविता पुनः।
ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः॥ (भाग० ६।१२।८)

५

जनकमैथिलऐतिह्यसम्बन्धी कतिपय समस्याएं

सामान्य वंशावली अपूर्ण

कोई भी पुराण अध्येता प्रथमदृष्टि में ही भाप लेगा कि यह जनक मैथिल वंशावली अपूर्ण है केवल विष्णुपुराण मे कुछ विस्तृततर वंशावली मिलती है। वहा पर 'कृति' संज्ञक अट्ठाइसवां मैथिल राजा है। ब्रह्माण्ड और वायु मे कृति के पश्चात् के १२ राजाओ के नाम छूट गये हैं। भागवत मे विष्णुपुराण का अनुकरण किया है परन्तु उसने सीरध्वज (सीता के पिता) के भ्राता (अनुज) कुशध्वज को उसका पुत्र बता दिया है। उसका पुत्र धर्मध्वज बताया है, उसकी वंशावली इस प्रकार प्रस्तुत की है—

धर्मध्वज

- कृतध्वज
  - केशिध्वज
- मितध्वज
  - खाण्डिक्य

भागवतलेखक ने यह अनुकरण विष्णुपुराण (६।६।७-८) के आधार पर किया है। परन्तु विष्णुपुराण में धर्मध्वज का सम्बन्ध न तो सीरध्वज से बताया है और न कुशध्वज से। धर्मध्वज आदि बहुत उत्तरकालीन राजा थे जैसा कि आगे स्पष्ट किया जायेगा। ध्वजान्त नाम के कारण भागवत

में यह भ्रांति उत्पन्न हुई हो। पार्जीटर ने भागवत की भ्रांति (कन्फ्यूशन) की चर्चा की है, परन्तु वह विष्णुपुराण के साक्ष्य पर उसे सत्य मानने की अपेक्षा करता है। परन्तु यह भ्रांति ही है।[1] हमे तो खाण्डिक्य के मितध्वज का पुत्र होने मे सन्देह है, क्योकि यह खाण्डिक्य तद्धितान्त नाम है, उसका पिता 'खण्डिक' होना चाहिये। मितध्वज खाण्डिक्य का पितामह या पूर्वज ही हो सकता है अथवा मितध्वज का द्वितीय नाम खण्डिक होना चाहिये।

सभी पुराणपाठो के समस्त नाम मिलाकर भी मैथिल राजाओ के केवल ६१ नाम बन सके है। हमने ऐक्ष्वाक राजाओ के इक्ष्वाकु से भारतयुद्ध पर्यन्त १२० नाम अनुसन्धान किये हैं। हमारा अनुमान है कि इसमे भी न्यूनतम ३० नाम छूट गये है। मनु से युधिष्ठिरपर्यन्त सामान्य राजाओं की १५० पीढिया होनी चाहिये, क्योकि एक ऋषि दीर्घजीवी होने के कारण औसतन राजाओ की न्यूनतम ५ पीढी तक जीवित रहा, इसीलिए कश्यप से कृष्णद्वैपायनपर्यन्त १०००० या ६००० वर्ष मे केवल २८ या ३० व्यास हुए। आदिम प्रजापति ऋषियो की आयु तो सहस्रवर्ष से भी अधिक होती थी, इसका विवेचन पीठिका मे कर चुके हैं।

पुराणों मे मैथिल जनक राजाओ की इतनी अल्प पीढियो के परिगणना के अनेक सभावित कारण हो सकते है—यथा– (१) नामसाम्य के कारण पुराणपाठ मे अनेक नामो का छूटना, जैसा कि कृति नाम के दो या अधिक राजा होने के कारण वायु और ब्रह्माण्ड मे १२ नाम छूट गये। (२) अनेक राजा निश्चितरूप से दीर्घजीवी होगे। जिससे पीढियो की सख्या न्यून होना स्वाभाविक है। (३) युद्ध या प्राकृतिक विपत्ति के कारण दीर्घकालपर्यन्त वैदेह राजाओ का मिथिला मे शासन ही नही रहा हो। यह हमारी कल्पना नही है। इतिहासपुराणो मे इस तथ्य के सकेत है कि अनेक बार जनकवश का नाश (उच्छेद) हुआ और अनेक बार कोसलादि के राजाओ ने मिथिला मे शासन किया। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण है हिरण्यनाभ अट्नार (कौसल्य) के पुत्र 'पर' अटनार' ने दीर्घकालपर्यन्त विदेह पर शासन किया, जैसाकि शाखायन श्रौतसूत्र (३६।६।११-१३) मे पर अट्णार को विदेहराज लिखा है।

---

1. The Bhagavata confuses the genealogy here, and gives Kusadhvaja's successions thus Its account is supported by the Visnu in a story about Kesidhwaja and Khadikya and may be true.)A.I.H.T. p. 95).

निम्न तीन उदाहरणों से ज्ञात होगा कि विदेहराज्य पर अनेक बार मैथिल राजाओ का शासन विनष्ट (या उच्छिन्न) हुआ—

(१) महाभारत (उद्योग०) मे भीम जिन १८ कुलनाशन राजाओं का उल्लेख करता है। उनमे विदेहो का कोई प्राचीन राजा विदेह हयग्रीव एक था—"हयग्रीवो विदेहाना वरयुश्च महौजसाम्।" अतः हयग्रीव वैदेह के समय मैथिलवश का उच्छेद हुआ। सम्भवतः इसी हयग्रीव का अनेकधा शान्तिपर्व मे वाग्ग्रीव और अश्वग्रीव नाम से उल्लेख है, जो शत्रुओं को मार कर स्वय भी विनष्ट हो गया।[1]

(२) एक मैथिल जनक की राज्य त्यागकर भिक्षु बने राजा की पत्नी भर्त्सना करती है।[2] जनकवंश मे ऐसे अनेक राजा हुए जो परिव्राजक या अट्णार (भिक्षुक) बन गये। इससे भी राजवश की पीढ़ियां न्यून हुई।

(३) भारतयुद्ध से प्रायः एकशती पूर्व करालजनक ने अपने वश का नाश किया था।[3]

(४) उपर्युक्त तथ्यो के परिप्रेक्ष्य मे यह ध्यातव्य है कि पुराणो की जनक वशावली मे स्पष्ट ही अनेक प्रख्यात राजाओ के नाम छूटे हैं। यथा उपरिनिर्दिष्ट- (१) हयग्रीव वैदेह, (२) कराल जनक, (३) निमि द्वितीय, (४) मखादेव मैथिल (बौद्धग्रन्थो मे उल्लिखित), (४) इन्द्रद्युम्न (महा० ३।१९९), (५) ऐन्द्रद्युम्नि उग्रसेन (महा० ३।१३३।४ तथा ३। ३९), (६) जनदेवजनक (महा० २।२।८), (७) धर्मध्वजजनक (महा० २।३०।९), (८) केशिध्वज, अमितध्वज, कृतध्वज, खण्डिक्यादि जनक (विष्णु ६।६।७), ऐसे और जनक राजाओ के नाम भी इतिहासपुराणो मे खोजे जा सकते है जिनका पुराणवशावलियो मे पूर्णत. लोप है। महाभारत

---

१ यद् वृत्त विदेहराजन्यहयग्रीवस्य पाण्डव। शत्रून हत्वा हतस्याजौ शूरस्या क्लिष्टकर्मणः असहायस्य सग्रामनिर्जितस्य युधिष्ठिर॥
(महा० १२।४४।२३,२४)

२. उत्सृज्य राज्यं भिक्षार्थं कृतबुद्धि नरेश्वरम्। विदेहराजमहिषी दुःखिता यदभाषत॥ (महा० २।१८।३)

३. कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश। करालश्च वैदेह। (अर्थ १।१।६), तथा—निमिजातक एवं उत्तराध्ययनसूत्र मखादेवसुत्त (मज्जिमनिकाय २ ४२)

में केवल वश (जनक या वैदेह) नाम से ही प्राचीन मैथिल राजाओं का उल्लेख है, जिनके नाम पूर्णतः अज्ञात हैं, यथा—

(१) अश्मजनकसम्वाद (महा० १२।२८)

(२) प्रतर्दनमैथिलसंग्राम (महा० १२।६२।२)

(३) वैदेहराज—क्षेमदर्शकौसल्ययुद्ध (महा० १२।१०६।२३)

(४) जनकगीत (महा० १२।१७८।२)

अतः पुराणों मे मैथिलवंशावली पूर्णतः अधूरी है। यह एक ज्वलन्त तथ्य है जिसका हमने उपरि उद्घाटन कर दिया है। तथापि निमि से सीरध्वज तक की वंशावली ही उपर्युक्त कारणो से अधिक अपूर्ण है और सीरध्वज से आगे कृति या कृतक्षण जनक की वंशावली पूर्णता के पर्याप्त निकट है, क्योंकि सीरध्वज से कृतिपर्यन्त ३७ पीढ़ियां हैं, लगभग इतनी ही ऐक्ष्वाकवंश मे दाशरथिराम से बृहद्‌बलपर्यन्त हुई, तथापि दोनो में अनेक राजाओं के नाम निश्चय छूटे हैं, यथा जनदेव, धर्मध्वज महादेव, करालजनक इत्यादि। अत. दाशरथिराम से बृहद्बलपर्यन्त और सीरध्वजजनक से कराल जनक या उपनिषदों के प्रसिद्ध जनकपर्यन्त न्यूनतम ५० पीढ़िया और २००० वर्ष का समय व्यतीत हुआ और राजाओ का औसत राज्यकाल ४० से ५० वर्ष तक था। मैथिलजनकवंशसम्बन्धी दो सामान्य तथ्यो का उल्लेख करके एतत्सम्बन्धी कुछ विशिष्ट समस्याओ पर विचार करेंगे।

कुछ प्राचीन[1] और समस्त आधुनिक विद्वानो की यह धारणा है कि जनक वंश के सभी शासक महान् आध्यात्मिक, ज्ञानी, योगी और सन्यासीतुल्य महापुरुष थे। यह धारणा पर्याप्त अंश मे भ्रांतिमयी है।

प्राचीन अधिकाश राजा वैवस्वतमनु से ही यज्ञशील तो थे, ऐसे ही निमिप्रभृति मैथिल राजा प्रारम्भ से ही यज्ञशील अवश्य थे, परन्तु वे सभी आत्मविद्याविशारद नही थे। हमारी धारणा है कि सीरध्वजपर्यन्त ही नही, वरन् उसके पश्चात् धर्मध्वजपर्यन्त अधिकाश मैथिलराजा महान्

१. एते मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः। योगेश्वरप्रसादेनद्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ (भागवत ९।१३।२७)

योद्धा और युद्धविद्याविशारद थे। इतिहासपुराणों में देवरात, जनक, राजा सुकेतु आदि को महान् योद्धा बताया है। शिवजी ने अपना आजगव धनु देवरात को समर्पित किया, जिसने असुरों से घोरयु किया।[1] पुराणो मे देवरात के पिता को शूर सुकेतु कहा गया है।[2] प्रतर्दन जैसे दिग्विजयी प्रतापी सम्राट् को किसी मैथिल राजा ने परास्त किया था, वह मैथिल संन्यासी या योगी नही हो सकता।[3] किसी मैथिल विदेहराज ने ऐक्ष्वाक क्षेमदर्शी कौसल्य को परास्त किया था।[4]

अत. हमारा विचार है कि क्षेमदर्शी कौसल्य के समय (५०५०-वि०पू०) तक वैदेह राजा अध्यात्मवादी नही हुए। इनकी अध्यात्म की ओर प्रवृत्ति भारतयुद्ध से एक या डेढ सहस्र वर्ष पूर्व धर्मध्वज जनक से कुछ पीढ़ी पूर्व ही प्रारम्भ हुई होगी। निश्चय ही एक सहस्रवर्षपर्यन्त (भारतयुद्धसेपूर्व) ये मैथिल नरेश आत्मरति, आत्मक्रीड और आत्मविद्याविशारद रहे और घोषणा की—

अनन्तमिव मे वित्त यस्य मे नास्ति किंचन।
मिथिलायां प्रदीप्ताया न मे दह्यति किंचन॥[1]

जनकवंशसम्बन्धी कतिपय विशिष्ट समस्याए

अब मैथिल ऐतिह्यसम्बन्धी कतिपय विशिष्ट समस्याओ पर अतिसंक्षेप मे विवेचन करेंगे—ये समस्याए है—

(१) वसिष्ठ मैत्रावरुणि और निमि, नमि साप्य वैदेह और व्यस वैदेह
(२) विदेहमाथव (मिथि जनक) और गौतम राहूगण
(३) सुकेतु, देवरात का समय और याज्ञवल्क्य वाजसनेय—पाठभ्रंश
(४) सीरध्वज जनक—केशिध्वज का विष्णु और भागवत मे उल्लेख आत्मविद्याविशारद नही, कुशध्वज और सुधन्वा, वामदेव और शतानन्द की समस्या।
(५) क्षेमदर्शी कौसल्य और वैदेहराज

---

१ रामा० (१।६६।०२)
२. नन्दिवर्धन: शूर : सुकेतुर्नाम धार्मिकः। (वायु० ८९।७)
३. प्रतर्दनो मैथिलश्च संग्राम यत्र चक्रतु। अजयत् रणे शत्रून् हर्षयन्तो नरेश्वरम्॥ (महा० १२।६२।२,८)
४. महा० (१२।१६।८,२३)

(६) अणीमाण्डव्य और जनक
(७) पराशर और जनक
(८) मैत्रावरुणि वसिष्ठ और कराल जनक
(९) जनदेव, धर्मध्वज और पञ्चशिख पाराशर्य
(१०) निमिद्वितीय और कराल जनक
(११) जनक और सुलभा
(१२) पाराशर्य व्यास, शुक और जनक
(१३) इन्द्रद्युम्न—ऐन्द्रद्युम्नि उग्रसेन जनक
(१४) याज्ञवल्क्य कहोड, श्वेतकेतु अष्टावक्र और जनक
(१५) महाभारतकालीन जनक—कृत, कृतक्षण आदि।

निमि और वसिष्ठ मैत्रावरुणि

पुराणो मे मैत्रावरुणिवसिष्ठ और इक्ष्वाकुपुत्रनिमि के सघर्ष का अनेकधा उल्लेख मिलता है।[1] इस के सत्र को वर्षसहस्रात्मक बताया गया है।[3] मैत्रावरुणि और निमि की समकालिकता उचित है, इसे चतुर्थ परिवर्त युग की घटना मानी जाये तो यह १३००० वि०पू० १२८०० वि०पू० की घटना है। मैत्रावरुणि वसिष्ठ और निमि निश्चय ही दीर्घजीवी थे, परन्तु इस सत्र को वर्षसहस्रात्मक नही माना जा सकता, यह कोई दीर्घसत्र अवश्य होगा। ताण्ड्यब्राह्मण[4] (२५। १०।८) मे एक नमीसाप्यवैदेह शीघ्र स्वर्ग चला गया। कीथ[5] के आधार पर हेमचन्द्रराय चौधुरी[6] इसको 'निमि' मानने का प्रयत्न किया है। परन्तु दो हेतुओ से नमि साप्य और निमि एक नही हो सकते, प्रथम नमिसाप्य को ताण्ड्यब्राह्मण मे वैदेहराजा बताया गया है। अतः यह उत्तरकालीन विदेह राजा। आदिम विदेह निमि था,

---

१ महा० (०२।७८।२)
२. विष्णु० (४।५) तथा रामा० (।७३)
३. इक्ष्वाकुतनयोऽसौ निमिर्नाम सहस्रं वत्सर समारेभे (विष्णु० ४।५।)
४. नयीसाप्यो वैदेह राजाऽञ्जसा स्वर्ग लोकमैत्।
५. वैदिक इण्डैक्स (पृ० ४३६), प्रा० भा० रा० इ० (रायचौधुरी) पृ० ४५
६. यथाकरोच्च वैदेहं व्यसं सोमपतिं नृपम्। वसिष्ठशापादभवद्वैदेहो नृपतिः पुरा। इन्द्रप्रसादीजे च सत्रैः सारस्वतादिभिः॥
(बृहद्दे० ७।५४।५६)

उससे वंशज ही वैदेह कहलाते थे, द्वितीय नमिसाप्य ने त्रिवर्षात्मक सारस्वत सत्र किया था, जबकि निमि ने सहस्रसंवत्सरात्मक सत्र किया। अतः नमि-साप्यवैदेह और निमि (विदेह) को एक मानना भ्रांति है।

हां, बृहद्देवता में उल्लिखित[1] व्यंस सोमपति वैदेह निमि हो सकता है। जिसमें सरस्वती नदी के तट पर सत्र किये, जिसे इन्द्र ने सोमपति बनाया। परन्तु यहां भी 'वैदेह' के स्थान पर विदेह' पाठ होना चाहिये। अथवा पुराणों ने 'विदेघ' शब्द को 'विदेह' बनकर निमि को अशरीरी बनाने की कल्पना की है,[2] वस्तुतः शत० ब्रा० (१४।१) के प्रमाण से 'विदेह' का मूलरूप विदेघ था, जिसकी आगे विवेचना करेंगे।

विदेघ माथव (मिथि = जनक) और गौतमराहूगण

शतपथब्राह्मण मे विदेह को विदेघ कहा है—

> विदेहो ह माथवोग्नि वैश्वानरं मुखे बभार।
> तस्य गौतमोराहूगण : ऋषि पुरोहित आस।[3]

शतपथ के इस प्रसंग में यह ज्ञात होता है कि विदेह माथव उस समय तक सरस्वतीनदी (पचनद) प्रदेश मे ही रहता था। किसी प्राकृतिक उपद्रव ने उसे सदानीरा (गण्डकी) के पार बसने को बाध्य कर दिया। ऋग्वेद (१०५१-५३) मे सौचीक अग्नि के पलायन की कथा सकेतित है। श्रीउदयवीर शास्त्री इसको उपद्रव मानते हैं, हमारे विचार मे घोर शीत का प्रकोप था, जिससे प्रजासहित विदेघ माथव सारस्वत प्रदेश त्यागने को बाध्य हुआ। अग्नि राजा के मुख मे थी और अग्नि उसके आगे आगे चलती रही। इसका तात्पर्य यही है कि शीत के प्रकोप से वे उष्ण प्रदेश की ओर बढ़ते गये।[4]

अतः विदेघ माथव का पिता निमि सारस्वतप्रदेश में रहता था। सम्भवतः रहूगण उसका पुरोहित होगा। पुराणों मे (रहूगण के पुत्र) गौतम

(क्रमशः)...का उल्लेख है। ऋग्वेद (१११४८।९) में नमिसाप्य का उल्लेख है—"प्र मे नमी साप्य इषे भुजेऽ भूत्।"

१. परन्तु बृहद्दे० (६-७६-७७) मे व्यंस को दानव और उसकी बहिन दानवी।

२. विष्णु० (४।५।१४-१६)

३. श० ब्रा० (१०।४)०।००)

४. श० ब्रा० (१।४।१।१४)

को निमि का पुरोहित बताया है।[1] जिस प्रकार वसिष्ठ ब्राह्मण अयोध्या के ऐक्ष्वाक राजाओं के परम्परागत पुरोहित रहे, उसी प्रकार गौतम के वंशज मैथिल राजाओ के चिरकाल तक पुरोहित रहे। रामायणयुग मे सीरध्वज जनक का पुरोहित शतानन्द गौतम था।

कुछ लोग प्राचीनकाल से ही दीर्घतमा मामतेय को गौतम समझने की भूल करते है। इस भ्रांति का मूल पुराणो मे ही है।[2] दीर्घतमा और गौतम तो पृथक् पृथक् ऋषि थे। श्रीउदयवीरशास्त्री ने दीर्घतमा दो माने हैं, यह भ्रांति भ्रष्टपुराणपाठ के आधार पर ही है। क्योंकि दीर्घतमा के पिता का नाम उतथ्य[3] था, जिसे पुराणों मे उशिक् या उशिज बना दिया है। उशिज् दीर्घतमा की शूद्रा पत्नी थी। इस भ्रांति का निराकरण बृहद्देवता[4] से होता मे, जहा अगराज की दासी उशिज् से दीर्घतमा ने कक्षीवान् आदि प्रमुख ऋषियो को उत्पन्न किया। बृहद्देवता मे भी दीर्घतमा के पिता उतथ्य है।[5] प० उदयवीरशास्त्री ने दीर्घतमा को ही जन्मान्ध अक्षपाद गौतम बना दिया। इस विषय का विस्तृतस्पष्टीकरण ऋषिवंशप्रसगप्रकरणो मे किया जायेगा।

प्रकृत विषय यह है कि गौतम राहूगण, दीर्घतमा मामतेय की अपेक्षा अतिप्राचीनऋषि थे, जैसा कि विदेघ माथव के प्रकरण से सिद्ध होता है। गौतम का समय (१२००० वि०पू०)। था तो दीर्घतमा भरत दौष्यन्ति तथा बृहद्रथ अग के समकालिक था, जिसका समय ८००० वि०पू० के निकट था। दीर्घतमा एक सहस्रवर्ष जीवित रहा, अत उसका जन्म ९००० वि० पू० हुआ, इस विषय का विवेचन अन्यत्र किया गया है।

---

१ गौतमादिभिर्यागमकरोत् (विष्णु० ४।५।६) ब्रह्माण्ड० (२।३-७४)

२ उशिजो नाम विख्यात आसीद्धीमानृषि पुरा। भार्या वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः। (२-३-७४-३०) यही भ्रमपाठ मत्स्यपुराण (अ० ४८) मे है जिसे श्रीउदयवीरशास्त्री ने उद्धृत किया है।

३. महाभारत (१-६६-५) मे उतथ्य उचथ्य पाठ ही ठीक है।

४. बृहद्देवता (४-२४-२५);

५ द्वावुतथ्यबृहस्पती ऋषिपुत्रौ बभूवतुः। आसीदुतथ्यभार्या तु ममता नाम भार्गवी (बृ० ४००) द्रष्टव्य—सा० द० इ० पृ० ६४८=६५३

देवरात और याज्ञवल्क्यसम्बन्धी उदयवीरशास्त्री की महती भ्रांति

देवरात नाम के अनेक महापुरुष प्राचीन भारत में विख्यात हुए हैं, यथा निमि की छठी पीढ़ी मे सुकेतु का पुत्र देवरात, द्वितीय, अजीगर्त का पुत्र शुनःशेप देवरात और तृतीय याज्ञवल्क्यवंशज एक देवरात, जिसका पुत्र वाजसनेय याज्ञवल्क्य हुआ।

देवरात को रामायण मे निमि का ज्येष्ठ पुत्र बताया गया है।[1] रामायण के वर्तमानपाठ इस प्रकार की भ्रांतियो से भरे पड़े है, अतः रामायण के पाठो के आधार पर कालनिर्णय या किसी तथ्य का निभ्रान्त निर्णय नही किया जा सकता।[2]

ऐसे ही रामायण और महाभारत के एक भ्रंशपाठ के आधार पर उदयवीरशास्त्री ने याज्ञवल्क्यकालसम्बन्धी एक अति भयंकर भूल की है जो याज्ञवल्क्य वाजसनेय शतपथब्राह्मण का रचयिता है और जिसको महाभारत एव सभी पुराण सर्वसम्मति से पाराशर्यव्यास का प्रशिष्य, वैशम्पायन और उद्दालक का शिष्य अष्टावक्र, श्वेतकेतु, भीष्मपितामह और युधिष्ठिर पाण्डव के समकालिक बताते है, उस याज्ञवल्क्य वाजसनेय को उदयवीरशास्त्री ने, एक श्रेष्ठ सस्कृतज्ञ होते हुए, देवरात जनक के समकालिक मानकर इतनी अतिभयकर त्रुटि और भ्रांति उत्पन्न करने की चेष्टा की है, जिसकी तुलना स्यात् पुराणो मे भी नही मिलेगी, जिसपुराण के विषय मे शास्त्री के उद्गार हैं—"यह वसिष्ठ ब्रह्मा का पुत्र था अथवा दशरथकालिक वसिष्ठ था, इतना असत्य किसी पुराण के मुह मे ही समा सकता है-"[3] उदयवीरशास्त्री ने यहां पर पुराणों से भी अधिक असत्य प्रलाप किया है— "वहाँ[4] याज्ञवल्क्य और जनक के सम्वाद का वर्णन है, उस जनक राजा को देवरात (दैवराति) बताया गया है, इस प्रकार राम के श्वसुर तथा सीता के पिता सीरध्वज जनक के वश मे सोलह पीढ़ी पूर्व देवराति जनक राजा था, जिसके साथ याज्ञवल्क्य के सम्वाद का महाभारत मे वर्णन किया गया है।'

---

१ देवरातो इति ख्यातो निमेर्ज्येष्ठो महीपतिः। (रामा० १-६६-८)

२. महाभारत से दोतीनशती पूर्व होनेवाले पाचाल ब्रह्मदत्त को विश्वामित्र के पूर्वज कुशनाभ का जामाता और समकालीन बनाया है। इससे रामायण के वर्तमान प्रक्षेपकारों की बुद्धिहीनता समझी जा सकती है। (द्र० रा० १-३, ३४ सर्ग)

३. सां० द० इ० (पृ० ५८८)

इसी प्रकार की भयकर भूल शास्त्रीजी ने करालजनक और वशिष्ठ (वासिष्ठ) के सम्बन्ध मे की है, जिसका अधिक सकेत आगे करेगे।

याज्ञवल्क्य के सम्बन्ध में हम पूर्वपृष्ठो पर बता चुके हैं कि यह एक गोत्रनाम था, जो विश्वामित्र के पुत्र याज्ञवल्क्य से प्रवर्तित हुआ, अतः इसी काठिन्य के कारण प० भगवद्दत्त ने केवल दो याज्ञवल्क्यो की सम्भावना व्यक्त की है।[२] याज्ञवल्क्य एक दो या तीन ही नही, अनेक शतशः सहस्रश थे, परन्तु शतपथ का रचयिता वाजसनेय याज्ञवल्क्य एक ही था जो वैशम्पायन और उद्दालक का शिष्य था, जो भारतयुद्ध से प्रायः डेढ़ शती पूर्व हुआ।

प० उदयवीरशास्त्री की भ्रांति का मूलकारण महाभारत का एक भ्रंश पाठ है, जिसमे एक जनक को दैवराति बताया है।[३] इसका विवेचन पं० भगवद्दत्त ने किया है[४] कि यहा पर 'दैवराति' के स्थान पर 'दैवरातिम्' पाठ होना चाहिये, क्योकि वाजसनययाज्ञवल्क्य के पिता का नाम देवरात[५] और माता का नाम वाजसना था। यद्यपि याज्ञवल्क्य अनेक थे, परन्तु ऐतरेय ऋषि सम्भवत. वाजसनेय का भ्राता और देवरात याज्ञवल्क्य का ही पुत्र था, जो माता इतरा के कारण ऐतरेय कहलाया।[६]

महाभारत के उपर्युक्त श्लोक मे 'दैवराति' पद जनक का विशेषण नही हो सकता. क्योकि ग्रन्थकार यहा जनक के पिता का नाम लेकर उस जनक का ही नाम लेता, यहाँ न जनक का नाम है और न उसके पिता का, बल्कि याज्ञवल्क्य और उसके पिता का नाम ही लिया गया है। यही मानना स्वस्थबुद्धि का तकाजा है। रामायण, महापुराण और पुराणो मे इस प्रकार पाठभ्रंशत्व एक सामान्य तथ्य है, जिससे प्रत्येक सामान्य सस्कृतज्ञ भी अवगत

१. वेदान्तदर्शन का इतिहास, पृ० २६
२ वै० वा० इ० भा० १, पृ० २५८, २६०
३. याज्ञवल्क्यमृषिश्रेष्ठ दैवरातिर्महायशाः। पप्रच्छ जनको राजा प्रश्नं प्रश्नविदावर· (शा० ३।५।४)
४. वै० वा० इ० भा० १ पृ० २६४
५. देवरातसुतः सो विच्छर्दित्वा यजुषागणम्। भागवत; १२।६।६४
६ आसीद् विप्रोयाज्ञवल्क्यद्विभार्यस्तस्य द्वितीयामितरेति चाहुः। षड्गुरुशिष्य, ऐ० ब्रा० की सुखप्रदावृत्ति, पृ० ४

है। अतः उदयवीरशास्त्री भ्रंशपाठ 'देवरातिम्' के स्थान पर 'देवगतिः' और महाभारत के 'पुरातन इतिहास' उल्लेख को ब्रह्मवाक्य या ध्रुवसत्य सत्य मानते हैं तो उनका बुद्धि की बलिहारी है अतः जनक और याज्ञवल्क्य सम्बन्धी भ्रांति समाप्त हो जानी चाहिए।

देवरातजनकसम्बन्धी यह तथ्य ध्यातव्य है कि वह एक महान् धनुर्धर योद्धा के रूप मे, इतिहासपुराणो मे चिचित्र है नकि एक आत्मविद्या-विशारद के रूप मे।[1]

सीरध्वजजनक—औपनिषदिक जनक नहीं—

श्रीरायचौधुरी जैसे कुछ लोग उपनिषदो मे उल्लिखित महाभारत से दो शती पूर्व होने वाले 'धर्मराज' जनक को जो भीष्म के गुरु थे[2] को सीता का पिता सीरध्वज जनक समझते हैं—"फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि भवभूति ने भी स्वीकार किया है कि वैदिक जनक ही सीता के पिता थे। कवि ने महावीरचरित में सीता के पिता का उल्लेख करते हुए कहा है'—

> तेषामिदानी दायादो वृद्धः सीरध्वजो नृपः।
> याज्ञवल्क्यमुनिर्यस्मै ब्रह्मपरायण जगौ।। (म० च० १।१५)

निश्चय ही यहा भवभूति को भ्रांति हुई है। बृहदारण्यकोपनिषद् के याज्ञवल्क्य वाजसनेय और वैदेह, जनक भीष्म और शुक (वैयासकि) के गुरु ऐन्द्रद्युम्नि जनक या निमिजनक द्वितीय थे। इस सम्बन्ध मे प० भगवद्दत्त का मत माननीय है[4] कि नग्नजित्गान्धार, दुर्मुखपाचाल, कलिंगराज करण्डु और वैदेह निमिजनक समकालिक थे। बौद्धग्रन्थ मज्झिमनिकाय

---

१. महादेव शिव ने देवरात जनक को ही अपना (शिवधनुष) दिया था—तदेतद् देवदेवस्य धनूरत्नं महात्मन। न्यासभूत तदा न्यस्तमस्माक पूर्वजेविभौ। (रामा० २।६६।१२, १३)। स्पष्ट है कि देवरात एक योद्धा थे, न कि परिव्राजक आत्मज्ञानी।

२. एतन्मयाप्तं जनकात् पुरस्तात् तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात्। (शा० ३०६-१०५)

३. प्रा० भा० रा० इ०, पृ० ४६

४. भा० वृ० इ० भाग २ (पृ० २००)। यहाँ पर पंडितजीने कै० हि० इ० पृ० ३१६ के रैप्सन के मत का खण्डन किया है कि सीरध्वज ही वैदिक (औपनिषदिक) जनक था।

(मखादेवसुत्त ८३), कुम्भकारजातक एवं जैनग्रन्थ उत्तराध्ययनसूत्र से भी यह बात प्रमाणित है।

भागवत में कुशध्वज सम्बन्धीभ्रांति

भागवत (९।१३।१८-२१) में विष्णुपुराण के एक तथ्यात्मक प्रसंग के आधार पर भागवतकार ने कुशध्वज को सीरध्वज का पुत्र बना डाला, जबकि वह सीरध्वज का अनुज था—यही तथ्य ब्रह्माण्डादिपुराण तथा रामायण में उल्लिखित है—

> भ्राता कुशध्वजस्तस्य संकाश्याधिपतिर्नृपः। (ब्रह्मा० ३।३।६४। ९)
> ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता ममवीर कुशध्वजः। (रा० १।७१।१३)

भागवत ने विष्णुपुराण (६।६।५) के उत्तरकालीन जनक केशिध्वज को कुशध्वज समझकर यह भ्राति उत्पन्न की है। स्वय विष्णुपुराण (४।५) की जनकवंशावली मे केशिध्वज, धर्मध्वज, अमितध्वज, कृतध्वज और खाण्डिक्य जनक सम्मिलित नही हैं स्पष्ट है कि विष्णुपुराण की जनकवशावली भी अपूर्ण है। अन्य प्रमाणों से ज्ञात है कि धर्मध्वज आदि जनक महाभारतयुग से दो तीन शती पूर्व हुए, जबकि सीरध्वज, कुशध्वजादि जनक राजा भारत-युद्ध से २००० वर्ष पूर्व हुए। अत कुशध्वज और केशिध्वज एक नही हो सकते, उनका पार्थक्य आगे और स्पष्ट होगा। सीरध्वजअनुज कुशध्वज के समकालिक संकाश्य का राजा सुधन्वा था।[1] सुधन्वा की पराजयप्रसग से भी सिद्ध है कि सीरध्वज और कुशध्वज आध्यात्मिकराजा नही, वीरयोद्धा मात्र ही थे। रामायण के इस प्रसंग से भी सीरध्वजजनक का योद्धारूप ही प्रकट होता है और आत्मविद्याविशारदत्व क्षीण होता है।

जनक सीरध्वज का पुरोहित शतानन्द गौतम न तो गौतम राहूगण का, न वामदेव और नही बृहदुक्थ, गौतम का पुत्र था, वह केवल कोई गौतमगोत्रीय ब्राह्मण ऋषिमात्र था। हां शतानन्द की माता अहिल्या हो सकती है,[2]

---

१. कस्यचित्वथ कालस्य साकाश्यादागत पुरात्। सुधन्वा वीर्यवान् राजा मिथिलानामवरोधकः। निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम्। सांकाश्ये भ्रातरं शूरमभ्यषिंच कुशध्वजम्॥ (रामा० १।७१।१६ १९)

परन्तु, अहिल्यापति गौतम, आदिम गौतम राहूगण नहीं था। अहिल्यापति गौतम और गौतम राहूगण में न्यूनतम ६००० वर्षों का अन्तर था, यह हम विदेह माथव के प्रसंग में बता चुके हैं।

अज्ञातनामा वैदेहराज और क्षेमदर्शी कौसल्य

किसी वैदेहराज ने हमारी क्रमसंख्या ७७ के राजा क्षेमदर्शी कौसल्य (५१५० वि०पू०) को परास्त किया, पुनः कालकवृक्षीयमुनि के प्रयत्नो से संधि करके वैदेहराज ने अपनी दुहिता कोसलराज को व्याह दी—

> वैदेहस्त्वथ कौसल्यं प्रवेश्य गृहंसुजाताम्।
> ददौ दुहितरं चास्मै रत्नानि विविधानि च ।। (महा० १३;१०६।२७)

इस समयपर्यन्त भी जनकराजाओ का आत्मविद्यावैशारद्य अप्रकट था। वे अभी तक योग के स्थान पर युद्ध का ही वरण करते थे।

आत्मविद्याविशारद जनकगण

यद्यपि भारत मे योग और आत्मविद्या हिरण्यगर्भकश्यपवरुण, विवस्वान्, भृगु, इन्द्र आदि के समय (१४०००-१२००० वि०पू०) से ही प्रचलित थी, तथापि भारतयुद्ध से प्राय १००० (एकसहस्रवर्ष) पूर्व अध्यात्म की विशेष लहर उठी और जनकवशीयराजाओ ने इस लहर को विशेषरूप से ऊपर उठाया, इसमे भी भारतयुद्ध से त्रिशतीपूर्व ब्रह्मदत्तपांचाल,[1] विष्वक्सेन, प्रतीपकौरव, धर्मध्वज जनक, निमिजनक द्वितीय करालजनक, इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्नि, प्रवाहणजैविलि अश्वपति कैकय, धर्मराजजनक जैसे राजगण

यद्यपि लिखा है कि अहिल्या सहस्रवर्षों तक भूमि पर पडी रही—इहवर्षसहस्राणि बहूनि निवत्स्यमि। वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी। अत अहिल्या राम से एक सहस्रवर्ष पूर्व अवश्य हुई। सस्कृतकाव्यो मे तो उसे शिला ही बना दिया है, रामायण मे ऐसी बात नही है।

१. प्रतीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिपः पितामहस्य मे राजन् बभूवेति मया श्रुतम्। ब्रह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः ।।

(हरि० १।२३।११,१२)

ब्रह्मदत्त का पुत्र विष्वक्सेन पिता से भी अधिक महान् योगी था—

और पंचशिखपाराशर्य, उलूक, कणाद, वात्स्यायन, वसिष्ठ, पाराशर्य, शुक वैयासकि, भीष्म, श्वेतकेतु अष्टावक्र, माण्डूक्य, वाजसनेय याज्ञवल्क्य[1] जैसे दार्शनिक ऋषियों ने आत्मविद्या को चरमसीमा पर पहुचाया, जो उपनिषदों में परिलक्षित होती है। औपनिषदिक योगविद्या में सर्वाधिक योगदान जनकराजाओं का रहा, जिनमें प्रमुख आठनाम हैं—(१) केशिध्वज खाण्डिक्य, (२) धर्मध्वज, (३) धर्मराजजनक, (४) जनदेव, (५) महादेव, (६) ऐन्द्रद्युम्नि, (७) निमिवैदेहजनक द्वितीय, और (८) कराल जनक। यहां पर इनके समकालिक व्यक्तियों का समय निर्देश करने का प्रयत्न करेंगे।

धर्मध्वज का संभावित समय

औपनिषदिक एवं महाभारतीय साक्ष्य से उपर्युक्त आठ दार्शनिक जनक नरेशों का समय महाभारतयुद्ध (३०८० वि०पू०) से लगभग ५०० वर्षपूर्व (३५८० वि०पू०) से भारतयुद्धकालपर्यन्त या युद्ध से लगभग ४०-५० वर्ष

योगात्मा तस्य तनयो विष्वक्सेन: परतप ।
अथास्य पुत्रस्त्वपरो ब्रह्मदत्तस्य जज्ञिवान् ।। (हरि०२।२०।३६)

इसी विष्वक्सेन को सामविधान ब्राह्मण (३।८-३) में व्यासपाराशर्य का गुरु बताया गया है—यह विद्यावंश इस प्रकार है—१. प्रजापति, २. बृहस्पति, ३ नारद, ४ विष्वक्सेन, ५ व्यासपाराशर्य, ६ जैमिनि, ७ पौष्पिञ्जि, ८. पाराशर्यायण, ९ बादरायण, १० तण्डि, ११, शाट्यायनि। प० भगवद्दत्त ने ब्रह्मदत्तपुत्र विष्वक्सेन को, हरिवंश के उक्त पाठ को बिना देखे देवकीपुत्र कृष्ण समझ लिया—'विष्वक्सेन देवकीपुत्र कृष्ण का अपरनाम है।" (भा० वृ० इ० भा० १, पृ० १६६), यह पण्डितजी की भ्रांति है। यह विष्वक्सेन ब्रह्मदत्तपुत्र योगिराज था। पाराशर्यव्यास का वासुदेव कृष्ण का शिष्यत्व किसी भी प्रकार उपपन्न नहीं होता।

१. याज्ञवल्क्य, वाजसनेय, श्वेतकेतु, उद्दालक, अष्टावक्र, सभी दार्शनिक भारतयुद्ध के पूर्व के आचार्य थे, कुछ लोग इन्हें परीक्षित के समकालिक समझते है, यह भ्रम है। स्वय भीष्म कहते है कि मैंने आत्मविद्या जनकशिष्य याज्ञवल्क्य वाजसनेय से सीखी है; (महा० १२।३०६।१०५);

पूर्व ही निश्चित होता है। अन्तिम जनक कराल था, जिसके सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त का अनुमान सत्य के निकट है—'...निमि और कराल भारतयुद्ध से लगभग ४०-५० वर्ष पहले हुए थे।'[1] इस सम्बन्ध मे पं० उदयवीर शास्त्री की कल्पना एकदम निस्सार है—

"इसलिए मैत्रावरुणि वसिष्ठ प्रसिद्ध हुआ। महाभारत के अनुसार इसी वसिष्ठ के साथ करालजनक का संवाद हुआ। यह करालजनक निमि का पुत्र था"... "ऐसी स्थिति में मैत्रावरुणि वसिष्ठ और करालजनक का सम्वाद भारतयुद्ध से केवल ४०-५० वर्ष पूर्व माना जाना कैसे सम्भव है।"[2]

उदयवीरशास्त्री यहां पर महाभारत के दोभ्रंशपाठों से भ्रमित हुए है। 'पुरातन इतिहास' और मैत्रावरुणिवसिष्ठ'।[3] महाभारत मे भीष्म के मुख से कहलाये गये प्रत्येक आख्यान को 'पुरातन इतिहास' कहा गया है, यथा कहोड कोषीतकि का पुत्र अष्टावक्र भीष्म और युधिष्ठिर के प्रायः समकालीन था, उसका इतिहास भीष्म मुख से पुरातन' कहलाया गया है।[4] करालजनक भी अष्टावक्र के समकालिक ही था, अतः भीष्ममुख से क्षेपककारो, लिपिकारो द्वारा भ्रंशपाठ से करालजनक अतिपुरातन नही हो सकता, इसी प्रकार कराल को उपदेश किसी अज्ञातनामा वसिष्ठ ब्राह्मण ने दिये, जो महाभारतकालीन ही था, उसको मैत्रावरुणि कहना भी भ्रंशपाठ है। अतः कौटिलीय अर्थशास्त्र,[5] अश्वघोषकृत बुद्धचरित,[6] मज्झिमनिकाय[7]आदि पुरातन-ग्रन्थो के प्रमाण से करालजनक विदेहवंश का अन्तिम राजा निश्चित होता है,

१ भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १६८),
२. सां० द० (पृ० ५८७)
३. अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्। वसिष्ठस्य च संवादं कराल-जनकस्य च।...मैत्रावरुणिमासीनं पप्रच्छकिल राजा करालं जनकः पुरा॥ (म० भा० शा० ३०८।७-१०)
४. अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। अष्टावक्रस्य संवादं दिशाया यद् भारत (अनुशा० १९।१०)
५. कौटिल्य० १।६।६-७
६. बुद्ध० ४।८०,
७. म० नि० (मखादेवसुत्त ८३)

जिसका समय भारतयुद्ध से ५० वर्ष पूर्व ही था। भारतयुद्ध में किसी विदेहराज की अनुपस्थिति का यह भी एक कारण हो सकता है कि वह वंश युद्ध से वर्षोंपूर्व ही नष्ट हो गया था।

अत. संभवतः प्रथम और प्रमुख दार्शनिक जनक धर्मध्वज ही था, जिसका आंशिकवंशवृक्ष विष्णुपुराण मे इस प्रकार दिया है—

धर्मध्वज
|
अमितध्वज
|
ऋतध्वज — खाण्डिक्य जनक (= वसुमान् ?)

ऋतध्वज
|
केशिध्वज
|
मखादेव
|
जनदेव
|
धर्मदेव
|
इन्द्रद्युम्न
|
इन्द्रद्युम्नि (= उग्रसेन)
|
निमि द्वितीय
|
करात जनक

बौद्धसाहित्य के प्रमाण से मखादेव और जनदेव से करालपर्यन्त जनकराजवंश का हमने महाभारत के साक्ष्य से निर्माण किया है।

प्रत्येक राजा का औसत राज्यकाल न्यूनतम ४० वर्ष मानने पर ११ × ४० = ४४०) धर्मध्वज का समय भारतयुद्ध मे (३०८० + ४४०) = ३५२० वि०पू० निश्चित होता है, यद्यपि योगी एव शान्तिप्रिय होने से उपर्युक्त जनक

राजाओं का राज्यकाल कुछ दीर्घ ही होना चाहिये। परन्तु हमने केवल न्यूनतम ४० वर्ष ही माना है।

इसी धर्मध्वज जनक[1] का सुलभा नाम्नी योगिनी (परिव्राजिका) से संवाद हुआ था।[2] यही धर्मध्वज चिरजीवी वृद्ध पाराशर्य भिक्षु पंचशिख का परमसम्मत शिष्य था।[3] महाभारत के अनुसार पाराशर्य भिक्षु की आयु लगभग एकसहस्रवर्ष थी।[4]

कुछ लोग धर्मध्वज और जनदेव[5] जनक को एक ही मानते हैं।[6] परन्तु हमारे मत में ये दोनो पृथक् पृथक् थे और दोनों ही पंचशिख के शिष्य थे। क्योंकि पंचशिख अत्यन्त दीर्घजीवी (सहस्रवत्सरजीवी) होने से अनेक जनकराजाओं के गुरु थे। पंचशिख भारतयुद्ध के समय जीवित थे या नहीं, इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलता।[7] परन्तु वह युद्धसे कुछ शती पूर्व निश्चयपूर्वक विद्यमान थे। कृष्णद्वैपायन के गुरु या पूर्वज तथाकथित सत्ताइसवें व्यास (हमारे मत मे उन्तीसवाँ व्यास) के समकालीन सोमशर्मा के चार प्रसिद्ध दार्शनिक शिष्य थे—अक्षपाद गौतम, कणाद, उलूक और वत्स (वात्स्यायन)।[8] सत्ताइसवं परिवर्त कहने का तात्पर्य है कि ये कृष्णद्वैपायन

---

१ मैथिलो जनको नाम धर्मध्वज इति श्रुतः (शा० १२।३२५।४)

२ महा० शा० १२।३२५

३ पाराशरसगोत्रस्य वृद्धस्य सुमहात्मनः। भिक्षो पञ्चशिखस्याहं शिष्यः परमसम्मत ॥ (शा० ३२५।२४)

४. आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम्। पञ्चस्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसहस्रिकम्। (शा० २१८।१०)

५ जनको जनदेवस्तु मिथिलायां जनाधिपः। तस्य स्म शतमाचार्या वसन्ति सततं गृहे। (शा० २१८।३,४)

६. इस प्रकार धर्मध्वज जनक पंचशिख का शिष्य कहाजासकता है। इसका अपरनाम जनदेव भी था। (सां०द० इ० पृ० ५८५)

७. भगवद्दत्त का मत— चिरजीवी पंचशिख भी भारतयुद्धकाल में था।' भा वृ० इ० भा० २, पृ० २२०)

८. वायु० (२३।२१३-२१६)—सप्तविंशति प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते। जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधन.। तदाप्यहं भविष्यामि सोमशर्मा द्विजोत्तमः। अक्षपादः कणादश्च उलूको वत्स एव च।

से एक परिवर्तपूर्व ३६० वर्ष पूर्व हुए (यही समय प्रतीप और ब्रह्मदत्त पांचाल का था), अर्थात् अक्षपाद, कणाद उलूकादि का समय ३५४० वि०पू० था। पं० भगवद्दत्त ने चीनी लेखक युवनच्वाग के शिष्य कह्लाईचि का उद्धरण दिया है—'उलूक पंचशिख को अपनी कुटी मे ले गया' (भा० वृ० इ० भा० २, पृ० २२० पर वै० फिलासफी हकुजु उई का उद्धरण) अतः पंचशिख उलूकादि के समकालीन थे और हमारा अनुमान है कि वे उलूकादि की अपेक्षा वृद्धतर थे, पचशिख का जन्म उलूकादि से पूर्व हुआथा, सहस्र वर्षायु मानने पर उनका जन्म ४०८० वि०पू० होना चाहिये। उनकी आयु सहस्रवर्ष नहीमानीजाय, तो भी उनकी आयु चारपांचसौवर्ष अवश्य थी।

अत धर्मध्वज जनक का समय ३६०० वि०पू० से ३५२० वि०पू० पर्यन्त था, जनदेव का समय भारतयुद्ध से २०० वर्षपूर्व अर्थात् ३२८० वि०पू० था। इनके मध्य मे होने वाले खाण्डिक्य जनक का समय भारतयुद्ध से २२० वर्षपूर्व अर्थात् ३३०० वि०पू० था। प्रकारान्तर से इसकी पुष्टि इस प्रकार होती है। विष्णुपुराण (६।५।१६) मे खाण्डिक्य और केशिध्वज का समकालिक भार्गव शुनक को बताया है. वीतहव्य की १३वी पीढी मे भार्गव प्रमति का पुत्र बताया है।[1] आदिपर्व के अनुसार प्रमद्वरा की मृत्यु के समय जो ऋषि उपस्थित थे, उनमे कुछ ये थे— उद्दालक, कठ, श्वेत, कौणकुत्स्य, आर्ष्टिषेण इत्यादि।[2] उद्दालक याज्ञवल्क्य के गुरु थे और वैशम्पायन के तुल्यवयः थे. इन सब उद्दालकादि का समय भारतयुद्ध के लगभग दो शती पूर्व था, शुनक का भी वही समय है अत महाभारत के प्रामाण्य से शुनक समकालिक खाण्डिक्य जनक का समय ३३०० वि०पू० के निकट था। किसी वसुमान संज्ञक जनक राजा की संगति किसी भार्गव वशधर ऋषि से हुई थी।[3] यह सम्भव है कि खाण्डिक्य का ही अपर नाम वसुमान् हो, क्योकि खाण्डिक्य तद्धितान्त नाम है—खण्डिक का पुत्र – खाण्डिक्य।

---

१. प्रमद्वरायां तु रुरोः पुत्रः समुदपद्यत। शुनको नाम विप्रर्षिर्यस्य पुत्रोऽथ शौनकः। म० १३।३०।६५

२ महा० १।८।२५

३. महा० (१२।३०६।१-२)—मृगयां विचरन् कश्चिद् विजने जनकात्मजः वने ददर्श विप्रेन्द्रमृषि वशधर भृगोः।...पप्रच्छवसुमानिदम्॥

धर्मराज—जनदेव का उत्तराधिकारी धर्मराज जनक था, जो पाराशर्य व्यास का शिष्य[1] और वैयासकि शुक का उपदेष्टा था।[2] अतः धर्मराज जनक का समय ३३०० वि०पू० से ३२६० वि०पू० था।

इन्द्रद्युम्न—जिस जनक का सूतबन्दीसंज्ञक था, जिससे कहोडपुत्र अष्टावक्र का शास्त्रार्थ हुआ, इसका नाम ऐन्द्रद्युम्नि[3] बताया है, अत उसके पिता का नाम इन्द्रद्युम्न था। एक इन्द्रद्युम्न का उल्लेख वनपर्व के चिरजीवियो में उपस्थित है।[4] पता नहीं, यही चिरजीवी इन्द्रद्युम्न जनक था या अन्य। जनक इन्द्रद्युम्न का समय ३२६० वि०पू० से ३२२० वि०पू० तक अनुमानित है।

उग्रसेन ऐन्द्रद्युम्नि—ऐन्द्रद्युम्नि का नाम उग्रसेन कथित है।[5]

उग्रपुत्र निमिजनकद्वितीय—उपर्युक्त उग्रपुत्र वैदेह का बृहदारण्य (३।८।२) मे उल्लेख है—'स होवाचाहं वै त्वा याज्ञवल्क्य यथा काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्र' उग्रसेन यदि याज्ञवल्क्य का गुरु था, तो औग्रसेनि निमि द्वितीय ही प्रसिद्ध जनक था, जो उपनिषदो मे याज्ञवल्क्यशिष्य के रूप मे वर्णित है और जिसके मत मे याज्ञवल्क्य सर्वश्रेष्ठ विद्वान् घोषित किया गया।[6]

यह पहिले लिख चुके है कि गान्धार नग्नजित'दारुवाहवैद्य'[7] पांचाल दुर्मुख, कलिगराज करण्डु और निमिवैदेह समकालीन राजा थे।[8] जिस

---

१. तत' स राजा जनको मन्त्रिभिः सह भारत। शिरसा चार्घ्यमादाय गुरुपुत्र मभ्यगात्। (१२।३२६।१,२)
२. महा० (१२।३२५।१६) धर्मराजेन जनकेन महात्मना।
३. महा० ३।१३३।४)
४. महा० (३।१६६।२)
५. अत्रोग्रसेन' समितेषु राजन्। (महा० ३।१३४।१)
६. बृ०उ० (३।६।२७)
७. श० ब्रा०—नग्नजिद्वा गान्धार: (८।१।४।२० नग्नजितो दारुवाहिः (अष्टागहृदयटीका, पृ० ३१४)
८. ऐ० ब्रा० (३५।८)
९. भदन्तआनन्दकौसल्यायनकृतजातक, भाग ४ (कुम्भकारजातक,स० ४०८)

प्रकार अष्टक वैश्वामित्र, वसुमना ऐक्ष्वाक, गोपति शैव्य और प्रतर्दन दैवोदासि—किसी यज्ञान्त मे ययाति से संवादार्थ एकत्रित हुए, इसी प्रकार ये चारो राजा परिव्राजकगण एकत्रित हुए—"करण्डु नाम कलिंगानं गान्धारान च नग्नजी निमिराजा विदेहानं पाचालानं दुमुखो, एते रट्ठानि हित्वा नपब्बजिंसु अकिंचना। सब्बेपि देवसमा समागता।

प० भगवद्दत्त ने निमि और कराल दोनो का समय भारतयुद्ध से ४०-५० वर्ष माना है। इसमे हमारा संशोधन है कि वाजसनेययाज्ञवल्क्यशिष्य निमिजनक का समय ३१८० वि०पू० से ३१४० वि०पू० था और वासिष्ठ शिष्य करालजनक का समय ३१४० वि०पू० से ३१२० वि०पू था। कराल जनक के सम्बन्ध मे प० भगवद्दत्त का अनुमान सत्य है कि वह युद्ध से लगभग ४० वर्ष पूर्व हुआ, परन्तु निमि जनक (और याज्ञवल्क्य) का समय युद्ध से ८० से १०० वर्ष पूर्व था।

करालजनक—यह पाण्डु और दुर्योधन के समकालीन राजा था, इसका समय ऊपर निर्णीत किया जा चुका है। महाभारत के क्षेपक मे किसी वासिष्ठ ब्राह्मण को मैत्रावरुणि बनाकर भ्रम उत्पन्न किया गया है कि वह आदिम वसिष्ठ का शिष्य था। इसका स्पष्टीकरण एव खण्डन हम पूर्वपृष्ठ पर कर चुके हैं। बडे आश्चर्य की बात है कि महान् वैद्य[1] और दार्शनिक करालजनक ब्राह्मणकन्या के मोह मे पडकर विनष्ट हुआ।[2]

स्पष्ट है कि कराल अधिकवर्ष राज्य नही कर सका होगा वह युवावस्था मे लगभग ५० वर्ष की मे ही नष्ट हो गया होगा।

---

१. महा० शा० (३०३।५-६), परमध्यात्मकुशलमध्यात्मगतिविशारद. (शा० ३०२।८)

२. करालजनकश्चैव हृत्वा ब्राह्मणकन्यकाम्। अवाप्त भ्रशमप्येव न तु भेजे मन्मथम्। बु० च० ४।८०, अर्थशास्त्र (अ० ६), तथा मज्झिम निकाय, मखोदवसुत्ता ८३;

६

सोमवंश (चान्द्रवंश)

अत्रि

सोम के पिता ऋषि अत्रि या आत्रेय के आदिपूर्वज प्रजापति अत्रि वैवस्वतमनु और सोम से तीनसहस्रवर्ष पूर्व हुए थे, इन्ही आदि अत्रि के वंश मे पृथु का प्रपितामह अंग या अनग प्रजापति हुआ था। पृथुप्रपितामह अत्रि सोमपिता—अत्रि से लगभग १० पीढी पूर्व या दोसहस्रवर्षपूर्व हुए। पृथु और सोम में भी नौ पीढ़ी का और लगभग डेढ सहस्रवर्ष का अन्तर था। दिव्यवर्ष और सौरवर्ष मे कोई अन्तर नही था, दिव्य और सौर शब्द पर्याय ही थे, यह अन्यत्र स्पष्ट कर चुके है।

प्रजापति अत्रि और पृथु का इतिहास महाभारतयुग मे श्रुतिमात्र था।[3]

सोमजन्म

सोमजन्म की कथा भी महाभारतयुग मे अस्पष्ट सी थी और कहा गया है कि तप करते हुए अत्रि का शरीर ही सोमरूपमे परिणत होगया और दशदिशारूपी दशस्त्रियो ने सोम का पालन-पोषण किया।[4] सम्भवतः दश

---

१. आसीद् धर्मस्य गोप्ता वै पूर्वमत्रिसम प्रभुः। अत्रिवंशसमुत्पन्नःस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः। तस्य पुत्रोऽ भवद् वनोनात्यर्थं धर्मकोविदः॥

(हरि० १।५।१-२)

२. पितासोमस्य वै राजन् जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषि.। अनुत्तमं नाम तपो येन तप्त महत् पुरा। त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति नः श्रुतम्॥

(हरि० १।२५।४)

३. श्रुतिरेषा परा नृषु (महा० १२।४८।१२१) तथा 'नः श्रुतम्,।

(हरि० १।२५।४)

४. सौमत्वं तनुरापेदे महाबुद्धि. सर्वे द्विजाः (वायु० १०।६), तं गर्भं विधिना दिष्टा दश देव्यो दधुस्तदा (वायु० ४०।६)

या अनेक स्त्रियों ने सोम का पालन किया होगा।

पत्नियां

दक्ष प्राचेतस की २७ पुत्रियां सोम की पत्नियां थी, जिनके नाम पर देवयुग में २७ नक्षत्रों के नाम रखे गये।[1] इनमें रोहिणी, सोम की सर्वाधिक प्रिय एवं ज्येष्ठ पत्नी थी। अन्य नौ देवियां—सिनी, कुहू, वपु, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी—सोम की परिचारिकाएं थीं।[2]

राजसूययज्ञ

सोम के यज्ञ मे अत्रि, भृगु, हिरण्यगर्भ और वसिष्ठ—क्रमशः होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा हुए।[3]

हमारा उद्देश्य यहां इतिहासवर्णन नही, केवल सोम से समकालीनता एवं कालनिर्णय की दृष्टि से उपर्युक्त व्यक्तियो एव घटनाओं का सकेत मात्र किया गया है। कार्तिकेयकुमार और साध्यो मे अन्यतम देव नारायण, सोम के यज्ञ के सदस्य थे।[4]

सोम का राज्यकाल और तारकामययुद्ध का समय

बड़े आश्चर्य की बात है कि २७ श्रेष्ठ पत्निया एव ६ अनुत्तम परिचारिकाए होते हुए सोम ने आगिरस बृहस्पति की पत्नी तारा से व्यभिचार किया, जिससे सोम द्वारा बुध नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ और राजसूय के अन्त मे तारकामयनाम का पचम देवासुरसंग्राम हुआ।[5]

सोम, रुद्र, उशना, कार्तिकेय (सनत्कुमार) हिरण्यगर्भ, वसिष्ठ, भृगु, अत्रि, बृहस्पति आदि मे अधिकांश का जन्म प्रथम या द्वितीय परिवर्तयुग १४००० वि० पू० से पूर्व चाक्षुष मन्वन्तर मे हो चुका था, सम्भवत वरुण, विवस्वान् आदि आदित्यो का जन्म भी प्रथम या द्वितीय युग (परिवर्त) मे

---

१. वायु० (६०।२१)
२. हरि० (१।२५।२७)
३. हरि० (१।२५।२४)
४. हरि० (१।२५।२५)
५. राजसूयस्तु सौमेन श्रूयते पूर्वमाहृतः। तस्यान्ते सुमहद् युद्धमभवत् तारकामयम् (हरि० ३।२।१६)

हुआ था, परन्तु शक्र (इन्द्र),[1] विरोचनआदि का जन्म बहुत उत्तरकाल में सम्भवत. चतुर्थयुग (१२५०० वि० पू०) हुआ था। हमे शक है कि इस युद्ध के समयपर्यन्त इन्द्र (शक्र) युद्धयोग्य हुआ था कि नहीं, क्योकि सोम के सप्तम वशज राजपुत्रो (नहुष के भ्रातव्यो) के समयपर्यन्त ब्राह्मण इन्द्र क्षत्रिय नही बना था, वह रजि एव रजिपुत्रो की अनुनयविनय करके ही कूटनीति द्वारा सत्ता की ओर बढ रहा था।[2] रजि-नहुष के समय शक्र ब्राह्मण ही था। अत. तारकामययुद्ध मे शक्र की उपस्थिति संदिग्ध है। अत· शक्र ने इस तारकामययुद्ध मे यदि प्राह्लादि विरोचन[3] का वध किया हो तो सोम का राज्यकाल सहस्रवर्ष से अधिक मानना ही पडेगा, निश्चय ही उसका महद्राज्य एव राज्यकाल अनेक शतियोपर्यन्त अवश्य रहा होगा।

सोम के राज्य का अन्त और तारकामययुद्ध का समय चतुर्थयुग (१३५६० वि०पू० से १२३२० वि०पू०) के मध्य मे था।

मानवीय विपत्ति (तारकामयसंग्राम) के अतिरिक्त इस युग मे एक द्वादश वार्षिकी अनावृष्टि उल्लेख्य है—

> पुरा देवासुरे तस्मिन् सग्रामे तारकामये।
> अनावृष्ट्या हते लोके व्यग्रे शक्रे सुरै. मह।[4]

---

१ इन्द्र का जन्मनाम शक्र था. इसका आभास प० भगवद्दत्त का नही हो पाया— इस इन्द्र का वास्तविक नाम अभी सदिग्ध है।' भा०वृ०इ०भा० २, पृ० ५६,

२ इन्द्रोऽमि तात देवाना सर्वेषा नात्र सशय. यस्याहमिन्द्र पुत्रस्ते ख्याति यास्यामि कर्मभि'। स तु शक्रवच. श्रुत्वा वचिनस्तेन मायया। (हरि० १।२८।२०, २१) (ख) तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पतेः। (हरि० १।२६।३३)

३. विरोचनस्तु प्रह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यत। इन्द्रेणैव तु विक्रम्य निहतस्तारकामये॥ (मत्स्य० ४७।४८-४०), शक्र, बलिपराजय के पश्चात् वास्तविक सत्ता--इन्द्रपद तथा सत्ययुग ११८०० वि०पू० मे तदनन्तर वृत्र को मारकर 'महेन्द्रपद' प्राप्त किया।

४ वायु० (७०।८१). एक दूसरी अनावृष्टि वृत्रवध के समय हुई (द्र० महा० शल्य० ५१।२२) इन तथ्यो से सिद्ध होता है कि इन्द्र साक्षात् देवयुग मे वर्षा नही करा सकता था, तब गोवर्धनगिरि की पूजा के समय कृष्णकाल मे इन्द्र द्वारा सवर्तक मेघवर्षा केवल कल्पनामात्र है। (द्र० हरि० २।१८ अ०)

सोमायनबुध

सोम द्वारा बृहस्पति जाया तारा मे उत्पन्न पुत्रबुध हुआ,[1] जो उसका दायाद (उत्तराधिकारी) हुआ। यह बुध अर्थशास्त्र एव पालकाप्य (हस्त्यायुर्वेद) का प्रवर्तक था।[2] बुध का नाम वीरसोम भी था। इसको ही सौम्य और सोमायन भी कहते थे। इसको स्थपतिबुध भी ब्राह्मणग्रन्थो मे कहा गया है।[3] बुध[4] सोमायन के सम्बन्ध मे ब्राह्मणग्रन्थो मे एक तथ्य उल्लिखित है। इसकी यज्ञ की दीक्षा से पूर्व औषधियो मे न पय. था और न क्षीर मे सर्पि (घृत) था, उस समय तक पशु, कृश एव अस्थिहीन एव दरिद्र थे।[5] इस उल्लेख मे कुछ न कुछ तथ्य है। डार्विन के मिथ्या विकासवाद के अनुसार वनस्पति एवं जीवो का विकास अरबोवर्षों मे हुआ, जबकि प्राचीनभारतीयवैज्ञानिक मत है कि वर्तमानवनस्पति और जीवसृष्टिबत्ती-ससहस्रवर्षो से अधिक प्राचीन नही है, यह समस्त जीवसृष्टि स्वायम्भुव मनु और वैवस्वत मनु के मध्य (३१००० वि० पू० से १४००० वि०पू०) मे हुई, शनै शनै करोडोवर्षों मे नही। और जो प्राणी या वनस्पति जिसरूप मे आदिकाल मे उत्पन्न हुआ, वह आज भी वैसा ही है. विकास या तथाकथित परिवर्तन किसी भी उदाहरण से पुष्ट नही होता।

वैवस्वतमनु का समय तृतीययुगमेपूर्व (जलप्रलय से पूर्व) १३००० वि० पू० से १२५०० वि० पू० तक था। यही समय मनुपुत्री इला का था। अत: बुध का समय वैवस्वतममनु और इला के समकालिक १३००० वि० पू० था।

---

१ बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमत ॥ (हरि० १।२५।४५)

२ सर्वार्थशास्त्रविद्धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तक: (मत्स्य० ३४।२)

३ श्रीरामशकर भट्टाचार्य कृत इति० पु० अनु० पृ० ४५

४. बुधेन स्थपतिना (जै० ब्रा० २।२४) तथा—ताण्ड्य० ब्रा० (३४।१८।२)

५. अथ ह वै तर्हि नौषधीषु पय आसीन्न सर्पि: दरिद्रा आसन् पशव: कृशा: सन्तो व्यस्थका.। सौम्यस्याथ दीक्षायां समसृज्यन्त मेदसेति ॥ (ताण्ड्य० २४।१८।२-७)

बुध और इला

मित्र और वरुण आदित्य ने वैवस्वतमनु का यज्ञ कराया था, पाकयज्ञेनेजे...ततः सवत्सरे योषित् संबभूव...तत्र मित्रावरुणौ संजग्माते। (श० ब्रा० १.८।१।७) तथा पुराण में—

अकरोत् पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः।
मित्रवरुणयोस्तां पूर्वमेव विशाम्पते ॥
दिव्यसंहनना चैव ह इला जज्ञे इति श्रुतिः।
सैवमुक्त्वा मनु देव मित्रावरुणयोरिला ॥[1]

यह इला कुछ समय (संवत्सरपर्यन्त) स्त्री और कुछ समय पुरुष बन जाती थी। स्त्रीरूप मे वह बुध की पत्नी बनी, जिससे पुरूरवा उत्पन्न हुआ।[2] पुरुषरूप मे इला का नाम सुद्युम्न हुआ, इस सुद्युम्न के तीन पुत्र हुए— उत्कल, गय और विनताश्व जिनसे क्रमश उत्कला, गया और पश्चिमापुरी विख्यात हुई।[3] इससे ज्ञात होता है कि उडीसा और बिहार मे गयापुरी न्यूनतम १३००० वि०पू० की प्राचीन नगरिया है।

ऐलपुरूरवा

इला का पुत्र होने के कारण पुरूरवा को ऐल[4] और उसकी प्रजा (सन्तति) को ऐली या ऐडी कहा जाता था। ऐडीप्रजा का अर्थ है पुरूरवा के वशज, आयु नहुष, अमावसु, रजि, भरत, पुरुमीढ कौरव इत्यादि।

पुरूरवा ने केशीदानव का वध किया, यह कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक मे पुरातन इतिहास के आधार पर ही लिखा है,[5] क्योकि इस समय तक शक्र न तो समर्थ था, न शासक, अतः महाभारतमे केशीहन्ता इन्द्र को बताया है, वह भ्रामक है।[6] पुरूरवा के पितामह सोम ने अतिभास्वर सौवर्ण

१. हरि० (१।१०।३,७,१०)
२. सोमपुत्राद् बुधाद् राजंस्तस्या जज्ञे पुरूरवाः
३ उत्कलस्योत्कला राजन् विनताश्वस्य पश्चिमा। दिक् पूर्वा भरतश्रेष्ठ गयस्य गयापुरी ॥ (हरि० १।१०।१९)
४. पुरूरवा ह पुरा ऐडो राजा.. (बौ० श्रौ० १८।४४)। ऐडीश्च वा हवा प्रजाः (मै० सं० १।५।१०)
५. वयस्य केशिना हृतामुर्वशी नारदादुपश्रुत्य...महत्खलु तत्रभवतामघोन; प्रियमनुष्ठितं भवता ॥ (वि० उ० १।१६)
६. वनपर्व० (२२३ अ०)

रथ पुरूरवा को दिया था, जिसे सोम के नाम से सोमदत्त कहा जाता था।[1] महाभारत मे पुरूरवा को १३ द्वीपो का और वायुपुराण मे १८ द्वीपो का भोक्ता कहा है—

त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवा.।[2]
अष्टादशसमुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः।[3]

उर्वशी और पुरूरवा

पुराणो मे पुरूरवा और उर्वशी का सुन्दर आख्यान रोचक शब्दो मे मिलता है। तदनुसार गन्धर्वी (गन्धर्वलोकवासिनी) उर्वशी अप्सरा को विश्वावसु गन्धर्वों ने पुरूरवा को दिया था। शक्र का उर्वशी के दान मे कोई हाथ नही था। अथवा उर्वशी ने स्वय ही युवा शोभन बलिष्ठ पुरूरवा का वरण किया।[4] पुराणो मे वर्षो की ऐसी गणना की गई है, जिससे प्रतीत होता है कि पुरूरवा उर्वशी को कुछ दिनो के लिए छोड देता था। प्रतीत होता है कि राजा उर्वशी के साथ जितने वर्षों एक स्थान पर रहा, उतने ही वर्षों का पृथक्-पृथक् उल्लेख है[5]

चैत्ररथवन	—	१० वर्ष
मन्दाकिनीतट	—	८ वर्ष
अलकापुरी	—	७ वर्ष
विशालापुरी	—	६ वर्ष
नन्दनवन	—	७ वर्ष
गन्धमादन	—	८ वर्ष
मेरुशृंग	—	
उत्तरकुरु	—	१० वर्ष
कलापग्राम	—	८ वर्ष

१. राजर्षेः सोमदत्तो रथो दृश्यते। (वि० १।६)
२ महा० (१।७५।१६)
३ वायु० (२।१५)
४ उर्वशी वरयामास हित्वा मान यशस्विनी।
५. तया महावसरुद्राजा दशवर्षाणि चाष्ट च सप्त षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान्। वर्षाण्यथचतुःषष्टि तद्भक्त्या शोपमोहिता। (वायु० ६१।५,१४)

मत्स्य०[1] के अनुसार ५५ वर्ष, और हरिवंश[2] के अनुसार ५४ वर्ष राजा ने उर्वशी का सहवास किया। विष्णुपुराण इस लगभग ६० को साठ सहस्र वर्ष बना देता है।[3] इससे यह भी ज्ञात होता है कि वायु० और विष्णु० पाठों के समय मे महद् कालान्तर था। वायु० के पाठ के समयतक व्यर्थ की गणना का अभाव था। ऋग्वेद (१०।९५।१६) मे पुरूरवाउर्वशीसंवाद मिलता है, तदनुसार उर्वशी एक स्थान पर मर्त्य(मानव)लोक मे चार चार वर्ष रही।[4] अत: पुराणो के पाठ मे त्रुटि अवश्य है। सम्भवतः हरिवंश (१।२६।१८) मे शुद्धपाठ सुरक्षित है, जिसके अनुसार वह पुरूरवा के साथ ५९ वर्ष रही।[5]

शतपथब्राह्मण (११।५।१) के आख्यान मे उर्वशी पुरूरवा के साथ दीर्घकालपर्यन्त रही।[6]

पुराण के अनुसार पुरूरवा को गन्धर्वों ने अग्निस्थाली एव वर दिया, जिससे उसने त्रेताग्नि प्रवर्तित की।[7] सम्भवतः गन्धर्वों के प्रभाव से ही भारत मे इसी समयमे त्रेताग्निमय यज्ञों का प्रचार एव प्रसार हुआ।[8]

ऋषिपुरूरवासंघर्ष

वायुपुराण के अनुसार धन (सुवर्ण) के लोभ मे पुरूरवा का ऋषियो से संघर्ष हुआ। यह संघर्ष नैमिषारण्य मे हुआ, जहा पर यज्ञवाट हिरण्मय

---

१. मत्स्य० (२४।३१)

२. हरि० (१।२६।१८)

३. रममाण: षष्टिवर्षसहस्राणि...अनयत. (विष्णु० ४।६)

४. यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववस रात्रीः शरदश्चतस्र:।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तावदेवेदं तातृपाणा चरामि।
(ऋ० १०।९५।१६)

५. हरि० (१।२६।३६) मे सूक्तों का उल्लेख है—एवमादीनि सूक्तानि परस्परमभाषत।

६. ज्योग्वा ह्यमुर्वशी मनुष्येष्वावात्सीत्...(श० ब्रा० ११।५।१।१)

७. एकोऽग्नि: पूर्वमेवासीदैलस्त्रामकारयत् (हरि० १।२६।४८)

८. गन्धर्वा वै ते प्रात: वरं दातार ..न वै सा मनुष्येष्वग्नेर्यज्ञिया तनूरस्ति... तस्यै स्थाल्यामोप्याग्नि प्रददु:...। (श० ब्रा० ११।५।१।१४)

था।[1] पुरूरवा ने ऋषियों से धन लेना चाहा, सनत्कुमार कार्तिकेय ने राजा को समझाया, परन्तु वह माना नही।[1] अतः महर्षियो ने कुश आदि से उसका वध कर दिया।[2]

इसी समय नैमिषवासी ऋषियों के द्वादशवार्षिकसत्र में वायुऋषि ने उनको वायुपुराण सुनाया।[3] अतः सप्तर्षिसत्र, पुरूरवामृत्यु और वायु द्वारा रचित मूलपुराण का समय तृतीय युग के अन्त या चतुर्थयुग के प्रारम्भ मे १२६२० वि०पू० से १२५६० वि०पू० होना चाहिये। वायुऋषि स्वायम्भुव कश्यप का अमितप्रज्ञ शिष्य, द्वितीय व्यास का।[5] अत. पुरूरवा और वायु ऋषि समकालीन थे, जिनका समय तृतीय परिवर्तयुग था।

पुरूरवासन्तति

पुरूरवा के पुत्रों के नाम प्रमुख पुराणो मे इस प्रकार है—

वायु०—आयु, धीमान्, अमावसु, विश्वायु, शतायु, गतायु।
९१।५१,५२)

ब्रह्माण्ड० —आयु, धीमान्, अमावसु, विश्वावसु, श्रुतायु, धृतायु।

मत्स्य० आयु, दीर्घायु, अश्वायु, धनायु धृतिमान्, वसु, शुचिविद्य, शतायु।[6]

हरि०—आयु, धीमान्, अमावसु, विश्वायु, श्रुतायु दृढायु, वनायु, शतायु।

भागवत०—आयु, श्रतायु, सत्यायु, रथ, विजय और रथ।

महाभारत०—आयु धीमान्, अमावसु, दृढायु, वनायु, शतायु।

अत सभी पाठो की तुलना से पुरूरवा के छ पुत्र[7] ही सत्य सिद्ध होते है, जिनके नाम थे—आयु, अमावसु, धीमान्, विश्वायु, दृढायु और श्रुतायु

१ वायु० (२।१३-२४)
२ महा० (१।७५।२२)
३. वायु० (२।२३)
४. समाप्तयज्ञास्ते सर्वे वायुमेव महाधियम्...। पप्रच्छु। (वायु० २।३७)
५. शिष्यः स्वायम्भुवो देव। (वायु० २।३८)
६. अजीजनत् सुनान्ष्टौ। (मत्स्य० २४।३३)
७. तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रोपमतेजसः। (वायु० ८१।५१)
षट् सुता जज्ञिरे चैलाद् (महा० १।७५।२४)

(या शतायु) ।

मत्स्य के वसु, शुचिविद्य, धनायु और भागवत के रथ, विजय और रथ काल्पनिक प्रतीत होते हैं ।

इन पुरूरवापुत्रो के षट्पुत्रो मे आयु और अमावसु दो ही प्रधान थे, जिनसे अनेक राजवंश प्रचलित हुए ।

आयु

इसके अनुज अमावसु के वंश का पृथक् अध्याय में वर्णन करेंगे, जिसमे कान्यकुब्ज शासक कुश, कुशिक, विश्वामित्रादि हुए ।

आयु की पत्नी, स्वर्भानु (=राहु) की पुत्री प्रभा थी । इस समय और उसके सहस्राब्दीपश्चात्पर्यन्त असुरो, ब्राह्मणो, गन्धर्वों और क्षत्रियो के वैवाहिक सम्बन्ध निर्बाध होते थे, वस्तुतः उस समय जन्म से जातिभेद और वर्णभेद आदि थे ही नही । सभी मानव आदिकाल मे तुल्य थे ।[1]

आयु का समय १२५६० वि०पू० से १२४७० वि०पू० के मध्य था ।

आयसन्तति

विभिन्न पुराणो मे आयु के पुत्र इस प्रकार वर्णित है—

वायु०—नहुष, वृद्धशर्मा, धर्मवृद्ध, आत्मज, सुनहोत्र ।

ब्रह्माण्ड—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रभ रजि, अनेना ।

हरिवंश०—नहुष, वृद्धशर्मा, रम्भ, रजि, अनेना ।

मत्स्य०—नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ, विपाप्मा ।

महाभारत— नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, गय, अनेना ।

भागवत—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, रम्भ, अनेना ।

विष्णु०—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रजि, अनेना ।

प्राय सभी पुराणो मे आयुपुत्रो के नाम ठीक लिखे है, केवल वायु० मे पाठभ्रंश हुआ है ।

नहुष

ऋग्वेद के प्रमाण से सिद्ध ही करेंगे कि नहुष और नाहुष ययाति दो-दो थे, इसमे प्रसिद्धतम और प्राचीनतर नहुष और ययाति ऐलवंश के ही थे ।

---

१. सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् । (महा०)

ऋग्वेद के एक मन्त्र मे इला, आयु और नहुष का एक साथ उल्लेख मिलता है।[1] अन्य नहुष मानव और ययाति नाहुष का परिचय आगे लिखेंगे, जिनका ऋग्वेद एवं ऋक्सर्वानुक्रमणी मे उल्लेख मिलता है, इसके कारण प्राचीनग्रन्थ महाभारत (गालवोपाख्यान) एवं आधुनिक इतिहासकार उलझन मे है।

आयुपुत्र नहुष (ऐलवशीय) के समकालीन ऋषि थे—

(१) आप्नवान् च्यवनभार्गव के पुत्र, जिनको नहुषकन्या रुचि का विवाह हुआ।[2]

(२) अगस्त्य मैत्रावरुणि: जिन्होने नहुष को शाप दिया था।[3]

(३) स्थूलरश्मि भार्गव और कपिल ऋषि।[4]

(४) महाभारत[5] में भृगु और तत्पुत्र च्यवन को भी नहुष का समकालिक बनाया है, निश्चय ही ऋषि दीर्घजीवी होते थे। त्वष्टाअसुर भी कपिल और नहुष के समकालिक थे। ऋग्वेद (१०।७७।५) मे एक ऋचा स्यूमरश्मि भार्गव द्वारा दृष्ट है।[6]

(५) नहुष का विवाह पितृकन्या विरजा से हुआ था।[7]

देवेन्द्र नहुष

नहुषपर्यन्त शक्र इन्द्र (देवेन्द्र) नही बना था। ऋग्वेद (१।३१।१) मे नहुष को विश्पति बताया गया है, परन्तु महाभारत मे नहुष को अनेकश: देवेन्द्र सुरेश्वर आदि पदो से अभिहित किया है—

---

१ त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम्।
इलामकृण्वन् मनुषस्य शासनीम्.. (ऋ० १।३१।११)

२ रुचि पत्नी महाभागा आप्नवानस्य नाहुषी। (वायु० ६५।६१)

३ महा० (३।१८०।११-१५)
इमामगस्त्येन दशामानीत पृथ्वीपते।

४. महा० (१२।२६८।५-६) नहुषः पूर्वमालेभे, त्वष्टुर्गामिति न. श्रुतम्।
तां गामृषि. स्यूमरश्मिः प्रविश्य यतिमब्रवीत्॥

५. महा० (१३।६६) तथा महा० (१३।५०)

६. ऋक्सर्वा० (५६)

७ तेषा वै मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता। ययातेर्जननी ब्रह्मन् महिषी नहुषस्य च। (हरि० १।१४।७७)

नहुषो हि महाराज राजर्षिः सुमहातपाः ।[1]
देवानभ्यर्चयच्चापि विधिवत् स सुरेश्वर ।[2]
एव वयमत्कार देवेन्द्रस्य दुर्मतेः ।
नहुषस्य किमर्थं वै मर्षयाम महामुने ।[3]
अद्य हि त्वा सुर्बुद्धी रथेयोक्ष्यति देवराट् ।[4]
अद्य चामी कुदेवेन्द्रस्त्वा पदा धर्षयिष्यति ।[5]

स्पस्ट है शक्र मे पूर्व देवों और असुरो का सम्राट् नहुष था। नहुष के भ्राता (अनुज) रजि को इन्द्र स्वार्थवश पिता मानता था।[6] स्पष्ट है शक्र अभी (नहुषकाल) तक असमर्थ एवं अनिन्द्र था। नहुष के पतन मे शक्र का भी षड्यंत्र था, उसने लोकमंत्रकऋषि के पुत्र लौक्य वृहस्पति को चार्वाकजिन (नास्तिक) बनाकर रजिपुत्रों को स्वधर्मसे विरत किया। स्पष्ट है लोकायत (नास्तिक चार्वाक) दर्शन का प्रवर्तक यही देवगुरु लौक्य बृहस्पति था।[7]

चार्वाक या जैनश्रमणधर्म का प्रवर्तन स्वायम्भुवमन्वन्तर मे उनके वंशज आदितीर्थंकर ऋषभदेव कर चुके थे। महर्षिकपिल भी उस समय श्रमणधर्म का प्रचार कर रहे थे जैसाकि स्यूमरश्मिकपिलसंवाद से स्पष्ट है, जो नहुषकाल मे ही हुआ था।[8] लौक्यबृहस्पति असद्वाद मे विश्वास करते थे।[9]

---

१. महा० अनु० (१३।९९।४)
२. वही (१३।९९।६)
३. वही (१३।९९।१५)
४. वही (१३।९९।२३
५ वही (१३।९९।२५)
६ पुत्रत्वगमत् तुष्टस्तस्येन्द्रः कर्मणा विभु (मत्स्य० २४।४२)
७. गत्वाऽथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पतिः। जिनधर्मसमास्थायवेदबाह्यं स वेदवित्। (मत्स्य० २४।४७)
८. ज्ञानवान् नियताहारो ददर्श कपिलस्तथा।.. नाहं वेदान् विनिन्दामि न विवक्ष्यामि कर्हिचित् (महा० १२।२६८।७,१२)
९ लौक्यो वा वृहस्पति. (ऋक्सर्वा० १०।७२) ये लौक्यबृहस्पति असद्वाद मे विश्वास करते थे—देवाना पूर्वे युगे सतः सदजायत(ऋ० १०।७२।२), तथा द्र० (हरि० १।२८)—ते तद् बृहस्पतिकृतं शास्त्रं श्रुत्वाल्पचेतसः।

बृहस्पतिसंज्ञक अनेकऋषि हुए थे, इनका विशेषविवरण ऋषिवंशप्रकरण मे प्रस्तुत किया जायेगा ।

नहुष का समय और राज्यकाल

पूर्वपीठिका मे सप्रमाण निर्णय कियाजाचुका है कि नहुष से युधिष्ठिरपर्यन्त दशसहस्रवर्ष,[1] तीन महायुग (कृत, त्रेता, द्वापर १०८००-८००-१००००) व्यतीत हुए थे। सोम और वैवस्वतमनु से नहुषपर्यन्त ८०० वर्ष या अधिकाधिक तीनयुग—(३६०×३ = १०८० वर्ष) या एक सहस्र (१०००) व्यतीत हुए। अतः नहुष का पतन तृतीय परिवर्तयुग के आदि मे १३०८० वि० पू० हुआ। १३०८० वि० पू० से १०८०१ वि० पू० महाभारतयुद्ध पर्यन्त ठीक दशसहस्र (१००००) वर्ष होते है।

बाइबिल में नूह (वैवस्वतमनु) के कुछ पीढी पश्चात् होने वाले राजा रऊ का राज्यकाल २३७ वर्ष और नहुष का राज्यकाल १६० वर्ष लिखा है। यहां पर 'रऊ' आयु' का नाम और नहुर नहुष का ही अपभ्रंश नाम है। इसमे कोई सन्देह नही, अतः नहुष का राज्यकाल १६० वर्ष निश्चित होता है।

रजिपुत्रों की संख्या

पुराणो के अनुसार नहुषानुज रजि कोलाहलसंज्ञक देवासुरसंग्राम का विजेता' और नहुष के पश्चात् और शक्र के मध्यकाल का देवेन्द्र था।[3] रजि के देहान्त के पश्चात् रजिपुत्रो ने बहुनकालपर्यन्त त्रिविष्टप स्वर्गलोक का राज्य किया।[4] पुराणो मे यह लिखा है कि रजिपुत्रो ने इन्द्र से शासन छीन लिया वह भ्रामक है, वह स्वर्गराज्य उन्हे पिता रजि से ही मिला था, बल्कि इसके विपरीत इन्द्र ने षड्यन्त्रपूर्वक राजपुत्रो से राज्य छीना। इस

१ दश वर्षसहस्राणि सर्परूपधरोमहान् । विचरिस्यति पुर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि (महा० उद्योग १७।१६)

२. वायु०

३. रजे पुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद् वचः। इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषा नात्र संशयः (हरि० १।२८।१६,२०)

४. तस्मिंस्तु देवसदृशे दिव प्राप्ने महीपतौ। दायाद्यमिन्द्रादाजह्नुराचारान् तनयारजेः ।। (हरि० १।२८।२२)

समय तक शक्र का स्वर्गराज्य पर अधिकार कभी हुआही नहीं था, वह अभी तक सत्ता हथियाने की ताक मे ही रह रहा था।

रजि के पुत्रों की संख्या ५०० थी, इन्होंने दीर्घकालतक स्वर्ग का राज्य किया।[1] पाच सौपुत्रहोने मे भी पर्याप्तसमय का अन्तराल होना चाहिये।

यदि वर्तमान पुराणपाठों को सही माना जाय तो शक्र षष्ठयुगपर्यन्त छल कपट ही करता रहा, और दैत्येन्द्र बलि से विष्णु के छल द्वारा ही राज्य छीनकर, सप्तमयुग के आदि मे ११८५० वि०पू० तक ही देवेन्द्र बन सका। इन्द्र निश्चय ही दीर्घजीवी था। देवेन्द्र बनते समय इन्द्र की आयु निश्चय ही एकसहस्रवर्ष से अधिक थी।

नहुषसन्तति

इतिहासपुराणो मे नहुष के पुत्रो के नाम इस प्रकार हैं—

वायु०—यति, ययाति, सयाति, आयाति, पाचिक, भव।[2]

ब्रह्माण्ड० हरि—यति, ययाति, सयाति, आयाति, पंचिक, भव।[3]

ब्रह्माण्ड०—यति, सयाति, अयाति, आयाति, वियति, कृति।[4]

विष्णु०—यति, ययाति, सयाति, आयाति, विश्वाति, कृति।[5]

मत्स्य०—यति, ययाति सयाति, उद्भव, पांचि, मयाति, मेघजाति।[6]

---

१. पचपुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थान शतक्रतो समाक्रमन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपं। ततोबहुतिथे काले समतीते महाबलः॥

(हरि० ११२८।२३,२४)

२. वायु० (९३।१३) मे नहुष के छः पुत्र कहकर नाम केवल चार का लिया गया है। दो नाम अशुद्ध हैं, जो अन्य पुराणो द्वारा शुद्ध किये गये हैं।

३. हरि० (१।३०।२)

४. विष्णु० (४।१०।१)

५. मत्स्य० (२४।५०)

६. भाग० (९।१८।१)

७. महा० (१।७५।३०)

भागवत—यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति, कृति ।[1]

महाभारत—यति, ययाति, संयाति, आयाति, अयति ध्रुव ।[2]

उपर्युक्त पाठो से शुद्धनाम ये निश्चित होते हैं—यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियाति और कृति ।

यति—यति ज्येष्ठ होने पर भी किसी कारण राज्याधिकारी नही बना, यह ऐक्ष्वाक ककुत्स्थ का जामाता हुआ, जिसकी पुत्री गौसंज्ञककन्या से उसका विवाह हुआ । परन्तु यति शीघ्र सन्यासी हो गया ।[3] सत्य ही यह है कि उस सुदूरयुग-देवयुग मे किसी राजपुत्र का क्षत्रिय या शासक जन्म से होना आवश्यक नही था, यह जातिप्रथा थी ही नही । ययाति के दानवी शर्मिष्ठा विवाह से यह तथ्य और पुष्ट होगा ।

ययाति—प० भगवद्दत्त का मत यह ठीक है कि—महाभारत का युगारम्भ प्रचेना से होता है क्योंकि वहा ययाति को प्रजापति से दसवा बताया गया है ।[4] अत ययाति का राज्यारम्भ चतुर्थयुग मे १३०८० वि०पू० के पश्चात् हुआ । ययाति का राज्यकाल कितना दीर्घ था, इसका विवेचन आगे करेंगे ।

ययाति का उल्लेख ऋग्वेद के दो मन्त्रो मे है,[5] तथापि वह किसी मन्त्र का द्रष्टा नही है, जो मन्त्रद्रष्टा ययाति मानव है, वह मवरण नामक राजर्षि का प्रपौत्र था । इसकी विस्तृत विवेचना भी आगे होगी ।

हा, ययातिरचित यायातश्लोको का उल्लेख अनेकत्र महाभारत और पुराणो में है ।[6] इन श्लोको की भाषा से सिद्ध होता है कि आज से १५००० वर्ष पूर्व भी वाल्मीकि, व्यास, अश्वघोष और कालिदासतुल्य लौकिक संस्कृत (मानुषीवाक्) प्रयुक्त होती थी ।

---

१. ककुत्स्थकन्या गौर्नाम लेभे पत्नी यतिस्तथा (वायु० ९३।१३)

२. यतिस्तु योगमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः (महा० १।७५।३१)

३. ययातिः पूर्वजोऽस्माक दशमो य. प्रजापते: (महा० १।७६।१)

४. ययातेर्ये नहुष्यस्य (ऋ० १०।६३।१), तथा ययातिवत् सदने । (ऋ० १।३१।१७)

५ महा० (१।८५।११-१६), विष्णु० (४।१०।२३-२९), मत्स्य० (३४।-१०), वायु० (९३।९४-१०१), हरि० (१।३०।३८-४४), महा० (१२।१६।१३-१६), इत्यादि ।

ययाति का राज्यविस्तार

पुरूरवा और नहुष के समान ययाति को सप्तद्वीपेश्वर कहा गया है, जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी की दिग्विजय की थी।[1] यह कथन निश्चय ही अतिरंजन है, तथापि उसका राज्य अतिविस्तृत प्रदेशोपर्यन्त प्रसृत था, पुरूरवा के समय से राजधानी प्रतिष्ठान थी, जिसको प्रयाग भी कहा जाता था।[2] वक्ष्यमाण दिव्यरथ[3] द्वारा दिग्विजय एवं पुत्रों में राज्यविभाजन से उसके राज्य विस्तार का आभास होता है। उसके पुत्र पुरु को गंगायमुना के मध्य का प्रदेश मिला। तुर्वसु की सतान यवन कहे गये है, द्रुह्यु के वशज गान्धार और काम्बोज थे, यदु के वशज दक्षिण-पश्चिम भारत के शासक बने, इससे ज्ञात होता है कि ययातिसाम्राज्य पश्चिम अफगानिस्तान, ईरान और ईराक तक के असुरप्रदेशो तक था। उत्तरकाल मे उसके वशज यवनादि ने योरोप तक राज्यविस्तार किया।

दिव्यरथ

वायु० (९३।१८) मे ययाति के दिव्यरथ का दाता रुद्र को बताया है, अन्यत्र रथ का दाता इन्द्र को बताया गया है।[4] सभी पाठो की तुलना से शक्र ही इस रथ का दाता था, भले ही इन्द्र को यह रथ सोम या रुद्रादि से मिला हो। महाभारत (कर्ण० ३४ प०) मे रुद्र के परमभास्वर दिव्य अद्भुत रथ का विशिष्ट वर्णन मिलता है, सम्भवत. यही रुद्र रथ इन्द्र माध्यम से ययाति को मिला। वह रथ मनोजव असग, हिरण्मय, दिव्य और अक्षय-महेषुधि युक्त था।[5] यही रथ ययाति से पौरव एवं कौरवराजाओ पर रहता हुआ, जनमेजय परीक्षित द्वितीय से होता हुआ चेद्यवसु, बृहद्रथ, जरासन्ध से वासुदेव कृष्ण को प्राप्त हुआ।[6] दशसहस्रवर्षपर्यन्त तक रहने वाला यह रथ निश्चय ही दिव्य विज्ञान एव अद्भुत धातुओ से बना होगा। जिस प्रकार

१ सर्वामिमा पृथ्वी निर्जिगाय (मत्स्य० ४२।२३)

२ राज्य कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः। उत्तरेयामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशा.। (वायु० ९१।५०), कानपुर के निकट 'जाजमऊ' स्थान को पुरातत्वज्ञ ययातिनगरी का अपभ्रंश मानते है।

३ सतेन रथमुख्येन जिगायसतत महीम्,। वायु० (९३।१८-२०);

४. रथं तस्मै ददौ शक्र प्रीत परमभास्वरम्,(ब्रह्माण्ड० २।३।६८।१७)

५ ब्रह्माण्ड० (२।३।१७-१९)

६. हरि० (१।३०।६-१६)

मैहरौली का लौह स्तम्भ अष्टधातु के सम्मिश्रण से बना है, ययाति का रथ, उनसेभी श्रेष्ठधातुओं से बना होगा।

ययातिपत्नियां

शुक्र-उशना की पुत्री देवयानी और दानवेन्द्र वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ययाति की पत्नियां थी। इस विवाहसम्बन्ध से जातिवाद का पूर्ण खण्डन होता है, जातिव्यवस्था बहुत उत्तरकालीन थी।

ययातिसन्तति

देवयानी के पुत्र थे—यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा की सन्तान थे—द्रुह्यु, अनु, और पुरु।[2]

देवासुरसग्राम में देवसहाय्य

ययाति ने देवासुरसग्राम मे देवेन्द्र की सहायता की। उसने छ: दिन मे दानवविजय प्राप्त की। यह देवासुरसग्राम कौनसा था, ज्ञात नही हो सका। वर्तमान पुराणपाठो मे द्वादशदेवासुरसग्रामो का क्रम अस्तव्यस्त है।

ययातिकृत जरासक्रमण

अतृप्तकाम ययाति ने अत्यधिक वृद्ध होनेपरभी राज्य नही छोड़ा, यद्यपि उसने अपने पाचो पुत्रो को अपने राज्य के पाचो भागो मे विभक्त कर उनका शासक नियुक्त बहुत पूर्व कर दिया था[4]—ऐसा हरिवश के प्राचीनपाठ से ज्ञात होता है, प्रतीत होता है *ययाति ने पुत्रो को पूरा अधिकार नही दिया था।* राज्यविभाजन के पश्चात्[5] ही ययाति ने पुनर्यौवनप्राप्ति की इच्छा की, अथवा रसायनादि के सेवन से वह युवा हो गया, तब यदु आदि पुत्र उसकी आज्ञा का उल्लघन करने लगे। तब ययाति ने उनसे राज्य

१. वही (१।३०।४)

२. यदु च तुर्वसु चैव देवयानी व्यजायत। द्रुह्यु चानु च पुरु च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी (हरि० १।३०।५)

३. स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेनाजयन्महीम्। ययातिर्युधि दुर्दर्षस्तथा देवान् सदानवान्। (हरि० १।३०।७)

४ हरि० (१।३०।१६।२९)

५. एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत्। जरा मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै। (हरि० १।३०।२२, २३)

छीनना चाहा । जिससे यदु आदि चार पुत्रों ने पितृद्रोह या विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया ।

राज्यत्याग

ययाति ने तुर्वसु को दक्षिणपूर्वप्रदेशका, द्रुह्यु को पश्चिमीभाग का, उत्तरदिशा मे अनु को और पूर्वोत्तरदिशा मे यदु को नियुक्त किया था ।[1] पुरु, जो पिता की अधिक सेवा करता था, ययाति ने अपने राज्य का सर्वश्रेष्ठ भाग दिया । पुनःयौवन प्राप्तकरके ययाति ने अपनी पूर्वपत्नियों को त्याग कर विश्वाची अप्सरा के साथ कामाचार किया ।[2]

अतः ययाति ने कामोपभोगहेतु ही पुनर्यौवन प्राप्त किया था ।[3]

ययाति का दीर्घायु

इतिहासपुराणो एवं बृहद्देवतातुल्य वैदिकग्रन्थों मे उल्लिखित है कि ययाति ने अनेक सहस्रोवर्षपर्यन्त भोग भोगे, राज्यकिया और यज्ञ किये ।[4] ययाति ने एकसहस्रवर्ष तप किया ।[5] वह स्वर्ग मे इन्द्रपुरी मे एक सहस्रवर्ष तक रहा ।[6] यदि महाभारत के साक्ष्य को प्रमाण मानाजाय तो वह अनेक सहस्रवर्षपर्यन्त जीवित रहा । परन्तु वैदिकग्रन्थबृहद्देवता का प्रमाण अवश्य विचारणीय है कि ययाति नाहुष ने सहस्रवर्षात्मक सत्र का आयोजन किया, जो सरस्वतीतट पर हुआ ।[7] ऋग्वेद के अनुसार सरस्वतीतट पर यज्ञकर्ता पुरोहित वसिष्ठमैत्रावरुणि ने नाहुष के यज्ञ कराये ।

नाहुष ययाति के कर्मों की वर्षसहस्रात्मकसंख्या तो विश्वसनीय प्रतीत

---

१ हरि० (१।३०।१६-१८)

२ विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथेवने (हरि० १।३०।३५) तथा बुद्धचरित (४।७८)

३ स मार्गमाण कामानामन्त भरतसत्तम । (हरि० १।१०।३५)

४ गते वर्षसहस्रे तु शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी (महा० १।८२।६), पूर्णवर्षसहस्रं तु पुनर्दास्यामि यौवनम् (महा० १।८४।१०) पूर्ण वर्षसहस्र मे विषयासक्तचेतसः । (महा० १।८५।१५)

५ महा० (१।८६।१५)

६. महा० (१।८६।१६)

७. बृहद्देवता (६।२०-२२)

नहीं होती, परन्तु दीर्घकालपर्यन्त अनेकशताब्दियोतक अवश्य जीवित रहा, इसमे कोई सशय नही। वह कुछ वर्षोंपर्यन्त शक्रसभा मे भी रहा।' ययाति के समय शक्र को देवराज्य (स्वर्ग) प्राप्त हो चुका था। यह समय पचमयुग से षष्ठयुग के अन्त और सप्तमयुग के प्रारम्भ था, जब बलि रसातल में जा चुका था, यह समय १२२०० वि०पू० से ११२०० वि०पू० तक था। अत ययाति लगभग एक सहस्राब्दीपर्यन्त अवश्य जीवित रहा।

ययाति नाहुष का स्वर्गपतन और राजचतुष्टयी से सवाद—में भ्रांति

महाभारत के गालवोपाख्यान (उद्योगपर्व ११२-१२० अध्याय) मे एक भ्रातिवश आधुनिक विद्वानो मे भी भ्रांति उत्पन्न हो गयी। यह भ्रांति महाभारत मे ही अनेक स्थानो पर दुहराई गई है। यथा स्वर्गपतन के समय ययाति का सम्वाद माधवी के चार पुत्रो—अष्टक, शिबि, वसुमान् और प्रतर्दन—से होता है। महाभारत मे ययाति से अष्टकादि का सम्वाद अनेक स्थानो पर उल्लिखित है। स्कन्दपुराण मे भी ययातिपुत्री माधवी का उल्लेख है। मत्स्यपुराण मे अष्टकादि को यद्यपि का दौहित्र बताया, तथापि माधवी का नामोल्लेख नही। ययाति, माधवी और अष्टकादि की गुत्थी को पार्जीटर नही सुलझा पाया। अत. वह इनकी समकालीनता को मिथ्या (Spurious) और मूढताजन्य (absurdity) कहता है।' प० भगवद्दत्त प्रतर्दनादि के सम्बन्ध मे घोर भ्रम मे रहे उन्होने माधवी की चर्चा ही नही की। उन्होने मन्त्रदृष्टा ययाति नाहुष के सम्बन्ध मे लिखा—ऋग्वेद ९।१०१।७-९ का ऋषि नहुष मानव कहा गया है। उससे पहिले ४-६ मन्त्रो का ऋषि ययाति नाहुष कहा गया है। ऐल या सोमवंश के लोग मानव नही कहे जाते। ···यदि प्रस्तुत मन्त्रद्रष्टा ऋषि इस सूर्य कुल का नही, तो अवश्य आयुपुत्र

---

१ ततः पुरी पुरूहूतस्य रम्या सहस्रद्वाराशतयोजनायताम् अध्यावमवर्ष सहस्रमात्रम् (महा० १।८९।१६)।

१ यथा आदिपर्व (अ० ८८ से ९३ पर्यन्त) २. स्क० (नागरखण्ड ८२-८३) तथा मत्स्य० अ० ३५-४२

2. The story of Galava's doings is an excellent instant of the third kind of spurious synchronisms .this story makes all these kings and Visvamitra contemporary, and these facts shows its absurdity (K.I,H.T. D.142)

३. भा० बृ० इ०, भा० २, पृ० ६२

नहुष मे। यह भी संभव है कि आयव के स्थान मे मानवपाठ भूल से हो गया हो।"[1] पण्डित जी जीवनपर्यन्त इस प्रतिज्ञा पर अटल रहे कि वैदिक-ग्रन्थो मे तो त्रुटि नही हो सकती, पाश्चात्यमतों का घोर खण्डन, उन्होने इसी प्रतिज्ञाहेतु किया। पुन. वह ऋग्वेद, ऋक्सर्वानुक्रमणी आदिग्रन्थो को मिथ्या कैसे कह सकते है।

सत्य यह है कि ऋग्वेद मे ऐलवशीय ययाति का कोई भी मन्त्र उपलब्ध नही। ऋक्सर्वानुक्रमणी मे कात्यायन ने ठीक ही लिखा है कि उपर्युक्त मन्त्रद्रष्टा अन्धीगु श्यावाश्वि, ययाति नाहुष, नहुष मानव, मनु सवरण, ऐल वशीय ययाति आदि से पृथक् एव परस्पर समकालिक व्यक्ति थे। इन ययाति और नहुष का न तो ऐलवश मे सम्बन्ध था और न मनु वैवस्वत से।

निश्चय ही ऋग्वेद (९।१०१७-९) के मन्त्रद्रष्टा ययाति नाहुष और नहुष मानव प्रसिद्ध ऐलवशीय ययाति और नहुष से सर्वथा पृथक् थे और उनकी समकालिकता (sychronism) भी पृथक् थी। सत्य यह है कि नहुष मानव और उसका पिता मनु और मनुपितासवरण, विश्वामित्र, अष्टक, श्यावाश्व अध्रीगु, प्रजापति वैश्वामित्र के समकालिक थे, काशिराज दिवोदास, प्रतर्दन दैवादासि, शिबि औशीनर, रोहिदश्व वसुमना ऐक्ष्वाक भी उपर्युक्त व्यक्तियो के समकालिक थे। इन समस्त व्यक्तियो (सवरण, मनु, नहुष मानव) आदि का समय परशुराम (उन्नीसवे युग) से एक युग (३६० वर्ष) पूर्व अठारहवे युग (१४०००-६१२० = ७८८० वि०पू० से ७५२० वि० पू०) के मध्य था, मान्धाता, पद्रहवे युग (१८९६० वि० पू० ८ ६० वि० पू०) से लगभग सप्तशताब्दीसे एक सहस्राब्दी पश्चात् विश्वामित्र, ऋचीक श्यावाश्वादि का समय था—इसका प्रमाण वायुपुराण (२३।१८२-१८८) के व्यासवर्णनप्रसग है मिलता है कि विश्वामित्र की भगिनी सत्यवती के पति ऋचीक ऋषि अष्टादशयुग मे हुए—

ततोऽवष्टादशमश्चैव परिवर्तो यदा भवेत्।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधना.।
वाचश्रवा ऋचीकश्च श्यावाश्वश्च दृढव्रतः॥

---

१. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ६२

२. अन्धीगुः श्यावाश्विर्ययातिर्नाहुषो नहुषो मानवो मनुः सावरण इति (ऋ० सर्वा० पृ० ३३)

ऋचीक के समकालीन श्यावाश्व थे, इनका पुत्र मन्त्रद्रष्टा अन्धीगु (श्यावाश्वि) नहुष मानव और मनु सवरण के समकालिक था।

ऋग्वेद, सर्वानुक्रमणी, महाभारत और पुराणों के प्रामाण्य की अवहेलना करके पं भगवद्दत्त, कीथ और पार्जीटर के भ्रमपाश मे आबद्ध हो गए। [1]सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय मे प्रतर्दन एक ही, काशिराज दिवोदास का पुत्र है, उसको ऋक्सर्वानुक्रमणी मे एक स्थान पर प्रतर्दन दैवादासि और द्वितीय स्थान पर काशिराज प्रतर्दन कहा है, इस अद्वितीय प्रतापी प्रतर्दन के अतिरिक्त और कोई प्रतर्दन कभी भी किसी काल मे नही हुआ। परन्तु प० भगवद्दत्त ने प्रतर्दन के समय और वशावली को समझे बिना अनेक भ्रामक बाते लिखी—उत्तर पाचाल वश का वर्णन करते हुए उन्होने मुद्गल वाध्यश्व और दिवोदास के साथ लिखा—

'दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन था।'

और उन्होने बिना सोचे समझे वायुपुराण के उस स्थल से श्लोक उद्धृत किया जहा काशिवश के दिवोदास और प्रतर्दन का उल्लेख है—

'दिवोदासाद्दृषद्वत्या वीरो जज्ञे प्रतर्दन.। (वायु० ६२।६४)'

काशिराज का पुत्र प्रतर्दन, जो दिवोदास और दृषद्वती (माधवी) का पुत्र था, उसे उत्तरपाचालाधिपति दिवोदास का पुत्र बना देना एक अतिभयकर भूल है, जिस पर पंडितजी ने थोडा भी नही सोचा कि प्रतर्दन को केवल पुराणो एव महाभारत मे ही हर्यश्व या रौहिदश्वपुत्र वसुमना के समकालिक बताया गया, बल्कि ऋग्वेद और ऋक्सर्वानुक्रमणी (पृ० ४१) मे भी वैसा ही लिखा है। वैदिक साक्ष्यो की अवहेलना एव निर्विचार एक आश्चर्यजनक विडम्बना है।

---

१ कीथ की वैदिक इण्डैक्स के आधार पर पार्जीटर ने लिखा है—

One Pratardana son of Divodasa, was king of Kasi and is one of the reputed authors of Rigveda X. 179, while Pratardana Daivodasi, the reputed author of IX. 96 appears to have been a descendant of Divodasa, king of North Panchala, (A.I H T., p 133)

२. "शिबिरौशीनरः काशिराजः प्रतर्दनो रोहिदश्वो वसुमनाः।" (सर्वा० पृ० ४१) तथा "दैवोदासिः प्रतर्दनः।" (सर्वा० १२)

पं० भगवद्दत्त ने एक और भयंकर भूल की, उन्होने ऐक्ष्वाक वसुमना और प्रतर्दन की समकालिकता की कही भी चर्चा न करके रामायण, उत्तरकाण्ड के अतिभ्रष्टपाठ के आधार (संभवतः सीतानाथ प्रधान के प्रभाव मे) पर लिखा—

"यह प्रतर्दन दाशरथि राम का समकालिक था।"[1] (भा० बृ० इ० भाग २, पृ० १३२) तथा रामायण (७।३८।१६) का यह प्रमाण उद्धृत किया –

त विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम्।
प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत्॥

रामायण के क्षेपककारो के इस घोर अज्ञान के विषय मे हम अन्यत्र लिख चुके है कि उन्होने पुराण और रघुवश जैसे ग्रन्थो को आखो से भी नही देखा था, फिर वैदिकग्रन्थो के दर्शन तो वे कर ही कैसे सकते थे। लेकिन यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि जो प० भगवद्दत्त इतिहासपुराणो की अपेक्षा वैदिकप्रामाण्य पर पूर्ण विश्वास करते थे, सबका उपेक्षा करके पाश्चात्य कल्पना और क्षेपककारो की भ्रष्ट अनैतिहासिक कल्पना पर विश्वास किया।

अतः इतिहासपुराण एव वैदिकग्रन्थो के प्रामाण्य, जिनमे हम वैदिक प्रामाण्य उद्धृत कर चुके है, अब इतिहासपुराणों के उद्धरण उद्धृत किये जाते है कि प्रतर्दन और रौशदश्व (या हर्यश्वपुत्र) वसुमना की समकालिकता एक ध्रुव ऐतिहासिक सत्य है। महाभारत के न्यूनतम तीनस्थलो पर प्रतर्दनादि चार राजाओ को न केवल समकालीन, वरन् एक माता माधवी (दृषद्वती) के पुत्र (परस्परभ्राता) बताया गया है—

(१) अष्टकस्य वैश्वामित्रेरश्वमेघे सर्वे राजानः प्रागच्छन्।
भ्रातरश्चास्य प्रतर्दनो वसुमनाः शिबिरौशीनर इति॥

(महा० ३।१९८)

(२) महाभारत (१।८५-९३, अध्याय पर्यन्त) उत्तरयायातआख्यान द्रष्टव्य।

(३) महाभारत, उद्योगपर्व (५।११२-१२१ अ०) गालवोपाख्यान द्रष्टव्य।

मूल प्रसग नहुषमानव (द्वितीय) के सम्बन्ध मे था, वह और उसका पुत्र ययाति नाहुष[1] दोनो ही विश्वामित्र, दिवोदास, उशीनर और अयोध्यापति रौहिदश्व या हर्यश्व के समकालीन थे। इसी प्रसग मे हमे प्रतर्दन का समय निर्धारण हेतु इतनी विस्तृत मीमासा करनी पडी, परन्तु यह मीमांसा अधूरी ही रहेगी, जब तक माधवी की समस्या हल न हो जाये, जिसके ये चारो पुत्र थे।

कुछ लोग आश्चर्य करते हैं कि माधवी का उपाख्यान केवल महाभारत (उद्योगपर्व) मे ही है, अन्यत्र इसका उल्लेख नही। परन्तु स्कन्दपुराण और मत्स्यपुराण मे भी इसके सकेत है। महाभारत, स्कन्दपुराण और मत्स्यपुराण के अतिरिक्त माधवी का एक अन्य नाम से उल्लेख सभी इतिहास-पुराणो से प्राचीनतम और मूल वायुपुराण मे मिलता है—और उसमे उसे अष्टक, प्रतर्दन, शिवि और वसुमना की माता कहा है, इस प्रमाण की ओर अभी तक किसी विद्वान् का ध्यान आकर्षित नही हुआ है'—

(१) हर्यश्वात्तु दृषद्वत्या जज्ञे वसुमना नृप ।। (वायु० ८८।७३)

(२) दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टक । (वायु० ९१।१०३)

(३) दृषद्वतीसुतश्चापि शिवि. प्रकीर्तित द्विजा ।। (वायु० ९९।२१)

(४) दिवोदासाद् दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दन· ।। (वायु० ९२।६४)

---

१ कुछ लोग आश्चर्य कर सकते है कि इस सवरणवशीय अन्य ययाति के पिता का भी नाम नहुष था। परन्तु इस प्रकार पितापुत्रो के नाम साम्यो के पुराणो मे अनेक उदाहरण हैं, केवल दो ही उदाहरण पर्याप्त होगे। कुरुवश मे ही न्यूनतम तीन परीक्षितो के पुत्रो के पृथक् पृथक् समय मे तीन जनमेजय नाम वाले पुत्र हुए— "अध्यापकराय ने न्यून से न्यून तीन जनमेजयों को एक बना दिया है।" (प० भगवद्दत्त का पर्यवेक्षण, द्र० भा०वृ० ६०, भा० २, पृ० १४३) पितापुत्रो के नाम साम्य के आधार पर इसी प्रकार की भयकर भूले प्राचीन काल से होती रही हैं। द्वितीय उदाहरण है पैजवन सुदास ऐक्ष्वाक और पैजवनसुदास पाचाल। इस भयकर भूल की अन्यत्रसमीक्षा की गई है।

अतः उपर्युक्त चारो राजाओं की एक माता होना कोई कल्पनामात्र नहीं, परन्तु वायुपुराण में माध्वी के स्थान पर दृषद्वती नाम क्योंकि है, इसका रहस्य क्या है, इस रहस्य का भेदन यहा करते हैं।

दृषद्वान् = पर्वत = हिमालय (हिमवत्)—समानार्थक

पर्वत[1] की पुत्री होने से रुद्रपत्नी को पार्वती और हिमवान् की पुत्री होने से उनको हैमवती उमा कहते हैं। हिमवान् को ही हिमालय कहते हैं, यह एक सर्वविदित तथ्य है। हिम वर्ष का आलय (आकर=घर) होने के कारण ये नाम पड़े। पर्व (खण्ड - शिलाखण्ड) युक्त होने से वह पर्वत कहलाता था। शिला या पत्थर को ही दृषद् कहते हैं, अतः दृषद् युक्त (शिलावान्) होने से उसी का एक प्राचीनतर नाम दृषद्वान् था। यह दृषद्वान् नाम हिमालय (हिमवान्) का ही था, इस पर्वत से निकलनेवाली नदी को "दृषद्वती" कहा जाता था— यही गगानदी थी।

यह तो पर्वत और नदियो की बात रही है। प्राचीनकाल मे नदियो के नाम राजकन्याओ के नाम पर रखे गये थे—यथा वैवस्वती यमी के नाम पर यमुना, कौशिकी (ऋचीकपत्नी सत्यवती), नर्मदा (नागकन्या, पुरुकुत्स पत्नी) जह्नु के नाम जाह्नवी, भगीरथ के नाम पर भागीरथी, युवनाश्व-पत्नी कावेरी इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य फलीतार्थ यह है कि हिमालयक्षेत्र के राजा को प्राचीनयुगो मे 'पर्वत' और 'हिमवान्' के साथ 'दृषद्वान्' भी कहते थे और उनकी पुत्रियो को हैमवती 'पार्वती' या 'दृषद्वती'। इसी कारण

---

१. केनोपनिषद्

२. नारद के भानजे या भ्राता का नाम पर्वत था—"पर्वतनारदौ काश्यप्यौ" (सर्वा० पृ० ३३) ये दोनो ही कश्यप या दक्ष के सम्बन्धी थे, यह पर्वत पहिले राजा था, जो बाद मे ऋषि बन गया। पर्वतनारद ऋषियो का वृतान्त अन्यत्र लिखा गया है।

३. दृषद्वत्या मानुष आपगायाः सरस्वत्या रेवदग्ने दिदीहि (ऋ० ३।२३।४) दृषद्वती, गंगा का ही प्राचीनतर नाम था, यह प० उदयवीरशास्त्री ने महाभारत के प्रामाण्य से सिद्ध किया है। (द्र०सा०द० पृ०८६-९०) सरस्वती और दृषद्वती (गंगा) ही देवनदिया थी (मनु० २।१७)

इतिहासपुराण में अनेक दृषद्वतियों का उल्लेख मिलता है। पुरु के चतुर्थ वंशज ययाति की पत्नी का नाम भी 'दृषद्वती' था।[1]

वसुमना ऐक्ष्वाक के एक पूर्वज कुवलाश्व के प्रपौत्र संहताश्व की पत्नी और उसके पुत्रो—कृशाश्व और अक्षयाश्व की माता एक हैमवती दृषद्वती थी—

यस्य पत्नी हैमवती सतां माता दृषद्वती।[2]

इस संदर्भ से भी हमारे मत की पुष्टि होती है कि 'हिमवान्' का नाम ही 'दृषद्वान्' था और उसकी राजपुत्रियो को 'हैमवती' या 'दृषद्वती' कहा जाता था।

अत माधवी भी एक दृषद्वती (हैमवती) थी, जिसके पिता का नाम ययाति या मधु था। इस उत्तरकालीन ययाति के पिता का नाम भी नहुष था, इस नहुष के पिता का नाम मनु और मनु के पिता का नाम सवरण था। स्पष्ट है इस द्वितीय ययाति का सबन्ध न तो सूर्यवश से था, न साक्षात् ऐलवंश से। अत श्री राहूरकर का यह अनुमान सत्य है कि प्राचीनयुगो मे ययाति का पिता नहुष मानव (मनुपुत्र और संवरणपौत्र) ऋग्वेद के सूक्त ९।१०१७-९ का द्रष्टा था।

इसी नामसाम्य के आधार पर महाभारत (आदिपर्व) के 'उत्तरयायात' आख्यान मे यह भूल हुई कि द्वितीय ययाति (मधु) मानव के दौहित्रो—प्रतर्दन आदि को ययाति ऐल का दौहित्र बना दिया। प्रथम ययाति का समय १२२६० वि० पू० (सप्तमयुग मे) था और द्वितीय ययातिमानव का समय अष्टादशयुग में था—७८८० वि० पू०। इसी द्वितीय ययाति के जामाता थे काशिराज दिवोदास, उशीनर, रोहिदश्व (हर्यश्व) और विश्वामित्र और अष्टकादि उसके दौहित्र थे। श्यावाश्व, अन्धीगु श्यावाश्वि, जमदग्नि, ऋचीक, वाचश्रवा याम, मनु सावरण, प्रजापति वैश्वामित्र और वाच्य ऋषि (सभवत वाचश्रवाव्यास)—सभी इसी द्वितीय ययाति नाहुष मानव के समकालिक थे।

---

१ महा० (१।९५।१४)

२. वायु० (८८।६२-६४)

३. दी सीअर्स आफ दी ऋग्वेद (पृ० २२७)

अतः माधवी और द्वितीय ययातिसम्बन्धी प्राचीन और आधुनिक भ्रम को अपास्त करने हेतु इतना लम्बा विवेचन किया गया है। यह ययाति द्वितीय, स्पष्ट है दृषद्वान् (हिमवान्) देश का राजा था, इसका राज्य विस्तार, सम्भवत: काशिपर्यन्त विस्तृतहो, क्योंकि गालवोपाख्यान में इसको काशिराज कहा गया है।[1] गालवोपाख्यान मे ययाति द्वितीय को काशिराज बताना सत्य हो सकता है क्योकि वाराणसी पर उस समय दिवोदास का राज्य हट गया था—एकसहस्रवर्ष के लिए।[2] दृषद्वान् क्षेत्र के निकुम्भ, क्षेमकादि ने वाराणसी पर अधिकार कर लिया था।[3]

अत. माधवी दृषद्वती द्वारा दिवोदास, उशीनर, हर्यश्व और विश्वामित्र से एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिनके नाम थे प्रतर्दन, शिवि, वसुमना और अष्टक; ये ययाति मानव के दौहित्र थे, यह एक अटल ऐतिहासिक तथ्य है। और वसुमना (७५०० वि० पू०) और दाशरथिराम (५५०० वि० पू०) के समयो मे न्यूनतम २००० वर्षों का अन्तर था, वसुमना, प्रतर्दन आदि अष्टादशयुग मे हुए और दाशरथिराम का समय चौबीसवेयुगमे। इससे रा० उत्तरकाण्ड और प. भगवद्दत्त का मत अपास्त होता है।

पुरुवंश

इतिहासपुराणो मे इक्ष्वाकुवंश के समकक्ष पुरुवश समुल्लिखित है, इसमे भी अनेक प्रतापी चक्रवर्ती सम्राट हुए, जो ऐक्ष्वाकशासको से भी अधिक यशस्वी थे। परन्तु इतिहासपुराणो मे सर्वाधिक गडबडी पुरुवश के विषय में

---

१. यहा पार्जीटर की भ्राति द्रष्टव्य है—
It wrongly calls Yayati King of all Kasıs,...Kasi was a separate kingdom, and the story itself assigns Divodasa to it. (A I H.T, footnote, p. 142)

२ एतस्मिन्नेव काले तुपुरी वाराणसी नृप। शून्यां निवासयामास क्षेमको नामराक्षस:।

३. शप्ता हिसामतिमता निकुम्भेन महात्मना। शून्या वर्षसहस्रं वै भविश्री नात्रसंशय। (हरि० १।२९।३०-३१), क्षेमक को मार कर अलर्क ने पुन वाराणसी बसाई- हत्वा क्षेमकराक्षसम्। काश्यां निवेशयायास पुरी वाराणसीं पुनः। (हरि० १।२९।७७)

हुई है। यह विडम्बना है कि महाभारत आदिपर्व के एक ही पाठ में अध्याय ६४ मे, जो वंशावली मिलती है, उससे अग्रिम (६५) अध्याय में उससे सर्वथा पृथक् वंशावली मिलती है। महाभारत के लिपिकारो ने एक ही स्थान पर उल्लिखित दो वंशावलियो को पृथक् पृथक् कैसे बनाया और तथ्य की अनदेखी की, यह एक ब्रिडम्बनात्मक आश्चर्य है। कुछ प्रमुख पुराणो एवं महाभारत मे जो पुरुवशावली मिलती है, वह प्रस्तुत करते हैं—

	वायु०	मत्स्य०	हरि०	विष्णु०	भागवत०	महा० प्रथम	महा० द्वि०
१.	पुरु	जनमेजय	पुरु	पुरु	पुरु	पुरु	पुरु
२.	जनमेजय	प्राचीन	जनमेजय	जनमेजय	जनमेजय	प्रवीर	जनमेजय
३	अविद्ध	मनस्यु	प्राचिन्वान्	प्रचिन्वान्	प्रचिन्वन्	मनस्यु	प्राचिन्वान्
४.	प्रवीर	पीनायुध	प्रवीर	प्रवीर	प्रवीर	शक्त	सयाति
५.	मनस्यु	धुन्धु	मनस्यु	मनस्यु	मनस्यु	रौद्राश्व	अहयाति
३	जयद	बहुविध	अभयद	अभयद	चारुपद	ऋचेयु	सार्वभौम
७	धुन्धु	सम्याति	सुधन्वा	सुन्ध्यु	सुधु	अनाधृष्टि	जयत्सेन
८	बहुगवी	रहवर्च	बहुगव	बहुगव	बहुगव	ऋचेयु	अवाचीन
९	सयाति	मद्राश्व	शम्याति	नियति	सयानि	मतिनार	अरिह
१०.	रौद्राश्व	ऋचेयु	रहस्याति	अहयाति	अहयाति	तसु	महाभौम
११	ऋचेयु	अग्तिनार	रौद्राश्व	रौद्राश्व	रौद्राश्व	ईलिन	अयुतनायी
१२.	अन्तिनार	इलिन	ऋचेयु	ऋचेयु	ऋचेयु	दुष्यन्त	अक्रोधन
१३.	तसु	दुष्यन्त	मतिनार	अन्तिनार	रन्तिमार	भरत	देवातिथि
१४	इलिन	भरत	तसु	अप्रतिरथ	रैम्य	भुमन्यु	अरिह
१५	दुष्यन्त	वितल	सुरोध	ऐलीन	दुष्यन्त	सुहोत्र	ऋक्ष
१६.	भरत	भुवमन्यु	दुष्यन्त	दुष्यन्त	भरत	अजमीढ	मतिनार
१७	विनथ	बृहक्षत्र	भरत	भरत	वितथ	ऋक्ष	तसु
१८	भुवमन्यु	हस्ति	भारद्वाज	वितथ	मन्यु	सवरण	ईलिन
१९.	बृहत्क्षत्र	अजमीढ़		मन्यु	बृहत्क्षत्र	कुरु	दुष्यन्त
२०.	सुहोत्र	ऋक्ष	भद्राश्व	बृहत्क्षत्र	हस्ती	परीक्षित्	भरत
२१.	हस्ती	सवरण	वितथ	सुहोत्र	अजमीढ	जनमेजय	अमन्यु
२२	अजमीढ	कुरु	सुहोत्र	हस्ती	ऋक्ष	धृतराष्ट्र	सुहोत्र
२३.	ऋक्ष	जह्नु	हस्ती	अजमीढ़	संवरण	कुण्डिन	हस्ती
२४.	सवरण	सुरथ	अजमीढ़	ऋक्ष	परीक्षित	प्रतीप	विकुण्ठन

२५.	कुरु	विदूरथ	ऋक्ष	संवरण	सुरथ	शन्तनु	अजमीढ़
२६.	परीक्षित	सार्वभौम	संवरण	कुरु	विदूरथ	विचित्रवीर्य	संवरण
२७.	जनमेजय	जयत्सेन	कुरु	परीक्षित्	सार्वभौम	पाण्व	कुरु
२८.	सुरथ	रुचिर	सुधन्वा	जनमेजय	जयत्सेन	युधिष्ठिर	विदूर
२९	भीमसेन	भौम	सुहोत्र	जह्नु	राधिक		अनश्वर
३०.	विदूर	अयुतायु	च्यवन	सुरथ	अयुत		परिक्षित्
३१.	सार्वभौम	अक्रोधन	कृत	विदूरथ	क्रोधन		भीमसेन
३२	जयत्सेन	देवातिथि	परीक्षित्	सार्वभौम	देवातिथि		प्रतिश्रवा:
३३.	आराधि	ऋक्ष	जनमेजय	कमलनेत्र	ऋष्य		प्रतीप
३४,	महासत्व	भीमसेन	सुरथ	आराधित	दिलीप		शन्तनु
३५.	अयुतायु	दिलीप	विदूरथ	अयुतायी	प्रतीप		विचित्रवीर्य
३६	अक्रोधन	प्रतीप	ऋक्ष	अक्रोधन	शन्तनु		पाण्डु
३७.	देवातिथि	शन्तनु	भीमसेन	देवातिथि	विचित्रवीर्य		युधिष्ठिर
३८	ऋक्ष	विचित्रवीर्य	प्रतीप	ऋक्ष	पाण्डु		
३९	भीमसेन	पाण्डु	शन्तनु	भीमसेन	युधिष्ठिर		
४०	दिलीप	युधिष्ठिर	विचित्रवीर्य	दिलीप			
४१	प्रतीप		पाण्डु	प्रतीप			
४२.	शन्तनु		युधिष्ठिर	शन्तनु			
४३	विचित्रवीर्य			विचित्रवीर्य			
४४.	पाण्डु			पाण्डु			
४५.	युधिष्ठिर			युधिष्ठिर			

अतः सभी ग्रन्थो के तुलनात्मक अध्ययन से पुरुवंश की अपूर्ण ही सही, संभावित वंशावली इस प्रकार बनती है—

१ पुरु	१०. रौद्राश्व
२. जनमेजय	११. ऋचेयु (ऋक्ष) प्रथम
३. प्राचीन्वान्	१२ मतिनार
४. प्रवीर	१३. तंसु
५. मनस्यु	१४. ईलिन
६. अभयद	१५. दुष्यन्त
७. सन्नन्त-शुन्ध्यु	१६. भरत
८. बहुगव	१७. वितथ
९. संयाति इत्यादि	१८. भुमन्यु

१६. सुहोत्र = वैतथि
२०. हस्ती
२१. विकुण्ठन
२२. अजमीढ
२३. ऋक्ष द्वितीय
२४. अहंयाति
२५. सार्वभौम
२६. जयत्सेन
२७ अवाचीन
२८. अरिह प्रथम
२६ महाभौम
३०. अयुतनायी
३१. देवातिथि
३२ अरिह द्वितीय
३३ —
३४. —
३५ —
३३-५४. —
५५. ऋक्ष तृतीय
५६ विदूरथ
५७ —
५८ —
५६ —
६० – ८१ (रिक्त)
८२ ऋक्ष चतुर्थ
८३ सवरण
८४. कुरु
८५. परीक्षित् प्रथम
८६. जनमेजय प्रथम
८७. भीमसेन
८८. प्रतीप
८६. शन्तनु
६०. विचित्रवीर्य
६१. पाण्डु
६२. युधिष्ठिर

पुरुवश के अपूर्ण होने का एक प्रमुख कारण था कि इस वंश की अनेक शाखाओ मे कभी किसी का प्रभुत्व रहा तो कभी किसी का, यथा अजमीढ के पश्चात् भरतों को पाचालो ने विजित या आत्मसात् कर लिया। इसके अतिरिक्त इस वश मे ऋक्ष और विदूरथ या परिक्षित् और जनमेजय नाम के अनेक राजाओ से भ्रम उत्पन्न हुआ, जिससे पुराणों मे अनेकनाम छोड़

दिए। तृतीय कारण था, ययाति के अग्रज यति के समय से देवापि तक अनेक राजा राजधर्म छोड़कर ऋषि बनते रहे। चतुर्थ कारण था कि भ्रातृवशो में परस्पर संघर्ष यथा देवापि—शन्तनु, धृतराष्ट्र— पाण्डु, दुर्योधन— युधिष्ठिर सदृश भ्राताओ के सघर्ष के कारण वशपरम्परा मे अत्यधिक व्यवधान पडा। इस प्रकार के अनेक कारणो से पुरुवंशावली अत्यधिक अपूर्ण है।

पार्जीटर, सीतानाथ प्रधान, प० भगवद्दत्त, मनकड आदि अनेक विद्वानों ने पौरव वशावली को दुरुस्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु शुद्धपाठो एवं सामग्री के अभाव मे कोई सफल नही हो सका।

इस पौरव वशावली मे दो स्थानों पर विशेष अस्तव्यस्तता है, जिसका पं० भगवद्दत्त ने भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ७६ पर सकेत किया—प्रथम, अहंयाति के पश्चात्— सार्वभौम, जयत्सेन, अवाचीन महाभौम, अयुतनायी, अक्रोधन और अरिह के नाम, दुष्यन्त या अजमीढ के निकट होने चाहिये, सो हमने उनको यथास्थान पर रखा है। द्वितीय गडबड है कुरु के वंशज अभिष्यन्, जनमेजय आदि आठ राजाओ का स्थान शन्तनु और प्रतीपसे ठीक पूर्व होना चाहिए। तदनुसार ही हम इनका यथास्थान विचार करेंगे। पार्जीटर ने पुराणों के भ्रष्टपाठों का अन्धानुकरण किया है।

अब पुरुवंश के प्रमुख राजाओ एव तत्सम्बन्धी कतिपय समस्यायें एवं उनके कालादि पर विचार करते हैं।

१ पुरु

यह ययाति प्रसंग मे लिखा जा चुका है कि पुरु, गगायमुना के मध्य देश का राजा था। महाभारत मे ही दो स्थानो मे से एक मे पुरु की पत्नी का नाम पौष्टी और दूसरे पर कौसल्या लिखा है।[1] इससे पुरुमहिषी का वास्तविक नाम ज्ञात नही होता। पौष्टी का अर्थ हुआ—पुष्ट की पुत्री और कौसल्या का अर्थ हुआ कोसल (राजा) की पुत्री। सभावना है की पुष्ट का ही नाम कोसल होगा, जो इक्ष्वाकुवश, का कोई विशिष्ट पुरुष होगा। अयोध्या इक्ष्वाकुवशावली में न तो पुष्ट और न कोसल का नाम मिलता है। कोसल, ककुत्स्थ या रघु के तुल्य कोई प्राचीनतम महान् सम्राट् था;

१. पूरोः पौष्ट्यामजायन्त... (महा० १।९४।५), पूरोस्तु भार्याकौसल्यानाम (महा० १।९५।११)

वंशावली में इसके नाम का अभाव आश्चर्यजनक है, इससे यह भी प्रकट होता है कि पुराणोल्लिखित समस्त वंशावलियां अधूरी हैं। ऐक्ष्वाक, काकुत्स्थ और राघव के साथ चतुर्थ विशेषण कौशल्य ही अयोध्या के राजाओं के साथ लगता था। पुरु का समय १२२६० वि० पू० से १२१६० वि० पू० के मध्य में होना चाहिए।

२ जनमेजय (प्रथम)

प्राचीनकाल में ८० जनमेजय संज्ञक[1] राजाओं में यह संभवतः यही प्रथम जनमेजय था। पौरवों का तो प्रथम जनमेजय था ही। जनमेजय की पत्नी किसी मधुसंज्ञक राजा की पुत्री अनन्ता थी।[2] इसका समय १२१६० वि० पू० से १२०६० वि० तक अनुमानित है। पौरव राजाओं की न्यून संख्या का एक कारण उनका दीर्घजीवन था। जब ययाति महस्राधिकवर्ष रहा तो जनमेजयादि अनेकशतायु अवश्य होंगे।

३. प्राचिन्वान्

वायु० (९९।१२०) में इसी का नाम अविद्ध लिखा है। इसने प्राचीन (पूर्वदिशा) के समस्त देशों को जीत लिया था। यदु या किसी यादव राजा अश्मक की पुत्री अश्मकी इसकी पत्नी थी।[3] इसका दीर्घ राज्यकाल १२००० वि० पू० के निकट होना चाहिए।

४ प्रवीर

इसकी पत्नी का नाम शूरसेनी, श्येनी या शैब्या मिलता है परन्तु श्येनी पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है।[4] इसका समय १२००० वि० से ११९०० वि० पू० था।

५. मनस्यु

इसकी पत्नी का नाम सौवीरी लिखा है जिसके तीन पुत्र हुए-- शक्त, संहनन और वाग्मी।[5] इसका समय ११९०० वि०पू० से ११८५० वि०पू० था

१. अशीतिर्जनमेजया (वायु० ३२।११)

२. जनमेजय, खल्वनन्ता नामोपयेमे माधवीम्। (महा० १।९५।१२)

३ महा० (१।९५।१२)

४ महा० (१।९५।१३)

५ महा० (१।९४।७)

६ अभयद (जयद)—महाभारत में अभयद और वायु. (९९।१२१) में इसका नाम जयद लिखा है।

७ शुन्ध्यु धुन्धु सुन्वन्त

पुगणो है बहुधा धुन्धु पढा गया है। [1] परन्तु अवन्तिसुन्दरी का शुन्ध्यु नाम ही शुद्ध प्रतीत होता है। इसीका अपभ्रंश सुन्वन्त है। इसका राज्यकाल ११८०० वि० पू० के निकट था।

८. बहुगवी—ययीवान्

पुगणों मे बहुगवी और महाभारत मे इसका ययीवान् नाम है। इसका राज्यकाल ११८०० वि० पू० से ११७०० वि० पू० के मध्य होना चाहिए।

९ सयाति

वायुपुराण (९९।१२२) मे इसका नाम सयति है। इसका विवाह दृषद्वान् हिमवान की कन्या दृषद्वती वराङ्गी के साथ हुआ। [2] दृषद्वती को हैमवती या पार्वती भी कहा जाता था, वह पूर्वप्रतिपादित कर चुके है। इसका समय ११७०० वि० पू से ११६५० वि० पू० अनुमानित है।

महाभारत मे सयाति का पुत्र अहंयाति बताया गया है और उसका विवाह कृतवीर्य अर्जुन की पुत्री भानुमती से, जो कार्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन की भगिनी होनी चाहिए, से हुआ। इस वंशावली मे पाठत्रुटि हुई है। कृतवीर्य और कार्तवीर्य अर्जुन का समय उन्नीसवे परिवर्त युग (७५२० वि० पू० से ७२९० वि० पू० के मध्य) था। अत यह संयाति का पुत्र नही हो सकता। यह अजमीढ के पश्चात् हुआ था, अत. इसका उल्लेख वही होगा।

१० रहस्याति

सयाति का पुत्र रहस्याति था। (हरि० १।३।१४)इसका समय ११६०० वि० पू० था।

---

१ संयाति खलु दृषद्वती दुहितर वराङ्गी नामोपयेमे (महा० १।९५।१४)
२. अहयाति. खलु कृतवीर्यदुहितरमुपयेमे भानुमती नाम।
(महा० १।९५।१५)

११. रौद्राश्व

स्पष्ट है कि ययाति के पश्चात् रौद्राश्व के मध्य में अनेक नाम लुप्त हैं, परन्तु अधिक नाम लुप्त नहीं, चार पांच पीढी ही अज्ञात होगे, क्योंकि रौद्राश्व का समय दशम त्रेतायुग (परिवर्त =१०७६० वि० पू० से १०४०० वि० पू० के मध्य) था, जो ययाति के अनुमानित समय ११६५० वि०पू० से अधिक दूर नही।

रौद्राश्व की पत्नी अप्सरा घृताची थी। इसके दश पुत्र थे—ऋचेयु, कृकणेयु कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्नतेयु, दशार्णेयु जलेयु, स्थलेयु, धनेयु और वहेयु (हरि० १।३१।६-१०), महाभारत मे इनका नाम और क्रम है—ऋचेयु, कक्षेयु, कृकणेयु, स्थण्डिलेयु, युवनेयु, जलेयु, तेजेयु, सत्येयु, धर्मेयु और संननेयु (महा० १।६४।१०-११) यद्यपि सभी भ्राता राजा या राजतुल्य थे, परन्तु ऋचेयु और कक्षेयु प्रधान हुए। इन सभी मे ऋचेयु उत्तराधिकारी हुआ।

रौद्राश्व की दश पुत्रियां थीं—रुद्रा, शूद्रा, भद्रा, मलदा, मलहा, खलदा, नलदा, सुरमा, गोचपला और स्त्रीरत्नकूटा।[1] वायु में इनके नामो मे किंचित् अन्तर है मलदा के स्थान पर शुभा, मलदा के स्थान पर आलमला, मलहा के स्थान पर तला एवं गोपजला, ताम्ररसा और रत्नकूटी।[2] ये सभी आत्रेय ऋषि प्रभाकर की पत्निया बनी।[3] प्रभाकर ने रुद्रा से 'सोम' नाम का पुत्र उत्पन्न किया। प० भगवद्दत्त[4] ने दत्तात्रेय, दुर्वासा और अत्रि की अपाला (तिलका)[5] को इस सोम की सन्तति माना है, परन्तु कोई प्रमाण उद्धृत नही किया, निश्चय ही दत्तआदि ऋषि आत्रेय थे और प्रभाकर के निकट सम्बन्धी थे। इनका समय दशम त्रेतायुग (परिवर्त) था :—

> त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह।
> नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरःसर.॥[6]

---

१. हरि० (१।३१।११)
२. वायु० (६६।२५-२६)
३. ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे तु तासां भर्त्ताप्रभाकरः। (हरि० १।३१।१२)
४. भा० वृ० इ० भा० २, पृ० ७७
५. जै० ब्रा० (१।२२)
६. वायु० (६८।८६)

दत्तात्रेय के समकालिक कोई मार्कण्डेय ऋषि थे, संभवतः वही दीर्घजीवी घोरशिरा मार्कण्डेय होंगे, जिन्होने वैवस्वतमनु के समय जलप्रलय में बालहरि का दर्शन किया था—

बहुवर्षसहस्रायुर्धर्षयश्चैव मे वयः
कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः।
मार्कण्डेयेति मा प्रोक्त्वा...।[1]

वैसे मार्कण्डेय (भार्गव) एक गोत्र नाम था। महाभारतयुग मे युधिष्ठिर से किसी मार्कण्डेय का संवाद हुआ था, सभवतः इसी मार्कण्डेय ने एक अतिप्राचीनकाल मे एक पुराण लिखा था—जिसका एक भ्रष्ट और नवीन पाठान्तर वर्तमान मार्कण्डेयपुराण है और महाभारत के अनेक उपाख्यान (रामोख्यानसहित) उसी प्राचीन मार्कण्डेयपुराण के अश है। आज भी मार्कण्डेयगोत्रीय ब्राह्मण मिलते है। अत प्राचीन मार्कण्डेय (वशज) अनेक थे। ऐसा ही पार्जीटर मानता है, जो ठीक ही है।

दत्तात्रेय, दुर्वासा मार्कण्डेय (अज्ञातनामा या घोरशिरा ?) स्वस्त्यात्रेय (दश आत्रेय ऋषि), अपाला आत्रेयी सभी समकालिक व्यक्ति थे, जो रौद्राश्व मे समय दशमयुग (१०४०० वि० पू० से १००४० वि० पू०) हुए। अत रौद्राश्व १०८०० वि० पू० मे १०३०० वि० पू० के मध्य राजा होगा। ऋषि दीर्घजीवी होते थे. अतः यदि पुराणपाठ भ्रष्ट नही हुआ है तो यही दत्तात्रेय उन्नीसवे युग मे—अर्जुन कार्तवीर्य सहस्रार्जुनपर्यन्त विद्यमान थे,[2] यह समय ७५२० वि० पू० था, अतः दत्तात्रेय की आयु तीन सहस्रवर्ष से अधिक माननी पडेगी।

दत्तात्रेय को विष्णु का चतुर्थ अवतार माना जाता था।

कक्षेयुसम्बन्धी हरिवंश में तथाकथित भ्रान्ति

प्रायः सभी पुराणो में उशीनर, शिबि आदि को ययातिपुत्र अनु के वंश मे मानकर आनव क्षत्रिय माना गया है, परन्तु हरिवंश और ब्रह्मपुराण

१. हरि० (३।१०।३७, ३६)
२. दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसभवम्। (हरि० १।३३।१०) तथा एकोनविंशे त्रेताया सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत्। जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः। (वायु०९८।९१)

में एक पृथक् परम्परा का ही उल्लेख मिलता है। हरिवंश और ब्रह्म० की प्राचीनता, मौलिकता एवं प्रामाणिकता को मान्यता देते हुए, यह निर्णय करना कठिन है कि कौन सी परम्परा सत्य थी।[२] भले ही हरिवंश की परम्परा सत्य नही हो, परन्तु इससे दो तथ्यो का निर्णय होता है कि शिबि औशीनरि का पूर्वज सभानर कक्षेयु के समकालीन अर्थात् १०४०० वि० पू० हुआ, क्योंकि शिबि अष्टादशयुग ७५२० वि० पू० के पश्चात् हुआ है। कक्षेयु दशमयुग (१०४२० वि० पू०) मे था अत: कक्षेयु और सभानर दोनो ही शिबि से लगभग २५०० वर्ष पूर्व हुए। द्वितीय, कक्षेयु से शिबिपर्यन्त न्यूनतम १० पीढिया थी। संभवत:[३] ये केवल प्रधान प्रधान पुरुषो (पीढियो) के नाम है, हो सकता है, कक्षेयु व सभानर से शिबिपर्यन्त २०-२५ पीढ़िया हुई हो। शिबि और उसके पूर्वज, सृञ्जय, जनमेजयआदि निश्चय ही दीर्घजीवी थे, इसमे सन्देह नही।

१२ ऋचेयु

वायु० (९९।२७) के एक भ्रष्टपाठ मे रौद्राश्व नाम ही अनाधृष्टि है, परन्तु महाभारत (१।९४।१३) में ऋचेयु का नाम ही अनाधृष्टि है। यहा पर पुराणपाठो मे कुछ न कुछ भ्रशता प्रतीत होती है। ऋचेयु की भार्या का नाम तक्षकात्मजा ज्वलना था।[४] महाभारत मे इसका नाम ज्वाला है।[५]

ऋचेयु का समय एकादशयुग था। वह इसके कुछ पश्चात् होना चाहिये, अत: इसका समय १०००० वि० पू० के कुछ अनन्तर होना चाहिये।

यह भी सभव है कि ऋचेयु, कक्षेयु आदि सभी रौद्राश्व के पुत्र न होकर वशज का पौत्र प्रपौत्र आदि हो, ऐसा होने पर इन सबका राज्यकाल अनेक शताब्दी होना चाहिये। क्योकि ऋचेयु के पुत्र मतिनार के दौहित्र मान्धाता यौवनाश्व (ऐक्ष्वाक) का समय पन्द्रहवे युग (८९६० वि० पू० प्रारम्भ) मे था, अत: मतिनार और युवनाश्व का समय चौदहवें— युग के मध्य मे मानना पड़ेगा, तदनुसार मतिनार का समय ८६६० वि० पू० से ८९६० वि० पू० मे होना चाहिये।

---

१ हरि० अध्याय ३१,

२ पार्जीटर हरि० की परम्परा को गलत मानता था।

३. दृषद्वत्यास्तु सजज्ञे शिबिरौशीनरो नृप: (हरि १।३१।२७)

४ वायु० (९९।२८)

५. महा० (१।९५।२५)

१३. प्रतिनार, ईलिन. तंसु, सरस्वती, दुष्यन्त, विश्वामित्र और कण्व की समस्या तथा समकालीनता

ये तथा अन्य बहुत से पुरुषो की समकालिकता के विषय मे इतिहास पुराणों मे स्पष्ट निर्देशो के होते हुए महामना पार्जीटर ने अपने प्रसिद्धग्रन्थ में मनमानेरूप मे उनका स्थान और समय कही का कही कर दिया है। इसका मुख्यकारण है अन्य पाश्चात्यलेखको के समान वह भी प्राचीन भारतीय ऋषियो एवं राजर्षियो के जीवन की दैर्घ्यता को नही समझ सका और न उसने इसको मान्यता दी। इसीलिए अनेक वसिष्ठों के समान वह अनेक विश्वामित्रो को मानता था। इसमें कोई सन्देह नही कि इतिहास पुराणो मे ही नही, ऋग्वेद एव ब्राह्मणादिग्रन्थो मे भी भ्रातिमयी उक्तियो का कथन है, यद्यपि वैदिकग्रन्थो मे ऐसे कथन जानबूझ कर या अज्ञान के कारण नही है। सत्य यह है कि विश्वामित्र या वसिष्ठ या अगस्त्यादि ऋषि मूल मे एक ही एक हुए थे, परन्तु वैदिकग्रन्थोतक मे उनके वशजो को भी उसी नाम से अभिहित किया जाता था, यथा-यथा ऐक्ष्वाक सुदास के पुरोहित विश्वामित्रवशज किसी ऋषि का भी विश्वामित्र कहा है।[1] सभवत कात्यायन और यास्क के समय मे ही विश्वामित्र के वंशजो के नाम विस्मृत हो चुके थे। इसी प्रकार रामदाशरथि समकालिक विश्वामित्र वशज या कौशिक ऋषि का नामअज्ञात है। अत विश्वामित्र अनेक नही एक ही था, सच यह है कि उसके वशजो के नाम विस्मृति के गर्भ मे चले गए है।

गालवोपाख्यान (महा० उद्योगपर्व) से स्पष्ट है कि विश्वामित्र, काशीराज दिवोदास, अयोध्यापति हर्यश्व और उशीनर समकालिक राजा थे। परन्तु पार्जीटर ने दिवोदास को बाहु और सगर के मध्य मे ४० वे स्थान पर माना है, और विश्वामित्र को ३२ वी पीढ़ी मे रखा है।[2] इतिहासपुराणो से स्पष्ट है कि ऐक्ष्वाक हर्यश्वद्वितीय काशिराज दिवोदास के समय विश्वरथ विश्वामित्र कौशिक कान्यकुब्ज के राजा थे, उनका पुत्र अष्टक, हर्यश्व के पुत्र वसुमना के समकालिक था। सत्यरथ या त्रिशकु (३२ वां स्थान) के समय विश्वामित्र तपस्या कर रहे थे—जबकि त्रिशकुने विश्वामित्र[3] की

१. विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारतजनम्॥ (ऋ० ३।५३।१२)

२. A. I. H. T., P. 147

३. सत्यरथो महाबुद्धिर्भरण तस्य चाकरोत्।
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेवच॥ (८८।८९)

भार्या और पुत्र गालव का पालन पोषण किया। इसी समय तपस्या रत विश्वामित्र ने मेनका से शकुन्तला को उत्पन्न किया।[1] जो पौरवदुष्यन्त की भार्या हुई। अतः पार्जीटर द्वारा शकुन्तला पिता विश्वामित्र को द्वितीय विश्वामित्र समझना महती भ्रान्ति किंवा भारतीय दृष्टि को समझने की अक्षमता (अज्ञान) है। विश्वामित्र एक ही था, जो कम से कम हरिश्चन्द्र के समय तक जीवित रहा। सच तो यह है कि हरिश्चन्द्र और दुष्यन्त समकालिक राजा थे, जबकि पार्जीटर दुष्यन्त को ४२ वे स्थान पर[2] और हरिश्चन्द्र को ३३ वे स्थान पर रखता है।[3] ये पार्जीटर की समस्त कल्पनायें हैं, जो दीर्घायुष्ट्व मे अविश्वास के कारण हैं।

ऋचेयुपुत्र मतिनार का समय चतुर्दशयुग मे ८६०० वि० पू० था। उसकी भार्या का नाम मनस्विनी या सरस्वती[4] था। जिस प्रकार दृषद्वत् प्रदेश के दृषद्वान् राजा की पुत्रिया दृषद्वती कहलाती थी, इसी प्रकार सरस्वान् प्रदेश (सभवत पजाब) के राजा सरस्वान् की पुत्रियाँ सरस्वती कहलाती थी। सरस्वतीसज्ञक अनेक राजकन्याओ का उल्लेख पुराणो मे हैं। वैसे मनस्विनी और सरस्वती पर्यायवाची शब्द है (मन -बुद्धि सरस्)। मतिनार के तीन पुत्र और एक कन्या हुई। पुत्र थे—तसु, अप्रतिरथ और ध्रुव, कन्या गौरी का विवाह ऐक्ष्वाक युवनाश्व द्वितीय से हुआ, जिसने मान्धाता का पालन पोषण किया — 'गौरी कन्या च विख्याता मान्धातुर्जननी शुभा।" (वायु० ९९।१३०)

अप्रतिरथ का पुत्र हुआ कण्व, जो संभवत इस नाम का प्रथम वैदिक ऋषि था। इसी कण्व के पुत्र सौभरि काण्व का विवाह मान्धाता की ५० पुत्रियो से हुआ था। कण्व का द्वितीय प्रसिद्ध पुत्र था मेधातिथि। ऋग्वेद एवं अन्य वैदिकग्रन्थो में इस काण्व मेधातिथि का बहुधा उल्लेख है जिसके लिए शतक्रतु इन्द्र ने मेष बनकर सोमपान किया और विभिन्दु नाम के राजा ने

---

१. दुष्यन्तः खलु विश्वामित्रदुहितर शकुन्तला नामोपयेमे।(महा० १।९५।२९)

२. The next Visvamitra was the father of Sakuntala, Bharata's mother. (A.I H T., p 236).

३. A I. H. T, pp.145-147

४. महा० (१।९५।२६)

ऋषियों को ४८००० गायें दान दी।[1]

इसी कण्व ऋषि के वंशज काण्व या काण्वायन ब्राह्मण कहलाये। इसी कण्व या इसके वंशज किसी काण्व ऋषि ने मालिनीनदीतटनिकटवर्ती चैत्ररथवन मे उपर्युक्त विश्वामित्र की दुहिता शकुंतला का भरणपोषण किया था।[2] कालिदास ने इस कण्व को काश्यप लिखा है जो भ्रामक प्रतीत होता है। महाभारत शाकुन्तलोपाख्यान की निम्न श्लोक का पाठ ध्यातव्य है—

त चाप्रतिरथ श्रीमानाश्रमं प्रत्यपद्यत.।[3]

हमारा अनुमान है कि इस श्लोक मे कण्व के पिता अप्रतिरथ का उल्लेख है— मूलपाठ 'चाप्रातिरथस्य' (अप्रातिरथस्य = अप्रतिरथ पुत्र कण्व का आश्रम) होना चाहिए। अतः शकुन्तलापालक कण्व अप्रतिरथपुत्र और मतिनार का पौत्र ही होगा, काश्यप नही।

इस सम्बन्ध मे पार्जीटर के समकालिकता (Sychronisms) एवं कालनिर्धारणपद्धति सर्वथा अत्यन्त भ्रामक है, इस सम्बन्ध मे हम ऊपर निर्देश कर चुके हैं। इसी प्रकार उसका कण्वसम्बन्धीमत भ्रामक कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नही वह ऐतिह्यकोटि मे नही आ सकता।[4] जिस प्रकारपार्जीटर ने सौभरि कण्व को किसी काल्पनिक दुर्गह के समाकालिक माना है, उसी प्रकार कण्व की स्थिति अजमीढ से पूर्व नही मानी। सौभरि कण्व का समय हम मान्धाताप्रकरण मे निर्णीत कर चुके हैं, अतः अजमीढ़ वंशजकण्व द्वितीय एवं बहुत उत्तरकालिक व्यक्ति था। भारतीय इतिहास में भरतदौःष्यन्ति से पूर्व कण्व एव काण्वो का अस्तित्व मानना ही पड़ेगा।

---

१. काण्व मेध्यातिथिम्। मेषो भूतोऽभि यन्नमः शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्। अष्टा परः सहस्राः॥ ऋ० ८।२।४०-४१
मेधातिथिर्हि। मेषो भूत्वा राजान पपौ॥ (जै० ब्रा० २।७६)

२. महा० (१।७०।२१,३०)

३. महा० (१।७०।२३)

४ There is no mention of any Kanva before Ajamidha...It is clear that the Kanvas sprang from Ajamidha and not from Matinara's son Aparatiratha.

१४. तंसु

मतिनार के कही चार, कही तीन[1] पुत्र बताये है—तसु, अप्रतिरथ, द्रुह्यु, अमितद्युति ।[2] इसमे तंसु उत्तराधिकारी हुआ। उसने पृथ्वी पर महान् यश व विजय प्राप्त की ।[3]

महाभारत के एक पाठ के अनुसार तसु की भार्या कालिगी और दूसरे पाठ के अनुसार कालिन्दी था। इसमे कालिंदी नाम ही शुद्ध प्रतीत होता है, क्योकि कलिग, अगादि वशो की अभी उत्पत्ति नही हुई थी।

तंसु का समय ८६०० वि० पू० से ८५०० वि० पू० षोडशयुग मे होना चाहिये। यह मान्धाता यौवनाश्व के समकालिक था।

१५. ईलिन-सुद्युम्न द्वितीय

इतिहासपुराणो मे ईलिन को कही पुरुष तो कही स्त्री बताया है। इसकी गुत्थी सुद्युम्न नाम से सुलझती है। जिस प्रकार मनुपुत्री और बुध पत्नी इला के इसी प्रकार स्त्री-पुमान् दोनो ही रूप थे, उसी प्रकार तसु पुत्री यह इला (या इलिन) भी स्त्री[4] पुमान्[5] दोनो रूपो मे हुई। प्रथम इला सुद्युम्न के समान इसको इला द्वितीय या सुद्युम्न द्वितीय कहते है। इसी कारण शतपथब्राह्मण मे इला ईलिनी) पौत्र दुष्यन्त को सौद्युम्नि कहा है—

सौद्युम्निरत्यष्टादन्यानमयान् मायावत्तर. ।
शकुन्तला नाडपित्यप्सराभरतं दधे ॥[6]

ईलिन (इला) या सुद्युम्न ने रथन्तरीपत्नी से पाच पुत्र उत्पन्न किये।[7] हरिवश के अनुसार तमु के पुत्र का नाम सुरोध था, जिसका द्वितीय नाम धर्मनेत्र था। यह पुराणपाठ मे कुछ गडबड हुई है।[8] सभवतः रथन्तरी

---

१. महा० (१।९४।१५), हरिवश मे इनके नाम तसु, अप्रतिरथ और सुबाहु है; (१।३२।३)।
२ आजहार यशोदीप्त जिगाय च वसुन्धराम्। (महा० (१।९४।१५)
३ महा० (१।९५।२७)
४ ईलिनी भूप यस्यासीत् कन्या वै जनमेजय। (हरि० १।३२।६)
५ इलिन जनयामास कालिन्द्या तसुरात्मजम्। (महा० १।९५।२७)
६ (श० ब्रा० १३।५।४।१३)
७. महा० (१।९५।२८)
८. हरि० (१।३२।७)

का ही नाम उपदानवी था, जो किसी रथन्तरनामदानव की कनिष्ठा पुत्री थी। उपदानवी रथन्तरी के चार पुत्र हुए-दुष्यन्त, सुष्यन्त, प्रवीर और अनघ।[1]

ईलिन का राज्यकाल ८५०० वि० पू० से ८४०० वि० पू० के मध्य ऐक्ष्वाक राजा पुरुकुत्स और त्रसदस्यु के समकालिक था। इसी समय विश्वामित्र के पिता और पिता कौशिक और गाधि राजा थे।[2] पार्जीटर ने वंशावली मे ईलिन का नाम ही उडा दिया है।

तंसोः सुदयित पुत्रमिलिनं ब्रह्मवादिनम् (वायु० ९९।१३२) में स्पष्ट तंसुपुत्र कहा है।

१६. दुष्यन्त

इसका प्राचीनतर शुद्ध नाम दुःषन्त ही था, इसीलिए भरत को दौषन्ति कहा जाता था। कालिदास ने इसकी अन्य पत्नियों के नाम वसुमती और हंसपदिका[3] लिखे हैं, तथा महाभारत आदिपर्व (पूनाम०) मे इसकी एक पत्नी का नाम लक्ष्मणा लिखा है। परन्तु इसकी सर्वोत्तरा और सर्वोत्तमा पत्नी मेनका अप्सरा और विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला थी। श० ब्रा० (१३।५।४।१३) के पूर्वोद्धृत श्लोक मे शकुन्तला को नाडपिती अप्सरा' कहा है। मेनका अप्सरा की पुत्री होने से शकुन्तला भी अप्सरा ही थी।[4] परन्तु 'नाडपिनी' शब्द का अर्थ अज्ञात है। भाष्यकार हरिस्वामी ने इसको कण्वाश्रम का कोई स्थान बताया है। शकुन्तो (पक्षियो) ने सद्योजात कन्या की रक्षा की, इसलिए उसका नाम 'शकुन्तला'[5] हुआ। शकुन्तला ने गान्धर्वविवाह द्वारा आश्रम मे पौरव दुष्यन्त का वरण किया। और तीन वर्षपर्यन्त गर्भधारण किया।[6] छः वर्ष का ही शाकुन्तल (भरत) सिहादि का

---

१ हरि० (१।३२।८) तथा वायु० (९९।१३२)

२. कुशिको राजाबभूव (निरुक्त)

३ अ० शा० ना० (पंचम अंक)

४. अप्सरायें अन्तरिक्षचारिणी होती थी—क्षितावटसि राजेन्द्र अन्तरिक्षे चराम्यहम् (महा० १।७४।८४)

५. विजने तु वने यस्माच्छकुन्तैः परिवारिता शकुन्तलेति नामास्याः कृत चापि ततो मया। (महा० १।७२।१६)

६. महा० (१।७४।२)

दमन करता था, इसलिए उसका नाम 'सर्वदमन रखा गया।'[1] महाभारत और अभिज्ञानशाकुन्तलनाटक द्वारा शाकुन्तलोपाख्यान विश्वविश्रुत हो चुका है। जब शकुन्तलापुत्र भरत को लेकर दुष्यन्त के पास गई, तब भरत की आयु १२ वर्ष की थी।[2] उस समय वह अतिकाय और अति बलवान् था।[3] इतिहासपुराणो में, निम्नश्लोकों को अशरीरिणी वाक् (आकाशवाणी)[4] के रूप मे उद्धृत किया है, जिसे सुनकर दुष्यन्त ने भरत और शकुन्तला को ग्रहण किया—

भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्था शकुन्तलाम्॥[5] इत्यादि

आकाशवाणी ने ही उसका नाम 'भरत' रखा—

'तस्माद् भवत्वय नाम्ना भरतो नाम ते सुतः।'

महाभारत (१।६८) मे दुष्यन्त का राज्य रामायणोल्लिखित रामराज्य के तुल्य बताया गया है—नासीच्चौरभय तात न क्षुधाभयमण्वपि।" इत्यादि उसने आसमुद्र देशो को विजित पृथिवी को चार भागो मे विभक्त कर रखा था। "चतुर्भागं भुव कृत्स्न यो भुक्तेमनुजेश्वर. आम्लेच्छानधिकान सर्वान् भुक्ते रिपुमर्दन·। रत्नाकरसमुद्रान्ताश्चातुर्वर्ण्यजनावृतान्॥" (महा० १।६४।४-५)

दुष्यन्त का राज्यकाल त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक के समकालिक अष्टादशपरिवर्तयुग मे ७८०० वि० पू० से ७७०० वि० पू० होना चाहिए। इसी समय श्यावाश्व, ऋचीक, जमदग्नि, आदि ऋषि थे और इसी

---

१. महा० (१।७४।८)

२ शास्त्राणि सर्वे वेदाश्च द्वादशवर्षस्य चाभवन्
(१।७४।५९. महा० क्षेपक, १।७४)

३. अतिकायश्च ते पुत्रो बालोऽतिबलवानयम् (महा० १।७४।७९)

४. शृण्वन्त्वेतद् भवन्तोदेवदूतस्य, भाषितम् (महा० १।१७४।११६)

५. महा० (१।७४।११०।११५), ये श्लोक वायु० (९९।१५५), विष्णु (४।१९।१२-१३), मत्स्य (४९।१२) मे मिलते हैं। इससे मिलते जुलते श्लोक आप०ध० (२।६।६) तथा कौ० अर्थशास्त्र अ० ६४ मे भी मिलते हैं।

समय विश्वामित्र ने ऋषि (ब्रह्मर्षि) पदवी प्राप्त कर ली थी। इस अष्टा-दशयुग में ऋतंजय नाम का व्यासऋषि था।[1] श्यावाश्व के पिता अर्चनाना आत्रेय (अत्रिवंशी) भी ऋचीक आदि के समकालिक थे।[2]

१७. भरत

दुष्यन्त का पुत्र होने से इसे दौःषन्ति और शकुन्तला का पुत्र होने से शाकुन्तल कहते हैं। इसके चक्रवर्ती और सार्वभौम सम्राट् होने की भविष्य-वाणी कण्व ऋषि ने इसके बाल्यकाल में ही कर दी थी[4]—

स राजा चक्रवर्त्यासीत् सार्वभौमः प्रतापवान्।[5]

भरत ने गोविनत नाम का महान् अश्वमेधयज्ञ किया, जिसमे उसने उसने कण्व या काण्व ब्राह्मणोको महस्र पद्म मुद्राए दक्षिणा मे दी।[6]

इसी भरत के नाम पर पुरुवंश अब भरत या भारतवंश कहलाने लगा।[3] अत भरत महान वंशप्रवर्तक सम्राट् था। वह दिग्विजयी और समितिंजय (युद्धविजेता) महापुरुष था—

स विजित्य महीपालाश्चकार वशवर्तिनः।[7]

ब्राह्मणग्रन्थो (शतपथ व ऐतरेय) मे भरत के यज्ञ एव यशसम्बन्धी गाथाए मिलती हैं—'तेनह भरतो दौष्यन्तिरीजे। तेनेष्ट्वेमा व्यष्टि व्यानशे यया भरतानां तदेतद् गाथयाऽभिगीतम्—

अष्टासप्तर्ति भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात्पञ्चपञ्चाशत हयान्।

---

१. वायु० (२३।१८१)
२ श्यावाश्वचात्रिपुत्रस्य पुत्रः स्वल्वर्चनानसः। (बृहद्दे० ५।५२)
३. कुल लोग इस भरत के नाम से 'भारतवर्ष' का नाम प्रथित हुआ मानते हैं, यह भ्रामक है। यह नाम ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर चाक्षुषमन्वतर से पूर्व प्रथित हुआ।
४. महा० (१।७३।२९-३०)
५. महा० (१।७४।१२६-१२६)
६. महा० (१।७४।१३०)
७. महा० (१।७४।१३१)

त्रयस्त्रिशतं राजाश्वान् बद्ध्वा च मेध्यान् ।
सौद्युम्निरत्यष्टादन्यानमयान् मायावत्तर ।
महद्य शो भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव बाहुभ्या नोदापु पचमानवाः ।[1]

ऐतरेयब्राह्मण मे ये गाथाएँ अधिक मिलती है —

हिरण्येन परीवृतान् कृष्णाञ्छुक्लदतो मृगान् ।
मष्णारे भरतोऽददाच्छत बद्वानि सप्त च ।
भरतस्यैष दौ.ष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चित· ।
यस्मिन्त्सहस्र ब्राह्मणा बद्वशो गा विभेजिरे ।[2]

उपर्युक्त गाथाओ से सिद्ध होता है कि भरत ने यमुनातट पर ७८ यज्ञ और गगा तट पर ५५ यज्ञ किए- कुल १३३ यज्ञ, परन्तु महाभारत मे इसके यज्ञो की सख्या १३७ (शा० ७८।४६) और १३५ (द्रोण० ६८।८) बताई गई है। इसमे ब्राह्मणपाठ ही प्राचीन, प्रामाणिक और सत्य है। भरत के यज्ञस्थल मष्णारदेश और साचीगुण की पहिचान अभी तक नही हो पाई है। कुछ विद्वानो न इनकी कल्पना भारत से बाहर की है।

दीर्घतमा मामतेय और भरद्वाज की समस्या

भरत का ऐन्द्रमहाभिषेक दीर्घतमा मामतेय न कराया था,[3] जो दशमानुष वर्ष (१००० वर्ष) जीवित रहा। दीर्घतमा के पिता उतथ्य आगिरस मान्धाता के (६००० वि० पू०) पुरोहित थे। उतथ्य बृहस्पति के ज्येष्ठ भ्राता बताये गए है।[4] महाभारत[5] मे अन्यत्र बृहस्पति को सवर्त का ज्येष्ठ भ्राता बताया गया है। स्पष्ट है बृहस्पति नाम के अनेक ऋषि प्राचीनयुगो मे हुए थे। न्यूनतम चार बृहस्पति अवश्य थे... (१) देवगुरु बृहस्पति

१. श० ब्रा० (१३।५।४।११,१२,१४)
२. ऐ० ब्रा० (८।२३)
३. ऐन्द्रेण महाभिषेकेण दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच। (ऐ० ब्रा० ८।२३)
४. द्वावुतथ्यबृहस्पती ऋषिपुत्रौ बभूवतु ।...ता कनीयान् बृहस्पतिः (बृहद्देवता ४।११-१२)
५. महा० (४।११-१२)- पुत्रमङ्गिरसो ज्येष्ठ विप्रज्येष्ठ बृहस्पतिम् ।

(२) संवर्तभ्राता बृहस्पति, (३) भरद्वाजपिता और उतथ्यभ्राता बृहस्पति, और (४) लौक्य बृहस्पति ।[1] इनके अतिरिक्त और भी बृहस्पति हो सकते हैं ।

करन्धम का पौत्र आविक्षित् मरुत्त त्रयोदश त्रेतायुग में मान्धाता से न्यूनतम ७२० वर्षपूर्व (६७२ वि० पू०) हुआ था, जिसे भ्रष्टपुराणपाठ में त्रेतायुगमुख (प्रथमयुग) में बताया है ।[2] अतः सवर्त और द्वितीय बृहस्पति, उतथ्य भ्राता तृतीय बृहस्पति के पश्चात् हुए थे । पं० भगवद्दत्त ने आवीक्षित् मरुत्त को मान्धाता और अग बृहद्रथ का समकालिक बताया हैं । पण्डितजी ने अग बृहद्रथ को भरत दौष्यन्ति से पूर्ववर्ती माना है, वह भी ठीक नहीं है । हमारी गणना के अनुसार अग बृहद्रथ, मान्धाता के समकालिक नहीं हो सकता, वह उशीनर और तितिक्षु आनव की सातवी पीढी में हुआ । उशीनर का पुत्र शिबि वसुमना ऐक्ष्वाक के समकालिक था, अत. अग-बृहद्रथ हरिचन्द्र के समकालिक और वक्ष्यमाण अजमीढ के समकालिक हो सकता है । परन्तु तितिक्षु का पुत्र रुशद्रथ या बृहद्रथ मान्धाता के समकालिक हो सकता है ।

उतथ्य-ममता पुत्र दीर्घतमा का जन्म पंचदश या षोडशयुग (८६०० वि० पू०) में मान्धाताराज्य के अनन्तर पुरुकुत्स या त्रसदस्यु के राज्यकाल मे हो चुका होगा । हमारे मत में दीर्घतमा ने पहिले भरतदौःषन्ति का ऐन्द्र महाभिषेक किया और तदनन्तर बलि वैरोचनि[3] के पुत्र अग-वग कलिंग, सुह्म और पुण्ड्र तथा कक्षीवान् को हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक और पौरव अजमीढ के राज्यकाल (समकालिक) में उत्पन्न किया ।

पं० भगवद्दत्त ने भरत का राज्यकाल न्यूनतम २०० वर्ष माना है ।[4] भागवतपुराण[5] मे भरत का राज्यकाल २७००० वर्ष(दिन) - ७५ वर्ष बताया है, यदि भविष्यपुराण का कथन (जो प्रामाणिक नहीं है) माना जाय तो

१. ऋग्वेद (१०।७२) के द्रष्टा ऋ० स० पृ० ३७
२. वायु० (८६।७)
३ वैरोचनो हयान् (ऐ० ब्रा० (८।२१)
४. 'ये यज्ञ न्यून से न्यून २०० वर्ष मे हुए ।
(भा० बृ० इ० भा २, पृ० ६३)
५. समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् (भाग० ६।२०।३२)

उसका राज्यकाल ३६००० वर्ष (दिन=१०० वर्ष) था। अत: पौराणिक प्रामाण्य के अनुसार भरत का राज्यकाल एकशती से अधिक नही था। संभावना यह है कि भरत के सभी १३३ यज्ञ, अश्वमेध नही होगे। अन्य प्रकार के लघुयज्ञ मिलाकर ही १३३ संख्या बनी होगी।

सन्तति—यह विडम्बना ही थी कि ऐसे प्रतापी एवं यशस्वी, अद्वितीय चक्रवर्ती वंशकर भरत का कोई औरस पुत्र दायाद नही हुआ, यद्यपि उसकी तीन पत्नियों से नौ पुत्र उत्पन्न हुए,[1] भरत ने अनुरूप न होने से, सबका परित्याग कर दिया या माताओं ने मार दिया।[2]

उपर्युक्त उतथ्य आंगिरस के कनीयान् भ्राता बृहस्पति ने व्यभिचार द्वारा भ्रातृपत्नी ममता से भरद्वाज नाम का पुत्र उत्पन्न किया, इसका नाम निर्वचन इस प्रकार किया गया है-- 'मूढे भरद्वाजमिम भरद्वाज बृहस्पते।'[3] अत: भरद्वाज ममता का द्वितीयपुत्र और दीर्घतमा का अनुज था। भरद्वाज-जन्मकाल वसुमान् ऐक्ष्वाक के पिता हर्यश्व और विश्वामित्र के राज्यकाल से पूर्व काशिराज दिवोदासपिता भीमरथ के राज्यकाल मे हो चुका था। क्योकि काशि के न्यूनतम तीनराजाओ का पुरोहित भरद्वाज था।

(१) दिवोदास वै भरद्वाजपुरोहितं नानाजन पर्य्ययन्त। स उपासीदृषे गातु मे विन्देति (ताण्ड्य० ब्रा० १५।३।७)

(२) तेन वै भरद्वाज प्रतर्दन "देवोदासिं समनह्यत्" ।(मै० स० ३।३।७)

(३) क्षत्र वै प्रातर्दन दाशराज्ञे दशराजान पर्यतन्त मानुषं। तस्य ह भरद्वाज पुरोहित आस (जै० ब्रा० ३।२४५)

विश्वामित्र, जमदग्नि और भरद्वाज ऋषि समकालीन और दीर्घायु थे, इनका जन्म सप्तदशयुग(८००० वि० पू० मे), मान्धाता से लगभग सप्तदशी (७००) वर्ष पश्चात् हो चुका था।

पं० भगवद्दत्त ने दाशरथिराम से न्यूनतम सातयुग (३६०×७= २५२० वर्ष पूर्व होने वाले दिवोदास, प्रतर्दन, भरद्वाज, अलीकयु वाचस्पत,

---

१. भरतस्तिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत् (वायु० ९९।३८)
२. ततस्ता मातर कुद्धा पुत्रान्निन्युर्यमक्षयम् (वायु० ९९।१३९)
३. महा० (१।२०।३८)

पर्वत, नारद, आदि को राम के साकालिक और चौबीसवेंयुग (५४०० वि० पू०) में रखकर अति भयंकर भूल की है। काशिराज दिवोदास, प्रतर्दन, क्षत्र और उनके पुरोहित भरद्वाज किसी प्रकार भी रामदशरथि के समकालिक नहीं हो सकते। भरद्वाज को पुराणों में भी उन्नीसवें युग का व्यास बताया है[1], इसी युग मे परशुराम ने हैहय अर्जुन का वध किया था। दीर्घजीवी भरद्वाजादि का जन्म अष्टादशयुग या उससे पूर्व हो चुका था।

अलीकयु[2] का पिता वाचस्पति बीसवें युग का व्यास था।[3] यद्यपि पुराणो मे व्यासपरम्परा का क्रम अस्तव्यस्त है, तथापि दीर्घजीवी वाचस्पति व्यास तत्पुत्र अलीकयु अष्टादशयुग में होने वाले प्रतर्दन के समय में ऋषि बन चुका होगा।

भरतसमकालिक भरद्वाज, प्रतर्दनादि का समयसम्बन्धी इतना दीर्घ विवेचन इतिहास के पूर्वाचार्यों द्वारा उत्पन्न भ्रांतिनो को अपास्त करने हेतु किया गया है।[4]

भरतदौःषन्ति का राज्यकाल अष्टादशयुग के अंत में ७००० वि० पू० से ७६०० वि० पू० था। त्रिशकु के पिता त्रय्यारुण और पितामह त्रिधन्वा (त्रिवृष्णसमकालिक) भरत का दीर्घशासन होना चाहिये। विदर्भ का पिता ज्यामघयादव भी भरत के समकालिक था, जिसकी पत्नी शिबिराज कन्या शैब्या थी।[5]

१८. वितथ भारद्वाज

पुराणो मे उपर्युक्त बृहस्पति तृतीय के पुत्र को 'वितथ' भरद्वाज कहा है और वैदिकग्रन्थो मे विदथिन्[6] कहा है। ऋग्वेद और बृहद्देवता मेराजर्षि

१. ततस्त्वेकोनविंशे तु परिवर्ते क्रमागते। व्यासस्तु भविता नाम्ना भरद्वाजो महामुनिः। (वायु० २३।१८६)

२. अथ ह स्माह दैवोदासि. प्रतर्दनो नैमिषीयाणां सत्रम्. .
तेषामलीकयुर्वाचस्पतो ब्रह्मास (शा० ब्रा० २३।५)

३. वायु० (२३।१९०)

४. भ्रांति—द्रष्टव्य—भा० बृ० इ० भाग २ (पृ० १२८ से १३३ पर्यन्त)

५. ज्यामघस्याभवद् भार्या शैब्या बलवती सती। (हरि० १।३६।१६)

६. बार्हस्पत्योभरद्वाजो विदथीति य उच्यते। (बृहद्दे० ५।१०२)

रथवीतिदार्भ्य, अर्चनाना आत्रेय, श्यावाश्व, तरन्त, तरन्तमहिषी शशीयसी, भरद्वाजपुत्री रात्रि, स्वनय भावयव्य और कक्षीवान् दैर्घतमस को समकालिक बताया गया है।

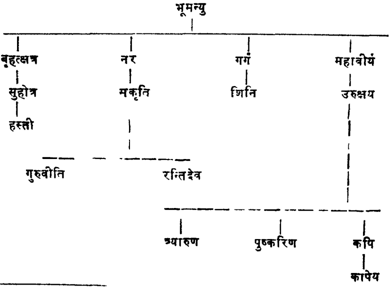
यह वितथ भरद्वाज या भारद्वाज ब्राह्मण से क्षत्रिय हो गया।[1] इसको द्विमुख्यायन और द्विपितृ भी कहते थे—

तस्माद्दिव्यो भरद्वाजो ब्राह्मणात्क्षत्रियोऽभवत्।
द्विमुख्यायननामा स स्मृतो द्विपितृकस्तु वै।

अतः वितथ भरत के पश्चात् राजा हुआ।[2] वितथ भरद्वाज का राज्य-काल ७६०० वि० पू० से ७५५० वि० पू० होना चाहिए।

१६. भुवमन्यु (भूमन्यु)

वितथ भारद्वाज का दायाद भुवमन्यु हुआ।[3] इसके वंशज गर्गादि ब्राह्मण हो गए, इसका वंशवृक्ष इस प्रकार था—



१. वायु० (९९।१५९)
२. ततोऽथ वितथे जाते भरतः स दिवं ययौ (वायु० ९९।१५८)
३. वितथस्यतु दायादो भुवमन्युर्बभूव ह। (वायु० २३।१५८)

ऋक्सर्वानुक्रमणी' के अनुसार विद्वानों ने उरुक्षय के पिता का नाम अमहीयव निश्चित किया है। अतः शुद्ध पुराणपाठ यह है—

"बृहत्क्षत्रोऽऽमहीयवो नरो गर्गश्च वीर्यवान् ।"

गर्ग से गार्ग्य, सकृति से साकृत्य और साकृत्यायन, कपि से कापेय ब्राह्मण हुए। आरुणि के पुष्करिणवशज भी ब्राह्मण हो गए, ये सभी आंगिरसपक्ष के ब्राह्मण थे, यह भारद्वाज आगिरस का प्रभाव था। इन सब को क्षत्रोपेत ब्राह्मण कहा जाता था।[२] कपि के इसी वंश में 'बोध' नाम का ऋषि हुआ, जिससे बोधायन ब्राह्मण हुए।[३]

कपि नाम के अनेक ऋषि हुए, एक कापेय शौनक अन्यत्र उल्लिखित है।[४] परन्तु आगिरस कपि के वंशज काप्य कहलाते थे। पातंजल काप्य[५] और पाल काप्य ऋषि प्रसिद्ध थे।

भरद्वाजवंशज नर, गर्ग, सुहोत्र, उरुक्षय आदि सभी ऋग्वेद के अनेक सूक्तों म ऋषि है। पार्जीटर ने गुरुवीति को गौरवीति शाक्त्य का भ्रम उत्पन्न किया है। भारद्वाज गौरवीति का गौरवीति शाक्त्य से कोई भी सम्बन्ध नही था वे पृथक् पृथक् समय मे, और पृथक् वंश मे हुए।

तरन्तपुरुमीढ़ भरद्वाज-जमदग्नि और माहेयक्षत्रियगण

वैदिकवाङ्मय मे बहुधा तरन्त, पुरुमीढ और भरद्वाज आदि का साथ-साथ उल्लेख आता है। इसी समय राजर्षि रथवीति दार्भ्य की पुत्री से अर्चनाना आत्रेय के पुत्र श्यावाश्व का विवाह हुआ। ऋषि और राजा तरन्त और पुरुमीढ़ को विददश्व का पुत्र और माहेय वंश का बताया गया है—

तरन्तपुरुमीढौ तु राजानौ वैददश्व्यृषी।[६]

माहेय क्षत्रिय किस वंश के थे, यह निश्चय नही हो सका है। जमदग्नि

१. ऋ० म० (पृ० २६)—'उरुक्षयः आमहीयवः।"
२. क्षत्रोपेता द्विजातय. सश्रिताऽऽङ्गिरस पक्षम्। (वायु० ६६।१६४)
३. कपिबोधादाङ्गिरसे (अष्टा० ४।१।१०७)
४. द्रष्टव्य—ऋग्वेद षष्ठमण्डल के ३१, ३२, ३५ और ४७ सूक्त।
५ (जै० ब्रा० ३।१६७) मे शाक्त्य गौरवीति और सकृति गौरवीति को एक ही बताया है।
६. बृहद्दे० (५।६२)

को माहेय का पुरोहित कहा गया है—

"जमदग्निर्ह वै माहेनाना (माहेयानां) पुरोहित आस ।"[1]

माहेय सभवत हैहयो का नामान्तर या शाखा थी, क्योकि निम्नमन्त्रो मे स्पष्ट कहा गया है कि भृगु—जमदग्नि को मार कर माहेय क्षत्रिय विनष्ट हो गये—

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन् । (जै० ब्रा० १।१६।१)

भृगु हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्या पराभवन् । (अथर्व० ५।१६।१)

वीतहव्य निश्चय ही कार्तवीर्य अर्जुन की संतति में थे—वीतिहोत्र (वीतहव्य) भोज, आवन्त, कुण्डिकेर (तुण्डिकेर) और तालजघ । हैहय वशज महिष्मान् ही सभवतः 'माहेय' था ।[2] जिसने माहिष्मतीपुरी बसाई ।[3] इस विषय का पूर्णविवेचन हैहयप्रकरण मे किया जाएगा. परन्तु सकेत है कि धन और दुहिताहेतु माहेय (हैहय) और भृगुओ मे सघर्ष हुआ ।[4]

अत. अर्जुन हैहय, जमदग्नि और भरद्वाज के समकालिक उन्नीसवेयुग (७६०० वि० पू० से ७५०० वि० पू०) के व्यक्ति थे ।

इसी माहेयवंश मे विददश्व के पुत्र तरन्त और पुरुमीढ़ हुए । यह पुरुमीढ माहेय, पौरव पुरुमीढ से पूर्ववर्ती एव पृथक् था । विददश्व की महिषी अर्चनाना ऋषि की पुत्री थी और तरन्त की महिषी का नाम शशीयसी था ।[5]

इसी युग मे उपर्युक्त हैहय सृञ्जय का पुत्र प्रस्तोक और अभ्यावर्ती चायमानसज्ञकराजद्वयी ने वार्शिखक्षत्रियो से पराजित होकर ऋषि भरद्वाज की शरण ली ।[6] भरद्वाज ने अपने स्थान पर अपने पुत्र पायु को प्रस्तोक साञ्जय का पुरोहित बनाया ।[7] प्रस्तोक ने इन्द्र (पुरन्दर) के

---

१ जै० ब्रा० (१।१५२)

२ तेषा कृतो महाराज हैहयाना महात्मनाम् ।
वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तय स्मृता । तौण्डिकेय इति ख्यातास्तालजघास्तथैव च । (हरि० १।३४।५२)

३. साहञ्जस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः । (हरि० १।३४।४)

४. जै० ब्रा० (१।१५२) तथा अथर्ववेद—(६।१३७।१)—या जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् । ता वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ।।

५ बृहद्दे० (५।६१)

६ बृहद्दे० (५।१२४)

७. वही (५।१२७)

सहाय्य से हर्यूपीया नदी तट पर अपने शत्रु वार्शिखो का संहार किया। तब उसने भरद्वाज और गर्ग को बहुत सा धन दान किया।[1] पार्जीटर ने सृञ्जय (पांचाल) के नाम साम्य से भ्रम मे पड़कर इस हैहय प्रस्तोक सार्ञ्जय और चायमान को सौभरि, त्रासदस्यु, दिवोदास, मुद्गल आदि का समकालीन बनाकर महती भ्राति उत्पन्न की है।[1] मुद्गल, दिवोदास पाचाल आदि बहुत उत्तरकालीन राजा थे, जैसा कि आगे निर्णय करेंगे।

पुराणों में अनेक पौरव राजाओं का अनुल्लेख

पार्जीटर पुराणो में उल्लिखित राजाओ को महान् यशस्वी और ऋग्वैदिक मन्त्रो मे उल्लिखित राजाओं को तुच्छ और हीन मानता है। यह मत सर्वथा विरोधाभासपूर्ण है।[1] पुराणो में उल्लिखित सभी राजा महान् या बड़े ही नही थे, उनकी वंशावलियों मे महान् और तुच्छ सभी का परिगणन है, परन्तु ऋग्वेद या अन्य वैदिकग्रन्थो मे उल्लिखित प्राय सभी राजा महान् थे। आधुनिक तथाकथित विद्वान् जिस तथाकथित महत्तम (?) सुदास पांचाल को वेदो मे उल्लिखित मानते है, परन्तु हमको सुदास पाचाल का किसी भी वैदिकग्रन्थ मे नामतक नही मिला, उसकी महानता की कहानी का तो कहना ही क्या? जिस महान् सुदास का वैदिक ग्रन्थो में वर्णन है वह पांचाल नही, ऐक्ष्वाक राजा (कल्माषपाद का पिता) सुदास था, इसीका दाशराज्ञद्वितीययुद्ध मे सम्बन्ध था, इसी ऐक्ष्वाकसुदास ने पौरव संवरण को परास्त किया था।[2] पार्जीटरादि की इस भ्राति का हम अन्यत्र खण्डन करेंगे।[3]

पुराणो मे शतश वशो और सहस्रो प्रतापी राजाओ का अनुल्लेख है यहाँ पर हम केवल उन कुछ पौरव राजाओं का उल्लेख करेंगे जिनका पुराणो मे नाममात्र भी उल्लिखित नही।

जिन पौरव राजाओ का वैदिकग्रन्थो में उल्लेख और पुराणों मे अनुल्लेख है, वे है—

---

१ वही (५।१३७।१४०)

२. संवरणसुदास के सम्बन्ध में द्र० पृ० १७२, भा० बृ० इ० भा० २,

३. द्रष्टव्य—वक्ष्यमाण संवरणप्रकरण

(१) देवश्रवा और देववात भारत

ऋग्वेद मे इनका उल्लेख है—अमन्थिष्टां भारतौ रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।[1]

(२) अश्वमेधभारत

अश्वमेधस्य दानाः सोम इव त्र्याशिर. ।[2] तथा 'भारतश्चाश्वमेधः ।

(३) सिन्धुक्षित् भारत

यह भारतवंशी राजा सवरण के समान घोरसकट मे चिरकाल प्रवास मे रहा।—"सिन्धुक्षिद् वै भारतो राजा ज्योग् अपरुद्धश्चरन् सोऽकामयताव स्व ओकमि गच्छेयम् इति सिन्धु वै चचार । सास्य सिन्धुक्षित्ता ।[3]

इसी प्रकार अन्य पौरवों का उल्लेख मृग्य है ।

त्रेधा विभक्त भरतराष्ट्र

पुराणो मे पौरव या भारत राजाओ के न्यून नाम मिलने का कारण यह है कि वह राष्ट्र अनेक छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त हो गया । इस कठोर ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख जै० ब्रा० ३।१८६ मे द्रष्टव्य है— त्रेधा भरतेषु राष्ट्रमासीत् । वैतहव्येषु तृतीयम् । मित्रवत्सु तृतीयम् । कृतवेशे तृतीयम् ।

स्पष्ट है कि भरतवंशीय वीतहव्य, मित्रवान् और कृतवान्नामक राजा थे, जिन का अन्यत्र उल्लेख नही मिलता ।

रन्तिदेव सांकृत्य—षोडशराजोपाख्यान में

महाभारत शान्तिपर्व और द्रोणपर्व के षोडशोपाख्यान के षोडश राजाओ मे रन्तिदेव साकृत्य के उल्लेख से उसकी महत्ता प्रस्थापित होती है । षोडश-राजोपाख्यान मे दाशरथि राम और उनके पूर्ववर्ती राजाओ का ही उपाख्यान है । राम का समय ५४०० वि० पू० था । रन्तिदेव का समय उन्नीसवे युग के अन्त या बीसवे युग के प्रारम्भ मे (७५०० वि० पू० से ७४०० वि० पू०); राम से दोसहस्र वर्षपूर्व था, इससमय से पूर्व परशुराम द्वारा सहस्रार्जुन का वध हो चुका था ।

---

१. ऋ० (३।२३।२)
२. ऋ० (५।२७।६), तथा सर्वा०, पृ० २७
३. जै० ब्रा० (३।८२)

रन्तिदेव पहले ऋषि और ब्राह्मण (ब्रह्मर्षि) था। किसी वाशिष्ठ ऋषि के प्रेरणा से वह राज्य पर अभिषिक्त हुआ।[1] महाभारत में भी इस घटना का संकेत है।[2] यहीं पर यह संकेत है कि सत्यसंध महाव्रत रन्तिदेव ने अपने प्राणों (भोजन) द्वारा ब्राह्मण के प्राणों की रक्षा की।[3] भागवत में रन्तिदेव के इसी आतिथ्य (दानशीलता) का भक्तिमय उल्लेख है।[4] इस घटना का स्वल्प संकेत षोडशराजोपाख्यान में भी है, जहां इन्द्र के वरदान से राजा आतिथ्यधर्म का पालन करता रहा।[5]

कालिदास के मेघदूत से ज्ञात होता है कि रन्तिदेव की राजधानी वर्तमान मध्यप्रदेश में प्राचीन दशपुर (मन्दसौर) में थी।[6] उसके यज्ञ चर्मण्वती (चम्बल) के तट पर हुए, जहां नदी के तट पर यज्ञों में अगणित गायों एवं सौवर्णमय पात्रों का आलम्भन (दक्षिणा या वध) हुआ। इसीलिए चर्ममला-दाधिक्य के कारण नदी का नाम चर्मण्वती हो गया—महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात् ससृजे यत ततश्चर्मण्वतीत्येवस्म विख्याता सा महानदी॥[7] नदी का नाम चर्मण्वती रन्तिदेव के समय पड़ा।

१६ बृहत्क्षत्र

भुमन्यु का दायाद यही बृहत्क्षत्र था। भुमन्यु का राज्यकाल ७५५० वि० पू० से ७५०० वि० पू० तक था तो बृहत्क्षत्र का राज्यकाल ७५०० वि० पू० से ७४५० वि० पू० तक में था।

---

१ ब्रह्मर्षिभूतश्च मुनेर्वसिष्ठाद्दध्रे श्रिय सार्कृतिरन्तिदेव.।
(बु० च० ११।१५)

२ महा० (१२।२३४।१७)

३ महा० (१२।२३४।१६)

४. भाग० (९।२१।२-१८)—यहीं पर यह प्रसिद्ध श्लोक है—
'न कामयेऽहम्...।"

५ सम्यगाराध्य य. शक्राद् वरं लेभे महातपा.। अन्न च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि। (महा० १२।३६।१२०)

६. मेघदूत (१।४६)

७. महा० (१२।२९।१२३); मेघदूत में इसका संकेत है—"सुरभितनयालम्भजा मानयिष्यन्॥"

२० सुहोत्र

भरद्वाज का वंशज होने से भारद्वाज[1] और वितथ का पौत्र होने से उसे "वैतिथि" कहा जाता था।[2] इस वैतिथि सुहोत्र ने सौवर्णमय मत्स्यादि नदियों में डाले थे। इसका हिरण्यमय यज्ञ कुरुजगल मे हुआ था।[3] इसका राज्यकाल दीर्घ होना चाहिए।

इसका समागम शिवि औशीनर से हुआ था, जो ऐक्ष्वाक राजा वसुमना और काशिराजप्रतर्दन के समकालिक था। यदि यह शिवि था[4] तो अत्यन्त दीर्घजीवी होगा, तथा अनेक शतवर्षायु होगा। शिवि के दीर्घायु होने से ही इसकी भेंट सुहोत्र से हो सकती है। महाभारत मे भी शिवि की श्रेष्ठता का सकेत है। शैव्य राजाओ से नारद का भी विशेष सम्बन्ध था।[5] यहाँ यदि इस प्रसग मे महाभारतकार ने सुहोत्र को बारम्बार 'कौरव' कहा है।[6] यह क्षेपककार या लिपिकार की त्रुटि नही है तो भरत और सुहोत्र के मध्य मे 'कुरु' नाम का कोई भारत राजा होना चाहिये। क्योंकि तथाकथित संवरण पुत्र कुरु सुहोत्र से बहुत उत्तरकालीन भारत था, इसके आधार पर सुहोत्र को 'कौरव' नही कहा जा सकता।

सुहोत्र का राज्यकाल ७४५० वि० पू० से ७३५० वि० पू० होना चाहिए। यह उन्नीसवे युग का मध्यकाल था। इसी समय अयोध्या मे हरिश्चन्द्र पुत्र रोहिताश्व के पुत्र हरितादि का राज्य होगा।

२१. हस्ती

सुहोत्र की पत्नी ऐक्ष्वाक कन्या सुवर्णा से हस्ती नाम का पुत्र हुआ,[7]

---

१ ऋ० (६।३१,३२) सूक्तो का द्रष्टा यही सुहोत्र भारद्वाज है।

२. महा० (१२।२६।२५)

३. महा० (१२।२६।२६)—हिरयमवहन् नद्यस्त्स्मिजनपदेश्वरे।" (१२।२६।२६)

४. प० भगवद्दत्त इस शिवि को उत्तरकालीन शैव्य राजा समझते थे, (भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ६६)

५. महा० (३।१६४, पृ०)

६ 'कुरुगाम-यनम. सुहोत्रो नाम राजा, '(श्लोक २),' कुरुःकौरव्योमृदेव' (श्लो० ४), 'एतच्छ्रुत्वा तु कौरव्यः शिबि प्रदक्षिणं कृत्वा' (श्लो० ७)

७. महा० (१।६५।३४

महाभारत की प्रथम पौरववंशावली में सुहोत्र के भ्राता हैं—दिविरथ, सुहोत्र सुहोता, सुहवि, सुमनु, ऋचीक ।[1]

हस्ती ने प्रसिद्ध हस्तिनापुर नगर बसाया, जो चिरकाल तक पौरवो की राजधानी रहा । प्रतीत होता है कि उस समय हस्ती के हाथियों का अति-बाहुल्य था, यही राजा के नाम हस्ती और नगर हस्तिनापुर से ज्ञात होता है ।

हस्ती का राज्यकाल ७३५० वि० पू० से ७२५० वि० पू० उन्नीसवें युग के अन्तिम चरण मे था ।

हस्ती की पत्नी का नाम यशोधरा था, जो किसी त्रैगर्तराज की पुत्री थी ।[2]

२२ विकुण्ठन

महाभारत की द्वितीय पौरववंशावली मे हस्ती का दायाद विकुण्ठन कथित है, अन्यत्र इसका नाम नही है । यह सर्वविदित है कि पौरव वंशावली अपूर्ण है, इसमे ऐसे अनेक राजाओ के नाम लुप्त हैं ।

विकुण्ठन की पत्नी दाशार्ही सुदेवा' थी जिसका पुत्र अजमीढ हुआ ।[3] अन्यत्र सभी पुराणादि मे अजमीढ को हस्ती का पुत्र बताया है ।

२३ अजमीढ़—महान वंशकर राजा

अजमीढ के दो अन्य विख्यात भ्राता थे—पुरुमीढ और द्विमीढ । प्रारम्भ मे तीनो ही भ्राता ब्राह्मण थे जिन्होंने वेदमन्त्रो का दर्शन किया ।[4]

युवावस्था मे अजमीढ ने दीर्घकालपर्यन्त तप किया ।[5] इसी मध्य उसने मन्त्र दर्शन किया । तप के पश्चात् ही वह राजा बना । पुराणो के अनुसार उसकी तीन पत्नियो के नाम थे—नीलिनी, केशिनी और भूमिनी । महा-

---

१ महा० (१।९४।२४-२५)

२ महा० (१।९५।३५)

३. वही (१।९५।३६)—ऋक्सर्वानुक्रमणी मे लिखा है—'पुरुमीढाजमीढौ सोहोत्रौ, ये दोनो ऋग्वेद सूक्त ४।४३-४४ के द्रष्टा हैं ।

४. वायु (९।११५)

५ महा० (१।९५।३७)

भारत, द्वितीय पौ० वंशावली मे उसकी चार पत्नियो के नाम हैं—कैकेयी, गान्धारी, विशाला, ऋक्षा।[1] स्पष्ट है ये चारो कैकेय आदि राजाओं की पुत्रियां थी : इनसे राजा के १२४ पुत्र हुए। निश्चय ही अजमीढ की और भी अधिक रानिया होगी। १२४ पुत्र उन सब के मिलकर ही होंगे। इनमे से अनेक पुत्रो ने अनेक नवीन वशो (राज्यो) की स्थापना की। ये पुत्र प्रायः अजमीढ की वृद्धावस्था मे हुए अथवा यों कहना अधिक उचित है कि भरद्वाज की कृपा से राजा की वृद्धावस्था तक अनेक पुत्र होते रहे। यही वही दीर्घजीवी भरद्वाज था, जिससे भरत के क्षेत्र मे 'वितथ' उत्पन्न हुआ।[2] इनमे प्रधान वशकर पुत्र थे—केशिनी से कण्व[3], धूमिनी से बृहद्वसु[4], नीलिनी से नील[5] और धूम्रवर्णा या ऋक्षा से ऋक्ष[6]—सज्ञकपुत्र उत्पन्न हुए। इनमे बृहद्वसु के वशजो मे नीपवश, नील के वश मे पाचाल और ऋक्ष के वश मे कौरव हुए जिनका आगे पृथक् पृथक् अध्यायो मे उल्लेख किया जायेगा।

कण्वसम्बन्धीभ्रान्ति

पाश्चात्य अक्षमता के कारण पार्जीटर ने कण्वसमस्या उत्पन्न करने की चेष्टा की है,[9] आश्चर्य है कि प० भगवद्दत्त पार्जीटर की अक्षमता मे फस गये, यह जानते हुए भी कि प्राचीन युगो मे एक नही अनेक कण्व हुए—

(१) एक कण्व नृषद (सभवत: विश्वामित्र) का पुत्र था, जिसने 'अखग' सज्ञक असुर की पुत्री से विवाह किया, इसके त्रिशोक और नभाक पुत्र हुए।[7]

(२) एक कण्व काश्यप था जिसका महाभारत और अभिज्ञान शाकुन्तल में उल्लेख है, यही कण्व आप्रतिरथ हो सकता है, जिसे भ्रान्ति से काश्यप समझा गया हो।[8]

---

१ वायु० (अ० ९९)
२. वायु० (९९।१६९)
३. वही (९९।१७०)
४. वही (९९।१९४)
५ वही (९९।२७)
६ वही (११)
७ जै० ब्रा० (३।७२)
८ द्र० (आदिपर्व)—
९. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १४८)

(३) तृतीय कण्व मतिनार का पौत्र और अप्रतिरथ का पुत्र था ।

पार्जीटर[1] इस प्राचीनतम अप्रतिरथ कण्व के अस्तित्व को स्वीकार नही करता, क्योकि दोनो कण्वो का पुत्र मेधातिथि बताया गया है। यह हम ययाति के प्रसंग मे सिद्ध कर चुके हैं कि अनेक वशों मे पिता पुत्रो के नामो मे अनेकत्र साम्य था, यथा—

	पिता	वंश	पुत्र
(१)	नभाक	मानव	अम्बरीष
(२)	नभाक	ऐक्ष्वाक	अम्बरीष
(३)	पिजवन	पांचाल	सुदास पैजवन
(४)	पिजवन	ऐक्ष्वाक	सुदासपैजवन
(५)	नहुष	सांवरण	ययाति
(६)	नहुष	ऐल	ययाति
(७)	जनमेजय, १	परीक्षित १	
(८)	जनमेजय परीक्षित २	(पाण्डव)	

पौरव वश मे जनमेजय और परीक्षित नाम का अनेक राजा हुए थे।

अत जब एक ही नाम के पितापुत्र अनेक वंशो मे सतत होते रहे है, तब मतिनार और अजमीढ के वश मे पृथक् कण्व और उनके पृथक् पुत्र मेधातिथि क्यो नही हो सकते। अत पार्जीटर को व्यर्थ की भ्राति हुई है कि आदिमकण्व आजमीढ ही था, जिसका पुत्र मेधातिथिकाण्व हुआ। हमारा दृढ मत है कि आदिम काण्व अप्रतिरथ का पुत्र था, जिसका पुत्र काण्व मेधातिथि था। अत कण्वसमस्या व्यर्थ है।

मतिनारपौत्र काण्व मेधातिथि का समय ८००० वि० पू० था, तो अजमीढपौत्र मेधातिथि काण्व का समय ७१०० वि० पू० बीसवेयुग का आदिम चरण था। दोनो कण्वो और मेधातिथियो मे प्राय एक सहस्राब्दी का अन्तर था।

नामसाम्यजन्यसमस्याय आदिकाल से उत्पन्न होती रही हैं, अतः विद्वान् यह स्वयं विचार सकते हैं।

---

१. उ० आदिपर्व

२ ए० इ० हि० ट्रे० पृ० २२७; तथा भा० बृ० इ० भाग २, पृ० ६७

द्विमीढवंशावली

पुराणों में अजमीढअनुज पुरुमीढ की कोई वंशावली नहीं मिलती। द्विमीढ की वंशावली इस प्रकार है[1]—

(१) द्विमीढ	(९) रुक्मरथ	(१७) —
(२) यवीनर	(१०) सुपार्श्व	(१८) —
(३) धृतमान्	(११) सुमति	(१९) —
(४) सत्यधृति	(१२) सन्नतिमान्	(२०) —
(५) दृढनेमि	(१३) सनति	(२१) उग्रायुध
(६) सुवर्मा	(१४) कृत	(२२) क्षेम
(७) सार्वभौम	(१५) —	(२३) सुवीर
(८) महत्	(१६) —	(२४) नृपजय
		(२५) बाहुरथ

इनमे द्विमीढ से संनति (१-१३) पर्यन्त किसी राजा का कोई वृत्तान्त ज्ञात नही और ये भी प्रधान पुरुषो के नाम ही प्रतीत होते हैं, न जाने कितने पुरुषो (पीढियो) के नाम छोडे गये है, यह अज्ञात एव अज्ञेय है।

हमारी गणना से हिरण्यनाभ कौशल्य अट्टणार का समय भारतयुद्ध से न्यूनतम एक सहस्राब्दीपूर्व था। योगी हिरण्यनाभ दीर्घजीवी था, जो अनेक शतियो मे सभवत: प्रतीप कौरव के समय तक जीवित रहा। इसका शिष्य कृत भी दीर्घजीवी होगा। इसका समय ४१०० वि० पू० से ३७०० वि० पू० के मध्य होना चाहिये।

अजमीढ, द्विमीढ का समय ७००० वि० पू० के लगभग था, बीसवेयुग के मध्य मे, सगर और बाहु मे कुछ वर्षपूर्व। तीन सहस्रवर्ष (७००० वि० पू० से ४००० वि० पू०) के मध्य केवल १४ पीढियों के नाम ज्ञात हैं, स्पष्ट है न्यूनयम ३० पीढियो के नाम लुप्त हैं।

कृत और (उसके २४ शिष्यो) ने २४ प्राच्य सामसहिताओ का प्रवचन किया।[2] इसमे कृथुम भी सभवत. कृत की शिष्यपरम्परा मे हुआ, न कि

१. वायु० (९९।१८४।१९३)

२. शिष्यो हिरण्यनाभस्य कौथुमस्तस्य महात्मनः। चतुर्विंशतिधातेन प्रोक्ता स्ताः साससहिता। स्मृतास्ते प्राच्यनामान.।। (वायु० ९९।१९०-८१), वायु० (२३।१८८) मे हिरण्यनाभ कौशल्य और कक्षीवान् और कृथमि को १९ वे युग मे रखा है, यद्यपि यहाँ पुराण पाठभ्रष्ट है, तथापि हिरण्यनाभशिष्यकुथुमि की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है।

व्यासशिष्य जैमिनि की शिष्यपरम्परा में, हमारी दृष्टि मे वेदकर्ता होने के कारण हिरण्यनाभ २८वा और कृत २९वां व्यास था। वायुपुराण के पाठ से यही प्रमाणित होता है।

उग्रायुध को 'कीर्ति'[1] (कृत का पुत्र) कहा गया है। यह उग्रायुध कृति का साक्षात् वशज नही हो सकता, पार्जीटर ने भी इसके मध्य पांच पीढी का अन्तराल माना है।[2] हमारी दृष्टि मे और भी अधिक पीढियो का अन्तर होना चाहिए। उग्रायुध, शन्तनु कौरव के समकालिक था, अर्थात् लगभग ३३५० वि० पू० इसका राज्यारम्भ हुआ। उग्रायुध भी दीर्घजीवी था, जिसने द्रुपद केप्रपितामह पृषत और नीप और दूसरे राजाओ को भी मारा।[3] अतः उग्रायुध, शन्तनु नही, प्रतीप और पाचाल ब्रह्मदत्त के समकालिक था। भारतयुद्ध के समय द्रुपद ही अत्यन्त वृद्ध[4] था, पुनः उसके पिता का पितामह तो बहुत पूर्व हुआ, अत. उग्रायुध का समय ५२५० वि० पू० से भी कुछ पूर्व ५३५० वि० पू० होना चाहिए।

· उग्रायुध का एक नाम जनमेजय था, ऐसा अश्वघोष ने लिखा है।[5] शन्तनु की मृत्यु के पश्चात् विचित्रवीर्य और व्यास की माता सत्यवती (काली - मत्स्यगन्धा) के प्रति कामयाचना करने के कारण भीष्म द्वारा उग्रायुध जनमेजय का वध हुआ।[6] यह घटना ५२०० वि० पू०, भारतयुद्ध से लगभग १२० वर्ष पूर्व घटित हुई।

उग्रायुध का वशज बाहुरथ भारतयुद्ध के समय जीवित था।

अजमीढ़ का राज्यकाल

बीमवेयुग के व्यास वाचश्रवा थे, उनके पुत्र अलीकयु का सवाद बेवोदासि प्रतर्दन से हुआ था।[7] वैदिक ऋषि सुबन्धु, श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु—

१. कातिम्प्रायुध. सोऽथवीर पौरवनन्दन ॥ (वायु० २३।१९१)

२. हरि० (१।२०।४५)

३ श्रीकृष्ण जो स्वयं दीर्घजीवी थे, द्रुपद से कहते है—भवान् वृद्धतमो राज्ञा वयसा च श्रुतेन च। शिष्यवत्ते वय सर्वे भवामेह न सशयः। (उद्योग० ५७६)

४. सौन्दरानन्द (७।४४)

५. हरि० ।१।२०।५० तथा १।२०।७०-७१)

६. म० भा० (२९।५)

७. तपसोऽन्तेसुमहतो राज्ञो वृद्धस्य धार्मिकः (वायु ९९।१९८)

गौपायन के पुत्र का या गोप के पौत्र, बृहदुक्थ वामदेव्य, रथप्रोष्ठ आसमाति (ऐक्ष्वाक) राजा, किलात आकुली मायावी असुरद्वय (द्वितीय)[1], संभवतः अजमीढ के समकालिक पुरुष थे।

राजर्षि अजमीढ दीर्घायु एवं तपस्वी था।[2] अतः उसका राज्यकाल निश्चय ही दीर्घ था। बीसवेंयुग के अन्तिमचरण ७००० वि० पू० से ६६०० वि० पर्यन्त उसका राज्यकाल संभावित है। ऐक्ष्वाक राजा असमाति पुत्र रथप्रोष्ठ किस प्रदेश का राजा था, यह अज्ञात है। उस समय संभवतः, अयोध्या में बाहु (सगरपिता) का राज्य था।

प्रसिद्ध समकालीन राजा

क्र० सं०	पौरव	अंग	ऐक्ष्वाक	यादव	काशी	शिबि	ऋषि	अज्ञातवंश	असुर
१	मतिनार	बलि	युवनाश्व						
२	तंसु	अंग	मान्धाता				उतथ्य		
३	ईलिन	बृहद्रथ	पुरुकुत्स				दीर्घतमा		
४	दुष्यन्त		त्रसदस्यु				भरद्वाज		
५	भरत		सम्भूत						
६	भुमन्यु		अनरण्य						
७	बृहत्क्षत्र		त्रसदश्व		भीमरथ				
८	सुहोत्र		हर्यश्व २		दिवोदास				
९	हस्ती	द्विविरथ	वसुमना		प्रतर्दन	गोपति			
१०	अजमीढ		त्रिधन्वा		वत्स	शैब्य			
११	ऋक्ष २		त्र्यरुण	ज्यामघ	अलर्क				
१२	श्रुनर्वन्		सत्यरथ	विदर्भ			अगस्त्य	ब्रध्यश्व	इल्वल
१३			त्रिशंकु						वातापि
१४			हरिश्चन्द्र						
१५.									

---

१ एक असुरद्वयी किलाताकुली मनु के समय में भी थे;
(श० ब्रा० १।१।४।१४)

अजमीढ़ के पश्चात् पौरववंश अस्तव्यस्त

पुराणों में पुरु से अजमीढ़पर्यन्त की वंशावली प्रायः अस्तव्यस्त हो गई है। पुराणों में अहंयाति, सार्वभौम आदिसंज्ञक ६ राजाओं को सवरण और कुरु के पश्चात् रखा है, पार्जीटर ने उनको यथातथ्य रखा है।[1] प० भगवद्दत्त ने केवल सकेतमात्र किया है कि इन राजाओं का 'स्थान'[2] अजमीढ के पश्चात् होना चाहिये, क्योंकि महाभारत की द्वितीय पौरव वंशावली में इसके प्रमाण मिलते हैं कि ये दश राजा जिन अन्य राजाओं के समकालिक थे, उनका समय प्राय निश्चित है।

२४. ऋक्ष २

अजमीढ का पौरववंशकर पुत्र ऋक्ष था, जो ऋक्षा (धूम्रवर्णा) से उत्पन्न हुआ था। रौद्राश्व के पुत्र ऋचेयु से भ्रांति होकर इसके स्थान को द्वितीय वंशावली मे, इसे मतिनार का पिता कहा गया है, वास्तव मे वह ऋचेयु ही मतिनार का पिता था और यह ऋक्ष २ था, जो अजमीढ़ का पुत्र था।

संभवत इसी ऋक्ष २ का पुत्र श्रुतर्वण (श्रुतर्वा) था, जिसकी ऋग्वेद (८।७४) मे दानस्तुति[3] है। इसी श्रुतर्वन् मे अगस्त्य ने धनयाचनाहेतु भेट की।[4] इसके समकालिक पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु (ऐक्ष्वाक), अश्वत्थ (अज्ञात वशक) और विदर्भ को बताया है। विदर्भ, ऐक्ष्वाकराजा त्रिशकु के समकालिक था।[5] अत. भारत के उक्त सदर्भ मे त्रसदस्यु का समावेश भ्रामक है। आजमीढ ऋक्ष के ये सभी राजा समकालिक थे। त्रिवृष्ण (त्रिधन्वा) हरिश्चन्द्र का पितामह था। परन्तु ऋग्वेदोक्त त्र्यरुण (त्रिशकु) के समकालिक पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु कोई अन्य वश या ऐलवश का कोई राजा हो सकता है। अत विदर्भ, त्रैवृष्ण, त्र्यरुण (त्रिशकु), आर्क्ष श्रुतर्वा (आजमीढ़) समकालिक नृपति थे। इनका समय उन्नीसवे युग (७६०० वि०

---

१ ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १४८)

२. भा० बृ० इ०, भा० २, (पृ० ७६ तथा ६७)

३. आर्क्षस्य श्रुतर्वणो दानस्तुतिः। (ऋ० सर्वा, पृ० २६)

४. ततो जगाम कौरव्य सोऽगस्त्योऽभिक्षितु वसु। श्रुतर्वाणं महीपाल य वेदाभ्यधिकं नृपैः। (म० ३।६८।१)

५. वायु० (८८।७७)

पू० से ७१०० वि० पू०) के मध्य सभवत ७५०० वि० पू० के निकट था। इनके समकालिक अश्वमेधसज्ञक भारत राजा था।[१]

पौरव ऋक्षद्वयी में न्यूनतम सहस्रवर्ष का अन्तर

अजमीढपुत्र ऋक्ष २ एव सवरणपिताऋक्ष ३ मे न्यूनतम एक सहस्र वर्ष का अन्तर था। नामसाम्य के कारण इन दोनो ऋक्षो के मध्य की वंशावली में पुराण एव महाभारत मे भारी गडबडी हुई। 'श्रुतर्वन्' और सवरण' के उच्चारण मे भी ध्वनिसाम्य है। अत: इन दोनो को एक समझ कर भी गड़बडी हुई, यद्यपि आर्क्ष श्रुतर्वन्, आर्क्ष सवरण से एक सहस्राब्दी पूर्व (७५०० वि० पू०) हुआ। आर्क्ष श्रुतर्वा, त्रिशकु और हरिश्चन्द्र के सम-कालिक था, जबकि आर्क्ष सवरण ऐक्ष्वाकराजा सौदास कल्माषपाद (मित्रसह) के समकालिक ६५०० वि० पू०।

२५ **अहयाति**

ऋचेयु और रौद्राश्व के पूर्वज ययाति का पुत्र रहस्याति था। महाभारत की द्वितीय वशावली मे अजमीढ के वशज अहयाति से रहस्याति की भ्रान्ति उत्पन्न होने से दोनो को एक मानकर वशावली मे भ्रंशता हुई।

आजमीढ अहयाति उन्नीसवे युग (७४८० वि० पू० मे ७१२० वि० पू०) के मध्य मे होने वाले सहस्रार्जन के पिता कृतवीर्य का जामाता था। कृत-वीर्य की पुत्री भानुमती से इसका विवाह हुआ था।[२] कृतवीर्य, अर्जुन आदि अजमीढ पौरव और हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक के पश्चात् ही हुए थे। कार्तवीर्य अर्जुन के समकालिक अहयाति का समय ७४८० वि० पू० से ७३८० वि० पू० के मध्य होगा।

२६. **सार्वभौम**

अहयाति का पुत्र सार्वभौम हुआ, इसकी पत्नी सुनन्दा कैकेयी (कैकेय राजकन्या) राजकुमारी थी।[३] इसका समय ७३८० वि० पू० से ७३३० वि० पू० होगा।

---

१. ऋ० (५।२७।१,३,६)
२. महा० (३।६५।१०)
३. म० (३।९५।१६)

२७. जयत्सेन

यह सार्वभौम-सुनन्दा कैकेयी का पुत्र था। किसी विदर्भराज की पुत्री सुश्रवा इसकी भार्या थी।[1] इसका अनुमानित समय ७३३० वि० पू० से ७२८० वि० पू० था।

२८. अवाचीन

जयत्सेनपुत्र अवाचीन की पत्नी भी अन्य वैदर्भी थी, इसका समय ७२८० वि० पू० से ७२३० वि० पू० अनुमत है।

२९ अरिह

अवाचीनपुत्र अरिह की भार्या कोई अङ्गराजकुमारी थी,[2] इसका समय ७२३० वि० पू० से ७१८० वि० पू० था। वालेय क्षत्रियअग दीर्घतमा मामतेय औचत्य द्वारा नियोग से उत्पन्न था, अंग बृहद्रथ, मान्धाता के समकालिक था। अरिह का श्वसुर अगराज बहुत उत्तरकालीन अगराज था।

३०. महाभौम

किसी अज्ञातवंशज प्रसेनजित् की पुत्री सुयज्ञा इसकी भार्या थी।[3] इस समय बीसवायुग (७१२० वि० पू० से ६८६० वि० पू०) प्रारम्भ हो चुका था। महाभौम का समय इसी युग के मध्य होना चाहिये।

३१. अयुतनायी

यह महाभौमपुत्र था। इसकी पत्नी राजा पृथुश्रवा की दुहिता काम्या' थी। पुराणो की अपूर्ण वशावलियो मे पृथुश्रवा नाम का राजा दृष्टिगोचर नही होता, परन्तु ऋग्वेद मे कानीत पृथुश्रवा की दानस्तुति श्रूयमाण है। इसने ऋषि वश अश्व्य को महादान दिया।[4]

---

१. म० (३।७५।१७)
२. म० (३।९५।१९)
३. म० (३।९५।२०)
४. यथा चिद्वशोऽश्व्यः पृथुश्रवसि कानीतो उ स्या व्युष्यादवे।
(ऋ० ८।४६।२१)

३२ अक्रोधन

यह आयुतनायी का पुत्र था, जिसका विवाह कलिंगराजपुत्री करम्भा से हुआ।

३३ देवातिथि

अक्रोधन पुत्र देवातिथि का विवाह विदेहराज पुत्री मर्यादा से हुआ।

३४. अरिह

देवातिथि पुत्र अरिह का विवाह अगराजपुत्री सुदेवा से हुआ। महाभारत मे उपर्युक्त अरिह का पुत्र पुन: ऋक्ष बताया गया है। निश्चय ही पौरववश मे ऋक्षसज्ञक अनेक राजा हुए, जिसमे वशावली मे भ्राति एव भ्रंशता उत्पन्न हुई।

उपर्युक्त दश राजाओ का समय उन्नीसवे युग ७४८० वि० पू० से इक्कीसवें युग के मध्य के चरण ६४०० वि० पू० के मध्य था। इस एक सहस्रवर्ष मे दश से अधिक राजा होने चाहिये—न्यूनतम २० राजा। पुराणवशावली की भ्रंशता के अतिरिक्त शताब्दियोपर्यन्त पौरवराजाओ की विपत्ति एव राज्यच्युति भी इस न्यूनसख्या का कारण है।

वायुवर्णित वशावली

इसके अनुसार अजमीढ का पुत्र ऋक्ष वशप्रवर्तक था। जिसकी वशावली इस प्रकार कथित है—१. अजमीढ, २ ऋक्ष, ३ परीक्षित्, ४ जनमेजय, ५, सुरथ, ६ भीमसेन, ७ जह्नु, ८ सुरथ ९. विदूरथ, १० सार्वभौम, ११ जयत्सेन, १२ अराधित, (अक्रोधन) १३ महासत्व, १४ अयुतायु, १५. अक्रोधन, १६ देवातिथि, १७ ऋक्ष, १८. दिलीप, १९. प्रतीप, २० शन्तनु।[1]

उपर्युक्त वशावली मे सुरथ, भीमसेन, विदूरथ और ऋक्ष की पुन पुन. आवृत्ति से इसकी भ्रंशता स्वयसिद्ध है।

श्रुतर्वन् आर्क्ष और सवरण आर्क्ष प्रसग मे पिछले पृष्ठ पर कह चुके हैं कि इनमें न्यूनतम एक सहस्राब्दी का कालान्तर था। ऋक्ष १ और ऋक्ष २ के मध्य मे विदूरथ, सुरथ, भीमसेन आदि अनेक राजा हुए, पुराणपाठ की

१. वायु० (९९।२२९)

शुद्धता के, अभाव है शुद्ध वंशावली का निर्णय असंभव है। परन्तु हमने अपना मत लिख दिया है।

इक्ष्वाकुओं द्वारा पौरववंशच्छेद

सवरण से बहुत पूर्व के समय (बीसवें-इक्कीसवें युग मे ७१६०-६८०० वि० पू० के मध्य) जब वाच.श्रवा व्यास थे, रथप्रोष्ठ का पुत्र असमाति था, जिसके समय सुबन्धु' आदि भ्रातृत्रयी (गौपायन आत्रेयो) को किराताकुली असुरों ने अभिचार माया द्वारा नष्ट करना चाहा।[1] उपर्युक्त असम्माति का पुत्र राजा अभयद था। इसने भरत (पौरव) क्षत्रियो पर आक्रमण कर राज्य मे उखाड़ दिया, भरतो ने सिन्धुनदी के निकुज और पर्वत पर शरण ली।[2]

उपर्युक्त रथप्रोष्ठ, असमाति और अभयद ऐक्ष्वाक कहाँ केराजा थे, यह ज्ञात नही होता। सभव है कि ये ऐक्ष्वाक, राजा सुदास पैजवन ऐक्ष्वाक के समय मे ही किसी अन्य प्रदेश के शासक हो। निश्चय ही सिन्धुजनपद के निकट वसाति आदि मे ऐक्ष्वाक शाखा का राज्य था, क्योकि भारतयुग मे सिन्धुराज जयद्रथ का एक मित्र राजा इक्ष्वाकुराज सुबल था।[4] पहिले वैश्वामित्र ब्राह्मणो की ऐक्ष्वाकुओ से मैत्री थी, तदुपरान्त वैश्वामित्र ऋषि इक्षाकुओ से गाये न देने के कारण द्वेष करने लगे।[5]

दाशराज्ञद्वितीययुद्ध के विजेता ऐक्ष्वाक सुदास पैजवन (६५०० वि० पू०) ने भरतो को उखाडा था।[6] ऐक्ष्वाक सुदास ने सवरण के पिता ऋक्ष को परास्त किया होगा। इसके पश्चात् आर्क्ष सवरण भी राज्य पर जम

---

१. वायु० (२३।१९०) तथा (२३।१९४)

२ बृहद्दे० (७।८५-८८), जै० ब्रा० (३।१६८) तथा ऋग्वेद (५।२४) एव (१०।५७), सूक्त

३. भरता ह वै सिन्धोरपरतार आसु: इक्ष्वाकुभिरुद्बाढा. तेषु ह विश्वामित्र जमदग्नी ऊषतु। स. हेन्द्रोऽभययदम् आसमात्य हरी ययाच।...अथ ह वा इमानि वनानीमाश्च नद्योऽपरतार आसु: पुरा सिन्धो आसु.। (जै० ब्रा० ३।२२८-२९)

४. इक्ष्वाकुराज सुबलस्य पुत्र। (महा० ३।२६५।६)

५. विश्वामित्रजमदग्नी ह इमा इक्ष्वाकूणा गा विन्दध्वम् (३।२२८)

६. जै० ब्रा० (३।२२८)

नहीं सका, वह सिन्धुनिकुंज मे भटकता रहा, उसे परास्त करनेवाला भृम्यश्व का पिता तृक्ष (क्रिवि = पांचाल) होगा, जिसे ऋग्वेद मे तृत्सु[1] कहा है। सहदेव का पिता सुदास पाचाल बहुत उत्तरकालीन राजा था। सुदास पांचाल, ऐक्ष्वाक सुदास के ५०० वर्ष पश्चात् (६००० वि० पू०) का राजा था, वह रघु प्रथम या द्वितीय खट्वाङ्ग के समकालिक राजा था।

सूर्यकन्या तपती (पौंबिकी)

सिन्धुकुंज मे रहते हुए ऐक्ष्वाककन्या तपती का विवाह सवरण से हुआ। महाभारत मे मित्रसह (कल्माषपाद सुदास) की कन्या तपती को भ्रम से वैवस्वती (सूर्यकन्या) बना दिया है, इस भ्रम का कारण है तीन नाम -- तपती, मित्र(+ सह), और तपन (सूर्यवंश)। सुबन्धु कवि ने वासवदत्ता मे स्पष्ट लिखा है—'सवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात्' (पृ० ३३६) स्पष्ट है कि तपती 'मित्र' नामक राजा की पुत्री थी और उस समय मित्र या मित्रसह सूर्यवंशी कल्माषमपाद ही था। वेद मे 'मित्र' सूर्य (नक्षत्र) को भी कहते है, अतः इन्ही सभी शाब्दिक भ्रमजाल से तपती को सूर्यकन्या बना दिया गया। सभवत: शक्ति वाशिष्ठ ने मित्रसह की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी मदयन्ती से नियोग के सुअवसर पर तपती का विवाह सवरण से करा दिया होगा और उसका राज्य भी प्राप्त करवा दिया।[2] वशिष्ठ ने द्वादश वर्ष की अनावृष्टि के पश्चात् कुरुराष्ट्र मे वृष्टि भी कराई।[3] महा० (१।१७२।३७) के अनुसार सवरण द्वादशवर्ष प्रवास (वन) मे रहा, इस मध्य द्वादशवर्ष अनावृष्टि रही।[4] तदन्तर राज्यप्राप्ति के पश्चात् उसने द्वादशवर्ष यज्ञ किए।[5] महाभारत (१६।६४।४१) के अनुसार भारत क्षत्रिय

---

१ जै० ब्रा० (३।२३) शा० श्रौ० (१६।११।१४) महा० (१२।५६।४२) गौ० गृ० (१।१।११) नि० (२।७।२४)—सभी सन्दर्भो मे ऐक्ष्वाक सुदास का उल्लेख है, जिसने दश राजाओं को जीता (ऋ० ७ मण्डल) सुदास पाचाल का यहा कही भी सकेततक नही।

२. महा० (१२।२३४।३०)

३. महा० (३।१७३।४६), तथा महा० (१२।२३४।२७)

४. महा० (१।१७२।३८)

५. महा० (१।१७२।४८)

एकसहस्रवर्षपर्यन्त सिन्धुनद के निकुंज में रहे।[1] प्रकारान्त से यह ऐतिहासिक तथ्य इस प्रकार सत्य हो सकता है कि न्यूनतम तीन बार पौरव राज्य सहस्र-सहस्रवर्षों के लिए उच्छिन्न हुआ—

प्रथमबार—आजमीढ ऋक्षपुत्र श्रुतवर्ण से आर्क्ष सवरणतक (६५०० वि० पू० से ५५०० वि० पू० पर्यन्त)।

द्वितीय बार—संवरण से कुरुपर्यन्त परीक्षितपर्यन्त (५४०० वि०पू० से ४४०० वि० पू० पर्यन्त)

तृतीय बार—पारीक्षित जनमेजय से पारीक्षित् भीमसेनपर्यन्त। लगभग ढाईतीनसहस्रवर्ष पर्यन्त, आर्क्ष श्रुतर्वा (६५०० वि० पू०) से कुरुपर्यन्त ३७०० वि० पू० पर्यन्त हस्तिनापुर मे पौरवराज्य सुस्थिर नहीं रहा। बीच-बीच में इक्का दुक्का राजा ही राज्य कर सके।

कुरु से शतानीक जनमेजयपर्यन्त—एक सहस्राब्दी स्थिर शासन

पौरवराज्योच्छेद का सर्वोत्तम प्रमाण है कि सवरण या कुरु से पारीक्षित् जनमेजयपर्यन्त भी कोई व्यवस्थित वंशावली नहीं मिलती। प० भगवद्दत्त ने महाभारतस्थ कौरववंशावली का वैदिकग्रन्थों के सहाय्य से यत्किंचित् उद्धार किया है।[2] अतः उसी के अनुसार निजी संशोधनों के साथ उसे आगे उद्धृत करेंगे।

कुरु या परीक्षित् जनमेजयप्रथम से जनमेजयद्वितीय (पाण्डव) या तत्पुत्र शतानीकपर्यन्त एक सहस्राब्दी या तीनयुग (३६०×३ =१०८० वर्ष) व्यतीत हुए—अर्थात् अठ्ठाइसवें युग मे ४१६० वि० पू० या स्थूलरूप से ४००० वि० पू० पौरव (कौरव) वंश का पुनरुदय हुआ। प० भगवद्दत्त जी ने महाभारत और मत्स्यपुराण के प्रमाण से यही तथ्य लिखा है—

> पुरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव।
> इद वर्षसहस्राय राज्यं कारयितु वशी॥[3] (महा०)

---

१. "सिन्धोर्नदस्य महतो निकुंजे न्यवसत् तदा। तत्रावसन् बहून् कालान् भारता दुर्गमाश्रिता। तेषां विवसतां तत्र सहस्रपरिवत्सरान्॥" किसी पौरवशाखा का शासन चिरकाल तक सिकन्दर के समय तक पंजाब-सिन्धु प्रदेश मे रहा, एक तथ्य है।

२. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग २, अध्याय—अष्टाविंशति

३. तुलना कीजिये (महा० १।४५१)

इससे भी अधिक स्पष्ट प्रमाण यह है—जहा शौनक शतानीक से कहता है—

इदं वर्षसहस्राणा राज्य कुरुकुलागतम् । (मत्स्य० ३४।३१)

निश्चय ही कुरु से शतानीकपर्यन्त एक सहस्रवर्ष हो चुके थे । कुरु की वशावली महाभारत प्रथम कौरववशावली इस प्रकार है—

कुरु

अश्ववान्　अभिष्वान्　चित्ररथ　मुनि　जनमेजय

वनाति　महातेज　पाण्डु　बाह्लीक　निषध　जाम्बूनद　कुण्डोदर
पदाति　धृतराष्ट्र　हस्ती　वितर्क　क्राथ　कुण्डिन
हविश्रवा　इन्द्राभ　भुमन्यु

परिक्षित　शबलाश्व　अभिराज　विराज　शल्मल　उच्चैःश्रवा　भद्रकार　जितारि
जनमेजय　कक्षसेन　उग्रसेन　चित्रसेन　इन्द्रसेन　श्रुतसेन (सुषेण)　भीमसेन

भीमसेन (=धृतराष्ट्र)
सुनेत्र　प्रतीप　धर्मनेत्र

शन्तनु　देवापि　बाह्लीक

प० भगवद्दत्त ने कुरु से शन्तनु तक के राजाओ का व्यक्तिगतकाल निर्णय करने मे असमर्थता व्यक्त की है ।[1] हम कुरु से जनमेजयपर्यन्त राजाओ का राज्यकाल निर्देश करने का प्रयत्न करेगे ।

पण्डितजी ने शन्तनु का ही नाम 'महाभिष' बताया है जो भ्रामक है, यह महाभिष कोई ऐक्ष्वाक राजा था, ऐसा महाभारत मे स्पष्ट लिखा है ।[2]

---

१. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० १४०

२. इक्ष्वाकुवशप्रभवो राजाऽऽसीत् पृथिवीपति ।
महाभिष इतिख्यात· सत्यवाक् सत्यविक्रम: ।। (महा० १।९६।१)

अतः महाभिष नाम शन्तनु का कदापि नही था, ऐसा उल्लेख कही भी नही है। पुराणों से यह ज्ञात होता है कि प्रतीप से पूर्व दिलीप, भीमसेन और ऋक्ष नाम के राजा अवश्य हुए और महाभारत द्वितीयवंशावली मे विदूरथ और अनश्वा = अभिश्रवा का अतिरिक्त नाम है।

समानान्तर पीढ़ियो के पूर्ववर्ती कौरव भ्रातृ-राजाओ ने भीष्म—चित्रवीर्य विचित्रवीर्य, धृतराष्ट्र-पाण्डु, दुर्योधन युधिष्ठिर के समान पृथक्कालो मे राज्य किया होगा। यथा दुर्योधन (३६ वर्ष) और युधिष्ठिर का (३६ वर्ष) राज्यकाल मिलाकर ,एक पीढी का राज्यकाल ७२ वर्ष हुआ। इसी प्रकार प्रतीप + शन्तनु के पूर्ववर्ती राजाओ का सम्मिलित राज्यकाल दीर्घ होगा। अत. कुरु से युधिष्ठिरपर्यन्त की न्यूनतम १५ पीढ़ियो का राज्यकाल न्यूनतम १००० वर्ष अवश्य था; (७० × १५ - १०५०) इससे अधिक हो सकता है, न्यून नही।

१. कुरु

भरत के समान निश्चय ही कुरुवंशप्रवर्तक राजा हुआ, जिससे कुरु के पश्चात् भारतवंश कौरववंश कहलाने लगा। उसके दीर्घकालीन तप एव (कर्षण) कृषिका उल्लेख पुराणो मे मिलता है। उसकी तपोभूमि कुरुक्षेत्र महत्तम तीर्थ बन गया।[1]

कुरु की पत्नी का नाम दाशार्ह राजकुमारी शुभागी था।[2]

कुरु के पाच पुत्रो[3]—मे चित्ररथ या विदूरथ[4] दायाद था। वायु० एव मत्स्य० मे सुधन्वा, जह्नु, परीक्षित् और प्रजन, हरिवंश मे सुधन्वा, सुधनु परीक्षित् और जनमेजय और विष्णु० मे तीन ही नाम है—सुधनु, जह्नु और परीक्षित्।

हमारे मत मे कुरु का दायाद विदूरथ या चित्ररथ था, परीक्षित् कुरु का प्रपौत्र या पौत्र था। महाभारत, प्रथम वंशावली मे चित्ररथ का नाम

---

१ तस्यनाम्नाभिविख्यात पृथिव्या कुरुजागलम्। कुरुक्षेत्रे स तपश्चक्रे महातपाः। (म० १।६४।४६-५०)—'स प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्र चकार ह।' (हरि0 १।३२।४७)

२. महा० (१।६५।३६), गीताप्रेससस्करण, प्रथमवंशावली मे वाहिनी है।

३. महा० (१।६४।५०-५१)

४. महा० (१।६५।४०) मे नाम 'विदूर' पाठभ्रंश है।

और द्वितीय वशावली मे विदूरथ नाम है। पुराणसाक्ष्य के आधार पर कुरु का राज्यकाल भारतयुद्ध से एक सहस्राब्दीपूर्व ४०८० वि० पू० से ४००० वि० पू० तक होना चाहिए।

यह पूर्ण संभव है कि कुरु के अन्य पुत्रो...अभिष्वान्, जनमेजय आदि ने भी कुछ काल राज्य किया हो, जैसा कि उत्तरकालीन उदाहरणो से ज्ञात होता है।

२. **विदूरथ (चित्ररथ)**

इसकी पत्नी का नाम सम्प्रिया (माधवराजकन्या) था।[1] इसका राज्यकाल ४००० वि पू० से ३९५० वि० पू० तक संभावित है।

३ **अनश्वा**

इसकी पत्नी मगधराजकुमारी अमृता थी।[2] इसका राज्यकाल ३९०० वि० पू० होगा।

कौरववंश

महाभारत, द्वितीय पौरव० वशावली और पुराणवशावली मे पठित कुरु वंश इस प्रकार है—

महाभारत, (द्वि० वशावली)	भागवत[7]	मत्स्य[4]०	वायु०[5]	विष्णु[6]०	हरिवंश०[3]
१ कुरु	कुरु	कुरु	कुरु	कुरु	कुरु
२ विदूर (विदूरथ)	परीक्षित्	जह्नु	परीक्षित्	परीक्षित्	परीक्षित्
३. अनश्वा	सुरथ	सुरथ	जनमेजय	सुरथ	जनमेजय
४. भीमसेन	विदूरथ	विदूरथ	सुरथ	विदूरथ	सुरथ

---

१ महा० (१।९५।४०)
२. महा० (१।९५।४०)
३. हरि० (१।३२)
४. मत्स्य० (५० अ०)
५. वायु० (९९ अ०)
६ विष्णु = ० (४।१९)
७. भाग० (९।२२)

५.	प्रतिश्रवा	सार्वभौम	सार्वभौम	भीमसेन	सार्वभौम	विदूरथ
६.	प्रतीप	जयसेन	जयत्सेन	विदूरथ	जयत्सेन	ऋक्ष
७.	शन्तनु देवापि, बाह्लीक	आरब्धिक अयुत	रुचिर	सार्वभौम	आराधित	भीमसेन
८.	भीष्म विचित्र-वीर्य, विचित्रवीर्य		भौम	जयत्सेन	अयुतायु	प्रतीप
९.	धृतराष्ट्र पाण्डु,	अरितायु	आराधि	अक्रोधन		शन्तनु
१०.	दुर्योधन युधि-ष्ठिर पाण्डु	अक्रोधन	महासत्व	देवातिथि		विचित्र-वीर्य
११.			देवातिथि	अभ्युतायु	धृतराष्ट्र	पाण्डु
१२.		देवातिथि	ऋक्ष	अक्रोधन	भीमसेन	
१३		ऋक्ष	भीमसेन	देवातिथि	दिलीप	
१४.		प्रतीप	शन्तनु	भीमसेन	शन्तनु	
१५.		शन्तनु	विचित्रवीर्य	दिलीप	विचित्रवीर्य	
१६.		विचित्रवीर्य	पाण्डु	प्रतीप	पाण्डु	
१७.		पाण्डु	युधिष्ठिर	शन्तनु	युधिष्ठिर	
१८.		युधिष्ठिर		विचित्रवीर्य		
१९.				पाण्डु		
२०.				युधिष्ठिर		

कुरुवंश की अनेक शाखाएं हो जाने से तथा ऋक्ष, परीक्षित, जनमेजय विदूरथ, भीमसेन आदि नाम के अनेक राजा (नामसाम्य) होने के कारण पुराणो मे यह त्रुटिया एव भ्रातिया हुई है। ऐसी स्थिति मे निर्भ्रान्त निर्णय करना असभवतुल्य है। तथापि अजमीढ के पश्चात् होनेवाले अहयाति, सार्वभौम, जयत्सेन अवाचीन आदि दस राजाओं का हम पूर्णवर्णन कर चुके है, इनको ४५०० वि० पू० से ३६०० वि० पू० के मध्य होना चाहिए।

महाभारत की प्रथमवंशावली के अनुसार यही अनश्वा, कुरु का प्रथम-पुत्र अश्ववान् प्रतीत होता है। यह निर्णय करना कठिन है कि अश्ववान् या अनश्वा कुरु का पुत्र था या पौत्र।

४. परीक्षित (प्रथम)

यह कुरुवंश का सर्वाधिक, सर्वप्रथम लोकप्रिय एव प्रतिष्ठित विश्वजनीन राजा था, यहां तक कि वेद मे भी इसकी लोकप्रियता वर्णित की गई है।[१] डा० हेमचन्द्र रायचौधुरी ने इस परीक्षित् प्रथम और परीक्षित् द्वितीय (पाण्डव) तथा इन दोनो के पुत्र दोनो जनमेजय को एक बनाकर अति-भयंकर भूल की है।[२] इस प्रकार की भयकर भूलो का निराकरण करना ही इस ग्रन्थ (शोध) का उद्देश्य है। प० भगवद्दत्त ने उचित ही लिखा है—"दोनो जनमेजयो में आठ सौ वर्ष से कम का अन्तर नही है।[३] हमारी गणना से परीक्षित् का राज्यकाल ३६०० वि०पू० से ३८५० वि० पू० के मध्य, भारतयुद्ध से ८२० वर्ष पूर्व और परीक्षित् पाण्डव से ८५६ वर्ष पूर्व था। अत प० भगवद्दत्त का अनुमान सत्य के निकट है।

महाभारत मे परीक्षित् की पत्नी का नाम वाहुदराजपुत्री सुयशा लिखा है।[४]

उच्चै श्रवा कौवषेय कौरव्य

महाभारत मे उच्चै श्रवा को कुरु का पुत्र एव परीक्षित् का भ्राता बताया गया है।[५] परन्तु जैं० ब्रा०[७] २।२७९, २८० एव जैं०आ० (६।२६।१) के प्रामाण्य से इसके पिता का नाम कुवय या कुपय था। उच्चै श्रवा एव उसका पिता दोनो ही कौरव्य राजा थे, अत. ये परीक्षित् के भ्राता नही, सम्बन्धी थे। केशीदार्भ्य यज्ञसेन द्रुपद के समकालिक पाचाल था। उच्चै श्रवा केशी का मामा था। किसी यज्ञ के समय उच्चै.श्रवा अत्यन्त वृद्ध स्थविर था।[६]

---

१. राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवो मर्त्या अति...परीक्षित । जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञ. परीक्षितः। (अथर्व० २०।७-१०)

२. प्रा० भ० रा० इ० (अ० प्रथम)

३. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १४३)

४ महा० १।६५।४२)

५. महा० (१।६४।५३)

६. केशी खण्डकेन विबाढ उच्चैःश्रवम कोवषेयम् (कौपयेम्) जगाम कौरव्य राजान मातुर्भ्रातरम्।

७. जैं० ब्रा० (२।२८०)

जनमेजय पारीक्षित् द्वितीय

यह निश्चय ही परीक्षित् का पुत्र था, जो अतिप्रतापी, विद्वान् एवं महावीर (महाशूरवीर) था।[1] पुरोहित तुरः कावषेय[2] ने इस जनमेजय का ऐन्द्र महाभिषेक कराया और देवाप शौनक ने अश्वमेधयज्ञ कराया।[3] भाग० (९।२२:५-३७) में यह भ्रान्ति है कि जनमेजय पाण्डव का पुरोहित भी तुर कावषेय था। यह ऋषि भारतयुद्ध से ६०० वर्ष पूर्व का पुरोहित था, महाभारत, शांतिपर्व में भीष्म पितामह ने इस जनमेजय को पुरातन राजा कहा है (अ० १५०)। राजा के द्वारा गार्गिपुत्र (ब्राह्मण) की हत्या होने से लौहगन्धी होने की कथा वायु० (९३।१८।२७) एवं महाभारत (१२।१५०) में है। ययाति का दिव्यरथ भी इस जनमेजय को प्राप्त था, जो उससे चैद्य उपरिचरवसु को प्राप्त हुआ।[4]

जनमेजय पारीक्षित्प्रथम और चैद्य उपरिचरवसु का समय ३७०० वि० पू०, भारतयुद्ध से लगभग ६०० वर्ष पूर्व था, चैद्यवसु इसजनमेजय से एक पीढ़ी पश्चात् हुआ।

जनमेजय के यज्ञस्थल आसीन्दीवान् को रायचौधुरी आदि उसकी राजधानी मानने की भूल करते है।[5] इन्द्रोतदैवाप शौनक ने अश्वमेधयज्ञ द्वारा राजा को पवित्र किया।[6] इससे पूर्व काश्यप असितमृग ऋषि जनमेजय का पुरोहित था।

जनमेजयइतिहाससम्बन्धीशतपथ का (१३।५।४।१-३) का निम्न उद्धरण अतिमहत्वपूर्ण होने से यहां उद्धृत किया जाता है-"एतेन इन्द्रोतो देवाप शौनक. जनमेजय याजयाचकार तदेद् गाथयाऽभिगीतम्—

> आसन्दीवति धान्याद रुक्मिण हरितस्रजम्।
> आबध्नादश्व सारगं देवेभ्यो जनमेजय॥ २॥

---

१. ऐ० ब्रा० (३७।७,११)
२. ऐ० ब्रा० (८।२१)
३ श० ब्रा० (१३।५।४।१)
४. स च दिव्यो रथो राजन् वसोश्चेदिपतेस्तदा। (हरि० १।३०।१४)
५. प्रा० भा० रा० इ० (पृ० ३३)
६. श० ब्रा० (२३।५।४।३)

पारिक्षिता यजमाना अश्वमेधे परोऽवरम् ।
अजहुः कर्म पापकं पुण्याः पुण्येनः कर्मणा ॥ ३ ॥[1]

यहीं पर जनमेजय के भ्राताओं के नाम हैं-भीमसेन, उग्रसेन और श्रुतसेन । हरिवंश (१।३२।६३) मे इन्हे जनमेजय के दायाद (पुत्र) लिखा है, यह पुराणपाठत्रुटि होते हुए भी इसमे ऐतिहासिक सत्याश है ।

६. भीमसेन

अपने श्रेष्ठ भ्राता के वनवास के समय और देहान्त के पश्चात् अनुज भीमसेन निश्चय ही जनमेजय के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी हुआ, इसके सकेत महाभारत एवं पुराणों मे है । महाभारत की द्वितीयवशावली मे प्रतीप से पूर्व भीमसेन को राजा बताया गया है, जिसका विवाह कैकेयपुत्री कुमारी नाम की स्त्री से हुआ ।[2] महाभारत मे एक स्थान पर प्रातिपीय शान्तनव और बाह्लिक वशजो के साथ 'भीमसेन' क्षत्रियो का उल्लेख है ।[3] पुराणों में यहा पर 'दिलीप' नाम मिलता है ।[4] भीमसेन का राज्यकाल ३६०० वि० पू० से ३५६० वि० पू० होगा ।

'दिलीप' नाम संभवतः वाह्लीक का अपभ्रंश है, जो जनमेजय के आठ पुत्रो मे एक था ।[5] दिलीप का बाह्लीकके अन्य सात भ्राताओ (धृतराष्ट्रादि) ने कुछ समय हस्तिनापुर में उसी प्रकार राज्य किया होगा जिस प्रकार पाण्डु की मृत्यु पर प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र ने अथवा दुर्योधन के पश्चात् युधिष्ठिर ने राज्य किया । उस समय छोटे बडे युद्ध चलते रहते थे यथा जनमेजय के भ्राता कक्षसेन के पुत्र अभिप्रतारिण के समय कौरवसाल्वयुद्ध हुआ ।[6] यह स्थिति (साल्वो का कौरवो पर राज्य) ३६०० वि० पू० से ३५०० वि० पू० तक चली होगी ।

१ ऐ० ब्रा० (८।३) मे यही गाथा ऐन्द्र महाभिषेक के अवसर पर गाई है, जिसको तुरः कावषेय ने सम्पन्न कराया ।
२ महा० (१।९५।४३)
३. महा० (२।६३।२)
४. भागवत० (९।२२)
५. महा० (१।९४।५६)
६. कुरुक्षेत्र पराजित्यचरन्ति सल्वा कुरुक्षेत्रे (जै० ब्रा० २।२०६)

कक्षसेनशाखा

पारीक्षित् भीमसेन ने हस्तिापुर में राज्य किया तो उसके भ्राता कक्षसेन का राज्य कुरुक्षेत्र मे था।

प० भगवद्दत्त ने ब्राह्मणग्रन्थों के प्रामाण्य से कक्षसेन की वंशावली इस प्रकार निर्मित की है[1]—शैय्यागत स्थविर अभिप्रतारिण के पुत्रों द्वारा दाय-विभाजन का उल्लेख है।[2] अभिप्रतारिण के पुत्र वृद्धद्युम्न को साल्वों ने कुरु जनपद से निष्कासित कर दिया[3]

कक्षसेन
|
अभिप्रतारिण
वृद्धद्युम्न

इन सबका राज्यकाल प्रतीप से पूर्व ३४५० वि० पू० से ३४०० वि०पू० होगा।

जनमेजय के अन्य भ्राता-उग्रसेन, चित्रसेन, इन्द्रसेन, श्रुतसेन के वंश का कही अन्यत्र उल्लेख नही मिलता।

दिलीप (बह्लिक)

पुराणो मे भीमसेन पारीक्षित् और प्रतीप के बीच दिलीप का नाम मिलता है। हमारा अनुमान है कि यहां मूलपाठ बाह्लीक (या बह्लिक) होगा। दिलीप, एवं उनके भ्राता धृतराष्ट्र का राज्यकाल ३४५० वि० पू० से ३४०० वि० पू० के मध्य होना चाहिये।

प्रतीप से युगारम्भ

पुराणो मे संकेत मिलता है कि भीमसेन के पुत्र या पौत्र प्रतीप (प्रतिश्रवा = पर्यश्रवा) के समय से एक सप्तर्षियुग (२७०० वर्ष) एवं एक परिवर्त (३६० वर्ष परिमाण) का प्रारम्भ हुआ। इस सम्बन्ध में निम्न पुराण श्लोक द्रष्टव्य है—स्पष्ट है कि प्रतीप से परीक्षित पाण्डवेयपर्यन्त ३०० वर्ष व्यतीत हुए।

---

१. भा० वृ० इ० भा० २ (पृ० १४५) ए० ब्रा० (१५।४८)

२ जै० ब्रा० (३।१५६)

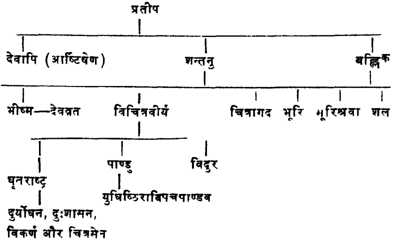
३. शा० श्रौ० (१५।१६।१२)

सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशतिशतैर्भाव्या अन्ध्राणान्तेऽन्वया पुन. । (वायु० ६६।४१८)
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ।
अन्ध्राणान्ते सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शतं समाः । (मत्स्य० २७३।४५)

अन्यत्र कहा गया है कि मरु ऐक्ष्वाक और देवापिपौरव के समय से ३० वां युग प्रारम्भ हुआ । भारतयुद्ध ३०८० वि० पू० हुआ, पारीक्षित का राज्याभिषेक ३०४४ वि० पू० हुआ, इसी समय श्रीकृष्ण दिवंगत हुए एवं कल्यारम्भ हुआ । अतः प्रतीप का राज्यारम्भ ३०४४ + ३६० = ३४०४ वि० पू० हुआ और प्रतीप से एक युगारम्भ हुआ ।

प० भगवद्दत्त ने प्रतीप का समय भारतयुद्ध से लगभग २०० वर्ष पूर्व माना है; जो सत्य है ।[1]

महाभारतादि के आधार पर प्रतीप से युधिष्ठिरपर्यन्त का वृक्षवंश इस प्रकार है ।



१ प्रतीप

इसका ही नाम प्रतिश्रवा या पर्यश्रवा[2] था । इसकी पत्नी शैब्या (शिबि-

१. भा॰ वृ॰ इ०, भा. २, पृ० १४७
१ तुलना करो निरुक्त (२।१०) इषितसेन ।

राजकन्या) सुनन्दा थी।[1] इसका राज्यकाल दीर्घ था।[2] न्यूनतम ६० वर्ष का होगा। अतः इसका राज्यकाल ३४०४ वि० पू० से ३३६५ वि० पू० था।

प्रतीप के तीन प्रसिद्ध पुत्र हुए-देवापि, शन्तनु[3] और वाह्लीक।[4]

२. देवापि

यह त्वग्दोष (चर्मरोग) के कारण राजा नहीं बन सका। निरुक्त (२।१०) और बृहद्देवता (७।१५५) मे उल्लिखित है कि ऋष्टिषेणपुत्र आर्ष्टिषेण देवापि त्वग्दोष के कारण राजा नहीं बन सका प्रजा न राज्य चलाने हेतु शन्तनु का वरण किया। राज्य मे द्वादशवर्ष वर्षा नही हुई, जब देवापि ने शन्तनु का यज्ञ कराया, तब वर्षा हुई। देवापि ऋग्वेद के (१०।६६-१०१) तीनो सूक्तो का द्रष्टा है, अतः वह महान् ऋषि था, सभवत. वह ऋष्टिषेणऋषि का शिष्य होने से आर्ष्टिषेण कहलाता था।

३. शन्तनु

इसको राजराजेश्वर[5] और राज्य को ब्रह्मधर्मोत्तर कहा गया है। इसे सभवत प्रतीप से ही विशाल राज्य मिला होगा।[7] प० भगवद्दत्त ने शन्तनु का राज्यकाल ५० वर्ष माना है, जो सत्य के निकट एव उचित ही है।[8]

भागीरथी

हम पूर्वपृष्ठोपर दृषद्वान् पर्वत = हिमवान् की एकता स्थापित कर चुके हैं। हैमवती दृषद्वती को ही उत्तरकाल मे भागीरथी और गगा भी कहते थे। यह भागीरथी- ,प्रतीपसमकालिक दृषद्वान् (हैमवत) राजा की पुत्री थी। दृषद्वती—भागीरथी का नाम तथा उसके पिता का नाम वर्त-

---

१. महा० (१।६५।४४)

२ ततः प्रतीपो राजाऽऽसीत् सर्वभूतहितः सदा। निषसाद समा बह्वीर्गंगा द्वार गतो जपन्। (महा० १।६७।१)

३. प्रायः इसे शान्तनु कहा जाता है, परन्तु शुद्ध नाम 'शन्तनु' ही था।

४. इसका भी प्राचीन और शुद्ध नाम 'बह्लिक' था—'तदु ह बह्लिकः प्रातिपीय शुश्राव' (श० ब्रा० १२।६।३।३)

५. तस्मिन् कुरुपतिश्रेष्ठे राजराजेश्वरे सति। (महा० १।१।१००।१६)

६. महा० (१।१००।१६-ब्रह्म वेद = धर्म की प्रधानता थी।

७. 'प्रतीपरक्षितं राष्ट्रम्, (उद्योग० १४०।३०)

८. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० १४७)

मान महाभारतपाठ में लुप्त है। भागीरथी (दृषद्वती) का पिता पहिले अपनी कन्या को प्रतीप की महिषी बनाना चाहता था। परन्तु प्रतीप ने प्रत्याख्यान करके भागीरथी (गंगा - दृषद्वती) का पुत्रवधू के रूप में वरण किया।[1] अतः यह शन्तनु की महिषी हुई। शन्तनु का अभिषेक २० या २२ वर्ष की वय में हुआ होगा। दशवर्षपर्यंन्त शन्तनु ने भागीरथी के साथ रहकर ८ पुत्र उत्पन्न किये, जिनमें अन्तिम देवव्रत[2] (भीष्म गांगेय) को छोड़कर सभी नष्ट हो गये या दृषद्वान् (पर्वत) क्षेत्र में चले गये होंगे। तदनन्तर शन्तनु ने ३६ वर्ष बिना स्त्री के बिताये।[3] चारवर्ष पुत्र भीष्म के साथ व्यतीत किये।[4] ५७ या ६० वर्ष की आयु में शन्तनु ने दाशराजपुत्री सत्यवती (काली) से विवाह किया, तभी देवव्रत द्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा से, उसका 'भीष्म' नाम प्रथित हुआ।[5] इस समय भीष्म की आयु ३० वर्ष अवश्य होगी। इसके पश्चात् शन्तनु ने लगभग १५ या १६ वर्ष राज्य किया। अतः शन्तनु की आयु ७६ के लगभग थी और ५६ या ५५ वर्ष राज्य किया। अतः उसका राज्यकाल ३३६५ वि० पू० से ३३१० वि० पू० तक था।

शन्तनुसन्तति

सत्यवती से वीर चित्रांगद और विचित्रवीर्य पुत्र उत्पन्न हुए।[6] चित्रांगद युद्धलिप्सु होने के कारण समनामा गन्धर्वराज से युद्ध में लगभग २५ वर्ष की आयु में दिवंगत हुआ। तब भीष्म ने माता सत्यवती के परामर्श से अप्राप्तयौवन विचित्रवीर्य को राजगद्दी पर बैठाया। उस समय उसकी आयु १८ वर्ष होगी। विचित्रवीर्य के विवाहार्थ भीष्म काशिराज कौसल्य की तीन कन्याओं-अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का अपहरण करके लाये। अम्बा

---

१. स्नुषा मे भव सुश्रोणि पुत्रार्थं त्वां वृणोम्यहम्। (महा० १।९७।१)

२. स तु देवव्रतो नाम गाङ्गेय इति चाभवत्। (महा० १।९९।४७)

३. स समाः षोडशाष्टौ च चतस्रोऽष्टौ तथापराः। रतिमप्राप्नुवन्..। (महा० १।१००।२०)

४. वर्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितविक्रम। (महा० १।१००।४५)

५ महा० (१।१००।९८)-'भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन्।'

६. महा० (१।१०१।२-३)

७. युद्ध तीन वर्ष पर्यंन्त हुआ—"नद्यास्तीरे सरस्वत्याः समास्तिस्रोऽभवद्रण। (महा० १।१०१।८)

को छोड़कर शेष दोनों का विवाह विचित्रवीर्य से हुआ। सात वर्ष[1] पश्चात् लगभग ३० वर्ष की आयु मे विचित्रवीर्य का यक्ष्मा से निधन हुआ।

व्यास द्वारा नियोग

पाराशर्य व्यास ने माता सत्यवती के अनुरोध पर विचित्रवीर्य की पत्नियो-अम्बिका और अम्बालिका एव एक दासी से क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया।[2]

पाण्डु की दो पत्नियां—कुन्ती (पृथा) और माद्री थीं, इनमे पृथा वसुदेव की भगिनी और शूर की पुत्री थी। पृथा को शूर के 'पैतृष्वसेय' कुन्ती—भोज ने गोद ले लिया था, अत वह कुन्ती कहलाती थी। मद्रराज शल्य की की भगिनी माद्री धनक्रीता पत्नी थी।[3] यह आसुरविवाह का उत्तम उदाहरण है। असुर मद्रवास के कारण मद्रक्षत्रियो पर आसुर प्रभाव था।

धृतराष्ट्र का विवाह गान्धारराजपुत्री गान्धारी से हुआ, जिससे दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए।[4]

पाण्डु के नियोग द्वारा कुन्ती से युधिष्ठिर भीमसेन और अर्जुन तथा माद्री से नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए।[5]

पाण्डवो का विवाह द्रुपदात्मजा द्रौपदी से हुआ, जिससे प्रत्येक के (एक-एक) पाच पुत्र हुए[6] प्रत्येक पाण्डव ने न्यूनतम एक एक राज्यकन्या से और विवाह किया, जिसका विवरण इस प्रकार है—

युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य
भीमसेन से सुतसोम
अर्जुन सेश्रुतकीर्ति
नकुल से शतानीक

---

१. महा० (१।१०२।७०)
२. महा० (१।१०४ अ०)
३. महा० (१।११२।१६)
४ महाभारत के एक पाठ के अनुसार धृतराष्ट्र के १०० पुत्र दशपत्नियों से उत्पन्न हुए थे।
५. महा० आदिपर्व अ० १२२, १२३
६. महा० (१।१९५।७५)

सहदेव से श्रुतकर्मा

पाण्डव	पत्नी	पुत्र
१. युधिष्ठिर	देविकाशैव्या	यौधेय
२. भीम	बलन्धराकाश्या	सर्वग
३. अर्जुन	सुभद्रा	अभिमन्यु
४. नकुल	करेणुमती चैद्या	निरमित्र
५. सहदेव	द्युतिमती	सुहोत्र
६ भीम	हिडिम्बा	घटोत्कच[1]

प्रतीप से युधिष्ठिरपर्यन्त पृथक् पृथक् राज्यकाल

क्र० स०	राजा	आयु	राज्यकाल	तिथि
१.	प्रतीप	८५ वर्ष	६० वर्ष	३३१० वि०पू० से ३२५० वि०पू०
२.	शन्तनु	७६ .	५६ ,,	३२५० वि०पू० से ३१६७ वि०पू०
३	चित्रांगद	२५ ,,	३ ,	३१६७ वि०पू० से ३१६४ वि०पू०
४	विचित्रवीर्य	२७ ,,	१० ,,	३१६४ वि०पू० से ३१८४ वि०पू०
५.	भीष्म	१८५ .	२० ,,	३१८४ वि०पू० से ३१६४ वि०पू०
६	पाण्डु	४०	५ ,,	३१६४ वि०पू० से ३१५६ वि०पू०
७.	धृतराष्ट्र	१३० ,,	४० ,,	३१५६ वि०पू० से ३११६ वि०पू०
८.	दुर्योधन	७२ ,,	३५ ,,	३११० वि०पू० से ३०८० वि०पू०
९	युधिष्ठिर	१०८ ,	३६ ,,	३०८० वि०पू० से ३०४४ वि०पू०
		योग	२६८ वर्ष	

महाभारतमें वर्षों का उल्लेख

विचित्रवीर्यपर्यन्त के वर्षों के उद्धरण हमने महाभारतग्रन्थ से उद्धृत कर दिए हैं।

भीष्म ने विचित्रवीर्य के पश्चात्, पाण्डु के वयस्क होने पर्यन्त, कुरुराज्य के शासन की परिवीक्षा की। पाण्डु ने न्यूनतम २० वर्ष की आयु में राज्य-सिंहासन प्राप्त किया। अतः इतने वर्ष पाण्डुजन्मसे भीष्म राज्यकाल देखते रहे।

---

१. महा० (१।९५।७४-८२)

पाण्डु ने स्वल्पकाल राज्य किया, केवल पांच वर्ष।[1] शीघ्र पाण्डु तपस्वी वनेचर हो गया। पाण्डु के पश्चात् पुन दुर्योधन के वयस्क होनेपर्यन्त धृतराष्ट्र ने न्यूनतम २० वर्ष राज्य किया। पुन. पाण्डव शिक्षा काल (१३ वर्ष तक) एव पाण्डवो का निष्कासन ७ वर्ष का अवश्य था। अत. लगभग ४० वर्ष धृतराष्ट्र ने शासन किया। तदनन्तर पाण्डवो की १३ वर्ष का वनवास की अवधि जोडने पर दुर्योधन के राज्यकाल के ३० वर्ष पूरे होते है। पाण्डवो के वनवास के पश्चात् ३०४४ वि० पू० मे भारतयुद्ध हुआ। युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष राज्य किया। युद्ध के समय युधिष्ठिर और दुर्योधन की आयु ७३-७२ वर्ष की थी।

स्वर्गारोहण के समय युधिष्ठिर की आयु १०८ वर्ष की थी, ऐसा महाभारत के एक पाठ (पूना सस्करण) से ज्ञात होता है। शेषपाण्डव क्रमश: एक-एक वर्ष छोटे थे, अब भीम अर्जुन, नकुल और सहदेव की आयु क्रमश: १०७ वर्ष, १०६ वर्ष, १०५ वर्ष और १०४ वर्ष थी।

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से १३ वर्ष बडे थे, क्योकि उनकी आयु १२५ उल्लिखित है। श्रीकृष्ण के जन्म के समय वासुदेव न्यूनतम ६० वर्ष के वृद्ध थे। कृष्ण के देहान्त के समय वसुदेव न्यूनतम १७५ वर्ष के अवश्य थे।

द्रोणाचार्य और कृपाचार्य की आयु क्रमश ८५[3] और ८० वर्ष थी। यही आयु (लगभग ६० वर्ष) आयु द्रुपद की थी।[4]

भीष्म के चाचा बाह्लिक, जिन्होने भारतयुद्ध मे भाग लिया, उस समय लगभग २०० वर्ष की आयु के थे।

---

१ महा० (आदिपर्व)

२ कस आक्षेप करता हुआ वसुदेव से कहता है—

वसुदेव वृथावृद्धयन्मया त्व पुरस्कृत।
श्वेतेन शिरसा वृद्धो नैव वर्षशतैर्भवेत्॥
छिन्नाशस्त्वं वृथावृद्धो मिथ्या त्वेवं विचारितम्॥

३. आकर्णपलितःश्यामो वयसाशीतिपचकः। (महा० द्रोणपर्व)

४ महा० (५।१४४।२१)

बह्लिक के पौत्र भूरिश्रवा की आयु युद्ध के समय सौ वर्ष से अधिक थी। भीष्म के पूर्व प्रतीप, भीमसेन एव स्थविर कक्षसेनपुत्र अभिप्रतारिण की आयु भी शतायु अवश्य होगी।

अतः महाभारतकाल एव उससे पूर्व श्रेष्ठ क्षत्रिय राजा प्राय. सौ वर्ष से अधिक आयु वाले थे, ऋषियो की आयु तो अनेक शतवर्ष होती थी। अत. प्राचीन भारत मे राजर्षियो का राज्यकाल ५०, ६० या ७० वर्ष या इससे अधिक होना कोई असंभव नही था। ६० वर्ष राज्यकाल सामान्य तथ्य था; अतः हमने यही माना है।

७

अमावसु (कान्यकुब्जवंश)

पुरूरवा का द्वितीय प्रधान पुत्र अमावसु था। इसी के वश मे कुश, कुशिक विश्वामित्र आदि राजा हुये, जिसमे विश्वामित्र भारतीय इतिहास मे अत्यधिक प्रख्यात हुये, जिससे इस वश की अतिख्याति हुई।

पुराणो जो अमावसुवंश मिलता है, उनमे प्राचीन एवं प्रधान पुराणपाठो, (वायु० ब्रह्माण्ड, हरि० एव विष्णु०) मे प्रायः ऐकमत्य है। महाभारत मे दो स्थानों पर यह सक्षिप्त वशावली मिलती है रामायण मे भी यह इस वंश का वर्णन, जो अतिभ्रंश पाठ है, अत सभी पाठो के प्रमुख विभेदो को यहा दिया जा रहा है—

क्र०	पुराण (मतैक्य)[1]	म०भा० प्रथम भेद[2]	म०भा० द्वितीय भेद[3]	रामायण[4]
१.	अमावसु		अजमीढ़	
२	भीम		जह्नु	
३	काचनप्रभ		सिन्धुद्वीप	
४	सुहोत्र		बलाकाश्व	
५.	जह्नु	जह्नु	बल्लभ	कुश
६	सुनह	बलाकाश्व	कुशिक	कुशनाभ
७.	अजक	कुशिक	गाधि	गाधि
८	बलाकाश्व	गाधि	विश्वामित्र	विश्वामित्र[4]
९	कुश	विश्वामित्र	मधुच्छन्दा	
१०.	कुशिक			

१. हरि० (१।२७)

२. महा० (१२।४६)

३. महा० (१३।४ अ०)

४. रामा० (१।३२-३४ सर्ग)

११. गाधि
१२. विश्वामित्र
१३. अष्टक
१४. लौहि

रामायण के प्रक्षेपकारो का घोर अज्ञान इस पाठ से नगा हो जाता है, कुश की पत्नी को वैदर्भी बताना और चूलि ब्रह्मदत्त (पाचाल) से कुश नाम की कन्याशत का विवाह बताना ।[1] महाभारत के द्वितीयपाठ मे भ्रान्ति का मूल कारण अजमीढ नाम है । क्योकि विश्वामित्र के एक पूर्वज का नाम अजक (या अज) था, उसको अजमीढ समझकर पौरव अजमीढ से कौशिक वश को उद्भूत मान लिया गया । स्पष्ट है कि भ्रान्ति केवल नामसाम्य एव क्षेपकार के अज्ञान से उत्पन्न है । अत. वायु० हरिवश आदि पुराणो मे वर्णित कुशवश का पाठ ही प्रायः निर्भ्रान्त है ।

अब प्रत्येक राजा का कालनिर्देश करने का प्रयत्न करेगे ।

१. **अमावसु**—यह इक्ष्वाकु के प्रपौत्र ककुत्स्थ से कुछ पूर्ववर्ती होगा, अत इसका समय नहुप से पूर्व १३००० वि० पू० से १२५०० वि० पू० के मध्य चतुर्थ युग मे था ।

२ **विश्वजित् भीम**—वायु० मे अमावसु पुत्र भीम को विश्वजित् कहा है, हरि० मे विश्वजित् के स्थान पर नग्नजित्' पाठ भ्रंश है । विश्वजित् नाम से प्रकट होता है कि इसने अनक राजाओं को जीता होगा । यह नहुष और इक्ष्वाकु के पौत्र शशाद (विकुक्षि) के समकालिक था ।

३. **कांचनप्रभ**—पार्जीटर ने अपनी कल्पना से इसे हो यादव स्वाहि, हैहय और ऐक्ष्वाक बहुगव के समकालिक माना है ।[3] यह ययाति नाहुष और

---

१. विदर्भ, यद्यपि त्रिशकु के समकालिक प्रथम विदर्भ था, परन्तु कुश स न्यूनतम पाचशती पश्चात् हुआ और चूलि ब्रह्मदत्त पाचाल तो भारतयुद्ध से २०० वर्ष पूर्व प्रतीप कौरव के समकालिक का पाचलराजा था, इसस प्रक्षेपकार का अज्ञान और भी नगा हो जाता है । द्र० (रा० पूर्वनिर्दिष्ट १।३२-३२ सर्ग),
२. वायु० (९१।५२)
३. ए० इ० हि० ट्रे० (प्र० १४४)

ऐक्ष्वाक अनेना के समकालिक पंचमयुग (१२५०० वि० पू० से १२४४० वि० पू०) मे होना चाहिए।

४. सुहोत्र—इसकों पुराणो मे महाबल[1] कहा गया है। नाम से प्रकट यह यशशील नरेश था। यह पुरु के समकालिक १२३०० वि० पू० के निकट होना चाहिये।

५ जह्नु—इसकी माता का नाम केशिनी[2] और इसकी पुत्री का नाम जाह्नवी[3] (गगा) हुआ इसके यज्ञवाट को गगा ने बहादिया था, अत इसका यश दृषद्वान् (हिमालय) प्रदेश मे हुआ था, यह समव है कि पार्वतीय (दृषद्वान्) वश जह्नु से ही चला हो और जाह्नवी का नाम दृषद्वती था ही, इसी वश मे आगे चलकर दिवोदास प्रतर्दन आदि के समकालिक सवरण, मनु, नहुष, ययाति नाम के चार क्रमिक राजा हुये। इस बात के सकेत है कि कुशवंश और काशिवंश का दृषद्वत् राजवंश (पार्वतीयदेश सुमेरिया) से सम्बन्ध या सम्पर्क था।

जह्नु की पत्नी कावेरी, प्रथम युवनाश्व ऐक्ष्वाक (श्रावस्त का पिता और कुवलाश्व का पितामह) की पुत्री[4] थी, न कि मान्धातृपिता युवनाश्व द्वितीय की। इस तथ्य से यह कल्पना भी अपास्त होती है कि अगस्त्य और दाशरथि राम के समय मे पूर्व, उत्तर भारतीय राजाओ का दक्षिणभारत मे प्रवेश या अधिकार नही था। पुराण मे यह तथ्य प्रकट होता है कि जह्नु का राज्य मद्रास (तमिलनाडु) तक विस्तृत था, जहा कावेरी नदी प्रवाहित होती है।

स्पष्ट है जह्नु का राज्यकाल ऐक्ष्वाक युवनाश्व, प्रथम और पुरुपुत्र जनमेजय (पौरव) के समकालिक १२२०० वि० पू० से १२००० वि० पू० अनुमानित है।

७ अजक—महाभारत[5] मे इसी को अजमीढ़ (पौरव) बना दिया है।

---

१. हरि० (१।२७।३)
२. हरि० (१।२७।४)
३. उपनिन्युर्महाभा दुहितृतेनजाह्नवीम् (हरि० १।२७।६)
४. कावेरी सरिता श्रेष्ठा जह्नोर्भार्यामनिन्दिताम् (हरि० १।२७।८)
५. भरतस्यान्वये चैव।जमीढानाम पार्थिव.। तस्य पुत्रो महानासीज्जह्नुर्नाम नरेश्वर ॥ (महा० १३।४।२-३)

इस भ्रान्ति का हम पूर्वपृष्ठ पर उल्लेख कर चुके है। यह ऐक्ष्वाक बृहदश्व के समकालिक था।

८. बलाकाश्व—इसका समय ११६०० वि० पू० से ११८०० वि० पू० षष्ठ युग में होना चाहिये।

९ कुश—यह वंशप्रवर्तक राजा हुआ, जिससे कुश या कुशिकवंश प्रथित हुआ।

कुश के चार पुत्र हुए—कुशाम्ब कुशनाभ, अमूर्तरयस्, और वसु। इनमे अमूर्तरयस् और वसु महान् वशप्रवर्तक सम्राट् थे।

वसु—इस खेचर[1] वसु का सम्बन्ध इन्द्र, बृहस्पति, एक, द्वित और त्रित नाम के ऋषियो मे था।[2] इन्द्र के हिंसामय यज्ञ का मध्यस्थ ऋषियों ने इसी वसु को बनाया, महाभारत के नारायणीपोयाख्यान मे इसी को उपरिचर वसु कहा गया है, जिसने देवगुरु बृहस्पति से सप्तर्षिकृत चित्रशिखण्डीशास्त्र पढा था।[2] इसके अश्वमेध मे बृहस्पति होता और आप्त्य (आप्ति के पुत्र) एक, द्वित और त्रित पुरोहित थे। धनुष, रैभ्य, अर्वावसु और परावसु भी सम्भवत इनके समकालिक थे। सालावृक नाम के असुर भी कुछ समय पूर्व हुये, जो अररु के वशज थे।[4] अररु का पुत्र धुन्धु असुर इसी समय हुआ, जिसका वध ऐक्ष्वाक कुवलायाश्व ने किया।

खेचर (उपरिचर) वसु को अहिंसा के मिथ्यासमर्थन के कारण रसातल-जाना पडा।[5] वसु के पास अन्तरिक्षचारी यान था, जिससे उसका नाम 'उपरिचर'[6] पडा। उत्तरकाल मे राजा ने अहिंसाधर्म प्रवर्तन करके पाचरात्र

---

१. सन्धाय वाक्यमिन्द्रेण पप्रच्छुः खेचर वसुम् ॥ ब्रह्माण्ड० (१।२।३०।२३)

२. महा० (१२।३३६।४)

३. त्रित के कूपपतन का उल्लेख (ऋग्वेद १।१०५) और बृहद्देवता (३३।१३२-१३६) मे द्रष्टव्य है।

४. अररुमुखान् यतीन् सालावृकेभ्य प्रायच्छन् (शाख्या० आर० ५।१)

५. अद्यप्रभृति ते राजन्नाकाशेविहतागतिः। अस्यच्छापाभिघातेन मही भित्वा प्रवेक्ष्यसि ॥ (महा० १२।३३७।१६)

६. महा० (१२।३७।२९)

धर्म का प्रवर्तन किया।[1]

आमूर्तरयस गय—पयोष्णी के तट पर महाभारतकालपर्यन्त गयतीर्थ प्रसिद्ध था।[2] यह नदी नर्मदा और वैदूर्यपर्वत के निकट थी, जहां पर अमूर्तरया के पुत्र गय ने सप्त अश्वमेध यज्ञ किये थे, जिसमे सब कुछ हिरण्मय था।[3] षोडशराजोपाख्यान मे भी आमूर्तरयस गय को सम्मिलित किया गया है, उससे प्रतीत होता है कि अतिप्रतापी एव अतियशस्वी सम्राट् था, जिसके यज्ञ मे इन्द्रादि देवो ने यूपो को स्वय उठाया था—"स्वयमुत्थापयामासुर्देवाः सेन्द्रा युधिष्ठिर।"[4] राजा ने इतनी असख्य गाये दक्षिणाये भी दी जितनी सिकता (धूलिकण) गंगा मे है।[5]

इस आमूर्तरयस गय का समय मान्धाता के पिता युवनाश्व या पितामह प्रसेनजित् के समकालिक, चौदहवेंयुग मे, विक्रम से लगभग न्यूनतम ६५०० वि० पू० के निकट होना चाहिये। गय के यज्ञ दीर्घकालपर्यन्त सम्पन्न हुये, स्पष्ट है उसका राज्यकाल अतिदीर्घ होगा, न्यूनतम दो शताब्दी से अधिक।

यत्स वर्षशत राजा हुतशिष्टाशनोऽभवत्।
अयजद्धयमेधेन महस्रपरिवत्सरान्॥ (शान्तिपर्व २९।११-११८)

कुशाम्ब या कुशाश्व के पश्चात् या बलाकाश्व से कुश के मध्य मे कुछ पीढ़ियाँ लुप्त प्रतीत होती है, वैसे कुश, कुशिक, विश्वामित्र, अष्टक आदि-- सभी अति दीर्घजीवी थे।

---

१. बहुत उत्तरकालीन जनमेजय पारीक्षित प्रथम के समकालिक और बृहद्रथ मागध के पिता, लगभग ३७०० वि० पू० होने वाले चैद्यवसु को महाभारत (१ ६३ अ०) मे उपरिचर वसु, कहा गया है। यह भ्रान्ति है। यही भ्रान्ति चेतियजातक (स० ४२२) मे दुहराई गई है—'स राजा इसिना सत्तो अन्तलिक खेचरो पुरे। पावेकिख पठवि चेतो हीनतो पत्वा परियाप॥

२. महा० (३।१२१।१-१५)

३. महा० (३।१४।१६)

४. तस्य सप्तसु यज्ञेषु सर्वमासीद्धिरण्मयम् (महा० ३।१२१।४)

५. महा० (३।१२१।७)

६. महा० (१२।२९।११८)

१० **कुशाम्ब या कुशाश्व और कुशिक**—इसका समय मान्धाता से पूर्व होना चाहिये। कुशाश्व का पुत्र कुशिक यद्यपि राजा था, परन्तु इसने दीर्घकाल तक तप किया, इसके अनुचर वनेचर पह्लव बताये गये हैं।[1] इससे प्रकट होता है इसने ईरान (काम्बोज) आदि देशो मे पर्यटन एव तप किया, इसके तप का समय भी पुराणो मे एकसहस्रवर्ष बताया है।[2] प्रतीत होता है कि कुश एवं कुशिक के मध्य कुछ पीढी पर्यन्त यह राजवश सत्ता से दीर्घकाल पर्यन्त वचित रहा, इसीलिए विश्वामित्र के समान उनके पितामह कुशिक भी राजपद से वचित होकर तप, अटन आदि करते रहे। यह समय लगभग तीनयुग (३६०×३ १०८० वर्ष), ऐक्ष्वाक हर्यश्व प्रथम से पुरुकुत्सपर्यन्त ६७८० वि०पू० से ८७८० वि० पू०)होना चाहिये, क्योकि पुरुकुत्स का पिता मान्धाता पन्द्रहवे युग मे राज्य करता था, यह हम अनेकत्र सप्रमाण लिख चुके है। क्योकि कुशिक की पत्नी पुरुकुत्स की पुत्री थी।[3] तथापि कुशिक दीर्घजीवी होगे, यद्यपि उनके तप काल को एक सहस्र बताना अश्रद्धेय है।

कुश और कुशिक के मध्य कुछ पीढियाँ लुप्त है, इस मान्यता की पुष्टि वैदिक वाङ्मय मे भी होती है क्योकि ऋक्सर्वानुक्रमणी मे कुशिक को 'इषिरथ' का पुत्र बताया गया है।[4] स्पष्ट है कि पुराणो मे कुशवश के अनेक राजाओं के नाम छूटे है। यह सभव है कि राज्यच्युत होने के कारण 'इषिरथ' आदि का नाम पुराणो मे अपठित है। यद्यपि कुशिक राजा था।

११ **गाथि-गाधि**—कुशिक का पुत्र पुराणों मे गाधि कहा है, वैदिकग्रन्थो मे उसका नाम गाथी था।[5] ऋक्सर्वानुक्रमणी ने इस पुराणमत की पुष्टि की है

१ हरि० (१।२७।१३)

२ पूर्णे वर्षसहस्रे वै त तु शक्रो ह्यपश्यत। (हरि० १।२७।१४) तथा वायु० (६१।६१)

३ पौरुकुत्स्यभवद् भार्या गाधिस्तस्यामजायत। (हरि० १।२७।१६)

४ कुशिकस्त्वैषीरथिरिन्द्रतुल्य पुत्रमिच्छन् ब्रह्मचर्यं चचार (ऋक्सर्वा०)

५ कुशिको राजा बभूव (निरुक्त २।१।२५) ऋग्वेद (३।३१) का द्रष्टा गाथि ऐषिरथि है, शासन्कुशिको विश्वामित्र एव वा श्रुतेः (ऋक्स०)

६. तस्येन्द्र एव गाधी पुत्रो जज्ञे (ऋक्स० १४-१५)—'गाधिरभवद् राजा मघवान् कौशिक. स्वयम्। (हरि० १।२७।१६), जै० ब्रा० (२।७९) मे बताया है कि इन्द्र ने विश्वामित्र से वेद पढ़े। अन्य ग्रन्थो मे बहुधा इन्द्र को कौशिक कहा गया है—ब्रह्मा इन्द्रस्य कौशिकस्य वेदार्थान् वाचयति (दिव्यादान, पृ० ६३२)

कि तप के द्वारा इन्द्र ही उनका पुत्र हुआ।[1] इन्द्र का एक नाम कौशिक है, इस नाम मे कुछ रहस्य अवश्य है, क्योकि कुशिक से इन्द्र का किसी प्रकार का सम्बन्ध था।[1]

गाथी नाम से प्रकट होता है कि यह एक महान् कवि (ऋषि) थे, जिन्होंने वेद मन्त्रों के साथ अन्य गाथाओ (श्लोको) की रचना की होगी, विश्वामित्र को गाधिन (गाधिपुत्र) कहा गया है (ऋक्हवा गाथिनो विश्वामित्रस्य" पृ० १५)

कौशिक एव भार्गववंश का घनिष्ठ सम्बन्ध था। परन्तु भृगुपुत्र च्यवन और विश्वामित्र समकालिक नही हो सकते क्योंकि च्यवन शर्यातिमानव[2] और अधिक से अधिक नहुष[3] के समय तक जीवित रहे। कुशिक का उपदेशक च्यवन नही, कोई च्यावन या भार्गव ऋषि होगा, जिसके पुत्र ऋचीक च्यावन (भार्गव) हुए, जिसके साथ गाथी ने अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह कर दिया।[4] वरुव्यन्यास या सकेत ऋग्वेद (१०।१६७।४) मे है।[6] जिसके कारण ऋचीक के पौत्र जामदग्न्य राम क्षत्रियधर्म उत्पन्न हुये।[7] सत्यवती को कौशिकी कहा जाता है, जिसके नाम से एक महानदी प्रथित हुई।

ऋचीक उरु भार्गव के पुत्र थे।[8] यही उरु भार्गव (च्यावन) कुशिक के पुरोहित थे, जिसकी कृपा से कुशिक ने राज्य एव सन्तति प्राप्त की।

गाथी, ऋचीक जमदग्नि, अर्चनाना आत्रेय, श्यावाश्व आदि ऋषि अष्टादश युग[10] मे उत्पन्न हुये (६६८० वि० पू० मे ६६२० वि० पू०)। ऋषियो

---

१. ऋग्वेद के चारसूक्तो (३।१६-२२) के द्रष्टा गाथी है। (ऋ० सर्वा० १३)
२ ऐ० ब्रा० (८।२१) मे च्यवन ने शर्याति का ऐन्द्र महाभिषेक कराया।
३ महा० (१३।५० अ०)
४ महा० (१३।५२ अ०)
५ हरि० (१।२७।१७)
६. प्रसूतो भक्षमकर चरावपि स्तोम चेम प्रथम. सूरिरुजन् मृजे विश्वामित्र-जमदग्नी दमे। (ऋग्वेद)
७. हरि० (१।२७।३६)
८. हरि० (१।२७।२, ७)
९. और्वस्यैवमृचीकस्य (हरि० १।२७।४२)
१०. ततोऽष्टादशमश्चैव परिवर्तो यदाभवेत्।
वाजश्रवा. ऋचीकश्च श्यावाश्वश्च दृढव्रतः॥ (वायु० २३।१८३-१८४)

की सामान्य आयु तीन सौ वर्ष होती थी अतः ये न्यूनतम पूरेयुग (३६० वर्ष) पर्यन्त जीवित रहे।

१२. विश्वरथ विश्वामित्र—गाधिपुत्र का जन्म का नाम विश्वरथ[1] था, ऋषि बनने के पश्चात् उन्होंने अपना नाम विश्वामित्र रख लिया। विश्वरथ गाधी का जन्म अष्टादशयुग में हो चुका था। पितामह कुशिक के नाम से गाधी विश्वामित्र को कौशिक कहा जाता है। प्राचीनकाल में विश्वामित्र के प्रत्येक वंशज को कौशिक कहा जाता था, जिससे 'आदिम' विश्वामित्र की भ्राति का अनुभव होता है। दाशरथिराम का गुरु विश्वामित्र नहीं, कोई वैश्वामित्र कौशिक था।[2]

विश्वामित्र का इतिवृत्त

क्रम	घटना	समकालिक राजा	तिथि समय
१	विश्वरथ का जन्मकाल	अनरण्य, त्रसदश्व ऐक्ष्वाक	७००० वि०पू०
२.	राज्यकाल और माधवी से संगम	हर्यश्व ऐक्ष्वाक, वसुपौरव उशीनर और दिवोदास,	६६०० वि०पू०
३.	तपस्या ओर मेनकासमागम	त्रिधन्वा ऐक्ष्वाक, इलिन, पौरव	६८५० वि०पू०
४	शकुन्तलाजन्म	त्रिशकु ऐक्ष्वाक, दुष्यन्त पौरव	६८०० वि०पू०
५	वसिष्ठ से संघर्ष और	त्रिशकु	६७५० वि०पू०
६.	ब्रह्मर्षिपदप्राप्ति	भरत दौष्यन्ति, वेधस् ऐक्ष्वाक,	६७०० वि०पू०
७	हरिश्चन्द्र का राजसूय और शुनःशेप को दत्तक पुत्र बनाना, आडीवकयुद्ध	हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक, सुहोत्र वैतिथि पौरव	६६०० वि० पू०

१. विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः। (हरि० १।२७।४४), वायु० (६१।६३)

२. वैदिकग्रन्थों में अनेक वैश्वामित्रों का उल्लेख है, जिनकी नामसूची वक्ष्यमाण है।

३. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १००)

अतः विश्वामित्र की आयु न्यूनतम ३०० अवश्य थी। संभावना है कि वह अधिक कालपर्यन्त, लगभग ४०० वर्ष,(६६३० वि०पू० तक) तक जीवित रहे। अतः विश्वामित्र केवल त्रिशकु के समयही नही न्यूनतम ७ ऐक्ष्वाक राजाओ के राज्यकाल में जीवित रहे।

महाभारतग्रन्थ में उन्हें कृष्णकाल में यादवीसघर्षतक के समय जीवित प्रदर्शित किया है, वह सर्वथा भ्रामक एव असत्य है।

अभूतपूर्व ब्रह्मर्षि विश्वामित्र—वैसे तो स्वायम्भुव मनु (३०००० वि० पू०) से पुष्यमित्र शुङ्गपर्यन्त-शक, ययाति नहुष, जामदग्न्य राम, देवापि, संकृति, रन्तिदेव, गर्ग, भारद्वाज, शिनि, वीतहव्य, मुद्गल, दिवोदास आदि शतश एव सहस्रश किंवा कोटिश व्यक्ति ब्राह्मण से क्षत्रिय और क्षत्रिय से ब्राह्मण बनते रहे, किन्तु विश्वामित्र का उदाहरण अभूतपूर्व है, जो न केवल वेदो के स्वयं महत्तम ऋषि हुये, जिन्होंने ऋग्वेद के तृतीयमण्डल के सम्पूर्णमन्त्रो का दर्शन किया[1] और जिनके १०१ मे से १०० पुत्र (अष्टक को छोडकर), सभी ब्राह्मणवंशो के प्रवर्तक हुये। पुत्रो की ज्ञातसूची आगे प्रस्तुत की जायेगी। इन सभी पुत्रो मे साक्षात् शुन शेप, मधुच्छन्दा, अघमर्षण और यज्ञवल्क्य सर्वाधिक विख्यात हुए, अन्तिम नाम यज्ञवल्क्य या याज्ञवल्क्य की सर्वाधिक ख्याति हुई जिनका सुदूरवशज महाभारतयुद्ध से एक-डेढ शती पूर्व वाजसनेय याज्ञवल्क्य, जो व्यास का प्रशिष्य, आरुणि उद्दालक का शिष्य और जनक जैसे ज्ञानी का उपदेष्टा, यजुर्वेद का प्रवचनकर्त्ता और शतपथब्राह्मण का यशस्वी प्रणेता था।

विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक (या वेधस) के राजसूय से बहुत वर्ष पूर्व ब्रह्मर्षि (वेदर्षि) बन चुके थे, वे उस यज्ञ मे सर्वाधिक प्रभावशाली ऋषि थे।

विश्वामित्र और वशिष्ठ ऋषियो मे संघर्ष त्रिशकु के जीवनकाल मे प्रारम्भ हो गया था, जो कल्माषपाद सौदास के समय चरम परिणति पर पहुच गया, जबकि शक्ति वासिष्ठ को, उनके पुत्रो सहित आग मे झोक दिया

---

१. गाथिनो विश्वामित्र स तृतीयं मण्डलमपश्यत् (ऋक्सर्वा० पृ० १३)

२. याज्ञवल्क्यश्च विख्यात. । (महा० अनुशा० ४।५१)

३. महा० (१२।३१७।१६)

४. महा० मौसलपर्व १।१५)

था ।[1] जिसके बदले मे शक्तिपुत्र पराशर ने राक्षससत्र में वैश्वामित्र ब्राह्मणों को जलाया ।[2]

सन्तति—महाभारत[3] में विश्वामित्र के निम्नपुत्रो के नाम हैं—१. मधुच्छन्दा २ देवरात ३ अक्षीण ४. शकृन्त ५ बभ्रु ६. कालपथ ७ याज्ञवल्क्य ८.स्थूण ९. उलूक १० यमदूत ११ सैन्धवायन १२. वल्गुजघ १३.गालव १४. वज्र १५ सालकायन १६ लीलाढ्य १७ नारद १८ कूर्चामुख १९, वादुलि २०. मुसल २१ मुसल २२ वक्षोग्रीव २३ आंध्रिक २४. नैकदृक् २५. शिलायूप २६. शित २७ शुचि २८ चक्रक २९ मारुतन्तक ३० वातघ्न ३१. आश्वलायन ३२ श्यामायन ३३ गार्ग्य ३४ जाबालि ३५. सुश्रुत ३६. ३७. कारीषि ३८. सश्रुत्य ३९ पर ४०, पुरु ४१ तन्तु ४२. कपिल ४३. ताडकायन ४४ उपगहन ४५ असुरायण ४६ मार्दव ४७ हिरण्याक्ष ४८ जङ्गारि ४९ बाभ्रवायणि ५० भूति ५१ विभूति ५२, सूत ५३ सुरकृत् ५४ अरालि ५५ नाचिक ५६ चाम्पेय ५६ उज्जयन ५७. नवतन्तु ५८ बकनख ५९. सेयन ६० यति ६१. अम्भोरुह ६२. चारुमत्स्य ६३ शिरीषी ६४ गार्दभि ६५ उर्जयोनि ६६ उदापेक्षि ६७ नारदी ।[4]

ऐ० ब्रा —मे उनके चार पुत्रो मे दो नाम अन्यत्र अनुल्लिखित है—ऋषभ और रेणु (तथा अष्टक व मधुच्छन्दा) ।

ऋक्सर्वानुक्रमणी के अनुसार विश्वामित्र के निम्न पुत्र ऋग्मन्त्रों के द्रष्टा थे —

१ मधुच्छन्दा वैश्वामित्र (१।१-१० सूक्त)
२ देवरात (शुन शेप। वैश्वामित्र (१।२४-३० सूक्त)
३ ऋषभ (३।१३-१४ सूक्त)
४ कात्य उत्कील (पौत्र विश्वामित्र) (ऋ० ३।५-१६)
५ कत वैश्वामित्र (ऋ० ३।१७१-१८)
६ प्रजापति वैश्वामित्र (३।३८)
७ रेणु वैश्वामित्र (९।७०)

१ सौदासैरग्नौप्रक्षिप्यमाण· शक्तिः (सर्वानु०);
२. महा० (३।१८० अ०)
३. महा० (१३।४।५०-५९)
४. यह सूची भ्रंश हो सकती है परन्तु नाम काल्पनिक नही है ।

८. ऋषभ वैश्वामित्र (३।७१)
९. प्रजापति वैश्वामित्र (३।३८।१३-१६)
१० जेता माधुछंदस (विश्वामित्रपौत्र) १।११।१२),
११. अघमर्षण माधुच्छन्दस (वैश्वामित्र १०।१९०)
१२. धनजय माधुच्छन्दस

ब्रह्माण्ड० और वायु० मे अन्य पुत्रो के नाम उल्लेख्य है—(१) कच्छप (२) पूरण (३) बदर (४) बभ्रु (५) पाणिन (६) साकृति (७) देवल (८) करीष (९) बाष्कल (१०) लोहित। इनसे अनेक पौत्र विख्यात हुये।

इनमे कुछ ऋषि विश्वामित्र के वशज हो सकते है, परन्तु अधिकाश उनके साक्षात् पुत्र ही थे।

विश्वामित्रपुत्रो मे निम्न प्रधान या विख्यात थे—(२) मधुच्छन्दा (१) गालव (३) देवरात (४) याज्ञवल्क्य (५) कत (६) हिरण्याक्ष (७) सुश्रुत और (८) अष्टक।

विश्वामित्रपौत्रो मे उत्कील, धनजय, जेता, अघमर्षण अधिक प्रसिद्ध थे। जै० ब्रा० मे निम्न वैश्वामित्रो का उल्लेख द्रष्टव्य है—

१ युधाजीव वैश्वामित्र (१।४२२)।
२ वेणु वैश्वामित्र (१।-२०)।

१ गालव—द्वादशवर्षकी अनावृष्टि (अकाल) मे, जब विश्वामित्र को सागरानूप मे तप करते हुये श्वपच (चाण्डाल) से कुत्ते का मास मागना पड़ा, तब उनकी एक रानी (पत्नी) अपने गले मे मध्यमपुत्र गालव[1] को बाधकर सौ गाये मे लिये बेच दिया। उसकी मुक्ति सत्यव्रत (त्रिशकु) ने की। इससे कौशिक महर्षि का नाम गालव हुआ।[2] यही गालव अपने पिता का शिष्य भी बना, जिसने गुरुदक्षिणाहेतु ययाति नाहुष (हैमवत दार्षद्वत- गागेय)[3] राजा की पुत्री दृषद्वती (माधवी)[4] के द्वारा उशीनर, हर्यश्व, दिवोदास एव

---

१. तस्यपत्नीगले वद्धवा मध्यम पुत्रमौरसम् (वायु० ८४।४)
२. सोऽभवद्गालवो नाम गले बद्धो महातपा। महर्षि कौशिकस्तातस्तेन वर्षेण मोक्षित.। (वायु० ८८।९०)
३ महा० उद्योग (११२-१२१),
४. गङ्ग्व (ऋग्वेद)

स्वयं विश्वामित्र से क्रमश: शिबि, वसुमना, प्रतर्दन और अष्टक उत्पन्न हुये। स्पष्ट है अष्टकवैश्वामित्र गालव से आयु मे न्यूनतम ५० वर्ष छोटा होगा। परन्तु यह कौशिकराजवश का प्रतिष्ठाता हुआ।

गालवगोत्रीय अनेक ऋषि उत्तरकाल मे महान् विद्वान् हुये, जिनमे एक पांचाल ब्रह्मदत्त का आचार्य गालव वाभ्रव्य पाचाल[1] था, जो शिक्षा और क्रम का आचार्य था, एक गालव युधिष्ठिर की सभा मे उपस्थित था।[2] इसी प्रकार अन्य अनेक गालव विद्वान् हुये।

२ **मधुच्छन्दा**—वैश्वामित्र मधुछन्दा की प्रतिष्ठा इसी से समझी जासकती है कि ये विद्यमान ऋग्वेद प्रथममण्डल प्रथमसूक्त के प्रथम ऋषि हैं। ऐ०ब्रा० के शौन शेपाख्यान के ज्ञात होता है कि विश्वामित्र के ऋषिपुत्रो में ज्येष्ठ थे[3], विश्वामित्र के १०१ पुत्रों मे से इनका नम्बर ५१वा था, परन्तु, मधुछन्दा से ज्येष्ठ ५० पुत्र अनृषि थे, ये ५० अनृषि पुत्र[4] आन्ध्र—पुण्ड्र,[5] शबर, पुलिन्द, मूतिब संज्ञक अन्त्य (सीमावर्ती) दस्यु (म्लेच्छ) हो गये। मधुच्छन्दा के ज्येष्ठ होने का रहस्य यही है के उनमे ज्येष्ठ पुत्र अनृषि हो गये, सभवत उसमे से किसी का नाम वैदिक एव पुराणसाहित्य मे नही है।

मधुच्छन्दा के समकालिक साथी ऋषि थे, सोमहितपुत्र प्रेणि[6] और असित पुत्रदेवल का जै०ब्रा० मे उल्लेख है।[7]

---

१. सखाऽऽसीद्गाल्वो यस्ययोगाचार्यो महायशा। (हरि० २०।१३)

२. महा० (२।४।२१)

३ तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसु पचाशदेव ज्यायासो मधुच्छन्दस पचाशत्कनीयास:—

४ ते एतेऽन्ध्रा. पुण्ड्रा शबरा· पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूना भूयिष्टा (ऐ० ब्रा० ८।३)

५ पार्जीटर ने विश्वामित्र को मनु की ३२वी पीढी पर और बलि अग को ४१ पीढी पर रखा है परन्तु पुण्ड्र बलि की सन्तान में था, स्पष्ट है बालेय क्षत्रिय पुण्ड्रादि विश्वामित्र से पूर्व मान्धाता के समय हो चुके थे। इस सम्बन्ध मे पं० भगवद्दत्त का मत ठीक है।
(भा०वृ० इ० भा० २, पृ० ८१-८२)

६ एक अन्य प्रेणि ऋषि अश्वप (अश्वपुत्र) था, (ऋ० ६।११२।६)।

७ जै० ब्रा० (३।२७०)

३. देवरात (शुनःशेप) —ऐ०ब्रा० से इसका वंशवृक्ष इस प्रकार निश्चित होता है—

सूयवस ऋषि आङ्गिरस
|
अजीगर्त
|
शुनःपुच्छ | शुनःशेप | शुनोलाङ्गूल

पार्जीटर[1] ने शुनःशेप को ऋचीक का पौत्र और विश्वामित्र का दौहित्र माना है परन्तु ऐ० ब्रा० के प्रमाण से पार्जीटर की कल्पना असत्य ठहरती है, अजीगर्त आङ्गिरसवंश[2] का था और ऋचीक भार्गव थे, अतः शुनःशेप का ऋचीक या विश्वामित्र से कोई यौनसम्बन्ध सिद्ध नहीं होता।

हरिश्चन्द्र के राजसूययज्ञ में पुरुषबलि का पशु बनाया, तब शुनःशेप बालक नहीं, पूर्ण ऋषि था, जैसाकि ऋग्वेद (१।२४।३, सूक्तों) के सात विशिष्ट सूक्तों का द्रष्टा है। अतः बलिपशु के समय उसकी आयु ४०-५० वर्ष के मध्य में होनी चाहिए, क्योंकि ४० वर्ष से न्यून आयु में सामान्यतः कोई ऋषि नहीं हो सकता।

यज्ञ में शुनःशेप ने विभिन्न देवों की स्तुति की, उससे प्रसन्न होकर इन्द्र ने उसे एक हिरण्यरथ दान में दिया, इसका संकेतमात्र ऐ०ब्रा० में है।[3] यह हिरण्यरथ सम्भवतः हरिश्चन्द्र ने ही दिया होगा। इसी प्रकार विश्वामित्र ने शुनःशेप को अपना दत्तकपुत्र बना लिया।[4] देवताओं ने इसे विश्वामित्र को दिया, इसलिये इसका नाम देवरात हो गया।

महाभारत, अनु० (अ० ४) में जिन ६५ वैश्वामित्रों के नाम हैं, उनमें कपिल और बभ्रु के नाम भी सम्मिलित हैं, ये दोनों देवरात शुनःशेप के पुत्र

---

१ ऐ० इ० हि० ट्रे० पृ० १९८, २०६, २१९,

२. स होवाचाजीगर्तिः सौयवसिः (ऐ० ब्रा० ८।३)

३. इन्द्रः स्तूयमानः प्रीतो मनसा हिरण्यरथं ददौ (ऐ० ब्रा० ८।१) बृहद्देवता (२।११५) में इसका स्पष्ट उल्लेख है—स्तूयमानः शश्वदिति प्रीतस्तु मनसा ददौ। शुनःशेपाय दिव्यं तु रथं सर्वं हिरण्मयम्।

४. शुनःशेपो विश्वामित्रस्याङ्कमाससाद। (ऐ० ब्रा०)

थे।[1] निश्चय विश्वामित्र के ६५ पुत्रो मे कुछ पौत्रो के नाम भी सम्मिलित हो गए है।

ऐ० ब्रा० में मुख्य विवाद शुन शेप को विश्वामित्र दत्तकपुत्र मानने और श्रेष्ठ मानने का होना चाहिए, ज्येष्ठ[3] मानने का नही, क्योकि मधुच्छन्दा अष्टकादि वैश्वामित्र शुन शेप से आयु मे बहुत बडे थे। अष्टक का जन्म, संभवत हरिश्चद्र से ४ पीढ़ी पूर्व ऐक्ष्वाक वसुमना के समय मे हो चुका था, अतः राजसूय के अवसर पर उसकी आयु १०० से १५० वर्ष के मध्य मे होगी अत मनुस्मृति के इस उल्लेख को कि कृतयुगत्रेता मे मनुष्य की आयु क्रमश ४०० या ३०० वर्ष होती थी, कल्पना मे नही व्यवहार मे माननी चाहिये। प० भगवद्दत्त ने इसे केवल सिद्धान्तरूप मे माना है, इतिहास मे उसका सदुपयोग नही किया, उन्होने 'दीर्घजीवीपुरुष'सज्ञक अध्याय मे मनु का यह वचन उद्धृत किया है -

अरोगा सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुष ।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादश ।।[2]

इस दृष्टि से त्रेतायुग मे १०० या ७५ वर्ष का ब्रह्मचर्यकाल होना चाहिये। अत १५० वर्ष की आयु मे मधुच्छन्दा, अष्टकादि युवा थे। अत शुन.शेप आयु मे छोटा होते हुये भी श्रेष्ठ[4] और दायभाग का अधिकारी हुआ।

४ **यज्ञवल्क्य** —यह विश्वामित्र का विख्यात पुत्र था, यह तथ्य हम अनेकत्र लिख चुके है कि इस गोत्र मे याज्ञवल्क्यनाम के सहस्रश ऋषि या ब्राह्मण हुए। विश्वामित्र का पुत्र साक्षात् याज्ञवल्क्य हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशकु के यज्ञ मे उद्गाता था। इसमे भी ज्ञात होता है कि याज्ञवल्क्यादि शुन शेप से आयु मे बहुत बडे थे, जो हरिश्चन्द्र कालमे पर्व ही ऋषि बन चुके थे।

---

१. होवाच विश्वामित्रो देवा वा इय मह्यमरासतेनि स ह देवरातो वैश्वामित्र...तस्येते कापिलेयबाभ्रवा (ऐ० ब्रा०)

२. म० स्मृ० (१।८३)

३. अस्मै ज्येष्ठाय मन्यवहमिति (ऐ० ब्रा०) 'उपेयादेव मे दायम्"

४. तव श्रेष्ठा प्रजास्यात् (ऐ० ब्रा०)

५. भा० वृ० इ० भा० १,(पृ० १४२)

शतपथ का प्रणेता वाजसनेय याज्ञवल्क्य का भ्राता ही संभवतः ऐतरेय ब्राह्मण का प्रणेता ऐतरेय ऋषि था, यह हम अन्यत्र लिख चुके है, अथवा ऐतरेय किसी अन्य समकालिक याज्ञवल्क्य का पुत्र हो, क्योकि इस नामके सहस्रो व्यक्ति थे, यह तो एक गोत्रनाम था।

५. कत—वैश्वामित्र कत का पुत्र कात्य उत्कील ऋग्वेद का ऋषि था। कत से ही कात्यायनगोत्र चला, इस वश म अगणित कात्यायन ब्राह्मण हुए।

६ अष्टक—यह हम अनेकत्र प्रतिपादित कर चुके है कि अष्टक अयोध्या के राजा वसुमना, शिवि औशीनर, काशिराज प्रतर्दन और सभवत. सुहोत्रवैतिथि (भरतगोत्र) (७१८८-७००० वि०पू०) के अष्टादशयुग मे समकालिक था। प्रतर्दन के प्रसग मे इसका और अधिक विचार विमर्श होगा। विश्वामित्र का पैतृकराज्य १०१ पुत्रो म से अष्टक को प्राप्त हुआ—यह क्षत्रियोचित गुणो के कारण ही हुआ होगा। अष्टक के राजपद की पुष्टि जै०ब्रा० मे भी होती है।[2]

अष्टक राजर्षि था, उसको ऋग्वेद (१०।१०४ सूक्त) का द्रष्टा बताया गया है।[3]

यह दार्षद्वती माधवी का वैश्वामित्र (पुत्र) था, यह अन्यत्र लिख चुके है इसके मातामह (नाना) ययाति नाहुष थे, नहुष का पिता मनु और इसका पिता सवरण—चारो ही दार्षद्वत (हैमवत= पार्वतीय-गागेय) राजा थे, यह भी अन्यत्र सिद्ध कर चुके हैं।

७ सुश्रुत महान् आयुर्वेदाचार्य—स्वय विश्वामित्र आयुर्वेद और धनुर्वेद के महान् आचार्य थ, ऐसा प्राचीनग्रन्थों से ज्ञात होता है। आयुर्वेद मे विश्वामित्र के गुरु थे भरद्वाज, अश्विनीकुमार और देवराज इन्द्र।[4]

---

१ स्कन्द पु० ना० ख० (५।६) तथा मालतीमाधव (१।१, ३।२६)

२ अथाकामयत विश्वामित्रो- राज्यमे प्रजा गच्छेद् इति...ततो वै तस्यराज्यं प्रजागच्छन्। अष्टको हास्य प्रजायाम् अभिषिषिचे। (जै० ब्रा० २।१६६)

३. असाव्येकादशाष्टको वैश्वामित्र (सर्वानु० पृ० ३८)

४. द्र० हारीतसहिता (३।२ २६), एव। काश्यपसंहिता आदिग्रन्थ,

८. हिरण्याक्ष

अनुशासनपर्व (अ० ४) में विश्वामित्रपुत्र हिरण्याक्ष का नाम है, यह हिरण्याक्ष आयुर्वेदाचार्य ऋषि सम्मेलन मे उपस्थित था, जिसका चरकसहिता सूत्रस्थान अ० १ मे उल्लेख है। पिता के समान हिरण्याक्ष भी महान् आयुर्वेदाचार्य था।

प० भगवद्दत्त के जामाता, आयुर्वेद का इतिहास के लेखक कविराज सूरमचन्द ने रामायण उत्तरकाण्ड के अतिभ्रष्टपाठ (३८।१५) के आधार पर लिखा 'काशिपति प्रतर्दन और दाशरथि राम वयस्य तथा समकालिक थे।...अत आयुर्वेदावतार का काल दाशरथि राम से कुछ पूर्व अर्थात् त्रेता के अ त मे हुआ।" (पृ० १४०)

हिरण्याक्ष, भरद्वाजादि अठारहे युग मे हुए अतः आयुर्वेदावतार चौबीसवे युग मे दाशरथि राम के समय (५००० वि० पू०) न होकर अठारहवेयुग (७००० वि० पू०) मे लगभग राम से दोसहस्रवर्षपूर्व हुआ।

आयुर्वेदाचार्य सुश्रत को, जो सुश्रतसहिता के मूल प्रणेता थे, बहुधा विश्वामित्र का पुत्र बताया है।[1] परन्तु यह मत सत्य प्रतीत नही होता, अन्यत्र सुश्रुत को शालिहोत्र का पुत्र (शिष्य) बताया गया।[2] यह शालिहोत्र ऋषि चौबीसवें व्यास ऋक्ष वाल्मीकि का शिष्य था, अत सुश्रुत का समय ५००० वि०पू० के पश्चात् था, इससे पूर्व नही—

परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधना।
शालिहोत्रोऽग्निवेश्यश्च युवनाश्व. शरद्वसुः॥[3]

शालिहोत्र और अग्निवेश दोनो ही ने क्रमश सुश्रुतसंहिता और चरकसंहिता की रचना की। अग्निवेश एक गोत्रनाम था। यदि यही अग्निवेश्य द्रोणाचार्य

१. विश्वामित्रसुत शिष्यमृषि सुश्रुतमन्वशात्। (सु० स० चि० २।३)
२. शालिहोत्रमृषिश्रेष्ठ सुश्रुतः पर्यपृच्छत्। एव पृष्टस्तु पुत्रेण शालिहोत्रोऽभ्यभाषत। (काश्यपसहिता, उपोद्० पृ० ६६ राज० हेमराज सम्पादित)
३. वायु० (२३।२०६-२०७)

का गुरु था[1] तो उसकी आयु दोहसस्र वर्ष से अधिक होगी। ऐसा परमयोगी रसानाचार्य इतने दीर्घकाल तक जीवित रह सकता है। वाल्मीकिशिष्य अग्निवेश्य की याजुषशाखाये भी थी।[2] यह भी संभव है कि याजुषशाखा प्रवर्तक अग्निवेश्य और आयुर्वेदाचार्य अग्निवेश्य पृथक् पृथक् हो।

---

१. महा० (१४१।४१)
२ अग्निवेश्याय वाल्मीकि. (तै० प्राति०)

काशिवंश

हरिवंश०	वायु०	ब्रह्माण्ड०	विष्णु०	भागवत
क्षत्रवृद्ध	क्षत्रवृद्ध	क्षत्रवृद्ध	क्षत्रवृद्ध	क्षत्रवृद्ध
शुनहोत्र	शुनहोत्र	शुनहोत्र	शुनहोत्र	सुहोत्र
काशि	काशि	काशि	काशि	
दीर्घतपा	दीर्घतपा	दीर्घतपा	दीर्घतपा	
धन्व	धन्व	धन्व	धन्व	काश, कुश, गृत्समद
केतुमान्	केतुमान्	केतुमान्	केतुमान्	काशि, शुनक
भीमरथ	भीमरथ	भीमरथ	भीमरथ	राष्ट्र, शौनक
दिवोदास	दिवोदास	दिवोदास	दिवोदास	दीर्घतमा
प्रतर्दन	प्रतर्दन	प्रतर्दन	प्रतर्दन	धन्वन्तरि
				केतुमान्
				भीमरथ
वत्स, भर्ग	वत्स	वत्स, भर्ग	अलर्क	दिवोदास
				प्रतर्दन
	वात्स्य	अलर्क	सन्नति	अलर्क
वत्सभूमि, अलर्क	अलर्क	सन्नति	सुनीथ	सुनीथ
सन्नति	सन्नति	सुनीथ	सुकेतु	सुकेतन
सुनीथ	सुनीथ	क्षेम	धर्मकेतु	धर्मकेतु
क्षेम्य	सुकेतु	केतुमान्	सत्यकेतु	सत्यकेतु
केतुमान्	धर्मकेतु	सुकेतु	विभु	धृष्टकेतु
सुकेतु	सत्यकेतु	धर्मकेतु	सुविभु	सुकुमार
धर्मकेतु	विभु	सत्यकेतु	सुकुमार	वीतिहोत्र
सत्यकेतु	सुविभु	विभु	धृष्टकेतु	भर्ग
विभु	सुकुमार	सुविभु	वीतिहोत्र	भार्गभूमि
आनर्त	धृष्टकेतु	सुकुमार	भार्ग	
सुकुमार	वेणुहोत्र	धृष्टकेतु	भार्गभूमि	
धृष्टकेतु	भार्ग्य	वेणुहोत्र		
वेणुहोत्र	भार्गभूमि	भार्ग्य		
भर्ग		भर्गभूमि		

ऊपर, विभिन्न पुराणो के आधार पर काशिवशावली लिखी गई है। नहुषभ्राता क्षत्रवृद्ध का प्रपौत्र काशी या प्रकाशिराट् नाम का वंशज हुआ, जिसके नाम पर काशिवश प्रथित हुआ। इस वश के प्रारम्भिक राजा अतिप्रसिद्ध, अतिप्रतापी एव अतिदीर्घजीवी थे। इनके वंशक्रम एवं काल क्रम पर यहा विचार करते है।

१. **क्षत्रवृद्ध आयुपुत्र**—यह राजा ककुत्स्थ ऐक्ष्वाक के समकालिक १२००० वि० पू० के निकट पदासीन हुआ।

२. **शुनहोत्र**—क्षत्रवृद्धपुत्र शुनहोत्र के तीन विख्यात पुत्र हुए १. काश, २. शल और ३ गृत्समद। काश के वशज काशी कहलाये।

शल का पुत्र आर्ष्टिषेण हुआ और इसका पुत्र हुआ काशक।

गृत्समद—शुनहोत्र का पुत्र अत्यन्त विख्यात एव प्राचीनतम वैदिक ऋषि था, जिसने ऋग्वेद के सम्पूर्ण द्वितीय मण्डल का दर्शन किया। पुराणो मे गृत्समद का पुत्र शुनक और उसका पुत्र शौनक बताया है[1], परन्तु कात्यायन ने ऋक्सर्वानुक्रमणी मे इसके विपरीत लिखा है कि शौनहोत्र गृत्समद आगिरस होते हुए भार्गव शौनक हो गया, अर्थात् भार्गव शुनक ने उसे अपना पुत्र बताया।[2]

महाभारत (१।८) मे भृगुवश इस प्रकार उल्लिखित हैं—

१. भृगु
२. च्यवन + सुकन्या
३ प्रमिति + घृताची
४ रुरु + प्रमद्वरा
५. शुनक
६. शौनकगण[3]

उपर्युक्त शुनक भार्गव ने यदि गृत्समद को अपना दत्तकपुत्र बनाया हो तो उत्तरकालीन शौनक ऋषिगण इसी शौनक गृत्समद के वशज थे।

भ्राति से हरिवंश (१।३२।१६-२०) मे काशि और गृत्समद को सुहोत्र वैतिथि भारत का वशज बना दिया है। एक अन्य भ्राति अनुशासन

१. पुत्रः गृत्समदस्याऽपि शुनको यस्य शौनकः। (वायु० ९२।४)
२. य आङ्गिरस शौनहोत्रो भूत्वा भार्गव शौनकोऽभवत्स गृत्समदो द्वितीय मण्डलमपश्यत् (सर्वा० पृ० ११) महा० (१।८।११।१-३)

पर्व, ३० अध्याय मे मिली है, जहा हैहय वीतिहव्य (वीतिहोत्र) जो प्रतर्दन के भय से भार्गव बन गया, उसका पुत्र गृत्समद बताया गया है।[1]

इसी आधार पर पं० भगवद्दत्त ने गृत्समद को प्रतर्दन और रामदाशरथि के समकालिक मानकर महती भ्रान्ति उत्पन्न की है।[2] ऋग्वेद का ऋषि गृत्समद क्षत्रवृद्ध (नहुषभ्राता) का पुत्र था, जैसा कि सभी पुराणों ने सर्व-सम्मति तथा कात्यायन ने ऋक्सर्वानुक्रमणी मे माना है। यह स्वय महाभारत की प्रथम (आदिपर्व ११८) भार्गववशावली के विरुद्ध है। महाभारत के अध्येता जानते हैं कि अनुशासनपर्व के अनेक प्रकरण बहुत उत्तरकालीन प्रक्षेप हैं जबकि आदिपर्व का उक्त प्रकरण प्राचीनतर एव प्रमाणिक है, और उसकी पुष्टि वैदिकग्रन्थो से भी होती है। अत: शौनहोत्र गृत्समद क्षत्रवृद्ध का पौत्र और शुनहोत्र का पुत्र तथा काशी का भ्राता था, इसमें सन्देह नही। हम बृहद्देवता के प्रामाण्य से इन्द्रप्रकरण मे गृत्समद और इन्द्र का सम्बन्ध बता चुके है कि गृत्समद देवासुरयुग मे हुये। अतः गृत्समद ने मन्त्रदर्शन ययातिपुत्र पुरु, द्रुह्यु आदि के समय में किया, जो १२००० वि० पू० से ११८०० वि० पू० युग मे हुये। गृत्समद को राम के युग मे मानना पूर्णत असिद्ध एव इतिहासविरुद्ध है।

अनुशासनपर्वोक्त प्रतर्दन एव वीतिहव्यसम्बन्धीभ्रान्ति का निराकरण आगे प्रतर्दनप्रकरण करेगे। महाभारत मे प्रतर्दन को तीन विभिन्न कालो मे प्रदर्शित किया है, निश्चय ही वह एककाल मे हुआ, इसका निश्चय करना ही पडेगा।

३ **काशि एव काशेय क्षत्रिय**—शौनहोत्र काशिराष्ट्र को सभी पुराणो म द्वितीय द्वापर मे हुआ बताया है—

---

१ महा० (१३-३०) मे यह वशावली इस प्रकार दी गई है— १. वीतिहव्य २. गृत्समद ३. सुचेता ४. वर्चा ५ विहव्य ६ वितत ७. सत्य ८. सन्त ९. श्रवा: १० तम ११ प्रकाश १२. वागिन्द्र १३. प्रमिति १४. रुरु १५. शुनक १६. शौनक।

२. अनुशासन पर्व ८।५८ के अनुसार ऋग्वेद का ऋषि गृत्समद प्रतर्दन का समकालिक था." (भा० वृ० इ० भा० २ पृ० १३२)

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते शौनहोत्रः स काशिराट् ।[1]

'द्वितीय द्वापर' का अर्थ यदि परिवर्तयुग (३६० वर्ष) है, तो यह उपपन्न नही होता – क्योकि द्वितीय परिवर्त में सम्भवतः वैवस्वत मनु और उनके पिता विवस्वान् भी नही उत्पन्न हुये थे। अत पुराणकर्त्ता के मत में द्वितीय द्वापर = २४०० वर्ष के परिमाण का था तो प्रजापति से २४०० वर्ष पश्चात् काशिराष्ट्र का समय ११६०० वि० पू० सप्तमयुग मे सभव है, यही समय हमारी गणना से उचित निश्चित होता है अथवा मूलपाठ मे 'द्वादशयुग' होना चाहिये।

४. **दीर्घतपाः**— काशि का पुत्र दीर्घतपा हुआ।

५. **धन्व**— इसका पुत्र धन्व हुआ, जिसने दीर्घतप किया, वृद्धधन्व के गृह मे द्वितीय धन्वन्तरि का जन्म हुआ।[2] जिन्होने अष्टविध आयुर्वेद का प्रवर्तन किया।[3] इस धन्वन्तरि का गुरु इन्द्रशिष्य भरद्वाज (बार्हस्पत्य) बताया गया है। यह भरद्वाज प्रथम होगा, उतथ्य के भ्राता बृहस्पति द्वितीय का पुत्र भरद्वाज १८वें युग (७२०० वि० पू०)[4] हुआ था, अत. प्रथम भरद्वाज और तच्छिष्य धन्वन्तरि का समय द्वितीय भरद्वाज और दिवोदास से पूर्व होना चाहिये।

६. **केतुमान्**— यह काशिराज धन्वन्तरि द्वितीय का शिष्य था। हमे ऐसा आभास होता है कि आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि और केतुमान् के मध्य अनेक पीढ़िया— न्यूनतम १५-२० पीढ़िया लुप्त है. क्योंकि केतुमान् का पौत्र भैमिदिवोदास अठारहवें युग (७५६० वि. पू०) मे हुआ अथवा धन्वन्तरि, केतुमान्, भीमरथ, दिवोदास सब की आयु सहस्रायु (१००० वर्ष) माननी पड़ेगी, इसमे कोई सन्देह नही कि ये प्राचीनतम काशिराज अतिदीर्घजीवी थे और पुराणो मे दिवोदास के सम्बन्ध मे लिखा भी है कि उसके राज्यकाल मे एक सहस्रवर्षपर्यन्त बाराणसी शून्य रही—'शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री नात्र संशय।'[5]

---

१. हरि० (१।२९।२२), ब्रह्माण्ड० (३।६७), वायु० (९२।१८);
२. द्वितीयायां तु सम्भूत्यां लोके ख्याति गमिष्यसि। (हरि० १।२९।१८)
३. वायु० ९२।२१)
४. हरि० (१।२९।२०)
५. हरि० (१।२९।३१)

अतः कालसम्बन्धीनिर्णय कठिन है।

भीमरथ—यह केतुमान् का पुत्र था। जिसका पुत्र वाराणस्यधिप दिवोदास था।[1]

८ **दिवोदास**—प्राचीनग्रन्थो मे सर्वत्र दिवोदास को भीम का पुत्र बताया है—

महाबली महावीर्य काशीनामीश्वर प्रभु।
दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनि नराधिपः ॥[2]

काठकसंहिता (७।१।८) मे—दिवोदास को भीमसेन का पुत्र बताया है। अत. यह निश्चित है कि दिवोदास का पिता भीमसेन या भीमरथ ही था।

महाभारत मे काशिराज दिवोदास और प्रतर्दन के, तीनस्थानो पर न्यूनतम तीन विभिन्न समय माने है, यथा—

आदिपर्व (ययात्युपाख्यान[3]) उद्योगपर्व गालवोपाख्यान[4] तथा वनपर्व[5] मे दोनो पितापुत्र की समकालीनता इसप्रकार है।

ऐक्ष्वाक	शिबि	वाराणसी	कान्यकुब्ज (कौशिक)
१. हर्यश्व २	उशीनर	दिवोदास	विश्वामित्र = विश्वरथ
२ वसुमना	शिबि	प्रतर्दन	अष्टक

उपर्युक्त राजाओं का राज्यकाल सप्तदशयुग के अन्त या अष्टादशयुग के प्रारम्भ ७५०० वि० पू० के निकट था। ऋचीक, जमदग्नि, अर्चनाना श्यावाश्व, तरन्त पुरुमीढ (हैहय माहेय) आदि भी इसी समय हुये।

महाभारत मे शान्तिपर्व परशुरामोपाख्यान[6] मे प्रतर्दन और उसके

---

१ दिवोदासस्तु धर्मात्मावाराणस्यधिपोऽभवत् (हरि० १।२६।२६)
२ महा० (५।११७)
३. महा० (१।८८-९३ अ०)
४ महा० (३।१९८ अ०)
५. महा० (५।११२-१२१ अ०)
६. महा० (१२।४६ अ०)

पुत्र वत्स की समकालिकता प० भगवद्दत्त[1] ने इस प्रकार प्रदर्शित की है—

हैहय	पौरव	अयोध्या	शिबि	काशी	अङ्ग
—	—	—	—	—	दिविरथ
	विदूरथ	सौदास, (कल्माषपाद)	शिबि	प्रतर्दन	दधिवाहन
हैहयकुमार	ऋक्ष	सर्वकर्मा	गोपति	वत्स	अङ्ग

सौदास कल्माषपाद और इसके पिता दाशराजयुद्धविजेता सुदास ऐक्ष्वाक का समय इक्कीसवेंयुग ६४०० वि० पू० से ६६०० वि० पू० के मध्य था। अत यदि प्रतर्दन और दिवोदास को इनके समकालिक माना जाय तो यही प्रतर्दन का द्वितीय समय होगा।

पार्जीटर ने दो दिवोदासों की कल्पना करके द्वितीय दिवोदास को बाहु के और प्रतर्दन को सगर के समकालिक माना है और कृतवीर्य, कार्तवीर्य अर्जुन, तालजघ वीतिहोत्र, अवन्ति, दुर्जय आदि हैहयो को प्रतर्दन का पूर्ववर्ती राजा माना है।[2]

पुराणो मे एव वैदिकग्रन्थो मे एक ही काशिराज दिवोदास वर्णित है, भीमसेन का पुत्र—भैमसेनि दिवोदास। वैदिकग्रन्थो मे इसी के पुत्र को प्रतर्दन दैवोदासि कहा है।[3] यही मन्त्रद्रष्टा प्रतर्दन था, जिसको अन्यत्र काशिराज प्रतर्दन[4] कहा गया है और जो वसुमना आदि का समकालिक था। इस वैदिकप्रमाण को परे नही फेका जा सकता, अत विश्वामित्र और दिवोदास हर्यश्व द्वितीय ऐक्ष्वाक के समकालिक तथा प्रतर्दन वसुमना ऐक्ष्वाक के समकालिक ७५०० वि० पू० मे था सौदास कल्माषपाद से लगभग तीन युग या १००० वर्षपूर्व और सगर से लगभग ५००पूर्व। अत दिवोदास प्रतर्दन के सम्बन्ध मे प० भगवद्दत्त और पार्जीटर के मत अयुक्त एव भ्रान्त है, पण्डितजी तो प्रतर्दन दैवोदासि को दाशरथि राम के समकालिक मानने

---

१. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० ११३)

२. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १५५)

३. काठकसहिता (७।१।८)

४. "शिबिरौशीनर काशिराज प्रतर्दनो रौशदश्वो वसुमना"
(ऋक्सर्वा० पृ० ४१)

के पक्ष में।' पण्डितजी का यह मत अपने ही उनके मत का विरोधी है, जहां वे प्रतर्दन को सौदास कल्माषपाद का समकालिक मानते हैं।[२]

अत: वैदिकऋक्सर्वानुक्रमणी किंवा ऋग्वेद का मत ही पुराणों से पुष्ट होता है कि दिवोदास, प्रतर्दन, हर्यश्व और वसुमना समकालिक थे। निश्चय ही इस सम्बन्ध में महाभारत के न्यूनतम दो स्थानो[३] पर त्रुटि है जहाँ प्रतर्दन और वत्स को कही का कही रखा है। महा० का यह प्रकरण भ्रम से ही प्रारम्भ होता है जहा हैहयो को शर्याति मानव का वशज बताया है।

ऐसे प्रकरण जिसमे हैहय, तालजघ और वीतिहोत्र को शर्याति मानव का वशज बताया हो, तब उसमे वर्णित आगे के वर्णन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है, जहा सब प्रामाणिक वर्णनो को छोडकर दिवोदास को सुदेव का पुत्र और हर्यश्व का पौत्र बताया हो[४]।" तो इसका निराकरण इस प्रकार होगा। *दिवोदास भीमसेन का पुत्र था और इसी भैमसेनि दिवोदास का* पुत्र प्रतर्दन अष्टकादि के समकालिक था यह वृत पूर्णत प्रमाणित है। अब यदि हर्यश्वपुत्र का पौत्र एव सुदेव के पुत्र दिवोदास को द्वितीय दिवोदास माना जाय, जैसा कि पार्जीटर ने माना है।[५]

निश्चय ही इस सम्बन्ध मे महाभारत मे भ्रान्ति हुई है तथा पुराण मे काशीराजवशावली अपूर्ण प्रतीत होता है। अतः वीतिहोत्रहैहय का विनाशकर्त्ता काशिराज प्रतर्दन न होकर बहुत उत्तरकालीन कोई अन्य काशिराज होगा, जिसको भ्रम से प्रतर्दन बना दिया, क्योकि प्रतर्दन दैवादासि

१. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १३३)

२ भा० बृ० भा० २, २ पृ० ११३,

३ महा० (१२।४९ अध्याय) एव अनुशासनपर्व (३० अध्याय)—बभूव पुत्रोधर्मात्मा शर्यातिरिति विश्रुत.। तस्यान्वाये द्वौ राजन् राजानौ सम्बभूवतु। हैहयस्तालजघश्च वीतिश्च जयतावर.।(श्लोक ७, ८) यहा पर वीति के स्थान पर 'वत्स्य' अंशपाठ है।

४ काशिष्वपि राजन् दिवोदासपितामह। हर्यश्व इतिविख्यातो बभूवजयतांवरः हर्यश्वस्य दायाद काशिराजोऽभ्यषिच्यत। सुदेवो देवसकाश... (महा० १२।३०।१०, १३)

५. ए० इ० हि० ट्रे० पृ० १५५

काशी का सर्वाधिक प्रसिद्धतम राजा था, इसी भ्रांति में रामायण के क्षेपककार प्रतर्दन को दाशरथि राम का समकालिक बना दिया और इस भ्रांति को पं० भगवद्दत्त ने सत्य तथ्य मान दिया।

यदि सौदेव दिवोदास को द्वितीय दिवोदास माना जाय तो उसकेपुत्र प्रतर्दन को द्वितीय प्रतर्दन तथा वीतिहोत्रपुत्र तथाकथित गृत्समद को भी द्वितीय गृत्समद मानना पड़ेगा। एकवंश में एकनाम के दो या अधिक व्यक्ति हो सकते हैं।

महाभारत मे हैहयवंश का उल्लेख इतिहासतथ्य के विपरीत होने का एक प्रमाण और है कि हैहय तालजंघ और वीतिहोत्र का विनाश प्रतर्दन ने नहीं परशुराम ने किया था, इस तथ्य का उल्लेख अथर्ववेद मे भी है, यही तथ्य जै० ब्रा०[1] मे उल्लिखित है और पुराणों मे तो इसका सर्वाधिक उल्लेख है।

अत यदि वीतिहोत्रो का काशिराजाओ से संघर्ष हुआ तो यह वीतिहोत्र तालजंघपुत्र न होकर कोई उत्तरकालीन द्वितीय वीतिहोत्र होना—चाहिये। अत यह एक जटिल समस्या है। अत दो ही सम्भावनाये हैं कि अनुशासनपर्वोक्त वीतिहोत्र, दिवोदास, प्रतर्दन और गृत्समद--चारो ही दो-दो थे। इस वंश मे केतुमान्, वत्स भर्ग[2] और केतुमान नामकअनेक राजा हुये। हमारा अनुमान है कि प्रतर्दनपुत्र अलर्क के पश्चात् तृतीय पीढी में क्षेम्य का पुत्र केतुमान् द्वितीय हुआ[3], प्रथम केतुमान् दिवोदासपिता भीमसेन का पिता था। द्वितीय केतुमान् की वंशावली इस प्रकार है (अनुशासनपर्व ३० अ०) १ केतुमान्, २ सुकेतु, ३ धर्मकेतु, ४ सत्यकेतु। हमारा अनुमान है कि केतुमान् द्वितीय आदि को क्रमश हर्यश्व, सुदेव, दिवोदास और प्रतर्दन बना दिया गया है। सत्यकेतु का पुराणो मे महारथ[4] बताया गया है, अत. यही द्वितीय प्रतर्दन हो सकता है। वीतिहोत्रद्वितीय (या उत्तरकालीन

---

१. जै० ब्रा० (१।१५२)

२. भर्ग को अनेक स्थानों पर प्रतर्दन का पुत्र और पुन वेणुहोत्र का पुत्र बताया गया है—"प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो भर्गश्च विश्रुत:।" (वायु० ९२।६४) अन्यत्र भर्ग वेणुहोत्र का पुत्र कथित है—"वेणहोत्र सुतश्चापि भर्गो नाम प्रजेश्वर (हरि० १।२९।८२)

३ सत्यकेतुर्महारथ: (हरि० १।२९।८०)

४. हरि० (१।२९।६९-७१) महा० (३१।३० अ०)

वैतहव्य क्षत्रिय) का विजेता यही सत्यकेतु (=प्रतर्दन द्वितीय) था, इसका समय ही सगर से कुछ पूर्व ६५०० वि० पू० के निकट होगा।

यहाँ हमने कुछ कल्पना का आश्रय लिया है, परन्तु निराधार नही है; क्योंकि प्रतर्दनसम्बन्धीमहाभारत के अपपाठो के कारण यह जटिलसमस्या उत्पन्न हुई है।

काशी और हैहय का चिरसंघर्ष दो समयों में—उक्त भ्रान्ति का कारण सतत काशिहैहय सघर्ष भी है, जिम कारण दोनो वश बीच-बीच में सताच्युत होते रहे अत; इस कारण सत्ताच्युति के अवमर पर वशधरो का ठीक-ठीक विवरण नही स्मृत रहा। सर्वप्रथम हैहयकाशिसघर्ष भद्रश्रेण्य और दिवोदास मे हुआ। दिवोदास ने भद्रसेन हैहय को पराजित कर उसका राज्यापहृत कर लिया. अत. भद्रसेन के पुत्र दुर्दम न काशिराज दिवोदास को परास्त कर अपना राज्य पुन: प्राप्त कर लिया।[1] प्रतर्दन ने दुर्दम से पुन राज्य छीन लिया। यह सघर्ष सहस्रोंवर्षपर्यन्त केतुमान् द्वितीय से सत्यरथ (द्वितीय प्रतर्दन) पर्यन्त चलता रहा। दिवोदास प्रतर्दन—हैहय संघर्ष सप्तदश अष्टादश युग में ७५००-७२०० वि० पू० के मध्य हुआ। विशतितम युग मे सगर से पूर्व (६८०० वि० पू० से ६४०० वि० पू०) पुन. केतुमान् द्वितीय के वशजो से वीतिहोत्रो का संघर्ष तीव्रतर हुआ और वीतिहोत्र राजा ब्राह्मण ऋषि बन गया।[2]

६ **प्रतर्दन**—यह प्रसिद्ध राजर्षि[3] एव सर्वाधिक प्रतापी काशिराज था। इसी प्रतर्दन का पुरोहित दीर्घजीवी भरद्वाज ऋषि था, जो अपने सहोदर

---

१. हरि० (१।२६।६६-७१),

२ महा० (१३।३०),

३. ऋग्वेद के (१०।१७९२) और ६।६३ के द्रष्टा को क्रमश. प्रतर्दन काशिराज और प्रतर्दन दैवोदास लिखा है। (ऋक्सर्वा० पृ० ३२ एव ४१)—ये दोनों एक ही व्यक्ति थे, इनको पार्जीटर ने पृथक्-पृथक् माना है, (ऐ० इ० हि० ट्रे०), इसी आधार पर प० भगवद्दत्त ने एक पाचाल प्रतर्दन की कल्पना की है (भा० बृ० इ० भा० २, १३०) पाचाल प्रतर्दन की सिद्धि प्राचीनग्रन्थो के प्रामाण्य से अनुपपन्न है।

४ ऐ० आ०

५. एतेन ह्वै भरद्वाजः प्रतर्दन समनह्यत् (काठकस० २१।१०)

दीर्घतमा मामतेय के समान अतिदीर्घजीवी था, वह भी न्यूनतम दशमानुष आयु (१००० वर्ष) जीवित रहा। भरद्वाज का जन्म षोडशयुग (६००० वि० पू०) हुआ और वह उन्नीसवेंयुगतक (७२०० वि० पू०) जीवित रहा, वह इस युग का व्यास था। अतः भरद्वाज ने बीसियों राजाओं का राज्यकाल देखा।

प्रतर्दन इन्द्र का प्रियसखा था और उसके पास उससे मिलने गया। इन्द्र ने प्रतर्दन से अपने पराक्रमो का गर्वपूर्ण बखान किया।[1]

प्रतर्दन के चार और नाम विष्णुपुराण (४।८।१२-१५) मे उल्लिखित है—शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज और कुवलाश्व। इनमे 'वत्स' नाम को छोड़कर और नाम सत्य प्रतीत होते है, क्योकि 'वत्स' स्वय प्रतर्दन का पुत्र या उत्तरकालिक वशज था।[3] मार्कण्डेयपुराण, मदालसोपाख्यान (अ० १८-३६) मे प्रतर्दन के उपर्युक्त दो नाम उल्लिखित है—शत्रुजित का पुत्र ऋतध्वज बताया है।

प० भगवद्दत्त ने भ्रम से इस कुवलयाश्व (प्रतर्दन) का सम्बन्ध ऐक्ष्वाक कुलवाश्व (धुन्धुमार) से जोड़ा है। ये दोनो कुवलाश्व पृथक्-पृथक् कालो और विभिन्न वशो मे हुये, यह स्पष्ट है। मदालसा काशिराज अलर्क की माता थी अत. वह प्रतर्दन की पत्नी हुई, अलर्क प्रतर्दन का पुत्र था, यह पुराण मे प्रमाणित है।

तालकेतुदानव अश्वतरनाग और गालव ऋषि प्रतर्दन के समकालिक थे, अश्वतरनागकी कन्या मेनकापुत्री मदलसा थी, यही मेनका शकुन्तला की माता थी, अत विश्वामित्र, मेनका, दुष्यन्त, हर्यश्व, वसुमना, उशीनर औरशिबि अष्टादशयुग (७५०० वि० पू०) मे होने वाले समकालिक व्यक्ति थे।

मदालसा—प्रतर्दन के चार पुत्र हुये—विक्रात, सुबाहु शत्रुमर्दन और कनिष्ठ अलर्क; प्रतर्दन के समकालिक व्यक्तियो एव समयको अनेकत्र बताया जा चुका

---

१. प्रतर्दनो ह वै दैवोदासिरिन्द्रस्यस्य प्रियं धामोपजगाम (शौ० आ० ५।१)

२ स एव शत्रुजिद् वत्स ऋतध्वज इतीरित । तथा कुवलयाश्वेति (भागवत० ६।१७।६)

३. प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभर्गौ बभूवतुः (हरि० १।२६।७३)

है। प्रतर्दन ने अतिदीर्घकालपर्यन्त (७६०० वि० पू० से ७४००), वि०पू० न्यूनतम दो सौ वर्ष राज्य किया होगा।

वत्स—मार्कण्डेयपुराण के मदालसोपाख्यान से स्पष्ट है कि पुराणो मे काशिवश के राजाओ के नाम एव वशावली मे अत्यधिक गडबडी हुई है; इस उपाख्यान मे कुवलाश्व के पिता का नाम शत्रुजित् है, विष्णुपुराण मे शत्रुजित्, कुवलाश्व ऋतध्वज और वत्स —चारों नाम दैवादासि प्रतर्दन के हैं। अन्य पुराणो मे प्रतर्दन के दो पुत्र उल्लिखित है—वत्स और भर्ग। अत इन नामो के सम्बन्ध मे पर्याप्त गडबड हुई है। हमारा अनुमान है कि वत्स और भर्ग—प्रतर्दन के पुत्र नही सुदूरवंशज थे। भर्ग को वेणुहोत्र का पुत्र बताया गया है।[2] अतः वत्स भी प्रतर्दन का पुत्र नही, कोई सुदूर वशज ही था, सभवत भर्गभ्रातावत्स के नामसे कुशाम्ब जनपद का प्राचीन नाम वत्सभूमि था।[3]

१० क्षत्रप्रतर्दन और प्रथम दाशराजयुद्ध—पुराणो मे प्रतर्दन का दायाद कही वत्स और कही अलर्क बताया है, परन्तु इसके विपरीत जै० ब्रा० मे प्रतर्दन के उत्तराधिकारी का नाम क्षत्र प्रातर्दन है। प्रथम दाशराजयुद्ध का विजेता यही क्षत्र प्रातर्दन था, इसका पुरोहित भरद्वाज और महिषी राजा सवेदस् की पुत्री उपमा सावेदसी थी।[4]

प्रथम दाशराजयुद्ध मे क्षत्रप्रातर्दन विजयी हुआ।[5] यह प्रथम दाशराज्ञयुद्ध ७४८० वि० पू० से ७३०० वि० पू० के मध्य हुआ। द्वितीय दाशराजयुद्ध, इससे लगभग आठ सौ वर्ष पश्चात् ६५०० वि० पू० मे हुआ, जिसका विजेता सुदास पैजवन ऐक्ष्वाक था, जिसके पुरोहित वासिष्ठ थे।[6]

---

१ विक्रान्तश्च यथान्य शत्रुमर्दन। अलर्क इति धर्मज्ञ ख्यातिं लोके गमिष्यति। (मा० पु० २३।३२, ३३)

२. हरि० (१।२६।८२)

३. वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु भर्गात् (हरि० १।२६।८२)

४. क्षत्र वै प्रातर्दन दाशराज्ञे दश राजानः पर्यनन्त मानुषे। तस्य ह भरद्वाज पुरोहित आस।...अथ होपमा सावेदसी कल्याणी आस क्षत्रस्य प्रातर्दनस्य जाया (जै० ब्रा० ३।२४५-२४८)

५. स त सग्रामम् अजयत् (जै० ब्रा० ३।२४८)

६ वशिष्ठो वै सुदास पैजवनस्य—ऐक्ष्वाकस्य पुरोहित आस; (जै० ब्रा० ३।२३)

ऋग्वेद में इसी द्वितीय दाशराज्ञयुद्ध का उल्लेख है।[1]

अलर्क हीक्षत्रप्रातर्दन—हमारा अनुमान है कि अलर्क ही क्षत्र प्रातर्दन था, क्योंकि यही मदालसा+कुवलाश्व का चतुर्थपुत्र था, जो उसका उत्तराधिकारी हुआ। पुराणो मे कहा गया है कि लोपामुद्रा (अगस्त्यपत्नी) के प्रसाद से अलर्क ने परमायु एव सुमहद्राज्य प्राप्त किया।[2]

संभवतः अलर्क (क्षत्र) के अनुज सुबाहु ने तत्कालीन काशिनरेश क्षेमक राक्षस को अलर्क पर आक्रमण करने प्रेरित किया।[3] इसी समय दत्तात्रेय ने अलर्क को तत्वज्ञान एव योग का उपदेश दिया। दत्तात्रेय अतिदीर्घजी योगी थे। दत्तात्रेय ने कार्तवीर्य अर्जुन को योगसिद्धियाँ प्रदान की।

अलर्क का राज्यकाल दिवोदास और (अलर्क) प्रतर्दन से भी दीर्घतर था—

षष्टिवर्षसहस्राणिषष्टिवर्ष शतानि च।
युवारूपेण सम्पन्न आसीत् कुरुकुलोद्वह ॥[4]

अत अलर्क ने युवारूप मे (योगसिद्ध से) ६६००० दिन - १८४ वर्ष राज्य किया। अलर्क का राज्यकाल ७४०० वि० पू० से ७२१६ वि० पू० तक था। उन्नीसवेयुग का अन्त ७१०० वि० पू० म हुआ, अतः अलर्क राज्य की समाप्ति और युगान्त लगभग एक ही शती के मध्य हुआ। परशुराम द्वारा कार्तवीर्य का वध भी इसी समय हुआ। अलर्क के समान कार्त्तवीर्य भी अतिदीर्घजीवी पुरुष था, उसका राज्यकाल ८५००० दिन = २३७ वर्ष था, अत कार्त्तवीर्य अर्जुन के राज्यारम्भपर्यन्त परशुराम का जन्म नही हुआ था।[5] जामदग्न्यराम सर्वाधिक चिरजीवी हुआ, इस पर विमर्श हैहयप्रकरण मे करेंगे।

---

१ ऋ० (७।१८)—वसिष्ठ ऋषि ऐक्ष्वाक राजाओ के परम्परागत पुरोहित थे, यह सर्वविदित तथ्य है।

२ लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप स.। (हरि० १।२९।७६)

३. मार्कण्डेयपु० (अ० २९),

४. वायु० (९२।६७)

५ महा० (१२।४९।७९) मे जामदग्न्य द्वारा निःक्षत्रियापृथ्वी के पश्चात् वत्स को काशि वश का प्रवर्तक कहा है, स्पष्ट है दीर्घकालपर्यन्त काशिराज्य नही रहा।

दिवोदास और अलर्क मे प्रायः एक सहस्रवर्ष का अन्तर था[1] क्योंकि दिवोदास के अनन्तर अलर्क ने क्षेमकराक्षस को मारकर पुन. वाराणसी बसाई।[2] अत दिवोदास से अलर्क तक वाराणसी पर कितने राजाओं का राज्य रहा यह ज्ञात नही, पर समय ज्ञात है। अतः ७५०० से ६५०० वि० पू० तक पुनः काशिवश एव राष्ट्र का लोप रहा, इसमे प्रधानकारण जामदग्न्यराम का भय था। परशुराम ने लगभग १००० वर्षतकयुद्ध दिये। सहस्रवष पश्चात् प्रतर्दनवशी वत्स ने पुन काशिराज्य स्थापित किया; इसके पश्चात् केतुमान् द्वितीय के वंशज किसी काशिराज सत्यकेतु महारथ ने वीतिहोत्र को हराया था।

प्रतर्दनवशी वत्स ने सौदास कल्माषपाद के समय मे, प्रतर्दन से लगभग १००० वर्ष पश्चात् (६५०० वि० पू०) पुन काशिराष्ट्र की प्रतिष्ठापना की।

---

१ शून्या निवासयामास क्षेमकोनाम राक्षस। (हरि० १।२६।३१)

२ हरि० (१।२६।७७)

३ चेतियजातक (म० ४२२) मे उपरिचवसु के पूर्वजों का वशक्रम इस प्रकार है - (१) महासम्मत (२) रोज (३) कल्याण (४) वर कल्याण (५) उपोसथ (६) उपोसथ (७) मान्धाता (८) वरमान्धाता (९) चर (१०) उपरिचर (वसु)।

(क) दण्डीकृत अवन्तिसुन्दरीकथा मे (पुराणो के आधारपर) यही क्रम है—(१) बृहद्रथ (२) कुशाग्र (३) ऋषभ (४) पुष्पवान् (५) पर्व (६) जरासन्ध (७) सोमापि। दण्डी ने सत्यहित, सुधन्वा, सभव और सहदेव का नाम छोड दिया है, द्रष्टव्य भा० वृ० इ० भा० २ पृ० १५० व १५३ पर प० भगवद्दत्त की टिप्पणी।

४ वायु० (९९।२१७-२२८)

५. हरि० (१।३५।५०-६१)

६. मत्स्य० (५०।२३-२४)

७ भाग० (९।२२।४-९)

८ विष्णु० (४।१९।७६-८४)

९. मह० (१।६३ अ०)

बार्हद्रथवंश

पौरव कुरु के एक वंशज चैद्य उपरिचर वसु[1] ने एक पृथक् राज्य की स्थापना की, यह वसु एक महान् वंशप्रवर्तक नृपति हुआ। जिसका वंशवृक्ष विभिन्न पुराणों में इस प्रकार है—

	वायु०	हरि०	मत्स्य०	भागवत	विष्णु	महाभारत
१.	कुरु	कुरु	कुरु	कुरु	कुरु	कुरु
२.	सुधन्वा	सुधन्वा	सुधन्वा	सुधन्वा	सुधनु	सुधनु
३	सुहोत्र	सुहोत्र	च्यवन	च्यवन	च्यवन	सुहोत्र
४.	च्यवन	च्यवन	कृमि	कृमि	च्यवन	
५	कृत	कृतयज्ञ	वसु	वसु	कृतक	
६.	वसु	वसु उपरिचर	बृहद्रथ	बृहद्रथ, आदि	वसु उपरिचर	वसु
७	बृहद्रथादि सप्तपुत्र	बृहद्रथादि सप्तपुत्र	सप्तपुत्र बृहद्रथ	|	कुशाग्र बृहद्रथ और (मणिवाहन) कुशाम्ब	प्रत्यग्रथ
८.	कुशाग्र	कुशाग्र	वृषभ	ऋषभ	कुशाग्र मावेल्ल	
९	ऋषभ	वृषभ	पुष्पवान्	सोमापि सत्यहित	वृषभ	पष्ठपुत्र मत्स्य,
१०	पुष्पवान्	पुष्पवान्	सत्यधृति	पुष्पवान्	पुष्पवान्	कन्यासत्यवती
११.	सत्यहित	सत्यहित	धनु	जह्नु	सत्यहित,	जरासन्ध
१२	सुधन्वा	ऊर्ज	सभव	सर्व	सुधन्वा	सहदेव
१३	ऊर्ज	सभव	सभव		जह्नु	
१४	नभस्	जरासध	बृहद्रथ	सहदेव		
१५	जरासंध	सहदेव	जरासध	सोमापि		
१६.	सहदेव	उदायु	पहदेव	श्रुतश्रुवा		
१७	सोमाधि	श्रुतधर्मा	सोमाधि			
१८.	श्रुतश्रुवा		श्रुतश्रवा			

पार्जीटर[1] ने पुराणो के आधार पर बार्हद्रथवश का यह क्रम निश्चित किया है (१) वसु (२) बृद्रथ (३) कुशाग्र (४) ऋषभ (५) पुष्पवान् (६) सत्यहित (७) सुधन्वा (८) ऊर्ज (९) सभव (१०) जरासंध (११) सहदेव और (१२) सोमाधि। इससे हम सहमत हैं, क्योकि यह पुराणों के प्राचीनपाठ सम्मत है।

चैद्यवसु[2]—चिदि या चेदिवश की स्थापना अतिप्राचीनकाल मे त्रिशकु समकालिक विदर्भ के पौत्र चेदि ने की, इसका विशेष उल्लेख यादव प्रकरण मे किया जायेगा। प्रतीप कौरव (३४०४ वि० पू० से ३३८५ वि०) पू०) के समकालिक इस वसु ने चे दराज्य पर पौरव राष्ट्र की स्थापना की। लोहगन्धी जनमेजय पारीक्षित्, प्रथम से ययाति का दिव्यरथ इसी चैद्यवसु को मिला। वसु से ही यह रथ क्रमश. बृहद्रथ के वशजो जरासन्धादि को मिला, भीम द्वारा जरासधवध के अनन्तर यह रथ वासुदेवकृष्ण को मिला।[2]

वसु की सन्तति—विभिन्न ग्रन्थो मे इसके सातपुत्र और एकपुत्री सहित पुत्रो के नाम इस प्रकार है -

वायुपुराण—बृहद्रथ प्रत्यग्रथ, कुश (मणिवाहन) मार्थेन्य, ललित्थ, मत्स्य और काल।[3]

हरिवश—बृहद्रथ, प्रत्यग्रह, कुश (मणिवाहन), मारुत, यदु, मत्स्य और काली।[4]

मत्स्य—बृहद्रथ, प्रत्यश्रवा, कुश, हरिवाहन यजु (यदु), मत्स्य और काली।[5]

---

१. ए० इ० हि० ट्रे० पृ० १४६, (२) पूर्वपृष्ठ पर (५४३) कुशपुत्र कौशिक वसु के सम्बन्ध मे स्पष्ट कर चुके है कि इन्द्रसख, देवयुगीन वसु से इस चैद्यवसु की महाभारत (१।६३।१३-१४) मे भ्रान्ति उत्पन्न की गई है, यह कथा चेतियजातक मे भी है।

२. हरि० (१।३०।१४।६)

३. वायु० (९९।२२१-२२२ यह पर्याप्त भ्रष्टपाठ है, काल के स्थान पर काली पाठ होना चाहिये।

४. हरि० (१।३२।५४-५५)

५. मत्स्य० (५०।२२।२८)

भागवत०—बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र, चेदिपादि ।[1]

विष्णु० बृहद्रथ, प्रत्यग्र, कुशाम्ब, कुचेल, मत्स्य[2]

महाभारत—बृहद्रथ, प्रत्यग्रह, कुशाम्ब, (मणिवाहन), मावेल्ल, यदु, मत्स्य और काली ।[3]

उपर्युक्त नामपाठों में पर्याप्त अशुद्धि है, महाभारत के नाम कुछ अधिक शुद्धतर हैं शुद्धनाम इस प्रकार हैं—(१) बृहद्रथ, प्रत्यग्रथ, कुशाम्ब यदु मावेल्ल, मत्स्य (या० मात्स्य) और काली (सत्यवती) । पुराणो में इन सबको वसु की पत्नी गिरिका के पुत्र बताया है, परन्तु महाभारत (१।६३) से ज्ञात होता है कि इनमे मत्स्य और काली अद्रिका नाम की अप्सरा की सन्तान थी, शेष पाच पुत्र गिरिका की सन्तति थे—

ये छ पुत्र विभिन्न राज्यो के अधिपति हुये । यथा बृहद्रथ मगधराज्य का, प्रत्यग्रथ चेदि का, कुशाम्ब कौशाम्बी (वत्स) राज्य का, मात्स्य मत्स्य राष्ट्र का । मावेल्ल और यदु के राज्यो का ज्ञान नही है । महाभारत मे वसु को 'सम्राट्' बताया गया है, अत उसका साम्राज्य उत्तरी भारत के पर्याप्त भाग पर था ।

बृहद्रथ—इनमे सर्वाधिक प्रतापी बृहद्रथ हुआ, जिसके वशजों ने सम्पूर्ण भारत पर लगभग डेढसहस्रवर्ष (३३६५ वि० पू० से १००० कलि सम्वत्पर्यन्त २१ बार्हद्रथ राजाओ ने राज्य किया । इनमे सर्वाधिक प्रतापी जरासन्ध हुआ ।

महाभारत, सभापर्व (१७ अ०) मे बृहद्रथ से संभव तकके मध्य के सात राजाओ के नाम लुप्त करके जरासन्ध को बृहद्रथ का पुत्र बताया गया है ।[5] उत्तरकालीन विष्णु एव भागवत मे भी महाभारत का अनुकरण करते हुये

१. भाग० (६।२२।५-६)
२. विष्णु० (६।१०।८१)
३. महा० (१।६३।३०,३१,६३,६७)
४ महा० (१।६३।३०) नानाराज्येषु च सुतान् स सम्राडभ्यषेचयत् ।
५. राजा बृहद्रथो नाम मगधाधिपतिर्बली । (महा० २।१७।१३)
बृहद्रथ सुतस्तेऽयमया दत्तः प्रगृह्यताम् ।। (महा० २।१७।४६)

जरासंध को वृहद्रथ की द्वितीय पत्नी का पुत्र बताया है।[1] इसी भ्रान्ति मे प० भगवद्दत्त ने जरासन्ध पिता द्वितीय बृहद्रथ की कल्पना की है।[2] यह कल्पना निस्सार है। बृहद्रथ (वसुपुत्र) एक ही हुआ है। महाभारत मे भ्रान्ति से बार्हद्रथ' (सभत्र) को 'बृहद्रथ' ही बना दिया है। इतिहासपुराणो मे वशवृक्षो का किस प्रकार लाप किया गया है यह उसका एक उत्तम उदाहरण है जहा सात राजाओ के नाम एक साथ लुप्त कराये गये। पुराणो मे अनेकवंशो का इसी प्रकार लोप या सक्षिप्तीकरण किया गया है। प्रातर्दन वंशीय वत्स और भर्ग के सम्बन्ध मे भी यही भ्रान्ति हुई है, इसी प्रकार सोमक और जन्तु के पश्चात् पाचालवशवृक्ष लुप्त है, इसी प्रकार के और अनेक वश वृक्ष लुप्त है।

वायु० एव हरिवशादि मे स्पष्ट लिखा है कि जरासन्ध मगधराज 'सभव' का पुत्र था—

> ऊर्जस्य सम्भव. पुत्रो यस्य जज्ञे स वीर्यवान्।
> शकल द्वे स वै जातो जरया सधित. स तु।[3]
> जरया संधितो यस्माज्जरासधस्तत. स्मृत ।।

अत: पुराणप्रमाण्य की उपस्थिति मे दो बृहद्रथो की कल्पना निरर्थकहै। 'सभव' को ही महाभारत मे बार्हद्रथ (सभव) के स्थान पर बृहद्रथ कह दिया जिसका अनुकरण विष्णु एव भागवत मे है।

मगधराज सभव के पिता और जरासन्ध के पितामह दीर्घ को पाण्डु ने दिग्विजय के अवसर पर मारा था।[4] यह दीर्घ ही पुराणो का 'ऊर्ज'[5] है जिसे दण्डी ने 'दर्व'[6] कहा है।

यह दीर्घ या ऊर्ज (दर्व) महाभारतयुद्ध से ८० वर्ष पूर्व पाण्डु द्वारा मारा गया, जैसा कि हमने पाण्डु का समय निश्चित किया है। एतदनुसार

---

१ विष्णु० (४।१९।४३), भाग० (१।२२।७)—अन्यस्या चापि भार्याया शकले द्वे बृहद्रथात।

२ भा० बृ० इ० भा० २, (पृष्ठ १९२)

३. हरि० (१।३२।५८-९५)

४. गोप्ता मगधराष्ट्रस्य दीर्घो राजगृहे हत· (महा० १।११२।२७)

५. हरि० (३२।५८)

६. पूर्वपृष्ठ पर टिप्पणी द्रष्टव्य

बृहद्रथ से श्रुतश्रवापर्यन्त बार्हद्रथमागधराजाओंकासमय इस प्रकार हैं—

१. बृहद्रथ	(४० वर्ष)	३३६५ वि०पू० से ३३२५ वि०पू०
२. कुशाग्र	(४० वर्ष)	३३२५ वि०पू० से ३२८५ वि०पू०
३. ऋषभ	(३० वर्ष)	३२८५ वि०पू० से ३२५५ वि०पू०
४. पुष्पवान्	(२० वर्ष)	३२५५ वि०पू० से ३२३५ वि०पू०
५ सत्यहित	(५० वर्ष)	३२३५ वि०पू० से ३१८५ वि०पू०
६. ऊर्ज (दीर्घ= दर्व)	(३१ वर्ष)	३१८५ वि०पू० से ३१६६ वि०पू०
७. सभव	(१७ वर्ष)	३१६६ वि०पू० से ३१४६ वि०पू०
८. जरासन्ध	(३० वर्ष)	३१४६ वि०पू० से ३११६ वि०पू०
६ सहदेव	(३६ वर्ष)	३११६ वि०पू० से ३०८० वि०पू०
१० सोमाधि	(५६ वर्ष राज्यकाल)[1]	३०८० वि०पू० से २९२४ वि०पू०
११ श्रुतश्रवा	(६३ वर्ष राज्यकाल)[2]	२९२४ वि०पू० से २८६६ वि०पू०

योग= (४७५वर्ष)

पुराणों में भारतोत्तरकाल में एक बार्हद्रथ राजा सत्यजित् का राज्यकाल ८३ वर्ष तक लिखा है—

सत्यजित् पृथ्वीराज्य त्र्यशीतिं भोक्ष्यते समा ।[3]

ऐसी स्थिति में भारतयुद्ध से पूर्व के राजाओं का राज्यकाल न्यूनतम या औसत ३० या ४० वर्ष होना असभव नहीं । अत. हमारी वर्षगणना पूर्णत: सत्य के निकट है ।

---

१. पूर्वपृष्ठ (५३९)

२. सोमाधिस्तस्य तनयो राजर्षि: स गिरिव्रजे पंचाशत तथाऽष्टौ समा राज्यमकारयत् । श्रुतश्रवाश्चतु षष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवत् ।
वायु० ९९।२९६-२९७

३. वायु० ९९।३०७

(पांचालवंश)[1]

पुराणों के आधार पर पांचालों का वंशवृक्ष इस प्रकार है—अजमीढ़ की पत्नी नीलिनी से नीलनामक पुत्र से उत्तरीपांचालवंश और धूमिनीपत्नी से दक्षिणपांचालवंश उद्भूत हुआ।

(उ० पांचाल) नीलिनी +	अजमीढ +		धूमिनी (द० पांचाल)
नील	द्विमीढ़		बृहद्वसु
सुशान्त	भ्राता		बृहदिषु
पुरुजानु			बृहद्धनु
तृक्ष (ऋक्ष)			बृहत्कर्मा
भृम्यश्व			जयद्रथ
इन्द्रसेना + मुद्गल	कापिल्य, यवीनर, सृंजय	बृहदिषु,	विश्वजित्
बध्यश्व + मेनका	धृतिमान्	पिजवन	सेनजित्
दिवोदास	सत्यधृति	सुदास = सोमदत्त,	रुचिराश्व
मित्रयु	दृढनेमि	सहदेव	पृथुषेण
मैत्रेयी = अहिल्या, सोम (मैत्रायण)	सुवर्मा	सोमक	पार, प्रथम
	सार्वभौम	जन्तु	नीप, प्रथम
	महत्पौरव		समर
	रुक्मरथ		पार, द्वितीय
	सुपार्श्व		पृथु
	सुमति		सुकृति
	सन्नतिमान्		विभ्राज

---

१. हरि० (१।२०।१८-४७ तथा १।३२), वायु० (९९।१७०-२११), तथा भा० बृ० इ० भा० २, पृ० १२८ एवं ए० इ० हि० ट्रे० पृ० १४६-१४८

कृत	|	अणुह
|	पृषत	ब्रह्मदत्त
|	द्रुपद	विष्वक्सेन
|	धृष्टद्युम्न	उदक्सेन
	|	
	धृष्टकेतु	भल्लाट=
		दुर्मुख
उग्रायुध		जनमेजय
		=दुर्बुद्धि
क्षेम्य		|
सुवीर		|
नृपञ्जय		|
बहुरथ		|

त्रेधा पांचाल—काठकसंहिता में उल्लिखित है कि पांचालों के तीन राज्य थे—पुराणों की वर्तमानपाठों में उत्तर और दक्षिण—दो पांचाल राज्यों का उद्भव अजमीढ के पुत्र नील और बृहद्वसु से माना गया है,

तत. पञ्चालास्त्रेधाभवन् । (काठक० ३०।२।४)

परन्तु वर्तमानपुराणों में तृतीय शाखा का स्पष्ट उल्लेख नही है, जिसका मूल अजमीढ के भ्राता द्विमीढ से था। प० भगवद्दत्त और पार्जीटर इस सत्य रहस्य को नहीं समझ सके कि सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में 'यवीनर' संज्ञक एक ही व्यक्ति हुआ है, परन्तु वर्तमानपुराणपाठों में द्विमीढपुत्र 'यवीनर' और भृम्यश्वपुत्र यवीनर को पृथक् पृथक् समझा गया—

द्विमीढस्य तु दायादो विद्वाञ्जज्ञे यवीनरः। (वायु० ९९।१८४)

हरिवंश में. भ्रम से इसी यवीनर को अजमीढ का पुत्र माना है—

अजमीढस्य दायादो विद्वान् राजा यवीनर.। (हरि० १।२०।३७)

सभी पुराणों में अन्यत्र यवीनरादि पांच पुत्रों को भृम्यश्व की सन्तान बताया है (जो सत्य है)—

मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषु स्मृतः।
यवीनरश्च विक्रान्तः क्रमिलाश्वश्च पञ्चमः॥ (हरि० १।३२।२६)

अत उपर्युक्त तीनो पुराणो में उल्लिखित 'यवीनर' एक ही है। यह भृम्यश्व का ही पुत्र था। परन्तु पुराणों में इसका सम्बन्ध अजमीढ और

द्विमीढ़ से जोड़ दिया गया है, यद्यपि द्विमीढ और यवीनर के काल मे महदन्तर था, जो आगे निर्देश किया जायेगा। तथाकथित द्विमीढपुत्र (वंशज) एकमात्र यवीनर पांचाल ही था, जो वस्तुत: भ्रम्यश्व का पुत्र था, इसके वंश मे शन्तनुकाल में प्रसिद्ध राजा उग्रायुध कार्ति[1] हुआ, जिसका भीष्म ने वध किया था।[2]

पार्जीटर ने भागवतपुराण के इस मत को नही माना कि कृत और उग्रायुध का नीपवंश (पांचाल) से सम्बन्ध था।[3] हमारा दृढ़मत है कि उग्रायुध और उसमे वंशज क्षेम्यादि का सम्बन्ध यवीनर पांचाल से ही था और यह उसकी नीपशाखा से सम्बन्धित था, अत भागवत का यह उल्लेख भ्रामक नही, एक ऐतिहासिक तथ्य था—"नीपो ह्युग्रायुधस्तत। तस्य क्षेम्यः

सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जय. । ततो बहुरथो नाम"...॥[4]

अपूर्णवंशावली—पांचालो के पाच या तीन राज्यो का पुराणो मे उपलब्ध वंशवृक्ष पूर्ण नही है, इसके कारण, युद्धादि पूर्वविहित हैं, तथा इसका सकेत वैदिक एव ऐतिहासक ग्रन्थो से भी मिलता है। इस सम्बन्ध मे शत. पथ ब्राह्मण के दो प्रसग उल्लेख्य है—"(१) तेन हैतेन क्रैव्य ईजे पाञ्चालो राजा क्रिव्य इति ह वै पुरा पञ्चालानचक्षते।"[5] (२) दुष्टरीतुर्ह पौसायनः दशपुरुष राज्यादपरुद्ध आसः...सृञ्जयेषुरॉष्ट्र तद्धास्मिन् धास्यामीति॥[6]"

प्रथम प्रसग मे ज्ञात होता है पूर्वकाल मे पांचालो मे 'क्रिवि' नाम का राजा हुआ था, पुराणों मे से इसका अनुल्लेख है। द्वितीय प्रकरण से सिद्ध है कि पुंस और तत्पुत्र दुष्टरीतु सृञ्जय (पांचाल) दश पीढियोपर्यन्त राज्य से वंचित रहे। दश पीढ़ियो में न्यूनतम ३०० वर्ष अवश्य होने चाहिये।

पुराणो मे साहृदेव्य सोमकपुत्र जन्तु से पृषत (द्रुपदपिता) पर्यन्त की वंशावली लुप्त है। पुराणों मे दुर्मुख पांचाल जैसे सम्राट् का उल्लेख नही है।[7]

---

१. कार्तिरुग्रायुध.सोऽथ वीर पौरवनन्दन। (हरि० १।२०।४८)
२. हरि० (१।२०।३५)
३ Bhāgawata, wronly assigns the last few kings as Neepa's descendants in the south Panchala line (ए०इ०हि०ट्रे०पृ० ११५)
४. भागवत (६।२१।२६-३०)
५. श० ब्रा० (१३।५।१४।६)
६. श० ब्रा० (१२।६।३।१)
७. ऐ० ब्रा० (८।३)

पुराणों में पुस और दुष्टरीतु का नाम भी नहीं मिलता है। स्पष्ट है पांचालवंशावली पर्याप्त अपूर्ण है। पुराणों में अनेक राजाओं के नाम छोड़े गये हैं।

पांचालों का उदयकाल—अजमीढ और द्विमीढ का समय जामदग्न्यराम (उन्नीसवा युग) के पश्चात् बीसवेंयुग के आदिमें (७२०० वि०पू०) के निकट था, अत पांचालो का मूल इतना पुरातन था, परन्तु राज्य का 'पांचाल' नाम भृम्यश्व के पांच पुत्रों के समय से ही पड़ा, अत. पांचालराज्य के उदय का यही वास्तविककाल था। अब यह द्रष्टव्य है कि मुद्गल आदि कासमय क्या था। महाभारतनलोपाख्यान (वनपर्व) से ज्ञात होता है। कि ऐक्ष्वाक ऋतुपर्ण के मित्र राजा नैषध वीरसेनात्मज नल की पुत्री इन्द्रसेना मुद्गल की पत्नी थी। ऋग्वेद मे मुद्गलानी इन्द्रसेना का का उल्लेख है।[2]

ऋतुपर्ण और नल का समय पूर्व निश्चित किया जा चुका है ७००० वि० पू० के निकट। अत नल के जामाता मुद्गल का शासन ७००० वि० पू० मे ६६०० वि० पू० मध्य होना चाहिये। भृम्यश्व, ऋतुपर्ण, भीम (वैदर्भ) चैद्य नृपाह्, आजमीढ विदूरथ, पाचाल जयद्रथ आदि सभी प्राय. समकालिक राजा थे। अत पाचालराज्य के उदय का यही समय था, बीसवें-युग के मध्य मे ७००० वि० पू०।

भृम्यश्वपुत्र पांचाल—भृम्यश्व के पाच प्रतापीपुत्र हुये—काम्पिल्य, मृञ्जय, बृहदिषु, यवीनर, और मुद्गल। इन्होने पृथक्-पृथक् पाच राष्ट्रो की या एक समवाय राष्ट्र की स्थापना की, जिससे राष्ट्र का नाम पञ्चाल या पाञ्चाल हुआ—

> पञ्चैते रक्षणायाल देशानामिति विश्रुताः।
> पञ्चाना विद्धिपञ्चालान् स्फीतैर्जनपदैर्वृतान्॥[3]

---

१. नालायनी चेन्द्रसेना बभूव वश्या नित्य मुद्गलस्याजमीढ॥
(वनपर्व ११४।२४) नालायनी सुकेशान्ता मुद्गलस्यचारुहासिनीम्
(आदिपर्व, पूना स०, पृ० ६४८)

२. रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्योचदिन्द्रसेना।
(ऋग्वेद १०।१०२।२)

३. हरि० (१।३२।२७)

इनमें से वैदिकग्रन्थो में मुद्‌गल और सृञ्जय के वंशजों-साञ्जय क्षत्रियों का विशेष उल्लेख मिलता है। इनका आगे उल्लेख किया जायेगा।

हरिवंश (१।३२।२६) में 'काम्पिल्य' के स्थान पर 'कृमिलाश्वपाठ' मिलता है, इसीके पुत्र को श० ब्रा० (१३।५।४।७) में क्रैव्य पाचाल कहा हो।

मुद्‌गल—स्वय मुद्‌गल भार्म्यश्व ऋग्वेद (१०।१०२) सूक्त का ऋषि है। इसने स्वयं अपने पराक्रम का मन्त्र मे उल्लेख किया है कि उसने 'सूभर्व' को द्रुघण (मुद्‌गल = मुद्‌गर) और ऋषभ के द्वारा युद्ध में जीत लिया।[1] मन्त्र मे ही इसके सारथी का नाम 'केशी' बताया है।[2] इसकी पत्नी इन्द्रसेना मुद्‌गलानी का पूर्व उल्लेख किया जा चुका है। इससे अगले सूक्त (१०।१०३) का द्रष्टा ऐन्द्र अप्रतिरथ था. इन्द्र या इन्द्रसेन नल का पुत्र और इन्द्रसेना का भ्राता था तथा मुद्‌गल का श्याल था। इसीका पुत्र अप्रतिरथ १०।१०५ मंत्र का द्रष्टा है, जिसमे उसने युद्ध में विजय की इच्छा से सूक्त का गायन किया है।[3] संभवतः सूभर्व-मुद्‌गल युद्ध में नलपौत्र ऐन्द्र अप्रतिरथ ने पितृष्वस मुद्‌गल की सहायता की होगी। ऋग्वेद का १०।१०३ सूक्त संभवत. वीरघोषणापूर्ण सर्वश्रेष्ठ युद्धसूक्त है जिसमें ओजस्वी शब्दों मे विजयलिप्सा उद्‌घुष्ट है—

> उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वना मामकाना मनांसि।
> ......रथानां जयतां यन्तु घोषाः॥[4]

स्पष्ट है मुद्‌गलादि पंचालों ने एक या अनेक युद्धो में विजय प्राप्त की।

सूभर्व या संवरण— हमारा अनुमान है कि पुराणोल्लिखित आर्क्ष सवंवर पौरव ही ऋग्वेदोक्त राजा सूभर्व हो सकता है, क्योकि महाभारत, आदिपर्व मे जिस पाञ्चाल्य का उल्लेख है, वह यही मुद्‌गल हो सकता है। पार्जीटर ने संवरण पाञ्चाल्य को दाशराजयुद्ध से मिलाकर सुदास पांचाल

---

१. तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रं गवां मुद्‌गलः प्रधने जिगाय (ऋ० १०।१०२।५)
२. सारथिरस्य केशी (ऋ० १०।४०२।६) इसी घटना का उल्लेख निरुक्त (६।२३), बृहद्देवता (०।१२) एवं ऋक्सर्वानुक्रमणी (पृ० ३८) में है।
३. युध्यन् संख्ये जयं प्रेप्सुरैन्द्रोऽप्रतिरथो जगौ। (बृहद्दे० ८।१३)

को युद्ध का तथाकथित विजेता बताया है।[1] हमने अन्यत्र सिद्ध किया है कि किसी भी वैदिकग्रन्थ में सुदास पांचाल का रंचमात्र भी उल्लेख नहीं है, वह एक सामान्य राजा था। जिस दाशराज्ञ युद्ध और सुदास के सम्बन्ध मे कीथ[2], पार्जीटर[3] और पुसाल्कर[4] आदि ने महारव मचाया है, उसका मूल कहीं भी नहीं है। सर्वप्रथम कीथ और मैकडानल ने ही इस महाभ्रम का बीज बोया, यह आज उसी प्रकार एक ध्रुव तथ्य माना जाता है, जैसा कि डार्विन का विकासवाद या आर्यों का तथाकथित भारत में आव्रजन का कुमत।

दाशराजयुद्ध (द्वितीय) का विजेता ऋतुपर्ण का पौत्र या प्रपौत्र ऐक्ष्वाक राजा पंजवन सुदास था, जिसका जै० ब्रा, शांखायन श्रौतसूत्र, (१६।११।१४), मनुस्मृति (८।११०) गोभिलगृह्यसूत्र (१।६।११), ऐ० ब्रा० (८।२१) और ऋग्वेद—७।१८ मे उल्लेख है, इसका स्पष्टीकरण सुदास पाचाल के सम्बन्ध में करेंगे।

मौद्गल्य ब्राह्मण—मुद्गल स्वयं राजा होते हुये ऋषि था। उसकी सन्तति मौद्गल्य ब्राह्मण हुये। महाभारत और पुराणो में अनेक मौद्गल्य ऋषियो को मुद्गल ही कहा है।

मौद्गल्य ब्राह्मण—हरिवंश (१।३२।२८) मे मुद्गल के दायाद को मौद्गल्य कहा है—'मुद्लस्य दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः'। यह मौद्गल्य 'वध्र्यश्व' था, वह ब्रह्मर्षि, इन्द्रसेना का पुत्र था। वध्र्यश्व का पत्नी का नाम मेनका अप्सरा था। प्राचीनयुगो मे मेनका या घृताची नाम की अनेक अप्साराये थी। शकुन्तला की माता मेनका और दिवोदास की माता मेनका अप्सरा एक नही हो सकती। संभवतः वध्र्यश्व का तप करते हुए उक्त मेनका अप्सरा से समागम हुआ होगा, वह वंश पत्नी नही होगी।

वध्र्यश्व को भार्म्यश्व कहा है, वह भर्म्यश्व का पुत्र नही, वशज था। एक[5] मुद्गल शाकल्य का शिष्य था।

---

१. अभ्ययात् तं च पाञ्चाल्यो विजित्य तरसा महीम्।
अक्षौहिणीभिर्दशभिः स एवं समरेऽजयत्॥ (महा० १।६४।३८)

२. वैदिकइण्डेक्स (प्र० भा० पृ० ३५५-५६)

३. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १७२)

४. वैदिक एज पृ० ३०७

५. बृहद्देवता में (६।४६) यह, शाकपूणि के समकालीन था।

बध्यश्व का एक पुत्र सुमित्र ऋषि ऋग्वेद के १०।६९ व ७० दो सूक्तों का द्रष्टा था। पुराणों में बध्यश्व और मेनका की सन्तति दिवोदास और अहिल्या बताई गई है।[1] वैदिकसाक्ष्य के सम्मुख पुराणपाठ भ्रामक है, क्योकि जैमिनीयब्राह्मण और षड्विंशब्राह्मण (१।१) में 'अहल्या' को मैत्रेयी कहा गया हैं। 'मित्रयु'[2] दिवोदास का पुत्र था, अतः मैत्रेयी अहल्या दिवोदास की पौत्री थी। अहल्या शरद्वान् गौतम की पत्नी एवं शतानन्द की माता थी, और इसकी रामकाल मे भी होने की सम्भावना है।

दिवोदास—ऋग्वेद मे दिवोदास का कोई सूक्त तो नहीं, परन्तु. उसका बाध्यश्व दिवोदास नाम से उल्लेख हैं।[3] हाँ, जैं० ब्रा० (१।२२२) के प्रामाण्य से उसका ऋषि होना सिद्ध है, दैवोदासि पारुच्छेपि, अनानत (ऋ० ६।१११) तथा सुदाः पैजवन (ऋ० १०।१३३), का सम्बन्ध पाचाल दिवोदास से सम्बन्ध है या काशि दिवोदास से यह निर्णय प्रमाणाभाव मे नही किया जा सकता। परन्तु हमारी अभिरुचि परुच्छेप और अनानत को काशिराज का वंशज एव मन्त्रद्रष्टा सुदाः पैजवन को ऐक्ष्वाक मानने की है। क्योकि पुराणो मे भी ऐक्ष्वाक सुदास पैजवन को ही इन्द्रसखा[4] कहा वसिष्ठ ने दाशराजसूक्त (ऋ० १।१८) में इसी ऐक्ष्वाक आर्तपर्णि सुदास का इन्द्रसखा के रूप मे विस्तार से वर्णन किया है। सुदास पाचाल की महत्ता एव इन्द्रसखा मानने का कोई साक्ष्य किसी भी ग्रन्थ में नही है।

मैत्रायण सोम—दिवोदास का दायाद मित्रयु था। मित्रयु का पुत्र मैत्रायण सोम और पुत्री मैत्रेयी अहिल्या हुई।[5]

---

१. बध्यश्वान्मिथुन जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः।
   दिवोदासश्च राजर्षिरहिल्या च यशस्विनी ॥ (हरि० १।३२।३१)
२. दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृपः। (हरि० १।३२।३६)
३. दिवोदासं बाध्रश्वायः दाशुषे (ऋ० ६।६१।१)
४. ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्तपर्णिर्महीपतिः सुदासस्तस्य तनयो राजा स्विन्द्रसखोऽभवत् ॥ (हरि० १।१६।२०)

   दिवोदासो वै बाध्र्यश्विरकामयतोभयब्रह्मक्षत्र चावरुन्धीय...राजा सन्न् ऋषिरभवत्। (जै० ब्रा० १।२२२)
५. यदि अहल्या की आयु पांचसौवर्ष हो तो वह दाशरथिराम के समय मे हो सकती है।
   हरि० (११३२।३४)

दिवोदास का समय— तिथि

१. ऋतुपर्ण	सृञ्जय	भ्रम्यश्व	७०००-६६५० वि० पू०
२. सर्वकाम	पिजवन	मुद्गल	६५५०-६६०० वि० पू०
३. पिजवन	सुदास	बध्र्यश्व	६७००-६८५० वि० पू०
४. सुदास	सहदेव	दिवोदास	६८५०-६८०० वि० पू०
५. सर्वकर्मा	सोमक	मित्रयु	६८००-६७५० वि० पू०
अनरण्य	जन्तु	मैत्रायणसोम	६७५०-६७०० वि० पू०

उपर्युक्त निदर्शन से प्रतीत होता है कि ऐक्ष्वाक्पैजवनसुदास और पांचाल—पैजवन सुदास प्रायः समकालिक थे—परन्तु पाचाल्य पैजवन सुदास सामान्य राजा था, जिसकी वैदिकग्रन्थों मे कोई चर्चा नही मिलती है। ऐक्ष्वाक सुदास पैजवन का पुरोहित 'जीत' वासिष्ठ[1] था, जिस (जितपुत्र) ने दाशराजयुद्धविजय की गाथा ऋग्वेद (७।१८) तथा ऋ० (३।५३) में गाई है।

सृञ्जय—भ्रम्यश्व का पुत्र और मुद्गल का भ्राता सृञ्जय का कुल पाचालो मे सर्वाधिक प्रथित हुआ, इसके वशज 'साञ्जय' कहलाते थे। सृञ्जय स्वयं विद्वान् अर्थात् ऋषि था।[2] सृञ्जय नाम के अनेक राजा प्राचीनकाल हुये थे, जिसके कारण सृंजय[3] और साञ्जय मे भ्रान्ति के लिये पर्याप्त स्थान है। पार्जीटर ने इसी कारण प्रस्तोक साञ्जय[4] को जो तौर्वशया यादव था, पाचाल मान लिया।[5] जो स्पष्ट ही भ्रान्ति है।

पिजवन—साञ्जय पिजवन और ऐक्ष्वाक पिजवन प्रायः समकालिक राजा थे। इसका समय ६६५० वि० पू०से ६८५० वि०पू० के लगभग था।

---

१. वसिष्ठ वै जीतो हत पुत्रोऽकामयत... (जै० ब्रा० १।१५०) इसके पिता का नाम सभवतः 'जित्' था।

२. वायु० (८६।१६)

३. सृञ्जय या संजय का अर्थ था, युद्धविजेता।

४. ऋ० (६।२७।७)

५. स मृञ्जयाय तुर्वशः परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षत् (ऋ० ६।२७।७)

सुदास—साञ्जंय पिजवन का पुत्र पैजबन सुदास था। इसी समय ऐक्ष्वाक सुदास पैजवन राजा हुआ। प्राचीनग्रन्थों में केवल जै० ब्रा० (३।२३) को छोड़कर अन्य वैदिकग्रन्थों में सुदाः पैजवन ऐक्ष्वाक का इस प्रकार उल्लेख है. जिससे इस साञ्जंय पंजवन सुदास की भ्रांति होती है। इसका दाशराजयुद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं था, न ही यह ऋषि था। यह संभवतः एक सामान्य राजा था। इसके विपरीत ऐक्ष्वाक सुदास पैजवन दाशराजयुद्ध का विजेता एवं इन्द्र का प्रियमित्र था।[१] पांचाल सुदास संवरण से दो शती पश्चात् हुआ।

सहदेव—यह अपने पिता सुदास या सोमदत्त से अधिक प्रतापी था, जिसका वैदिकग्रन्थों में उल्लेख है। पर्वतनारद ऋषियों ने इसको उपदेश दिया था।[२]

इसका द्वितीय नाम 'सुप्ला साञ्जंय था—जो इसने बाद मे रखा "सहदेव साञ्जंय...सुप्ला नाम दधेऽइति।" (श०ब्रा० २।४।४।३) सहदेव या सुप्ला साञ्जंय के समकालिक इभावत का पुत्र प्रतीदर्श ऐभावत श्वैक्र था, जिसका राज्यस्थान ज्ञात नही होता। यह सम्भवतः सहदेव का गुरु था।

सोमक साहदेव्य—यह अपने पिता सहदेव से भी अधिक प्रतापी था, इसी के वंश मे आगे चलकर इससे लगभग एकसहस्रवर्षपश्चात् उत्तर पाचाल में पृषत और प्रतापी द्रुपद यज्ञसेन हुये, जिनका परिचय आगे लिखा जायेगा। महाभारत (३।१२७-१२८) मे सोमकाख्यान है, जिससे ज्ञात होता है कि सोमक के एक शत पत्नियाँ थी, जिसका एकमात्र पुत्र जन्तु था। यह अस्थान वर्णन भ्रामक प्रतीत होता है कि यज्ञ द्वारा जन्तु की बलि के अन्तर सोमक के १०० पुत्र उत्पन्न हुये। या तो जन्तु को पुनर्जीवन मिला है, अथवा जन्तु के ही सौ पुत्र हुये होंगे। हरिवंश में स्पष्ट लिखा है कि शतपुत्र जन्तु के ही थे—

---

१. हरि० (१।३२।३८)
२. (ऐ० ब्रा० (७।३४)

जन्तुर्नाम सुतस्तस्मिन् स्मीशतेसदजायत । (महा० ३।१२७।४)
सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ ।।[1]
जज्ञेपुत्रशतं पूर्णतासुसर्वासुभारत । (महा० ३।१२८।७)

दक्षिण पांचालवंशावली

अजमीढ बृहद्वसु के वंशज दक्षिण पांचाल के शासक (अहिच्छत्रा) थे, उत्तर पाचाल की राजधानी काम्पिल थी। यह वंशावली पृ० ६१ पर उद्धृत है। इस वंश के सप्तम राजा सेनाजित् के चार पुत्र हुये—रुचिर, श्वेतकेतु, महिम्नार और वत्स।[1] सेनाजित् अवन्ती के शासक थे।[2] इसीवंश मे पर या पार के वंशज नीपनामक राजा हुआ, जिसके शतपुत्र हुये, जिनके पश्चात् वंश का नाम ही नीप हुआ।[3] नीपों ने काम्पिला पर अधिकार कर उत्तरपांचाल को जीत लिया। नीपवंशी राजा समर के तीन पुत्र थे—पर, पार और सदश्व।[4]

इसी वंश में योगीराज विभ्राज का पुत्र अणुह था, जिसकी माता किसी शुक नाम के राजा की पुत्री कृत्वी थी।[5] अणुह का पुत्र ब्रह्मदत्त हुआ।

राजर्षि ब्रह्मदत्त—यह कौरवराज प्रतीप का समकालिक था।[6] (३४०० वि० पू०)। यह राजा महान् योगी और ब्रह्मज्ञानी था, जिसप्रकार वैदेह जनक ब्रह्मवादी था, उसी प्रकार महायोगी ब्रह्मदत्त हुआ। इसके एक बालकपुत्र 'सर्वसेन' की आँख पूजनीयासंज्ञक चिड़िया ने फोड़ दी थी।[7]

विष्वक्सेन—पाराशर्यव्यास का गुरु—ब्रह्मदत्त का पुत्र विष्वक्सेन अपने पिता से भी महत्तर योगी था, यह तथ्य इसी से समझा जा सकता है कि परमर्षि पाराशर्य व्यास ने योगविद्या विष्वक्सेन से सीखी थी, सामविधान ब्राह्मण मे गुरुशिष्यपरम्परा लिखी है—

---

१. हरि० (१।३२।४०)
२. हरि० (१।२०।२१)
३. हरि० (१।२०।२३)
४. हरि० (१।२०।२५)
५. हरि० (१।२०।२७)
६. हरि० (१।२०।११-१२)
७. हरि० १।२०।२९-३०)

नारद
|
विष्वक्सेन[1]
|
व्यासपाराशर्य
|
जैमिनि

व्यासजी ने भारतयुद्ध से लगभग १५० वर्षपूर्व, ३३०० वि०पू० वेदप्रवचन एव शाखाप्रवर्तन किया था। व्यासशिष्यजैमिनि ३२५० वि० पू० अपनी सामशाखा एव जैमिनीयब्राह्मण का प्रवचन कर चुका था, जैमिनि के शिष्य ताण्ड्य और शाट्यायन भी भारतयुद्ध से पूर्व हो चुके थे।

दण्डसेन—यह विष्वक्सेन का पुत्र हुआ, जिसका राज्यकाल पाण्डु और धृतराष्ट्र के समकालिक था, स्पष्ट है यह भारतयुद्ध से पूर्व ही हुआ। इसका इसका नामान्तर उदक्सेन था।

भल्लाट—दुर्मुख पांचाल—दण्डसेन या उद्वर्मन के पुत्र भल्लाट और दुर्मुख पाचाल की एकता महाभारतादि से पुष्ट होती है। सभी पुराणो मे दण्डसेन के पुत्र (दायाद) का नाम भल्लाट है जिसका पुत्र जनमेजय हुआ—

> भल्लाटस्य तु दायादो राजाऽऽसीज्जनमेजय।
> उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपा प्रणाशिता.॥ (वायु० ९९।१८२)

इसी पांचालराज भल्लाट को महाभारत मे दुर्मुख कहा है, जिसका पुत्र जनमेजय था—

> धृष्टद्युम्न. शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः॥ (द्रोण० १५६।३८)

---

१ पं० भगवद्दत्त ने भ्रम से उपर्युक्त विष्वक्सेन को कृष्ण वासुदेव समझा है जो सर्वथा मिथ्या है—'विष्वक्सेन देवकीपुत्रकृष्ण का अपरनाम है' (भा० वृ० इ० भा १, पृ० १९६), श्रीकृष्ण व्यास के गुरु किसी प्रकार नही हो सकते। महाभारत मे कृष्ण को एकाध स्थान पर विष्वक्सेनअवश्य कहा है, परन्तु यह नाम अधिक प्रसिद्ध नही था, शिष्यपरम्परा मे कृष्ण का इस नाम से उल्लेख नहीं है। द्वितीय,, व्यास, आयु मे कृष्ण से न्यूनतम १५० वर्ष अधिक बड़े थे।

स्पष्ट है दुर्मुख का नाम ही भल्लाट था, जिसका एकमात्र दायाद जनमेजय था। प० भगवद्दत्त ने लिखा है—'यद्यपि भारतयुद्ध के काल में दुर्मुख का कहीं पता नहीं लगता, तथापि उसके पुत्र जनमेजय का नाम मिलता है।' (भा० वृ० इ० भा० २, पृ० १५१)। पण्डितजी दुर्मुख और भल्लाट की एकता को पहिचान नहीं सके। भारतयुद्ध मे भल्लाट या दुर्मुख का पता नहीं चलता, इसका कारण है कि कर्ण ने, संभवत, अपनी दिग्विजय[1] के अवसर पर भल्लाट दुर्मुख पांचाल का वध कर दिया था—

"भल्लाटोऽस्य कुमारोऽभूद् राधेयेन हत. पुरा।"[2] भल्लाट और दुर्मुख दोनों ही नाम निन्द्य (कुत्सित) एव अलोकप्रिय प्रतीत होते हैं। संभवत कुरूप होने से उसे दुर्मुख या भल्लाक्ष -भल्लाट कहा जाता हो।

तथापि दुर्मुख पांचाल भल्लाट अत्यन्त प्रतापी राजा था, जिसका ऐन्द्र महाभिषेक बृहदुक्थ ऋषि ने कराया था। ऐसा ऐतरेयब्राह्मण[3] (८।२३) में उल्लेख है।

दुर्मुख का ऐन्द्रमहाभिषेक युधिष्ठिर के राजसूय से लगभग ५० वर्ष पूर्व हुआ होगा, जब धृतराष्ट्र के निर्बल हाथों मे कुरुराष्ट्र का शासनसूत्र था, युधिष्ठर के राजसूय के समयतक दुर्मुख जीवित था।[4] ऐतरेयब्राह्मण (८।२३,३९) के अनुसार दुर्मुख ने दिग्विजय की थी।

यह अन्यत्र संकेत कर चुके है कि कलिंगराज करण्डु, गान्धारराज नग्नजित् और वैदेहनिमि परस्पर मित्र एव समकालिक राजा थे; जैसा कि श्रीहेमचन्द्र राय चौधरी ने कुम्भकारजातक एव जैन उत्तराध्ययनसूत्र के प्रामाण्य से सर्वप्रथम, इस तथ्य की सम्पुष्टि की।[5]

जनमेजय—दौर्मुखि—दुर्मुख का पुत्र जनमेजय था। इसका परममित्र प्रसिद्ध हिरण्यनाभ कौसल्यशिष्य कृत का वंशज नीपविजेता उग्रायुध था।

---

१. पाण्डवों के वनवास के अवसर पर गन्धर्वों से अपमानित दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए कर्ण ने दिग्विजय में सर्वप्रथम पांचालों को जीता था—द्रष्टव्य (महाभारत, ३।२५४।१-४),

२. हरि० (१।२०।३२)

३. ऐ० ब्रा० (८।२३),
"ऐन्द्रं महाभिषेकं बृहदुक्थ ऋषिदुर्मुखाय पांचालाय प्रोवाच।"

४. महा० (२।४।१६)—,संग्रामजिद् दुर्मुखश्च'

५. प्रा० भा० रा० इ० (हेमचन्द्ररायचौधुरी)

हरिवंश में भल्लाटपुत्र को 'दुर्बुद्धि' कहा है, जिसने उग्रायुध के हेतु समस्त नीपो (पांचालशाखा) का विनाश करवाया—

भल्लाटपुत्रोदुर्बुद्धिरभवच्च युधिष्ठर ।
स तेषामभवद् राजा नीपानामन्तकृन्नृप ।।
तेन उग्रायुधस्यार्थे सर्वेनीपा विनाशिताः ।।[१]

महाभारत (५।७३।१३) में भीम कृष्ण से कहता है जनमेजय, नीपकुल का विनाशक था—"नीपानां जनमेजयः ।"

महाकवि अश्वघोष ने भ्रान्ति से ही कार्ति उग्रायुध का नाम जनमेजय लिखा है ।[२]

उग्रायुध एव जनमेजयसम्बन्धीघटनायें भारतयुद्ध से लगभग एक शती पूर्व के मध्य मे घटित हुई । युद्ध के समय 'दौर्मुखिजनमेजय' 'द्रुपद' 'द्रोण' कृष्ण आदि के समान ८० वर्ष से अधिक आयु का था ।

---

१. हरि० (१।२०।३३-३४)

२. सौन्दरनन्द (७।४४) और बुद्धचरित (११।१८) मे अश्वघोष ने उग्रायुध की मृत्यु का ठीक उल्लेख किया है ।

८

यादवादिवंश

तुर्वसुवंश—

ययाति के द्वितीय पुत्र के वंश (तुर्वसुवंश) का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार था—१. तुर्वसु[1] २. वह्नि ३. गर्भ ४. गोभानु ५. त्रिसानु ६. करन्धम और ७. मरुत्त।

ये केवल प्रधान राजाओं के नाम हैं, इसमें सन्देह के लिए स्थान नहीं; इनमें मरुत्त अनपत्य था, अतः इसने इलिनात्मज पौरव दुष्यन्त को अपना दायाद बनाया। अतः मारुत्त इलिन के समकालिक था। दुष्यन्त की पहली पत्नी से जो सन्तति हुई, उसका विवरण विभिन्न पुराणों में इस प्रकार है—

वायु०
दुष्यन्त
शरूथ
पाण्ड्य | केरल | चोल | कुल्स

हरि०
दुष्यन्त
करुत्थाम
आक्रीड
पाण्ड्य | केरल | कोल | चोल

मत्स्य० (४८।४) मे शरूथ के स्थान पर वरूथपाठ है, बरूथ का पुत्र सन्धान और उसके पुत्र पाण्ड्यादि कथित हैं।

भागवत में क्रम है १. तुर्वसु २. वलि ३. भर्ग ४. भानुमान् ५. त्रिभानु ६. करन्धम ७. मरुत्त और ८. दुष्यन्त (दायाद)[2] विष्णु मे भी अल्पान्तर पाठ से ये ही नाम हैं।[3] अन्य पुराणो भी स्वल्प पाठान्तर हैं।

संभवतः प्रारम्भ में केरल आदि क्षत्रिय उत्तरपश्चिमी सीमान्त में रहते थे, ऐसे प्रामाण्य मिले है।[4] भारतयुद्ध से पूर्व उत्तरवासी केरल, पाण्ड्यादि ने दक्षिण में प्रयाण किया।

---

१. तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः (महा०) अत; तुर्वसु वंशज यवन थे।
२. भाग० (९।२३।१६-१८)।
३. विष्णु० (४।१६)
४. विलोचिस्तान की ब्रहुईजाति और द० केरल की भाषा मे आज भी साम्य मिलता है।

ऐ० ब्रा० (८।३)[1] में विश्वामित्र की सन्तति आन्ध्र, पुलिन्द, मूतिब बताई गई हैं। दुष्यन्त से केरल पाण्डयादि एवं विश्वामित्र से आन्ध्रादि की उत्पत्ति एक ही समय ७६०० वि० पू० (हरिश्चन्द्र के राजसूययज्ञसेपूर्व) हुई, अष्टक, प्रतर्दन आदि इस समय जीवित थे, क्योंकि दीर्घजीवी थे।

द्रुह्युवंश

ययाति के तृतीयपुत्रद्रुह्यु का वंशइस प्रकार था—[2] द्रुह्यु[1] बभ्रु ३. सेतु ४. अङ्गार (=आरब्ध) ५ गान्धार ६. धर्म ७. घृत ८. दुर्दम ६. प्रचेता।

यह कहने की आवश्यकता नही है कि ये केवल प्रधान वशधरों के नामहैं। इनमे से केवल अङ्गार या आरब्ध का समय ज्ञात है, जो मान्धाता के समकालिक था। पुराणों एवं महाभारत मे उल्लेख है कि चतुर्दशमास के के युद्ध के अनन्तर ही यौवनाश्व मान्धाता अङ्गार को बडी कठिनाई से मार सका—अङ्गार के समकालिक अन्य राजा थे, कारन्धम मरुत्त, बृहद्रथ पौरव जनमेजय, गय आमूर्तरयम, नृग, औशीनर, सुधन्वा, असित धान्व असुर। इस वृतान्त का मान्धाता के प्रसग मे विचार किया जा चुका है—

> यौवनाश्वेन समितौ कृच्छ्रेण निहनो बली।
> युद्धं सुमहदासीत्तु मासान् परिचतुर्दश ॥
> यौवनाश्वो यदङ्गारं समरे प्रत्ययुध्यत्।
> विस्फारैर्धनुषो देवा द्यौरभेदीति मेनिरे ॥[3]
> तेन सोमकुलोत्पन्नो गांधाराधिपतिर्महान्।
> गर्जन्निव महामेघः प्रमथ्य निहतः शरैः ॥[4]

उत्तरवासी म्लेच्छ—पुराणो के अनुसार प्रचेता के शतशःपुत्र हुये, जो उत्तरी **काम्बोजादि**—देशों के म्लेच्छाधिप हुये—

---

१ एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूना भूयिष्ठाः। (ऐ० ब्रा० ८ अ०);

२. वायु० (९९।७-१७), मत्स्य० (४८।६-९), विष्णु० (४।१७) भागवत० (९।२३।१४-१६)

३. वायु० (९९।८)

४. शान्तिपर्व

प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते ।
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमाश्रिताः ॥[1]

सत्य यह है कि द्रुह्यु और अनु और तुर्वसु के वंशज क्षत्रिय म्लेच्छोंने उत्तरी सीमान्त देशों गान्धार (अफगानिस्तान) काम्बोज (ईरान), शक, यवन मकदूनिया, पश्चिमी एशिया एवं यूरोप तक पसार किया, जैसाकि अन्यत्र विचार किया जा चुका है ।

(अनुवंश या आनवक्षत्रियगण)

ययाति के चतुर्थपुत्र अनु के वंशज आनव क्षत्रियों ने, न केवल भारत के पश्चिमी और पूर्वी सीमान्त पर कई महत्वपूर्ण राष्ट्र (राज्य) स्थापित किये, बल्कि यूरोप में वे आयोनियन (आनव) या यवन कहलाये, जहां उन्होंने उत्तर काल में प्रसिद्ध यूनानीराष्ट्र की स्थापना की, इसके साथी हो डेरियन द्रुह्यु के (ड्रेरियन द्रुह्यव) वंशज थे । अनु, तुर्वसु और द्रुह्यु—इन तीनों के वंशजों ने गान्धार-कम्बोज से सुदूर यूरोपपर्यन्त अनेक राष्ट्र स्थापित किये, जैसा कि पुराणों में कहा गया है—

म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीची दिशमाश्रिता । (वायु० ९९।१२)

ब्रह्माण्ड० (३।७४ वायु० (९९), ब्रह्म० (१३) हरि०(१।३१), मत्स्य० (४८) विष्णु० (४।१८), अग्नि० (२७६), गरुड० (१३९) और भागवत (९।२३) में अनु का वंशवृक्ष दिया गया है, पूर्वपृष्ठ पर संकेत कर चुके हैं कि हरिवंशपुराण में अनुवंश का उद्भव पौरव रौद्राश्व के पुत्र कक्षेयु से बताया है ।[2] यह निश्चय पाठत्रुटि है, परन्तु, इससे रौद्राश्वादि के साथ सभानरादि का समय ज्ञात करने में सहायता मिली है कि वे दशमयुग (१०८०० वि० पू०) में हुये ।

---

१. वायु० (९९।११-१२)

२. हरि० (१।३१।१८) हरि०(१।३१।१८-३०),

अनु की वंशावली महत्वपूर्ण होने के कारण यहां उद्धृत की जाती है—

- अनु
  - सभानर
    - कालानल
      - सृञ्जय
        - पुरञ्जय
          - जनमेजय
            - महाशाल
              - महामना
                - उशीनर
                  - नृग
                    - यौधेय
                  - नव
                    - नवराष्ट्र
                  - कृमि
                    - कृमिला
                  - सुव्रत
                    - अम्बष्ठ
                  - शिवि
                    - वृषदर्भ
                    - सुवीर —सौवीर
                    - केकय
                    - मद्र
                - तितिक्षु
  - चाक्षुष
  - परमन्यु

दार्षद्वत (हैमवत) राजा ययातिनाहुषद्वितीय की पुत्री माधवी दृषद्वती ने क्रमश शिवि, अष्टक प्रतर्दन और वसुमना नाम के चार पुत्र उत्पन्न किये। इन सबका समय अठारहवेंयुग (७६०० वि० पू० से ७६८० वि० पू०) के मध्य था।

शिबि—इसके चार पुत्रों ने चार पृथक् राष्ट्रों की स्थापना की। ज्येष्ठ वृषदर्भा शिबिराष्ट्र का अधिकारी हुआ, शेष सुवीर से सौवीर (सैन्धव) क्षत्रिय, कैकेय से कैकेय और मद्र से मद्रक क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई, इनका रामायण महाभारत में पर्याप्त वृतान्त मिलता है।

इन्द्र—शिबि के सम्बन्ध की पुष्टि न केवल बौधायनश्रौतसूत्र (१८।४६), अपितु, इन्द्र और अग्निद्वारा शिबि की परीक्षा से भी प्रकट है।[1] षोडराजोपाख्यान से भी शिविसाम्राज्य की महिमा प्रख्यापित होती है—

> शिबिमौशीनरं चैव मृत सृजय शुश्रम।
> य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवदवेष्टयत्।
> एकच्छत्रा मही चक्रे जैत्रेणैकरथेन च॥[2]

इसका समय ७६०० वि० पू० से ७५०० वि० पू० के मध्य था। अतिदीर्घजीवी होने से यह सुहोत्र पौरव से वार्तालाप कर सका होगा।[3] जिसका राज्य—७३००-७२०० वि० पू० के मध्य था। ययात्यष्टकोपाख्यान[4] तथा (महा० ३।१९४), दोनों स्थानों पर शिवि औशीनर को श्रेष्ठतम राजा बताया गया है।

तितिक्षुसन्तति

उपर्युक्त नौ पुराणों के अनुसार यह वंशावली इस प्रकार है :—

१. तितिक्षु
२. रुशद्रथ
३. हेम
४. सुतपा
५. बलि

अंग	वंग	कलिंग	सुह्म	पुण्ड्र

सृञ्जय और नारद—उपर्युक्त सभानर के पौत्र एवं कालानल के पुत्र सृञ्जय एवं उसके राष्ट्राधिपों से देवर्षि नारद और ऋषिपर्वत (दृपद्वत्)

१ महा० (३।१९७)
२ महा० (१२।२९।३९, ४०,)
३ महा० (३।१९४)
४ उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्माच्छ्रेष्ठो हि व शिवि। आदिपर्व (९३।१८)

का घनिष्ठ सम्बन्ध था। पर्वत को ही हिमवान् या वृषद्वान् कहते थे, यह पूर्व सिद्ध कर चुके हैं, पर्वत पूर्वकाल में राजा था, उत्तरकाल में नारदोपदेश से मुनि बन गया। शिव की द्वितीय पत्नी इसी पर्वत की पुत्री थी। नारद और पर्वत दोनों ही ऋषि कश्यप के पुत्र या वंशज थे।[1] महाभारत में पर्वत को नारद का भानजा (भागिनेय) कहा है।[2] महाभारत षोडशराजोपाख्यान (१२।२६) का श्रोता सृञ्जय वही प्रतीत होता है, जिसका पुत्र सुवर्णष्ठीवि था।[3] इसका वध शक्रप्रेषित व्याघ्र ने दृषद्वती (भागीरथी) तट पर किया था।[4] इससे भी दार्षद्वत (पार्वत), पर्वत और सृञ्जय का निकट सम्बन्ध प्रतीत होता है।

पर्वत और नारद का सृञ्जय, शिबि, आम्बष्ठय आदि से घनिष्ठ सम्बन्ध था, इन्होंने ऐतरेयब्राह्मण (८।२१) के अनुसार युधाम्पति आम्बष्ठ्य का अश्वमेधयज्ञ कराया था। अम्बष्ठ क्षत्रिय भी उशीनर के वंशज थे। अम्बा (पार्वती) और अम्बष्ठजनों में भी हमें कुछ सम्बन्ध प्रतीत होता है। अम्बा के कारण ही किसी पार्वतीयस्थान का नाम अम्बष्ठ हो गया हो।

महाशाल और महामना का देवों से सम्बन्ध—इन दोनों को पुराणों में क्रमश रथितयशा और सुमहायशा कहा गया है। इन दोनों का देवों से घनिष्ठ सम्बन्ध था[6] जो शिबिपर्यन्त रहा। महामना को वायु० (६६।१६) में चक्रवर्ती और सप्तद्वीपेश्वर कहा है। स्पष्ट है वह पश्चिमोत्तरराष्ट्रों के बड़े भूभाग का सम्राट् होगा।

उशीनर—यह महामना का ज्येष्ठसुत था। इसके पाच पुत्रों ने पाच राष्ट्रों की स्थापना की—नृग के वशज यौधेयक्षत्रिय, नव से नवराष्ट्र, कृमि से कृमिराष्ट्र, सुव्रत के वशज आम्बष्ठगण तथा पचम सर्वश्रेष्ठ पुत्र था शिबि जिससे शैव्य क्षत्रिय प्रथित हुये।

१. पर्वतनारदौ काश्यप्यौ (सर्वा० पृ० ३३)
२. महा० (१२।३०।५)
३. महा० (१२।३१।१७)
४. महा० (१२।३१।३४)
५. हरि० (१।२१।२१-२२)
६. शिबिरौशीनरो देवान् सर्वाद असुरान् जिगाय तस्य हेन्द्रो जित्वर ददौ, (बौ० श्रौ० १८।४६)

उशीनर के समकालीन भारतीय अन्य राजा थे—कान्यकुब्ज में विश्वामित्र, काशी में दिवोदास और अयोध्या में हर्यश्व। यह पूर्वविमर्श किया जा चुका है कि विश्वामित्रपुत्र गालव की प्रेरणा से इन चारों ने माधवी से चार पुत्र उत्पन्न किये। पार्वतीय तितिक्षु या उसके वंशज बलि द्वारा सुदूरपूर्वीभारत में राज्य स्थापित करना कुछ आश्चर्यजनक है।

वैरोचन बलि—प्रह्लादि विरोचन के अनुकरण पर तितिक्षुवंशज विरोचन ने भी अपने पुत्र का नाम बलि रखा। पार्जीटर इसको भ्रान्ति मानता है, परन्तु ऐतरेयब्राह्मण के पाठ से पुराणमत की पुष्टि होती है कि अंगपिता बलि के पिता का नाम भी विरोचन था। पुराणों में लगभग सभी वशवृक्ष त्रुटितरूप में ही मिलते हैं, स्वय पुराणों मे कहा गया है कि इनमें केवल प्रधान-प्रधान राजाओ के नाम हैं—अतः बलि के पिता विरोचन का नाम छूटा है।

दीर्घतमा मामतेय औतथ्य ने बलि की महिषी सुदेष्णा से पाच वशकर पुत्र उत्पन्न किये—अग, वग, सुह्म, पुण्ड्र और कलिंग, इन सबने पृथक् राष्ट्रों की स्थापना की, इनमें अग ज्येष्ठ था और पुराणों मे केवल इसीकी वशावली मिलती है।

दीर्घतमा का पिता उतथ्य मान्धाता का पुरोहित था। मान्धाता का समय पचदशपरिवर्त ६००० वि० पू० ८६०० वि० पू० था, परन्तु दीर्घतमा एक सहस्रवर्ष (नौनयुगपर्यन्त) जीवित रहा, उसका जन्म ८९०० वि० पू० मे हुआ तो वह ७९०० वि०पू० तक जीवित था। दीर्घतमा ने दौष्यन्ति भरत का अभिषेक किया था। अग और भरत अष्टादशयुग (७९०० वि०पू०) में हुये, अतः प्रायः समकालिक थे।

महाभारत के एकपाठ (१२।२८।८८) के आधार पर बार्हद्रथ अंग को मान्धाता का समकालिक माना है। महाभारत मे ही अन्यत्र इस बृहद्रथ को पुरु[1] (पौरव) कहा है। अतः अग नही, पौरव बृहद्रथ मान्धाता का समकालिक था। पार्जीटर ने अंग को ऐक्ष्वाक अंशुमान् के समकालिक माना है, वह सर्वथा मिथ्या है। प्रतर्दन, अग, अलर्क, दौष्यन्तिभरत आदि समकालिक (अष्टादशयुगीन) राजा थे और अंशुमान्, दिलीप आदि उनसे एक सहस्रवर्ष

१. महा० द्रोणपर्व (६१।१०)
२. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १४७)

पश्चात् (बीसवेंयुग में, ६८०० वि० पू०) हुये, अत पार्जीटरनिर्दिष्ट समकालिकता मिथ्या है।

अंग वंशवृक्ष इस प्रकार दिया गया है—

१. अग	१२. भद्ररथ
२. दधिवाहन	१३. बृहत्कर्मा
३. दिविरथ	१४. बृहद्रथ
४. धर्मरथ	१५. बृहद्भानु
५. चित्ररथ	१६. बृहन्मना
६. सत्यरथ	१७. जयद्रथ
७. लोमपाद	१८. धृतरथ
८. चतुरग	१९. विश्वजित् — (जनमेजय)
९. पृथुलाक्ष	२०. कर्ण
१०. चम्प	२१ वृषसेन
११. हर्यंग	

उपर्युक्त अंगवशवृक्ष निश्चय ही अपूर्ण है।

दधिवाहन—अग से दधिवाहनपर्यन्त अनेक पीढियो के नाम लुप्त है। महाभारत के अनुसार अयोध्यापति सर्वकर्मा कल्माषपाद के पुत्र या वशज, काशिराज वत्स, शैब्य गोपति, ऋक्ष पौरव समकालिक थे, इनमे ऐक्ष्वाक सर्वकर्मा का समय प्राय निर्णीत हैं ६८०० वि० पू० के निकट, अत. अग से दधिवाहन पर्यन्त १५ पीढ़ियाँ लुप्त है। महाभारत के इस प्रकरण में दधिवाहन का समकालिक प्रतर्दन आदि को बताया है वह सर्वथा भ्रामक है, इस पर अन्यत्र विचार किया गया है।

लोमपाद—यह दशरथ ऐक्ष्वाक के समकालिक राजा था, जिसकी पुत्री शान्ता का विवाह वैभाण्डक ऋष्यशृंग काश्यप से हुआ था। इसका समय ५६०० वि० पू० से५५५० वि० पू० निश्चिय है।

चम्प—इसने चम्पानगरी (भागलपुर) बसाई।

बृहन्मना—इसकी दो पत्नियाँ थी—चैदिराज की पुत्रियाँ—यशोदेवी और सत्या। इनकी सन्तति इस प्रकार हुई (वायु० ९९।११४-११८)

यशोदेवी	सत्या	
जयद्रथ	१. सत्य	५. सत्यकर्मा
दृढ़रथ	२. विजय	६. अधिरथ
विश्वजित्	३. धृति	७. कर्ण
(= जनमेजय)	४ धृतव्रत = बृहद्रथ	८. वृषसेन

यादववंश = हैहयवंश

यदु—पुराणो मे यदु के पाच पुत्र बताये गये हैं—

वायु०—सहस्रजित्, क्रोष्टु, नील, जित, लघु ।[1]

हरिवंश—सहस्रद, पयोद, क्रोष्टा, नील, अञ्जिक ।[2]

विष्णु—सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और नहुष ।[4]

मत्स्य—सहस्राक, ज्येष्ठ, क्रोष्टा, नील, लघु ।[5]

भागवत—सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल, रिपु ।[6]

सही नाम प्रतीत होते हैं—सहस्रजित्, क्रोष्टा, नील, अञ्जिक और लघु । इनमे से सहस्रजित् और क्रोष्टा प्रधान थे और इन्ही के वंशवृक्ष का पुराणों मे वर्णन मिलता है ।

---

१ Somc uncetainty was Caused by the fact that their were several persons with same names in itsfamilies

२. वायु० (६४।२)

३ हरि० (१।३३।१)

४. विष्णु० (४।११।५)

५ मत्स्य० (५३।७)

६. भाग० (६।२३।२०)

सहस्रजित्—इसका पुत्र शतजित् हुआ।

शतजित्—इसके तीन पुत्र थे—हैहय, हय और वेणुहय।[1]

हैहय—इसी के नाम से वंश का नाम हैहय पडा। भागवत में सम्भवत इसी को महाहय कहा है।[2] वैदिक साक्ष्य से प्रतीत होता है कि हैहय और महाहय दोनो ही पाठ शुद्ध एव प्राचीन नही है।

जै० ब्रा० के निम्न वचन द्रष्टव्य है—

(१) भृगु हिंसित्वा माहेया असहेय पराभवन्।

(२) जमदग्निर्ह माहेयाना पुरोहित आस।[3]

जमदग्नि को ही 'भृग' कहा गया है, जो भृग का मद्‌वशज था। इसी प्रकार वैदिक एव ऐतिहासिकग्रन्थो मे भ्रम की उत्पत्ति होती गई। यही बात विश्वामित्र, अगस्त्य, वासिष्ठ आदि के सम्बन्ध मे की गई है।

अत हैहय का महाहय का शुद्ध रूप था 'मही' (महि), इसी के वशज 'माहेय' क्षत्रिय हुये, जिसका पुराणो मे रूप हुआ—महाहय या हैहय। प० भगवद्दत्त माहेय और हैहय (महाहय) की एकता का नही समझ सके, इसीलिये उन्होने भ्रामक लेख लिखा— "माहेय ऋषि वैदिकवाङ्मय मे वर्णित हैं। उनके नाम थे—अर्चनाना, श्यावाश्व, तरन्त और पुरुमीढ।"[4] अर्चनाना और श्यावाश्व आत्रेय (अत्रिवशज) ऋषि थे। यह वैदिकग्रथो मे ही स्पष्ट है। विददश्व के पुत्र तरन्त और पुरुमीढ का सम्बन्ध किस क्षत्रिय कुल से था, यह स्पष्ट नही, परन्तु सम्भावना है वे हैहयवश मे ही सम्बन्धित थे। यथा, जै० ब्रा० (१।१५१) मे इनको 'माहेयौऋषी' कहा है।[5] ये दोनो राजा विददश्व और रानी अर्चनानसी के पुत्र थे। स्पष्ट है

१. हरि० (१।२३।२)
२. भाग० (६।२३।४)
३. जै० ब्रा० (१।१५२) तथा (२।३१०)
४. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० २१०)
५. श्यावाश्वश्चात्रिपुत्रस्य पुत्रः खल्वर्चनानस तरन्तपुरुमीढौ वै वैददश्वी माहेयौ मह्या अर्चनानस्यै पुत्रौ। (बृहद्० (५।६१);

अर्चनानसी अर्चनाना आत्रेय ऋषि की पुत्री थी। आत्रेय अर्चनाना की पुत्री अर्चनानसी आत्रेय विददश्व की पत्नी थी, अतः तरन्त पुरुमीढ़ को माहेय और अर्चनानसी के पुत्र कहा है। इसी से पं० भगवद्दत्त को भ्रान्ति हुई है।

महाहय या हैहय का शुद्ध नाम 'मही' या 'महिष' था इसकी पुष्टि पुराण के 'महिष्मान' नाम से भी होती है। यह महिष् या महिष्मान् भी हैहय (मही) का एक वंशज था जिसके नाम से माहिष्मती हैहयो की राजधानी का नाम हुआ। इस 'माहेय' जनपद का नाम महाभारत[1] मे है।

माहेय और महिष्मान् नाम मे 'मही' नाम सगर्भित है अत हमारी धारणा केवल कल्पना नही, सुपुष्ट प्रमाणो पर आधारित है।

अत तरन्त पुरुमीढ माहेय क्षत्रिय राजर्षि थे और अर्चनाना श्यावाश्व—आत्रेय ऋषि आत्रेय ब्राह्मणो और माहेयक्षत्रियो मे यौनसम्बन्ध था। अर्चनाना आत्रेयऋषि तरन्तपुरुमीढ के मातुल थे।

भार्गवो और हैहयों के सघर्ष के कारण भी संभवत आत्रेय ऋषि थे। दत्तात्रेय और सहस्रबाहु अर्जुन की घनिष्टता पुराणप्रसिद्ध है। पहिले जमदग्नि भार्गव (हैहयो) के पुरोहित थे, यह अधिकार आत्रेयों ने छीन लिया सघर्ष का यही मूल था।

धर्मनेत्र—हैहय का पुत्र था धर्मनेत्र।

कुन्ति—धर्मनेत्र का पुत्र हुआ कुन्ति।[2] इसने कुन्तिराष्ट्र की स्थापना की।

साहञ्जि—यह कुन्ति का पुत्र था, इसने साहञ्जनीपुरी बसाई।[3] सभवत माहिष्मती का पूर्व नाम ही साहञ्जनीपुरी होगा

महिष्मान्—इस नाम पर पूर्व विचार किया जा चुका है कि इसका 'मही' या 'महिष्' से सम्बन्ध था। इसने माहिष्मतीनगरी बसाई।

---

१. भीष्मपर्व (९।४८)

२. हरि० (१।३३।३) मे ,कार्तपाठ' अशुद्ध है—'धर्मनेत्रस्य कार्तस्तु'

३ हरि० (१।३३।४)

यह महिष्मान् काशिराज वेतुमान् प्रथम एव राजा कुशिक और मान्धाता के समकालिक होना चाहिये—पन्द्रहवेयुग मे लगभग ६००० वि० पू०। पार्जीटर ने इसकी समकालिकता जह्नु आदि के साथ प्रदर्शित की है[1] जो सर्वथा मिथ्या है।

ये पूर्णत. निश्चित है कि ये प्रधान हैहय राजाओ के नाम है। यह सभव है कि त्रिददश्व, तरन्त, पुरुमीढ महस्रबाहु से पूर्वकाल के हैहय राजा हो। इनका ममय अष्टादशयुग से (७५०० वि० पू०) पूर्व था।

भद्रसेन (भद्रश्रेण्य)—यह महिष्मान् का पुत्र कहा गया है, यहा सभव है कि इनके मध्य मे अनेक पीढिया छोडी हो। भद्रसेन ने काशिराज पर अधिकार करके वाराणसी को राजधानी बनाया।[2]

दुर्दम भद्रसेन के सौ या अनेक पुत्र थे, जिनमे दुर्दम दायाद हुआ।[3] मध्य मे दिवोदास या उसके वंशजो ने भद्रसेन द्वारा आहृत राज्य पुन. छीन लिया, परन्तु दुर्दम ने दिवोदास के किसी वशज से पुन. काशि छीन लिया। यहा पर पुराणपाठभ्रंशता के कारण इतिहास दुर्बोध्य हो गया है

कनक—यह दुर्दम का पुत्र था। इसके चार पुत्र हुये—कृतवीर्य कृतौजा, कृतवर्मा और कृताग्नि।[5] वायु०[6] मे कृताग्नि के स्थान पर केवल 'कृत' पाठ है

कृतवीर्य—मत्स्य० (६८।७,८) के आधार पर इसका राज्यकाल७७००० वर्ष (=दिन) =२१६ वर्ष था। अत: यह न्यूनतम अन्य ऐक्ष्वाकादि चार राजाओ के समकालिक होगा—ऐक्ष्वाकत्रसदश्व, हर्यश्व, वसुमना और त्रिधन्वा। दिवोदासादि भी इसके समकालिक होगे।

---

१ ए० इ० हि० ट्रे० (१४४)

२ भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसीत्यभूत् (हरि० १।२६।३३)

३. भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणा शतमुत्तमधन्विनाम्। भद्रश्रेण्यस्य तद् राज्य हृत तेन बलीयमा (हरि० १।२६।३३-३४)

४ हरि० (१।२६।७१)

५. हरि० (१।३२।७, ८)

६. वायु० (९४।८,९)

कार्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन—यह यादववंश या हैहयकुल का सर्वाधिक प्रतापी सम्राट् था। इससे सम्बन्धित जटिल एवं समस्यात्मक इतिवृत्त की यहां संक्षेप से स्पष्ट व्याख्या करेंगे।

सहस्रबाहु का अर्थ—पुराणों में कहा गया है कि दत्तात्रेय के प्रसाद से योगमाया द्वारा सहस्रबाहु अर्जुन के एकसहस्रभुजा (हाथ) प्रादुर्भूत होते थे—

दत्तात्रेयप्रसादेन राजा बाहुसहस्रवान्।[1]

अर्जुन ने दत्तात्रेय की आराधना की, जिससे उसने चारवर मांगे, प्रथम वर था कि मेरे एक सहस्रबाहु हो—

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम्।
पूर्वं बाहुसहस्रन्तु स तेन प्रथमं वरम्।[2]

उसकी सहस्रभुजायें केवल युद्ध के समय ही प्रादुर्भूत होती थीं।[3]

अनेक आधुनिक विद्वानों ने इसके 'सहस्रबाहु' नाम की व्याख्या करने की चेष्टा की है, इनमें एक श्रीकारीण्डकरमहोदय ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है।

Arjuna saught the help of the Atris, who were equally expert shipbuildess and were luilt for him a fleet of a thousand ship or ships with him a thousand boats '(making Arjuna-Shasrabhau-i e thousand armed)

हमारी 'सहस्रबाहु' पद की ऐतिहासिक और वैज्ञानिक व्याख्या इस प्रकार है-

व्याख्या से पूर्व निम्न साक्ष्य विचारणीय है—

(१) पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थित सुमहद्वरम् (हरि० १।३३।११)
(२) तस्य बाहुसहस्रं तु युद्धतः किल भारत। (हरि० १।३३।१४)

---

१ महा० १२
२ वायु० (९४।१०,११), हरि० (१।३३।११)
३. हरि० (१।३३।१४)
४ वैदिक एज पुसाल्कर, (पृ० २८७)

(३) तस्य बाहुसहस्रेण क्षुभ्यमाणे महादधौ ।। (हरि० १।३३।२६)

(४) छित्वा बाहुसहस्रं ते प्रमथ्य तरसा बली (हरि० १।३३।४५)

(५) विक्रम्य निजघानाशु पुत्रान् पौत्रांश्च सर्वशः ।
स हैहयसहस्राणि हत्वा परममन्युमान् ।। (महा० ४६।५३)

(६) अथाकामयताभिर्भूयिष्ठा स्म ऋषय प्रजायाम् आजायेरन् इति ।
परस्सहस्रं हास्य प्रजायां मन्त्रकृत आसु (जै० ब्रा० २।२।६)

(७) ताण्डयब्राह्मण में वीतहव्य श्रायस के सहस्रपुत्रों का उल्लेख है।
यह वीतहव्य अर्जुन का प्रपौत्र और तालजंघ का पौत्र था।

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि अर्जुन के सहस्रबाहु, युद्ध या किसी विशेष अभियान मे ही प्रकट होते थे ।

अर्जुन, तत्पुत्र तालजंघ, तत्पुत्र वीतिहोत्र सबके ही एक सहस्रपर्यन्त पुत्रपौत्रादि थे'—इसीलिये महाभारत मे कहा 'स हैहयसहस्राणि हत्वापरम-मन्युमान्' । परशुराम ने सहस्रों हैहयों को मारा ।

अतः कार्तवीर्य अर्जुन के सहस्र पुत्रपौत्रप्रपौत्रादि ही उसकी सहस्र भुजायें थीं । वे ही अर्जुन का आर्जुन या सहस्रबाहु आर्जुन कहलाते थे । अतः उसके वंशज ही अर्जुन की सहस्र भुजायें थी, जिनका छेदन परशुराम ने किया—यही सहस्रबाहु अर्जुन का बल था,' जो भार्गवराम से युद्ध के समय निकले ।

राज्यकाल—उसके प्रपौत्रादि से कार्तवीर्य अर्जुन के दीर्घराज्यकाल की व्याख्या (सिद्ध) भी हो जाती है—अर्जुन का पुत्र था जयध्वज, इसके पुत्र थे सौ तालजंघ इनमें श्रेष्ठ पुत्र हुये, सौ या सहस्र वीतिहोत्र । वीतिहोत्र के पुत्र भी वीतिहोत्र या वैतहव्य कहलाते थे । स्पष्ट है अर्जुन न्यूनतम अपनी पांच पीढ़िया पर्यन्त जीवित रहा । पुराणों मे उसका राज्यकाल ८५००० = २३६ वर्ष' था । उसके पुत्र पौत्र प्रपौत्रादि की आयु भी सौ वर्ष

---

१. तस्य पुत्रशतस्यासन् पंच शेषा महात्मनः । (हरि० १।३३।४८)
तस्य पुत्राः शत ख्याता तालजंघा इति श्रुताः (हरि० १।३३।५१)

२. सहस्रबाहोर्बलमर्जुनस्य तत् । चकर्त बाह्वोः यस्य भार्गवः । सौन्दरनन्द (९।१७)

३. पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः । सप्तद्वीपेश्वरश्चान् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव (वायु० ९४।२३)

से अधिक ही होगी। तथ्यकथित आधुनिक वैज्ञानिक यदि एक पीढ़ी को पचास वर्ष का भी माने तो अर्जुन की आयु फिर भी ढाई सौ वर्ष से अधिक ही सिद्ध होती है अतः उसका राज्यकाल २३६ वर्ष निश्चित है।

पुराणों में अर्जुन को बारम्बार धार्मिक एवं ब्रह्मण्य कहा गया है।[1] परशुराम का मुख्य संघर्ष उसके पौत्रों—तालजंघों से था।[2] जंगलों को साफ करते हुये आपव वासिष्ठ का आश्रम[3] तालजंघों ने ही जलाया था, इसकी सूचना सम्भवतः अर्जुन को नहीं थी।[4] अर्जुन को आरम्भ मे अपने पौत्रों-तालजंघो की करतूत अज्ञात थी, जो उन्होंने राजमद और प्रभुत्व के कारण की। अतः आपव वासिष्ठ एवं जमदग्नि और जामदग्न्यराम के मुख्य अपराधी तालजंघ थे। जमदग्नि का वध भी तालजंघो ने किया था।[5]

वधकाल—यह पूर्वपृष्ठों पर अनेकत्र उल्लेख किया जा चुका है कि परशुराम ने उन्नीसवेंयुग (७२२० वि० पू० से ७१६० के मध्य) में अर्जुन का वध किया।[6] अर्जुन का वध यदि इस युग के एकदम अन्त मे हुआ हो तो अर्जुन का राज्यकाल ७३९६ वि० पू० से ७१६० वि० पू० तक था।

इस सम्बन्ध मे प० भगवद्दत्त का अनुमान सत्य है कि यह सम्राट् हरिश्चन्द्र के पश्चात् ही था।[7] हरिवंशपुराण मे हरिश्चन्द्र के राजसूय के अन्त में विशेष क्षत्रिय नाश हुआ—

> हरिश्चन्द्रश्च राजर्षिः क्रतुमेनमुपाहरत् ।
> तत्राप्याडीबकं नाम युद्धं क्षत्रियनाशनम् ॥ (हरि० ३।२।१७)

यहां पर परशुरामकृत २१ बार क्षत्रियनाश का ही संकेत है।

---

१ ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च दाता शूरश्च भारत। (महा० १२।४६।४४)

२ इसीलिये कौटिल्य ने लिखा 'तालजंघश्च भृगुषु' (अर्थ० अ० ६) चाणक्य को ऐतिहासिक तथ्य स्पष्टतः ज्ञात था।

३ अज्ञात कार्तवीर्येण हैहयेन्द्रेण धीमता (महा० १२।४६।४७)

४. वायु० (६८।८३-८५)

५. महा० शा० (४६।४६)

६. मत्स्य (४७।२४४)

७. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १०२)

हैहय अर्जुनसमकालिक पुरुष—१. दत्तात्रेय, २. आपववासिष्ठ, ३. वरीदासात्मज नारद गन्धर्व ४. जमदग्नि ५. रैभ्यपुत्र परावसु (वैश्वामित्र) ६. काश्यप।

दत्तात्रेय—यदि पुराणपाठ सत्य है और विकृत नहीं हुआ तो दशम युग ११११६० वि० पू० से ७३६० वि० पू० तक लगभग दशयुग (३६०० वर्ष) पर्यन्त दत्तात्रेय जीवित रहे। अलर्क, अर्जुन और परशुराम के समय जीवित था।

आपव वासिष्ठ—यद्यपि, पुराणों के वर्तमानपाठों में इस वासिष्ठ को मित्रावरुण का साक्षात् पुत्र बताया गया है। परन्तु यह मैत्रावरुणि वशिष्ठ नहीं थे, इनके 'आपव' नाम से ही प्रकट है कि ये मैत्रावरुणि वसिष्ठ के वंशज कोई वासिष्ठ थे। इन्होंने अर्जुन को शाप दिया था।

वरीदासतनय नारद (गन्धर्व)—यह नारद निश्चय काश्यप देवर्षि नारद से पृथक् एक गन्धर्व (गायक) था, जो अर्जुन का चारण था, जिसने अर्जुनगाथा गाई थी।[1] इस नारद के पिता का नाम वरीदास था।

काश्यप—परशुराम ने सम्पूर्ण पृथवी जीतकर काश्यप ऋषि को दान कर दी[2], इस काश्यप ऋषि का नाम पुराणों में ज्ञात नहीं होता परन्तु अथर्ववेद और ऋग्वेद के प्रामाण्य से यह काश्यप असित था।

जमदग्नि—परशुराम पिता जमदग्नि का वध हैहय (माहेय) तालजघों ने किया। इसको अथर्ववेद (५।१९।१) में भृगु कहा है। अथर्ववेद में जमदग्नि के वधकर्ता तालजंघ के पुत्र वीतहव्य (वैतहव्य) सृञ्जय बताये गये है—

भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन्। (अथर्व ५।१९।१)

स्पष्ट है इस वीतहव्य के पुत्रादि सृञ्जय थे।

गुरु—देवर्षि असित काश्यप जामदग्न्य राम और संभवत जमदग्नि का भी गुरु था। इसकी पुष्टि ऋग्वेद के प्रामाण्य से होती है। काश्यप असित या देवल ऋग्वेद मण्डल ९ सूक्त ५ के आप्रीसूक्त का द्रष्टा है।

---

१. यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा। वरीदासात्मजो विद्वान् महिम्ना तस्य विस्मितः। न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः। यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च। (हरि० १।३३।१९-२०)

२. महा० (१२।४९।६४)

दशम मण्डल के आप्रीसूक्त (११०) का द्रष्टा जमदग्नि भार्गव या जामदग्न्य राम है। स्पष्ट है जामदग्न्यराम ने वेद गुरु असित काश्यप से पढ़ा और इसी काश्यप असित को राम ने पृथ्वी दान में दी। जमदग्नि, असित और वीतिहव्य का सम्बन्ध अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र से भी सिद्ध होता है।[1] यह संयोग नहीं, एक ऐतिहासिक तथ्य है कि असित काश्यप जामदग्न्य का गुरु था, जिसको गुरुदक्षिणा में पृथ्वी दी गई।[2] युद्धों से पूर्व परशुराम पुरोहित मन्त्रद्रष्टा ब्राह्मण ही था।

शासक जामदग्न्यराम—परशुराम द्वारा २१ बार क्षत्रियनाश और उसकी दीर्घायु आधुनिक ऐतिहासिकों के लिये एक महतीसमस्या है।

चाणक्य ने अर्थशास्त्र (अ० ६) में लिखा है—जामदग्न्यराम और आम्बरीषनाभाग ने दीर्घकालपर्यन्त पृथ्वी को भोगा—'चिरं बुभुजाते महीम्।' स्पष्ट है परशुराम दीर्घकाल तक पृथ्वी का राजा रहा—हरिश्चन्द्र के पश्चात् रोहिताश्व के समय से ऐक्ष्वाक राजा सौदास कल्माषपाद के वंशज सर्वकर्मा और अश्मक-मूलकपर्यन्त परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों का नाश किया।

क्षत्रियवंशों का लोप का समय—यही २१ बार क्षत्रियनाश, राजवंशों के लोप का सर्वाधिक प्रधान कारण था। संभवत वसिष्ठ के कारण अयोध्या के राजाओं—हरिश्चन्द्र रोहिताश्व आदि तथा काशि के राजाओं ने परशुराम की हैहयविजय मे सहायता की होगी, इसी कारण अयोध्या के राजा जामदग्न्यकोप के कम भाजन रहे, इसी कारण भी अन्य राजवंश दीर्घकाल तक लुप्त रहे और उनकी वंशावली पुराणों मे अस्त व्यस्त है, यद्यपि कुछ ऋषियो के उकसावे मे ऐक्ष्वाक राजाओ को भी पूर्णत. क्षमा नही किया—

> विश्वामित्रस्य पौत्रस्तु रैभ्यपुत्रो महातपा:।
> परावसुर्महाराज क्षिप्ताऽऽह जनसंसदि।
> प्रतर्दनप्रभृतयो राम किं क्षत्रिया न ते।
> मिथ्याप्रतिज्ञो राम त्वं कत्थसे जनसंसदि॥

---

१. यां जामदग्निरयजद्दुहित्रे केशवर्धनीम्।
ता वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः (अथर्व० ६।१३६।१)

२. दक्षिणामश्वमेधान्ते कश्यपायाददात् ततः। (महा०१२।४९।६४)

इस आक्षेप के अन्तर राम ने काशि एवं अयोध्या के राजवंशों पर भी प्रहार किया, अतः रोहिताश्व से लेकर मूलक के समय पर्यन्त (उर्न्नीसवेंयुग ७००० वि० पू० से बाईसवेंयुग पर्यन्त—६००० वि० पू० पर्यन्त १००० वर्ष) परशुराम ने क्षत्रियों से २१ बार संघर्ष किया।

भार्गवक्षत्रियसंघर्षों के अन्त में अयोध्या में सर्वकर्मा, शिवपुर में गोत्रान्त शैब्य, हस्तिनापुर में विदूरथपुत्र ऋक्ष, काशि में वत्स, अंग में दधिवाहनपौत्र या दिविरथपुत्र ने पुन. राज्यवंशों की प्रतिष्ठा की।[2]

सप्त द्वीपेश्वर अर्जुन—कार्तवीर्यअर्जुन ने पाताल के द्वीपों में असुरों नागों एवं राक्षसों को जीता।[3] पातालस्थ कर्कोटकनागादि सभी को जीतकर उसने माहिष्मती में स्थापित किया।[4] अर्जुन का प्रभुत्व और आधिपत्य सप्त-द्वीपों एवं सप्तसमुद्रों पर था।[5] यौवनाश्व मान्धाता के पश्चात् संभवतः अर्जुन ने ही रसातल एवं समस्त पृथ्वी का शासन किया था[6], इसका पुराणों में स्पष्ट उल्लेख है। हरिवंश (१।३३।१६) के अनुसार सप्तद्वीपों में ७०० यज्ञ और वायुपुराण (६४।१६) के अनुसार दश सहस्र यज्ञ सम्पन्न किये। इसमें हरिवंश का पाठ ही ठीक है, क्योंकि एक यज्ञ में न्यूनतम छः मास का समय लगता है, ७०० यज्ञ के लिये ही लगभग ३०० वर्ष चाहिये।

रावण की तथाकथित मिथ्या समकालिकता—सभी पुराणों एवं रामायण, महाभारत में अर्जुन द्वारा लंकाविजय एवं रावण बन्धन का उल्लेख है। इस मिथ्या शंसा के दो कारण प्रतीत होते हैं। अर्जुन द्वारा राक्षसविजय या लंकाविजय वास्तविक तथ्य है। इसी आधार पर यह कल्पना की गई कि अर्जुन ने लंकेश (रावण ?) को जीता। अर्जुन द्वारा विजित लंकेश राक्षसेश्वर अन्य प्राचीनतर ही होगा।

---

१. अत्राप्युदाहरन्तीम मूलक वै नृपं प्रति। नहि रामभयाद्राजा स्त्रीभि. परि-वृतोऽभवत् (वायु० ८८।१८८)
२. महा० (१२।४६।७८-८४)
३. वायुपुराण (६४।३०)
४. वायु० (६४।२६)
५. हरि० (१।३३।२१।३८)
६. हरि० (१।३३।३४-३५)

इस कल्पना का एक अन्य कारण यह हो सकता है कि जब अर्जुन की सहस्रभुजाओं की कल्पना की गई तब तथाकथित विंशतिभुज रावण पर विजय प्रदर्शित करना आवश्यक था।

अर्जुन के वंशज

पुत्र—इसके पांच प्रधान पुत्र थे—जयध्वज, शूरसेन, शूर, वृष और कृष्ण।[1]

अवन्ति[2]—इनमें जयध्वज अवन्ति का शासक था, इसका वंशज ही अवन्ति था, जिससे आवन्त्यवंश प्रवर्तित हुआ।[3] पुराणों में वीतिहोत्र के पुत्र अनन्त, तत्पुत्र दुर्जय और तत्पुत्र सुप्रतीक का उल्लेख है।

तालजंघ—जयध्वज के सौ पुत्र तालजंघ कहलाये। इसके वंशज तालजंघ कहलाये। जामदग्न्य का मुख्य संघर्ष तालजंघों से ही था।

पंचगण—इन हैहय तालजंघों के पांच गण थे—वीतिहोत्र, भोज, आवन्त, तुण्डिकेरया (कुण्डकेर)। वीतिहोत्र या वीतहव्य उत्तरकाल में ब्राह्मण हो गए, जबकि प्रतर्दनवंशी किसी काशिराज वत्स ने इन्हें परास्त किया। इन्ही के वंश में सृञ्जय[4] और भरत, माधव आदि यादव हुये।

वृष—वैदिकग्रन्थों में वीतिहोत्र को श्रायस (श्रयस् का पुत्र) बताया गया है। पुराणों में हैहयों (वीतिहोत्रों) का वंशधर वृष कथित है।

सम्भवत इसी का नाम वृष्णि था। जिसके वशज वृष्णि हुये। इसी कारण कृष्ण को वार्ष्णेय कहा जाता है।

मधु—वृष्णि या वृष का पुत्र मधु हुआ, जिसके शतपुत्र थे। मधु से ही यादव की माधवशाखा या कृष्ण का नाम माधव प्रथित हुआ।

क्रोष्टुवंश

यदुपुत्र क्रोष्टु या क्रोष्टा की वंशावली चार भागों में विभक्त की जा सकती हैं, प्रथम क्रोष्टा से विदर्भपर्यन्त, द्वितीय विदर्भ से सत्वत, तृतीय सत्वत

१. हरि० (१।३३।४६)

२. जयध्वजस्य वै पुत्रो अवन्तिषु विशाम्पतेः। (वायु० ९४।५०)

३. महा० (१३।१)

४. अथर्ववेद (अ० ६) में वीतहव्य सृञ्जयों का उल्लेख है।

कृष्ण वासुदेव पर्यन्त। अब क्रमशः चारों पर विचार करेंगे। ये सभी विदर्भ देश के राजा थे।

प्रथम वंशावली—क्रोष्टा से विदर्भपर्यन्त

१. कोष्टु	६. शशबिन्दु	११. शिनेयु	१६. ज्यामघ
२. वृजिनीवान्	७. पृथुश्रवा	१२. मरुत्त	१७. विदर्भ
३. स्वाहि	८. अन्तर (उत्तर)	१३ कम्बलबर्हि	
४. रुषद्गु	९. सुयज्ञ	१४. रुक्मकवच्	
५. चित्ररथ	१०. उशना	१५. परावृत	

उपर्युक्त वंशावली द्वादश पुराणों द्वारा वर्णित है और सामान्यतः क्रम एवं नामादि में सहमति है, कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़, जिनकी चर्चा आगे करेंगे।

यह निश्चित है कि इस वंशावली में अनेक साधारण राजाओं के नाम छोड़े गये हैं। यथा इक्ष्वाकुवंश में इक्ष्वाकु से मान्धातापर्यन्त २१ नाम हैं, परन्तु यहाँ इला या बुध से शशबिन्दुपर्यन्त १४ ही नाम हैं, स्पष्ट है अनेक नाम छूटे हैं।

वृजिनीवान्[१]—यादव क्रोष्टा का एकमात्र पुत्र वृजिनीवान् बताया गया है।

स्वाहि—वाजिनीवत स्वाहि को स्वाहा (यज्ञ) कर्ताओं में श्रेष्ठ बताया गया है स्वाहि, पौरव जनमेजय और ऐक्ष्वाक युवनाश्वप्रथम के समकालिक था।

रुशद्गु—स्वाहिपुत्र रुशद्गु महायज्ञकर्ता था।[२]

चित्ररथ—महारुशद्गु का ज्येष्ठ (अग्रज) आत्मज था।

शशबिन्दु—चित्ररथ का पुत्र चैत्ररथ शशबिन्दु इस वंश का सर्वप्रथम सर्वाधिक प्रतापी चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। विष्णुपुराण में इसका चन्द्रवंश

१. हरि० (१।३३।१)
२. हरि० (१।३३।२)
३. सोऽग्रमात्मजम् (वायु० ९५।१६)

महारत्नों का स्वामी, विपुलदक्षिण,[1] और श्रेष्ठ आचारवान् बताया गया है। उसकी एक लाख पत्नियाँ और दश लाख पुत्र बताये गये हैं—

"तस्य च शतसहस्रं पत्नीनामभवत् दशलक्षसंख्याश्च पुत्राः।[2]

इतनी पत्नियाँ और पुत्र एक व्यक्ति के संभव नहीं हैं, यद्यपि महाभारत में भी इसका उल्लेख हैं—

शशबिन्दुं चैत्ररथं मृतं शुश्रुम सृंजय।
यस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः॥
सहस्रं तु सहस्राणां यस्यासञ्शाशबिन्दवः॥[3]

ये सब उसके पुत्रपौत्रादि की पत्नियों एवं सन्तानों की संख्या होगी।[4] यह उसी प्रकार होगा, जिस प्रकार कार्त्तवीर्य अर्जुन के एकसहस्रवंशज सहस्र आर्जुन कहलाते थे, उसी प्रकार दश लाख शाशबिन्दवः उसके वंशजपुत्र एवं प्रपौत्रपर्यन्त होंगे। वायु० से भी इसकी पुष्टि होती है—यह गाथा गाई है—

शशबिन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम।
धीमतामनुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसां॥[5]

शशबिन्दु की सन्तति अनुरूप होने से सभी शाशबिन्दव लाखों की संख्या में कहे जाते थे। महाभारत (१२।२९।१०६-१०८) से आभास होता है कि उसके सैनिकों की संख्या दश लाख हो—

"नागं नागं शतं रथा।
रथे रथे शतं चाश्वा,॥"

यह भी कहा गया है कि उपर्युक्त शतशत कन्या, शतशतरथ और अश्व शशबिन्दु ने महामख अश्वमेध में ब्राह्मणों को अर्पित किये—

एतद्धनमर्पयन्तमश्वमेधे महामखे।

---

१. वायु० (९५।१८),
२. विष्णु० (४।१२।४-५)
३ महा० (१२।२०।१०५-६)
४ शतं कन्या राजपुत्रमकैकं पृथगन्वयु। (महा० १२।२९।१०७)
५. वायु० (९५।१९)

जामाता मान्धाता—शशबिन्दु की पुत्री चैत्ररथी बिंदुमती सम्राट् मान्धाता की पत्नी थी।[1] स्पष्ट है कि मान्धाता और शशबिन्दु समकालिक पंचदशयुग में=६५००-६००० वि० पू० के मध्यमे थे।

दीर्घराज्यकाल—शशबिन्दु का राज्यकाल अतिदीर्घ था।[2] यह न्यूनतम सौ वर्ष अवश्य होगा। संभावना है कार्तवीर्य के समान अनेक शताब्दी का राज्यकाल हो, क्योंकि दशलाखपुत्र पौत्रप्रपौत्र आदि उत्पन्न होने मे पर्याप्त समय चाहिये।

सन्तति—शशबिन्दु के प्रधान षट पुत्र थे—इसके नाम इस प्रकार थे वायु० मे—पृथुश्रवा; पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुञ्जय, पृथुकीर्ति, पृथुदत्त।[3] विष्णु० मे—पृथुदान (पृथुदान्त) और पृथुकर्मा पाठान्तर है।[4]

पुरोहित—चित्ररथ और शशबिन्दवो के पुरोहित कापेयब्राह्मण थे।[5] यह कपि और कापेय ऋषि किस वंश के थे, ज्ञात नहीं होता।

पृथुश्रवा—यह शशबिन्दु का उत्तराधिकारी हुआ।

परावृत्—पृथुश्रवा से रुक्मकवचपर्यन्त राजाओ का कोई वैशिष्टय ज्ञात नहीं और न उनका समयादि। परावृत् के पांच पुत्र हुये—रुक्मेषु, पृथुरुक्म ज्यामघ, परिघ[6] और हरि। परावृत् ने परिघ और हरि को विदेहराज्य के पालनार्थ वहां के वैदेहराज को दे दिया।[7] रुकमेषु उत्तराधिकारी हुआ और पृथुरुक्म उसका सहायक।

ज्यामघ—प्रशान्त ज्यामघ भ्राताओ से उपेक्षित वनस्थ हो गया, जहां, ब्राह्मणो से प्रेरित होकर उसने कुछ भूभागो पर अधिकार कर लिया।

---

१. बिन्दुमती दश सहस्र भ्राताओं का स्वसा थी—
 पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा (वायु० ८८।७१)
२. शशबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गत.। (द्रोण ६५।११)
३. वायु० (६५।२२)
४. विष्णु० (४।१२।१०।११)
५. ताण्ड्य० (४।१२।१०।११) भाग० (६।२३।३५) मे पाठ है
 पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषु पृथुज्यामघसञ्ज्ञिताः।
६. हरि० (१।३६।१२)
७. हरि० (१।३६।१५)

नर्मदाकूलमेकाकी नगरी मृत्तिकावतीम् ।
ऋक्षवतंगिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवास ह ।'

उसने नर्मदातट पर ऋक्षपर्वत पर मृत्तिकावती जीतकर शुक्तिमती को राजधानी बनाया । यही उत्तरकाल में चेदिराष्ट्र हुआ ।' शुक्तिमती नदी का भी नाम था ।'

ज्यामघ, त्रिशंकु (सत्यरथ) के पिता अयोध्यापति त्र्यारुण के समकालिक अष्टादशयुग (७५०० वि० पू०) मे था । पार्जीटर ने ऐक्ष्वाक वृक और बाहु के समकालिक मानकर मिथ्या कल्पना की है ।

विदर्भ—ज्यामघ की वृद्धावस्था में शिबिराजकन्या शैब्या से यह उत्पन्न हुआ । इसकी किसी भार्या का अपहरण त्रिशंकु ने युवावस्था में किया था—

तस्य सत्यव्रतो नामकुमारोऽभून्महाबल ।
तेन भार्याविदर्भस्याहृता हृत्वा दिवौकसः ।। (वायु ८८।७७)

अत विदर्भ त्रिशंकु के समकालिक था । महाभारत के एक अन्य प्रसंग—अगस्त्योपाख्यान (महा० ३।९६-१०५) से ज्ञात होता है कि अगस्त्य, वातापिइल्वल असुर, विदर्भ, तत्पुत्री लोपामुद्रा (अगस्त्यपत्नी) आर्क्ष श्रुतर्वा और ब्रध्नश्व—समकालिक थे, इस आख्यान मे पौरुकुत्स त्रसदस्यु की समकालिकता मिथ्या एवं पाठभ्रंश का परिणाम है (द्र० महा० ३।९८ अध्याय)

विदर्भ के तीन पुत्र हुये क्रथ, केशिक और लोमपाद (रोमपाद); हमारा अनुमान है कि 'लोमपाद' का नाम 'लोपमुद्र' हो, जिसकी स्वसा वैदर्भी लोपामुद्रा आगस्त्यऋषि की पत्नी बनी । इसीसमय आगस्त्यऋषि ने विन्ध्यलंघन, समुद्रलघनसदृश कार्य किये और इल्वलादि असुरो का संहार किया । यह अष्टादशयुग (७४०० वि० पू० से ७२०० वि० पू०) की घटनायें थी, हरिश्चन्द्र वैधस के और हैहयार्जुन के राज्यकाल से पूर्व ।

---

१. उत्तरकाल मे पौरव उपरिचरवसु यही पर अधिकारकर चेदिराष्ट्राधिप बना (द्र० महा० १।६३।३४-३६)
२. 'पुरोपवाहिनी तस्य नदी शुक्तिमती गिरिः ।'
३. वायु० (६५।३५)

लोमपाद (लोपमुद्र) की वंशावली—विष्णुपुराण (४।१२।३६) में रोमपाद की सन्तति इस प्रकार कथित है—(१) रोमपाद (२) बभ्रु (३) धृति (४) केशिक (५) और चेदि (चेदि से चैद्यवंश समुद्भूत हुआ।) धृतिपुत्र केशिक का पुराणों में प्रायः कौशिक पाठ मिलता है। यह 'केशिक' द्वितीय था, क्योंकि इससे पूर्व एक केशिक विदर्भ का ज्येष्ठ पुत्र और लोमपाद का ज्येष्ठ भ्राता था। अथवा पुराणपाठ में कुछ गड़बड़ी माननी होगी।

कूर्मपुराण[1] (२४।-६-१०) में लोमपाद की कुछ विस्तृत वंशावली मिलती है। १. लोमपाद २. बभ्रु ३, धृति (आहृवति) ४. श्वेत ५. विश्वशाल (विश्वसह), ६. कौशिक (केशिक-शुद्ध), ७. सुमन्त ८. अनल, ९. श्वेनि १० धृतिमान् ११. वपुष्मान् १२. बृहन्मेधा १३. श्रीदेव और १४. वीतरथ।

चेदि—*अन्य पुराणों में पष्ठ वंशज कौशिक या कैशिक द्वितीय का पुत्र चेदि बताया गया है। संभवतः लोपपाद के वंशजों ने चेदिराज्य पर ही शासन किया होगा, जिस पर सर्वप्रथम ज्यामघ ने अधिकार कर शुक्तिमती नगरी बसाई।*[2]

विदर्भ के ज्येष्ठपुत्र क्रथ का शासन विदर्भजनपद मे ही रहा।

कशु चैद्य—इसी वंश के किसी कशुचैद्यसंज्ञक राजा की दानस्तुति ऋग्वेद (८।५) में मिलती है—

> यथा चिच्चैद्यः कशु. शतमुष्ट्रानां ददद् सहस्रादश गोनाम्।
> ......येनेमे यन्ति चेदय·।[3]

यह स्तुति ब्रह्मातिथि काण्व ने की है, अतः चैद्यराष्ट्र से काण्वों का सम्बन्ध था।

कशुचैद्य उन्नीसवेंयुग मे (७२०० वि० पू०) के निकट होगा।

---

१. हरि० (१।३६।२२)
२. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १०३)
३. पार्जीटर इस तथ्य को नहीं समझ सका—where thcy reigined is not Known (वही पृष्ठ)
४. ऋग्वेद (८।५।३७, ३६)

क्रथ—हरि० (१।३६।२३) में भीम नाम से भी उल्लेख मिलता है। परन्तु यह पाठाशुद्धि है। क्रथ से भीमपर्यन्त कुछ राजाओं के नाम छूटे हैं। यह सम्भावना हो सकती है कि विदर्भ का नाम ही दर्भ हो, दर्भ का पुत्र रथवीति था।[1] 'क्रथ' और 'रथवीति' पदों में 'रथशब्द सामान्य है अतः विदर्भ=दर्भ, क्रथ=रथवीति मे ऐक्य संभव हैं।

क्रथ को रथवीति का ही अपर नाम माना जाय तो विददश्व, तरन्त, पुरुमीढ, श्यावाश्व आत्रेय, अर्चनाना, ऋचीक. जमदग्नि, विश्वामित्र, हरिश्चद्र ऐक्ष्वाक आदि समकालिक (७२०० वि० पू०) व्यक्ति थे। क्रथ से मधु पर्यन्त वंशावली इस प्रकार मिलती है—१. क्रथ २. कुन्ति ३. वृष्टि ४ निवृ त्ति ५ विदूरथ ६. दशार्ह ७. व्योम ८. जीमूत ९. विकृति १०. भीमरथ ११. रथवर (नवरथ) १२. दशरथ १३. एकादशरथ १४. शकुनि १५. करम्भ १६. देवरथ १७. देवक्षत्र १८. देवन १९. मधु २०. पुरुवस् २१ पुरुद्वान् २२. जन्तु २३ सत्वत।

कुन्ति—इससे कुन्तिराष्ट्र प्रथित हुआ। इसका भीम नाम अपपाठ है।

वृष्टि—इसके तीन पुत्र हुये, आवन्त, दशार्ह, और विषहर।[2] वायु० मे धृष्ट का पुत्र निवृ त्ति कथित है।[3]

दशार्ह—यह वंशकर राजा था, क्योकि इससे अति सुदूरकाल में होने वाले वासुदेव कृष्ण को दशार्ह कहा जाता था।

भीमरथ—इस वश में भीम या भीमसेन या भीमरथ नाम के अनेक वैदर्भ राजा हुये। एक भीम रुक्मिणी का पिता और कृष्ण का श्वसुर था। एक भीम ऋतुपर्ण और नल के समकालिक दमयन्ती का पिता विख्यात है। विकृति का पुत्र या वशज यह भीम दमयन्ती का पिता हो सकता है, परन्तु उसके पुत्र थे—दम, दान्त और दमन।[4] स्पष्ट है पुराणोल्लिखित वशावली अपूर्ण है।

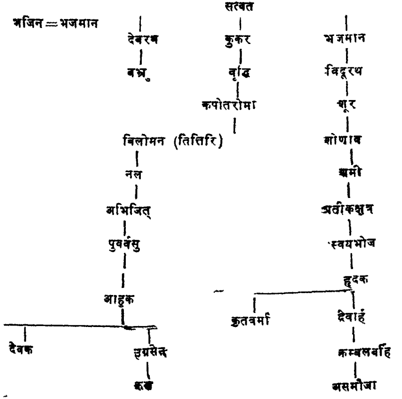
---

१. राजर्षिरभवद्दार्भ्यो रथवीतीति श्रुत। (बृहद्दे० ५।५०)
२. हरि० (१।३६।२३-२४)
३. वायु० (९५।३६)
४. दमयन्ती दमं दान्तं दमनं च सुवर्चसम्

मधु—यह एक वंशकर राजा था, जिसके वंशज माधव कहलाये, इसी से वासुदेव को माधव कहते थे। मधुनाम के यादवो मे अनेक पुरुष हुये, जिससे भ्रांतियाँ उत्पन्न हुईं।

सत्वत—पुरुद्वान् की भार्या भद्रवती से पुरुद्वत् उत्पन्न हुआ, जिसको पार्जीटर के पाठ मे जन्तु नाम है, इसकी भार्या ऐक्ष्वाकी से सत्वत का जन्म हुआ। यह सत्वत महान् वंशप्रवर्तक यादवपुरुष था, जिससे २४वें युग (५५०० वि० पू०) अनेक यादवकुलो का प्रादुर्भाव हुआ, जो भारतयुद्ध मे अधिक विख्यात थे, यथा अन्धक, वृष्णि, कुकुर, भजमान, भोज इत्यादि; इनमें कुकुरवंशी वृष्णि 'वार्ष्णेय' यादव हुये, इसी नामसे कृष्ण को, वार्ष्णेय, कहते थे।

पार्जीटर ने सत्वतवंशावली लिखी है—



गान्धारी — वृष्णि — माद्री

- सुमित्र = अनमित्र[1]
  - निघ्न
    - प्रसेन
    - सत्राजित्
      - भंगाकार
        - सभाक्ष
- युधाजित्
  - पृश्नि
    - श्वफल्क
      - अक्रूर
        - देववान्, उपदेवादि
- देवमीढुष
  - शूर
    - वसुदेव
      - बलराम, कृष्ण
- अनमित्र
  - शिनि
    - सत्यक
      - युयुधान
        - असग
          - युगन्धर
- शिव

पं० भगवद्दत्त ने इस प्रकार वंशावली निर्मित की है'—

सत्वत
- सात्वत भीम
  - भजिन्
  - देवावृध
    - बभ्रु
      - मार्तिकावत के भोज
  - महाभोज अन्धक
    - १. कुकुर
    - २. धृष्णु
    - ३. कपोतरोमा
    - ४. देवत = विलोमन (तित्तिरि)
    - भजमान
      - विदूरथ
        - राजाधिदेव शूर
          - शोणाश्व
  - वृष्णि

---

१. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० (१८६),

५. नल — शमी
६. अभिजित् — प्रतिक्षत्र
७. पुनर्वसु-विद्वान् — स्वयंभोज
८. आहुक — हृदक

९. देवक — उग्रसेन — कृतवर्मा — देवार्ह — द्वैतरथ भिषक्
१०. देवकी — कंस
११. कृष्ण

कम्बलबर्हि--विद्वान्
असमौजा

इन दोनों से पृथक् सत्वत्वंश के उद्भव की एक अन्य पृथक् अत्यन्त प्रामाणिक परम्परा हरिवंशपुराण (२।३७-३८ अध्यायद्वयी) में मिलती है,[1] जो स्वयं वासुदेवकृष्ण को यादव विद्वान् विकद्रु ने सुनाई थी—

इयं मधुपुरी रम्या मथुरा देवनिर्मिता (रा० (७।७१।५)

हर्यश्व ऐक्ष्वाक का मधुमती से 'यदु' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ—

मधुमत्या सुतो जज्ञे यदुर्नाम महायशा । (हरि० २।३७।४४)

मधु[3] यादव ने अपना राज्य जामाता ऐक्ष्वाक हर्यश्व[2] को समर्पित कर दिया, केवल मथुरा का राज्य अपने पुत्र लवणासुर को दिया।

---

१. यद्यपि उपलब्ध हरिवंश का एतत्सम्बन्धी पाठ पूर्ण शुद्ध या निर्भ्रान्त नहीं है, तथापि अन्य पुराणों की अपेक्षाकृत प्रमाणतर एवं प्राचीनतर एवं माननीय है।

२. ऐक्ष्वाक राजाओं में दो हर्यश्वों का उल्लेख मिलता है, परन्तु यह हर्यश्व तृतीय एवं उत्तरकालीन था।

३. इस मधु को हरिवंश में यादव मानते हुये भी दैन्य कहा है, जो निश्चय ही क्षेपककारों की भ्रान्ति का फल है। (हरि० २।३७।१३)

इस द्वितीय यादव—ऐक्ष्वाक—सात्वतवंश का वंशवृक्ष इस प्रकार निश्चित होता है[1]—

हर्यश्व—मधुमती (मधुपुत्री)

यदु

माधव (सुराष्ट्र)	मुचुकुन्द माहिष्मती पुरिका राजधानी (विदर्भ)	पद्मवर्ण करवीरपुर (पद्मावत)	सारस क्रौञ्चपुर (वनवासी)	हरित

सत्वत
भीम
अन्धक
रैवत
ऋक्ष
विश्वगर्भ

वसु	बभ्रु	सुषेण	सभाक्ष

वसु → अन्धक

कुकुर	वृष्णि
वृष्णि	देवमीढुष
कपोतरोमा	शूर
विलोमा	वसुदेव

१. पार्जीटर का मत इस यादव ऐक्ष्वाकवश के सम्बन्ध मे अबुद्धिपूर्वक एक अज्ञान-पूर्ण है, जोकि पार्जीटर की अक्षमता को उजागरकरता है—
The whole story of Harivansha is a mass of absuered confusion (ए० इ० हि० ट्रे० पृ० १२२)

| |
नल
अभिजित्
पुनर्वसु
अहुक
उग्रसेन
कंस

|
कृष्ण वासुदेव

आनर्त और सुराष्ट्र का राजा यदु (मधुपुत्र) हुआ—

आनर्तं नाम तद् राष्ट्रं सुराष्ट्रं गोधनायुतम्

मधु यादव तपहेतु वरुणालय (पाताल)—समुद्रीद्वीप में (हरि० २।३७।३९) चला गया और हर्यश्व सुराष्ट्र का शासक हो गया। मधु ने दशसहस्र दिन (=२७ वर्ष) राज्य करके यदु को राजा बनाया।

वसु के पुत्र वसुदेव बता ये गये हैं[1], स्पष्ट है, विश्वगर्भा और वसु के पश्चात् और वसुदेव के पूर्व के अनेक वंशनाम छोड दिये गये हैं।

अन्य साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वसुदेव शूर के पुत्र थे। जिससे पौत्र कृष्ण को 'शौरि' कहा जाता था। शूर का इस वंशावली तथा अन्य अनेक वंशावलियों मे नाम नही है, स्पष्ट है कि अनेक प्रधानपुरुषो के नाम छोड दिये है, तब अप्रधानो की तो कहना ही क्या?

तथापि, ऐक्ष्वाकहर्यश्व से मधुमतीके संयोग द्वारा यादववंश की समुत्पत्ति का आख्यान सत्य इतिहास है।[2] विश्वगर्भ या वसुपर्यन्त के नाम उचित है तथा उनकी समकालिकता भी हरिवंश मे ठीक प्रदर्शित की है—यथा भीम राम का समकालिक था—

सत्वतस्य सुतो राजा भीमो नाम महानभूत्।
राज्ये स्थिते नृपे तस्मिन्रामे राज्ये प्रशासति ॥[3]

---

१. वसोस्तु कुन्तिविषये वसुदेवः सुतो विभुः। (हरि० २।३८।५०)
२. शौरिरस्मि हृषीकेशो नृवीरौ पाण्डवाविमौ—(महा० २।२२।२५)
अनयोर्मातुलेय च कृष्ण मा विद्धिते रिपुम् ॥
तथा—अश्वघोष का वचन—"ख्यातानि कर्माणि च यानि शौरेः।
शूरादयस्तेषामबला बभूवुः। बुद्धचरित (१।४५)।
३. हरि० (२।३८।३८, ३९)

यादवराजा	ऐक्ष्वाक राजा	समय
१. मधुयादव	रघुप्रथम—दीर्घबाहु	५७५० वि०पू० से ५७०० वि०पू०
२. जामाता हर्यश्व	दिलीप	५७०० वि०पू० से ५६५० वि०पू०
३. यदु	रघु, द्वितीय	५६५० वि०पू० से ५६०० वि०पू०
४. माधव	अज	५६०० वि०पू० से ५५५० वि०पू०
५. सत्वत	दशरथ आजेय	५५५० वि०पू० से ५५०० वि०पू०
६. भीम	राम दाशरथि	५५०० वि०पू० से ५४५० वि०पू०
७. अन्धक	कुश	५४५० वि०पू० से ५४०० वि०पू०
८. रैवत	अतिथि	५४०० वि०पू० से ५३५० वि०पू०
९. ऋक्ष	निषध	५३५० वि०पू० से ५३०० वि०पू०
१०. विश्वगर्भ	नल	५३०० वि०पू० से ५२५० वि०पू०

अत: भीम का पिता सत्वत यादव दशरथ ऐक्ष्वाक के समकालिक था। रामपुत्र कुश और लव के समय में भीम का पुत्र अन्धक यादव राजा था।

तत· कुशे स्थिते राज्ये लवे तु युवराजनि।
अन्धको नाम भीमस्य सुनो राज्यमकारयत् ॥[1]

अत निम्न एकादश राजाओ का समय ज्ञात किया जा सकता है—

मधु यादव और लवणासुर अत्यन्त दीर्घजीवी थे, जो लगभग ५ ऐक्ष्वाक राजाओ के राज्यकाल पर्यन्त जीवित रहे। राम के समय लवणासुर की आयु डेढ शती से न्यून नही थी।

लुप्त पीढ़ियाँ—विश्वगर्भ से वसु या कुकुर (अन्धक महाभोज) पर्यन्त न्यूनतम १५-२० पीढिया लुप्त है। कृष्ण का जन्म ५२०५ वि० पू० हुआ, महाभोज आन्धक कुकुर का समय (१२ पीढी पूर्व) ३८०८ वि० पू० था, कृष्ण से छ: सौ वर्ष पूर्व। स्पष्ट है लगभग १४५० वर्ष (५२५० वि० पू० से ३८०० वि० पू०) के मध्य न्यूनतम २० पीढ़िया लुप्त हैं।

---

१. हरि० (२।३८।४३)

२. मधु यादव, हर्यश्व को राज्य देकर समुद्रीयद्वीप मे तपहेतु प्रस्थान कर गया था—स च दैत्यस्तपोवाम जगाम वरुणालयम् (हरि० २।३७।३७)

एवं ते स्वस्य वंशस्य प्रभवः संप्रकीर्तितः ।
श्रुतो मया पुरा कृष्ण कृष्णद्वैपायनान्तिकात् ।।

एतदनुसार यादव सत्वतवंश[1] का उद्भव इस प्रकार है—मनु के ऐक्ष्वाक वंश मे सम्भव एक हर्यश्व नाम का राजा था, जिसकी पत्नी मधु यादव[2] की पुत्री मधुमती थी । यह मधु 'यादव' था, इसकी पुष्टि स्वयं हरिवंश के निम्न श्लोको से होती है—

'यायातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम्, (हरि० १।३७।३४)

स्पष्ट है उक्त मधु यादव ही था । इस भ्रान्ति का कारण नामसाम्य ही था, क्योंकि दानवो मे मधु नाम अनेक असुरेन्द्र हो चुके थे, उसी के वधकर्ता विष्णु को 'मधुसूदन' कहा जाता था, यादव मधु के कारण कृष्ण को 'माधव' कहा जाता था ।

रामायण मे भी मधु यादव का भ्रांतिमय उल्लेख है—इसका कारण मधु यादव की पत्नी राक्षसी कुम्भीनसी रावण की भगिनी थी—उसका पुत्र लवणासुर विख्यात था । मधु यादव का असुरो से जो सम्बन्ध था, इससे भी उसे दानव या असुर समझने की भ्रांति हुई । (द्र० रामायण, उत्तर० ६१-७० सर्ग) ।

मधु के नाम से मथुरा का मधुपुरी एवं मधुवन प्रसिद्ध हुआ । 'मधुरा' शब्द ही 'मथुरा', हो गया ।

सत्वतवंश के प्रधानपुरुष

सत्वत—इसकी माता इक्ष्वाकुवंश की राज्यकन्या थी ।[1] इससे भी सत्वतो और ऐक्ष्वाकुओं का सम्बन्ध प्रकट होता है । सत्वत के नाम से यादववंश की संज्ञा सात्वत हुई, और यही कृष्णप्रवर्तित भक्तिसम्प्रदाय (पाञ्चरात्रधर्म)[2] की संज्ञा हुई । सत्वत के वंशजो को 'सात्वत भी कहा जाता था, जिस प्रकार भरत (पौरव) के वंशज 'भरत' ही कहलाते थे, किसी भरतवंशी (पौरव) राजा ने किसी सत्वत (वंशीय) राजा का हयमेध का अश्व अपहृत किया था—

---

१. ऐक्ष्वाकी त्वभवद्भार्या सत्वतस्तस्यामजायत । (वायु० ९५।४७)

२. महा० नारायणीयोपाख्यान (शा०)

आदत्ते यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिति । श० ब्रा० (१३।५।४।२१)

पार्जीटर यहां भरत और सत्वत का अर्थ सम्यक् न समझकर भ्रान्ति उत्पन्न करता है कि यहाँ 'भरत' राम दाशरथि का भ्राता था,[1] यह मिथ्या कल्पना है।

भीम सात्वत—यह सत्वत का पुत्र था, अतः इसे भीम सात्वत कहा गया है।

अन्धक–इसका समय और समकालिकता हरिवंश (२।३८।३८) के प्रामाण्य से बताई जा चुकी है।

यदु द्वितीय द्वारा राष्ट्रों की स्थापना—हर्यश्व-मधुमती के पुत्र और मधु यादव के दौहित्र यादव की पत्नियां धूम्रवर्णनाग की पुत्रियाँ पाचनागकन्यायें थी। यदु ने पाताल (समुद्रीद्वीप) के नागलोक मे जाकर किसी सर्पनगर (राजधानी) मे इनसे विवाह किया।[2] हरिवंश (२।३७।३५) के अनुसार इन पाच नागकन्याओं से सात यादववंशो की समुत्पत्ति हुई—भैम, कुकुर, भोज अन्धक, यादव, दशार्ह और वृष्णि—

भैमाश्व कुकुराश्चैव भोजाश्चान्धकायादवाः ।
दाशार्हा वृष्णयश्चेति ख्याति यास्यन्ति सप्त ते ।।

पांचराज्य—यदु के पाच पुत्रो—मुचुकुन्द, पद्मवर्ण, माधव, सारस और हरित ने पांच राज्यो की स्थापना की।

मुचुकुन्द ने विन्ध्यपर्वत के मध्यवर्ती देश मे माहिष्मती और पुरिका नाम की दो नगरियो को बसाया।[3] पद्मवर्ण ने सह्यपर्वत के पृष्ठभाग में वेणातट पर पद्मावत जनपद मे करवीरपुर राजधानी बताई। कृष्ण ने दक्षिणापथ की यात्रा के समय करवीरपुर के यादव राजा श्रृगाल का वध किया था। जो अपने को 'वासुदेव' कहता था।[4] इसका पुत्र शक्रदेव था।[5]

'सारस' सञ्ज्ञक यादव ने वनवासीजनपद मे क्रौञ्चपुरनगर बसाया; हरित यादव समुद्रीद्वीप, सभवत गोमन्त (गोआ) का शासक बना।[6] माधव

---

१ ए० इ० हि० ट्रे०
२. हरि० (२।३७।२१-७३)
३. हरि० (२।३८।१६, २०)
४. हरि० (२।१४४ अ०), हरि० (२।४४।४५)
५. हरि० (२।३८।२६)
६ हरि० (२।३८।११)

आनर्त या सुराष्ट्र (गुजरात) का ही शासक रहा। जिसकी राजधानी द्वारका थी।

दक्षिणी मदुरानगर मथुरा के अनुकरण पर यादवों ने बसाया।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि सत्वत के समय से पूर्व ही यादवों का राज्य मदुरा, एवं गुजरात से दक्षिण भारत एवं समुद्रीद्वीपोंपर्यन्त विस्तृत था।

वसु—पाणिनि के पर्श्व आदि गण (५-३।१।१७) में 'सत्वत् और दशार्ह' के साथ 'वसु' नाम पठित है, इससे हरिवंश उल्लिखित उपर्युक्त आख्यान की सत्यता की पुष्टि होती है कि 'वसु' यादवों के अन्तर्गत एक प्राचीनवंश प्रवर्तक यदुप्रवीर था—

वसुर्बभ्रुः सुषेणश्च सभाक्षश्चैव वीर्यवान्।
यदुप्रवीराः प्रख्याता लोकपाला इवापरे॥[1]

वसु-बभ्रु, सुषेण और सभाक्ष यादवचतुष्टयी का वंशवृक्ष वर्तमान पुराण पाठों में लुप्त है। वर्तमान पुराणपाठों मे भजिन, भजमान आदि को सत्वत के साक्षात् पुत्र कहा गया है, जो अतथ्य है। हम पहिले संकेत कर चुके हैं कि वसु से अन्धकपर्यन्त न्यूनतम १५-२० पीढियों के नाम लुप्त है। वृष्णि, कुकुर, भजिन, भजमान आदि से ३८०० वि० पू० अन्धकवृष्णिवंश का पुनरुदय हुआ। इनमे अन्धकवृष्णि एक शक्तिशाली संघराज्य था जिसका उल्लेख अष्टाध्यायी (६।२।३४)[2] तथा महाभारत और कौटिल्य अर्थशास्त्र मे भी है। भारतयुद्धकाल मे श्रीकृष्ण इस संघराज्य के सर्वोपरि नेता थे।

भजमान—सात्वतवंशी भजमान की किसी सृञ्जय संज्ञक राजा की दो पुत्रियाँ—उसकी पत्नियां थी—जिनमे बाह्यका से कृमि, क्रमण, धृष्ट, शूर और पुंरजयसंज्ञकपुत्र हुये। उपबाह्यका (कनिष्ठा) से—अयुताजित्, शताजित् और दाशकसंज्ञकपुत्र थे।

देवावृध—इसकी पत्नी पर्णाशा[3] से प्रख्यात बभ्रुसंज्ञकपुत्र उत्पन्न हुआ।

बभ्रु—देवावृध और बभ्रु के सम्बन्ध में पुराणों मे निम्न गाथा मिलती जिसके अनुसार युद्ध में ७०६६ पुरुष (वीर) अमृतत्व को प्राप्त हो गये—

---

१. हरि० (२।३८-४८)
२. राजन्यबहुवचनं द्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु (६।२।३४)
३. इसी के नाम से मध्यप्रदेश पर्णशा नदी का नाम प्रथित हुआ।

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ।
एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बभ्रुर्देवावृधादपि ।।[1]

ये प्राचीन भोजवंश के थे, जिनको मार्तिकावतभोज कहा जाता था, इसकी राजधानी मृत्तिकावती थी।[2]

अन्धक—काशिराज दृढाश्व की पुत्री द्वारा अन्धक (द्वितीय) से कुकुर, भजमान, शमी, और कम्बलबर्हि—संज्ञक चार पुत्र हुये। कुकुर के पुत्र धृष्णु या (वृष्णि) हुये, धृष्णु के पुत्र कपोतरोमा, उसके तित्तिरि, उसके पुत्र पुनर्वसु, उसका अभिजित्। अभिजित् के आहुक और आहुकीसंज्ञक मिथुनद्वयी सन्तति हुई। आहुकी अवन्तिराज की पत्नी हुई। आहुक[3] से काशिराजपुत्री से देवक और उग्रसेन हुये, देवक के चार पुत्र थे—उपदेव, सुदेव, और देवरक्षित। देवक की सात कन्याओं का विवाह वसुदेव से हुआ। उनके नाम थे—देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुनामी।[4]

उग्रसेन के नौ पुत्र थे—कंस, न्यग्रोध, सुनामा, कंक, सुभूति, शंकु, राष्ट्रपाल, सुतनु, अनाधृष्टि, पुष्टिमान्। इनकी पाच भगिनियाँ थी—कंसा, कंसवती, सुतनु,राष्ट्रपाली और कंका।

अन्धकपुत्र भजमानद्वितीय—इसका पुत्र हुआ विदूरथ, इसका पुत्र हुआ—राजाधिदेवशूर। शूर के दशपुत्रों मे शमी प्रधान था, उसका पुत्र हुआ प्रतिक्षत्र, उसका पुत्र स्वयंभोज उसका हृदीक। इसके चारपुत्रो में कृतवर्मा और शतधन्वा विख्यात हुये। शतधन्वा का पुत्र वैतरण एक भिषक् (वैद्य) था।

वृष्णि—इसका नाम क्रोष्टा या वृष्णि भी है। जिसकी दो पत्नियाँ थी—गान्धारी और माद्री।[5] गान्धारी का पुत्र हुआ अनमित्र। माद्री के पुत्र हुये

१. हरि० (१।३७।१४)
२. तस्यान्ववाय सुमहान् भोजा ये मार्तिकावताः। हरिः (१।३७।१६)
३. आहुकसम्बन्धीगाथा-श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान्।
अशीतिचर्मणा युतः स नृपः प्रथमं व्रजेत्। (हरि० १।३७।२१)
४. हरि० (१।३७।२६)
५. गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्ये बभूवतुः। (हरिः १।३४।१)
यही श्लोक हरि० (१।३८।१०) मे पुनरावृत हैं, स्पष्ट है, हरिवंश के वर्तमानपाठ का श्लोक भी इसवश के सम्बन्धमें निर्भ्रान्ति नही है।

युधाजित् और देवमीढुष । अनमित्र के पुत्र हुये—निघ्न, हंसक प्रसेन और सत्राजित् । प्रसेन को द्वारावती (द्वारिका) में समुद्र में स्यमन्तकमणि की उपलब्धि हुई ।[1]

अनमित्र का ही वंशज एक पृश्नि था,[2] जिसे भ्रम से वृष्णि समझा गया । इस पृश्नि का पुत्र हुआ श्वफल्क । श्वफल्क की पत्नी काशिराज विभु की पुत्री गान्दिनी हुई, जिससे आक्रूरादि १५ पुत्र उत्पन्न हुये । यह अक्रूर अन्धकवंश के नेता थे । अक्रूर के दो पुत्र थे— प्रसेन और उपदेव ।

वसुदेव—क्रोष्टा, वृष्णि या पृश्नि के तृतीय पुत्र देवमीढुष की अश्मकी नाम कीपत्नी से 'शूर' का जन्म हुआ, इनके दशपुत्रो में वसुदेव या आनक-दुन्दुभि प्रधान थे—जिनके विषय में पुराणों में कथित हैं—

> जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभय. प्राणदन् दिवि ॥ हरि० (१।३४।१८)
> आनकानां च संह्लाद. सुमहानभवद् दिवि (१।३४।१९)
> मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि । (१।३४।२०)

वसुदेव की पाच पुत्रियाँ थी—पृथुकीर्ति, पृथा (कुन्ति), श्रुतदेवा, श्रुत-श्रवा और राजाधिदेवी ।

शूर, शूरसेनप्रदेश के शासक थे, इन्होने अपने सम्बन्धी और मित्र कुन्ति भोज को पृथा पुत्री के रूप में देदी, जो कुन्तिनाम से प्रख्यात हुई, जिसका विवाह पाण्डु से हुआ, जिसके पुत्र पाण्डव कहलाये ।

श्रुतदेवा का विवाह कारुषनरेश वृद्धशर्मा से हुआ, जिनका पुत्र हुआ, प्रसिद्ध राजा दन्तवक्र । श्रुतकीर्ति का विवाह केकयराज से हुआ । राजाधि-देवी का विवाह अवन्तिराज से हुआ, जिसके पुत्र थे, विन्द और अनुविन्द । श्रुतश्रवा का विवाह चेदिराज दमघोष (सुनीथ[4]) से हुआ, जिनने शिशुपाल उत्पन्न हुआ ।

वसुदेव की चतुर्दशपत्नियों में सात उग्रसेन के भ्राता देवक की पुत्रियाँ थी—देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुनासी । अन्य सात पत्नियों के नाम थे—रोहिणी, इन्दिरा, वैशाखी, भद्रा और

१. दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान् (हरि० १।३८।१४)
२. विष्णु० (४,१४।५)
३. हरि० (१।३४।३)
४. सुनीथ शिशुपाल का नाम नहीं, उसके पिता का था ।

सुनाम्नी—किसी पौरवनरेशों की पुत्रियाँ थीं। सुतनु और वडवा परिचारिका पत्नियाँ थीं।[1] इनमें रोहिणी शन्तनुभ्राता बह्लिक की पुत्री थी। महाभारतयुद्ध के समय वसुदेव श्वसुर बह्लिक की आयु लगभग २०० वर्ष थी। उस समय वसुदेव की आयु डेढ़ सौ वर्ष से अधिक थी।

रोहिणी की सन्तति इस प्रकार हुई—बलराम, सारण, शठ, दुर्दम, दमन श्वभ्र, पिण्डारक, उशीनर, (पुत्र)—चित्रा और सुभद्रा। वसुदेव के अन्य पुत्र थे—भोज, विजय वृकदेव और गद।

वसुदेव के एक भ्राता देवश्रवा का पुत्र था—एकलव्य, जिसका पालन वत्सावत नाम के निषादराज ने किया था।[2]

शिनि-शैनेय और सात्यकि—पृश्नि के वंश में अनमित्र से शिबि, उसका पुत्र शैनेय सत्यक और उसका पुत्र युयुधान सात्यकि भारतयुद्ध का एक प्रधान योद्धा था[3]। यह अर्जुन का शिष्य एव परमसखा था।

उद्धव—वासुदेव के अन्य भ्राता देवभाग का पुत्र था उद्धव महान् पण्डित था।

वासुदेव कृष्ण—भारतीय इतिहास के सर्वाधिक प्रसिद्ध पुरुष कृष्ण, वसुदेव और देवकी के पुत्र थे, जिनको वार्ष्णेय, माधव, दशार्ह, सात्वतआदिवंश नामो के साथ पितृनाम (अपत्यनाम) से वासुदेव कहते हैं, यह शब्द उत्तरकाल मे विष्णु या भगवान् का पर्याय बन गया।

कृष्ण की आठ प्रधान पत्नियाँ थीं—विदर्भराज (१) भीष्मकपुत्री रुक्मिणी, (२) सत्राजित् यादवपुत्री सत्यभामा, (३) गान्धारराजनग्नजित् की पुत्री सत्या नाग्नजिती, (४) शिविराजकुमारी, सुदत्ता, (५) लक्ष्मणा, (६) कलिन्दराजपुत्री कालिन्दी, (७) मद्रराजकन्या सुभीमा और(८) पौरवी[4] जाम्बवती।

रुक्मिणी के पुत्र थे—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, चारुभद्र, सुदेष्ण, द्रुम, सुषेण, चारुगुप्त, चारुविन्द, चारुबाहु तथा कन्या चारुमती। सत्यभामा के पुत्र

१. सुतनु वडवा चैव द्वे एते परिचारिके (हरि० १।३५।३)
२. हरि० (१।३४।३३-३४)
३. सात्यकिश्चापराजितः (गीता)
४. हरि० (१।१०३।४) में जाम्बवती को स्पष्ट ही पौरवी—"जाम्बवत्यथ पौरवी"

हुये—भानु, भीमरथ, रोहित, दीप्तभानु, ताम्रजाक्ष, जलान्तक, भानु, (पुत्र) कहा है। नामसाम्य के कारण पौरवराज जाम्बवान् को रामायणकालीन सुग्रीवसचिव ऋक्षराजजाम्बवान् से पुराणो मे भ्रांति उत्पन की है, यह पौरव जाम्बवान् किसी समुद्रीद्वीप (पाताल) या ऋक्षबिल स्थान का राजा था, पाणिनि ने पातालविजय या जाम्बवतीकाव्य, लिखा था। जाम्बवतीपुत्र—साम्बप्रधान था, अन्य—मित्रवान्, मित्रविन्द और कन्या मद्रवती (पुत्री)। सत्या नाग्नजिती गान्धारी[1]—के पुत्र भद्रकार, भद्रविन्द और कन्या भद्रवती शैब्या सुदत्ता की सन्तति—सत्यजित्, सेनजित् और शूर। माद्री सुभीमा के पुत्र—वृकाश्व, वृकनिर्वृत्ति और वृकदीप्ति। लक्ष्मणा के गात्रवानदि तीन पुत्र हुये। कालिन्दी संभवत कलिन्दराज (हिमालयवर्तीप्रदेश) की कन्या थी, जिसके पुत्र थे—अश्रुत और श्रुतिसम्मित।

कृष्ण के कुलपुत्रों की संख्या एक लाख अस्सी सहस्र[2] बताई है, जो अविश्वसनीय प्रतीत होती है। इसमे कोई सन्देह नही कि उनके शतशः किंवा सहस्रशः पुत्रपौत्रादि थे।

---

१. यह धृतराष्ट्र पत्नी गान्धारी की पितृष्वसा (बुआ) थी, लेकिन आयु मे धृतराष्ट्रपत्नी गान्धारी से छोटी होगी। इसका एक नाम सत्या और अन्यत्र सुकेशी मिलता है, इसका कृष्ण ने बलपूर्वक गान्धारों को जीत कर अपहरण किया... (सभापर्व ६१।१३१ तथा उद्योगपर्व (४८।७१) प० भगवद्दत्त का अनुमान है कि—'सम्भव है वह सुबल अथवा उसके किसी भ्राता की कन्या हो" (भा० बृ० इ० भा० २, पृ० १६४)

२. दशायुत समाख्याता वासुदेवस्य ते सुताः।
अयुतानि तथा चाष्टौ शूराः रणविशारदाः।
(हरि० २।१०३।२१-२२)

उत्तरभाग

प्रथम अध्याय

भारतोत्तर राजवंश

युधिष्ठिरसमकालिक राजगण—महाभारतग्रन्थ के आश्वमेधिकपर्व के अनुसार भारतवर्ष में युधिष्ठिर के समकालिक निम्न प्रमुख राजा थे—

१. त्रिगतराज सूर्यवर्मा[1] २ प्राग्ज्योतिषाधिप वज्रदत्त[2]

३. सैन्धवराज सुरथ[3] ४. मणलूराधिप बभ्रुवाहन पाण्डव[4]

५. चेदिपतिशरभ[5] ६. दशार्णराज चित्रांगद[6]

७. निषादराज एकलव्यपुत्र[7] ८. यदुराज उग्रसेन[8]

६ गान्धारपति शकुनिपुत्र[9] १०. मगधराज मेघसन्धि[10]

पुराणों मे सहदेव का पुत्र सोमाधि बताया गया है। मेघसन्धि संभवतः उसका ही द्वितीय नाम हो। मेघसन्धि या सोमाधि का राज्यकाल ५८ वर्ष था।

भारतयुद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर ने ३०८० वि० पू० से ३०४४ वि० पू० पर्यन्त ३६ वर्ष राज्यकिया।

---

१. सूर्यवर्मा के दो भ्राता थे—केतुवर्मा और धृतवर्मा, जिनमें प्रथम अर्जुन द्वारा अश्वमेध के अवसर पर मारा गया (आश्व० ७४ अध्याय)
२. आश्व० अध्याय ७५।
३. यह जयद्रथ-दुशलापुत्र अर्जुन का नाम सुनते ही पंचत्व को प्राप्त हुआ आश्व० प० ७८।
४. यह उलूपी और अर्जुन का पुत्र था।
५. आश्व० ३/१७.
६. आश्व० ८३/६.
७. वही ८३/७.
८. वही ८३/१५.
६. वही ८३/२०
१०. वही आश्व० ८२ अध्याय

कल्यागमन या कल्यारम्भ—कृष्णदेहावसान के दिन से— इसी समय (३०४४ वि० पू०) वासुदेव कृष्ण के दिवंगत होने के दिन से कल्यारम्भ (कलियुग का आरम्भ) हुआ— यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने।
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत ॥[1]

कलियुग का वर्षमान १२०० वर्ष था। इस युग की अन्तिमशती (२६०० वि० पू० से १८०० वि० पू०) में प्राद्योत विशाखयूप के समय कल्कि ब्राह्मण का जन्म हुआ। संभवतः इसी समय से सातवाहनवंशतक, पर्याप्त समय भारतवर्ष में ब्राह्मण राजाओं का साम्राज्य रहा। कल्कि एवं अन्य ब्राह्मणराजाओं का कालक्रम एवं विशेष वृतात अग्रिम अध्यायों मे लिखेंगे। विभिन्न युगों में अनेक अन्य कल्कि भी माने गये, यथा जैनपरम्परा में गुप्तों के पश्चात् एक कल्कि माना गया, डा० काशीप्रसाद जायसवाल यशोवर्मा को कल्कि मानते थे, इस सब का विवेचन कल्कि प्रकरण में ही होगा।

समकालिक राजवंश—प्रथमसहस्राब्दी में

कलि के १२०० वर्षों अथवा प्रारम्भिक सहस्राब्दी मे तथा उसके पश्चात् अग्रिम द्विसहस्राब्दी (गुप्तवंशपर्यन्त) के राजाओं का विस्तृत उल्लेख था, विशेषतः भविष्यपुराण मे, इस समय पुराणपाठों मे केवल ऐक्ष्वाक, पाण्डव और मागध राजाओं का संक्षिप्त वर्णन मिलता है और पाचालादि राजाओं की केवल सख्यामात्र ही उल्लिखित मिलती है। इसी प्रकार शुङ्गोत्तर सातवाहन, शक पुलिन्द, यवन, मुरुण्ड, हूण, आभीर, शूद्रक (क्षुद्रकमालव), शबर, पह्लवादि राजाओं का विस्तृत वृत्तांत भविष्यपुराण में था—

तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये पठितान् नृपान्।
तेभ्यः परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षितः।
क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथा ये च द्विजातयः।
आन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च चूलिका यवनैः सह।
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छजातयः।
वर्षाग्रतो प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान् ॥[2]

इस सम्बन्ध में पार्जीटर ने निज अनुमान के आधार पर ठीक ही लिखा है—
"भविष्ये ते प्रसंख्याताः पुराणज्ञैर्महर्षिभिः।"

Here also Bhavishye can only mean in the Bhavisaya Purana.[3]

---

१. वायु (९९/४२८)
२. वायु० (अ० ९९),
३. The Purana Text (p. 8),

श्री टि० एस० नारायण शास्त्री को १६१५ ई० में उपर्युक्त मत्स्यपुराण का वह पाठ उपलब्ध था, जिसके आधार पर उन्होने प्रत्येक सातवाहन, शक, गुप्तादि वंशो के प्रत्येक राजा का राज्यकालादि वर्णित किया था। मत्स्यपुराण की वह प्रति अभी तक विद्वानों को प्राप्य नही है जिसके आधार पर शास्त्रीजी ने कलिराज-वृत्तांत लिखा था। अतः भविष्यपुराण एवं तदनुसार वायु और मत्स्य में गुप्तपर्यन्त प्रत्येक राजा का व्यक्तिगत घटनाक्रम एवं राज्यकाल लिखा था। कलिराजवृत्तात में उपर्युक्त पुराणो के कुछ पाठ सुरक्षित हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। शास्त्रीकृत कलिराजवृत्तांत की पुष्टि न केवल पुराण एव शिलालेखो से वरन् प्राचीन बौद्धग्रन्थ आर्यश्रीमंजुश्रीमूलकल्प से होती है, जिसमे बुद्ध से गुप्तपर्यन्त का इतिहास लिखा मिलता है, अतः पुराणो में गुप्तराज्यतक के प्रत्येक राजा का नाम और राज्यकाल उल्लिखित था, इस समय पुराणो में केवल आन्ध्रसातवाहन राजाओ के नाम और राज्यकाल लिखा मिलता है, इसकी आंशिक पूर्ति नारायण शास्त्री की कलिराजवृत्तान्त से होती है। एतदनुसार कलि के राजाओ का कालक्रम प्रस्तुत करेंगे।

अतः परीक्षित् से क्षेमकपर्यन्त के पांचाल, कलिंग, शूरसेन, आवन्त्य चैद्य आदि सभी राजवशो का सारगर्भित इतिहास पुराणो मे उपलब्ध था, जो इस समय अनुपलब्ध है तथा अनेक चरितग्रन्थों या वंशग्रन्थो मे इनका वर्णन था, यथा शूद्रकचरित, चन्द्रचूडचरित, महावंश, वत्सराजचरित, महानन्दकाव्य इत्यादि। पुराणो एवं इन्ही इतिहासग्रन्थो के आधार पर कौटिल्य, सुबन्धु, पतंजलि, अश्वघोष कालिदास और बाणभट्ट ने अपने ग्रंथो मे अनेक ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख किया है, जो केवल कल्पना के आधार पर नही किया जा सकता।

प्रथमसहस्राब्दी के राजवंश—भारतयुद्ध के पश्चात् प्रथमसहस्राब्दी में मगध मे प्रमुख २२ राजाओ ने राज्य किया। यह पूर्ण सभव है कि २२ की संख्या मे छोटे या स्वल्पकाल राज्य करने वाले कुछ राजाओ के नाम छोड़ दिये गये हैं। इस का संकेत पुराणों मे ही मिलता है।

२२ बार्हद्रथ राजाओ के समकालिक अन्यवंशो में जो राजा हुये, उनकी परिगणना पुराणो मे इस प्रकार है।

१. बार्हद्रथ मागध—	२२ राजा
२. ऐक्ष्वाक (अयोध्या मे)—	२४ राजा
३. पाण्डव-हस्तिनापुर व कौशाम्बी मे—	३१ राजा
४. पांचाल—	२७ राजा
५. कालिंग—	३२ राजा

६. मैथिल—	२८ राजा
७. हैहय	२८ राजा
८. काशेय—	२४ राजा
९. अश्मक—	२५ राजा
१०. शौरसेन—	२३ राजा
११. आवन्त्य (वीतिहोत्र)—	२० राजा

सोमाधि बार्हद्रथ से—नवीन युगारम्भ—मागध सोमाधि, युधिष्ठिरपाण्डव और बृहद्रथपुत्र बृहत्क्षत्र के समय (३०८० वि० पू०) से एक युगान्तर हुआ और ३६० वर्षपरिमाणवाला ३१वाँ युग प्रारम्भ हुआ। इस ३१ वें युग के प्रमुख समकालिक शासक इस प्रकार थे—

मगध में बार्हद्रथवंश	राज्यकाल	पाण्डववंश	ऐक्ष्वाकवंश	यादववंश
१. सोमाधि	५८ वर्ष	युधिष्ठिर	बृहत्क्षत्र	कृष्ण
२. श्रुतश्रवा	६४ वर्ष	परीक्षित्	उरुक्षय	अश्व
३. अयुतायु	२६ वर्ष	जनमेजय	वत्सव्यूह	वज्र
४. निरमित्र	४० वर्ष	शतानीक	प्रतिव्योम	अचल
५ सुक्षत्र	५६ वर्ष	सहस्रानीक	दिवाकर	प्रतिबाहु
६. बृहत्कर्मा	२३ वर्ष	अश्वमेधदत्त	सहदेव	सुचारु
७. सेनाजित्	५० वर्ष	अधिसीमकृष्ण	बृहदश्व	—
८. श्रुतञ्जय	४० वर्ष	निचक्षु	भानुरथ	—
योग	३५५ वर्ष			

वर्तमान पुराणपाठों में मागधराजाओं के व्यतिरिक्त अन्यवंश के शासकों के राज्यवर्षों का अनुल्लेख है, अनुमान से समकालिक राजाओं का राज्यकाल भी लगभग यही होगा।

युग की एक प्रमुख घटना—शौनकदीर्घसत्र :—जिस प्रकार बौद्धों के सांस्कृतिक प्राचीन इतिहास मे चार संगीति या सभायें प्रख्यात है, जिसमें सम्पूर्ण बौद्ध वाङ्मय संकलित हुआ, उसी प्रकार इन बौद्ध संगीतियों से अनेक गुण बड़ी कुलपति शौनक का दीर्घपरिषद् हुई, जिनमें अनेक नवीनपार्षदशास्त्रों के अतिरिक्त सम्पूर्ण वैदिक, पौराणिक, वेदाङ्गिकप्रभृतिशास्त्रों का सकलन एवं प्रवचन हुआ।[1] इसी समय लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवा सौति ने वायु, मत्स्यादि अष्टादशपुराणों का

---

१. शौनको गृहपति र्वै नैमिषीयैस्तु दीक्षितैः। दीक्षासु चोदितः प्राह सत्रे तु द्वादशाहिके ॥

प्रवचन किया।[1] सौति के पुराणप्रवचन के समय हस्तिनापुर में अधिसीमकृष्ण[2], मगध में सेनाजित् और अयोध्या मे दिवाकर का राज्य चल रहा था। यह दीर्घसत्र मागध सेनाजित् के राज्यकाल के २३वें वर्ष मे समाप्त हुआ।

दीर्घसत्र लगभग एक युग (३०० वर्ष) चला। शौनक और उग्रश्रवा सौति की आयु उस समय ३०० वर्ष के लगभग थी। यह भी संभव है कि शौनक का यह कुलसत्र हो। इस शौनक का नाम संभवतः महाशाल मुण्डक शौनक था।[3] शौनक के दीर्घसत्र में ८८००० ऋषिमुनि अथवा विद्वान् सम्मिलित हुए थे। यह संभव है कि इनमें से अनेक व्यक्ति सामान्य भोजनभट्ट भिक्षुमात्र ही हो, विद्वानो की संख्या सीमित या स्वल्प ही होगी।

आगे प्रमुखवंशो के कालक्रमादि पर सत्यात्मक शोध प्रस्तुत करेंगे।

पाण्डववंश

पुराणो में युधिष्ठिर से क्षेमकपर्यन्त ३१ राजाओं की वंशसूची मिलती है। इस वंशसूची मे जो पाठान्तर एवं भेद मिलता है, उसका संकेत आगे करेंगे।

१. पाण्डव	१७ सुखिबल
२. परीक्षित्	१८ परिप्लव
३. जनमेजय	१९ सुनय
४. शतानीक, प्रथम	२० मेधावी
५. सहस्रानीक	२१ नृपञ्जय
६. अश्वमेधदत्त	२२ दूर्व
७ अधिसीमकृष्ण	२३ तिग्मात्मा
८. निचक्षु	२४ बृहद्रथ
९. उष्ण	२५ वसुदान
१०. चित्ररथ	२६ शतानीक, द्वितीय
११. शुचिरथ	२७ उदयन
१२. वृष्णिमान	२८ वहीनर
१३. सुषेण	२९ दण्डपाणि
१४. सुनीथ	३० निरामित्र
१५. रुच	३१ क्षेमक
१६. नृचक्षु	

---

१. नैमिषारण्ये कुलपतिः शौनकस्तु महामुनिः। सौतिं पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्र विशारदः॥ (महा० १/१/४)॥

२. अधिसीमकृष्णे शासति। (वायु०)

३. मु० उ० (१/१/१),

परीक्षित्—अर्जुन के युवापुत्र अभिमन्यु का विराटराजकन्या उत्तरा से विवाह हुआ, जिनका पुत्र परिक्षित या परीक्षित् हुआ।[1] महाभारत के एक ही अध्याय में परिक्षित् की आयु और राज्यकाल के सम्बन्ध में परस्पर विरुद्ध पाठ मिलते हैं। एक मत से परीक्षित् का राज्यकाल ६० वर्ष था।[2] द्वितीयश्लोकअनुसार उसकी आयु ६० वर्ष थी।[3] इस सम्बन्ध मे हमारा प० भगवद्दत्त से मतभेद है।

यह पुराण में सर्वप्रसिद्ध तथ्य है कि कृष्ण परमधामगमन भारतयुद्ध से ३६ वर्ष पश्चात् हुआ। यही युधिष्ठिर का राज्यकाल था। परिक्षित् का जन्म भारतयुद्ध के कुछ मास पश्चात् हुआ था। यह भी पुराणप्रसिद्धतथ्य है कि कृष्ण के दिवंगत होते ही कलियुग (अचिरात् प्रवर्त्तते) प्रवृत्त हो गया था— ३०४४ वि० पू०। स्पष्ट है ३६ वर्ष की आयु मे परीक्षित् राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ। महाभारत के अतिरिक्त विष्णुधर्मोत्तरपुराण (८०/५,१३) के अनुसार कलि के ६० वर्ष व्यतीत होने पर परीक्षित् का देहान्त हुआ।[4] स्पष्ट है उसका राज्यकाल ६० वर्ष और आयु ९६ वर्ष थी। महाभारत के पूर्वोक्त श्लोक मे उसे, जरान्वित कहा गया है, वह भी ९६ वर्ष की आयु में ही सार्थक होगा।

अतः परीक्षित् की आयु ९६ वर्ष और राज्यकाल ६० वर्ष था। स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' (एकादश समुल्लास) में प्राचीनवंशावली के अनुसार भी परीक्षित् का राज्यकाल ६० वर्ष लिखा है। अत महाभारत का पाठ त्रुटित हुआ है।

जनमेजय पारीक्षित तृतीय—परीक्षित और माद्रीवती का पुत्र पौरववंश का तृतीय प्रसिद्ध जनमेजय था। अमित्रघाती या शत्रुघाती वीर को ही प्राचीनकाल मे परंतप और जनमेजय कहा जाता था। जनो को कँपाने वाला वीर ही जनमेजय कहा जाता था, इस प्रकार के ८० जनमेजय प्राचीन इतिहास मे हुए थे।[5]

---

१. उत्तराया तु वैराट्या परिक्षिदभिमन्युजः। (मत्स्य ५०/७२),

२. प्रजा इमास्तव पिता षष्टिवर्षाण्यपालयत्। महा० १/४६/१७)

३. वयस्थश्च षष्टिवर्षो जरान्वित। (महा० १/४६/२६)

४. संवत्सराणां दशकं तथा कलियुगाद् गतम्। ५।
अद्यप्रभृति राजेन्द्र समा पञ्चाशकेगते ॥ १० ॥
परिक्षिति महाराजे दिवं प्राप्ते कुरूद्वहे ॥ १३ ॥ (विष्णुधर्मोत्तर पु०)

५. अशीतिर्जनमेजयाः (ब्रह्माण्ड०)

महाभारत में जनमेजय का अभिषेक बाल्यकाल में हुआ, ऐसा पाठ हमें त्रुटित या भ्रामक प्रतीत होता है।[१] यदि जनमेजय बालक हो तो वह २० वर्ष से अधिक ही होगा। वह परीक्षित् की वृद्धावस्था मे उत्पन्न हुआ होगा।

डा० हेमचन्द्रराय चौधुरी ने जनमेजय पारिक्षित तृतीय के सम्बन्ध में अत्यन्त भ्रामक बातें लिखी हैं,[२] इस पर अन्यग्रन्थ मे विचार किया जायेगा। डा० चौधुरी ने न्यूनतम तीन जनमेजयो को एक बना दिया है।

भ्रातृगण—महाभारत और पुराणों के वर्तमानपाठो में जनमेजय के तीन और भ्राता उल्लिखित है—१. जनमेजयः पारिक्षितः सह भ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रमुपास्ते, तस्य भ्रातारस्त्रयः श्रुतसेन उग्रसेनो भीमसेन इति।[३]

हरिवंशादिपुराणो के अनुसार पार्जीटर ने यह मत खण्डित किया है कि जनमेजय के तीन और भ्राता थे, हमे पार्जीटर का यह मत सत्य प्रतीत होता है।[४] जनमेजय द्वितीय के भ्राताओं के अनुकरण पर यह भ्रान्ति उत्पन्न हुई है। **जनमेजय सन्तति**—यही नहीं, हरिवश में अन्य पुराणो से सर्वथा पृथक् जनमेजय की सन्तति के नाम मिलते हैं—

हरिवंश में	अन्य पुराणों में
१. जनमेजय	जनमेजय
२. चन्द्रापीड और सूर्यापीड	शतानीक
३. सत्यकर्ण	सहस्रानीक
४. श्वेतकर्ण	अश्वमेधदत्त
५. अजपार्श्व[५]	अधिसीमकृष्ण

जनमेजय की पत्नी काशिराज सुवर्णवर्मा की पुत्री वपुष्टमा थी।[६] काश्या वपुष्टमा से पारीक्षित् जनमेजय के दो पुत्र हुये—चन्द्रापीड और सूर्यापीड—

पारीक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ सबभूवतुः।
चन्द्रापीडश्च नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित्॥[७]

---

१. महा० (१/४४/७)
२. प्रा० रा० इ० (पृ० १२—७४),
३. महा० (१/६/१)
४. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० ११३),
५. हरि० (१/१)
६. सुवर्णवर्माणमुपेत्य काशिपं वपुष्टामार्थं वरयाम्प्रचक्रुः (महा० १/४४/८),
७. हरि० (१/१/२),

चन्द्रापीड के सौ पुत्र 'जनमेजय' या 'जानमेजय' कहलाते थे।[१] इनमें सत्यकर्ण ज्येष्ठ था।

सत्यकर्ण का दायाद श्वेतकर्ण हुआ। निपुत्री श्वेतकर्ण वन मे चला गया। तदनन्तर उसकी यादवीपत्नी से वन मे ही अजपार्श्व हुआ[२], उसका लालन-पालन वेमक मुनि की पत्नी ने किया। वेमकी का पुत्र अधिसीमकृष्ण (अजपार्श्व) का सचिव हुआ।

हरिवंश का चन्द्रापीड ही अन्य पुराणो का शतानीक था, सूर्यापीड ही सहस्रानीक होगा, जिसका उल्लेख केवल भागवतपुराण[३] मे ही मिलता है। कथासरित-सागर[४] में भी सहस्रानीक नाम मिलता है।

श्वेतकर्ण का नाम ही अश्वमेघदत्त होना चाहिये। इसके पश्चात् पुत्र अजपार्श्व[५] ही निश्चित रूप से अपरनाम अधिसीमकृष्ण था। इन सबका अधिक विवेचन आगे करेंगे।

जनमेजयसमकालिक प्रसिद्धव्यक्ति—महाभारत के अनुसार महाराज जनमेजय के समकालिक प्रमुख व्यक्ति थे—नागराजतक्षक, वासुकि, जरत्कारु, आस्तीक, श्रुतश्रवा, सोमश्रवा, उतंक, राजा पौस्य, काश्यप ब्राह्मण, वैशम्पायन, चण्डभार्गव, कौत्स आर्य वृद्धऋषि जैमिनी, पिंगल, शार्ङ्गरव, उग्रश्रवा सौति, शौनक (मुण्डक) श्वेतकेतु, इत्यादि। पाराशर्य व्यास ने भी जनमेजय से एकाधिकबार भेंट की और वे उसके सर्पसत्र मे भी उपस्थित थे।[६]

---

१. हरि० (१/१/४),

२. श्रविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः। (हरि० ३/१/१२)

(ख) वायु० (९९/२४९—२५०),

३. भाग० (९/२३/३९)

४. कथासरित्सागर)

५. हरि० (३/१/१८),

६. सदस्यश्चाभवद् व्यास. पुत्रशिष्यसहायवान् (महा० १/५२/७) व्यासपुत्र शुक उस यज्ञ के समय जीवित नही था, महाभारत के इस भ्रामकपाठ के आधार पर पं० भगवद्दत्त ने लिखा हैं—व्यास भी अपने पुत्र शुक के साथ वहीं विराजमान थे; (भा० वृ० इ० भाग० पृ २२८), शुक का ऊर्ध्वलोक (ब्रह्मलोक) गमन भारतयुद्ध से पूर्व हो चुका था, यह तथ्य शान्तिपर्व शुकाभिप्रश्न से प्रमाणित है। इसी प्रकार परीक्षित् को शुक द्वारा भागवतश्रावण भी अनैतिहासिक कल्पनामात्र ही है।

राज्यकाल और मृत्यु—अश्वमेधयज्ञ में हरिवंश के अनुसार जनमेजय की पत्नी वपुष्टमा से अर्व्वसु ने व्यभिचार किया, जिससे उससे ब्राह्मणों का संघर्ष हुआ।[1] इसका संकेत युगपुराण[2] और अर्थशास्त्र[3] में है। इससे पूर्व के अनेक जनमेजय भी ब्राह्मणों से संघर्ष द्वारा निधन को प्राप्त हुए। इससे पुराणों में यत्र-तत्र भ्रान्ति भी हुई तथा नामराशि एवं ज्योतिषविज्ञान की पुष्टि होती है कि एक नाम के व्यक्तियों का भविष्य लगभग समान होता है।

जनमेजय का राज्यकाल 'सत्यार्थप्रकाश' में ८४ वर्ष ३ मास १३ दिन लिखा है। उसने निश्चय ही ५० या ६० वर्ष के मध्य राज्य किया होगा। उसकी आयु ही ८५ वर्ष होगी।

शतानीक प्रथम—हरिवंश (३/१/४) में जनमेजय के दायाद का नाम चन्द्रापीड लिखा है, जो अन्य पुराणों का शतानीक था। शतानीकप्रथम और उदयन के पिता शतानीक द्वितीय के सम्बन्ध में, नाम साम्य के कारण कुछ भ्रान्तियां मिलती है, जिसका उल्लेख आगे होगा।

कृपाचार्य, याज्ञवल्क्य[4] और शौनक[5], शतानीक के गुरु थे। इनमें कृपाचार्य निश्चय ही दीर्घजीवी थे, जैसा कि पुराणों मे विख्यात है। याज्ञवल्क्य और शौनक गोत्रनाम हैं, अतः यह निर्णय तथ्याभाव मे नहीं किया जा सकता कि युधिष्ठिर समकालिक याज्ञवल्क्य वाजसनेय यहाँ अभिप्रेत है या उसका कोई वंशज, यही शौनक के सम्बन्ध में मन्तव्य है।

शतानीक अपर नाम चन्द्रापीड की पत्नी कोई विदेह राजकुमारी थी, जिसका पुत्र अश्वमेधदत्त हुआ।[6] शतानीक का राज्यकाल दीर्घ होगा, परन्तु वह अज्ञात है।

सूर्यापीड=सहस्रानीक—भागवत और कथासरित्सागर (६/१/१) के अतिरिक्त इसका अन्यत्र नाम नहीं मिलता। सहस्रानीक का राज्यकाल या तो स्वल्प होगा या यह यह किसी अन्य प्रदेश का शासक होगा।

श्वेतकर्ण=अश्वमेधदत्त—इसको शतानीक (=चन्द्रापीड) का पुत्र बताया गया है, इसको पं० भगवद्दत्त ने जनमेजय का पुत्र माना है, जो निश्चय ही भ्रान्ति है—

---

१. हरि० (३/५ अ०)
२. दारविप्रकृतामर्षः कालस्य वशमागतः (युगपु०)
३. अर्थ० (अ० ६)
४. विष्णु० (४/२१/४)
५. मत्स्य० २५/४, ५
६. ब्रह्मा० (१/६५/८६)

शतानीकस्य वैदेह्यां पुत्र उत्पन्नोऽश्वमेधदत्त इति (महा० १/६५/८६),
पुत्रोऽश्वमेधदत्तोऽभूच्च शतानीकस्य वीर्यवान् । (पुराणटैक्सट, पृ०४),

अतः इसको पण्डितजी ने जनमेजय का पुत्र किस आधार पर माना यह अबोधगम्य है ।[१] 'सत्यार्थप्रकाश' में इसका राज्यकाल ८२ वर्ष ८ मास और २२ दिन लिखा है ।

अजपार्श्व = अधिसीमकृष्ण = श्वेतकर्ण (शंकुकर्ण[२] = अश्वमेधदत्त) के पुत्र अजपार्श्व का ही अपर नाम अधिसीमकृष्ण था । इस सम्बन्ध में हरिवंश (३/१ १३-१४) के निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं—

अजश्यामौ तु पार्श्वौ तावुभावपि समाहितौ ।
तथैव तु समारूढौ अजपार्श्वस्ततोऽभवत् ।।

"उस बालक के दोनो पार्श्व अज (बकरे) के समान काले थे । और इसी रूप में वे हृष्ट-पुष्ट हुये, अतः वह 'अजपार्श्व' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।" यही अजश्यामपार्श्व (अजपार्श्व) ही अधिसीमकृष्ण का पर्याय है ।

इसी अधिसीमकृष्ण के राज्यकाल मे नैमिषारण्यवासी शौनकादि ऋषियो का त्रिवर्षीय दीर्घसत्र सम्पन्न हुआ था ।[३] यह दीर्घसत्र कलिसंवत् २७८० वि० पू० में हुआ था । युधिष्ठिर राज्यकाल से २६४ वर्ष पश्चात् या भारतयुद्ध से ३०० वर्ष पश्चात् ।

समकालिक ऋषिगण—अधिसीमकृष्ण के समकालिक प्रसिद्ध ऋषिगण थे— पैप्पलाद[४], शौनक, कौशिक[५], आश्वलायन[६], कात्यायन[७], बौधायन[८] इत्यादि । उग्रश्रवा सौति इस समय पर्यन्त जीवित थे, इस समय उनकी आयु ३०० वर्ष से अधिक थी ।

कात्यायन एक गोत्र नाम था, जो विश्वामित्रपुत्र कत द्वारा प्रवर्तित हुआ अष्टादशयुग (परिवर्त ७५०० वि० पू०) मे, अतः कात्यायन नाम के अनेक पुरुष

---

१. पं० भगवद्दत्त चन्द्रापीड, श्वेतकर्ण, अजपार्श्व से शतानीक आदिका ऐक्य नहीं जान पाये ।
२. महा० (१/६५) हरिवंश० (१/३) और पुराणपाठों से उनका ऐक्य स्पष्ट है ।
३. वायु० (९९/२५८-५९)—अधिसीमकृष्णो धर्मात्मा सांप्रतोऽयं महायशा, इत्यादि ।
४. प्रश्नोपनिषद् में उल्लिखित और अथर्ववेद की पैप्पलादशाखा के प्रवर्तक
५. आथर्वण कौशिकसूत्र के रचयिता ।
६. आश्वलायनगृह्यसूत्र के प्रणेता
७. कात्यायनश्रौतसूत्रप्रणेता
८. प्रसिद्ध बौधायनसूत्रप्रणेता

विभिन्न युगो में हुए। वैयाकरण (वार्तिककार) कात्यायन, इस कल्पसूत्रकार कात्यायन से सर्वथा अर्वाचीन पृथक् और नन्दकाल का व्यक्ति था। इस कात्यायन वररुचि और पाणिनि पर नन्दप्रकरण मे विचार करेंगे।

शौनक इस समय का प्रधान विद्वान् था।[1] लोमहर्षणसूत के षट् प्रसिद्ध पुराणकार शिष्य भी इसी समय हुये (१) सुमति आत्रेय (२) अकृतव्रण काश्यप (३) अग्निवर्चा भारद्वाज (४) मित्रयु वासिष्ठ (५) सावर्णि सौमदत्ति और (६) सुशर्मा शांशापायन[2]; स्पष्ट है पाराशर्यकृतपुराणसंहिता चतुःसहस्रात्मिका और शतकोटिप्रविस्तरपुराणवाङ्मय के सार के आधार अष्टादशपुराण इसी समय रचे गये। व्यास, लोमहर्षण, उग्रश्रवा और सुमति आत्रेय आदि विद्वान् उक्त पुराणों के रचयिता थे।

मागध बार्हद्रथ सेनाजित् के समान अधिसीमकृष्ण का राज्यकाल भी लगभग ५० वर्ष का होगा, तदनुसार उसका राज्यकाल २८०० वि० पू० से २७५० वि० पू० पर्यन्त अनुमानित है।

८. निचक्षु—अधिसीमकृष्ण के पुत्र निचक्षु के राज्यकाल में गांगेय जलप्लावन में हस्तिनापुर के बह जाने के कारण पौरवो ने अपनी राजधानी वत्सजनपद में कौशाम्बी (इलाहाबाद के निकट कोसम ग्राम) मे बसाई जो इस वंश के अन्तिम राजा नन्दकालीन क्षेमकपर्यन्त उनकी राजधानी रही।

आठवें निचक्षु से पचीसवें राजा वसुदान[3] तक का न तो राज्यकाल, न कोई घटनाक्रम आदि कही पुराणादि में उल्लिखित है। तथापि इस ग्रन्थ मे केवल वंशो और राज्यकालो पर विचार करना है, घटनाक्रम का उल्लेख हमारा यहा उद्देश्य नहीं है। विभिन्न व्यक्तियो की समकालिकता प्रदर्शित करने हेतु केवल अनिवार्य घटना का संकेतमात्र ही करेंगे।

अतः अनुमानतः निचक्षु का राज्यकाल २७५० मे से २७०० वि० पू० होना चाहिए।

सहस्रानीक द्वितीय = वसुदान—पुराणोक्त वसुदान का नाम भासकृत प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणनाटक में सहस्रानीक मिलता है, यह बृहत्कथाजन्यभ्रान्ति है या सत्य, कहा नही जा सकता। यदि सत्य है तो इसको सहस्रानीक द्वितीय पौरव कहना चाहिये।

---

१. महा. (१/१४/५-६)
२. वायु० (६/१५५-६१)
३. पाण्डव (पौरव) वंशावली, पूर्वपृष्ठ (४) पर लिखित है।

शतानीक द्वितीय—वसुदान के पुत्र का नाम शतानीक था, जो निश्चय ही इस वंश का द्वितीय शतानीक था। यह जैन तीर्थंकर महावीर और गौतम बुद्ध के समकालिक था। इस सम्बन्ध में हम पं० भगवद्दत्त से पूर्ण सहमत हैं कि महावीर और बुद्ध का समय कलि या भारतयुद्ध से लगभग १३०० वर्ष पश्चात् था।[1] बुद्ध से प्राय: दो शतीपूर्व विशाखयूप के राज्यकाल में कल्कि का अवतार हुआ था, ११०० कलिसम्वत् के निकट। अत: कल्कि और बुद्ध में दो शती का अन्तर था। अत: शतानीक का समय (राज्यकाल) अनुमानतः १८०० वि० पू० से १७५० वि० पू० में था।

उदयन वत्सराज—शतानीकपुत्र उदयन की इतिहास मे ख्याति वत्सराज के नाम से है। इसके चरित्र पर संस्कृत में राम और कृष्ण के पश्चात् सर्वाधिक नाटक और काव्य लिखे गये, इससे इसका यश एवं लोकोत्तरचरित्र स्पष्ट होता है।

प्रसिद्ध वैशालीनरेश चेटक की पुत्री मृगावती उदयन की माता थी[2], इसीलिये उदयन को वैदेहीपुत्र कहा जाता था।[3] पं० भगवद्दत्त ने गुणाढ्यकृत बृहत्कथा के आधार पर रचित बृहत्कथामंजरी, बृहत्कथाश्लोक एवं कथासरित्सागर में शतानीक, और सहस्रानीक सम्बन्धी भ्रान्तियों का उल्लेख किया है, इस सम्बन्ध हैं हमारा पण्डितजीसे ऐकमत्य है कि "यह मृगावती अयोध्यापति कृतवर्मा की कन्या नही हो सकती।[4]"

उदयन के समकालिकव्यक्ति—महावीर, गौतमबुद्ध, यौगन्धरायण, मगधराज अजातशत्रु शैशुनाग, अवन्तिराज चण्डप्रद्योत, पांचालराज आरुणि[5]।

उदयनसमयसम्बन्धी समस्या—उदयन का समय कलि की त्रयोदशीशती (१७०० वि०पू०) निश्चित है, तथापि भासकृतनाटको एवं बौद्धवाङ्मय मे उदयन के समकालिक व्यक्तियो के सम्बन्ध में किंचित् भ्रान्ति है जिसका उल्लेख पं० भगवद्दत्त ने किया है कि बौद्धग्रन्थो के अनुसार उदयन अजातशत्रु का समकालिक था, परन्तु संस्कृतकाव्यो में उसे अजातशत्रुपुत्रदर्शक का समकालिक लिखा है।[1] पं० भगवद्दत्त का अनुमान है कि वासवदत्ता के विवाह के तीनचारवर्ष पश्चात् उदयन का पद्मावती से विवाह हुआ (होगा), हमें यही अनुमान भ्रान्ति का मूल प्रतीत होता है। इस समस्या का समाधान इस ऐतिहासिक तथ्य में है (जिसका उल्लेख भासनाटको में है) कि पद्मावती दर्शक की भगिनी थी। हमारा दृढ़ मत है कि उदयन का

१. भा० बृ० इ० भाग० २; पृ० २४३;
२. प्रबन्धकोश (पृ० ८६)
३. द्र० स्वप्नवासवदत्ता
४. भा० बृ० इ० भाग २; (पृ० २४६)
५. वही (पृ० २४६)

पद्मावती से विवाह, वासवदत्ता के विवाह के पन्द्रह सोलहवर्षपश्चात् हुआ, जबकि उदयनपुत्र नरवाहनदत्त का जन्म हो चुका था। पद्मावती के विवाह के समय दर्शक मगध का राजा नहीं, केवल युवराज होगा जिस प्रकार चण्डप्रद्योतने अपने ज्येष्ठपुत्र गोपालक द्वारा वासवदत्ता का विवाह कराया, उसी प्रकार युवराजदर्शक ने अपनी भगिनी पद्मावती का विवाह कराया। नाटक में प्रत्येक तथ्य का वर्णन अनिवार्य नहीं है, विवाह के समय दर्शक का पिता अजातशत्रु जीवित था। अतः हमारी सम्मति में यह कोई समस्या नहीं हैं, वस्तुतः उदयन अजातशत्रु के समकालिक राजा ही था, क्योंकि जिस प्रकार उदयन के पिता शतानीक को चेटक की पुत्री विवाहित थी, उसी प्रकार चेटक की पुत्री चेल्लणा बिम्बसार को ब्याही थी। अतः उदयन, बुद्ध और मगधराज अजातशत्रु के समकालिक था। यदि कोई भ्रान्ति है तो वह भास की होगी, बौद्धग्रंथों में ही यथावत् तथ्य का उल्लेख है। अतः हमे भासादि के कथनों में, बौद्ध ग्रन्थों के वर्णन से कोई विरोधाभास प्रतीत नहीं होता।[1]

उदयन का समय—अतः उदयन का समय अजातशत्रु एवं गौतमबुद्ध के समकालिक १२६० कलिसंवत् से १३२० कलिसंवत् के मध्य था। अर्थात् १७८४ वि०पू० से १७२४ वि०पू० के मध्य।

वहीनर-नरवाहनदत्त—उदयनपुत्र का नाम पुराणो मे वहीनर और बृहत्कथादि में नरवाहनदत्त या नरवाहन मिलता है, यह बृहत्कथा का प्रमुखनायक था, इसकी एक पत्नी का नाम था मदनमञ्जुका।[2]

नरवाहन (वहीनर) का पुत्र हुआ दण्डपाणि और इसका पुत्र हुआ राजा निरामित्र।

क्षेमक-अन्तिमराजा—पुराणो के अनुसार क्षेमक पौरव(पाण्डव)वंश का अन्तिम राजा था, इसके साथ ही वंश का राज्य समाप्त हो गया—

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ।[3]

पुराणों से आभास होता है कि पाण्डववंशी क्षेमक का अन्त सर्वक्षत्रान्तकृत् नन्द के द्वारा हुआ। पार्जीटर के गरुडपुराण के एक पाठके आधार पर प्रतीत होता

---

१. द्र० प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं वासवदत्तानाटक तथा कथासरित्सागर, बृहत्कथामंजरी एवं बृहत्कथाश्लोक तथा बौद्धग्रन्थ इत्यादि।

२. यथा बृहत्कथायां नरवाहनदत्तस्य मदनमञ्जुकायानुरागः (दशरूपक, धनिक पृ० ६०)

३. पुराणटैक्सट् (पृ० ८)

है कि एक शूद्र राजा (संभवतःनन्द) और उसके पुत्र शूद्रराजा (वृषल-मौर्य) ने राज्य किया—ततः शूद्रपितापूर्वस्ततस्सुतः।[1]

नन्द का समकालिक होने से क्षेमक का समय १५४४ वि०पू० से १५०० वि० पू० के मध्य होना चाहिये।

ऐक्ष्वाकवंश (अयोध्या में)

पुराणो में बृहद्बलपुत्रबृहत्क्षत्र से सुमित्रपर्यन्त केवल २६ ऐक्ष्वाक राजाओ के नाम मिलते हैं। परन्तु पुराणपाठ में इनकी सख्या २४ मात्र कही गई है—

'ऐक्ष्वाकाश्चतुर्विंशत्'[2]

परन्तु पुराणो में इनकी संख्या ३० मिलती है। इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त एवं सीतानाथप्रधान का मत उचित प्रतीत नही होता कि कुशलव के पश्चात् श्रावस्ती की ऐक्ष्वाकवंशावली अयोध्या की वशावली मे सम्मिलित कर दी गई। उपर्युक्त पुराणपाठ की २४ संख्या का कारण यही है कि वे सभी अयोध्या के राजा थे। हाँ चार राजाओ शाक्य, शुद्धोदन, सिद्धार्थ और राहुल का नाम जोड़ना पुराणो की त्रुटि है क्योंकि ये चारो ही अयोध्या के राजा नहीं थे, केवल उनका वंश ऐक्ष्वाक था। अतः ऐक्ष्वाकवंश के २४ राजा ही अयोध्या के शासक मूलपुराण मे परिगणित होगे, जिनका क्रम इस प्रकार था—

१. बृहत्क्षत्र	१४. अन्तरिक्ष
२. उरुक्षय	१५. सुषेण (सुपर्ण)
३. वत्सव्यूह	१६. अमित्रजित्
४. प्रतिव्योम	१७. बृहद्रण
५ दिवाकर	१८. धर्मी
६. सहदेव	१९. कृतञ्जय
७. बृहदश्व	२०. रणञ्जय
८. भानुरथ	२१. सञ्जय[1]
९ प्रतीताश्व	२२. प्रसेनजित्
१०. सुप्रतीक	२३. क्षुद्रक
११. मरुदेव	२४. कुलक
१२. सुनक्षत्र	२५. सुरथ
१३. किन्नराश्व (परंतप)	२६. सुमित्र

---

१. वही पृ० ८ टिप्पणी।

२. वही (पृ० २३)

दिवाकर—इनमें दिवाकर अधिसीमकृष्ण पाण्डव और मागध बार्हद्रथ सेनाजित् समकालिक थे, यह पूर्व लिखा चुका है और उनका समय २८०० वि०पू० से २७५० वि०पू० के मध्य था।

किन्नराश्व-परंतप—पं० भगवद्दत्त ने तेरहवें राजा किन्नराश्व को कौटिलीय अर्थशास्त्र एवं हर्षचरित[1] के आधार पर परंतप माना है, जैसाकि पुराणों में भी उसका यह विशेषण मिलता है—किन्नराश्वः सुनक्षत्राद् भविष्यति परंतपः॥ (पुराणपाठ, पृ० १०), परंतप का अनुजीवी अर्थशास्त्रकार कणिक भारद्वाज था—

कोसलेषु किल परंतपस्य राज्ञोऽनुजीवी कणिको नामार्थशास्त्रविचक्षण आसीत् (अर्थ० अ० ६५) इसी परंतप का वध रत्नवती ने दर्पणक्षुरधारा से कर दिया था, ऐसा हर्षचरित में बाणभट्ट ने लिखा है।[2]

संजय-महाकोसल—यह इक्कीसवां राजा प्रतापी था, संभवत: इसने विशाल कोसलराज्य की स्थापना की जिससे इसका द्वितीय नाम बौद्धग्रंथों में महाकोसल मिलता है।

पुराणपाठत्रुटि—संजय के नाम के अनन्तर पुराणपाठ में उल्लेखनीय त्रुटि की हुई है जहां शाक्यादि चार नाम जोड़े गये हैं जो अयोध्या के राजा नहीं थे—

संजयस्य सुतो शाक्यः शाक्याच्च शुद्धोदनोऽभवत्।
शुद्धोदनस्य भविता सिद्धार्थो राहुलः सुतः॥

इनमें सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) और राहुल का कभी राज्याभिषेक ही नहीं हुआ, अतः उन्हें ऐक्ष्वाकराजवंशावली में सम्मिलित करना महती त्रुटि है। राहुल का उत्तराधिकारी या पुत्र प्रसेनजित् को बनाना महान् त्रुटि है।

प्रसेनजित्—इस सबन्ध मे पं० भगवद्दत्त का यह अनुमान सत्य ही प्रतीत होता है—"सञ्जयपुत्र प्रसेनजित् प्रतीत होता है। यह भी सभव है कि संजय और प्रसेनजित् के मध्य कई नाम लुप्त हों। प्रसेनजित् भगवान बुद्ध का समकालिक और उनसे उपदेश ग्रहण करनेवाला था। विनयपिटक मे प्रसेनजित् के पिता का नाम ब्रह्मदत्त लिखा है।" (भा० वृ० इ० भा २ पृ० २३७)। प्रसेनजित् के समय ऐक्ष्वाक राजाओं की राजधानी श्रावस्ती (बस्तीजिला) थी। यह भी एक समस्या है, जिसका समाधान प्रमाणाभाव में दुष्कर है—

---

१. एक कणिक भारद्वाज धृतराष्ट्र कौरव का उपदेष्टा था (महा० आदि०) अतः कणिक भारद्वाज नाम के एकाधिक अर्थशास्त्री हुए थे।

२. हर्षचरित यहां बाक्य के स्थान पर आक्ष्याम् पाठ वांछित है।

३. बोधिसत्वस्य जन्मकालसमये चतुर्महानगरेषु चत्वारो महाराजा अभूवन्। ....श्रावस्त्यां ब्रह्मदत्तस्य पुत्रः। (इ० हि० क्वा० जून १९३८ पृ० ४१३)

बुद्ध के समकालिक होने से प्रसेनजित् का समय निश्चित है—१२५० कलि-संवत् से १३०० कलिसंवत् या १८४६ वि०पू० १७६४ वि०पू० के मध्य।

क्षुद्रक-विडूडभ—पुराणों का क्षुद्रक और बौद्धग्रन्थों का विडूडभ एक ही प्रतीत होता है, क्योंकि उभयीपरम्परा में इसे प्रसेनजित् का पुत्र कहा है। पितृद्रोह सदृशहीन कर्म के कारण पुराणों में उसे क्षुद्रक कहा है। क्षुद्रक के पश्चात् कुलक और सुरथ क्रमशः ऐक्ष्वाक राजा हुये।

सुमित्र—सुरथ का पुत्र सुमित्र ऐक्ष्वाकवंश का अन्तिम राजा था।[1] यह संभावना है कि कालिदास ने रघुवंश के पच्चीसवें सर्ग में सुमित्रपर्यन्त राजाओं का वर्णन किया हो। इनसर्गों की उपलब्धि एक महान् ऐतिहासिक घटना होगी।

सुमित्र शैशुनागवंश के अन्तिम राजा महानन्दी या उसके पुत्र महापद्मनन्द के समकालिक होगा, जिसका समय १५०० कलिसंवत् या १५४४ वि०पू० (राज्याभिषेक) था। यही सुमित्र का समय समझना चाहिये।

बार्हद्रथ मागधवंश

बाईस राजा-प्रधान राजगण—यह पूर्ण संभव है कि जरासन्धपुत्रसोमाधि से रिपुञ्जयपर्यन्त २२ बार्हद्रथ राजा केवल प्रधान हों और अल्पकालिक या अप्रसिद्ध कुछ राजाओं के नाम छोड़ दिये हों। तथापि पुराणों में इस समय सर्वप्रथम इन्हीं राजाओं का यथार्थ राज्यकाल लिखा है, इससे यह भी प्रकट होता है कि भारतयुद्ध के कुछ शतियों पश्चात् भारत के प्रधान राजा मागध बार्हद्रथ हो गये और इनका महत्त्व और प्रभाव सर्वाधिक था। इनके नाम और राज्यकाल इस प्रकार हैं—

	नाम	राज्यकाल	समय वि०पू०
१.	सोमाधि	५८ वर्ष	३०८० वि०पू० से ३०३० वि०पू०
२.	श्रुतश्रवा	६४ ,,	३०३० वि०पू० से २९६६ वि०पू०
३.	अयुतायु	३६ ,,	२९६६ वि०पू० से २९३० वि०पू०
४.	निरामित्र	४० ,,	२९३० वि०पू० से २८९० वि०पू०
५.	सुक्षत्र	५८ ,,	२८९० वि०पू० से २८३२ वि०पू०
६.	बृहत्कर्मा	२३ ,,	२८३२ वि०पू० से २८०९ वि०पू०
७.	सेनाजित्	५० ,,	२८०९ वि०पू० से २७५९ वि०पू०

---

१. अत्रानुवंशश्लोकोऽयम् विप्रैः गीतो पुरातनैः।
इक्ष्वाकूणामयं वंशो सुमित्रान्तो भविष्यति ॥
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ (वायु० ९९ २९/२)

८.	श्रुतञ्जय	४० ,,	२७५६ वि०पू० से २७१६ वि०पू०
९.	विभु	३५ ,,	२७१६ वि०पू० से २६८४ वि०पू०
१०.	शुचि	५८ ,,	२६८४ वि०पू० से २६२६ वि०पू०
११.	क्षेम	२८ ,,	२६२६ वि०पू० से २५९८ वि०पू०
१२.	सुव्रत	६४ ,,	२५९८ वि०पू० से २५३४ वि०पू०
१३.	धर्मनेत्र	३५ ,,	२५३४ वि०पू० से २४९९ वि०पू०
१४.	निर्वृति	५८ ,,	२४९९ वि०पू० से २४४१ वि०पू०
१५.	त्रिनेत्र	३८ ,,	२४४१ वि०पू० से २४०३ वि०पू०
१६.	दृढसेन	५८ ,,	२४०३ वि०पू० से २३४५ वि०पू०
१७.	महिनेत्र	३३ ,,	२३४५ वि०पू० से २३१२ वि०पू०
१८	सुचल	४० ,,	२३१२ वि०पू० से २२८२ वि०पू०
१९	सुनेत्र	४० ,,	२२८२ वि०पू० से २२४२ वि०पू०
२०.	सत्यजित्	८३ ,,	२२४२ वि०पू० से २१५९ वि०पू०
२१.	वीरजित्	३५ ,,	२१५९ वि०पू० से २१२४ वि०पू०
२२.	रिपुञ्जय	५० ,,	२१२४ वि०पू० से २०७४ वि०पू०
	योग	१०२४ वर्ष	

पार्जीटर की गणनासम्बन्धी महाभ्रान्ति—पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि सोमाधि से रिपुञ्जयपर्यन्त २२ बार्हद्रथ राजाओं ने १००० (या १०२४) वर्ष राज्य किया।[1] परन्तु पार्जीटर ने अपनी पाश्चात्य अविश्वसनीयता एवं संदिग्धता की प्रवृत्ति के आधार पर अत्यन्त भ्रामक लेख लिखा और अवाछित भ्रम उत्पन्न करने का प्रयत्न किया—"These were thus 32 kings altogethar, 10 before the battle and 22 after ; or from the standpoint of Senajit's reign, 15 past and 16 further . . from the beginning and speak of all the 32 kings as future since most of them were posterior the battle and thus they say the whole dynasty lasted 1000 years ... They assign 723 years to the last 16 kings and only 277 to the first 16. The total of 1000 years for 32 kings is excessive and that of 723 years for 16 kings is absurd "[2]

१. द्वाविंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः ।
पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ॥ (पुराणपाठ पृ १७),

२. वही पृ० १३;

उपर्युक्त कथन मे पार्जीटर ने बिना प्रमाण के अनेक अप्रमाणिक कल्पनायें की है। (१) प्रथम भ्रम यह है कि १००० वर्ष ३२ राजाओ का राज्यकाल नहीं केवल २२ राजाओं का राज्यकाल था। (२) द्वितीय बृहद्रथ से जरासन्ध तक के १० राजाओ को पुराणो में भविष्य का राजा नहीं बताया गया, वे दश राजा भारतयुद्ध से पूर्व हो चुके थे, अत यह पार्जीटर की निजी अयोग्यता या भ्रष्ट कल्पना है जिसका पुराणो में कोई उल्लेख नहीं। (३) तृतीय १६ राजाओं का राज्यकाल पुराणो मे ७२३ वर्ष अधिक नही। (४) जब पुराण मे प्रत्येक राजा का राज्यकाल पृथक् लिखा है, तब निजी कल्पना के लिए स्थान ही नहीं रहता। इतिहास[1] (इति+ह+आस = ऐसा निश्चय ही हुआ था) की परिभाषा के अनुसार इतिहास मे निजी कल्पना का कोई स्थान नही है। अतः हमने सर्वत्र पुराणप्रमाण के ही आधार पर सर्वत्र राजाओं का राज्यकाल या ऋषियों का आयुष्य लिखा है। पार्जीटर की प्रथम कल्पना ही भ्रष्ट है कि यह १००० वर्ष ३२ राजाओं का राज्यकाल था, जबकि पुराण मे स्पष्ट लिखा है—"द्वाविंशच्च नृपा ह्येते' जब २२ राजाओं के नाम और उनका राज्यकाल दिया है जिनका योग १०२४ वर्ष, उसके 'द्वात्रिंशच्च' पाठ कैसे बनाया जा सकता था। जरासंघ और उसके पूर्व के १० राजा बार्हद्रथ राजा भारतयुद्ध से पूर्व हुये थे और उनका समय हमने सप्रमाण अन्यत्र लिखा है। प्रतीप कौरव के समकालिक बृहद्रथ भारतयुद्ध से एक युग ३६० वर्ष पूर्व हुआ था, अत. ३२ राजाओं का राज्यकाल १४०० वर्ष था, जब किसी राजा ने ८३ वर्ष[2] तक राज्य किया जैसा कि पुराण मे लिखा है। तब ४२ या ४५ औसत राज्यकाल को सर्वथा उचित ही कहा जायेगा, इसमे कुछ भी अनौचित्य नही। इस तथ्य को भारतीय विद्वान् सम्यक् समझ सकता है। संशयज्ञानयुक्त अविश्वासी पाश्चात्य लेखक नही समझ सकता। अत: ३२ बार्हद्रथो का राज्यकाल १००० वर्ष नही, १४०० वर्ष था और भविष्य के २२ राजाओ का राज्यकाल १००० वर्ष था। पुराणों के ऐसे सप्रमाण कथनो पर अविश्वास करके कल्पना से इतिहास लिखा ही नही जा सकता। पाश्चात्यो (रैप्सन आदि) एव तदनुयायी अल्तेकर, मजूमदार, पुसाल्कर, रायचौधुरी इत्यादि के ग्रन्थ सच्चे इतिहास नही, भ्रमो के शतपिटक है।

पार्जीटर ने निम्न श्लोक के आधार पर भी भ्रम उत्पन्न किया है—

षोडश एते नृपा ह्यं ते भवितारो बृहद्रथाः।
त्रयोविंशाधिकं तेषां राज्यं च शतसप्तकम्॥

---

१. इति हैवमासीदिति कथ्यते स इतिहास (बृहद्दे०)

२ सत्यजित् पृथ्वीं राजा त्र्यशीति भोक्ष्यते समा.। (पुराणपाठ, पृ० १७),

वैसे तो जरासंधपुत्र सोमाधि से आगे के सभी राज्य भविष्यकालिक थे, जैसा कि पुराणपाठ में २२ राजाओं को ऐसा माना ही है तथापि उपर्युक्त पाठ में केवल १६ राजाओं को भविष्यकालिक मानने का कारण यह था कि बार्हद्रथ राजा सेनाजित् के राज्यकाल के ३.वें वर्ष में वर्तमान पुराणपाठ बनाया गया, अतः पुराणग्रन्थरचना (२८०० वि०पू०) काल के पश्चात् होने वाले १६ राजा ही पुराणकर्त्ता की दृष्टि में भविष्यकालिक थे जैसा कि प० भगवद्दत्त ने लिखा है—(१) भारतयुद्ध के अन्त से इस समय तक ७ मगधराजाओं ने २६० वर्ष राज्य किया''' कलिसंवत् २५३ में पुराणसंकलन हुआ।[1] "अतः पुराणकर्त्ता की दृष्टि में २५३ कलिसंवत् के पश्चात् होनेवाले १६ बार्हद्रथ राजा भविष्यकालिक थे।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से पार्जीटरसृष्ट भ्रम नष्ट हो जाना चाहिये, जो प्रायः अनभिज्ञों या अल्पज्ञों को हो जाता है।

अन्य समकालिक राजवंश

२७ **पांचाल राजा**—प० भगवद्दत्त ने भारतवर्ष के बृहद् इतिहास भाग २ अध्याय ४२ में (पृ० २५५ से २५७) तक पांचालादि जिन समसामयिक राजाओं का प्राचीन वाङ्मय के आधार पर उल्लेख किया है उससे अधिक ज्ञान इन राजवंशों के विषय में नहीं हो सका है और न उनका समयादि ही निश्चित ज्ञात होता है।

भास के नाटकों में एकमात्र वत्सराज उदयन समकालिक (१७२८ वि०) पांचालराज आरुणि के अतिरिक्त अन्य किसी पांचालराज का नाममात्र ज्ञान नहीं है।

२८ **काशेय**—प० भगवद्दत्त ने लिखा है कि जनमेजय पारीक्षित् (तृतीय) समकालिक काशिराज सुवर्णवर्मा, (२६०० वि०पू०) और जयवर्मा समकालिक थे।

अश्वसेन का समय—तदनन्तर दीर्घकाल के अनन्तर काशिराज अश्वसेन का नाम मिलता है, जो तेइसवें जैनतीर्थंकर पार्श्वनाथ के पिता थे। जैनग्रन्थों में पार्श्वनाथ का समय महावीर से २५० वर्ष पूर्व था, महावीर का निर्वाणसमय १७४० वि०पू० के निकट था, अतः काशिराज अश्वसेन का समय २००० वि०पू० से प्रायः अर्धशती पूर्व था।

वत्सराज उदयन के (१७५० वि०पू०) के समकालिक विष्णुसेन, अज्ञात-कालिक महासेन जयसेन आदि राजा हुये।

---

१. भा० बृ०इ० भा० २ पृ० २३४

२८ हैहयराज—मगध में बार्हद्रथों एवं अवन्ति में वीतिहोत्र के अन्तहोने (२०५० वि०पू०) के अनन्तर मागधबालक प्रद्योतादि के प्रायः समकालिक कुछ राजाओं का नाम कथासरित्सागर में मिलता है—यथा महेन्द्रवर्मा, जयसेन, अनन्तनेमि (धृतसेन) और चण्डप्रद्योत (महासेन)।

२० वीतिहोत्रवंश—इनमें चण्डप्रद्योत अपरनाम महासेन मगधराज महापद्म क्षत्रौजा शैशुनाग (१७५० वि०पू०), श्रावस्ती में ऐक्ष्वाक ब्रह्मदत्त (प्रसेनजित् का पिता) प्रथम और कौशाम्बी मे शतानीक द्वितीय का पुत्र उदयन राजा था (विनयपिटक),।

वत्सराजचरिनाटक तथा बृहत्कथा (कथासरित्सागर) के अनुसार चण्ड प्रद्योत के समकालिक निम्न राजा प्रसिद्ध थे—

१. अश्मकराज सञ्जय	२. काशिराज-जयत्सेन
३. अंगराज—जयरथ	४ सिन्धुराज सुबाहु
५. मथुरापति जयवर्मा	६. मगधराज दर्शक
७. मत्स्यराज शतमन्यु	८. पाचालराज आरुणि
९. वत्सराज उदयन[1]	

इनमे सर्वाधिक प्रसिद्ध वत्सराज उदयन था, जिसके चण्डप्रद्योत से सम्बन्ध प्रसिद्ध है कि उसकी पुत्री वासवदत्ता उसकी पत्नी थी।

चण्डप्रद्योत के न्यूनतम तीन पुत्र थे—गोपालक[2], पालक[3] और कुमारसेन[4] इनमें पालक चण्डप्रद्योत का उत्तराधिकारी हुआ, जिसका राज्यकाल ६० वर्ष लिखा है।[5] पर सम्भव है कि इस साठ वर्षों में तीनो भ्राताओं का राज्यकाल सम्मिलित हो।

पालक महावीरनिर्वाण के समय राज्य पर अभिषिक्त हुआ, इनके समकालिक वत्सराज उदयनपुत्र वहीनर (नरवाहनदत्त) प्रसिद्ध चक्रवर्ती था, जिसका समय १७२४ वि० से १६६५ वि० पू० होना चाहिये।

---

१. भा० वृ० इ० भा २, (पृ० २४६)
२. कथासरित्सागर (१६/२/१३)
३. बृ० क० श्लोक (१/८६),
४. हर्षचरित (षष्ठ उच्छ्वास,)
५. गान्धरराज नग्नजित् और वैदेहजनक निमि द्वितीय (३१५० वि० पू०) के समकालिक करकण्डु का उल्लेख जैनउत्तराध्ययनसूत्र में है।

विजयकुल—पालक के साथ ही वंशका उच्छेद हो गया (१६६५ वि० पू०). जैनग्रन्थ त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति के अनुसार पालक के अनन्तर विजयकुल के राजाओं ने १५५ वर्ष राज्य किया।

३२ कालिङ्ग=करकण्डुवंश—भारतयुद्ध से पूर्व से ही कलिंगराज्य में करण्डु या करकण्डु वंश के राजाओं का राज्य था।[1] जैनग्रन्थों में इसीलिये करकण्डु राजाओं के सम्बन्ध में भ्रान्ति प्रतीत होती है। अतः जनकवंश, अश्वपतिवंश, इक्ष्वाकुवंश हैहयवंश इत्यादि के समान करकण्डु भी वंशनाम था। पार्श्वनाथ और महावीर के समय करण्डुवंश का राज्य था, प० भगवद्दत्त ने कलिंग के निम्नराजाओं का नामोल्लेख किया है, भद्रसेन, वीरसेन[2], अनंग[3] दीर्घवाहन[4] इत्यादि जिनका समय अज्ञात है।

२५ अश्मकराजा—इनमें केवल उदयनसमकालिक संजय का नाममात्र ज्ञात है।

२८ मैथिलराजाओं—मे केवल गणपति का नाम हर्षचरित में मिलता है।

२३ शूरसेन राजा—पुराणो में शूरसेनवश के २३ राजाओं की संख्या निर्दिष्ट है, कृष्णवंश की वंशावली कृष्ण, प्रश्व, वज्र, प्रचल प्रतिबाहु और सुचारु की वंशावली पूर्वपृष्ठो पर लिखी जा चुकी है। इनके उत्तरकालीन एक मात्र कीर्तिषेण, सम्भवतः शैशुनागराजा क्षेमवर्मा (कौमुदीमहोत्सव नाटकोल्लिखित कल्याणवर्मा) का समकालिक था। प भगवद्दत्त ने वीणवासवदत्ता मे उल्लिखित जयवर्मा और काव्यमीमासा मे उल्लिखित कुविन्द को इन तेईस राजाओ मे से होने की सभावना व्यक्त की है।[5]

मागधबालकप्रद्योतवंश

२२ बार्हद्रथ राजाओं के सहस्रवर्षात्मकशासन के अनन्तर अन्तिम बार्हद्रथ राजा रिपुञ्जय[5] को मारकर पुलिक, पुलक, मुनिक या शुनक ने अपने पुत्र बालक प्रद्योतो को मगध का राज्य बनाया—

---

१. भा० वृ० इ० भा० पृ० २५६.
२. कलिंगेश्वरभद्रसेनस्य सोदर्यो वीरसेनो
   देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान। (अर्थ० पृ० २०५)
३. यशास्तिलकचम्पू प्राश्वास ३
४. भा० वृ० इ० (पृ० २३८-२३६)
५. भागवत०(१२/१/२) मे पुरंजय और शुनकपाठ हैं भा० वृ० इ० भा० २ (पृ० २५७),

पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति ।

पाठान्तर है—शुनिक. स्वामिनं हत्वा पुत्रं समभिषेक्ष्यति ।[१]

विवादसमाधान—उपर्युक्त मागध प्रद्योतबालक को तथाकथित आधुनिक इतिहासलेखक आवन्त्य चण्डप्रद्योत महासेन मानकर महती भ्रान्ति उत्पन्न करके मागध वंशकालगणना में १३८ वर्ष का अन्तर डालने की घोर धृष्टता करते हैं और अपनी ओर से इस विषय को निर्विवाद मानते हैं जैसा की श्री जयचन्द विद्यालंकार का यह कथन उनके मत का प्रतिनिधित्व करता है—"(पार्जीटर ने) मागधवृतात से अलग रख दिया है। इस सुलझाने पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। यहा तक कि विषय निर्विवाद है।"[२]

उपर्युक्त मत न तो सत्य है और न निर्विवाद है। इस विषय की सत्यता की परीक्षा सर्वप्रथम पं० भगवद्दत्त ने की, उन्होंने रैप्सन[३] आदि के मत का खण्डन करते हुए निम्न छ हेतु दिये है, जिससे सिद्ध होता है कि आवन्त्य प्रद्योत और मागध प्रद्योत बालक सर्वथा पृथक्-पृथक् राजा थे। प० भगवदत्त के छ हेतुओं का सार इस प्रकार है—(१) कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे मागध बालसंज्ञक राजा का मन्त्री दीर्घचारायण था—तृणमिति दीर्घश्चारायण (अर्थ० पृ० ६५)। मन्त्री दीर्घचारायण ने नयवर्जित मागध (प्रद्योत) बालक के कारण मगध राज्य त्याग दिया—

पुलकोद्भव सेव प्रणतसामन्तो भविष्यो नयवर्जित.।[४]

पुलकात्मज बालक प्रद्योत को नयवर्जित (न्यायवर्जित) कहने का यही तात्पर्य है कि उसने मन्त्रिसम्मति की अवहेलना की और मन्त्रिवर्ग को त्याग दिया। अर्थशास्त्र के कथन से मागध प्रद्योत के पृथक् अस्तित्व की पुष्टि होती है।

(२) आवन्त्यप्रद्योत वंशप्रवर्तक राजा नहीं था, जबकि पुलकपुत्रप्रद्योत बालक वंशप्रवर्तक राजा था। निम्न तुलनात्मक विवरण से प० भगवद्दत्त और हमारा मत सुस्पष्टतर होगा।

मागधबालकप्रद्योतवंश	आवन्त्यवंश
१ शुनक या पुलक – बालक प्रद्योत २३ वर्ष राज्य	१. महेन्द्रवर्मा

१ पुराणपाठ (पृ० १८)

२ भारतीय इतिहास की रूपरेखा, पृ० ५९३),

३. कै० हि० प्रथमपाठ पृ० ३१०

४. पुराणपाठ (पृ० १८)

२. पालक—	२४ वर्ष ,,	२. जयसेन = अनन्तनेमि
३. विशाखयूप —	५० ,, ,,	३. चण्डमहासेन
४. सूर्यक—	२१ ,, ,,	४. पालक—६० वर्ष राज्य
५. नन्दिवर्धन	२० ,, ,,	५. अवन्तिवर्धन (कुमारसेन)
	योग १३८ वर्ष	

उपर्युक्त दोनों ही वंशों का कुल, समय और राज्य (जनपद) स्थान पृथक्-पृथक् होने से उनका पार्थक्य स्वयंसिद्ध है। तथापि

(३) मागधप्रद्योत में पाँच राजा थे और अन्तिम राजा नन्दिवर्धन था, जब कि आवन्त्यप्रद्योत का पुत्र पालक अवन्ति का अन्तिम राजा था, जिसका राज्यकाल ६० वर्ष था, नन्दिवर्धन का राज्यकाल २० वर्षमात्र था। अत. अवन्ति मे प्रद्योत और पालक दो ही राजा हुये।

(४) पं० भगवद्दत्त का यह मत सुपुष्ट है कि इस समय पुराणपाठों में केवल मागध राजाओं का राज्यकाल लिखा हुआ मिलता है, अन्य किसी वंश का वर्षमान अनुल्लिखित है। अत. आवन्त्य प्रद्योत को मागध बताना असिद्ध है।

(५) बालक प्रद्योत (मागध) के पिता का नाम पुलिक, पुलक, सुनिक या शुनक था और यह शुनक मन्त्री था, न कि राजा। जबकि अवन्तिराज प्रद्योत का पिता अनन्तनेमि या जयसेन राजा था। अत शुनक (पुलक) और अनन्तनेमि को पृथक्-पृथक् मानने के अतिरिक्त और कोई चारा नही है। इस ऐतिहासिक तथ्य को आधुनिक लेखको को बलात् मानना ही पड़ेगा।

(६) आवन्त्य पालक का राज्यकाल ६० वर्ष था जबकि मागध पालक का राज्यकाल २४ वर्ष था।

पं० भगवद्दत्त के प्रदर्शित उपर्युक्त हेतुओं से हम पूर्ण सहमत है और पुष्टि मे अपने निम्न नवीन प्रमाण और प्रस्तुत करते हैं।

कल्कि, बौद्ध और विशाखयूप—कल्किपुराण के अनुसार कल्कि का जन्म प्राद्योत मगध विशाखयूप के राज्यकाल मे हुआ—

विशाखयूपभूपालः प्रायात् साधुजनप्रिय।
कल्कि द्रष्टु हरेरशमाविर्भूतं शम्भले॥ (कल्कि पु० १/३७)

कल्किजन्म बुद्धनिर्वाण से २६४ वर्ष पूर्व हुआ जिसका विवरण इस प्रकार है

विशाखयूप राज्यकाल ५० वर्ष[1]

---

१. विशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशत समाः (वायु०)

शिशुनाग	४० वर्ष
काकवर्ण	३६ वर्ष
क्षेमवर्मा	३६ ,,
क्षत्रौजा	४० वर्ष
बिम्बसार	३८ वर्ष
अजातशत्रु	८ वर्ष
योग	२८६ वर्ष

प्राद्योत विशाखयूप के राज्यकाल के मध्य अर्थात् २८ वर्ष व्यतीत होने पर कल्कि का जन्म हुआ तो बुद्ध से २६४ वर्ष पूर्व १०४८ वि०पू० कृष्णपरमधामगमन से ठीक एकसहस्रवर्ष पश्चात् कल्कि का जन्म हुआ। इससमय कलियुग के १००० वर्ष समाप्त हो गये थे और कलिसंधि प्रारम्भ हो गई। पुराणों में बहुधा कहा गया है कि कल्कि अवतार के समय कलियुग समाप्त होकर कृतयुग की पुन स्थापना हुई।[1]

कल्कि ने सम्पूर्ण भारत की दिग्विजय की और अनेकविध म्लेच्छों का वध किया। उनका नाम कल्कि विष्णुयशा था और वे पाराशर्यगोत्र के ब्राह्मण थे, उनका पुरोहित याज्ञवल्क्यगोत्रीय था।[2]

कल्कि का उत्थान २५वे वर्ष में हुआ और पच्चीसवर्ष तक ही वह चक्रवर्ती शासक रहे—

पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशतिर्वै समाः।
विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वश ॥ (वायु०)

अत कल्किसम्बन्धी महत्त्वपूर्ण तिथियाँ इस प्रकार हैं—

कल्किजन्म	१००० कलिसवत्	··	२०४४ वि०पू०
उत्थान (कार्यारम्भ)	१०२५ ,,	···	२०१९ वि०पू०
निर्वाण (देहान्त)	१०५० ,,	···	१९९४ वि०पू०

१ पुनः कृतयुगं कृत्वा धर्मान्संस्थाप्य पूर्ववत्।
कलिव्यालि संनिरस्य प्रयास्ये स्वालयं विभो॥ (कल्कि प्र० १/८)

२. कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान्। दशमो भाव्यःसंभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः। गान्धारान् पारदांश्चैव पुलिन्दान्, दरदान् खशान् प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद् बली। (वायु०)

कल्कि और बौद्धमत की प्राचीनता—पच्चीसवें अन्तिम बुद्ध से २६४ वर्ष पूर्वहोनेवाले कल्कि द्वारा जैन और बौद्धविनाश की कथा किस प्रकार संगत हो सकती है, जिसका अन्यपुराणों के साथ कल्किपुराण मे विस्तार से वर्णन है।[1] आधुनिक इतिहासकारों की विपुल भ्रान्तियों में से भी यह एक महती भ्रान्ति है कि बौद्धधर्म के प्रथम प्रवर्तक गौतम बुद्ध थे। सत्य यह है कि बौद्ध इतिहास में ही २५ बुद्धो का उल्लेख है।[2] जिनमे गौतमबुद्ध से पूर्व काश्यप बुद्ध थे और दीपंकरमुनि प्रथम बुद्ध थे। गौतमबुद्ध से पूर्व भी बौद्धधर्म न केवल भारतवर्ष अपितु म्लेच्छ देशो मे भी प्रचलित था, इसकी पुष्टि अलबेरूनी के निम्न वचनो से होती है— प्राचीनकाल मे खुरासान, पर्सिस, इराक, मोसुल, सीरिया की सीमा तक के देश बौद्धधर्मावलम्बी थे। तब आधरबैजान से जरथुस्त्र आगे बढ़ा।[3] आधुनिक इतिहासकार अलबेरूनी के कथन को काल्पनिक ही मानते, परन्तु अब तो पुरातत्व उत्खनन में लगभग २००० वि०पू० की गुहा मे बौद्धभिक्षुसामग्री एवं सिंहस्तूप आदि प्राप्त हुये है। यह सामग्री गुजरात के भडोच जिला तहसील, भगडिया, ग्राम झाजीपुर की कड़ियापर्वतगुहा मे मिली है।[4] यद्यपि श्री पुरुषोत्तमओक की यह धारणा भ्रान्त है कि यह सामग्री गौतम बुद्ध के अनुयायियों की थी। क्योंकि गौतम बुद्ध का प्रभाव सुदूर स्थानो में अशोकमौर्य के समय (१६८४ कलिसंवत् १३६० वि०पू०) ही हुआ। गुजरात मे प्राप्त बौद्धावशेष गौतमबुद्ध से पूर्व काश्यप बुद्ध या नेमिनाथ आदि श्रमणबौद्धजैनादि से सम्बन्धित हो सकते हैं, कल्किपुराण मे इन्ही गौतम बुद्धपूर्ववर्तीजैनबौद्धो से कल्कि के संघर्ष का उल्लेख है।

प्रमुख — राष्ट्र एवं नगरसूची (भारतोत्तरकालीन)

क०सं०	राज्य (जनपद)		राजधानी (नगर)	
	प्राचीननाम	वर्तमाननाम	प्राचीननाम	वर्तमाननाम
१.	कुरु	मेरठ हरियाणा	हस्तिनापुर	हस्तिनापुर
२.	पंचाल	कन्नौज	काम्पिल्य अहिच्छत्रा	कंपिल

१. कल्कि पु० (२।७) तथा—जिन निहतित दृष्टा बौद्धा हाहेति चुक्रुशुः। (वही २/२७)
२. द्रष्टव्य बुद्धघोषकृत निदानकथाग्रन्थ
३. अलेबरूनी का भारत, पृ० ६१;
४. द्रष्टव्य नवभारतटाइम्स ८-१०-१९६८ में गुजरात के उपशिक्षामन्त्री का वक्तव्य और विचारप्रवाह स्तम्भ।

३.	शूरसेन	मथुरा आगरा व्रजमंडल	मथुरा	मथुरा
४.	साल्व	उत्तरी राजस्थान, सिन्धु पंजाब आदि	मार्तिकावत शाल्वपुर	मोहनजोदड़ो अलवर
५.	मत्स्य	जयपुर-राजस्थान	बिराटनगर	वैराट
६.	मागध	बिहार	गिरिव्रज	राजगृह
७.	सिन्धु सोवीर	सिन्ध	रोरुव	रोड़ी
८.	मद्र	उत्तरी पंजाब	शाकल	स्यालकोट
९.	कैकेय	गुजरावाला पंजाब	गिरिव्रज	—
१०.	काम्बोज	अफगानिस्तान प. ईरान	—	—
११.	शिवि	झंग (पंजाब)	शिविपुर	श्येरकोट
१२.	त्रिगर्त	कांगड़ा	प्रस्थल	कपूरथला
१३.	कोसल	बस्ती-फैजाबाद	अयोध्या	अयोध्या
१४.	अंग	भागलपुर	चम्पा	भागलपुर
१५.	कलिंग	उड़ीसा, आदि	दन्तपुर	—
१६.	वंग	बंगाल के कुछ भाग	—	—
१७.	पुण्ड्र	"	—	—
१८.	प्राग्ज्योतिष	असम	प्राग्ज्योतिषपुर	तेजपुर
१९.	विदेह	उत्तरी बिहार, नेपाल	मिथिला	जनकपुर
२०.	करूप	मध्यप्रदेश	—	—
२१.	कुन्ति	कोतवार	गोपालगिरि	ग्वालियर
२२.	अवन्ति	मालवा	उज्जयिनी	उज्जैन
२३.	विदर्भ	हैदराबाद प्रदेश	कुण्डिनपुर	—
२४.	आनर्त	गुजरात	द्वारका	द्वारका
२५.	महिष	बम्बई प्रदेश	माहिष्मती	महेश्वर
२६.	गान्धार	कन्धार	तक्षशिला	तक्षशिला

२७. दंतपुरं कलिंगानां अस्सकाना च पोतनम् ।

२८. माहिष्मती अवन्तीनां सोवीरानां च रोरुकम् ॥

दन्तपुर, पोतन्य, माहिष्मती, रोरुकम् ।

अत. विशाखयूप एवं कल्कि की समकालिकता से भी सिद्ध होता है कि विशाखयूप मागधप्रद्योतवंश का राजा था जिसका समय बुद्ध से न्यूनतम २६४ वर्ष पूर्व था।

कल्किपुराण मे विशाखयूप और कल्कि का युद्ध कीकट (मागधो) से ही होता है न कि अवन्ति आदि से।

अत बालक प्रद्योत (मागध) वश के पाँच राजाओ का राज्यकाल एवं समय इस प्रकार था—

क्र०सं०	राजा का नाम	राज्यकाल	कलिसंवत्		विक्रमपूर्व
१.	बालक प्रद्योत	२३ वर्ष	१०००–१०२३;	२०४४ वि.पू. से	२०२१ वि.पू.
२.	पालक[1]	२४ वर्ष	१०२३–१०४७;	२०२१	१९९७
३.	विशाखयूप	५० वर्ष	१०४७–१०९८;	१९९७	१९४७
४.	सूर्यक	२१ वर्ष	१०७७–१११८,	१९४७	१९२६
५.	नन्दिवर्धन	२० वर्ष	१११८–११३८,	१९२६	१९०६
	योग	१३८ वर्ष			

अन्त—प्रद्योतवश का राज्यान्त ११३८ कलिसंवत् या १९०६ वि०पू० मे हो गया।

---

१. पालक के पाठान्तर हैं - गोपाल, बाल, पाशक, बक, नलाक्ष आदि, (पुराण टैक्सट, पृ० १९, टिप्पणी स० २९) इमी प्रकार सूर्यक के पाठान्तर है अजक राजक, जनक इत्यादि हैं।

द्वितीय अध्याय

मागध वंश

शिशुनागवंश—११३८ कलि०सं० से १४९८ कलि०सं० पर्यन्त

कुल राज्यकाल—पार्जीटर अपनी आदत के अनुसार निम्न श्लोक के ३६० वर्ष को १६३ वर्ष मानने का आग्रह करता है—

शतानि त्रीणि वर्षाणि षष्टिवर्षाधिकानि तु ।
शिशुनागा भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबन्धवः ।

"All the authorities say there were 10 kings, and do not differ in their names The duration of the dynasty appears to have been 163 years, for the Mt. reading in 1 16 can well mean 'hundred, three plus sixty. though it would mean '360', if taken as litarary Sanskrit; moreover '163' is a probable figure while '360' is an impossible one.

पार्जीटर की पाश्चात्य हटवादिता एव अल्पज्ञता स्पष्टतर है । उपर्युक्त 'शतानि त्रीणि वर्षाणि षष्टि वर्षाधिकानि' का ३६० वर्ष के अतिरिक्त दूसरा अर्थ है ही नहीं, यह सभी संस्कृतज्ञ समझते है । पाश्चात्य लेखक भारतीय इतिहास की प्राचीनता से घबड़ाते थे और उसे स्वीकार करने मे उनका शासन चलायमान होता था, इसलिये वे अर्थ का अनर्थ करने मे नही चूकते थे ।

बौद्धवाङ्मय में शैशुनागसम्बन्धीभ्रान्ति का निराकरण—अनेक आधुनिक तथाकथित इतिहासकार बिम्बसार को शिशुनाग का पूर्वज सिद्ध करने की चेष्टा करते है और पुराणों के प्रामाण्य को स्वतन्त्र (सत्य ?) नही मानते ।[1] पुराणकथन को सत्य सिद्ध करने के लिये डा० रायचौधुरी को किसी मैंगस्थनीज या फाह्यान के स्वतन्त्रप्रमाण की आवश्यकता है या रैप्सन या कीथ के कथन की आवश्यकता है या किसी शिलालेख की, यह बुद्धिगम्य नही है । पुराण का कथन क्या स्वतन्त्र (सत्य) प्रमाण नही हैं । अर्वाचीन महावंश जैसा विदेशी (सिंहली) ग्रन्थ उनके लिये स्वतन्त्र

---

१. "पुराणों मे शिशुनाग को बिम्बसार का पूर्वज कहा गया है तथा उन्हें बिम्बसार के वंश का संस्थापक कहा गया है । परन्तु इस विवरण के समर्थन में स्वतन्त्र प्रमाण उपलब्ध नहीं है ।" (प्रा० भा० रा० इ०, पृ० ६१)

प्रमाण हैं, महावंश के अनुसार डा० रायचौधुरी ने ,बिम्बसार को इसवंश का संस्थापक माना और उनका वंश एवं राज्यकाल इस प्रकार लिखा है—"बिम्बसार (हर्यंक) तथा शिशुनागवंश के तिथिक्रम के सम्बन्ध में पुराणों तथा सीलोनीज क्रानिकल में काफी विषमता है। यहाँ तक कि पुराणों मे दी गई तिथियों को स्मिथ और पार्जीटर जैसे इतिहासकारो ने भी एक ओर से स्वीकार नहीं किया। सिंहली प्रमाणों के अनुसार, बिम्बसारने ५२ वर्ष, अजातशत्रु ने ३२, उदयन ने १६, अनुरुद्ध और मुण्ड ने ८, नागदासक ने २४, शिशुनाग ने १८, कालाशोक ने २८ तथा कालाशोक के पुत्रो ने २२ वर्ष राज्य किया।"[1]

डा० रायचौधुरी को विदेशी कथनो पर अधिक विश्वास था, न कि स्वदेशी ग्रन्थो में। रैप्सन आदि को हम इतिहासकार मानते ही नही, वे तो पाश्चात्य साम्राज्यवादी षड्यंत्रकारी गुर्गे थे, जो भारतीय इतिहास की जड़ो को खोद रहे थे। भारतीयग्रन्थों में, यथा बौद्धग्रन्थों में भी बिम्बसार को शिशुनाग राजवंश. का राजा माना है और इस वंश का राज्यकाल और समय इस प्रकार निर्णीत होता है—

क. सं०	राजा	राज्यवर्ष	समय-कलि. सं	वि०पू०
१	शिशुनाग	४०	११३८-११७८,	१६०६-१८६६
२	काकवर्ण	३६	११७८-१२१४,	१८६६-१८६०
३	क्षेमधर्मा	३६	१२१४-१२५०,	१८३०-१७६४
४	क्षत्रौजा	४०	१२५०-१२६०,	१७६४-१७५४
५	बिम्बसार	३८	१२६०-१३२८;	१७५४-१७१६
६	अजातशत्रु	२५	१३२८-१३५३;	१७१६-१६६१
७	दर्शक	२५	१३५३-१३७८,	१६६१-१६६६
८	उदायी	३३	१३७८-१४०१,	१६६६-१६३३
९	नन्दिवर्धन	४०	१४०१-१४४१;	१६३३-१५६३
१०	महानन्दि	४३	१४४१-१४८४,	१५६३-१५५०
	योग	३५६ वर्ष		

पुराणपाठ मे कुलयोग ३६० वर्ष या ३६२ वर्ष बताया है, परन्तु योग ३५६ वर्ष ही होता है। अजातशत्रु का राज्यकाल कुछ पुराणपाठों[2] में २७ वर्ष बताया गया है। इसी प्रकार दो तीन वर्ष की त्रुटि अन्य के सम्बन्ध मे सम्भव है, अत. ३६० वर्ष का ही पाठ ठीक है।

१. महावंश, अ २ (पृ० १२) तथा प्रा० भा० रा० इ० (पृ० १६७),

२. पुराणपाठ (पृ० ३१, टि० सं० २६).

अब, प्रत्येक राजासम्बन्धी कतिपय समस्याओं पर विचार करते है ।

१ शिशुनाग—युगपुराणसहित[1] समस्त पुराणों मे इस वंश का संस्थापक शिशुनाग कहा गया है। उत्तरकालीन कुछ बौद्धग्रथों मे इस वश का संस्थापक बिम्बसार माना गया है, वह उत्तरकालीन भ्रान्त कल्पना है, जिसपर पूर्वपृष्ठों मे विचार कर चुके हैं।

शिशुनाग, पूर्वकाल मे वाराणसी का शासक था, जिससे प्रद्योतों का यश नाश करके गिरिव्रज (मगधराज्य) पर अधिकार कर लिया—[2]

हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति ।
वाराणस्यां सुतं स्थाप्य स यास्यति गिरिव्रजम् ॥[3]

शिशुनाग का राज्यकाल ४० वर्ष, १६०६ वि०पू० से १८६६ वि०पू० तक था।

शिशुनाग के वशज अधिक प्रतापी हुये ।

२ काकवर्ण—पुराणों में इसके नाम के अनेक पाठान्तर मिलते हैं—यथा शकवर्ण, काकवर्ण, कार्ष्णिवर्म, सवर्ण इत्यादि ।[3] हर्षचरित मे इसका नाम 'काकवर्ण' ही मिलता है, अत सम्भावना है, इसका मूलनाम काकवर्ण ही था। ऐसे संकेत हैं कि इस वंश के अनेक राजा वर्णान्त नाम वाले थे, जिसका संकेत पं० भगवद्दत्त ने किया है।[4] यदि काकवर्ण को पाठान्तर कार्ष्णिवर्म ठीक है तो शिशुनाग का नाम 'कृष्णवर्म' होना चाहिये।

यवनेश्वर द्वारा वध—भारतवर्ष पर देवयुग से पूर्व ही असुर राजा एवं यवनेश्वरो के आक्रमण होते रहे, जिनका हमने मान्धाता[5] सगर और वासुदेव कृष्ण[6] के प्रसंग मे उल्लेख किया है। काकवर्ण के अन्तिम वर्ष १८३० वि० पू० मे किसी यवनराज ने आकाशगामी विमान मे बिठाकर काकवर्ण का वध किया—"आश्चर्यकुतूहली च दण्डोपनतयवननिर्मितेन नभस्तलयायिना यन्त्रयानेनानीयत क्वापि काकवर्णः शैशुनागि नगरोपकण्ठे कण्ठेऽस्य निचकृते निस्त्रिंशेन।"[7] "आश्चर्य मे कुतूहल प्रद-

१. ततो कलियुगे राजा शिशुनागात्मजोबली (यु० पु० ३१),
२. सम्भवत उसने प्रद्योतवश का नाश नही किया पु० पा० (पृ० २१)
३. पु. पा० (पृ० २१, हि० स० ६)
४. भा० वृ० इ० भा० २, पृ० २४०;
५. अमितधान्व (डायोनिसस—मैगस्थनीज) मान्धाता के समय
६ कालयवन या कशेरुमान् कृष्ण के समय यवन आक्रान्ता था।
७. हर्षचरित, ष० उ० (पृ०३५३)

शिशुनागपुत्र काकवर्ण युद्ध में विजित यवन (राज) निर्मित आकाशगामी यन्त्र-यान (विमान) में उड़ाकर कहीं दूर ले जाया गया और तलवार से उसका कंठ काट दिया।" डा० अग्रवाल ने डा० रा०कृ० भण्डारकर का मत लिखा है कि यहां यवन से तात्पर्य हखामनीवंश के ईरानी शासकों से है।[1] परन्तु यह कोरी कल्पना है। यवनजाति सगरपूर्वकाल (१०००० वि०पू०) से पश्चिमी देशों मे गान्धार, बाह्लीक, काम्बोज आदि के साथ बसती थी। हखामनी ईरानी शासक छठी वि० पू० में हुए जबकि काकवर्ण शैशुनागि १८६६ वि० पू० से १८३० वि० पू० में हुआ। अतः भण्डारकर की कल्पना अनैतिहासिक एवं असत्य है।

उपर्युक्त यवनों के आक्रमण मौर्यकाल से काण्वयुग (१४०० वि०पू० १६०० वि०पू०) तक होते रहे और इन्होंने भारतवर्ष में ३०० से ८०० वर्ष तक, अराजकता उत्पन्न की जिसका आभास युगपुराण में है, जिसका संकेत मौर्यवंश, शुंगवंश और काण्ववंश के प्रकरण में किया जायेगा। यवन आक्रमण का क्रम आन्ध्रराजा सातवाहनहाल के समयतक चलता रहा जब सिकन्दर ने आक्रमण किया और उसके पश्चात् मेनेन्द्र आदि आठ यवन राजाओं ने गुप्तयुग से लगभग दोशतीपूर्व भारत में राज्य किया। इसका वर्णन भी आगे के प्रकरणों में होगा।

काकवर्ण ही सुन्दरवर्मा = पं० भगवद्दत्त का सत्याभास—कौमुदीमहोत्सव नाटक मे उल्लिखित मगधराज सुन्दरवर्मन्, कल्याणवर्मन् चण्डसेन आदि के सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों ने विभिन्न अनुमान किये हैं। डा० काशीप्रसाद जायसवाल और स्टूवर्ड ने उक्त सुन्दरवर्मन् आदि का सम्बन्ध गुप्तोत्तरयुगीन वर्मन् शासकों से जोड़ा है तथा चण्डसेन को चन्द्रगुप्त प्रथम माना है।[2] परन्तु डा० जायसवाल आदि की कल्पना मानने योग्य नहीं है। इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त का अनुमान सत्य के निकट प्रतीत होता है—"हमारा अनुमान है कि शैशुनाग क्षेमवर्मा ही इस नाटक का कल्याणवर्मा अथवा कल्याणश्री है। क्षेम और कल्याण शब्द पर्यायवाची है। यदि यह बात सिद्ध हो जाय तो मानना पड़ेगा कि सुन्दरवर्मा ही काकवर्ण था। काकवर्ण का एक पाठान्तर कार्ष्णिवर्म था—सुन्दरवर्मा काकवर्ण का मूल नाम होगा।'[3]

प० भगवद्दत्त के सत्याभास (अनुमान) की पुष्टि कौमुदीमहोत्सव के अन्य वर्णनों एवं बाणभट्ट के पूर्वोल्लिखित हर्षचरित संदर्भ से भी होती है कि सुन्दरवर्मा (काकवर्ण) क्रोधमय आश्चर्य में यवनद्वारा नगर के बाहर मारा गया। उसका पुत्र शिशु था कल्याणवर्मा (क्षेमवर्मा) था। कौमुदीमहोत्सव में उल्लिखित अन्य विवरण

१. द्र० हर्षचरितः एक अध्ययनः पृ० १३२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल;
२. भा० अ० इ० (पृ० २१० से २१७ तक), तथा दि मौखरीज, एडवर्ड ए प्राईस कृत, १६३४ ई०, पृ० २५ – ३५),
३. भा० बृ० इ० भा २ (पृ० २४०)

से भी पं० भगवद्दत्त की प्रतीति सत्य सिद्ध होती है तथा डा० जायसवाल के मत का खण्डन होता है।

(१) कौ० म० में उल्लिखित कारस्कर म्लेच्छ ही हर्षचरित के यवन थे, जिनका उल्लेख अष्टाध्यायी मे है। संभवत. यही कारस्कर कारापथ (कम्बोजनिकट) देश था, जहाँ का शासक राम ने लक्ष्मणपुत्र को बनाया था। गुप्तशिला लेखों मे कारस्करादि का उल्लेख नही मिलता और गुप्तकाल मे कारस्कर म्लेच्छ नही थे।

(२) आरट्ट और वाहीक भी गुप्तकाल मे नही थे, ये भारतयुद्धकाल से मौर्ययुग तक ही हो सकते हैं, अत. जायसवाल की कल्पना अतथ्य है।

(३) पं० भगवद्दत्त ने[१] इस ऐतिहासिक तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि कौ० म० में कल्याणवर्मा (क्षेमवर्माशैशुनागि) के समकालिक वृष्णिकुल (कृष्णवशज) राजा कीर्तिषेण मथुरा का शासक था, जिसके पास अर्जुन का हार था।[२] आर्जुनेय हार का अस्तित्व शैशुनागयुग मे ही हो सकता है, गुप्तकाल मे कदापि नही।

(४) कुलपति जाबालि[३] को उल्लेख भी घटना की प्राचीनता सिद्ध करता है।

(५) बाणभट्ट का, काकवर्णसम्बन्धी उल्लेख कौ० म० सम्बन्धी पं० भगवद्दत्त के सत्याभास की पुष्टि करता है। अत. कौ० म० का सुन्दरवर्मा काकवर्ण शैशुनागि ही था और कल्याणवर्मा ही उसका पुत्र क्षेमवर्मा था।

(३) क्षेमवर्मा (क्षेमधर्मा)—कौ० म० सम्बन्धी इसका विवेचन ऊपर हो चुका है। इसका राज्यकाल ३६ वर्ष, १८३० वि० पू० से १७९४ वि० पू० तक था।

(४) क्षत्रौजा—इसके नाम क्षेमजित् और हेमजित् मिलते है।[४] इसका राज्यकाल ४० वर्ष (पाठान्तर से २४ वर्ष), १७९४ वि० पू० से १७५४ वि० पू० तक रहा। विनयपिटक के अनुसार क्षत्रौजा का नाम महापद्म था, जिसकी पत्नी का नाम बिम्बा था, अतः इसका पुत्र बिम्बसार कहलाया।

---

१. भा० वृ० इ० भा० २ (पृ० २८०),
२. कौ० म० ५/१९, २०
३ कौ० म० (१/६)
४. पु० पा० (पृ० २१, टि० सं० १९),

(५) बिम्बसार श्रेणिक—शिशुनागवंश में (संभवतः पूर्वज) हर्यक था[1] जिस से इसको हर्यंककुल भी कहते थे। कुछ तथाकथित इतिहासकार[2] महावंशादिके आधार पर बिम्बसार को इस वंश का प्रवर्तक मानते हैं, परन्तु प्राचीनतर बौद्धग्रन्थ (उपर्युक्त विनयपिटक) से महावंशादि की भ्रष्टकल्पना का खण्डन होता है। बिम्बसार का पिता महापद्म (क्षत्रौजा) बिम्बसार से पूर्व मगध का राजा था। विनयपिटक से पुराणवर्णन की पुष्टि होती है।

इसके नामान्तर मिलते हैं—बिंबिसार, बिम्बसार, विन्ध्येसेन, सुबिन्दु, विदुसाम बिन्दमान विन्दुनास और क्षेमधर्मा।[3]

इसके श्रेण्य या श्रेणिक नाम का रहस्य अज्ञात है, क्योंकि श्रेणिक माली को कहते हैं।

बिम्बसार की मृत्यु उसके पुत्र अजातशत्रु द्वारा बताई जाती है, संभवतः अजातशत्रु ने अपने हाथ से पिता का वध नहीं किया परन्तु वह मृत्यु में निमित्त अवश्य था, जिसके विवेचन का यहाँ स्थान नहीं है।[4] बिम्बसार का राज्यकाल १७५४ वि०पू० से १७१६ वि०पू० तक था।

६. अजातशत्रु वत्सराज उदयन के समकालिक था और उसकी पुत्री पद्मावती का विवाह उदयन से हुआ था। अजातशत्रु का राज्यकाल २५ वर्ष या २७ वर्ष १७१६ वि०पू० से १६६१ तक था।

भ्रातृगण—इसके तीन भ्राताओं का उल्लेख मिलता है अभय, हल्ल वेहल्ल अन्तिम दो नाम प्राकृतभाषा मे है।

जैनग्रन्थों मे अजातशत्रु का नाम कूणिक, देवानांप्रिय, अशोकचन्द्र आदि मिलते हैं,[5] जो स्पष्ट ही भ्रान्ति है, जो उत्तरकालीन अशोकमौर्य के विशेषण थे। जैनवर्णन उत्तरकालिक एवं भ्रामक है।

अजातशत्रु के राज्यकाल के आठवे वर्ष मे गौतमबुद्ध का निर्वाण हुआ अर्थात् १७०८ वि०पू०। बुद्धमृत्यु के अनन्तर ही बुद्धशिष्यो ने बौद्धशास्त्रो का सर्वप्रथम लेखन किया, प्रथम बौद्धसगीति में।

---

१. भा० वृ० इ० भाग०, पृ० २४१ पर उद्धृत।
२. बु० च० (११/२),
३. प्रा० भा० रा० इ० पृ० १५३;
४. पु० पा० (पृ० २१ हि० स० २३),
५. यदा राज्ञा आजतशत्रुणा देवदत्तविग्राहितेन पिता धार्मिको धर्मराजो जीविताद् व्यपरोपितः। (अवदानशतक, भाग)
६. विविधतीर्थकल्प (पृ० २२),

बौद्धग्रन्थ महावंश में अजात के पुत्र उदायी को पितृहन्ता कहा है जो महाभ्रान्ति है,[1] प्रथम तो उदायी अजात का पुत्र नहीं पौत्र था, पुनः अन्य बौद्धग्रन्थ आर्यमञ्जूश्रीमूलकल्प[2] में अजात की मृत्युरोग के कारण हुई। महावंश की असत्यता स्पष्ट है यह ग्रन्थ असत्यवर्णनों से भरा पड़ा है।

७. दर्शक—यह पूर्व पृष्ठपर लिख चुके है कि बुद्ध और उदयन के समय दर्शक युवराज था और अजातशत्रु मगधराज। भास के नाटको से यह भ्रान्ति होती है, इस सम्बन्ध मे प्राचीन बौद्धग्रन्थ ही प्रमाणिक हैं।

कथासरित्सागर में दर्शक का नाम सिंहवर्मा मिलता है। महावश मे इसका नाम नागदसक (नागदर्शक) है।[3]

मगधराज दर्शक का राज्यकाल २५ वर्ष, १६६१ वि०पू० से १६६६ वि०पू० था।

८. उदायी (उदायिभद्र)—इसका राज्यकाल ३३ वर्ष, १६३३ वि०पू० से १६३३ वि०पू० तक रहा। इसको युगपुराण मे धार्मिक राजा बताया है।[4]

पाटलिपुत्र का निर्माता—उदायी की विशेष ख्याति पाटलिपुत्र को राजधानी बसाने के कारण है, जिसकी संस्थापना उसने अपने राज्याभिषेक के चतुर्थवर्ष मे की।[5] युगपुराण मे इस घटना का विशेषरूप से भविष्यकथन के रूप में उल्लेख है—

तत कलियुगे राजा शिशुनागात्मजो बली।
उदायी नाम धर्मात्मा पृथिव्या प्रथितो गुणै।
गंगातीरे स राजर्षिर्दक्षिणे च महानदे।
स्थापयेन्नगरं रम्य पुष्पारामजनाकुलम्।
तेषा पुष्पपुर रम्य नगर पाटलिसुतम्।
पञ्चवर्षसहस्राणि स्थास्यते नात्र संशयः॥
वर्षाणा च शता पच पचसावत्सरास्तथा॥[6]

यह पाटलिपुत्र (पटना) पाँचसहस्रवर्षों से अधिक कालपर्यन्त स्थिर रहेगा। पाटलिपुत्र का ही प्राचीन नाम कुसुमपुर और पुष्पपुर था। यद्यपि पाटलिपुष्प

---

१. महावंश (४/१)
२. आर्यश्रीमूलकल्प (श्लो० ३२७),
३. महावंश, पृ० १-३४;
४. उदायी नाम धर्मात्मा पृथिव्यां प्रथितो गुणैः (यु० पु० पृ० ३१, पंक्ति ८१),
५. गंगाया दक्षिणेकूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति (वायु०),
६. यु०पु० (पृ ३१, ३२),

का ही पर्याय हैं तथा कथासरित्सागर मे पाटलि स्त्री एवं उसके पुत्र का ऐतिह्य विचारणीय है।[1]

६ नन्दिवर्धन—महावंश में उदायी का उत्तराधिकारी अनुरुद्धक और उसका दायाद मुण्ड लिखा है और इनका राज्यकाल ८ वर्ष बताया है। पुराणो में स्वल्प राज्यकर्त्ता राजाओं के नाम प्राय छोड दिये गये है, जैसा कि पुराणकर्त्ता की प्रतिज्ञा है कि अप्रधान राजाओं का उल्लेख नही किया जाता। मञ्जुश्रीमूलकल्प के अनुसार बुद्धनिर्वाण के १०० वर्ष पश्चात् पाटलिपुत्र मे अशोकसंज्ञक राजा था, अतः नन्दिवर्धन का ही अपर नाम अशोक था। मञ्जुश्रीमूलकल्प का समर्थन ज्ञानश्रीकृत मण्डनकल्पद्रुम एव ह्यूनसांग की जीवनी[2] से भी होता है। इन ग्रन्थो के अनुसार नन्दिवर्धन (अशोक) ने ५० वर्ष राज्य किया। इस ५० वर्ष मे अनुरुद्धक एवं मुण्ड का राज्यकाल सम्मिलित होगा। ऐसा मानने पर वक्ष्यमाण दशम शैशुनागवंश के अन्तिम राजा महानन्दी का राज्यकाल ४३ वर्ष के स्थान पर ३३ वर्ष होना चाहिये।[3] क्योकि महानन्दी के राज्यान्त तक कलि के ठीक १५०० वर्ष व्यतीत हुये।

अत. नन्दिवर्धन का राज्यकाल १६३३ वि०पू० से १५६३ वि०पू० अथवा १५८३ वि०पू० तक था।

१० महानन्दी—इसका एक पाठान्तर महानन्दि[4] मिलता है। इसका राज्यकाल ४३ वर्ष १५८३ वि०पू० से १५४० वि०पू० पर्यन्त अथवा कलिसंवत् १४४१ या १४५१ से १४६४ पर्यन्त। इस गणना मे छ वर्ष की त्रुटि प्रतीत होती है क्योकि महानन्दी के पुत्र महापद्मनन्द के अभिषेकपर्यन्त १५०० व्यतीत हुते, इसका अधिक विवरण वक्ष्यमाण नन्दप्रकरण मे प्रस्तुत करेंगे।

नन्दवंश-(राज्यकाल एकशती-१५०१ क सं. से १६०० क स. तक)

निम्नलिखित शीर्षक के अन्तर्गत नन्दप्रकरण पर विचार करेंगे—

(१) नन्द के विभिन्न नामान्तर

(२) सर्वक्षत्रान्तकृत्,

१ क० स० तथा पुरगा नाम काचिद् राक्षसी तया भक्षित पाटलिपुत्र तस्या निवास पौरगीयमित्यन्य (गणरत्नमहोदधि, पृ० १७६) जराराक्षसी ने जरासंध को जीवित किया और पुरगा राक्षसी ने पाटलि के पुत्र को खालिया यह अन्तर ध्यातव्य है। विहार मे आज भी चुड़ैल की कहानी प्रचलित हैं।

२. भा० वृ० इ० ४१२, २५४ उद्धृत।

३. चत्वारिंशत् त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति (पु० पा०० पृ० २२)

४. महानन्दिसुतश्चापि कलिकांशजः (पु० पा० २५)

(३) परीक्षित् से नन्दपर्यन्त कालान्तर,

(४) नन्द से आन्ध्रसातवाहनपर्यन्त कालावधि,

(५) ग्रीकग्रन्थो में नन्द का अनुल्लेख नंद्रम ? और अग्रम्मीज, ?

(६) नवनन्द

(७) नन्दो का नाश चाणक्य और चन्द्रगुप्तमौर्य,

(८) नन्दकालीन विद्वान्—पाणिनि, कात्यायन, व्याडि, पिंगलादि,

(१) **नन्द के नामान्तर**—प्रथम वंशप्रवर्तक नन्द को अन्तिम शैशुनाग राजा महानन्दी की किसी शूद्रा पत्नी से उत्पन्न बताया गया है।[1] उसके नामान्तर मिलते है महापदम,[2] उग्रसेन. । अतः प्रथम और वंशप्रवर्तक नन्द का नाम महापद्म था नवनवतिकोटि मुद्राओ का स्वामी होने से ही संभवत उसका यह नाम प्रथित हुआ।

(२) **सर्वक्षत्रान्तकृत्**—पुराणो मे परशुराम भार्गव के पश्चात् संभवतः एकमात्र यह उपाधि महापद्म नन्द को दी है।[3] तदनुसार पाचाल. यादव, कौशल पौरव आदि सभी क्षत्रो का विजेता या अन्तकर्ता नन्द था। परन्तु इसके युद्धो का विस्तृत तो क्या संक्षिप्त वर्णन भी कहीं नही मिलता।

(३) **परीक्षित् से नन्दपर्यन्तकाल**—पुराणो मे परीक्षित्जन्म से नन्दाभिषेक तक ठीक १५०० वर्ष व्यतीत हुये थे।[4] परन्तु पुराणपाठो मे पचाशतोत्तर का पाठान्तर 'पंचशतोत्तर' मिलता है, जिसको डा० जायसवाल आदि लेखक परम प्रमाणिक मानते हैं। परन्तु पुराणो के अनुसार ही 'पंचशतोत्तर' पाठ पूर्ण प्रामाणिक सिद्ध होता, जिसमे ननु नच के लिये स्वल्पावसर भी नही है। पुराणों मे ही जरासन्धपुत्र सोमाधि से रिपुञ्जयपर्यन्त के ८२ बार्हद्रथ राजाओ का राज्यकाल १००० वर्ष+बालक मागध प्रद्योतवंश राज्यकाल १३८+शैशुनाग १० राजा राज्यकाल ३६२ वर्ष=१५०० वर्ष होते हैं, अतः ऐसी स्थिति मे कोई स्वयं सोच सकता है कि भ्रष्टपाठ को सत्य मानना कहाँ की बुद्धिमानी है या मूर्खता है।

(४) **नन्द से सातवाहन तक की अवधि ८३६ वर्ष**—नन्द से सातवाहनवंश के आरम्भ तक ८३६ वर्ष व्यतीत हुये थे, इस पर विचार आन्ध्रसातवाहनप्रकरण मे करेंगे।

---

१. उत्पत्स्यते महापद्मः (पु० पा० २५), २. महाबोधिवंश

३. सर्वक्षत्रान्तको नृपः पु० पा० २

४. यावत्परिक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्। एतद् वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पंचशतोत्तरम्॥ विष्णु०

(५) ग्रीकग्रन्थों में नन्द्रम का अनुल्लेख—पं० भगवद्दत्त ने किसी पाश्चात्य लेखक की जालसाजी के आधार पर जस्टिन ग्रीक लेखक के ग्रन्थ में 'नन्द्रम' का उल्लेख स्वीकार कर लिया,[1] जबकि स्वयं उन्होंने सिकन्दर और चन्द्रगुप्तमौर्य की समकालिकता की कहानी का प्रबल खण्डन किया है।[2] डा० रायचौधुरी जैसे पाश्चात्यों के परमभक्त को इस जालसाजी का ज्ञान था अतः उन्होने लिखा—"दुर्भाग्यवश प्राचीन (ग्रीक) लेखको ने कहीं भी नन्दवंश का नाम नहीं लिखा। जस्टिन की कृतियों में जहाँ 'अलेकजेन्ड्रम लिखा है, उसे 'नन्द्रम' पढ़ना सर्वथा अनुचित और निरर्थक है।[3]" स्पष्टतः यह 'नन्द्रम' नाम इसलिये गढ़ा गया कि नन्द और चन्द्रगुप्तमौर्य को सिकन्दर का समकालिक सिद्ध किया जा सके, लेकिन असत्य ठहर कहाँ सकता है? रायचौधुरी जैसे आंग्लभक्त को यह कल्पना नहीं सुहाई। इसी प्रकार 'अग्रमीज' को 'उग्रसेन' या सैण्ड्रोकोट्सको 'चन्द्रगुप्त' मानना भी कोरी कल्पना है। सिकन्दर का भारतवर्ष (सिन्ध) पर आक्रमण आन्ध्रसातवाहनवंश के अन्तिम दिनों में हुआ था, नन्दादि सिकन्दर से लगभग द्वादशशती पूर्व हो चुके थे, अतः ग्रीकग्रन्थों मे नन्द, मौर्य, चाणक्य, मगध, पाटलिपुत्र आदि का कोई उल्लेख होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इस मिथ्याकहानी का सविस्तर खण्डन अन्यत्र किया जा चुका है, अतः इसे यहाँ दुहराना व्यर्थ है।

(६) महापद्मनन्द राज्यकाल और नवनन्द—महापद्म और उसके पुत्रों का समस्त राज्यकाल पुराणों मे पूर्व १०० वर्ष कहा गया है, जिसमे ८८ वर्ष महापद्म और १२ वर्ष उसके पुत्रों सुमाल्यादि ने राज्य किया—

एकराट् स महापद्म एकक्षत्रो भविष्यति।
अष्टाशीतिस्तु वर्षाणि पृथिवी च भोक्ष्यति।
सुमाल्यादिसुता[5] ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः॥[4]

अतः नवनन्द का अर्थ है महापद्म और उसके आठ पुत्र मिलकर नव (नौ) नन्द कहलाये। नवनन्द का अर्थ नवीन (उत्तरकालीन) नन्द नहीं है।[6] नन्दपुत्र भी नन्द ही कहलाते थे।

---

१. भा० बृ०इ० भा० २, पृ० २५८;
२. भा० बृह० भा० १ (पृ०)
३. प्रा० भा० रा० इ० (पृ० १७२),
४. पु० पाठ पृ० २५-२६;
५. पाठान्तर सुकल्प आदि।
६. महाबोधिवंश मे महापद्मनन्द के आठ पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—पण्डुक, पण्डुगति, भूतपाल, राष्ट्रपाल, गोविशांक, दशसिद्धक, कैवर्त और धन।

इनमे अन्तिम योगनन्द या धननन्द का संघर्ष ही चाणक्य से हुआ "योगानन्द यशः शेषे पूर्व नन्दसुतस्ततः। चन्द्रगुप्त कृतोराजा चाणक्येन महोजसा।" इस विषय पर अधिक विचार मौर्यप्रकरण में होगा। योगनन्द या धननन्द के एक पुत्र का नामोल्लेख कथासरित्सागर मे है।

महापद्मनन्द का राज्यकाल कलिसंवत् १५४४ वि०पू० से १४५६ वि० पू० तक था और उसके पुत्रों का राज्यकाल १४५६ वि०पू० से १४४४ वि०पू० तक था।

नन्दकालीन प्रसिद्ध शास्त्रकार-पाणिन्यादि—कुछ अत्युत्साही भारतीय विद्वान् पाश्चात्य प्रतिवाद के विरुद्ध, प्राचीनता के चक्कर मे अटल ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़मडोड़ना चाहते है। नन्द और वैयाकरण पाणिनि, कात्यायन (वररुचि) आदि से लगभग ८०० वर्ष पश्चात् होने वाले महापण्डित गुणाढ्यकृत बृहत्कथा के आधार पर कथासरित्सागर के लेखक सोमदेव के प्रामाण्य को श्रीयुधिष्ठिर मीमासक अप्रामाण्य समझते हैं, और अपनी मन प्रसूत कल्पना को इतिहास मानते हैं और पाणिनि को नन्दकाल मे हुआ न मानकर उनको कुलपतिशौनक, यास्क के समकालिक बना डालते है। उनके निम्न मत आलोच्य है—(१) कथासरित्सागर के रचयिता को भी बौद्धकालिक गोत्रनाम व्यवहार के कारण भ्रान्ति हुई है और उसने पाणिनि और और वररुचि को नन्द का समकालिक लिख दिया।' (२) अब शेष रहती है राजशेखर द्वारा उद्धृत अनुश्रुति इतिहास मे तभी तक प्रमाण मानी जाती है, जबतक उसका प्रत्यक्ष बलवत् प्रमाण से विरोध न हो। उसके लेखानुसार तो पतञ्जलि भी पाणिनि का समकालिक बन जाता है। अत राजशेखर की अनुश्रुति अप्रमाण है।'

कथासरित्सागर को अप्रमाणिक माननेवाले प० युधिष्ठरमीमासक को अपने इतिहासगुरु पं० भगवद्दत्त का मत तो देख लेना चाहिए—"तथागत बुद्ध के काल मे अवन्ति का राजा प्रसिद्ध महासेन था। उसके पूर्वजों का वर्णन कथासरित्सागर मे मिलता है। उसमें सन्देह करने का स्थान नही है। कथासरित्सागर की वंशावलियां सत्य प्रमाणित हो रही है।' जब अन्य वंशो के सम्बन्ध मे कथासरित्सागर प्रामणिक है तब नन्द और पाणिनि के सम्बन्ध में वह कैसे अप्रमाणिक हो सकता है,

---

१. स० व्या० इ० (पृ० १६२),
२. सं० व्या० शा० इ० (भा० पृ० १६४-१६५),

यह विचारपद्धति बोधगम्य नहीं है। प्राचीन उल्लेख ही किसी तथ्य या कल्पना का प्रमाणक है तो सोमदेव ने नन्द से ४०० वर्ष पश्चात् होने वाले गुणाढ्य के आधार पर लिखा, यदि गुणाढ्य का कथन कल्पना है तो गुणाढ्य से २५०० वर्ष पश्चात् होने वाले अर्वाचीन युधिष्ठिर मीमांसक की कल्पना कैसे प्रमाणिक मानी जा सकती है, जबकि मीमांसकजी की कल्पना को न तो किसी अनुश्रुति या किसी भी प्राचीनलेख का समर्थन प्राप्त है। सोमदेव से पूर्व प्राचीनतरग्रन्थ आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' और कथासरित्सागर राजशेखर की अनुश्रुति की पुष्टि करते हैं कि पाणिनि नन्द का घनिष्ठ सखा था।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक की यह कल्पना नितान्त अशुद्धि की परिचायक है कि कि राजशेखर की अनुश्रुति को यदि सत्य माना जाय तो पतञ्जलि और पाणिनि समकालिक सिद्ध हो जायेंगे। राजशेखर ने यह भी लिखा है कि उज्जयिनी में कालिदास, मेण्ठ, अमर, शूर,[१] (अश्वघोष), हरिश्चन्द्र, और चन्द्रगुप्त की काव्यकला परीक्षित हुई।[३] राजशेखर के एक श्लोक में उल्लिखित सभी कवियों को क्या कोई एक काल में मानने की धृष्टता कर सकता है, फिर एक ही श्लोक में उल्लिखित होने से पतञ्जलि और पाणिनि समकालिक क्यों माने जाये ऐसी कल्पना अप्रज्ञाचक्षु भी नहीं कर सकता, पुन. मीमासकजी तो प्राज्ञ है।

अत. प्राचीनता के नटके मे मीमांसक ने पाणिनि को २६०० वि० पू०[४] मानने की कल्पना के जो हेतु दिये हैं वे असिद्ध है, उनके हेतुओ (अन्त साक्ष्य)— (१) बुद्ध के समय संस्कृत जनसाधारण की भाषा नहीं थी, पाणिनि के समय संस्कृतजन भाषा थी। (2) नन्द को सर्वक्षत्रान्तकृत के समय पाञ्चाल आदि शब्दो का प्रयोग लोक मे नही हो सकता (३) यास्क, कौत्स का उल्लेख करता है जो पाणिनि का शिष्य था। (४) पाणिनि ने शौनक का नामोल्लेख किया है। (५) शौनक द्वारा उल्लिखित व्याडि, पाणिनि का मामा था। अत. पाणिनि का समय शौनक समकालिक होना चाहिए।

अन्त:साक्ष्य के नाम पर पाँचों हेतु अप्रमाण है।

---

१. तस्याप्यन्यतम. सख्य. पाणिनिर्नाम माणवः।

२. तस्य शूरकवेर्घोष इति नामाभवत्तत् (कृष्णचरित, समुद्रगुप्तकृत श्लोक ४)

३. इह कालिदासमेण्ठावमरशूरभारवय। हरिश्चन्द्रचन्द्रगुप्तो परीक्षिता विह विशालायाम् (का० मी० अ० १०),

४. अत: पाणिनि का समय स्थूलतया विक्रम से २६०० वर्ष प्राचीन है। (स० व्या० शा० इ० भा० १ पृ० २०३)

प्रथम पाणिनि के समय तो क्या दाशरथिराम के समय भी संस्कृत जनभाषा नहीं थी, यदि संस्कृत जनभाषा होती तो हनुमान् को मानुषवाक्य (प्राकृत का कोई रूप) बोलने की आवश्यकता नहीं होती[1] और न भाषासम्बन्धी इतना विचार मन्थन करना पड़ता ।

पाणिनि द्वारा वैदिकस्वरसम्बन्धी नियम बनाने से कुछ भी सिद्ध नहीं होता, जिस प्रकार स्वरविवेचन में भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनि का अनुवाद किया जैसे स्वामीदयानन्द ने किया; उसी प्रकार स्वरनियम में पाणिनि ने पूर्वाचार्यों का अनुकरण किया, लोक में संस्कृतप्रचलन इसका एकमात्र कारण नहीं हो सकता, अतः ऐसी ही बात थी तो भट्टोजिदीक्षित द्वारा स्वरविवेचन छोड़ देना चाहिए था ।

द्वितीय पाचालादि संज्ञाओं का प्रयोग कथासरित्सागर जैसे अर्वाचीन ग्रन्थ में भी मिलता है । अतः पाणिनि द्वारा इन संज्ञाओं के प्रयोग से उसका समय निश्चित नहीं होता ।

तृतीय, कौत्स एक गोत्रनाम था, जिस प्रकार पाणिनि या कात्यायन । ऋग्वेद तक में कुत्स और कौत्स ऋषियों का उल्लेख है, मीमांसाकृत् व्यासशिष्य आर्य जैमिनि कौत्स' था । यदि कौत्स शब्द के आधार पर ही पाणिनि का समय माना जाए तो वह इन्द्र और कुत्स के समकालिक देवयुग में मानना चाहिए ।

निश्चय ही पाणिनिगोत्र पर्याप्त प्राचीन था, जिसका उल्लेख मत्स्यपुराणादि एवं बौधायनादि सूत्रों में मिलता है, परन्तु प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि, जिसने अष्टाध्यायी रची, वह नन्दकाल में ही हुआ, इस सम्बन्ध में मञ्जुश्रीमूलकल्प, बृहत्कथा (या कथासरित्सागर) और राजशेखर ने सत्य ऐतिह्य का उल्लेख किया है कि प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ही नन्द का सखा था । श्री युधिष्ठिर मीमांसक की पाणिनिकाल सम्बन्धीकल्पनाओं में कोई भी तथ्य नहीं है ।

अतः पाणिनि (नन्दसखा और वैयाकरण) कात्यायन (वररुचि=नन्द कालीन और वैयाकरण वार्तिककार), पाणिनिमातुल व्याडि नन्दकालीन व्यक्ति थे, जिनका समय १४५० वि० पू० से १५५० वि० पू० के मध्य था । प्राचीनग्रन्थों में पाणिनि का यही कालनिर्दिष्ट है और कुछ भी उल्लिखित नहीं, अतः केवल कल्पना

---

१. यदि वाचं प्रदास्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यन्ति । . . . वक्तव्यमेव मया मानुषं वाक्यमर्थवत् . . . । (रा० ५/३०/१७,)

से पाणिनि का समय निश्चित नहीं किया जा सकता। इतिहास कल्पना से दूर भागता है।

भास नन्दकालीन नहीं--कौटिल्य अर्थशास्त्र और प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में दो श्लोकों की साम्यता एवं भास के भरतकाव्य 'एकातपत्राङ्कां महीं राजसिंह प्रशास्तु नः' के आधार पर पं० भगवद्दत्तादि भास को नन्दकालीन मानने की कल्पना करते हैं।[1] परन्तु यह कल्पना इतिहास से असिद्ध है। कालिदास के नाटकों[2] से प्रतीत होता है कि भासकवि रामिलसोमिल्ल से कुछ ही पूर्व हुआ था, वह सातवाहनयुग से अधिक पूर्व (६५० वि०पू० से २०० वि०पू०) का कवि नहीं हो सकता। इसका एक प्रमाण सम्राट समुद्रगुप्त विरचित कृष्णचरितकाव्य की उपलब्ध प्रस्तावना से ज्ञात होता है, जहाँ मुनिकवियों में पतञ्जलि के अनन्तर भास का स्थान है।[3] अतः भास पतञ्जलिकाल से पर्याप्त पश्चात् हुआ, यह निश्चित है। भास को नन्दकाल में हुआ मानना कोरी कल्पनामात्र है।

कात्यायन वररुचि—स्वर्गारोहणकाव्य का रचयिता वररुचि ही नन्द समकालिक और उसका मंत्री था जिसको मुद्राराक्षस नाटक में 'राक्षस' नाम से अभिहित किया है।

कात्यायन एक गोत्रनाम था। विश्वामित्र के पुत्र 'कत ऋषि' के सभी वंशज कात्यायन कहलाते थे। श्रौतसूत्रकार वैदिक आचार्य कात्यायन निश्चय ही प्राचीनतर, संभवतः शौनककालीन व्यक्ति था, परन्तु सूत्रकार कात्यायन और वररुचि श्रुतधर वैयाकरण कात्यायन को एक कात्यायन मानने की भ्रान्ति में नहीं पड़ना चाहिए,[4] जैसी कि युधिष्ठिरमीमांसक ने कल्पना की है। वार्तिककार कात्यायन वररुचि, पाणिनि समकालिक नन्द का मन्त्री ही था, जैसाकि बृहत्कथा आदि से सिद्ध है।

मौर्यवंश

राज्यकालपरिमाण—वायुपुराणादि[5] के आधार पर जायसवालादि इतिहासकार मौर्यों का कुल राज्यकाल १३७ वर्ष मानते हैं। इस सम्बन्ध में हम पं० भगव-

---

१. भा० वृ० इ० भा २, पृ० २६०
२. अ० शाकुन्तल
३. कृ० च० (श्लोक २२ से आगे)
४. सं० व्या० इ० पृ० २६६-३१३ वररुचि का मूल नाम संभवतः श्रुतधर था। पण्डितजी ने अनेक कात्यायनों को एक कर दिया है।
५. दृश्यते नव भूपा ये भोक्ष्यति च वसुन्धराम्। सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति। (वायु०)

दत्त से पूर्ण सहमत है कि मौर्यों के १२ या अधिक राजा हुये थे और जिनका राज्य-काल १३७ वर्षों से बहुत अधिक था। पं० भगवद्दत्त ने पार्जीटर के इ० वायुपुराण, और कलियुगराजवृतांत तथा एक मत्स्यपुराण के आधार पर १२ मौर्य राजाओं का राज्यकाल इस प्रकार उद्धृत किया है।[1]—

	वायु० (पा० इ० पाठ)		मत्स्यपाठ		कलिराजवृतांत	
१	चन्द्रगुप्त	२४ वर्ष	चन्द्रगुप्त	३४ वर्ष	चन्द्रगुप्त	३४ वर्ष
२	नन्दसार	२५ ,,	भद्रसार	२८ ,,	बिन्दुसार	२४ ,,
३.	अशोक	३६ ,,	अशोक	३६ ,,	अशोकवर्धन	३६ ,,
४.	कुणाल	३६ ,,	कुणाल	८ ,,	सुपार्श्व	८ ,,
५.	बन्धुपालित	८ ,,	दशरथ	८ ,,	बन्धुपालित	८ ,,
६.	नप्ता ?		इन्द्रपालित	१७ ,,	इन्द्रपालित	७० ,,
७	दशरथ	८ ,,	हर्षवर्धन	८ ,,	सगत	९ ,,
८	संप्रति	९ ,	सम्प्रति	९ ,,	शालिशूक	१३ ,,
९	शालिशूक	१३ ,	शालिशूक	१३ ,,	देववर्मा	७ ,,
१०	देवधर्मा	७ ,,	सोमशर्मा	७ ,,	शतधनु	
११	शतधनु	८ ,,	शतधनु	९ ,,		
१२	बृहद्रथ	८७ ,,	बृहद्रथ	७० ,,	बृहद्रथ	८८ ,,
योग		२३१ वर्ष		२४७ वर्ष		३०९ वर्ष

अत मौर्यवंश मे न्यूनतक १२ राजा हुए, यह ज्ञात ही है कि पुराण स्वल्प-कालिक राजा का उल्लेख नहीं करते। मौर्यो का शासन २०० वर्ष से ३०० वर्ष के मध्य रहा होगा। इनमें प्रारम्भिक मौर्यराजाओं का राज्यकाल विभिन्न प्रमाणों की तुलना से यह ठीक सिद्ध होता है—चन्द्रगुप्त—२४ वर्ष, बिन्दुसार २५ वर्ष, अशोक ३६ वर्ष, कुणाल ८ वर्ष और बन्धुपालित ८ वर्ष—योग १०१ वर्ष। बन्धु-पालितक मौर्यशासन निर्विघ्नप्रायः सुस्थिर रहा।

गणना मे गड़बड़ी का कारण—म्लेच्छ आक्रमण (शासन) या अराजकता— हमारे मत मे सभी पुराणगणनाओं में सत्यांश है, वर्तमानपाठों एवं अवन्तिसुन्दरी कथासार का यह मत है कि ९ या १० राजाओं का कुल राज्यकाल १३७ वर्ष ही था,

1. भा० बृ० इ० भा० २; पृ० २६३;

परन्तु राजाओं के बीच-बीच में अराजकस्थिति या यवनशकराजाओ ने मगध पर शासन किया। यह अराजकता १२० से ३०० वर्ष की सम्भावित है। पुराणो में अन्तिम राजा बृहद्रथ मौर्य का राज्यकाल ८७ या ७० वर्ष तथा कलिराजवृत्तान्त मे ७० वर्ष लिखा है, इन अयोग्य राजाओं का राज्यकाल इतना दीर्घ नहीं हो सकता, निश्चय ही इन्द्रपालित और बृहद्रथ जैसे मौर्यों के समय दीर्घकाल तक अराजकता रही होगी।

गार्गीसंहिता (युगपुराण) तथा एरियन द्वारा अराजकता की पुष्टि—युग-पुराण की भूमिका मे श्री डा० आर० मांकड ने इस तथ्य का संकेत किया है—"I have already pastulated, on the authority of Arrian and the Puranas, Two Kingless periods – one of 300 years and the other 120 years after the Moryas and before the Andhras" (Yugpuran p 72 and chronoloy of Kali age in Poona onientalist VIII-1-2), इसका स्पष्टीकरण आगे करते हैं।

युगपुराण में यवनशकराज्य का उल्लेख—संक्षिप्तसार—यद्यपि हम श्री मांकड के मत से अक्षरश तो नही कुछ सीमातक सहमत है कि अराजकता या म्लेच्छशासन निरन्तर क्रमश ३०० या १२० वर्ष का नही था। मध्य-मध्य मे पट्ट मौर्य राजा इन्द्रपालित से अन्तिम मौर्यराजा बृहद्रथपर्यन्त लग-१२० वर्ष का म्लेच्छशासन रहा, जिसकी गणना वायुपुराणादि मे छोड दी गई है। हमे नारायणशास्त्री के मत्स्य का पाठ सत्य प्रतीत होता है, जिसके अनुसार १२ मौर्यराजाओं का शासन २४७ वर्ष था। नारायणशास्त्री ने कलिराजवृतात मे यह योग ३०६ वर्ष है, अत मौर्यराज्य के २०७ या ३०६ वर्षों मे ११० से १७२ वर्ष पर्यन्त की अराजकता रही। इसकी पुष्टि युगपुराण के निम्न तथ्यों से होती है कि शालिशूक नवम मौर्य (राजा) के राज्यकाल मे यवनम्लेच्छों का घोर आक्रमण मगध पर हुआ—

> ऋतुक्षा कर्मसुत. शालिशूको भविष्यति।
> यवनाश्च सुविकान्ता प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्।
> शस्त्रद्रुममहायुद्ध ततो भविष्यति पश्चिमम्॥
> यवना ज्ञापयिष्यन्ति नगरे पच पार्थिवाः॥ (यु० पु० प० ८६, ६५; ६८, ११२)

स्पष्ट है यवनो के चार या पाँच शासकों का पर्याप्त समयतक शासन रहा होगा; इसके पश्चात् चार स्वल्पकालिक राजा हुये – जिनको मंकड शुंगराजा मानते हैं, परन्तु हमारा मत है कि वे पुराणों मे अनुल्लिखित कोई मौर्य शासक थे। तदनन्तर

परस्पर संघर्ष में यवनो का नाश हो गया।[1] यह संभवतः बृहद्रथ मौर्य के समय की घटना है। यवनराज्य के अनन्तर न्यूनतम चार शक राजाओं का राज्य हुआ, जिनमें शकराज आम्लाट प्रधान हुआ—'आम्लाटो लोहिताक्षेति पुष्पनामं गमिष्यति।

ततः स म्लेच्छ आम्लाटो रक्ताक्षो रक्तवस्त्रभृत्।
जनमादाय विनाशं परमुत्सादयिष्यति।[2]

तदन्तर इन राजाओं के शासन का उल्लेख है—

गोपाल	—	१ वर्ष
पुण्यक	—	१ वर्ष
अनरण्य	—	३ वर्ष
विष्वक्यशा	—	३ वर्ष
आग्निवेश्य	—	२० वर्ष[3]
सातुबर	—	१० वर्ष

उपर्युक्त राजाओं की पहिचान अज्ञात हैं कि ये किस वंश के थे, श्रीमाकड इनको शुंगवंशी राजा मानते हैं।[4] परन्तु हमारे मत में ये न तो मौर्य थे और न शुंग; संभवत म्लेच्छशासक ही थे। अत: इन्द्रपालित से बृहद्रथपर्यन्त लगभग एक शताब्दी से अधिक मध्य-मध्य में इसी प्रकार अराजकता चलती रही और सातुवर राजा के पश्चात् पुनः शकों का शासन हुआ, जिन्होंने प्रजापर घोर अत्याचार किया—

'करिष्यन्ति शका घोरा बहुलाश्च इति श्रुति।'

चतुर्भाग तु शस्त्रेण नाशयिष्यति प्राणिनाम्।' इसी कारण उत्तरकालीन पुराणपाठों में इन्द्रपालित मौर्य का राज्यकाल कहीं १० वर्ष कहीं १७ वर्ष और कहीं ७0 वर्ष तथा बृहद्रथ का ७ वर्ष, ८७ वर्ष या ७० वर्ष लिखा मिलता है; शालिशूक,

१. आत्मचक्रोत्थितं घोरं युद्धवशात्तेषां यवनानां परिक्षये।
२. यु० पु० पं० १३१, १३३, १३६, १३७
३. यु० पु० (पं० १४२ से १७६ पर्यन्त)
४. द्र० युगपुराण की भूमिका का पृ० २१
५. युगपु० पंक्ति १७८-१७६

इन्द्रपालित बृहद्रथादि के राज्यकालो में मगध पर दीर्घकालपर्यन्त यवनों और शकों एवं अन्य बाह्य म्लेच्छशासकों का राज्य रहा, इसीलिए हमारा अनुमान है कि उपर्युक्त यवन और शकराज्य ग्राम्लाट आदि पुष्यमित्र शुंग से पर्याप्त पूर्व हुये—संभवत एक से दो शतीपूर्व। इस प्रकार के यवनशकआक्रमण भारत पर महाभारतयुद्धकाल से पूर्व ही होते रहे, यह सुप्रमाणित तथ्य है।

मौर्यराज्य का अन्तकाल—ऐसी स्थिति मे स्पष्ट है कि मौर्यराज्य का आरम्भ १४४४ वि० पू० और अन्त ११३५ वि० पू०; ३०९ वर्ष के पश्चात् हुआ। इस ३०९ वर्ष मे मौर्यशासन के २४७ वर्ष और अराजकता मे ६२ वर्ष अथवा मौर्य शासन १३७ या २४७ वर्ष और अराजकता (म्लेच्छशासन) के ११० वर्ष सम्मिलित है। परन्तु यह निश्चित है कि मौर्यशासन का अन्त विक्रम की द्वादशती के अन्तिमचरण में हुआ, तदन्तर शुंगराज्य की स्थापना हुई। हम श्रीमांकड के इस मत को नही मानते कि मौर्यो से सत्ता एकदम शुंगो के पास और शुंगो से काण्वों के पास नही आई।[1] पुष्यमित्र ने बृहद्रथमौर्य को मारकर ही मगधराज्य पर अधिकार किया और वासुदेव काण्व ने अन्तिम शुंग राजा देवभूति को मारकर ही सत्ता हथियाई।[3] हमारा मत है कि यवनशकराज्य बीच-बीच मे रहा, सत्ता का पटपरिवर्तन उसी प्रकार हुआ जैसा पुराण एव हर्षचरितादि मे उल्लिखित है।

अब प्रत्येक मौर्यराजा के व्यक्तिगत राज्यकाल एव तत्सम्बन्धी अन्य समस्याओ पर विचार करेंगे।

चन्द्रगुप्तमौर्य—पूर्वनन्दसुत—प्राचीनग्रन्थों, तथा बृहत्कथा, मुद्राराक्षसादि मे चन्द्रगुप्त को वृषल और पूर्वनन्द का मुरानामक स्त्री से उत्पन्न पुत्र बताया है।—अतः चन्द्रगुप्त किसी नन्दवशीय पुरुष का पुत्र था, जिसको 'पूर्वनन्द' कहा गया है। पूर्वनन्द नाम नही प्रतीत होता, वह योगनन्द या धननन्द से पूर्व का कोई

1. Similarly, if Y P is to be believed, the Kanvas did not follow the Sungas immediately, भूमिका पृ० २२

२. पु० पा०—पुष्यमित्रस्तु सेनान्यमुद्धृत्य स बृहद्रथम् (पृ० ३१)

३. हर्षचरित (षष्ठउच्छ्वास पृ०)

४. वृषलः कथितः शूद्रे चन्द्रगुप्ते च राजनि; विश्वप्रकाशकोष पृ० १३६

५. विष्णुपु० (४/२४/२८ रत्नगर्भटीका)

नन्दवंशीय पुरुष होगा। नवनन्द (नौ) नन्दवंशीय शासक थे, इनमें से ही किसी का पुत्र चन्द्रगुप्त था, जो मुरासंज्ञक शूद्रा से उत्पन्न था, इसीलिए उसकी संज्ञा प्रायः वृषल हो गई।

चाणक्य, १२ (मत्स्य० (२७२/२२) या १६ वर्ष (वायु ६६/३३०) की प्रक्रिया (कृत्या) या संघर्ष के पश्चात् ही नवनन्दों का नाश कर पाया—

उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कौटिल्यो वै द्विरष्टभि ।
कौटिल्यश्चन्द्रगुप्तं तु ततो राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥[1]

चन्द्रगुप्त मौर्य का मैगस्थनीज वर्णित सैन्ड्रोकोतस, पालिबोथ्रा, अमित्रोचेटस, प्रसई आदि से कोई सम्बन्ध नहीं था, इस विषय का विस्तृत विवेचन भूमिका मे किया जा चुका है। पारिभद्रा (पालिबोथ्रा) शाल्वावयवों की राजधानी थी।

चन्द्रगुप्त का राज्यकाल २४ वर्ष था, इसे पाठान्तर मे ३४ वर्ष भी कहा गया है, परन्तु २४ वर्ष ही प्रामाणिक प्रतीत होता है, अतः उसका राज्यकाल १४४४ वि० पू० से १४२० वि०पू० तक था।

चाणक्य—यह चन्द्रगुप्त का प्रधानमन्त्री, और संरक्षक था, जिसके अनेक नाम थे—कौटल्य, द्रमिल, वात्स्यायन, मल्लनाग आदि। यह दीर्घजीवी पुरुष था, जो नन्द, चन्द्रगुप्त और और बिंदुसार के राज्यकालतक जीवित रहा, उसकी आयु सौ वर्ष से अधिक थी।

२. **बिन्दुसार**—इसका राज्यकाल १४२० वि०पू० से १३६५ वि०पू० पर्यन्त था। जैनग्रन्थ राजावलीकथा मे बिन्दुसार का अपरनाम सिंहसेन मिलता है। परन्तु श्री टी० एल० शाह ने इसका एक नाम 'अमित्रकेतु' भी ढूढ निकाला है जो कि यूनानी लेखक मैगस्थनीज के सेण्ड्रोकोट्स (चन्द्रकेतु) पुत्र अमित्रोचेट्स (अमित्रकेतु) की पुष्टि की चेष्टा में एक द्रविड़प्राणायाम प्रतीत होता है।[2] डा० श्रीशाह की खोज कोरी कल्पनामात्र है, यह हम जैनग्रन्थपरीक्षण के पश्चात् ही सिद्ध करेंगे। पाश्चात्यों और तदनुयायी भारतीय लेखकों की कल्पना का खोखलापन 'अशोक' प्रकरण में पुनः सिद्ध करेंगे।

---

१. पु० पा० (पृ० २६)

२ एंशियन्ट इण्डिया टी० एल० शाह, भाग २, पृ० २०४

अनेक प्राचीन संस्कृतग्रन्थों में बिन्दुसार के एक मन्त्री का नाम मिलता है—सुबन्धु, जो एक महान् कवि भी था, यथा अवन्तिसुन्दरीकथा[1] कृष्णचरित[2], नाट्यशास्त्र की अभिनवभारती[3]टीका इत्यादि में। मगध से निष्कामित सुबन्धु किसी वत्सराज का मन्त्री बन गया।[4] इसने 'वत्सराजचरित' रचा था। सुबन्धु का आश्रयदाता वत्सराज उदयन का वंशज होना चाहिये, जिसका नाम अज्ञात है।

बौद्धविद्वान् मातृचेट या मातृचीन भी बिन्दुसार के समकालिक प्रसिद्ध दार्शनिक था।[5] बिन्दुसार की आयु ७० वर्ष की थी।[6]

अशोक मौर्य (वि०पू० १३६५ से वि०पू० १३५६ वि० पू० पर्यन्त)

नामान्तर—अशोक, अशोकवर्द्धन, श्रीअशोक, देवानाप्रिय, इत्यादि नामान्तर।

राज्यकाल—सर्वसम्मति से अशोक का राज्यकाल ३६ वर्ष का था षट्त्रिंशत् समा राजा भविता अशोक एव च।[7] अतः अशोक का राज्यकाल १३६५ वि०पू० से १३५६ वि०पू० तक रहा।

राज्याभिषेक मे विलम्ब—भारतीय इतिहास के सर्वप्रथम अंग्रेज लेखक का मत था कि अशोक के राज्याभिषेक में न्यूनतम चार वर्ष का विलम्ब हुआ।[8] इसका कारण यह बताया जाता है कि बिन्दुसार के १०० पुत्र थे[9], जिनमें राज्य के लिये संघर्ष हुआ सत्ता के हेतु भ्रातृसंघर्ष की बात असम्भव नहीं है। पुराणों में ने समस्त-घटनाओं-यथा भ्रातृसंघर्ष, भ्रातृराज्यकालादि का स्वल्पराज्यकाल छोड़ दिया जाता है। राज्यवर्षों मे पाठान्तर का एक कारण यह भी है।

१. अ० सु० प्रारम्भ श्लोक ६
२. बिन्दुसारस्य नृपतेः स बभूव सभाकविः (श्लोक ३),
३ अ० भा० पृ० २२;
४ कृ० च० श्लोक ५,
५. मंजुश्रीमूलकल्प (श्लोक ६३६—६३६)
६. कुर्याद् वर्षाणि सप्तति (वही ४४६)
७. पु० पा० (पृ० २८)
८. Oxford History of India p. 93
९. बिन्दुसार सुता आसुं मतं एको च विस्सुता। अशोको आसि तेपु तु पुञ्जतेजो बलिद्धिक (महावंश परि० ५,१६)

सिंहलीबौद्धगणना में बुद्धनिर्वाण से अशोक के राज्याभिषेक पर्यन्त २१८ वर्ष गणित किये है।[1] पुराणों के अनुसार बुद्धनिर्वाण से अशोकराज्याभिषेकपर्यन्त ३०७ वर्ष व्यतीत हुये। पं० भगवद्दत्त ने डा० हेमचन्द्ररायचौधरी का मत खण्डित करते हुये पुराणगणना को ही ठीक माना है।[2] हम इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त के मत से पूर्ण सहमत हैं।

अशोकशिलालेखों में यवनराज्य, राजा नहीं—यह हम पूर्वपीठिका भूमिका (पृ० १८०) पर ही सिद्ध कर चुके हैं कि शुद्धबुद्धि से विचार करने पर मानना पड़ेगा कि अशोक के शिलालेखो मे किसी राजा का नाम नही, राज्यो के नाम हैं—मूलोद्धरण द्रष्टव्य—"योजनशतेषु यत्र अंतियोको नम योनरज (राज्ये) परं च तेन अतियोके न चतुरे रजनि (राज्ये) तुरमये नम अन्तकिनि नम मक नाम अलिकसुन्दरो नम नि च चोड पंड अव तम्रपणि·········रजविषवसियोन कबोजेषु नभकनमि तिनभोजपितिनिकेषु अन्ध्रपुलिन्देषु·········।[3]

'एवमपि प्रचंतेषु यथा चोडा पाड़ा सतियपुते केतलपुतो आंतबपणी अंतियोक योन रज···ये वापि अतियोकस सामीपे रजनि (राज्यानि)[4] यह सामान्य बुद्धिवाला पाठक भी सोच सकता है कि जब अशोक के शिलालेखो मे अधिक निकटवर्ती भारतीय राजाओ के नाम नहीं लिखे गये, तब सुदूर के अभारतीय यवनराजाओ के नाम क्यों लिखे जाते। यह केवल पाश्चात्य तिकड़म का ही प्रभाव है कि अनेक सत्यवादी भारतीय लेखक भी इस पाश्चात्यभ्रान्ति के शिकार हो गये।

अत यह निश्चित है जिस प्रकार भारतीय राज्यों—यथा चोड (चोल) अन्ध्र (आन्ध्र), एव यवनकाम्बोजादि का उल्लेख है उसी प्रकार तुरमय, मग आदि राज्यो का ही नामोल्लेख है, राजा का नामोल्लेख होने का प्रश्न ही नही उत्पन्न होता। मौर्यकालीनशिलालेखक भारतीयराजाओं का नाम नही जान सके, परन्तु विदेशी राजाओं के नाम उन्हे रटे हुये थे, यह कदापि नही माना जा सकता। ऐसी स्थिति में पाश्चात्य कल्पना लड़खड़ा जाती है और सत्य का उद्घाटन हो जाता है कि मक (मग) शकराज्य ही शिलालेखो में उल्लिखित है एवं तुरमय प्रसिद्ध तुरुष्क (तुरग) या टर्की राज्य का उल्लेख है, इसी प्रकार अतियोकादि राज्य थे, न कि अन्तियोकस, टालेमी आदि यूनानी राजा।

---

१. महावंश (५/२१)
२. भा० वृ० इ० भा० २ पृ० २७०
३ अशोक शि० ले० शाहबाजगढ़ी पा० स १३
४. गिरनार शि० ले० सं २

पाश्चात्यों को अपनी भ्रान्ति पर ही शंका होती रही है यथा रायचौधरी ने लिखा है'—'डा० स्मिथ के अनुसार, यह अनिश्चित है कि मिस्री राजदूत ने सम्राट् बिन्दुसार को अपना परिचयपत्र आदि दिया या उसके उत्तराधिकारी अशोक को।'' इन्ही रायचौधरी महाशय को इस तथ्य पर परम आश्चर्य है कि "यह महत्वपूर्ण बात है कि यूनानी और लैटिन लेखको ने चन्द्रगुप्त (असल में कोई चन्द्रकेतु = सैण्ड्रोकोटस) अमित्रघात (अमित्रकेतु = अमित्रोचेटस का शुद्ध) का नाम तो लिया है, किन्तु इन लेखको ने अशोक का कहीं भी उल्लेख नही किया। यह एक दुर्बोध्य तथ्य है कि जिन बाहरी राजदूतो के लेखों का बाद के इतिहासकारो ने प्रयोग किया है, यदि वे अशोक के समय भी भारत आये थे तो इन्होने इस तीसरे महान् मौर्यसम्राट् का उल्लेख नही किया ?[2] "सत्य यह है कि तथाकथित ग्रीक लेखक मौर्यकाल में भारत में आये ही नहीं, वे सातवाहन राज्यकाल के अन्तिम वर्षों (तृतीय विक्रम शतीपूर्व) में आये थे, यूनानी लेखको द्वारा वर्णित चन्द्रकेतु (सैण्ड्रोकोटस) और अमित्रोचेटस (अमित्रकेतु) शाल्वावयव (गणराज्य) के सातवाहनकालीन पजाबी छोटे राजा थे, जिनका सिकन्दर से पाला पड़ा, अत यूनानी वृत्तो में अशोक या चाणक्य का उल्लेख ढूंढना मृगमरीचिकामात्र है।

अशोक शिलालेखो से अलबेरूनी के इस कथन की पुष्टि होती है कि 'पुराने काल में खुरासान, पर्सिस, इराक, मोसुल, सीरिया की सीमा तक का देश बौद्धमतावलम्बी था।'[3] अशोकशिलालेखों एवं अलबेरूनी के लेख मे सगति है कि विक्रम या ईसा से सहस्रोंवर्षपूर्व पश्चिमी एशिया मे बौद्धमत का प्रचार था।

भारतीयपुराण, अशोक शिलालेख, अलबेरूनी सदृश विदेशी लेखक एक ही सत्य को उद्घाटित कर रहे हैं कि विलियम जोन्स की कल्पना सर्वथा झूठी है कि चन्द्रगुप्तमौर्य और सिकन्दर समकालिक थे। मौर्यकाल पुराण से वही सिद्ध है जो पं० भगवद्दत्त और हमने लिखा है।

पं० भगवद्दत्त भी उपर्युक्त सक आदि (गण) जो स्पष्ट ही जाति या देश (सक-शक) का नाम थे, पाश्चात्य भ्रान्ति से उन्हे राजा मानते थे, तथापि उन्हे उनके यूनानी होने पर शका थी—"कई लेखको ने इनमें तुरमय को मिस्र का राजा माना है। यह बात अधिक सरयता से (तव) जानी जा सकती है यदि अशोक के योजन का ठीक परिणाम ज्ञात किया जाये (भा० बृ० इ० भा० २ पृ० २७)

१. प्रा० भा० इ० पृ० २२०,

२. वही, पृ० २२०-२२१

३. अलबेरूनी का भारत,

कुणाल—यह अशोक का उत्तराधिकारी औरस पुत्र था, जिसके रानी तिष्य-रक्षिता (अशोकपत्नी) द्वारा अन्धे करने की कथाये प्राचीन वाङ्मय में विख्यात हैं।

पुराणो में इसके अनेक नाम मिलते हैं—यथा, कुलाल,[1] कुणाल,[2] काशाल, नुशाल, सुधास, सुयश, और सुपार्श्व इत्यादि। इसका ही नाम राजतंरगिणी मे जलोक लिखा है, जो कश्मीर का शासक बनाया गया। निश्चय ही कुणाल ने आठ वर्ष शासन किया और वह मौर्य सम्राट था, परन्तु अन्ध होने के कारण संभवत वह स्वयं सिंहासन से हट गया। स्वल्पकालीन शासन के कारण ही जैन और बौद्ध ग्रन्थ संप्रति को अशोक का उत्तराधिकारी मानते है। कुणाल का राज्यकाल १३५६ वि० पू० से १३५१ वि० पू० तक रहा। कुणाल के पश्चात् सम्भवत. उसके अनेक भ्राताओ ने राज्य सँभाला। निम्न श्लोक पर पुराणपाठ कुछ त्रुटित हुआ है, जिसके अनुसार सात भ्राताओ ने १० वर्ष राज्य किया—

सप्ताना दश वर्षाणि (पु० पा० श्लो० २७)

इससे पश्चात् अशोक का पौत्र (नप्ता) राजा हुआ—

तस्य नप्ता भविष्यति (पु० पा० पृ० २७)

अत: १३५१ वि० पू० से १३४१ वि० पू० तक कुणाल के सात भ्राताओ का थोडे समय या एक साथ शासन रहा, तदनन्तर अशोकनप्ता और कुणाल का पुत्र दशरथ राजा हुआ।

दशरथ—विभिन्न ग्रन्थो—पुराणादि मे उत्तराधिकारियो का क्रम विभिन्न रूप से उल्लिखित है, जो इस प्रकार है—

वायु०—दशरथ (बन्धुपालित), इन्द्रपालित, देवधर्मा, शतधन्वा बृहद्रथ।

मत्स्य०—दशरथ, सप्रति, शतधन्वा, बृहद्रथ

विष्णु०—सुयशा, दशरथ, सगत, शालिशूक, सोमशर्मा, शतधन्वा, बृहद्रथ।

दिव्यावदान—सम्पदि, बृहस्पति, वृषसेन, पुष्यधर्मा, पुष्यमित्र।

इसमे दिव्यावदान—बौद्धग्रन्थ का लेख पर्याप्त भ्रष्ट एवं त्रुटित है, जिसमे अन्तिम मौर्यशासक, जिसका राज्यकाल पुराणो मे ७० या ८७ वर्ष उल्लिखित है, नामोल्लेख ही नहीं, यह भ्रष्टता का सर्वाधिक प्रमाण है।

---

१. वायु० पुराणपाठ

२. पु० पा० (श्लो० स० ३०)

पं० भगवद्दत्त ने दशरथ (नप्ता) के विषय मे लिखा है "पुराणों की तुलना से पता चलता है कि वह बन्धुपालित नाम से प्रख्यात हुआ। अपने सम्प्रति आदि भाइयो की रक्षा करने के कारण वह बन्धुपालित हुआ'[1] (कहलाया)

दशरथ के तीन लघु शिलालेख बिहार मे गया के निकट नागार्जुनी पर्वत पर मिले है, जिनमें आजीवकों को दान का उल्लेख है तथा उसको "देवानांप्रिय,' कहा है।[2] इससे स्पष्ट है कि 'देवानांप्रिय' उपाधि केवल अशोक के लिए ही नहीं न्यूनतम समस्त मौर्यशासकों की उपाधि थी।

दशरथ का राज्यकाल आठ वर्ष १३४१ वि० पू० से १३३३ वि० पू० तक रहा।

इन्द्रपालित—रायचौधुरी का यह मत पूर्णत भ्रामक है—"इन्द्रपालित को सम्प्रति या शालिशूक कह सकते हैं, क्योंकि बन्धुपालित को हम दशरथ सम्प्रति मान रहें हैं।[3]

ये सभी पृथक् पृथक् राजा थे, पुराणपाठ त्रुटित होने से ऐसा आभास होता है। दशरथ (बन्धुपालित), इन्द्रपालित और सम्प्रति सभी कुणाल के पुत्र और परस्पर भ्राता थे, जिन्होंने क्रमश राज्य किया।

इन्द्रपालित का राज्यकाल १० या १७ वर्ष उल्लिखित है—

दशभाव इन्द्रपालित.।[4]

पार्जीटर पुराणपाठ की त्रुटि के कारण उपर्युक्त श्लोक को ठीक नहीं बना सका परन्तु उसका अनुमान था—And I have amended it so, but it might also be 'दश अब्दान्, इन्द्रपालित': as suggested in e va'' नारायण शास्त्री के मत्स्य मे इन्द्रपालित का राज्यकाल १७ वर्ष और कलिराजवृतांत मे ७० वर्ष है। स्पष्ट है राज्यकाल मे न्यूनतम ६० वर्ष गड़बड़ रही, न जाने मौर्यवंशियो

---

१ भा० बृ० इ०भा० २, पृ० २७२,

२. "दशलथेन देवाना पियेन" (नागार्जुनी गुहालेखा १, २, ३,),

३. प्रा० भा० रा० इ० पृ० २५८,

४. पु० पा० (पृ० २६)

५. वही, पा० टि० स० ३४,

या म्लेच्छों का मगध में शासक रहा। यदि ७० वर्ष राज्य में गड़बड़ी या अराजकता रही तब अशोकपौत्र सम्प्रति के शासन का प्रारम्भ १३२३ वि० पू० के स्थान पर १२६३ वि० पू० प्रारम्भ मानना चाहिए।

सम्प्रति—यह अशोक का पौत्र और कुणाल का कनिष्ठपुत्र था। यह जैन धर्म का प्रथम मौर्यसंरक्षक था।[1] परन्तु जैनग्रन्थ थेरावली का यह मत सत्य नहीं कि जैनमुनि सुहस्ती ने अशोक के सम्मुख सम्प्रति को जैनधर्म की दीक्षा दी। इस समयतक अशोक के जीवित होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

सम्प्रति का राज्यकाल ९ वर्ष, १२६३ वि० पू० से १२५४ वि० पू० तक रहा होगा।

हर्षवर्धन—इन्द्रपालितमौर्य के समय से ही मौर्य राज्योत्तराधिकार में गड़बड़ रही इसका एक प्रमाण नारायणशास्त्री के मत्स्यपाठ से अनुमानित होता है। जहाँ पर हर्षवर्धन को इन्द्रपालित का उत्तराधिकारी बताया है।[2] जिसका राज्यकाल ८ वर्ष था।[3] अतः इन्द्रपालित से शालिशूक मौर्य पर्यन्त लगभग एकशती (१०० वर्ष) अराजकता सी रही।

शालिशूक—इसके समय कितनी भीषण अराजक स्थिति रही, जिसका स्पष्ट आभास युगपुराण के पाठ (यद्यपि भ्रष्टपाठ है) से लगता है।[4] श्री माकड ने भी युगपुराण के पाठ से यही परिणाम निकाला है।[5] माकड ने युगपुराण के आधार पर शासन का क्रम इस प्रकार रखा है—

शालिशूक मौर्य
|
यवन
|
अराजकता
|
४ राजा (ग्राम्लाटादिशक राजा)

---

१. त्रिखण्ड भरतक्षेत्रं जिनामानमखण्डित (पाटलिपुत्रकल्प-जिनप्रभसूरिकृत,) तथा द्र० विविधतीर्थकल्प, पृ० २ (श्लोक ३५),

२. ना प्र० प० भा० १०, अंक ४,

३. भा० बृ० इ० भा० २ पृ. २६३

४. भविष्यति नृपः कश्चिन्न वा कश्चिद् भविष्यति (यु० पु० नं० १३१)

५. The evidence of Y.P. makes it clear that there was a period at Magadha between Mauryas and the Sungas, during which no indigenous independent native King ruled there. In other words, it was a period of foreign rule and of disorder ie. a Kingless period (p, 22) वही, पृ० २१,

यह अराजकता एक शती तक अवश्य रही होगी, यद्यपि मांकड एरियन के प्रमाण से ३०० वर्ष और १२० वर्ष की मानते हैं। परन्तु यह नहीं है इतने दीर्घकालपर्यन्त तक अराजकता या यवनशासन नहीं रह सकता।

यवनाक्रमणसम्बन्धिभ्रान्तिनिराकरण—डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने युग पुराण का एक काल्पनिक पाठ बनाया—धर्ममीततमा वृद्धा जन मोक्ष्यन्ति निर्भया:।[1] यह पाठ बनाकर जायसवाल ने कल्पना की यह धर्ममीत यूनानी डेमेट्रियस था। परन्तु मांकड के पाठ में धर्मभीतपाठ है, जिसका स्पष्ट अर्थ है 'धर्म से भयभीत जन' किसी व्यक्ति विशेष का उल्लेख नहीं।

बृहस्पति या बृहस्पतिमित्र ?—दिव्यावदान मे बृहस्पति और खारवेल के हाथीगुफा लेख में 'बृहस्पतिमित्र' नाम है।[2] इस बृहस्पतिमित्र को जायसवालादि पुष्यमित्रशुंग मानकर यवन आक्रमण को, डेमेट्रियस के आक्रमण को लगभग २०० वि० पू० मानकर शुङ्गों का समय निश्चित करते हैं। परन्तु दिव्यावदान मे केवल बृहस्पतिमित्र है जो सम्प्रति का उत्तराधिकारी है, अत. वह पुष्यमित्रशुंग कदापि नहीं हो सकता।

बृहस्पतिमित्र आन्ध्रसातवाहन समकालिक राजा—अत दिव्यावदान का बृहस्पति और हाथीगुफा का बृहस्पतिमित्र एक नहीं है। यह खारवेलसमकालिक बृहस्पतिमित्र आन्ध्रसातवाहनकालीन कोई मित्रवशी राजा था, जिसकी मुद्रायें अहिच्छत्रा आदि मे मिली है।[3] कौशाम्बी के निकट पभोसा स्थान के एक लेख मे भागवत (भागवत नवम शुंग राजा) का पौत्र था। अत. बृहस्पमित्र प्रथम या द्वितीय आन्ध्रराजा—कृष्ण या श्रीमल्लशतकर्णी के समकालिक हो सकता है। अत. खारवेल और बृहस्पतिमित्रप्रारम्भिक शातकर्णि के समकालिक थे। इस बृहस्पति-मित्र का मौर्य या शुगो के समकालिक होना प्रसिद्ध एव असभव है। अत. खारवेल और बृहस्पतिमित्र ६५० वि० पू० के मध्य के राजा थे। पं० भगवद्दत्त इनको शालिशूक मौर्य के समकालिक मानते हैं. वह इतिहासविरुद्ध एव असिद्ध है।[4]

---

१. वही, पृ० ३४, प० १९१,

२. मागधं च राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति

३. अग्निमित्र, भानुमित्र, भूमिमित्र, बृहस्पतिमित्र, ध्रुवमित्र आदि मित्रवंशी द्वादश राजाओ का राज्यकाल आधुनिक लेखक दो शती ई०पू० मानते हैं। वस्तुत: मित्रवशी राजा बृहस्पतिमित्र, कलिंगराज खारवेल और आन्ध्रसातकर्णी (सातकनि-खा० शि०) का समकालिक होगा, जिसका समय प्राय: ६०० वि० वि० या, यह आगे विचारणीय है।

४. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० २७३.

शालिशूक के समय किस यवनराज ने आक्रमण किया तथा खारवेल ने किस यवनराज को हराया—यह भी अज्ञात है। यवनों के सैंकड़ो राजा हुए, यवनों के आक्रमण भारत पर सगर के समय से ही होते रहे थे। अतः इन सबको एक 'यवन-राज' बना देना महामूर्खता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। केवल 'यवन' या 'यवनराज' शब्द के आधार पर किसी व्यक्ति का समय निर्धारित नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार खारवेल के शिलालेख में नन्दराज के कालान्तर का कोई उल्लेख नहीं है, यह सब भ्रान्त कल्पनामात्र हैं।

समय—शालिशूक का एकदम सही समय तो निर्णीत नहीं किया जा सकता, परन्तु उसका समय १२५४ वि० पू० से १२४१ वि० पू० या १२५४ वि० पू० से १२०० वि० पू० के मध्य कभी होना चाहिए।

शालिशूक के पश्चात् न्यूनतम एकशती की अराजकता यह म्लेच्छ राज्य रहा; अत. देववर्मा या सोमशर्मा मौर्य का राज्य १२०० वि० पू० से ११०० वि० पू० के मध्य कभी रहा या अराजकता के अन्त मे ११०७ वि० पू० मे ११०० वि० पू० उसका राज्यकाल होना चाहिये।

मौर्यकाल शुंगकाल और आन्ध्रपूर्व न्यूनतम ३०० वर्ष के राज्यवर्षों की गणना पुराणो में नहीं की है, इसका स्पष्टीकरण सातवाहनप्रकरण मे करेंगे।

देववर्मा या सोमशर्मा—यह ऊपर लिख चुके हैं कि इसका राज्यकाल अराजकता या म्लेच्छराज्य के मध्य ११०७ वि० पू० से ११०० वि० पू० अनुमानित है।

शतधन्वा या (पुष्यधर्मा)—इसका राज्यकाल ८ वर्ष, ११०० वि० पू० से १०९२ वि० मध्य होना चाहिये। इस समय अराजकता चल ही रही थी।

बृहद्रथ—अन्तिम मौर्यसम्राट का राज्यकाल ७०, ८७' या ८० वर्ष पर्यन्त बताया गया है। निश्चय ही शतधन्वा और बृहद्रथ के मध्य को अराजकता के अनेक वर्ष इसकाल मे सम्मिलित होने से यह वर्षान्तर किया गया है। कुछ वर्तमान पुराणपाठो एव अवन्तिसुन्दरीकथासार मे इसका राज्यकाल केवल ७ वर्ष लिखा है अतः न्यूनतम ७० वर्ष, अराजता या म्लेच्छराज्य के होंगे। बृहद्रथ की आयु ८७ या ८८ वर्ष की होगी, क्योंकि दिव्यावदान के अनुसार अतीववृद्ध बृहद्रथ को पुष्यमित्र ने मारा था।[1] यहा पर दिव्यावदान का पाठ अत्यन्त भ्रष्ट हुआ है, जिससे प०

---

१. पुष्यमित्रस्तु सेनानीर्महाबलपराक्रमः। अतीववृद्धं राजानं समुद्धृत्य बृहद्रथम्।

भगवद्दत्त को पुष्यमित्र (शुंग) को बृहद्रथ मौर्य मानने की भ्रांति हुई है। दिव्यावदान की पाठभ्रष्टता में बाणभट्टकृत हर्षचरित और पुराण प्रामाण्य है।[1]

अतः पं० भगवद्दत्त को दिव्यावदान की पाठभ्रष्टता के आधार पर बृहद्रथ मौर्य और पुष्यमित्रशुंग को एक मानना महती भ्रांतिमात्र है।[2]

पतञ्जलि के प्रामाण्य से ज्ञात होता है कि इस समय मौर्यकुल या वृषलकुल अतिसंकुचित या समाप्तप्राय हो गया था।[3]

अन्तकाल—अत: मौर्यवंश का अन्तकाल ११०० वि० पू० के १००० वि० पू० मध्य या इसके आसपास हुआ। यह निश्चित है, परन्तु एकदम सही वर्ष बताना इस समय असंभव है, क्योंकि पुराणपाठों में पर्याप्त भ्रष्टता है।

शुंगवंश

वंशमूल और संस्थापक---बृहद्रथ मौर्य तथा उसके पुत्र पाणिचन्द्र[4] को मारने वाला पुष्यमित्र शुंग किस ब्राह्मणकुल का व्यक्ति था, इस पर आधुनिक लेखकों ने पर्याप्त विवाद किया है।[5] भरद्वाज ऋषि के वंश के शुंगब्राह्मण प्रसिद्ध थे।[6] परन्तु पाणिनिसूत्र (अष्टा० ४,२,११६) के अनुसार शुंग ऋषि के वंशज शौंग, शौङ्गि, शौंगायन, शौंगायनि इत्यादि कहे जाने चाहिए, ऐसा पं० भगवद्दत्त का मत है।[7] यद्यपि हम ऐसा नहीं मानते क्योंकि भृगु के वंशज भी भृगु भी कहे जाते थे। व्याकरण के तद्धितसम्बन्धी नियम वैकल्पिक भी थे, तथापि हरिवंशपुराण, बौधायन श्रौतप्रवरसूत्र, कात्यायनवार्तिक, पातञ्जलमहाभाष्य और महाकवि कालिदास के

१. सेनानीः अनार्यो मौर्य बृहद्रथ पिपेष पुष्यमित्र स्वामिनम् (हर्ष० ष० उ०)
'पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्यस बृहद्रथम्। (पु० पा० पृ० ३१)
२. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० २७४),
३. कुड्यीभूतं वृषलकुलमम् (महाभाष्य ६/३/६१)
४. ज० वि० ओ० रि० सो० भाग २७, २२३,
५. द्र० प्रा० भा० रा० इ० (रायचौधुरी) पृ० २७० भा० बृ० इ० भा० २ पृ० २७७,
६. वंशब्राह्मण १२/१५१५, बृहदारण्यक ६/४/३१)
७. यदि पुष्यमित्र का इन दोनों में से से किसी से भी कोई सम्बन्ध होता तो वह शौंग या शौंगि कहाता (भा० बृ० इ० भा० २ पृ० २७७),

प्रामाण्य से शुंग की वैम्बकिशाखा काश्यपगोत्रीय थी, जिसका वंशज ही पुष्यमित्र था—उपर्युक्त प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

> औद्भिजो भविता कश्चित्सेनानी: काश्यपोद्विजः।
> अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति।[1]

बौधायन श्रौतसूत्र (प्रवराध्याय) मे काश्यपों मे निध्रुवऋषि के वंशज वैम्बिक गोत्र-प्रवर सम्मिलित है।

वैयाकरणकात्यायन का वार्तिक है—व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यं[2] बिम्ब का पुत्र या वंशज वैम्बकि कहलाता था—

दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि वैम्बिकानां कुलव्रतम्।[3]

अतः पुष्यमित्र काश्यपगोत्रीय शुंगवंश के बिम्बकुलका ब्राह्मण था, यह निश्चित होता है।

सेनानी, पुष्यमित्र का विरुद था। इसने दो अश्वमेधो का सम्पादन किया था—[4]"कौसलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापते पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकीपुत्रेण।"

राज्यकाल—ब्रह्माण्डपुराण मे दश शुंग नृपतियों का राज्यकाल १४२ वर्ष, मत्स्यपुराण में १०० वर्ष, वायु० ने १३५ वर्ष और अवन्तिसु० कथासार मे ११२ वर्ष बताया गया है। आधुनिक इतिहासकार यद्यपि किसी निश्चित वर्षसंख्या पर विश्वास नही करते, परन्तु उनकी प्रवृत्ति न्यूनतम काल ११२ वर्ष मानने की है।

'श्रीनारायणशास्त्री ने' मत्स्य और कलियुगराजवृत्तांत से प्रत्येक राजा का जो राज्यकाल दिया है उसका योग ३०० वर्ष ही बनता है। (भा० बृ० इ० भा० २ पृ० २७०)। हमारा अनुमान और संगति है कि दश शुंगराजाओं का राज्यकाल डेढ़शती या ठीक १४२ वर्ष ही था, परन्तु बीच-बीच मे स्वल्पकालिक राजाओं, म्लेच्छ राजाओं अथवा अराजकताकाल को मिला कर ३०० वर्ष लगभग के पश्चात् शुंगसाम्राज्य का अन्त हुआ। युगपुराण उल्लिखित अराजकता का चित्र शालिशूक मौर्य के प्रसग मे सकेत कर चुके है कि किस प्रकार अनेक स्वल्पकालिक एव अनेक यवनशकनरेशों ने बीच-बीच में दीर्घकालपर्यन्त शासन किया। भागवत

---

१. हरि (३/२/४०),
२. अ० (४/१/९७)
३. मालविका० (४/१४)
४. धनदेव का अयोध्या शि० ले०

पुराण के निम्न पाठ से भी पुष्ट होता है जिसको पार्जीटर ने डायनेस्टीज और कलिएज पृष्ठ ३५ की पाद टिप्पणी में उद्धृत किया है—

काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च।
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणि च कलौयुगे।[1]"

काण्वों या काण्वायनो का राज्यकाल प्रायः सभी पुराणों में ४५ वर्ष माना गया है, केवल भागवत में यह तथ्य सुरक्षित है कि शुंगो और काण्वो के मध्य ३०० वर्ष ऐसे थे, जिनको किसी पुराण ने किसी भी राजवंश के शासनकाल मे सम्मिलित नहीं किया। भागवत में किसी पुरातनपाठ के अनुसार यह तथ्य सुरक्षित रह गया कि शुंगो और काण्वों के मध्य ३०० वर्ष की अराजकता और थी, जिसे प्रायः गणित नहीं किया जाता।

उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि एक अन्य प्रकार से पुराणो द्वारा होती है कि महापद्म नन्द से आन्ध्रसातवाहनपूर्वकाल (आन्ध्रोदय) तक ८३६ वर्ष व्यतीत हुए थे—

पुलोमास्तु तथा ऽन्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः
अन्तर तथा चैतान्यष्टौ षट्त्रिंशत् समास्तथा।[2]

पार्जीटर का तह पुराणपाठ सत्य माना जाय तो महापद्मनन्द अभिषेक से पुलोमा (१५ वाँ सातवाहन राजा) तक ८३६ वर्ष व्यतीत हुये, इस दृष्टि से पुलोमाप्रथम का राज्यकाल ७१२ वि० पू० से प्रारम्भ होना चाहिये।

पुराणो के एक अन्य प्राचीनपाठ जिसके सोपपत्तिक अर्थ का सर्वप्रथम पं० उदयवीरशास्त्री ने प० भगवद्दत्त का ध्यान आकर्षित किया—"पार्जीटर ने अन्ध्राणते' मे अन्ध्राणमन्ते अर्थ बनाया। हमने पहले यही अर्थ स्वीकार किया था। पर कार्तिक पूर्णिमा, संवत २००६ के एक पत्र मे प० उदयवीर शास्त्री ने उपपत्तिसहित हमे लिखा कि इस पंक्ति का वह अर्थ कदापि नही बन सकता। पूर्ण विचार के अनन्तर हमें पण्डितजी का सुझाव ठीक जान पडा। तब हमने पार्जिटर के सारे तर्क पर पुनः गम्भीर विचार किया। वह हमे युक्त प्रतीत नही हुआ। पुराण का २४०० वर्ष का काल आन्ध्रो के आरम्भ तक ही है।[3]

पुराणो के विभिन्नपाठो के अनुसार परीक्षित् से नन्दतक १५०० वर्ष और परीक्षित् से आन्ध्रपूर्वतक २४०० वर्ष तथा नन्द से आन्ध्रपूर्व तक ८३६ वर्ष होते

१. भाग० (१२/१)
२. पु० पा० (पृ० ५८)
३. सप्तर्षयस्तदा 'प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम्। सप्तविंशैः शतैर्भाव्या आन्ध्राणान्तेऽन्वयाःपुनः। (वायु० ९९/४१८)

हैं। अतः पुराणों के सर्वविधसाक्ष्य के आधार पर परीक्षित् से सातवाहनपूर्वतक २४०० वर्ष या लगभग २४ शताब्दियाँ व्यतीत हुई। नारायणशास्त्री के कलिराज वृत्तान्त से भी यही पुष्ट होता है।

अतः शुंगो का राज्यारम्भ १०५० वि० पू० प्रारम्भ हुआ और अन्त ७५० वि० पू० के आसपास हुआ।

पुष्यमित्र—इसका राज्यकाल पुराणपाठो मे ६६ और ३६ वर्ष उल्लिखित है—समाःषष्टिः षडेव तु।

पाठान्तर—षट्त्रिंशत् समा नृप[1]

पुष्यमित्र का राज्यकाल निश्चय दीर्घ था, इसीलिये उसका पुत्र अग्निमित्र केवल ८ वर्ष राज्य कर पाया, क्योंकि पुष्यमित्र ने अतिवृद्धावस्थापर्यन्त राज्य किया। अतः उसका राज्यकाल १०५० वि० पू० से ६६० वि० पू० तक होना चाहिये, उसका राज्यकाल विक्रम से लगभग एक सहस्राब्दी पूर्व था, एकदम ठीक वर्षसंख्या वर्तमानपाठो के आधार नही दी जा सकती, परन्तु जो लोग पुष्यमित्र को ईसा से लगभग २०० वर्ष पूर्व मानते है वे सर्वथा भ्रान्त हैं और उनकी गणना मे लगभग ८०० वर्ष की त्रुटि है और जो लोग पुष्यमित्र का समय विक्रम से १२०० वर्षपूर्व मानते हैं, उनकी मान्यता मे भी त्रुटि है।[2] मीमांसकजी ने पतञ्जलि का समय विभिन्न कल्पनाओ से १५०० वि० पू० या २००० वि० पू० माना है, उसमे निजी कल्पनाप्रौढत्व के अतिरिक्त कोई भी साक्ष्य नही है।

पुष्यमित्रसमकालिक व्यक्ति

पतञ्जलि—निम्न उद्धरणो मे महाभाष्यकार वैयाकरणपतञ्जलि[3] ने मौर्यकुल की विनष्टि और पुष्यमित्रशुंग की समुन्नति की ओर संकेत किया है, अतः पतंजलि शुगों के समय अवश्य जीवित थे, भले ही वे पूर्वकाल (मौर्यकाल) मे भी हो सकते है, क्योंकि प्राचीन इतिवृत मे पतञ्जलिको दीर्घजीवी माना गया है—

---

१. पु० पा० (पृ० ३१)

२. युधिष्ठिरमीमांसक का आनुमानिक मत द्रष्टव्य है—"भारतीय पौराणिक कालगणनानुसार पुष्यमित्र का काल विक्रम से लगभग १२०० वर्ष पूर्व ठहरता है। (सं० व्या० इ० पृ० ३४)

३. महाभारतकाल से पूर्व भी पतञ्जलि या पतञ्जल नाम के अनेक व्यक्ति हो चुके है, अतः पतञ्जलि अनेक थे, शुंगयुगीन पतञ्जलि महाभाष्यकार का *समयनिर्देश ही यहां अभिप्रेत है।*

(१) काण्डीभूतं वृषलकुलम् (महाभाष्य' ६/३/६१)

(२) पुष्यमित्रसभा (वही० १/१/६८)

(३) इह पुष्यमित्रं याजयामः ।[१] (वही ३/२/१२३)

(४) पुष्यमित्रो यजते, याजका याजयन्ति (वही० ३/१/२६१)

यवन—यवनों के आक्रमण शैशुनागकाल और मौर्यकाल के समान शुंगकाल में भी हुए। पतञ्जलि ने इसका संकेत किया है—

> अरुणद् यवनः साकेतम्।
> अरुणद् यवनो माध्यमिकाम् (महा० ३/२/१११)

कुछ लोग इस यवन (राज) को मेनान्डर या डेमेट्रियस (दत्तमित्र) मानते हैं। यह महती भ्रान्ति है। युगपुराण में इसी यवन आक्रमण का संकेत है, परन्तु उसका नाम ज्ञात नहीं—"मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्धदुर्मदाः।" इन यवनों ने दीर्घकालपर्यन्त भारत में अराजकता उत्पन्न की, तदनन्तर यवनों और शकों के राज्य स्थापित हुए। यवनों का क्षय परस्पर संघर्ष से हुआ—

> आत्मचक्रोत्थितं घोरं युद्धं परमदारुणम्।
> ततो युगवशात्तेषां यवनानां परिक्षये ॥[२]

एक यवनयुद्ध का उल्लेख मालविकाग्निमित्र नाटक में है।

उपर्युक्त सभी यवन आक्रमणों या अराजकता को एक मानना महती भ्रान्ति है इसी प्रकार बृहस्पति या बृहस्पतिमित्र और कलिंगाधिपति चेत्र खारवेल को पुष्यमित्र समकालिक मानना इतिहासविरुद्ध है। बृहस्पतिमित्र सर्वथा पृथक् और उत्तरकालिक शासक था। जिसके समकालिक उक्त खारवेल हुआ। खारवेल, बृहस्पतिमित्र और शातकर्णि का समय ७०० वि० पू० से ६५० वि० पू० के मध्य में होना चाहिए।

अग्निमित्र—पुष्यमित्र की जीवितावस्था में उसका ज्येष्ठपुत्र अग्निमित्र विदिशा का राजा (युवराज) संभवत २४ वर्ष रहा, तदन्तर वह पितृदेहान्त पर ८ वर्ष पर्यन्त मगधसम्राट् हुआ।

१. प्रा० भा० रा० इ० (पृ० २८२),

२. यु० पु० (पंक्ति ११२)

३. इ० (पृ० पा० ११५-११६)

प्राचीनकाल के अग्निमित्र नाम के अनेक राजा हुए थे, जिनमें एक प्रसिद्ध क्षुद्रक (शूद्रक) वंश[१] में हुआ, दूसरा पचाल या मध्यदेश का राजा था, जिसकी मुद्रायें वहां मिली है।[२] इसी पाचांलदेश मे मित्रकुल मे बृहस्पतिमित्र हुआ, था जिसका उल्लेख खारवेल के हाथिगुफा लेख में है।

दण्डी ने इसी भ्रांति के आधार पर मूलदेवमौर्य का अन्तकर्त्ता अग्निमित्रशुंग को माना है[३] जो ऐतिह्यविरुद्ध है। मूलदेव का हन्ता अग्निमित्र शूद्रक था। दण्डी की भ्रान्ति का कारण नामसाम्य ही है। मूलदेवमौर्य बहुत उत्तरकालीन व्यक्ति था।

अग्निमित्रशुंग ९९० वि० पू० से ९७४ वि० पू० तक मगध सम्राट् रहा।

३. **वसुज्येष्ठ**—इसका एक नामान्तर विशाख सुज्येष्ठ मिलता है।[४] इसको ही कुछ इतिहासकार ज्येष्ठमित्र मानते है, जिसकी मुद्रा में मिलती हैं।[५] हम इस ज्येष्ठमित्र को शुंगवंश का नही मानते, वह पाचालराज अन्य मित्रवशीय राजा था। वसुज्येष्ठ संभवत अग्निमित्र का ज्येष्ठ पुत्र था, जिसका राज्यकाल ७ वर्ष, ९८२ वि० पू० से ९६५ वि० पू० तक था।

४. **वसुमित्र**—यह अग्निमित्र का द्वितीय पुत्र था, जिसका राज्यकाल १० वर्ष[६], ९७५ वि०पू० से ९६५ वि०पू० तक रहा।

अग्निमित्र का तृतीय पुत्र सुमित्र था जिसका वध मित्रदेव[७] ने किया।

५. **पृथुक्**—यह वसुमित्र का उत्तराधिकारी हुआ। भागवतपु० में इसका नाम भद्रक है, विष्णु० मे आर्द्रक और ओद्रुक, वायु० मे अान्ध्रक तथा मत्स्य मे अन्तक है। डा० काशीप्रसाद जायसवाल पभोसा लेख के 'उदाक' को भी इसी का नामान्तर मानते थे। परन्तु यह आषाढसेन और गोपाली वैहिदरी का पुत्र और

---

१. पं० भगवद्दत्त, ने (भा० वृ० इ० भा २, पृ० २७९) "शूद्रकवंश था"; इत्यादि द्वादश बातो का सम्बन्ध अग्निमित्र शुंग से जोड़ने की चेष्टा की है, इनमें से एक भी बात: शुंगराजा के ऊपर नही घटती। शूद्रक अग्निमित्र और शूद्रक वंश का विवरण आगे प्रस्तुत करेंगे।

२. कोइन्स ऑफ एशेन्ट इण्डिया, कनिंघम, पृ ७९।

३. पुष्यमित्रो नाम शुंगो ज्वलितमौर्यवंश च मूलदेवं युधि निहत्य षट्त्रिंशत् समाः स्थास्यति (अवन्तिसुरीकथा,……)

४. पु० पा० (पृ ३१, पाटि० ११)।

५. कोइन्स ऑफ इण्डिया (पृ० ७४)

६. वसुमित्रसुतो भविता दश वर्षाणि पार्थिव (पु० पा० ३१)

७. हर्षचरित (षष्ठ उच्छ्०)

बृहस्पतिमित्र के मामा का पुत्र था। आषाढसेन अहिच्छत्रा (पांचाल) का राजा था।[1] अतः 'उदाक' पृथुक शुंग नही हो सकता। इसी प्रकार बेसनगर के गरुडस्तम्भलेख के भागभद्र को शुंग भागवत मानना भी जायसवाल की कोरी कल्पना माननी चाहिये।

पृथुक का राज्यकाल केवल दो वर्ष था। ६६५ वि०पू० से ६६३ वि०पू०।

६. पुलिन्दक—धनदेव के अयोध्यालेख में इसको कौशिकीपुत्र और पुष्यमित्र से षष्ठ राजा कहा गया (द्र पूर्व पृष्ठ ५६) पुराणो मे इसका राज्यकाल ३ वर्ष, ६६३ वि०पू० से ६६० वि०पू० था। यदि इन राजाओ के मध्य मे अन्य यवनशकम्लेच्छ राजाओ ने राज्य किया तो पुलिन्दक का राज्यकाल और उत्तरकाल मे होगा।

७. घोष—इसके नामान्तर मिलते हैं—योमेघ, योषवसु, घोषसुत।[2] इसका राज्यकाल ३ वर्ष था।

८ वज्रमित्र—इसका राज्यकाल ७ या ८ वर्ष था।[3]

९ भागवत—इसका राज्यकाल ३२ वर्ष था।[4] जायसवालादि यूनानी राजदूत हेलिओडोरस के गरुडस्तम्भ मे उल्लिखित काशीपुत्र (कौत्सीपुत्र, कौशिकीपुत्र) भागभद्र को भागवतशुंग मानते हैं[5] जो अप्रसिद्ध मत है। कौत्सीपुत्र भागभद्र का समय और वंश अज्ञात है।

१० देवभूति—इसका राज्यकाल १० वर्ष था। इसका वध इसके अमात्य वसुदेव काण्व ने किया—देवभूति की दासीकन्या द्वारा।[6]

अराजकयुग—इस विषय मे हम पूर्वपृष्ठो पर लिख चुके है कि शुंग और कण्वो के मध्य लगभग ३०० वर्ष की अराजकता या म्लेच्छराज्य रहा। परन्तु इसका स्पष्ट विवरण अभी तक नहीं मिला, युगपुराण मे कुछ संकेत हैं तथा भागवतपुराण में इन ३०० वर्षो को काण्वो के राज्यकाल मे जोड दिया है।

---

१ प्रा० भा० रा० इ० पृ० २८७

२. पु० पा० पृ० ३२, वि० स० ३१,

३ सप्त वै वज्रमित्रस्तु (वही पृ० ३२)।

४. द्वात्रिंशत् भविता चापि समा भागवतो नृपः। (पु० पा० पृ० ३२)

५. 'कौत्सीपुत्रस्य भागभद्रस्य'

६. हर्षचरित, ष० उ०

काण्ववंश

काण्वराज्यकाल—भागवत में काण्वराज्यकाल ३४५ वर्ष बताया है, जो यद्यपि तथ्य नहीं, तथापि इसमें अराजकयुग के ३०० वर्ष जोडकर एक ऐतिहासिक तथ्य का समावेश है। पुराणो मे काण्व राजाओ का राज्यकाल इस प्रकार लिखा है—

१.	वसुदेव	६ वर्ष
२	भूमिमित्र	१४ या २४ वर्ष
३.	नारायण	१२ वर्ष
४	सुशर्मा	१० वर्ष
		४५ या ५५ वर्ष

नारायणशास्त्री के कलियुगराजवृत्तान्त मे काण्वो का राज्यकाल ८५ वर्ष लिखा है, भले यह न हो तथापि कण्वो का राज्यकाल ४५ वर्ष से अधिक था।

अन्तकाल—चार शुंगभृत्य वा काण्व (काण्वायन) राजाओ का राज्यकाल अनुमानत. ६६० वि०पू० से ६०३ वि०पू० होना चाहिए, परन्तु लगभग २५५ वर्ष अराजकता के घटाने पर यह कण्वो का राज्यान्तकाल ६४४ वि०पू० के निकट होना चाहिए, जैसाकि पुराणप्रामाण्य से पूर्वपृष्ठ (५७) पर सिद्ध कर चुके है कि कलि के २४०० वर्ष या नन्दराज से ८३६ वर्ष व्यतीत होने पर शातकर्णिवश का मगध पर शासन स्थापित हुआ।

तृतीय अध्याय

(आन्ध्रसातवाहन या शातकर्णिवंश=राज्यकाल ४६० वर्ष)

प्रारम्भकाल—सत्रहवें परिवर्त (युग) के अन्त या अठारहवें युग के आरम्भ में, (७५०० वि० पू०), ऋषि विश्वामित्र से पूर्व, अर्थात् आज से लगभग दससहस्र पूर्व भी अन्ध्र या आन्ध्र क्षत्रियजाति आर्यवर्त के अन्त्य (सीमान्त) में रहती थी, ऐतरेयब्राह्मण (७/१८) के प्रामाण्य से सिद्ध है। विश्वामित्र के शाप से उनके कुछ क्षत्रियपुत्र अन्ध्र हो गये। उनके समय से ही अन्ध्रों का सम्बन्ध उत्तर भारत से चला आ रहा था। महाभारतयुग (३२०० वि० पू०) में कृष्णवासुदेव ने कंस के प्रसिद्धतम मल्ल चाणूर अन्ध्र का बाल्यकाल में ही संहार किया था तथा अक्रूर की पत्नी का अपहर्त्ता वेणुदारि (राजा) भी सम्भवतः आन्ध्रदेश का शासक था। अन्ध्रों के छोटे बड़े राजा विश्वामित्र के समय या उससे भी पूर्व से होते रहे थे। अशोकमौर्य के त्रयोदश शिलालेख में अन्ध्रदेश का समुल्लेख है, अतः अन्ध्रराज कोई नवीनराज्य नहीं था, उसकी प्राचीनता सुस्पष्ट है। परन्तु उनका मूलोद्गम अज्ञात है, इसी प्रकार आन्ध्रों के शातकर्णि और सातवाहनवंश का मूलोद्भव भी प्रायः अस्पष्ट है तथापि गुणाढ्यकृत बृहत्कथा में सातवाहन (शातकर्णि) की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण दीपकर्णि का पुत्र सातवाहन या शातकर्णि था। प० भगवद्दत्त ने लिखा है "सातवाहन नाम की व्युत्पत्ति पर वहां एक कथा भी लिखी है। वह काल्पनिक कथा है। सम्भव है यह सातवाहन इस आन्ध्रवंश के प्रारम्भ से पहिले का हो।'[1] परन्तु हम ऐसा नहीं मानते। हमारा दृढमत है कि न तो कथा काल्पनिक है और न ही सातवाहननाम के दो या अनेकवंश थे। शुंगों से आन्ध्रसातवाहनपर्यन्त भारतवर्ष में ब्राह्मणराजाओं का प्रभुत्व रहा—लगभग एक सहस्रवर्षपर्यन्त। आन्ध्रसातवाहनवंश का प्रवर्तक शातकर्णि ब्राह्मण दीपकर्णि का पुत्र था, इनके ब्राह्मणत्व की पुष्टि पुलमावी शातकर्णि के नासिकगुहालेख से होती है, जिसमें वह अपने को परशुरामतुल्य क्षत्रियदर्पमर्दन एकमात्र वीरब्राह्मण कहता है।[2]

---

१. भा० बृ० इ० भा० 2, (पृ० २८६)

२. एक धनुधरस एक सूरस एक बम्हणस रामकेसवार्जुनभीमसेनतुलपरकमस...... (पंक्ति ७-८), दुतिये च वसे अचितयिता सातकनि'''कन्वेणागताय'''असिक-नगरं (पंक्ति ४)

कलिंगराज्य चैत्र खारवेल के हाथीगुफा लेखोल्लिखित शातकर्णि[1] निश्चय ही उपर्युक्त एकमात्र आन्ध्रसातवाहनवंश का कोई प्राथमिक राजा था, जिसको कलिंगराज ने हराया था। हमारा अनुमान है कि यह श्रीमल्लशातकर्णि (तृतीय राजा) था। अथवा यह सभव है कि शातकर्णियो का मगधराज्य पर अधिकार से पूर्व शिशुक (सिमुक) से पूर्व कुछ सातकर्णि राजाओं ने दक्षिण के प्रतिष्ठानपुर में राज्य किया हो, जो खारवेल के समय भी रहा, परन्तु यह समय अर्थात् आन्ध्रसात वाहन वंश का प्रारम्भ विक्रम से ७०० वर्ष से अधिक प्राचीनतर नही और खारवेल भी लगभग इसी समय का राजा था, उस समय मगध पर शातकर्णिवंश का नहीं मित्रवंशी बृहस्पतिमित्र का राज्य था। यह समय शुंगो से लगभग तीनशती पश्चात् था।

मगध राज्य पर अधिकार का समय—यह सप्रमाण लिखा जा चुका है कि पुराणो के अनुसार काण्व सुशर्मा का हन्ता शिशुक या शिमुक सातवाहनवंशज, परीक्षित् से लगभग चौबीस शताब्दियों (२४०० वर्ष) पश्चात् या महापद्म नन्द से ८३६ वर्ष के पश्चात् हुआ, ८३६ वर्ष के अक को पूर्णसत्यमानना पड़ेगा, तदनुसार नन्द का समय १५०० वि०पू० होने पर ६६४ वि०पू० आन्ध्रसातवाहन शिशुक ने मगध पर अधिकार किया। हमारी पुराणगणना मे १० से ५० वर्ष तक ही त्रुटि हो सकती इससे अधिक नही। अत: आन्ध्रसातवाहन राज्य का उदय ६६४ या ६४४ वि० पू० हुआ और इस वंश के ३० राजाओ ने ४६० वर्ष राज्य किया, तदनुसार अन्तिम आन्ध्र सातवाहन राजा पुलुमावि द्वितीय विक्रम से १८४वर्ष पूर्व था, यही तिथि प० भगवद्दत्त ने मानी है।[2] जो सत्य या सत्य के निकट है।

आधुनिक भ्रान्त धारणायें—आधुनिक तथाकथित इतिहासलेखक कितने घोर अज्ञान मे है कि (इनका प्रतिनिधित्व प्रोफेसर डा० वासुदेव उपाध्याय, रायचौधुरी आदि करते हैं), उनके निम्न कथन द्रष्टव्य हैं--

१ गौतमीपुत्र सातकर्णि इस वंश का प्रथम सम्राट् था।[3]

२. रूद्रदाम ने दक्षिणाधिपति सातकर्णि को दो बार परास्त किया तथापि पुलमावि (ई०स० १४६) और रुद्रदामन (ई० स० १५०) की समकालीनता स्थापित करते हुये उल्लिखित दक्षिणाधिपति पुलमावि की उपाधि माननी चाहिये।"

---

१ भा० वृ० इ० भा० २, पृ० ३०६;

२. प्राचीन भारतीय मुद्रायें पृ० १००

३. वही पृ० १०३

वासुदेवजी ग्रान्ध्र सातवाहनों के राज्यकाल=४६० वर्ष और शकराजाओं के ३८० वर्ष (कुल = ८४० वर्ष) को केवल छब्बीस वर्ष में समेटते हुए लिखते हैं —

ई० १२४ जूनागढ़लेख = नहपानप्रभुत्व

ई० स० १३० — गौतमीपुत्रसातकर्णि का निधन

ई० स० १४६ (नासिकलेख) पुलमावि का शासन

ई० स० १५० रुद्रदामन का—पुलमावि की पराजय। राज्यो की विजय (जूनागढ़लेख)[1]

इस प्रकार के घोरभ्रमो से युक्त भारतवर्ष का इतिहास आज विश्वविद्यालयो मे पढाया जाता है। अपनी क्षुद्र, तुच्छ, भ्रामक कल्पनाजन्य कठिनाइयों को कोई-कोई लेखक स्वयं अनुभव करता है, ... "नहपान के लेख शकसम्वत् के ही अनुसार ही है तो नहपान के सम्वत् ४६ के लेखो और रुद्रदामन के सम्वत् ५२ के लेख मे केवल पाचवर्ष का अन्तर रहता है। तब इन्ही पाचवर्षों में निम्नलिखित बातें अवश्य घटित हुई— १. नहपान के राज्य का अन्त २. क्षहरातों का विनाश ३. क्षत्रप चप्टन का समय राज्यप्रारम्भ होकर महाक्षत्रप की उपाधि धारण करना तथा राज्य का महाक्षत्रप राज्य कहलाना ४. जयदामन का क्षत्रप ही उपाधि धारण से सिंहासनारूढ होना तथा 'महाक्षत्रप की उपाधि धारण करना ५. रुद्रदामन का सिंहासनारूढ होना तथा शासन प्रारम्भ करना। इतनी घटनाओं की भीड़ पांच वर्षों के छोटे से दायरे में इकट्टा करने की कोई विशेष आवश्यकता दिखाई नहीं पडती।"[2]

भारतीय इतिहास की आधुनिक पुस्तकें इस प्रकार के परम अज्ञान की पराकाष्ठा से भरी पड़ी हैं, जिनका उच्चकोटि के विद्वान् भी अध्ययन करते हैं और आंख मूंदकर पढते तथा अनुकरण करते हैं तथा सत्यशोधन की कोई आवश्यकता नहीं समझते। ऐसे अज्ञानी इतिहासलेखक सहस्त्रवर्षों के इतिहास को तीसचालीसवर्ष के अल्पकाल मे समेट लेते हैं। स्वायम्भुवमनु से गुप्तवंशतक के इतिहास की यही कहानी और जुबानी है, इसीलिए लेखक ने सत्यशोधन का बीडा उठाया है।

उपर्युक्त तथाकथित आधुनिक इतिहासकारो के मत पूर्ण भ्रामक है, यह वे स्वय ही अनुभव करते हैं, अतः उनके विस्तृत खण्डन का स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, इस पुस्तक से सत्य का प्राकट्य स्वय ही होगा।

---

१. वही पृ० १०२

२. प्रा० राज० इ० पृ० ३६० रायचौधुरी;

संख्या और राज्यकाल अवधि—सातवाहन राजाओं की संख्या विभिन्न पुराणों में १७ से ३० तक मिलती है, इसका संकेत पार्जीटर और भगवद्दत्त ने किया है। परन्तु सभी आलोचक तीस संख्या को ठीक मानते हैं, जैसाकि सभी पुराणों में पूर्णसंख्या ३० ही है[1], परन्तु नारायणशास्त्री के कलिराजवृतान्त में अयोदश राजा कुन्तल शातकर्णि के "पश्चात् एक सौम्य शातकर्णि लिखा है, तथा मत्स्य के कुछ पाठों में उसे पुष्यसेन लिखा है। शास्त्री महोदय के अनुसार उसने १२ वर्ष राज्य किया। पार्जीटर के पाठ में यह नाम नहीं है।[2] अतः सौम्य शातकर्णि (अपरनाम पुष्यसेन) को मिलाकर ३१ सातकर्णि राजा हो जाते है, तथा उनका राज्यकाल भी ४६० वर्ष से बढ़कर ४७२ वर्ष हो जाता है।

सातवाहन—मगधराज या भारतसम्राट—मौर्यों, शुंगों या गुप्तों के समान उपर्युक्त ३१ सातवाहन राजा मगध के ही शासक थे, जिनका प्रभुत्व प्रायः सम्पूर्ण भारत पर रहता था। इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त ने अपने वृहदइतिहास, भाग २ के पृ० २८६ पर इसकी पुष्टि में तीन कारण या प्रमाण लिखे हैं—तमिलग्रन्थ सिलप्पाधिकार का प्रामाण्य, आपीलक शातकर्णि की मुद्रा छत्तीसगढ में प्राप्ति और मगध में मुरुण्ड आधिपत्य। हम पं० भगवद्दत्त के मत की पुष्टि में और प्रमाण देते हैं—(१) प्रारम्भिक सातवाहन राजा के राजपण्डित गुणाढ्य की विभिन्न कथाओं से प्रकट होता है कि शातवाहन राजाओं और गुणाढ्य का मगध से घनिष्ठसम्बन्ध था। (२) गुप्तराजा आन्ध्रभृत्य कहे जाते हैं, जिनका मूलस्थान श्रीपर्वत यद्यपि दक्षिण भारत में था, परन्तु पाटलिपुत्र उनकी राजधानी थी। पाटलिपुत्र आन्ध्रों की राजधानी थी, तभी आन्ध्रभृत्यों गुप्तों ने अपने स्वामियों को पदच्युत कर उसी प्रकार मगध पर अधिकार किया जिस प्रकार मौर्यभृत्य शुंग पुष्यमित्र या शुंगभृत्य काण्वों ने किया।[3] (३) कलिराजवृतान्त में लिखा है कि शातवाहनवंशज सिंहस्वातिकर्णि शिशुक ने प्रतिष्ठानपुर के आन्ध्र सैनिकों की सहायता से काण्वायन को मारकर मगध के आन्ध्रवंश की प्रतिष्टा की। अतः उपर्युक्त सभी प्रमाणों से सातवाहन राजा मगध के शासक सिद्ध होते है। परन्तु यह सत्य है जैसा कि वाङ्मय और शिलालेखों से ज्ञात होता है कि मगध पर शासन करते हुए भी उन्होने अपनी पूर्व राजधानी दक्षिण में प्रतिष्ठानपुर को त्यागा नहीं। उत्तरकालीन कुछ सातवाहनों एव सप्त आन्ध्र राजाओं[4] ने वही राज्य किया।

---

१. पु० पा० (पृ ३६) तथा भा० बृ० इ० भा० २, (पृ० २८६)

२. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० २८८)

३. काव्यमीमांसा में हरिश्चन्द्र आदि की परीक्षा का उल्लेख द्रष्टव्य (पृ० १०)

४. सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति (पु० पा०)

प्रत्येक आन्ध्रसातवाहन राजा के राज्याकालादि पर विचार करने से पूर्व उनकी सम्पूर्णसूची एवं तिथिक्रम द्रष्टव्य है—

क०सं०	नाम	राज्यकाल	विक्रमपूर्व
१.	शिशुक	२३ वर्ष	६४४ वि०पू० से ६२१ वि०पू०
२.	कृष्ण	१८ ,,	६२१ वि०पू० से ६०३ वि०पू०
३.	श्रीमल्लकर्णि	१० ,,	६०३ वि०पू० से ५८३ वि०पू०
४.	पूर्णोत्सग	१८ ,,	५८३ वि०पू० से ५७५ वि०पू०
५.	स्कन्ध शातकर्णि	१८ ,,	५७५ वि०पू० से ५५७ वि०पू०
६.	शातकर्णि	५६ ,,	५५७ वि०पू० से ५०१ वि०पू०
७.	लम्बोदर	१८ ,,	५०१ वि०पू० से ४८३ वि०पू०
८.	आपीलक	१२ ,,	४८३ वि०पू० से ४७१ वि०पू०
९	मेघस्वाति	१८ ,,	४७१ वि०पू० से ४५३ वि०पू०
१०	स्वाति	१८ ,,	४५३ वि०पू० से ४३५ वि०पू०
११.	स्कन्दस्वाति	७ ,,	४३५ वि०पू० से ४२८ वि०पू०
१२.	मृगेन्द्रस्वातिकर्णि	३ ,,	४२८ वि०पू० से ४२५ वि०पू०
१३.	कुन्तल स्वातकर्णि	८ ,,	४२५ वि०पू० से ४१७ वि०पू०
१४	सौम्य शातकर्णि (पुष्यसेन)	१२ ,,	४१७ वि०पू० से ४०५ वि०पू०
१५.	स्वातिकर्णि	१ ,,	४०५ वि०पू० से ४०४ वि०पू०
१६.	पुलोमावि, प्रथम	३६ ,,	४०४ वि०पू० से ३६८ वि०पू०
१७	अरिष्टकर्ण	२५ ,,	३६८ वि०पू० से ३४३ वि०पू०
१८.	हाल	५ ,,	३४३ वि०पू० से ३३८ वि०पू०
१९	मत्तलक	५ ,,	३३८ वि०पू० से ३३३ वि०पू०
२०.	पुरीन्द्रसेन	२१ ,,	३३३ वि०पू० से ३१२ वि०पू०
२१	सुन्दर शातकर्णि	११ ,,	३१२ वि०पू० से ३११ वि०पू०
२२.	चकोर शातकर्णि	$\frac{1}{2}$,,	३११ वि०पू० से ३१० वि०पू०
२३.	शिवस्वाति (माठरीपुत्र शकसेन)	२८ ,,	३१० वि०पू० से २८२ वि०पू०

२४.	गौतमीपुत्र	३१ ,,	२८२ वि०पू० से २५१ वि०पू०
२५.	पुलोमावि वासिष्ठीपुत्र, द्वितीय	२८ ,,	२५१ वि०पू० से २२३ वि०पू०
२६.	शिवश्री पुलोमावि	७ ,,	२२३ वि०पू० से २१८ वि०पू०
२७.	शिवस्कन्द	३ ,,	२२८ वि०पू० से २१५ वि०पू०
२८.	यज्ञश्री	२६ ,,	२१५ वि०पू० से १८६ वि०पू०
२९.	विजयश्री	६ ,,	१८६ वि०पू० से १८० वि०पू०
३०.	चण्डश्री	३ ,,	१८० वि०पू० से १७७ वि०पू०
३१.	पुलोमावि तृतीय	७ ,,	१७७ वि०पू० से १७० वि०पू०

शालिवाहनसंवत् शकसंवत्—अतः आन्ध्रसातवाहन साम्राज्य का अन्त १७० वि०पू० के आसपास हुआ, इसके पश्चात् भी सात गौण आन्ध्र या आन्ध्रभृत्य अथवा शालिवाहनशक राजाओं ने ३०० वर्ष लगभग राज्य किया। यह संयोग की बात है कि १३५ विक्रमसंवत् में गौण सातवाहनराज्य और शकराज्य का अन्त हुआ। इसीलिए इस संवत् को दोनों नामों से ही कहा जाता था। इनमें शकों का विनाश चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने किया था और शकों पर विजय के उपलक्ष में उसने अपना शकसंवत् चलाया, इस तथ्य का प्रतिपादन पूर्वपीठिका में विस्तार से किया जा चुका है। गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित शकसंवत् ही भारतवर्ष में प्रसिद्ध हुआ।

आगे प्रत्येक शातकर्णिराजासम्बन्धीसमस्या या प्रमुख समकालिक व्यक्तियों पर विचार करेंगे।

वंशप्रवर्तक शिशुक—इसके सम्बन्ध में पुराणों में लिखा है—

काण्वायानानां[1] ततो भृत्यः सुशर्माणं प्रसह्य तम्।
शुंगानां चैव यश्शेषं क्षपित्वा तु बली एपः।
शिशुकोऽन्ध्रकः सजातीयः प्राप्स्यति वसुन्धराम्॥
त्रयोविंशत् समा राजा सिमुको तु भविष्यति।"

पार्जीटर के उक्त पुराणपाठ में किंचित् त्रुटि प्रतीत होती है। अन्ध्रकः सजातीयः" के स्थान पर "अन्ध्रकैःसजातियैः" पाठ सार्थक होगा, इसकी पुष्टि नारायणशास्त्री के कलियुगराजवृतांत के निम्न पाठ से होती है—

१. पु० पा० पृ० ३८

समानीतैः प्रतिष्ठानादान्ध्रवंश्यैः स्वसैनिकैः ॥[1]

स्पष्ट है सिमुक ने आन्ध्रसैनिकों की सहायता से काण्वराजा सुशर्मा को मार कर मगधराज्य हस्तगत किया। नारायणशास्त्री ने सिमुक को काण्वराजा का सेनापति और शातवाहनवंशज कहा है, अतः अभी यह निर्णय करना कठिन है कि शिमुक ही शातवाहन प्रथम था अथवा शातवाहन का वंशज, परन्तु यह निश्चित है कि वह ब्राह्मण और मगध का प्रथम शातवाहन सम्राट् था। उसीने काण्व और अवशिष्ट शुंगवंश का नाशकर मगध में शातवाहनवंश की प्रतिष्ठा की। इसकी पुष्टि पुराण पाठ और कलियुगराजवृतान्त—दोनों से ही होती है—

शुङ्गानां चैव यच्छेषम् क्षपित्वा तु बली एव (पुराणपाठ)

शुंगाना चैव यच्छेषं क्षपयित्वा तदप्यसौ (कलिराजवृतान्त)।

पुराणादि में इसके नामान्तर शिमुक,[2] सिन्ध्रक,[3] शिशुक[4], सुमुख[5], बलिपुच्छक[6] और सिंहस्वातिकर्ण[7]। इनमे नारायणशास्त्रीकथित शिशुक और सिंहस्वातिकर्ण (र्णि) नामों की बृहत्कथा के उस आख्यान की पुष्टि होती है जिसमे वह शिशु, ब्राह्मण दीपकर्णि का पुत्र और शेर (सिंह) का सवार बताया गया है। बाल्यकाल मे वह शिशुक कहा जाता था और सिंह पर सवारी करने के कारण सिंह स्वातिकर्णि नाम हुआ। 'सिमुक' शब्द 'शिशुक' का प्राकृतरूप है।

उसका राज्यकाल २३ वर्ष था, और समय (तिथि) वंशतालिका में द्रष्टव्य है। आन्ध्रों की विश्वामित्र के समय से ही म्लेच्छ जातियों मे गणना होती थी, अतः ब्राह्मण होते हुए भी 'वृषल' कहा गया है।

२. कृष्ण—यह शिशुक का अनुज था, इसका नाम नासिकगुहालेख में प्राप्त हुआ है—'सादवाहन कुले कण्हे राजनि' इससे प्रतीत होता है शातवाहनकुल शिमुक से कुछ प्राचीनतर था।

---

१. क० रा० वृतान्त
२. ब्रह्माण्ड० (३/७४/६१)
३. मत्स्य० (२७३/३/२)
४. अ० सुन्दरी० (पृ० १८४)
५. विष्णु० (४/२४/४३)
६. कलियुगराजवृतान्त
७. बृहत्कथा

कृष्णसातवाहन का राज्यकाल, १४ वर्ष, ६२१ वि० पू० से ६०३ वि० पू० रहा।

३. श्रीमल्लशातकर्णि—इसका राज्यकाल १० वर्ष, ६०३ वि०पू० से ५९३ वि०पू० तक था। (४) चतुर्थ पूर्णोत्संग, (५) पंचम स्कन्द स्कम्भ (६) षष्ठ शातकर्णि का राज्यकाल क्रमशः १८, १८ और ५६ वर्ष रहा। षष्ठ शातकर्णि निश्चय ही बाल्य या यौवनावस्था में राजा बना होगा, जिससे उसका राज्यकाल दीर्घ रहा। इनकी तिथियाँ तालिका मे द्रष्टव्य है।

सप्तम, लम्बोदर शातकर्णि का राज्यकाल १८ वर्ष था। अष्टम आपीलक का राज्यकाल १२ वर्ष रहा। इसकी मुद्रायें मध्यप्रदेश मे बिलासपुर जनपद के ग्राम बलपुर मे मिली हैं। मध्यप्रदेश का पर्याप्त भाग चिरकाल (दीर्घकाल) पर्यन्त आन्ध्र साम्राज्य का भाग रहा है। मध्यप्रदेश और आन्ध्रप्रदेश का वर्तमान विभाजन तो अर्वाचीन है।

नवम मेघस्वाति, दशम स्वाति, एकादश स्कन्दस्वाति और द्वादश मृगेन्द्र शातकर्णि का राज्यकाल एव तिथि सूची मे द्रष्टव्य। इनके नाममात्र एव राज्यकाल के अतिरिक्त पुराण या शिलालेखादि मे अन्यवृत अज्ञात हैं।

१३. कुन्तल शातकर्णि—इसका उल्लेख वात्स्यायनकामसूत्र (७.२) तथा राजशेखरकृत काव्यमीमासा (अ० १०) मे मिलता है। अधिकांश सातवाहन राजाओं की राजभाषा प्राकृत थी। काव्यमीमासा बृहत्कथा के अतिरिक्त मुद्राओं और शिलालेखो से भी यही तथ्य सिद्ध है। गुणाढ्य के साथी शर्ववर्मा ने किसी शातवाहननरेश को संस्कृत पढानेहेतु कातन्त्रव्याकरण संक्षिप्त किया।[1]

आन्ध्रप्रदेश का कोई भाग कुन्तल भी कहा जाता था, जिससे शातवाहन नरेश कुन्तलाधिप कहे जाते थे।[2]

१४. सौम्य या पुष्यसेन शातकर्णि—मत्स्यपाठ मे इसका नाम पुष्यसेन और कलियुगराजवृतान्त में इसका नाम सौम्य है, इसका राज्यकाल द्वादशवर्ष था। अन्यत्र इसका नाम अनुपलब्ध है। इसका राज्यकाल ४१७ वि०पू० से ४०५ वि०पू० तक रहा।

१५. पंचदश सातवाहन स्वातिकर्ण का राज्य केवल एक वर्ष रहा।

१६. पुलोमावि प्रथम—यह इस वंश का प्रथम पुलोमावि था, जिसका राज्यकाल ३६ वर्ष था, ४०४ वि०पू० से ३६८ वि०पू० तक।

---

१. द्र० सं० व्या० शा० इ० पृ० ५५७; तथा कथासरित्सागर

२. हाल इति शातवाहनस्य कुन्तलाधिपस्य नाम (गाथासप्तशती टीका)

१७. अरिष्टकर्ण शातकर्णि का राज्यकाल २५ वर्ष था।

१८. हाल सातवाहन—यह इस वंश का प्रसिद्ध राजा था। संस्कृत एवं प्राकृत वाङ्मय में इसका पर्याप्त उल्लेख है। 'हाल' शब्द सम्भवतः 'शात' का प्राकृतरूप है, अतः 'हाल' 'सातबाहन' का पर्याय हो गया—

हाल स्यात् सातवाहनः (अभिधानचिन्तामणि) ३/३७६)

अतः प्रत्येक शातवाहन राजा को 'हाल' कह सकते हैं, अतः हाल एक या दो नहीं अनेक थे।[1]

एक बहुत उत्तरकालीन 'हाल' राजा प्राकृतगाथासप्तशती का रचयिता था, यह हाल चन्द्रगुप्त विक्रम के समकालिक था।

परन्तु पूर्वतर हाल या शाल या शात इस वंश का अष्टादश राजा था, प्राचीन मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार किसी हाल नरेश के राज्यकाल में यूनानी सिकन्दर का भारत (पंजाब) पर आक्रमण हुआ था।[2] अलबेरूनी ने सिकन्दर का समय ३८८ शककालपूर्व या ३१० ई०पू० या २५३ वि०पू० माना है। आधुनिक लेखक सिकन्दर का आक्रमणकाल ३२७ ई०पू० मानते हैं। इस समय (२७० वि०पू०) गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णि (शात—हाल) का मगधादि पर राज्य था। गौतमीपुत्र के शिलालेखों में यवनों का उल्लेख है, इस विषय पर विचारविमर्श गौतमीपुत्र के प्रकरण में ही करेंगे।

१९. मन्तलक—इसका राज्यकाल ५ वर्ष, ३३८ वि०पू० से ३३३ वि०पू० तक था। इसके समय सप्तशती (७०० वर्ष) पर्यन्त जीवित रहने वाले प्रसिद्ध रसायनयोगी नागार्जुन की जगत् में प्रसिद्धि हो चुकी थी।

२० बीसवाँ राजा पुरीन्द्रसेन और इक्कीसवाँ सुन्दर शातकर्णि था।

२१ चकोरशातकर्णि का राज्यकाल केवल षण्मास रहा। पं० भगवद्दत्त ने बाणभट्ट (ह० च० ६ उच्छ०) के आधार पर किसी क्षुद्रक (शूद्रक) द्वारा घातित चकोरनाथ चन्द्रकेतु को चकोर शातकर्णि माना है, इनका ऐक्य अन्यथा प्रमाणित नहीं होता।

वासिष्ठगोत्रीय ब्राह्मण की पुत्री कोई वासिष्ठी इसकी माता थी अतः इसको वासिष्ठीपुत्र (प्रथम) भी कहा जाता था।

---

१. पं० भगवद्दत्त ने केवल दो 'हाल' राजाओं की सम्भावना व्यक्त की है—"हाल नाम के न्यून से न्यून दो राजा मानने पड़ेंगे (भा० वृ० इ० भा० २, पृ० २८६) 'हाल' 'शात' का ही प्राकृतरूप होने पर सभी 'सातबाहन' हालसंज्ञक थे।

२. हबिबुल्ला संकलित भारतवर्ष का इतिहास, प्रथम भाग (पृ० ७६)

हमारा दृढ़ मत है कि चकोर शातकर्णि वासिष्ठीपुत्र और चकोरनाथ चन्द्रकेतु पृथक्-पृथक् राजा थे।

२३. शिवस्वाति—पुराणों में इसका यही नाम है, परन्तु कलियुगराज वृतान्त में इसका नाम शकसेनमाढरीपुत्र लिखा है।[1] माठर या माढर एक प्राचीन ब्राह्मणगोत्र था, इस गोत्र की ब्राह्मणी माढरी का पुत्र होने से इसको माढरीपुत्र कहा जाता था। पं० भगवद्दत्त ने कलियुगराजवृतान्त की प्रमाणिकता में लिखा है—"माढरीपुत्र स्वामीशकसेन का आठवें वर्ष का कन्हेरी का एक शिलालेख है" ......"टि० एस० नारायणशास्त्री द्वारा मुद्रित कलियुगराजवृतान्त के पाठ में शकसेन नाम विद्यमान है। यह ग्रन्थ इस (मुद्रा) ढेर के मिलने से २५ वर्ष पूर्व मुद्रित हुआ था।"[2]

अतः कलियुगराजवृतान्त की प्रामाणिकता मुद्राओं और शिलालेखों से पुष्ट होती है। प्राचीनयुगों में एक राजा के अनेक नाम होते थे।

२४. गौतमीपुत्र (शातकर्णि)—यह इस वंश का संभवत: सर्वाधिक प्रतापी राजा था तथा इसी के समय ३८२ वि०पू० से ३५१ वि०पू० के मध्य प्रसिद्ध यूनानीराजा सिकन्दर का आक्रमण हुआ, इसके भय से सिकन्दर के सैनिक पंजाब से आगे बढ़ने का साहस नहीं कर सके। गौतमीपुत्र श्रीश.तकर्णि का २४वें वर्ष का लेख नासिक गुहा की भित्ति पर अंकित है, उससे यह तथ्य ज्ञात होता है कि उसने शकपह्लवों के साथ यवनों (संभवत सेल्यूकस) को परास्त किया था, जैसा कि उसके लेख की इस पंक्ति से आभास होता है।

'शकयवनपह्लवनिसूदनकरस (५वीं पंक्ति) नासिकगुहालेख, उसके शिलालेख के निम्न ऐतिहासिक तथ्य और महत्वपूर्ण है—

(१) पियदसनमवरवारणविक्रमचारुविकमान (पं० ४)
(प्रियदर्शनस्यवरवारणविक्रमचारुविक्रमस्य)

(२) खहरातवसनिरवसेसकरस (क्षहरातवशनि.शेषकरस्य)

(३) सातवाहनकुलयसपतिथापनकरस (शातवाहनकुलयशप्रतिष्ठापनकरस्य)

(४) एकधनुधरस (एकधनुर्धरस्य)

(५) एकसूरस (एकशूरस्य)

---

१. अष्टाविंशति वर्षाणि शकसेनो भविष्यति। यमाहुः माढरीपुत्रं शिवस्वातिं महाजनाः।

२. लूडंस की सूची १००४ तथा भा० बृ० इ० भा० २. पृ० ३०६. तथा. पृ ३०७,

(६) एक बम्हणस (एकब्राह्मणस्य)

उपर्युक्त तथ्यों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—(१) गौतमीपुत्र शातकर्णि भी मौर्यों के समान अपने को 'प्रियदर्शन' या 'प्रियदर्शी' कहते थे।

(२) विक्रम उपाधियाँ उस समय प्रचलित हो गयी थी। इसी कारण कुछ लोगों को यह भ्रान्ति हुई है कि क्षहरातवंश का विनाशकर्ता और विक्रमसंवत् प्रवर्तक यही था, जिसने ईसापूर्व ५८ वाला विक्रमसंवत् चलाया।[1] यह धारणा पूर्णतः अपुष्ट एवं इतिहासविरुद्ध है। शकयवनों के आक्रमण महाभारतकालपूर्व से भी होते रहे थे, अतः

(३) क्षहरातवंश निःशेषकरः गौतमीपुत्र शातकर्णि ने ही २६३ वि०पू० के आसपास क्षहरातसम्राट् नहपान का वध किया था। अतः गौतमीपुत्र शातकर्णि, यूनानी सिकन्दर और क्षहरात नहपान एक ही समय २८२ वि०पू० से २५१ वि०पू० के मध्य हुये। 'शकसंवत्चतुष्टयी' प्रकरण में क्षहरात एवं नहपान पर विशेष विचार करेंगे।

(४) गौतमीपुत्र ने 'शातवाहन कुलके यशकी पुनः प्रतिष्ठापना की, संभवत. शक, यवन और पह्लवों ने इस कुल की प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया था। सिकन्दर के भारत से पलायन एवं क्षहरात नहपान के वध से सातवाहनकुल की पुन: कीर्ति स्थापित हुई। इसीलिए आधुनिक लेखकों ने यह भ्रामक लेख लिखा "गौतमीपुत्र शातकर्णि इस वंश का प्रथम सम्राट् था।"[2] गौतमीपुत्र प्रथम नहीं अन्तिम प्रतापी शातवाहन सम्राट् था। साथ ही वह (५) एक महान् धनुर्धर (६) एक प्रतापी शूरवीर और ब्राह्मणकुल का गौरव था, जिसने परशुराम के तुल्य 'क्षत्रियदर्पमान' का मर्दन किया।[3]

इसी शिलालेख में एक और ज्वलन्त ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख है—

'नाभागनहुसजनमेजयसकरययातिरामाबरीषसमतेजस"

(नाभागनहुषजनमेजयसगरययातिरामाम्बरीषसमतेजसः)[4]

पुराणों में नहुषययातिसगरादि के इतिहास प्रामाणिक है, वे कल्पनाकी

---

१. प्रा० भा० २ इ० पृ० ३६६

२. प्राचीनभारतीय मुद्रायें, पृ० १००, वासुदेव उपाध्याय

३. खतियदपमानमदनस (पं० ५)

४. पंक्ति ८,

वस्तु नहीं जैसा कि रैप्सन कौथादि पाश्चात्य लेखक मानते थे। आधुनिक लेखक शिलालेख के प्रमाण को ही 'स्वतन्त्रप्रमाण' मानते हैं, तो यह 'स्वतन्त्रप्रमाण' इस शिलालेख में प्राप्त है।

२४. **पुलोमावि द्वितीय-वासिष्ठीपुत्र**—यह भी पूर्वोक्त, अपने पिता गौतमी पुत्र के समान प्रतापी सम्राट् था। इसकी माता वासिष्ठी थी, अतः द्वितीय पुलोमावि और द्वितीय वासिष्ठीपुत्र था। पुराणों के अनुसार इसका राज्यकाल २८ वर्ष और कलियुगराजवृतान्त मे ३२ वर्ष उल्लिखित है।

पं० भगवद्दत्त इस पुलोमावि को वासिष्ठपुत्र मानकर महाक्षत्रपरुद्रदामा का जामाता मानते हैं,[1] यह इतिहासविरुद्धमान्यता है। इस पुलोमावि वासिष्ठीपुत्र का राज्यकाल २५१ वि०पू० से २२३ वि०पू० था। रुद्रदामा के लेख शकराज्यवर्ष ५२ से ७२ तक के मिले हैं। शकों का राज्य शकान्तक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से ३८० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ। अर्थात् २४५ वि०पू० से (१३५ विक्रम सवत् तक)। रुद्रदामा का राज्यकाल १९२ वि०पू० से १७२ वि०पू० तक अवश्य रहा, पुलोमावि वासिष्ठी पुत्र द्वितीय का राज्यकाल पं० भगवद्दत्त ने भी वही माना है जो पुराणप्रमाण्य से हमने निर्णीत किया है—२५१ वि०पू० से २२३ वि०पू० तक। अत. यह पुलोमावि द्वितीय रुद्रदामा महाक्षत्रप का जामाता नही हो सकता। शातकर्णिवंश का शासक चण्डश्री तृतीय ही वासिष्ठीपुत्रतृतीय होगा, जिसको रुद्रदामा ने परास्त किया और जो उसका जामाता भी था। इसका समय १७५ वि०पू० के निकट था।

पुलोमावि द्वितीय के राज्यकाल २४वें वर्ष पर्यन्त के लेख नासिकगुहा मे मिले हैं।

२६ **शिवश्रीपुलोमा शातकर्णि**—उपर्युक्त पुलोमावि द्वितीय (वासिष्ठपुत्र द्वितीय) का भ्राता ही यह था, जिसका राज्यकाल ७ वर्ष था। यह तथ्य कलियुगराजवृतान्त से ज्ञात होता है। पार्जीटर के पुराणपाठ मे यह तथ्य नही है। मुद्राओं से भी कलियुगराजवृतान्त के मत की पुष्टि होती है, पुलोमावि और शिवश्री दोनों ही वासिष्ठीपुत्र, थे, अतः भ्राता थे।

सातवाहनों में अनेक वासिष्ठीपुत्र थे, अतः भ्रान्ति होना स्वाभाविक है, पं० भगवद्दत्त को भी इसी कारण भ्रान्ति हुई।

अवन्तिसुन्दरीकथा मे इसका राज्यकाल ३८ लिखा होना विचारणीय है।

२७. **शिवस्कन्द**—इसका राज्यकाल ३ वर्ष था।

२८. **यज्ञश्री**—इसका नाम नासिकगुहालेख में है—

---

१. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ३०८.

'राञो गौतमपुतरस सामि सिरि यञ सातकणिस सवंछरे सातमे'

(राज्ञो गोतमीपुत्रस्य स्वामिनः, श्रीयज्ञशातकर्णेः संवत्सरे सप्तमे) अतः यह गौतमी पुत्र था। इसका राज्यकाल २९ वर्ष; २१५ वि०पू० से १८६ वि०पू० तक था।

इसके एक शिलालेख में उषावदात (ऋषभदत्त) का उल्लेख है जो नहपान का जामाता था।[1]

२९. **विजयश्री**—इसका राज्यकाल केवल षड्वर्षात्मक था, १८६ वि०पू० से १७७ वि०पू० पर्यन्त।

३०. **चन्द्रश्री**—इसका राज्यकाल पुराणों में १० वर्ष लिखा है—

चन्द्रश्रीः शातकर्णिस्तु तस्य पुत्र समाः दश।[2]

पाठान्तर से इसका राज्यकाल ३ वर्ष था। हमें दशवर्ष का राज्यकाल उचित प्रतीत होता है। कलियुगराजवृत्तान्त के अनुसार यह वासिष्ठीपुत्र तृतीय था, जो महाक्षत्रप रुद्रदामा जामाता था। दशवर्ष राज्यकाल होने पर इसका राज्यकाल १८० वि०पू० से १७१ वि०पू० तक होना चाहिए। यही शकराज रुद्रदामा का समय था। शिलालेखों में प्राकृतभाषा में इसे 'सामि सिरिचंद साति' कहा गया है।[3] 'श्रीचन्द्र' का ही एक अन्य प्राकृतरूप 'श्रीचण्ड' है।

३१. **पुलोमावि तृतीय**—श्रीचन्द्र शातकर्णि के समय ही रुद्रदामा महाक्षत्रप ने आन्ध्रसाम्राज्य की शक्ति तोड दी थी, अन्त अन्तिम सातवाहनराजा पुलोमावि तृतीय केवल ७ वर्ष ही राज्य कर सका।[4] इसका राज्यकाल १७७ वि०पू० से १७० वि०पू० या १७१ वि०पू० से १६४ वि०पू० तक रहा।

पुराणगणना या दूसरी गणना में कुछ अन्तर का कारण स्पष्ट है कि एक दो राजाओं के नाम पुराणपाठों में छूट गये है और अनेक राजाओं का राज्यकाल भी कहीं ३ वर्ष कहीं १० वर्ष कहीं १८ या २४ या ३१ जैसा मिलता है। ऐसी स्थिति में कुलगणना में १० से २० वर्ष तक का अन्तर होना स्वाभाविक है परन्तु स्थूलरूप से हमारी पुराणगणनासत्य के अत्यन्त सन्निकट है, जबकि रेप्सन, फ्लीट जायसवाल रायचौधुरी, जयचन्द्र विद्यालकार, अल्तेकर, मजूमदार, आदि की गणनायें नितान्त भ्रामक हैं, यह इस पुस्तक से उद्‌घाटित ही है।

---

१. उसभदातेनतनभूतं निवतन (पंक्ति २). ..मा० नं०;

२. पाठान्तर—पृ० ५ श्री.शातकर्णिश्च तस्य पुत्रः समाः त्रयः। (पु० पा० पृ० ४३).

३. ऐ० इ० क्वा० १८, पृ० ३१६-३१९.

४. प० भगवद्दत्त ने इसे पुलोमाविद्वितीय लिखा है—भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ३०९, जो ठीक नहीं, शिवश्री का अग्रज पुलोमावि द्वितीय था।

चतुर्थ अध्याय

(सातवाहनोत्तरकालीन म्लेच्छराजवंश)

म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः। तुल्यकाला इमे राजनः।
म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः (पुराणपाठ)

क्रम—कालक्रम के अनुसार निम्न म्लेच्छ राजवंशो ने सातवाहनो के अन्त अथवा उनके मध्यकाल से भारतवर्ष में राज्य किया। ये वंश प्रायः समानकालिक एवं विदेशी (म्लेच्छ) थे, तथापि इन्होंने भारतीयसंस्कृति को पूर्णरूपेण अपना लिया था, उनके नामादि भी भारतीय होने लगे थे।

कालक्रम की दृष्टि से हमने पुराणक्रमवर्णन में कुछ अन्तर किया है।

पुराणक्रम		कालक्रमानुसार	
१ सप्त आन्ध्रभृत्य (श्रीपार्वतीयगुप्तराजा)		शक राजा	३०
२. दश आभीर राजा		तुषार राजा	१४
३. सात गर्दभिल ,,		क्षुद्रक (शूद्रक) गर्दभिल	७ या १५
४. अष्टादश शक	,,	यवन राजा	८
५. अष्ट यवन	,,	मुरुण्ड ,,	१३
६. चतुर्दश तुषार (तुरुष्क)	,,	हूण ,,	११
७, त्रयोदश मुरुण्ड	,,	आभीर ,,	१०
८. एकादश हूण	,,	श्रीपार्वतीय-गुप्तराजा ,,	७
९. पूर्वनाग			
१०. वाकाटक			
११. नवनाग			
१२. वनस्फर			
१३. पल्लव			
१४. इक्ष्वाकु			
१५. पुष्पमित्र			
१६. मेघ, महिष कनक आदि।			

यद्यपि इनमें श्रीपार्वतीय आन्ध्रभृत्य गुप्तराजा अर्वाचीन सम्राट् हुए, तथापि इनका राज्यकाल अर्वाचीनतम था, अतः उनका विवरण अन्त में पृथक् अध्याय में दिया जायेगा।

इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त ने 'गुप्तकाल का आरम्भ कब हुआ' शीर्षक[1] अध्याय के प्रारम्भ यह महत्वपूर्ण तथ्य लिखा—

"आन्ध्रवंश के पश्चात् तथा शक, यवन और कुशन आदि वंशों के क्षीण होने पर गुप्तशक्ति का उदय हुआ। हमने गुप्तकाल से पूर्व इतिहास कई तिथियाँ नहीं दी हैं। वे तिथियाँ गुप्तकाल के निर्णय पर आश्रित हैं।"

पं० भगवद्दत्त ने इस अध्याय में गुप्तकाल के सम्बन्ध में प्रभूत सामग्री एकत्रित की है तथापि वे कालसम्बन्धी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके। और वे अनिश्चय के प्रेंखण पर दोलायमान रहे। इसमें प्रमुख बाधा उन्होंने स्वयं उत्पन्न की कि वे क्षुदक (शूद्रक) मालवनरेश विक्रमादित्य और चन्द्रगुप्त साहसांक को एक ही मानते रहे अथवा उनका एक ही समय मानते रहे, अतः वे सत्य निर्णय नहीं कर सके। हमने पण्डितजी की प्रभूत सामग्री के आधार ही गुप्तकाल का जो निर्णय किया है, उसी के आधार पर शक, कुशनादि राजाओं का कालनिर्णय हो जाता है, यह निर्णय आगे प्रस्तुत किया जाता है।

इस सम्बन्ध मे ध्यातव्य है कि प्राचीनभारत के इतिहास में शकसंवत् (काल) निर्णय की निर्णायक भूमिका है, ऐसे न्यूनतम चार शकसंवत् प्राचीनकाल मे प्रचलित थे, दो संवत् शकशासनो के प्रारम्भ से चले और दो शकसंवत् शकराज्यों के दो बार अन्त होने पर चले। अतः सर्वप्रथम "शकाब्दचतुष्टयी" पर विचार करेंगे।

शकाब्दचतुष्टयी

प्रथम शकसंवत्—प्राचीनतम ज्ञात शकसंवत् ५५४ वि०पू० से प्रारम्भ हुआ था जिसका उल्लेख सर्वप्रथम विक्रमसमकालिक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता (१३/३) में मिलता है—

> आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
> षड्द्विकपंचद्वियुतः शककालः तस्य राज्ञश्च॥

युधिष्ठिर का राज्यारम्भ ३०८० वि०पू० प्रारम्भ हुआ था, इसमे से २५२६ घटाने पर ५५४ वर्ष होते हैं। अतः ५५४ वि०पू० से इस शकसंवत् का प्रारम्भ हुआ।

---

१. भा० बृ० इ० भा० २, पृष्ठ ३२४-३४२ पर्यन्त।

अनेक तथाकथित विद्वान् सभी शकसंवतों को एक समझते, रहे;[1] यह अज्ञान की घोर पराकाष्ठा है।

यद्यपि, इस प्रथम शकसंवत् का प्रवर्तक कौन था, यह निश्चित प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। परन्तु हमारा अनुमान है कि क्षहरातवंश का प्रतिष्ठाता शकराज आम्लाट ही था, जिसका वर्णन युगपुराण में है—

आम्लाटो लोहिताक्षेति पुष्पनाम गमिष्यति।
ततः स म्लेच्छ आम्लाटो रक्ताक्षो रक्तवस्त्रभृत्।

(यु० पु० पंक्ति १३३, १३६)

युगपुराण से ही आभास होता है कि यह शकराजा काण्वों के अन्त और सातवाहनों राजाओं के प्रारम्भिक काल में हुआ।

आम्लाट, इस क्षहरात शकवंश का प्रथम सम्राट् और नहपान इस वंश का अन्तिम राजा था, जिसका नाश गौतमीपुत्र शातकर्णि (२४ वाँ सातवाहनराजा) ने २८२ वि०पू० से २५१ वि०पू० के मध्य किया।[2] नहपान ने न्यूनतम ४६ वर्ष राज्य किया।

नहपान का अन्तकाल—क्षहरात शकों के १२ राजाओं ने राज्य किया और तदुपरान्त चष्टन वंशीय १८ शकराजाओं ने राज्य किया। इनका उल्लेख मञ्जुश्री मूलकल्प में है—

शक वंशस्तथा त्रिशंन् मनुजेशा निबोधत।
दशाष्टभूपनयः ख्याताः सार्धमूतिकमध्यमाः॥[3]

पं० भगवद्दत्त ने लिखा 'ये श्लोक यद्यपि कोई निश्चित अर्थ नहीं बताते'।[4] पण्डितजी के मस्तिस्क में केवल चष्टनशकों के १८ राजाओं का ध्यान था, अतः वे

---

१ कल्हणादि ने इस प्रथम शकसंवत् को चतुर्थ (अन्तिम) शक समझने की भ्रान्ति करके महाभारतयुद्धकाल को ६५३ कलिसंवत् में माना है—
"शतेषु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन् कुरुपाण्डवाः" परन्तु पाण्डवों का समय निश्चित है कलिप्रारम्भ से ठीक पूर्व।

२. शक यवन, पह्लवनिसूदन ··· खहरात वस निरवसेसकरस। नासिकगुहा लेख पंक्ति ५-६)

३ म० मू० क० (६१२, ६१३ श्लोक)

४. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० ३१४)

इसका निश्चितार्थ नहीं समझ सके। परन्तु १८ शकराजा चष्टन शक थे और उनसे पूर्व क्षहरात शकों के १२ राजा हो चुके थे। चष्टनवंश का आदिप्रवर्तक चष्टन का पिता मूतिक (भूमिक या घ्समोतिक) था, जिसका शिलालेखों में उल्लेख मिलता है। इस चष्टनवंशीय १८ शक राजाओं ने ३८० वर्ष राज्य किया, जिनका पुराणों में उल्लेख मिलता है, यद्यपि, इनका विस्तृत वर्णन आगे इसी प्रकरण में प्रस्तुत करेंगे, तथापि यह निश्चित तथ्य ज्ञातव्य है कि अन्तिम शकनरेश (अज्ञातनामा) का वध चन्द्रगुप्त साहसांक गुप्तसम्राट् ने १३५ विक्रमसंवत् में किया था, जिसके प्रमाण पूर्वपीठिका दिये जा चुके हैं। अतः चष्टनशकों का ३८० वर्षीय राज्यारम्भ २४५ वि०पू० हुआ। इस समय से कुछ वर्षपूर्व गौतमीपुत्र शातकर्णि ने २६० वि०पू० के आसपास नहपान का वध किया।

अतः क्षहरातशकों का राज्यकाल ५५४ वि०पू० प्रारम्भ हुआ और इनके द्वादश (१२) शकराजाओं ने लगभग ३०० वर्ष राज्य किया। प्रथम शकसाम्राज्य का अन्त २६० वि०पू० या २४५ वि०पू० के मध्य हुआ। २४५ वि०पू० से नवीन शकराज्य का उदय हुआ, जिनके १८ राजाओं का विवरण आगे लिखेंगे। अतः मञ्जुश्रीमूलकल्प के श्लोक यह निश्चित अर्थ बता रहे हैं कि शकों के ३० राजा हुये, जिनमें १२ भूतिक से पूर्वकालीन और १८ उनसे उत्तरकालीन थे।

यह प्रथम शकसंवत् का स्पष्टीकरण हुआ।

द्वितीय शकसंवत्—२४५ वि०पू० से प्रारम्भ—इन्हीका पुराणों में विशेष उल्लेख है—

शतानि त्रीणि अशीतिश्च।
शकाअष्टादशैवतु[1]

इस सम्बन्ध में पाश्चात्यलेखक फ्लीट और पार्जीटर ने अति भ्रामक कल्पनायें की है। पार्जीटर की भ्रान्ति दृष्टव्य है—"These Sakas are, in Dr. Fleet's opinion, Nahapana and his success or, whose Kingdom begin with (or about) the Saka era, A D. 78; and if these words mean 380, the conclusion would be and has been drawn that this Puranic notice was written after they had reigned 380 years, that is about the year A.D. 458. Now this conclusion involue this consequence that the account brings the notice of the Sakas down to A D. 458 and yet wholly ignores the great Gupta empire which was Paramount in North India after A.D 340 and was still flourishing

१. पु० पा० (पृ० ४५)—भागवत और विष्णुपुराण में शकों के १६ राजाओं का उल्लेख है जो भ्रान्तिमय पाठ है—(शकाः षोडश भूपालाः)

in 458[1], इसलिए पार्जीटर 'शतानि त्रीणि अशीतिश्च' का अर्थ करता है, "We may now try reading these words as hundred, three, and eighty[3] 183." पाश्चात्य लेखकों ने भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में कैसी भ्रष्ट कल्पनायें कर रखी है, इसका यह निदर्शन है। फ्लीट और पार्जीटर का एक भी अक्षर सार्थक नहीं है। तथाकथित शकसंवत् का आरम्भ न तो नहपान से हुआ और न चष्टन से, न हीं गुप्तों का वह समय है जो फ्लीट मानता है। फ्लीट के एतत्सम्बधी भ्रान्त मत का विस्तृत निराकरण पूर्वपीठिका में किया जा चुका है। फ्लीट और पार्जीटर की भ्रष्ट कल्पना का खण्डन इसी से हो जाता है कि शक क्षत्रप रुद्रसिंह तृतीय का शकराज्य संवत् ३१० का शिलालेख प्राप्त हो चुका है, अतः पुराण का यह उल्लेख पूर्णत सिद्ध हो जाता है कि १८ शक राजाओ ने ३८० वर्ष राज्य किया, इनमें रत्तीभर शंका नही।

शकराजा रुद्रसेन तृतीय के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी षोडशम शकराजा सिंहसेन, हुआ इसके पश्चात् दो शक राजाओ ने राज्य किया, जिनका नाम अज्ञात है। अन्तिम शक राजा का बध १३५ वि०सं० मे प्रसिद्ध विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त साहसाक गुप्तसम्राट् ने किया और शकबध के उपलक्ष मे प्रसिद्ध शकसम्वत् चलाया—१३५ वि०सं० में, इसका कुछ वर्णन पूर्वपीठिका मे हो चुका हैं और अधिक वर्णन गुप्त प्रकरण में करेंगे।

अतः द्वितीय शकसंवत् शकराज्य के प्रारम्भ से चला, २४५ वि०पू० से और इस शकराज्यकाल (३८० वर्ष) का अन्त १३५ वि०पू० हुआ।

अष्टादश शकभृत्य चष्टनों का राज्यकाल—यह पूर्व लिखा जा चुका है कि मंजुश्रीमूलकल्पोल्लिखित मध्यम शकराजा भूतिक या भूमिक या यस्समोतिक इस वंश का प्रवर्तक था और चष्टन इसका पुत्र था। शिलालेखो, मुद्रा आदि पर इसके नाम मिले हैं, पुराणानुसार इनका समय इस प्रकार निश्चित होता है—

क०सं०	नाम	राज्यकाल	शकराजवर्षमेंतिथि
१.	भूतिक (यस्मोतिक)		
२.	चष्टन		४१—५१
३.	जयदामन्		५०—६०
४.	रुद्रदामन्		६१—८२
५.	दामघसद्		

---

१. द्र० डाइनेस्टीज आफ कलि एज, पृ० XXIV-XXV.

क्र०सं०	नाम	राज्यकाल	शकराजवर्ष	वि०सं०
६.	जीवदामन्			
७.	रुद्रसेन प्रथम			
८.	संघदामन्			
९.	दामसेन			
१०.	यशोदामन्			
११.	विजयसेन			
१२.	दमजदश्री			
१३.	विश्वसिंह			
१४.	भर्तृदामन्			
१५.	रुद्रसिंह द्वितीय			
१६.	यशोदामा			
१७.	रुद्रसेन तृतीय			
१८.	रुद्रसिंह		३८०	१३५

यह द्वितीय शकराजसंवत् इन १८ (अष्टादश) शकराजाओं से सम्बन्धित था, जिनका प्रारम्भ २४५ वि०पू० हुआ और अन्त १३५ वि०सं० में हुआ।

तृतीय शकसंवत् अथवा विक्रमसंवत्—इस संवत् को ईसा से ५७ वि०पू० क्षुद्रकमालव (शूद्रक) विक्रमादित्य ने शकों पर अपनी विजय के उपलक्ष में चलाया। इस पर विस्तृतचर्चा 'क्षुद्रक-गर्दभिल' शीर्षक में करेंगे। यद्यपि इस संवत्सर का संबंध भी शक पराजय से था, तथापि इसको विक्रमसंवत् ही कहते हैं।[1]

चतुर्थ शकसंवत्—यह अपने जन्मकाल (१३५ वि०सं०) से आजतक सर्वाधिक प्रचलित भारतीय संवत् है और आज के तथाकथित पाश्चात्य एवं भारतीय इतिहासकारों में इसके सम्बन्ध में सर्वाधिक भ्रान्तियाँ हैं। इस भ्रान्ति (असत्यता) का

१. वर्तमान भ्रान्ति द्रष्टव्य है—"मार्शल का कथन था कि शकराजा अयस ने ई०पू० ५७ में यह गणना प्रारम्भ की। गोपालस्वामी अय्यर चष्टन को इसका संस्थापक मानते हैं। डा० जायसवाल का मत था कि आन्ध्रनरेश गौतमीपुत्र शातकर्णि ने शकों पराजित कर इसे प्रारम्भ किया था। डा० अलतेकर आदि "कृत" को व्यक्तिगत नाम मानते हैं। कृतनामधारी राजा अथवा सेनापति के द्वारा इस सम्वत् की स्थापना की गई होगी। इत्यादि (प्रा० भा० अभि० पृ २१८)

दिग्दर्शन वासुदेव उपाध्याय के निम्न वाक्यों से होता है—"कुछ विद्वानों का मत है कि रुद्रदामन्-ई० सं० १५० के पितामह चष्टन शकवंश का प्रथम महाक्षत्रप हुआ और संभवतः उसी ने इस गणना का प्रारम्भ किया। . . . यह माना जा सकता है कि कुषाण कनिष्क द्वारा ई०सं० ७४ में गद्दी पर बैठने के कारण इस गणना का आरम्भ हुआ हो। फ्लीट तथा केनेडी कनिष्क को इसका संस्थापक नहीं मानते। फरगुसन, आलडेनवर्ग, बनर्जी तथा रायचौधुरी का मत है कि कनिष्क ने ही सन् ७८ में शकसंवत् का आरम्भ किया हो।[1]" कोई इसका सम्बन्ध नहपान से जोड़ता है। स्पष्ट है ये सब प्रमाणहीन कल्पनामात्र है। सभी साक्ष्यो एवं प्रमाणो को त्यागकर तथाकथित इतिहासकार प्रायः चालुक्यनरेश पुलकेशी द्वितीय के अयहोल शिलालेख के निम्न कथन के आधार पर कनिष्क या शक चष्टन को इस चतुर्थ शक सम्वत् का प्रवर्तक मानते हैं—

> पञ्चशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च ।
> समासु समतीतासु शकानामपिभूभुजाम् ॥ (ए० इ० भा० ६, पृ० १)

हम सन्देह है कि इस शिलालेख के उक्त वाक्य मे 'समतीतासु' के स्थान पर 'समतीतानाम्' को बदला गया है, क्योंकि ६५३ शकसम्वत् मे ऐसी त्रुटि होने की सम्भावना नही हैं, अतः पाठ होना चाहिए—

'समतीतानां शकानाम्'

क्योंकि इस काल से भी २४० वर्ष पश्चात् के प्रथम अमोघवर्ष के संजान ताम्रपत्र लेख मे इसको 'शकनृपकालातीतसंवत्सर' ही कहा हैं—

"शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेषु-वनृतयाधिकेषु।[2]"

अतः प्राचीन भारतीयशिलालेखकों को इस सम्बन्ध मे कोई भ्रान्ति नहीं थी कि यह चतुर्थ शकसंवत् शकराज्य की समाप्ति पर चला। एक नही पचासो शिलालेखों मे ऐसा ही उल्लेख है, कुछ और द्रष्टव्य हैं—जो प० भगवद्दत्त ने उद्धृत किये हैं[3]—(१) नन्दाद्रीन्दु गुणस्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः (सि० शि० कालमानाध्याय १/२८, भास्कराचार्य) शकनृप के अन्त पर कलि के ३१७९ वर्ष व्यतीत हुये।

---

१. वही, पृ० २२०,

२. प्रा० भा० अभि० प्र०, द्वि० ख० मूललेख, पृ० १५०

३. भा० बृ० इ० भा० २ (पृ० १७४-११७)

(२) शकान्ते शकाब्धी काले (श्रीपतिटीकाकार मक्किभट्ट अ, इ० हि० भा० १६ पृ० २५६-२६२),

प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट (१/१२६) में लिखा—

कलेर्गोऽर्गैकगुणाः शकान्तेऽब्दाः

शकराज के अन्त में कलि के ३१७९ वर्ष बीत चुके थे "श्रीसत्यश्रवा ने ने आगे सुदृढ़ प्रमाणों से सिद्ध किया है कि 'शकनृपकालातीतसंवत्सर शकनृप के काल के पश्चात् चला।'[1]

इस सम्बन्ध मे प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों को भी कोई भ्रम नहीं था— "शकानामम्लेच्छा राज्ञानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्येन व्यापादिताः स शक सम्बन्धीकाल. लोके शक इत्युच्यते।"[2]

इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध विदेशी पर्यटक इतिहासकार अलबेरूनी ने शकसंवत् प्रारम्भ के विषय में जो कुछ लिखा है वह शिलालेखों एवं प्राचीन ज्योतिषियो की पुष्टि करता है।[3]

उपयुक्त शकविजेता विक्रमादित्य का नाम 'अघुबग्रन्थ' मे महादेव लिखता कि मवन्वाले विक्रमादित्य का नाम 'चन्द्रबीज' था।[4] स्वयं डा० शाचाऊ ने, जिन्होंने अलबेरूनीग्रन्थ का अनुवाद किया था 'चन्द्रबीज' पाठ पर सन्देह व्यक्त किया था। प० भगवद्दत्त का मत शतप्रतिशत सत्य है कि "वह नाम चन्द्रगुप्त है।"[5] पण्डितजी ने निश्चयात्मक तथ्य को सन्देहात्मक भाषा मे अन्यत्र लिखा है— 'कलिसंवत् ३१३८ के पश्चात् भारत में शकराज्य क्षीण हो गया। तब किसी विक्रमादित्य का राज्य हुआ। यह विक्रमादित्य गुप्तों का कोई प्रतापी राजा था।'[6]

पूर्णसत्य तथ्य यह है कि उक्त वर्ष में शकराज्य क्षीण ही नहीं, पूर्ण समाप्त ही होगया था। और उक्त प्रतापी गुप्त विक्रमादित्य की पहिचान पण्डितजी नहीं कर सके यह आश्चर्य है, जबकि स्वयं उन्होंने 'साहसाक और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

---

१ शकास् इन इण्डिया पृ० ४४-४६

२ खण्डखाद्यक, वासनाभाष्य, पृ० २

३. Alberuni's India by E Sachau p 6,

४. भा० बृ० इ० भा० १, पृ० ३३६,

५. वही० पृ० ३३६,

६. वही०, भा० १, पृ० १७५,

की एकता' पर अपने ग्रन्थ के द्वितीय भाग में प्रभूत सामग्री एकत्रित की।[१] परन्तु पण्डितजी कहीं इस विक्रम को ५७ ई० पू० संवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य (शूद्रक) मानते रहे तो कहीं गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय। अतः निश्चय नहीं कर सके।[२] पण्डित जी को यह भ्रान्ति-भ्रान्तिमय जैनग्रन्थों के कारण हुई जो दोनों विक्रमों में भेद नहीं कर सके।

निम्न तथ्य प्राचीनसंस्कृतवाङ्मय, शिलालेख, ज्योतिषग्रन्थों एवं अलबेरूनी ने लिखे हैं, उन सबका सम्बन्ध गुप्तसम्राट् विक्रमादित्य चन्द्रगुप्तद्वितीय से ही अटूटरूप से जुड़ता है—(१) शकों का पूर्ण अन्त करने वाला विक्रमादित्य गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय था, जिसे शकान्तक साहसाक या विक्रम कहा जाता था।[३] (२) कन्नड पंचतन्त्र में गुप्तान्वय विक्रमादित्य के ही साहसाक कहा है, विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त ही था।[४] (३) अपने भ्राता रामगुप्त को मारने वाला चन्द्रगुप्त द्वितीय ही शकान्तक था—

हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद् देवीं च दीनस्ततो।
लक्षं कोटिमलेखयन् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः॥[५]

इसी घटना (भ्रातृवध) का उल्लेख देवीचन्द्रगुप्तनाटक, चरकसंहिताटीकाकारचक्रपाणिदत्त, राष्ट्रकूटनृपति गोविन्द के ताम्रपत्र[६] (शकसं ७६३) मुस्लिम-[७] इतिहासकारों, बाणभट्ट[८], भोजराज[९] इत्यादि अनेक प्रामाणिक ग्रन्थकारों ने किया है, अतः शकारि गुप्तसम्राट विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय ही शकसंवत् (चतुर्थ) का प्रवर्तक था, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं। और पण्डित भगवद्दत्त जी की यह कामना पूर्ण हो गई कि गुप्तकालनिर्णय के आधार ही शकयवनादि एवं कुशन आदि राजाओं का कालनिर्णय हो सकेगा। अतः चन्द्रगुप्तद्वितीय का

१. वही, भा० २, पृ० ३२४-३४२ पर्यन्त,

२. यह विक्रम जैनसाहित्य का प्रसिद्ध विक्रम और संवत्प्रवर्तक था। (वही०, भा० २, पृ० ३४०,

३ विक्रमादित्य : साहसाक. शकान्तक. (अमरकोशटीका, क्षीरपाणि २/८/२)

४. आलइण्डिया आरि० का०, मैसूर १९३५, पृ० ५३८,

५. ए० इ० भा० १८, पृ० २४८,

६. नैवाग्रजेक्रूरता'''पैशाच्यमङ्गीकृतमित्यादि। ए० इ० भा० ५ पृ० ३८,

७. पूर्वपीठिका पृ० (१९८) में उद्धृत,

८. हर्षचरित (षष्ठ उच्छ्वास),

९. शृंगारप्रकाश, काव्यमीमांसा, में उद्धृत,

राज्यारम्भ १३५ वि० स० में हुआ। तदनुसार, सर्वप्रथम गुप्तसम्राटों का निश्चित समय इस प्रकार निर्णीत होता है—

क०सं०	गुप्तसम्राड्नाम	राज्यकाल	गुप्तसंवत्	विक्रम सं०	शकसंवत्
१	चन्द्रगुप्त	७ वर्ष	१-८ ,	७७-८४	—
२	समुद्रगुप्त	५१ वर्ष	९-६० ,	८४-१३५	—
३	चन्द्रगुप्त साहसांक (विक्रम)	३६ ,	६१-९६ ,	१३५-१७१	१-३६
४	कुमारगुप्त, प्रथम	४० ,	९६-१३६ ,	१७१-२११	३६-७६
५	स्कन्दगुप्त	२५ ,	१३६-१६१ ,	२११-२३६	७६-१०१
६	नृसिंहगुप्त	४० ,	१६१-२०१ ,	२३६-२७६	१०१-१४१
७	कुमारगुप्त	४४ ,	२०१-२४५ ,	२७६-३२०	१४१-१४५

उपर्युक्त गणना से सिद्ध है कि गुप्तसंवत चन्द्रगुप्त प्रथम से ही प्रारम्भ हुआ और वह विक्रमसम्वत् ७७ से प्रारम्भ हुआ।

अतः गुप्तराज्य का आरम्भ ७७ वि० स० में और अन्त ३२० वि० स० में हुआ, आधुनिकलेखक ३२० वि० स० में इसका आरम्भ मानते, सो इस भ्रान्ति पर अब टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

उक्त आधारपर अब शक, मुरुण्ड, इत्यादि राजाओं का समय निश्चित किया जायेगा।

क्षुद्रक (शूद्रक) मालव और गर्दभिलवंश

क्षुद्रक और शूद्रक = एक वंश—यह पूर्वपीठिका (पृ० १८६) में स्पष्ट कर चुके हैं कि क्षुद्रक शब्द का ही 'एक रूपान्तर 'शूद्रक' शब्द था। जिस प्रकार 'चन्द्र श्री' का विकार 'चण्डश्री' (शातकर्णि) था उसी प्रकार क्षुद्रक का विकार शूद्रक है,। 'शूद्रक' न तो किसी का व्यक्तिगत नाम था और न ही शूद्रजाति से इसका कोई सम्बन्ध था।

मूल में क्षुद्रकमालव उसी प्राचीन असुर शाल्वजाति की शाखा थी, जिसका ब्राह्मणग्रन्थों एवं महाभारत वनपर्व के सावित्र्युपाख्यान एवं सौभप्रकरण में पर्याप्त उल्लेख हैं। पं० भगवद्दत्त का यह अनुमान सत्य के निकट है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त मुद्रायें इन्हीं असुर क्षुद्रकमालवों की असुरलिपि में मिली हैं।[1]

---

१. भा० बृ० इ० भा० १ (पृ० २२२)

क्षुद्रक या शूद्रक मालवगणराज्य—गुप्तो के उदय से लगभग चार शतीपूर्व इन्हीं पश्चिमी भारतवासी या ईरानवासी क्षुद्रकमालवो ने अवन्ति मे अपना गणराज्य स्थापित किया और मालवगणसंवत् चलाया। क्योकि मालव और क्षुद्रक मूल मे एक ही थे, इसलिए कही इस सवत् को 'मालवगणसंवत्' और कहीं क्षुद्रक (शूद्रक) संवत् कहा गया है। इसी को ही सभवत. 'कृतसवत्' कहा जाता था अथवा प्रतापी शकारि क्षुद्रक (शूद्रक) विक्रमादित्य के सवत् को कृतसवत् कहा गया हो। कृतसंवत् का विक्रमादित्य शूद्रक प्रवर्तक हो सकता है, परन्तु 'मालवसंवत्' उससे प्राचीनतर था और उसका विक्रमादित्य क्षुद्रक से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही था।

पं० भगवद्दत्त ने विभिन्न प्रमाणो के आधार पर विक्रम से ४०० वर्षपूर्व श्रीहर्षसंवत् को मालवगण या कृतसवत् माना है, जो असिद्धपक्ष है।[1] आइने-अकबरीग्रन्थ में आदित्य पोवार और विक्रम का अन्तर ४२२ है, कर्नल विल्फर्ड ने शूद्रक (क्षुद्रकगणराज्य) और विक्रम का अन्तर ३४७ या ३४३ वर्ष माना है।[2] कर्नल विल्फर्ड के अनुसार इस वश के १५ राजाओं ने ३४३ वर्ष राज्य किया। इसमें ४०० का अक सही प्रतीत होता है। क्योंकि ये गर्दभिल राजाओ का राज्य काल केवल ७२ वर्ष माना जाता है तथा विविधतीर्थकल्प मे (पृ० ३६) मे गर्दभिल राज्यकाल १३ वर्ष, शकराज ४ वर्ष तदनन्तर विक्रमादित्य को माना है।[3] (७२—४+३४३ - ४०१) एतदनुसार क्षुद्रक विक्रम मे लगभग ४०० वर्ष पूर्व ही ही मालवगणराज्य की स्थापना हुई। क्षुद्रक विक्रमादित्य इसी मालवगणराज्य का संभवत अंतिम सम्राट् था।

क्षुद्रक और शूद्रकविक्रम मे भेदाभेद—यह प्राय सर्वसम्मत एव सर्वस्वीकृत तथ्य है कि मालवनरेश शूद्रक (क्षुद्रक) विक्रमादित्य का शकुन्तलानाटककार कालिदास प्रथम से घनिष्ठ सम्बन्ध था अर्थात् यह कालिदास इसी विक्रमक्षुद्रक (शूद्रक) का राजकवि था। परन्तु प० भगवद्दत्त भ्रान्तिवश[4] एक सर्वस्वीकृत ऐतिहासिक तथ्य के विपरीत कालिदास के आश्रयदाता क्षुद्रक विक्रम को विक्रमपूर्व ६६८ से ४०० वि० पू० के काल मे रखना चाहते है।

---

१. वही०, पृ० १६७,

२. There are 343 years and only fifteen kings to fill up that space (Asiatic Researches Vol IX p 201),

३. 'तेइस गद्दभिलस्य चत्तारि सगस्य तओ विक्कमाइच्चो।'

४. यह भ्रान्ति मुख्यतः शूद्रक के (क्षुद्रक) जातिनाम न समझने से उत्पन्न हुई। द्र० भा० बृ० इ० भा० २, पृ० २९१-४०५,

सत्य तथ्य यह है कि क्षुद्रक (या क्षुद्रकमालवजाति) के उक्त १५ राजा सभी शूद्रक (प्राकृतनाम) कहे जाते थे। यह शूद्रकशब्दजातिनाम था, जिस प्रकार किसी गुप्तराजा को गुप्त या हूणराज को हूण कहा जाये, या शकराजा को शक कहा जाये। शकराजाओं के सम्बन्ध में यह प्रचुर प्रमाण दिये जा चुके हैं कि अन्तिम शकराज जिसका वध चन्द्रगुप्त ने किया उसे 'शक' ही कहा जाता था। यही सिद्धान्त शूद्रकराज या क्षुद्रकराज पर लागू होता है, परन्तु जिस प्रकार अन्तिम शकराज की सर्वाधिक प्रसिद्धि 'शक' नाम से हुई, उसी प्रकार अग्निमित्र[1] अपरनाम + इन्द्राणिगुप्त, विषमशील की प्रसिद्धि 'शूद्रक' नाम से हुई जो शूद्रक जाति का राजा था। शूद्रक अर्थात् क्षुद्रकमालवजाति। वस्तुतः यह जाति से ब्राह्मण था, परन्तु क्षुद्रकजाति का होने से ही क्षुद्रक या शूद्रक नाम से प्रसिद्ध हुआ। कृष्ण-चरित[2] और मृच्छकटिक से इसका ब्राह्मणत्व सिद्ध है—'द्विजमुख्यतमः कविर्बभूवः प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्वः।'

यही शकारि प्रथम विक्रमादित्य था, जिसने ५७ ई० पू० शकों को पराजित कर प्रथम विक्रमसंवत् चलाया, यही कृतसंवत् था—

> मता मत सोऽश्वमेधं कृतवानुरुविक्रमः।
> वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम्॥ (कृ० च० ११)

अतः निम्न प्रमुख व्यक्तियों का सम्बन्ध इसी विक्रम क्षुद्रकराज अग्निमित्र (शूद्रक) से था न कि उससे ४०० वर्ष पूर्व होने वाले किसी शूद्रक से। अतः प० भगवद्दत्त का मत पूर्णतः भ्रामक है कि किसी शूद्रक ने ४०० वि० पू० कोई विक्रम-सम्वत् चलाया था। विक्रमसम्वत् एक ही है जो ई० स० से ५७ वर्ष या शकसवत् से १३५ वर्ष पूर्व क्षुद्रक विक्रम ने चलाया। इतिहास में और कोई विक्रमसवत् है ही नहीं, अतः पण्डितजी की धारणा सर्वथा असिद्ध है।

इसी विक्रमसंवत् प्रवर्तक शूद्रक विक्रम का समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित के प्रारम्भ में राजकवियों के अन्तर्गत वर्णन किया है जो समुद्रगुप्त से ८४ वर्ष पूर्व हुआ था। इसी शूद्रक विक्रम ने—(१) धनुर्वेद और चौरशास्त्र की रचना की। (२) इसी शूद्रक ने मृच्छकटिक[3] और पद्मप्राभृतक नाटक लिखे। (३) इसी के पर्याय

---

१. शूद्रकस्त्वग्निमित्राख्यः (अमरकोष क्षीरटीका २/८/२),

२. पुरन्दरवसी विप्र शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित् (कृ० च० समुद्रगुप्तकृतश्लोक ६)

३. धनुर्वेदं चौरशास्त्रं रूपके द्वे तथाकरोत्। (कृ० च० श्लोक ६).

इन्द्राणिगुप्त[1] विषमशील[2] और अग्निमित्र[3] थे। इन्द्राणिगुप्त सम्भवत इसका जन्म नाम था। कर्मों के कारण वह विषमशील कहलाया। अग्नि में प्रवेश करने के कारण संभवतः वह 'अग्निमित्र' कहलाया।[4] अथवा सम्राट् बनने पर यह नाम धारण किया हो।

प० भगवद्दत्त का यह मत भी इतिहासविरुद्ध है—शूद्रक विक्रम का पिता राजा नहीं था[5]। प्रभावकचरित, कथासरित्सागर, बृहत्कथामंजरी आदि सभी ग्रन्थों से विक्रमशूद्रक का पिता राजा सिद्ध होता है जिसका नाम महेन्द्रादित्य गन्धर्वसेन या गर्दभिल था। गर्दभिल का राजत्व पुराणों से भी पूर्णतः सिद्ध है

गर्दभिल राजा—पुराणो मे गर्दभिलवंशीय सात राजाओ का राज्यकाल ७२ वर्ष बताया है। पुराणपाठ का यह अंक सत्य प्रतीत नहीं होता। लगभग ७२ वर्ष का राज्य तो इसी गर्दभिलपुत्र शूद्रकविक्रम का था—

लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः।

हमारा अनुमान है १५ शूद्रक राजाओ का राज्यकाल ३७२ वर्ष का होना चाहिये क्योकि मालवगण या क्षुद्रकगणराज्य की स्थापना विक्रम से चार शती पूर्व हुई थी।

अतः निम्नलिखित कविगण उसी क्षुद्रक जातीय विक्रमशूद्रक के समकालिक थे, जिसने ५७ ई० पू० अपना विक्रमसंवत् चलाया—(१) शूद्रकचरित कर्त्ता मातृगुप्त[6] (२) शाकुन्तलकार कालिदास[7] (३) हयग्रीववधकर्त्ता मेण्ठ (४) शूद्रककथाकार रामिल[8]

---

१ इन्द्राणिगुप्त इत्यासीद्यं प्राहुः शूद्रकं बुधाः (अ० स० क० सा० ४/१७५)

२. कथासरित्सागर

३ सपद्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे (मालविकाग्निमित्र/तथा "भवेद् गोष्ठीयान न च विषमशीलैरधिगतम् (मृच्छकटिक ६/४)

४. शूद्रकोऽग्नि प्रविष्टः (मृच्छकटिक)

५. भा० वृ० इ० भा० २, पृ० २६३,

६. मातृगुप्तो जयति यः कविराजो न केवलम्। कश्मीरराजोऽप्यभवत् सरस्वत्याः प्रसादतः विधायशूद्रकजयं सर्गान्तानंदमद्भुतम्॥ (कृ० च० २१-२२)

७. तस्याभवन्नरपते. कविराप्तवर्णः श्रीकालिदास इति योऽप्रतिमप्रभावः। शाकुन्तलेन स कविर्नाटकेनाप्तवान् यशः (कृ० च० १५-१६)—रघुवंशकार द्वितीय कालिदास, समुद्रगुप्त—चन्द्रगुप्त का राजकवि हरिषेण था।

८. तौ शूद्रककथाकारौ वन्द्यौ रामिलसोमिलौ (सूक्तमुक्तावलि, जह्लण),

सोमिल (४) मूलदेव कणिसुत।[1] इनको विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व मानना पण्डित भगवद्दत्त की केवल भ्रान्ति ही है। इस भ्रान्ति का आंशिक कारण पहिले लिख चुके हैं और अधिक स्पष्टीकरण मालवगणसंवत् के निर्णय से होगा।

मालवगणसंवत् का प्रारम्भकाल (तिथि)—पं० भगवद्दत्त ने शूद्रक या मालवगणसंवत् का प्रारम्भ ६६८ वि० पू० से ४०० वि० पू० तक के मध्य में कभी होना सम्भावित किया है। गुप्तों का कालनिर्णय हो जाने पर हम पूर्णसत्य या और सत्य के निकट पहुँच आते हैं। इस सम्बन्ध में यशपुर (मन्दसौर) मालव के ही गुप्त समकालिक निम्न राजाओं के शिलालेखों पर अंकित वर्षगणना द्रष्टव्य है—(१) नरवर्मा का मन्दसौर प्रशस्तिलेख—

श्रीर्मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते।
एकषष्ट्यधिके प्राप्ते समाः शतचतुष्टये॥ (श्लोक १—२)
जयवर्मनरेन्द्रस्य पौत्रे देवेन्द्रविक्रमे।
क्षितीशे सिंहवर्मणासिंहविक्रान्तगामिनि।
सत्पुत्रे श्रीमहाराजनरवर्मणि पार्थिवे। (श्लोक ४—५)

२. कुमारगुप्ते पृथिवी प्रशासति। (२३)
बभूव गोप्ता नृप. विश्ववर्मा (२४)
मालवाणां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये तस्यात्मज—नृप बन्धुवर्मा
त्रिनवत्यधिके ऽब्दानामिती सेव्यघनस्वने (३३—३४)
वत्सरशतेषु पंचसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु॥ (३६)

(३) अथ जयति जनेन्द्र श्रीयशोधर्मनामा। (४)
पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेषु। मालवगणना-
स्थितिवशात् (२४)

उपर्युक्त श्लोकों में कुमारगुप्त और नरवर्मा और बन्धुवर्मा का उल्लेख काल निर्णायक है। कुमारगुप्त, गुप्तसंवत् ९६-१३६ अथवा विक्रमसम्वत् १७१—२११ के मध्य हुआ। प्रारम्भ (१७१ वि० स०) या अन्तिम २११ वि० स० के मध्य १९१ वि० स० को बन्धुवर्मा दशपुर में राज्य कर रहा था, तब मालवगणनासम्वत् ४९३ था। अतः ४९३-१९१= ३०२ वि० पू० या इससेकुछपूर्व मालवगणराज्य की स्थापना हुई। यदि कुमारगुप्त के प्रथमवर्ष को माने तो ३२२ वि० पू० मालव गणसंवत् प्रारम्भ हुआ। इसमें १० से २० वर्षतक की ही त्रुटि हो सकती इससे अधिक नहीं, अतः ३०२ से ३२२ वि० पू० के मध्य मालवगणसंवत् प्रचलित

१. इ० भा० वृ० इ० भा० २ पृ० ३००—३०२,

हुआ। मालवसंवत् और विक्रमसंवत् (क्षुद्रक = शूद्रकसंवत्) में इतना ही अन्तर है, वैसे मालवगणसवत् और विक्रमसंवत् दोनों ही क्षुद्रको ने चलाये थे, अतः दोनों में न्यूनतम ३०२ से ३२२ वर्ष का ही अन्तर था।

प० भगवद्दत्त ने उक्त सूर्यमन्दिर का निर्माण ६३ वि० स० में और जीर्णोद्धार ६२२ वि० स० मे माना है, यहां पण्डितजी गुप्तो को ही एकमात्र विक्रम मानकर भ्रान्ति मे पड गये हैं। शुद्धतर गणना से सूर्यमन्दिर का निर्माण कुमारगुप्त के राज्यकाल १७१—२११ वि० सं० के ही किसी वर्ष हुआ ५२६ वर्ष व्यतीत होने पर अर्थात् १७१+५२६ = ७०० वि० स० के आसपास भवन का उद्धार हुआ। फ्लीट आदि भवन का उद्धार ४६३+५२६ = १०२२ वि० सं० मे मानते हैं वह शत-प्रतिशत असत्य है।

यशोधर्मा का समय—यशोधर्मा या यशोवर्मा का मन्दसौर लेख मालवगण संवत् ५८९ मे लिखा गया। क्योकि मालवगणसवत् ३२२ वि०पू० प्रारम्भ हुआ इस प्रकार ५८६—३२२ = २६७ वि०सं० मे यशोवर्मा का मन्दसौर लेख लिखा गया। इस समय गुप्तो का षष्ठ राजा नृसिंहगुप्त या कुमारगुप्त द्वितीय भारत सम्राट् था, सभवतः तब गुप्तसाम्राज्य पतन की ओर था। इससमय गुप्तो को दुष्ट माना जाने लगा था।[1] स्पष्टत है यशोवर्मा (२३७-२६७ वि०सं०) के समय गुप्तसाम्राज्य क्षीणप्राय था इसी की ओर पुराणों मे सकेत है जब उनका राज्य अनिसीमित रह गया था—

> अनुगङ्गं प्रयाग च साकेतं मगधास्तथा।
> एतान जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजा.[2]

जो लोग उक्त वर्णन को गुप्तराज्य का प्रारम्भिककाल का वर्णन समझते है, वे महान् भ्रम मे है। सीमितराज्य और 'गुप्तवंशज' पद से स्पष्ट है यह पतमान और अन्तिम गुप्तकालीनशासन का उल्लेख। प्रारम्भिकगुप्तसम्राटों का उल्लेख पुराणपाठ मे इस प्रकार है—आन्ध्रा श्रीपार्वतीयश्च द्विपचाशत समाः।[3]

कलियुगराजवृत्तान्त मे—

> श्रीपार्वतीयान्ध्रभृत्यनामानश्चक्रवर्तिन.।
> भोक्ष्यन्ति द्वे शते पचचत्वारिंशच्चवै समा।

---

१. As regards the Gupta Kala people say they Guptas were wicked powerful people and that when they ceased to exist. (Alberuni's India p. 7),

२. पु० पा० (पृ० ५३),

३. शते द्वे ऽब्धशतं वै (पु० पा० पृ० ४६),

जैनग्रन्थ त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति में गुप्तराज्यकाल २५३ वर्ष, एवं अन्यत्र २५१ वर्ष लिखा है।[1] अलबेरूनी ने भी २४१ वर्ष गुप्तराज्यकाल के बताये हैं।[2] ऊपर प्रत्येक गुप्त राजा का राज्यकाल लिखा है जिसका योग २४२ वर्ष होता है। तथापि गुप्तों पर विशेष विचार 'गुप्तवंश' शीर्षक मे करेंगे।

आधुनिकलेखक यशोधर्मा का समय, मालवसंवत् को विक्रमसं० मानकर ५८६ वि० सं० में मानते हैं, वह पूर्णतः असत्य है। यह सत्यगणना से न्यूनतम ३२२ वर्ष अधिक है। यशोधर्मा का सही समय २६७ वि०सं० और २६७ वि०सं० के मध्य था।

क्षुद्रकमालवसंवत् गुप्तसंवत् शकसवत् (चतुर्थ) का निर्णय हो चुका। अतः क्रमशः पुराणोल्लिखित शकराजवंश से नवनागवंश के राजाओं में समयादि पर संक्षिप्त विचार करेंगे।

अष्टादश शक राजाओं में प्रथम भूतिक—शकजातीय द्वादश राजाओं में प्रथम राजा मम्लाट और अन्तिम राजा नहपान का समय पूर्वपृष्ठ पर निर्णय हो चुका। द्वितीय, शकवंशीय १८ राजाओं में भूतिक (या यस्मोतिक) वंश प्रवर्तक था।[3] इसके राज्यकाल मे ३८० वर्षीय शकराज्यकाल २४५ वि०पू० से प्रारम्भ हुआ।

चष्टन-यही संभवत वंशप्रवर्तक राजा था, जिससे शकराजवर्षगणना शुरू हुई। यह भूतिक का पुत्र और जयदामा का पिता था।

जयदामा—उक्त भूतिक का पुत्र जयदामा था, जैसाकि शिलालेखों मे उल्लिखित है।

रुद्रदामा—इसका गिरनार शि० ले० अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो शकराजवर्ष ७२ अर्थात् १७३ वि०पू० मे लिखा गया। इससे पूर्व अंधो लेख मे शकराजवर्ष ५२ (१९३ वि०पू०) का उल्लेख है।[4] गिरनार शि० ले० मे चष्टन से ही वश का प्रारम्भ किया है—"राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्न स्वामिचष्टनस्य पौत्रस्य राज्ञ क्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नो स्वामिजयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्त नाम्नो रुद्रदाम्नोवर्षेद्विसप्ततितमे।' (प० ४) इसी शि० ले० मे दक्षिणाधिपति सातकर्णि का उल्लेख है, यह चण्डश्री शातकर्णिवासिष्ठीपुत्रतृतीय था, जिसका

---

१. त्रै० प्र० (६४ तथा ६८ श्लोक)

२. अलबेरूनी पृ० (७)

३. राज्ञो चष्टनस य्समोतिकपुत्रस् (अन्धो शि० ले०)

४. द्विपंचाशे (लेख० पं० २),

नाम लेखों में 'वासिष्ठीपुत्र सिरियंद साति' मिलता है।' जिसका राज्यकाल ३ वर्ष १७७ वि०पू० से १७३ वि०पू० तक था। यह अन्तिम सातवाहन राजा पुलोमावि तृतीय से पहिला राजा था। यह वासिष्ठीपुत्रतृतीय रुद्रदामा का जामाता था, जिसको पराजितकर, सम्बन्ध के कारण जीवित छोड़ दिया।

यमजदश्री और रुद्रसिंह—इसके दो पुत्र —यमजदश्री और रुद्रसिंह थे। रुद्रसिंह का शकराजवर्ष १०३ (१४२ वि०पू०) का लेख प्राप्त हो चुका है।

रुद्रसिंह तृतीय—इस वंश का संभवत: सोलहवाँ रुद्रसिंह तृतीय था, जिसका ३१० शकवर्ष (६५ वि०सं०) का लेख मिल चुका है।

रुद्रसिंह प्रथम म रुद्रसिंह तृतीय के बीच के शकराजाओं के नाम और राज्यकाल पहिले ही लिखा जा चुका।

अन्तिम शकराज का नाम अज्ञात—चष्टन वंश के अन्तिम राजा, जिसका वध करके चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने १३५ वि०सं० में शकसंवत् चलाया, उसका नाम अभी तक अज्ञात है, यह शकराजवर्ष के अन्तिम वर्ष (३८०वें वर्ष) मारा गया।

१४ तुषार (कुषाण या ऋषिक) या तुरुष्क राजागण—चौदह तुरुष्क[2] या तुषार राजाओ का राज्यकाल—५०० वर्ष कहा गया है—(इनको ही देवपुत्र या देवपुत्रतुषार भी कहा जाता था)—तुषारास्तु चतुर्दश।[3]

पचवर्षशतानि हि तुषाराणां मही स्मृता॥[4]

राजवंशप्रवर्तक कनिष्क का समय—इस तुषार या कुषाणवंश की राजवंश गणना कनिष्क से होती है—'महाराजस्य कणिकस्य स ३', (सारनाथ प्रतिमालेख प० १) महरजस्य रजनिरजस्य देवपुत्रस्य कनिष्कस्य सवत्सरे एकदशे (स्यूविहार ताम्र-पत्र, प० १)

इसका ४१ वर्ष तक का लेख मिला है—

वसिष्क पुत्रान कनिष्कस सवत्सरे एकचत्वारिंशे (४१)

इसके लेखो के पश्चात् के तुषार राजाओ के आरालेख के लेखों मे

---

१ ए इ. भा. १८, पृ० ३१६-३१९.

२ अशोक के शिलालेख के 'तुरमय' और वर्तमान तुर्क तथा वैदिक वाङ्मय के गन्धर्व और यक्ष ये ही थे। इनकी एक शाखा का नाम महाभारत में 'ऋषीक' (यूची) कहा गया है।

३. पु० पा० पृ० (४६)

४. पु० पा० ४७ पाठान्तर है—सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता:।

हुविष्क का लेख ४८-५१ वर्ष का और वासुदेव का ६७-९८ का मिला है अतः इस राजवंश का प्रवर्तक महाराज कनिष्क ही सिद्ध होता है।[1] कुछ लोग चतुर्थशक संवत् (७८ ई०) का प्रवर्तक कनिष्क को मानकर उसको समय १३५ वि० सं० में रखते हैं, जो पूर्णत इतिहासविरुद्ध और हास्यास्पद मान्यता है। अन्य भ्रामक मत द्रष्टव्य है—"डा० फ्लीट के मतानुसार काडफिसेस वंश के पूर्व कनिष्क राज्य करता था। ईसापूर्व ५८ में उसने विक्रमसंवत् की स्थापना की।"[2] "मार्शल, स्टेनकोनोव, स्मिथ तथा अनेक दूसरे विद्वानों के अनुसार कनिष्क १२५ ई० अथवा १४४ ई० मे सिंहासनरूढ़ हुआ।"[3] "फर्गुसन, ओल्डनबर्ग, थॉमस, बनर्जी, रैप्सन, जे० ई० वोन, लीहूईनेन दी लीऊ, बैंचाफेर तथा अन्य अनेक विद्वानो के अनुसार कनिष्क ७८ ई० को शकसंवत् का प्रचलन किया।"[4] श्री हरिचरण घोष और जयचन्द्र विद्यालंकार कनिष्क का राज्यारम्भ १२८-१२९ ई० में मानते हैं।"[5]

उपर्युक्त सभी मतमतान्तर अपनी असत्यता को प्रमाणित कर रहे हैं। चीनी ग्रन्थो के आधार पं० भगवद्दत्त का अनुमान है—"उस गणना के अनुसार कनिष्क ईसा से लगभग २००—१५० वर्ष पहिले हुआ।"[6]

कल्हण ने बुद्ध के १५० वर्ष पश्चात् कनिष्क को माना है।[7] चीनीपरम्परा के अनुसार कनिष्क बुद्ध के ठीक ४०० वर्ष पश्चात् है।

इस संबंध मे हमारा अनुमान है कि कल्हण का अंक १५०० और चीनी अंक १४०० होना चाहिये। नागार्जुन की कनिष्क से समकालिकता उसके समय निर्धारण मे परम सहायक है। महान् बौद्धाचार्य नागार्जुन सातवाहनवंश के अठारवें या उन्नीसवें राजा मन्तलक के समय जीवित था, यद्यपि नागार्जुन की आयु अनेक शताब्दी थी, तथापि कनिष्क के समय वह अपने अन्तिम समय में होगा। पुराण गणना के अनुसार मन्तलक शातकर्णि ३३३ वि० पू० तक रहा। भारतयुद्ध (३०८८) वि० पू० से १३०८ वर्ष पश्चात् १७८० वि० पू० मे बुद्धनिर्वाण हुआ। और कनिष्क बुद्धनिर्वाण के लगभग या ठीक १५०० वर्ष पश्चात् हुआ, अत उसका

१. कुषाण राजा कनिष्क द्वारा ई० स० ७८ मे गद्दी पर बैठने के कारण उस गणना का आरम्भ हुआ हो।" (प्रा० भा० रा० इ० पृ० २२०).

२. प्रा० भा० रा० इ० (३४२),

३. वही (पृ० ३४३),

४. वही० पृ० ३४३,

५. वही,० पृ० ४६१,

६. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ३२१,

७. रा० त० १६८-१७४,

राज्याभिषेक २८० वि० पू० होना चाहिये। कनिष्क का समय इससे कुछ पूर्व हो सकता है बाद का नहीं।

अन्तकाल—कनिष्कसहित १४ तुरुष्क राजाओं ने ५०० वर्ष राज्य किया। समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति मे षाहानुषाहि शासको का उल्लेख है, अतः २८० वि० पू० के पश्चात् २२० वि० स० में (५०० वर्ष पश्चात्) गुप्तकाल के मध्य में कुषाण राज्य का अन्त हुआ।

मञ्जुश्रीमूलकल्प मे उल्लिखित बुद्धपक्षसंज्ञक[1] राजा कनिष्क ही था। कनिष्क ही बुद्धधर्म का परमरक्षक था और उसके शासनकाल मे अश्वघोष की अध्यक्षता मे बौद्धो की चतुर्थ महासंसत् (संगीति) हुई—

नस्य शूरकवेर्घोष इति नामाभवत्तत्।
सौगताना महासंसत्तुरीयाभून्महोज्ज्वला।[2]

अतः अश्वघोष और नागार्जुन कनिष्ककालिक मुख्य विद्वान् थे। कनिष्क के उत्तरकालीन तुषारराजा थे वासिष्क, हुविष्क और वासुदेव। वासुदेव का ९८ तुषारराज्यवर्ष का लेख मिला है मिल चुका है। पं० भगवद्दत्त का यह अनुमान है कि "शेष आठ राजा वासुदेव के पश्चात् हुए होंगे।"[3] हमारा अनुमान है कि कनिष्क वंशप्रवर्तक था और कुजुल कडफिसस प्रथम और विम=कडविसस (द्वितीय) कनिष्क के पूर्ववर्ती नही बहुत उत्तरकालीन तुषार (कुषाण) राजा थे। स्वयं भगवद्दत्त ने लिखा है कडफिसस के एक ताम्रपत्र पर १८४ या १८७ संवत् (वर्ष) अंकित है[4], अतः वह निश्चय ही कनिष्क से लगभग डेढ़शती पश्चात् हुआ। अतः वासुदेव के पश्चात् ८ नही १० कुषाण राजा हुए।

कल्हण ने तुरुष्क राजाओं का क्रम हुष्क (हुविष्क) जुष्क (वाझिष्क) और कनिष्क रखा है। वह भ्रान्त (गलत) है तथा इसकी असत्यता शिलालेखो से सिद्ध है।

अष्ट यवन राजा

राज्यकाल—पुराणो के अनुसार यवनो के आठ राजाओं ने केवल ८७ वर्ष (या ८२) राज्य किया— यवना अष्टौ भविष्यन्ति।
सप्ताशीति महीमिमाम्॥[5]

---

१ बुद्धपक्षस्य नृपतो शास्तु शासनदीपकः (श्लोक ६३६), डा० जायसवाल का 'बुद्धपक्ष' को कडफिसस प्रथम मानना भ्रांतिमात्र है।
२ कृष्णचरित (श्लो० १८, १९),
३. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ३२१,
४ वही० पृ० ३१९,
५. रा० त० (१६८–१७४),
६. पु० पा०, पृ० ४७—अशीतिः द्वे च वर्षाणि भोक्तारोयवना महीम्—पाठान्तर।

परन्तु, पाश्चात्य लेखकों के विशेषत टार्न नाम के प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखक ने 'दी ग्रीकस्इन बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में निम्नलिखित यूनानी राजाओं का वर्णन किया है जो बाह्लीक (बाक्ट्रिया-अफगानिस्तान) और भारत के उत्तरी भाग (पंजाबादि) के शासक थे—

यूनानी नाम		भारतीय नाम
डायोडोटस	=	देवदत्त
यूथीडेमस	=	
अपालोडोटस	=	अपालदत्त = अपर्णदत्त
एण्डीमेकोस	=	
पेन्टालिआन	=	
डेमेट्रियोस	=	दामदत्त
डायोमिनियोन	=	देवानीक
मेनाण्डर	=	मेनेन्द्र

टार्न ने और भी यूनानी राजाओं का नाम लिया है और इनको यूथिडेमिसस और डेमेट्रियस का वंशज बताया है।

उपर्युक्त ग्रीक (यूनानी = यवन) राजा नैश (Niceae) जनपद तक्षशिला, पुष्करावती, और कपिशा (गान्धार, बाह्लीक और कपिशा) तथा काम्बोज जनपदों के शासक थे। इनमें डेमेट्रियस और मेनेन्द्र प्रधान थे।

दत्तमित्र—डेमेट्रियस नहीं—भारतीयग्रन्थों में मेनेन्द्र का नाम मिलता है। रायचौधुरी ने लिखा है कि कुछ लोगों के अनुसार डेमेट्रियोस राजा महाभारत (१/३६/२३) उल्लिखित दत्तामित्र है, जिसको अर्जुन पाण्डव ने हराया। दत्तमित्र सौवीरों का राजा था। अर्जुन पाण्डव समकालिक सौवीरराज यवन दत्तमित्र दो शती विक्रम पूर्व का डेमेट्रियस कैसे हो सकता है यह सामान्य बुद्धिपाठक भी सोचविचार सकता है। इसी प्रकार डा० के० पी० जायसवाल युगपुराण में धर्ममीत और खारवेल के हाथी गुफालेख में डिमित की खोज करके उसे यूनानी डेमेट्रियस (दत्तमित्र) बना डालते हैं। डा० जायसवाल के दोनों ही पाठ पूर्णत कल्पित, भ्रामक एवं नितांत निराधार है, अतः अमान्य हैं। डेमेट्रियस शुंगकाल या खारवेल (सातवाहन) काल में किसी प्रकार नहीं हो सकता, यह पुराणों के राजवंशक्रम से भी सिद्ध है कि आठ यूनानी राजा शुंगों के कितने पश्चात् उल्लिखित है तथा हमारे विवेचन से भी प्रकट है। पाश्चात्य एवं तदनुयायी भारतीयलेखकों ने निराधार एवं इतिहासविरुद्ध व्यर्थ

कल्पनायें अधिक की है। इतिहास कल्पना से दूर भागता है, यह अटल (ध्रुव) सिद्धान्त है।

राज्यारम्भवर्ष—पाश्चात्यलेखकों के अनुसार सेल्यूकस के उत्तराधिकारी के प्रदेशाध्यक्ष डायोडेटस (देवदत्त) ने विद्रोह करके २४७ ई० पू० (१६० वि० पू०) स्वतन्त्र यूनानीराज्य की स्थापना की। पुराणगणना से यह तिथि मेल खाती है, अतः आठ यूनानियों राजाओं का राज्यकाल १६० वि० पू० से १०३ वि० पू० तक रहा।

मेनेन्द्र—बौद्धग्रन्थ 'मिलिन्दपन्ह' में इसका 'मिलिन्दनाम' से आचार्य नागसेन से संवाद है। बजौर नामक स्थान से मिलिन्द की शवमंजूषा में एक लेख मिला है—' मिलेन्डस महसम कटिस दिवस १४'' '''शकमुनिस''[2] मिलिन्दपन्ह का एक पाठ बनाया गया—परिवाननो पंचवस्स सते अतिकन्ते एते उपज्जिस्सन्ति।''[3] हमारा मत है कि यह पाठ कल्पित है. बुद्धनिर्वाणकाल और मिलिन्द में न्यूनतम अन्तर १५०० वर्ष या इससे कुछ अधिक होना चाहिए। भारतीयगणना से बुद्ध का निर्वाण १७०० वि० पू० हुआ और मिलिन्द का राज्यकाल १६०-१५० वि० पू० के मध्य होगा। अतः 'अत मिलिन्दपञ्हो का पाठ 'पंचदसवस्ससते' होना चाहिये। हमें शंका है कि पाश्चात्य स० ट्रेंकर ने सिंहलीबौद्धगणना के परिप्रेक्ष्य में पाठ को बदला है।

त्रयोदश मुरुण्ड राजा

आरम्भकाल—यह संभवत शकों की एक शाखा थी, जैसा कि स्टेनकोनोव मानता था।

मुरुण्डों के एक राजा ने किसी सातवाहनराजा को परास्तकर मगध से निकाला था. अत मुरुण्डों का शासन न्यूनतम विक्रम से दो शती पूर्व प्रारम्भ हुआ और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पत्नी ध्रुवस्वामिनी संभवतः मुरुण्ड ही थी, क्योंकि मुरुण्ड राजा अपने लिये स्वामी और रानी के लिये स्वामिनीपद का विशेषप्रयोग करते थे।

त्रयोदश मुरुण्डराजाओं का २०० वर्षों का राज्यकाल गुप्तों से पूर्व समाप्त हो गया होगा, परन्तु मुरुण्डों का अस्तित्व गुप्तकाल तक अवश्य रहा।

इनके किसी भी राजा का नाम अज्ञात है।

---

१. प्रा० भा० रा० इ० (पृ० २७७),

२ प्रा० भा० अभि० अ० (मूललेख इ० २५)

३. ट्रेन्कर स० मिलीन्दपन्हों, पृ० ३,

एकादश हूण—पुराणों के अनुसार हूणों के एकादश राजाओं ने भारतीय भू-भागों पर ३०० वर्ष राज्य किया—

शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ते हूणा एकादशैव तु।"[1]

पाश्चात्यलेखक और तदनुयायी भारतीयलेखक डा० रमेशचन्द्र मजूमदार अल्तेकरादि ह्वेनसांग के सत्यवर्णन को संभावित तिथि के भ्रम में डालते हैं—"बालादित्य के हाथों मिहिरकुल की बाद की पराजय, जिसका ह्वेनसांग ने वर्णन किया है—बाद में बतलाई जायेगी।

"यह कथन इस विचार से मुश्किल से संगत बैठेगा कि उसकी उल्लिखित घटना ५३० ई० के करीब हुई, जैसा कि वॅटर्स ने दिखाया है, चीन के अन्य प्रामाणिक लेखक भी मिहिरकुल की उक्त तिथि से बहुत पूर्व स्थापित करते हैं। इससे स्वभावत. ह्वेनसांग की मिहिरकुलविषयककथा की विश्वसनीयता पर गम्भीर संदेह हो जाता है।"[2]

उपर्युक्त लेखकों की प्रवृत्ति ही संदेहशील है। मुख्यकारण यह है कि फ्लीट के आधार पर इन भारतीय लेखकों ने गुप्तों (यथा स्कन्दगुप्तपुत्र बालादित्य) का समय ही भ्रामक मान रखा है, न्यूनतम २४२ वर्ष पश्चात्। बालादित्य की तिथि ५३० ई० थी ही नहीं, इसीलिये मजूमदार के विचारों की संगति ठीक नहीं बैठती। वाट्र्स (एवं अन्य चीनी लेखकों ह्वेनसांग) ने ठीक ही लिखा है।

'वाट्र्स ने पृ० २८० पर लिखा है, कि मिहिरकुल ने २३वें वर्ष में अन्तिम बौद्ध आचार्य सिंह का सन् २५६ ई० (या ३१६ वि० स०) में शिरश्छेद किया।'[3]

पुराणगणना से उक्त वाट्र्स और ह्वेनसांग की तिथि की पूर्णसंगति बैठती है कि मिहिरकुल, यशोधर्मा और बालादित्य वि० स० ३०० के लगभग विद्यमान थे।[3]

पाश्चात्य भ्रांति के कारण प० भगवद्दत्त भी भ्रांति में पड़कर लिख बैठे—'यदि यह तोरमाण मिहिरकुल का पिता था तो वह अवश्य शकारि विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त से पहिले का था।'[4] जब पण्डितजी ने वाट्र्स के प्रमाण से स्वयं लिखा है कि हूण मिहिरकुल ने "अन्तिम बौद्ध आचार्य सिंह का सन् २५६ ई० में शिर-छेद

---

१ पु० पा० (पृ० ४७, मत्स्यपाठ)—पाठान्तर—'मौना एकादशैव तु' पृ० वही,

२. भारतीयजन का इतिहास, पृ० २०४, भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ३२३,

३ यशोधर्मा की तिथि आदि पर विचार इसी प्रकरण में वक्ष्यमाण कल्किद्वितीय के सम्बन्ध में करेंगे।

४. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ३२३,

किया।"[1] तब मिहिरकुल चन्द्रगुप्त शकारि से (१३५ वि० स०) से पूर्व का कैसे हो सकता है, जबकि पण्डितजी इस चन्द्रगुप्त को विक्रमसंवत् प्रवर्तक भी मानते हैं, हम सुदृढ़ प्रमाणो से सिद्ध कर चुके हैं कि यह चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य शकारिशकसंवत् प्रवर्तक (१३५ वि० स०) था। पण्डितजी के अनेक मत निश्चयात्मक न होने के कारण वे भ्रान्ति में पड़े।

तोरमाण और मिहिरकुल अनेक नहीं, एक ही हुये हैं। तथा उनका समय वाट्सं और ह्वेनसांग में ठीक लिखा है, जो पुराणतिथिक्रम से पूर्ण संगत है।

इस सम्बन्ध के पाश्चात्यानुयायी भारतीयलेखकों को बालादित्य के सम्बन्ध में भी अतिभ्रम है कि वह कौनसा था। इस सम्बन्ध मे डा० रायचौधुरी का तिथिक्रम यद्यपि पूर्णभ्रष्ट एवं पाश्चात्यमतानुसारी ही है तथापि उन्होंने यह पहिचान ठीक ही है कि 'इस संबंध में हम भूल जाते हैं कि ह्वेनसांग ने जिस बालादित्य का उल्लेख किया है वह बुधगुप्त ने पश्चात् होने वाले तथागतगुप्त का उत्तराधिकारी था। ह्वेनसांग के अनुसार, बालादित्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी का नाम 'वज्र' था, जब कि नरसिंहगुप्त के उत्तराधिकारी का नाम कुमारगुप्तद्वितीय था।[2] अतः मिहिरकुल का विजेता यशोधर्मा का समकालिक प्रकाशादित्य एवं वज्र का पिता भानुगुप्त का नाम बालादित्य था। भानु और आदित्य पद समानार्थक भी है।

अब, पाठकों की बुद्धि मे सम्यग्रूपेण आ जायेगा कि डा० मजूमदार की संगति क्यों नही बैठती। यह सगति पुराण एवं अन्य प्राचीन चीनीलेखकों तथा वाट्सं जैसे लेखकों के वचनों को सत्य मानने पर ही बैठेगी।

उपर्युक्त की पुष्टि इस विचार से भी होती है कि कुमारगुप्तद्वितीय तक के गुप्तसम्राट वैष्णव या शैव थे, जब मिहिरकुल का विजेता बालादित्य (भानुगुप्त) द्वितीय बौद्ध था, उसके पिता तथागतगुप्त के नाम से ही सिद्ध है कि वह बौद्ध था।

उपर्युक्त दीर्घविवेचन का मुख्य फलितार्थ यह है कि एकादश हूणों का समय अब सुविधापूर्वक निश्चित किया जा सकता है।

अतः एकादश हूणराजाओं में तोरमाण और मिहिरकुल अन्तिम थे, नकि प्रारम्भिक, जैसी कि प० भगवद्दत्त की धारणा इसके विपरीत है। तोरमाण का

---

१. प्रा० भा० रा० इ० (पृ० ४३६),

२. रायचौधुरी के ही मत में 'इसकी पुष्टि प्रकाशादित्य के सारनाथअभिलेख तथा आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प से भी होती है। (वही, पृष्ठ वही),

प्रथमवर्ष का शिलालेख मिला है।[1] और उसके पुत्र मिहिरकुल का पन्द्रहवें वर्ष का उल्लेख मिला है।[2] तथापि उनके राज्यकाल का ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सकता। अनुमानत: दोनों का राज्यकाल ३०-३० वर्ष से अधिक ही होगा।

अन्तिम हूणाधिप मिहिरकुल को यशोधर्मा ने वि० स० ३१० के आसपास परास्त किया, अतः हूणराज्य का आरम्भ ठीक वि० स० के प्रारम्भ में मानना पड़ेगा। उनका राज्यकाल लगभग वि० सं० १० से ३१० वि० सं० तक रहा, यह निश्चित है। मिहिरकुल को यशोधर्मा ने पूर्णरूप से परास्त किया—'मिहिरकुल नृपेणार्चितपादयुग्मम्'[3] (मन्दसोरप्रशस्ति) मिहिरकुल और तोरमाण से पूर्व के ६ हूणराजाओं के नामादि अज्ञात हैं।

(पंच आन्ध्रभृत्यवंश)

डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने लिखा है—"वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है कि आन्ध्रों की अधीनता में पांच समकालिक वंशों की स्थापना हुई थी। यथा—

वायु०—आन्ध्राणाम् संस्थिता पंच तेषां वंशा: समा पुन.। वायु० ३७/३५२,

ब्रह्माण्ड—आंध्राणाम् संस्थिताः पंच तेषां वंश्या ये पुन.।

डा० जायसवाल पांच आन्ध्रभृत्य राज्यवंशों में इन पांच को सम्मिलित करते है—१ गौण आन्ध्रसातवाहन २. विन्ध्यक (वाकाटक), ३. गुप्तवंश ४. मुण्डानन्द और (५) महारथी वंश। परन्तु मुख्य सातवाहकों के पश्चात् निम्न दश भारतीय राजवंशों ने राज्य किया, जिनका स्वयं डा० जायसवाल ने अपनी पुस्तक में वर्णन किया है—१. नागवंश २ इक्ष्वाकुवंश—आन्ध्रभृत्य ३. श्री पार्वतीय आन्ध्रभृत्य ४ चुटु ५ विन्ध्यक (वाकाटक) ६. पल्लव ७ कदम्ब, (८) गंग ६ आभीर और १०. गर्दभिल। परन्तु, अत्यन्त खेद एवं आश्चर्य की बात है कि डा० जायसवालसदृश पुराणमत को प्रामाणिक माननेवाले भारतीय इतिहासज्ञ ने अपनी पुस्तक में शूद्रकविक्रम और उसके पिता गर्दभिल की चर्चा तक नहीं की यह उनके पूर्वाग्रह का साक्ष्य है।

उपर्युक्त राजवंश निश्चय ही भारतीय थे और मुख्य सातवाहनों के

---

१ वर्षे प्रथमे पृथ्वीं पृथुकीर्तौ पृथुद्युतौ। महाराजाधिराजश्रीतोरमाणे प्रशासति (पं०२),

२ श्रीतोर (म.ण ?) ति म. प्रथितो तस्यादि त कुलकीर्तेः पुत्रोऽतुलविक्रम पतिः पृथिव्या। मिहिरकुलेति ख्यातः अभिवर्द्धमानराज्ये पंचदशाब्दे नृपनृपस्य (ग्वालियरलेख, पृ० २-३)

३. भा० अनु० पृ० २६६,

पश्चात् भारतीय इतिहास गगन पर उदित हुये, परन्तु इनमें किन पांच राजवंशों को पुराणो में आन्ध्रभृत्य कहा गया है, यह निश्चय करना अतिकठिन है। परंतु निम्न प्रसिद्ध राजवंशों के विषय में निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे आन्ध्रभृत्य थे। १. इक्ष्वाकु चाटूमूल २. चुटु और ३. श्रीपार्वतीय (गुप्त)। उपर्युक्त दश राजवंशों में चुटुपल्लव, कदम्ब और गंगो का पुराणो में कोई उल्लेख नहीं है, गुप्तोत्तरकालीन या स्थानीय होने से उनका वर्णन नहीं किया गया। गर्दभिल और शूद्रकवंश का कालनिर्णय इसी प्रकरण मे अन्यत्र किया जा चुका है। अतः १. आभीर २. इक्ष्वाकु आन्ध्रभृत्य ३. विन्ध्यक ४. चुटु और ५. श्री पार्वतीय गुप्तवंश का वंशक्रम तथा कालक्रम यहां निर्णय करेंगे। सम्भवतः ये पांच सातवाहनोत्तरकालीन राजवंश थे, जिनका वायु० और ब्रह्माण्डपुराण में उल्लेख है।

१ आभीर दशराजा—दस आभीर राजाओ का राज्यकाल पुराणों मे ६७ वर्ष बताया है—सप्तषष्टि च वर्षाणि दशाभीरास्ततो नृपा॥ भागवत और विष्णु में 'सप्त आभीरा आन्ध्रभृत्याः' पाठ है तथा 'दश' की सख्या शुद्ध है. परन्तु इस पाठ से यह ज्ञात होता है कि आभीर राजा आन्ध्रभृत्य ही थे। इनमे एकमात्र आभीर राजा ईश्वरसेन का ज्ञान हमे नासिक से प्राप्त एक शिलालेख से चलता है।[1] जो शिवदत्त आभीर का पुत्र था। ईश्वरसेन का पिता शिवदत्त राजा नही था, इससे डा० जायसवाल ने अनुमान लगाया है कि आभीरों का गणतन्त्र राज्य था।[2] डा० जायसवाल ने अपनी भ्रामक गणना के अनुसार ईश्वरसेन का समय १६० ई० माना है।[3] तथा हमारी गणना से वह विक्रमपूर्व का राजा होना चाहिये, परन्तु ठीक समय प्रमाणाभाव मे निर्णय नही किया जा सकता. परन्तु अनुमान से वे गर्दभिल राजाओ के समकालिक होने चाहिये। पं० भगवद्दत्त का भी यही अनुमान है[4]—आभीरो की सत्ता शकों के साथ-साथ थी। यद्यपि आभीरों के स्थानीय शासन गुप्तोत्तरकाल (३०० वि० स०) तक चलता रहा जैसा कि अग्रिमप्रकरण में चर्चा करेंगे—'सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूद्रा अर्बुदमालवाः।'[5]

सप्तआन्ध्रभृत्य कौन—इक्ष्वाकु आन्ध्र या श्रीपार्वतीयगुप्त ?—इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने से पूर्व विभिन्न पुराणपाठो का उद्धरण द्रष्टव्य है—

१. आन्ध्राणा संस्थिते राज्ये तेषां भृत्यान्वये नृपा :।
सप्तैव आन्ध्रा भविष्यन्ति···(मत्स्य २७१/१७-१८)

---

१. ए० इ० भा० ८, पृ० ८८
२. भा० अ० इ० पृ० ३१६-३१७,
३. वही० पृ० ३१८,
४. भा० बृ० इ० भा० २ पृ० ३१४,
५. पु० पा०, पृ० ५४,

२. आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्च ते द्वे पंच शतं समाः।[1] (वही, पाठान्तर) वायु और ब्रह्माण्ड का प्राचीनतर पाठ है—

"आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुधां शते द्वे च शतं चैव"[2] इसका अर्थ डा० जायसवाल ने किया है—"आन्ध्र लोग वसुधा का दो (राजवंश) एक सौ (वर्ष) और एक सौ (वर्ष) क्रमशः भोग करेंगे।[3] इस सम्बन्ध में हम उनकी इस टिप्पणी से भी सहमत हैं कि यहाँ यह बात स्पष्ट है कि वायुपुराण और ब्रह्माण्ड में 'आन्ध्र' शब्द के अन्तर्गत दो राजवंशों का अन्तर्भाव किया गया है—एक तो अधीनस्थ भृत्य आन्ध्र जो साम्राज्यवाली (सातवाहन) उपाधि धारण करते थे और दूसरे आन्ध्रश्रीपार्वतीय। गणना के सम्बन्ध में एक और पुराणपाठान्तर प० भगवद्दत्त ने उद्धृत किया है—'आन्ध्राःश्रीपार्वतीयश्च ते द्वे पंचशतं समाः।[4] अर्थात् आन्ध्र (गौण आन्ध्र) तथा श्रीपार्वतीय वा गुप्त दोनों ५०० वर्ष तक राज्य करते रहे। इनमें २५० वर्ष राज्य गौण आन्ध्रों का और २५० वर्ष राज्य गुप्तों का होगा।" यदि श्रीपार्वतीय गुप्त ही थे तो प० भगवद्दत्त उद्धृत पाठ ही सही होगा, अन्यथा डा० जायसवाल का मत ठीक हो सकता है। डा० जायसवाल ने चुटुजाति के राजाओं को आन्ध्रभृत्य माना है, जिन्होंने १०० या १०५ वर्ष राज्य किया।[5] परन्तु श्री भगवद्दत्त[6] के मत का समर्थन नारायणशास्त्री के कलियुगराजवृतान्त से होता है कि पार्वतीय गुप्त राजा ही आन्ध्रभृत्य थे—

एते प्रणतसामन्ताः श्रीमद्गुप्तकुलोद्भवाः।
श्रीपार्वतीयाश्चान्ध्रभृत्यनामानश्चक्रवर्तिनः॥

इसमे कोई सन्देह नहीं कि पुराणप्रामाण्य के अनुसार न्यूनतम पाँच राजवंश आन्ध्रभृत्य कहे जाते थे, परन्तु गुप्तराजा का वंशप्रवर्तक श्रीगुप्त मुख्य आन्ध्रसातवाहनों का भृत्य (सामन्त) नहीं हो सकता, क्योंकि अन्तिम सातवाहन राजा पुलोमावि द्वितीय (१७२ वि० पू०) और श्रीगुप्त (५० वि० सं०) में दोसौवर्षों से अधिक का अन्तर था अतः प्रारम्भिक गुप्तराजा गौण आन्ध्रों (इक्ष्वाकु या चुटु) के ही भृत्य हो सकते हैं, जिन्होने क्रमश १०० और १०५ वर्ष राज्य किया अथवा गौण आन्ध्रों का कुल राज्यकाल २५० वर्ष था, इनके अनन्तर ही गुप्त प्रबल हुए।

---

१. पु० पा० ४६,
२. वही, पृष्ठ वही,
३. भा० अ० इ० भा० २, पृ० ३१३, तथा पृ० ३४३,
४. भा० बृ० इ० भा० २ पृ ३०८-३१३ पर्यन्त,
५. भा० अ० इ० पृ० ३१३ पर उद्धृत।
६. भा० भा० इ० (३०४-३१४)

चुटु आन्ध्रभृत्य—७ राजा—इनको डा० जायसवाल ने चुटुवंश के हारितीपुत्र माना है, जिनके शिलालेख कन्हेरी और मलवल्ली (मैसूर) में मिले हैं, और इनका राज्यारम्भ २०० ई० के लगभग माना है।[1]

पुराणों में इन आन्ध्रभृत्य शातकर्णियों का राज्यकाल १०० या १०५ वर्ष बताया है।[2] शिलालेखों में इस वंश के जिन राजाओं के नाम मिले हैं, उनको डा० रैप्सन और डा० जायसवाल ने इस प्रकार लिखा है—

राजा हारीतीपुत्र विष्णुस्कन्द
|
चुटुकुलानन्द सातकर्णी = महाभोजी
|
महारथी = नागमुलनिका
|
हारीतीपुत्र शिवस्कन्दवर्मन्
(वैजयन्तीपति)[3]

शेष राजाओं के नाम अज्ञात है, इनका राज्यकाल डा० जायसवाल अनुमानत १५० ई० से मानते है, जबकि शकपति रुद्रदामा का शासन था। हमारी गणना से रुद्रदामा १७० वि० पूर्व (शकराजवर्ष ७२) में हुआ, अत सप्त आन्ध्रभृत्य शातकर्णि अपरनाम चुटुराजाओं का राज्यकाल अनुमानत. १७० वि०पू० से ६५ वि०पू० तक रहा। डा० जायसवाल चुटु आन्ध्रभृत्यों को ब्राह्मण मानते है— उनका गोत्रमानव्य था, जो केवल ब्राह्मणों का ही गोत्र होता है।[4] यह मत संशोधनीय है। हारीत आंगिरसगोत्रीयब्राह्मण मूल में मानव्य इक्ष्वाकु राजा मान्धाता के वंशज थे। अत: चुटु और चाटुमूल संभवत एक ही इक्ष्वाकुवंश के हो सकते हैं, अथवा चुटु और चाटु इक्ष्वाकु, हो सकता है, एक ही हो, शिलालेखों से पूर्णतथ्य का ज्ञान नहीं हो सकता, साहित्यग्रन्थों का प्रामाण्य ही इसकी पुष्टि या पूर्ति करता है जबकि पाश्चात्य और तदनुयायी भारतीय इतिहासज्ञ का मत इसमें विपरीत है।

चाटुमूल इक्ष्वाकुवंश-आन्ध्रभृत्य द्वितीय—हमारा अनुमान है कि चुटु और चाटवंश दोनों ही आन्ध्रभृत्य एक ही इक्ष्वाकुवंश के वे सात राजा हैं, जिनका पुराणों मे उल्लेख है, चार राजा चुटु भी चाटु इक्ष्वाकु ही होंगे, जिनका ऊपर उल्लेख है, अब उत्तरकालीन तीन राजा इस प्रकार थे—

१. द्र० पूर्वपृष्ठ (१००)

२. भा० अ० इ० पृ० ३०६,

३. वही, पृ० ३१०;

४. वही पृ० ३१०·

वासिष्ठीपुत्र इक्ष्वाकु श्रीचाटमूल
|
माठरिपुत्र श्रीपुरुषदत्त
|
महाराज श्रीबाहुबल[1]

डा० जायसवाल ने लिखा है कि श्रीकृष्ण ने उक्त शिलालेख को २१० ई० दिसम्बर का माना है, तथा वे स्वयं शि० ले० का समय २२० ई० मानते हैं।[2] और उक्त राजाओं का समय इस प्रकार माना है —

चाटमूल प्रथम (सन् २२०-२३० ई०)

पुरिसदत्त (सन् २३०-२५० ई०)

चाटमूल द्वितीय (सन् २५०-२६० ई०)

पुराणमत के आधार पर द्वितीय आन्ध्रभृत्यों का राज्यकाल १०० या १०५ वर्ष था, ६५ वि०पू० से ३५ वि०सं० या ४० वि०सं० तक, उपर्युक्त राजाओं का राज्यकाल होगा—

श्रीचाटमूलऐक्ष्वाक - ६५ वि०पू० ६५ वि०पू० पर्यन्त

वीरपुरुषदत्त „ ३५ वि०पू० ५ वि० सं० „

चाटमूल द्वितीय „ — ५ वि स० से ४० वि० स० „

तृतीय अन्ध्रभृत्यवंश गुप्तकाल का आरम्भ— चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य साहसाक द्वितीय गुप्तसंवत् ५६ या १३५ विक्रमसम्वत् में गद्दी पर बैठा, इससे पूर्व ४१ वर्ष समुद्रगुप्त और मध्य में ४ या ५ मास रामगुप्त गुप्तसम्राट् रहा। इसके पूर्वज चन्द्रगुप्त घटोत्कचगुप्त ओर श्रीगुप्त ने विक्रम प्रथमशती के मध्य में गुप्तराज की स्थापना की थी, इस विषय का विस्तृत विवेचन आगे, इसी प्रकरण में करेंगे। अतः गुप्त श्रीप वंशीय और आन्ध्रभृत्यतृतीय उपर्युक्त ऐक्ष्वाक चाटमूल आदि के भृत्य (सामन्त) होने चाहिये। पुराणनुसार यही क्रम व्यवस्थित होता है।

---

१. इक्ष्वाकुस सिरिचातमूलस सोदरा भागिनि रन्जो माठरीपुत्रपुतससिरिवीरपुरिसदतस (नागार्जुनीकोंडालेख, पंक्ति ५-६), तथा (संवछर) चोरं १०+४,

२. अ० भा० इ० प० ३२८.

(पुराणों में नागवंश का समय)

पुराणों में सातवाहन आन्ध्र शासनकाल के अन्तिमचरण में होनेवाले नाग राजाओं का विशिष्ट वर्णन है, इन नागराजाओं की विदिशा राजधानी थी, इसलिये इनको वैदिश कहा गया है—

नृपान् वैदिशांस्तु चापि भविष्यांस्तु निबोधत ।
शेषस्य नागराजस्य पुत्र. परपुरजय: ।
भोगी भविष्यति राजा नागकुलोद्भव ।
सदाचन्द्रस्तु चन्द्राशो द्वितीयो नखवास्तथा ।
धनधर्मास्तथा चापि चतुर्थो वगरि. स्मृत. ।
भूतनन्दिस्तथा चापि वैदिशस्तु भविष्यति ।
शुङ्गानां तु कुलस्यान्ते शिशुनन्दिर्भविष्यति ।
तस्य भ्राता यवीयास्तु नाम्ना नन्दियशा. किल ।

अतः नागवंश के ये राजा हुये—

(१) शेषनाग
(२) भोगी
(३) सदाचन्द्र = रामचन्द्र = चन्द्रांशु
(४) नखवान (नहपान)
(५) धनवर्मा = धर्मवर्मा
(६) वग्रह = वगरि
(७) भूतनन्दि
(८) शिशुनन्दि
(९) यशोनन्दि = नन्दियशा

राज्यकालावधि—पुराणों में उपर्युक्त नौ राजाओं का सम्पूर्ण या व्यक्तिगत राज्यकाल नहीं लिखा है, तथापि विन्ध्यशक्ति, प्रवीर (प्रवरसेन प्रथम) और शकराजा नखवान (नहपान) के आधार पर उपर्युक्त राजाओं का राज्यकाल निश्चित हो सकता है। इनमें चतुर्थ राजा नहपान नाग नहीं था, स्पष्टतः ही शकराजा था, जिसका विनाश गौतमीपुत्र शातकर्णि (२४वाँ सातवाहन राजा) ने किया था, जिसका राज्यकाल २४२ वि०पू० २५१ वि०पू० तक था। अतः शकराजा नखवान (नहपान) का समय २६० वि०पू० के आसपास था। नहपान ने न्यूनतम ४६ वर्ष राज्य किया, उसने कुछ समय के लिये विदिशा पर अधिकार करके नागशासन को समाप्त कर दिया, अतः पुराणों ने क्रमवश या भ्रमवश नागराजाओं मे उसे भी सम्मिलित कर लिया। नहपान का राज्यारम्भ ३०० वि०पू० से २५५ वि०पू० के आसपास था अतः उससे पूर्ववर्ती शेषनाग, भोगी और सदाचन्द्र नागों ने लगभग साठवर्ष (६० वर्ष) अवश्य राज्य किया होगा, अतः नागराज्य का आरम्भ ३६० वि०पू० के लगभग होना चाहिये।

नहपान के विनाश (२५५ वि०पू०) के पश्चात् धनवर्मा नाग ने विदिशा पर पुनः अधिकार कर लिया। प्राचीन मुद्राओं (सिक्कों) के आधार पर डा० जायसवाल ने उपर्युक्त नागराजाओं का राज्यकाल निश्चित किया है, अतः पुराण-मतानुसार इन राजवंशों का राज्यकाल इस प्रकार है—

क्र०सं०	नाम	राज्यकाल	विक्रम सं०पूर्व
१.	शेष	२० वर्ष	३६० वि०पू० से ३४० वि०पू० तक
२.	भोगी	१० ,,	३४० वि०पू० से ३३० वि०पू० तक
३.	रामचन्द्र	३० ,,	३३० वि०पू० से ३०० वि०पू० तक
४.	नहपान (शक)	४६ ,,	३०० वि०पू० से २५४ वि०पू० तक
५.	धर्मवर्मा	१० ,,	२५४ वि०पू० से २४४ वि०पू० तक
६.	वंगर	११ ,,	२४४ वि०पू० से २३३ वि०पू० तक
७.	भूतनन्दी	१० ,,	२३३ वि०पू० से २२३ वि०पू० तक
८.	शिशुनन्दी	१५ ,,	२२३ वि०पू० से २०८ वि०पू० तक
९.	यशोनन्दी	५ ,,	२०८ वि०पू० से २०३ वि०पू० तक

डा० जायसवाल ने शेषनाग का समय ११० वि०पू० से आरम्भ माना है[1], इसमें लगभग ढाई सौ वर्ष की त्रुटि है क्योंकि आधुनिक इतिहासकारों ने गुप्तों का समय इतना ही अर्वाचीन (२५० वर्ष कम) मान रखा है, अतः पुराणों के आधार पर यह त्रुटिसंशोधन किया गया है। गुप्तों का समय सातवाहनों और सभी राजवंशों के समय का निर्णायक है, जैसा कि पं० भगवद्दत्त ने माना है।

डा० जायसवाल ने उपलब्ध सिक्कों के आधार पर उपर्युक्त राज्यकाल (वर्ष) निश्चित किया, अधिक सामग्री मिलने पर इसमें संशोधन संभव है। उन्होंने इसके पश्चात् पाँच और नागराजाओं का अस्तित्व मुद्राओं के आधार पर ज्ञात किया है—पुरुषदात, उत्तमदात, कामदात, भावदात, शिवनन्दी या शिवदात। सभी १३ नागराजाओं का समय उन्होंने लगभग २०० वर्ष माना है। अतः पाँच राजाओं का न्यूनतम राज्यकाल जायसवाल के अनुसार ८७ वर्ष था; हमारा अनुमान है कि वह लगभग एकशती होना चाहिये, तदनुसार इस नागराज्य का अन्त १०० वि०पू० के निकट हुआ होगा।

भूतनन्दि और शिशुनन्दि के मध्य, शुंगों की किसी शाखा का विदिशा में शासन था।[2]

---

१. भा० अ० इ० पृ० १३-२५ तक;

२. शुङ्गानां तु कुलस्यान्ते शिशुनन्दिर्भविष्यति (ब्र० पु० ...)

नाग दौहित्र शिशुक-प्रवीर (प्रवरसेन) का पौत्र-रुद्रसेन—यह भवनाग का दौहित्र और विन्ध्यशक्तिपुत्रप्रवीर (प्रवरसेन) का पुत्र था, जो नागराज्य का उत्तराधिकारी हुआ। वाकाटक या विन्ध्यक विन्ध्यशक्ति का राज्यकाल चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से लगभग १५० वर्ष पूर्व अर्थात् १५ वर्ष वि०पू० था। हम वाकटक या विन्ध्यकवंश का कालक्रम निश्चित करने से पूर्व भारशिव या नवनागों के विषय में विचार करते हैं।

भारशिव नागवंश

डा० जायसवाल ने सर्वप्रथम भारशिव नागों का इतिहास प्रकाश मे लाया। परन्तु उन्होंने इस सम्बन्ध मे अनेक भ्रान्तियाँ भी उत्पन्न की, वे पुराणों के 'नवनाग' शब्द को किसी नागराज का व्यक्तिगत नाम समझते हैं। निश्चय ही पुराणों मे नागों की तीन राजधानियों का उल्लेख है—

"नवनागा पद्मावत्यां कांतिपुर्यां मथुरायाम्।'[१] 'नवनाग' शब्द न तो व्यक्तिगत नाम है और नहीं यहाँ 'नव' का अर्थ 'नया है पुराणों की शैली के अनुसार 'नवनाग' का अर्थ है नौ नाग (राजा) यथा मथुरा मे.

'मथुरायां चंपापुरी रम्या नागा सप्त वै।'[२] पद्मावती, कान्तिपुरी, और मथुरा के अतिरिक्त चम्पापुरी (बिहार) में भी नौ राजा हुये—नवनागा भोक्ष्यन्ति पुरी चम्पावती नृपा.। अत नागों के न्यूनतम चार वश गुप्तों से कुछ पूर्व राज्य कर रहे थे। हमारा अनुमान है कि भारशिव नागों की मुख्य मथुरा मे मथुरा के सात राजा वीरसेनादि थे, अत इन नागों का समय इस प्रकार था—

१.	वंशप्रवर्तक अज्ञात नाग[४]	२७ वर्ष	२०३ वि०पू० से १७६ वि०पू०
२.	वीरसेन	३४ ,,	१७६ वि०पू० से १४२ वि०पू०
३.	हयनाग	३० ,,	१४२ वि०पू० से ११२ वि०पू०
४	भयनाग	अनुमान से अज्ञात राज्यकाल	
		५ ,,	११२ वि०पू० से १०७ वि०पू०

१. पुराणों मे भारशिवों को नवनाग कहा है (भा० अ० इ० पृ० ५०)

२. विष्णु० पु० अ० ५

३. पु० पा० (५३), वही,

४. इसको डा० जायसवाल ने 'नवनाग' कहा है।

५. बर्हिनाग	७ ,,	१०७ वि०पू० से १०० वि०पू०
६. चरजनाग	३० ,,	१०० वि०पू० से ७० वि०पू०
७ भवनाग	३०	७० वि०पू० से ४० वि०पू०

डा० जायसवाल के अनुसार उपर्युक्त सात नागराजाओं ने १४० ई० सन् से ३२५ ई० सन् तक ठीक १७५ वर्ष राज्य किया। हमारी पुराणगणना से नवनाग या भारशिवनागवंश का उदय २०० वि०पू० के लगभग हुआ और अन्त २५ वि०पू० के लगभग हुआ, जब विन्ध्यशक्ति वाकाटकपुत्र सम्राट् प्रवरसेन प्रथम का राज्य था, विक्रमसम्वत् प्रवर्तक क्षुद्रकवंशी राजा विक्रम (शूद्रक) भी प्रवरसेन प्रथम के समकालिक था। अतः हमारे द्वारा निर्दिष्ट तिथिक्रम सत्य के निकट है। यद्यपि उपलब्ध प्रमाणों के आधारपर प्रवरसेन और भवनाग (अन्तिम नागराज) की एकदम सही तिथि तो नहीं बताई सा सकती, तथापि ४० वि०पू० से २५ वि०पू० के मध्य उनका राज्यान्त हुआ होगा, यह अनुमेय है।

डा० जायसवाल[1] ने पुराणप्रमाणों के साक्ष्य पर पद्मावती और कान्तिपुरी के नागों की वंशावली इस प्रकार निर्मित की है—

पद्मावती (टाकवंश)	कान्तिपुरी (भारशिववंश)
भीमनाग स्कन्दनाग बृहस्पतिनाग व्याघ्र ,, गणपतिनाग	डा० जायसवाल जिन वीरसेन से भवनाग तक के राजाओं को कान्तिपुरी का राजा मानते है, हमारे अनुमान से वही सप्तराजा मथुरा के शासक थे, जैसा कि पुराणों में उल्लिखित है। कान्तिपुरी और मथुरा दोनों में ही इनका ही राज्य हो सकता है।

डा० जायसवाल ने 'भावशतक' पुस्तक का सम्बन्ध गणपतिनाग से स्थापित किया है, जो सत्य हो सकता है, यह पुस्तक गजवक्त्र श्रीनागराज, जो गणपति का ही पर्याय है, को समर्पित की गई है—

नागराजं शतग्रन्थं नागराज् तन्वता।
अकारि गजवक्त्र श्रीनागराजो गिरा गुरु.॥

यह गणपतिनाग अतिप्रतापी राजा था—

"पन्नगपतयः सर्वे वीक्षन्ते गणपतिं भीता।" (पद्य ४०) डा० जायसवाल ने उपर्युक्त नागराजों का समय २१० ई० सं० से ३४४ ई० सं० पर्यन्त माना है, परन्तु

१. भा० अ० इ० पृ० ६४,

हमारी गणनासे ये सभी विक्रमपूर्वसमय में अर्थात् लगभग २०० वि० पू० से ५० वि० पू० तक मे हुये थे।

विन्ध्यक = वाकाटकवंश

पुराणपाठो में विन्ध्यशक्ति को एक नवीनराज्य का संस्थापक कहा गया है, कुलवर्णन इस प्रकार है—

विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान्।
भोक्ष्यते च समाः षष्टिं पुरीं काञ्चनकां च वै।
यक्ष्यते वाजपेयैश्च समाप्तवरदक्षिणैः।
तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति नराधिपाः॥[1]

पार्जीटर ने विष्णुपुराण का पाठान्तर लिखा है—

इत्येते वर्षशत भविष्यन्ति अधिकानि षट्।
तथा—वर्षशतं षट् वर्षाणि भविष्यन्ति।[2]

डा० जायसवाल ने अपनी पुस्तक के पृ० १०५-१०६ पर इस वर्षगणना पर अपनी टिप्पणी लिखी है—"विष्णुपुराण के सम्पादक या प्रतिलिपि करनेवाले के सामने दो अंक थे। एक तो शिशुक और प्रवीर के लिये ६० वर्ष का और दूसरा विन्ध्यशक्ति के वंश के लिये १०० या ९६ वर्ष का। ………इसलिये हम यह मान लेते है कि १०० अथवा ९६ वर्षों तक तो वाकाटकों का स्वतन्त्र शासन रहा और ६० वर्षो तक प्रवरसेन तथा रुद्रसेन ने शासन किया।"[3] पुराणों का शिशुक या नागदौहित्र यह रुद्रसेन ही था, जो प्रवरसेन के पुत्र गौतमीपुत्र का पौत्र और भवनाग (अन्तिम नागराजा) का दौहित्र था—पूर्वनागवंश (वैदिश-शेषादि नागराज) के मध्य मे पुराणों मे यह उल्लिखित है—

दौहित्रः शिशुको नाम पुरिकायां नृपोऽभवत्।[4] इस भवनागदौहित्र शिशुक रुद्रसेन और प्रवीर (प्रवरसेनप्रथम ने काञ्चनिका (काञ्चनीपुरी[5] = चनका, पुरिका - नचना, प्राकृतनाम पुलका या चलका) में ६० वर्ष राज्य किया।

वंशनाम—प्राचीनपुराणपाठो मे इस वंश को विन्ध्यक कहा गया है, जो निश्चय ही विन्ध्यप्रदेश मे निवास के कारण पड़ा, जिसके संस्थापक विन्ध्यशक्ति

---

१. पु० पा० (पृ० ५० तथा टि० सं० ३०;
२. पु० पा०० टि० सं० ३०,
३. भा० अ० इ० पृ० १४५ १६
४. पु० पा० पृ० ४०
५. कालिकापु० (३/१४/२/११)

का नाम इसीलिये पड़ा। आधुनिक इतिहासकारों ने इसका नाम 'वाकाटक' वंश लिखा है, क्योंकि शिलालेखों में यही नाम मिलता है—'कुबेरनागदेव्यामुत्पन्न उभय-कुलालंकारभूता वाकाटकानां महाराजश्रीरुद्रसेनस्याग्रमहिषी। वाकाटकानाम्महाराज श्रीदामोदरसेनप्रवरसेनजननी।'[1]

डा० जायसवाल का यह मत सत्य ही प्रतीत होता है कि मुझे ओडछाराज्य के सबसे उत्तरीभाग में चिरगाँव से छः मील पूर्व झांसी के जिले में बागार नाम का एक पुराना गाँव मिला था।[2] संभवतः इसी का प्राचीन नाम 'वाकाटक' था जिसके निवासी भारद्वाजगोत्रीय विष्णुवृद्धप्रवराज्यर्गत विन्ध्यशक्तिब्राह्मण ने इस राज्य की स्थापना की। विन्ध्यवासी होने से ही इसे विन्ध्यशक्ति कहा गया। सम्भवतः किलकिलानामकस्थान या नदी के नामसे इन्हें 'कैलकिल' भी कहते थे, विष्णुपुराण में इनको 'कैलकिलयवन' बनाया गया है, जो निश्चय ही भ्रष्टपाठ है।[3] वायुपुराण का पाठ शुद्ध है जहाँ किलकिलवृषो मे विन्ध्यशक्ति की गणना की गई है—किलकिला वृषा—कैलकिलेष्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति।[4] तथा पूर्वनागो को किलकिला का राजा कहा गया है—

किलकिलायां नृपतयो भूनन्दिश्च वंगिरिः।[5]

वंशक्रम—पुराणों मे विन्ध्यशक्ति, प्रवीर (प्रवरसेन) और उसके चार नृपतिपुत्रों का उल्लेखमात्र है, अन्य पुराणों में प्रवसेनपौत्र या भवनागदौहित्र रुद्रसेन से पूर्वतक के वाकाटक राजाओं का उल्लेख है। डा० जायसवाल ने इनकी पूरी वंशावली इस प्रकार निर्मित की है—

विन्ध्यशक्ति राजा (मूर्धाभिषिक्त)
|
सम्राट् प्रवरसेन प्रथम, प्रवीर, ६० वर्ष शासन किया
|
गौतमीपुत्र आदि चारपुत्र
|
रुद्रसेन, प्रथम, भवनागदौहित्र,
|
पृथिवीषेण, प्रथम
|

१. प्रवरसेन द्वितीय का रिद्धपुरलेख, पं० ९-१०
२. भा० अ० इ० १२५,
३ तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिलाः नृपाः। (वि० २७२/२४)
४. वायु० पाठ
५. वायु० पाठ

रुद्रसेन द्वितीय
|
दिवाकरसेन, दामोदरसेन-प्रवरसेन द्वितीय
|
नरेन्द्रसेन
|
पृथिवीषेण द्वितीय, देवसेन
|
हरिषेण

राज्यकाल अवधि—डा० जायसवाल ने पुराणों के आधार प्रवरसेनप्रथम का राज्यकाल ६० वर्ष लिखा है तथा उसके पौत्र रुद्रसेनप्रथम को समुद्रगुप्त के समकालिक माना है, वह तो ठीक है, परन्तु उन्होंने विन्ध्यशक्ति, प्रवरसेन आदि का जो काल निश्चित किया है, वह सर्वथा भ्रान्त एव ऐतिह्यविरुद्ध है।[1]

पुराणों मे विन्ध्यशक्ति से प्रवरसेन तक का राज्यकाल ९६ वर्ष लिखा है, जिसमे ६० वर्ष प्रवरसेन और उसके चार पुत्रों का राज्यकाल रहा, प्रवरसेन के पौत्र रुद्रसेन ने संभवत ४ वर्ष ही राज्य किया। शिलालेखों मे रुद्रसेन के पुत्र पृथिवीषेण तक के वाकाटक राज्यवर्ष १०० बताये गये हैं—

'वर्षशतमभिवर्धमानकोषदण्डसाधन. ।'' (बालघाटप्लेट) पृथिवीषेण और उसके पश्चात् के वाकाटक राजाओं का राज्यकाल डा० जायसवाल ने शिलालेखादि के प्रमाण्य से निश्चित किया है, इस वर्षसंख्या तो हम मानते हैं परन्तु डा० जायसवाल ने विन्ध्यशक्ति का राज्यारम्भ २४८ ई० सन् मे माना है, वह हेय एव अमान्य है।

समुद्रगुप्त ही गुप्तसंवत् का प्रवर्तक था, जो ठीक ४० वि०स० मे प्रारम्भ हुआ। डा० जायसवाल के अनुसार प्रवरसेन के पौत्र रुद्रसेन को ही समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्तिलेख मे रुद्रसेन कहा गया है। जिसको गुप्तसम्राट् ने परास्त किया, तथापि उसके पुत्र चन्द्रगुप्त शकसंवत्प्रवर्तक शकारिविक्रम ने रुद्रसेनद्वितीय से अपनी पुत्री प्रभावतीगुप्ता का विवाह किया था जो दामोदरसेन प्रवरसेन द्वितीय की संरक्षिका भी थी, यह प्रवरसेन द्वितीय ही सेतुबन्धप्राकृत महाकाव्य का रचयिता था और रघुवंशकार कालिदासद्वितीय इसका काव्यगुरु था। इसी प्रवरसेन ने

१. भा० अ० इ० पृ० १३४-१४०,

प्रवरपुर बसाया। इसका राज्यकाल न्यूनतम २३ वर्ष निश्चित किया गया है। अतः यह प्रवरसेन द्वितीय चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालिक था तथा उसका दौहित्र भी था अधिक सही यह मानना होगा कि चन्द्रगुप्तपुत्र कुमारगुप्तप्रथम और प्रवरसेन द्वितीय समकालिक राजा थे।

यद्यपि वाकाटकवंश प्रवरसेनद्वितीय के पश्चात् भी चलता रहा, तथापि वही इसवंश का अन्तिम प्रभावशाली राजा माना जाना चाहिये। अतः वाकाटक या विन्ध्यकवंश राजाओं का शुद्धतर राज्यकाल (कालक्रम) इस प्रकार था—

क्र०सं०	राजा या शासक	वर्ष	कालक्रम वि०सं० में
१.	विन्ध्यशक्ति	३६	३७ वि०सं० से ८३ वि०सं०
२. ३.	प्रवरसेन प्रथम गौतमीपुत्रादि चारपुत्र,	६०	८३ वि०सं० से १४३ वि०सं०
४	रुद्रसेन, प्रथम	४	१४३ वि०सं० से १४७ वि०सं०
५	पृथिवीषेण प्रथम	२३	१४७ वि०सं० से १७२ वि०सं० तक
६	रुद्रसेन, द्वितीय	२०	१७२ वि०सं० से १९२ वि०सं०
७ ८	प्रभावतीगुप्ता प्रवरसेन, द्वितीय	४०	१९२ वि०सं० से० २१२ वि०सं०

अनुमानत विन्ध्यशक्ति और प्रवरसेनप्रथम, संवत्प्रवर्तक शूद्रकविक्रम और प्रारम्भिक गुप्तराज्य श्रीगुप्त, घटोत्कचगुप्त और चन्द्रगुप्त आदि के समकालिक थे। रुद्रसेनप्रथम और तत्पुत्र पृथिवीषेण, प्रथम, समुद्रगुप्त के समकालिक तथा रुद्रसेन द्वितीय और प्रवरसेनद्वितीय शकारि चन्द्रगुप्त विक्रम के समकालिन थे। शाकुन्तल-कार कालिदासप्रथम, प्रवरसेनप्रथम और शूद्रकविक्रम का समकालिक था, और रघुवंशकार कालिदास द्वितीय—तीन पीढ़ियां (चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय) के राज्यकालपर्यन्त जीवित रहा। कवित्रयी—कालिदास द्वितीय, सेतुबन्धकार प्रवरसेनद्वितीय और जानकीहरणरचयिता कुमार—समकालिक थे।

वर्तमानपुराणपाठो में विक्रम की प्रथम और द्वितीयशती के राजाओं का ही विशिष्ट उल्लेख है, जैसा कि प्रवरसेनप्रथम और उसके चारपुत्रो के उल्लेख से स्पष्ट है—

'तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति नराधिपाः।"

समुद्रगुप्त और प्रवरसेनप्रथम के पश्चात् के राजाओं का प्रतिसामान्य उल्लेखमात्र है, भवनाग, समुद्रगुप्त, प्रवरसेन, विन्ध्यशक्ति आदि विक्रम की प्रथमशती के राजा थे, जिनका उत्थान मृच्छकटिककार शूद्रक (शूद्रक) विक्रम के शासन (वि०स० से ६० वि०सं० पर्यन्त) के पश्चात् हुआ था। प्राचीनग्रन्थों में विक्रमराज्य के अन्त से समुद्रगुप्त के राज्यारम्भपर्यन्त ६३ वर्ष का अन्तर था।

पंचम अध्याय

(गुप्तसमकालिक एवं गुप्तोत्तर राजा और राजवंश)

पुराणों में गुप्तसमकालिक और गुप्तोत्तरकालिक जिन राजपुरुषों या राजवंशों का संकेत है, उनकी संक्षिप्त चर्चा अथवा सिंहावलोकन यहां करते हैं। पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि विन्ध्यकवंश=वाकाटकवंश के अतीत होने पर (जो गुप्तसमकालिक ही थे) निम्न राजाओं ने राज्य किया—

१. बाह्लिक या वैवाहिक तीन राजा
२. सुप्रतीक नाभि—३० वर्ष राज्यकाल
३. शाक्यमानभव—महिषराजा—पिता ३० वर्ष राज्यकाल
४. पुष्पमित्र—पटुमित्र १३ राजा
५. मेकला मे ७ राजा ७० वर्ष
६. कौशला
७. मेघ या मघ—९ राजा
८. नैषधनलवंशीयराजा
९. विश्वफाणि—म्लेच्छ मगधसम्राट्
१०. यदुक
११. कालतोयक
१२. मणिधान्यज
१३. देवरक्षितवंश
१४. गुह
१५. कनक
१६. शूद्राभीर म्लेच्छादि।

उपर्युक्त राजाओं में अधिकांश का न तो वंशवृक्ष, न कोई पुरातात्विक अवशेष (मुद्रादि) ही मिला है। केवल मघ, कनक तथा पुष्पमित्रों का स्वल्प सा यत्र तत्र शिलालेखादि में संकेत है, अतः यथोपलब्ध प्रामाण्य के आधार पर उनका वंशक्रम और कालक्रम निश्चित करते हैं। डा० जायसवाल ने इस सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाये। उनके और अपने अनुमानों के आधार पर—

विश्वफाणी—एकमात्र यही एक गुप्तोत्तर म्लेच्छसम्राट् है, जिसका न तो वंश और न मूलजातिदेशादि का पुराणों में उल्लेख है, परन्तु इसको अतिप्रतापी—विष्णुतुल्य बताया गया है—

'विश्वफाणि' महासत्वो युद्धे विष्णुसमो बली।'

डा० का० प्र० जायसवाल इसको तुषार (कुषाण) सम्राट् कनिष्क का सामंत मानते हैं—"यह बिवस्फारि (विश्वस्फाणि) भी वही है जो सारनाथवाले शिलालेखो के बनाफर और बनस्पर है।'[2] और वे बनाफर राजपूतों को इसी की सन्तान मानते थे। डा० जायसवाल की दोनों ही कल्पनायें प्रसिद्ध एवं अप्रामाणिक हैं। क्योंकि यह विश्वफाणि म्लेच्छराट् गुप्तो के पश्चात् ही हुआ और कनिष्क का बनस्फर न्यूनतम ३०० वि० पू० का क्षत्रपमात्र था, जबकि पुराणों से प्रतीत होता है कि विश्वफाणि स्वतन्त्र सम्राट था, वह क्षत्रपमात्र नहीं। यह ३०० वि० स० के आस-पास का शासक था बनस्पर और विश्वफाणि मे न्यूनतम षट्शती (६०० वर्ष) का अन्तर था। अत: ये दोनों एक हो ही नहीं सकते और आल्हाऊदल बनाफर क्षत्रियों का भी इन दोनो से कोई सम्बन्ध स्थापित करने का कोई साधक प्रमाण नही। डा० जायसवाल का यह अनुमान सत्य के निकट है कि बनस्पर (विश्वफाणि) की आकृति हूणों की सी थी और देखने में मंगोल जान पड़ता था। (भा० अ० इ० पृ० ७७), अत: वह हूण या मंगोल तो हो सकता है परन्तु वह न तो कनिष्क का क्षत्रप था न बनस्फर राजपूतों का पूर्वज। इसका समय ३०० वि० स० के निकट होगा। महत्वपूर्ण होने से एतत्सम्बन्धी सम्पूर्ण पुराणपाठ उद्धृत किया जाता है—

मागधाना महावीर्यो विश्वस्फाणिर्भविष्यति।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् सोऽन्यान् वर्णान् करिष्यति।
कैवर्तान् पंचकाश्चैव पुलिन्दानब्राह्मणाम्स्तथा।[3]
स्थापयिष्यति राज्ञो नानादेशेषु ते जनाः।[4]
विश्वस्फाणिर्नरपतिः क्लीबाकृतीवोच्यते।
उत्सादयित्वा क्षत्र तु क्षत्रमन्यन् करिष्यति।
देवान् पितृश्च विप्राश्च तर्पयित्वासकृत् पुनः।

---

१. पाठान्तर है—विश्वफटि, विवस्फाटि;

२. भा० अ० इ० पृ० ७६

३. पाठान्तर—पुलिन्दयदुमद्रकान् (पु० पा० पृ० ५२) (क) पंचकान् के स्थान पर पञ्जनदान् (पंजाब) पाठ उपर्युक्त होगा।

४. प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्टा स्थापयिष्यति दुर्मतिः। वीर्यवान् क्षत्रमुत्साद्य पद्मावत्यां वै पुरि (पाठान्तर पु० पा० ५२)

जाह्नवीतीरमासाद्य शरीरं यास्यते बली।
संन्यस्य स्वशरीरं तु शक्रलोकं गमिष्यति ॥

उपर्युक्त श्लोकों से निम्न तथ्य ज्ञात होते हैं— (१) विश्वस्फाणि विदेशी म्लेच्छ मगध सम्राट् था। (२) उसने भारतीय क्षत्रियों का विनाश किया। (३) उसने अभारतीय (अब्राह्मण)—यदु, पुलिन्द, मद्रक (पंचनद—पंजाबी), कैवर्त शक आदि को विभिन्न प्रान्तों का अधिपति बनाया जो पश्चिमोत्तर भारत और पंजाब अफगानिस्तान, ईरानादि के निवासी थे। (४) वह हिजड़े (क्लीबाकृति) जैसा अर्थात् हूण या मंगोल था। (६) उसने अन्तकाल में भारतीयधर्म संभवतः बौद्ध या जैनधर्म को अपनाकर संन्यासी बनकर गंगातट पर शरीर त्यागा।

अन्य किसी ग्रन्थ में विश्वस्फाणि का वर्णन न होने से यह स्पष्टतया ज्ञात नहीं होता कि वह किस वंश या जाति का था। वह संभवतः बाह्लीक हो सकता है, जिसके तीन राजा पुराण में कथित हैं—"बाह्लिकास्त्रयः"।

पुष्यमित्र पटुमित्र—पुष्यमित्रों का उल्लेख स्कन्दगुप्त के भितरी स्तम्भ लेख में है—'''''''''''पुष्यमित्रांश्च जित्वा' स्पष्ट है कि त्रयोदश पुष्यमित्र और पटुमित्र राजागण गुप्तों के प्रायः समकालिक थे, परन्तु उनका देश, नाम वंश कालादि पूर्णतः अज्ञात है।

मेघ या मघ—पुराणों में पाठ 'मेघ' है तथा शिलालेखों के प्रामाण्य से 'मेघ' नाम शुद्ध प्रतीत होता है। इनके लेखों में गुप्तलिपि का प्रयोग हुआ है, अतः सिद्ध है वे प्रायः गुप्तसमकालिक ही थे।

पुराणों में मघवंश के नौ राजाओं का उल्लेख है, परन्तु नामादि अज्ञात थे—

(१) वासिष्ठीपुत्र भीमसेन	(२) कौत्सीपुत्र पोठसिरी
(३) भद्रमघ	(४) गौतमीपुत्र शिवमघ
(५) वैश्रवण	(६) भीमवर्मा

मघराजाओं के लेखों में किस संवत् का प्रयोग हुआ यह विवास्पद है। वासिष्ठीपुत्र भीमसेन के लेखों में ५१, ५२ तथा कौत्सीपुत्र पोठसिरी के लेखों में ८६, ८७ और ८८ वर्षों का उल्लेख है।

यह सब अ० अ० अल्तेकर के आधार पर ही लिखा गया है, जिसकी स्वतन्त्र परीक्षा करणीय है।[१]

---

१ भा० अ० इ० (पृ० ३१ से ३७ तक)

(क) अल्तेकरजी को शतमघ और विजयमघ नाम के दो राजाओं का और पता चला था।

(ख) डा० जायसवाल के अनुसार कोसला के सात या नौ राजा थे। (भा० अ० इ० पृ० १६१)

डा० अल्तेकर ने मघराजाओं का समय १२० ई० से ३२० ई० रखा है। हमारी गणना से इनका समय १०० वि०पू० से १२० वि०सं० पर्यन्त होने चाहिये।

मेकलादि के नृप अज्ञात—पुराणो में मेकला (नर्मदा प्रदेश) के सात विदूर (बीदर) के राजा, कोसला के राजा के नाम भी अज्ञात है, केवल महिषी (माहिष्मती) के राजा सुप्रतीकनभार का नाम पुराणो मे उल्लिखित है। इसने ३० राज्य किया—

सुप्रतीको नभारस्तु समा भोक्ष्यति त्रिंशतिम्।
शाक्यमानभवो राजामहिषीणा महीपतिः। (पु० पा० ५०, ५१ टि० ६, १०)

संभवतः शाक्ययान सुप्रतीक के पिता का नाम था। डा० जायसवाल के अनुसार ही महिषराजा सुप्रतीकभार के सिक्के मिले हैं, जिन पर लिखा है—'महाराजश्रीप्र (f) तकर।' उनका यह भी अनुमान है यह भारशिव नागराजा था।[1] इसका समय विन्ध्यक (वाकाटक) कुल के अन्त में बताया है[2] अतः इमका समय २०० वि०सं० के निकट होना चाहिये, प्रवरसेन द्वितीय के समय के पश्चात्।

नलवंशीय वैदूर्य राजा—बीदर (बरार) की राजधानी विदूर में नलवंशी नैषध राजाओं का शासन था, विष्णुपुराण (पु० पा० ५१ टि० २४) में इनकी संख्या नौ ही कही गई है—नैषधास्तु तावन्तो भूपतयो भविष्यन्ति।

तथा भागवत मे उल्लिखित है—"विदूरपतयो भाव्या नैषधास्तथैव हि। (पु० पा०, वही, पृ० ५१) पुराणवाक्य मे नैषधो को 'आमनुक्षयात्' मनुवंश के अन्त होने पर या अन्ततक राजा हुये। डा० जायसवाल ने इसके दो संभावित अर्थ लगाये हैं—"मनुओ से यहाँ अभिप्राय हारीतीपुत्र मानव्यो से है।' अथवा "वण के वंश का नाश मानवकदम्बों ने किया।"[3] अतः उनके अनुसार नैषधनलवंशीय राजाओ का अन्त २७५ से ३४५ ई० स० के मध्य हुआ और उनका उदय विन्ध्यशक्ति के साथ ही माना है। पुराणगणना से विन्ध्यशक्ति का उदय विक्रमसंवत् की प्रथमशती के पूर्वार्ध मे था, अतः नलवंशीय राजाओ का समय ५० वि० सं० से २०० वि० सं० मे होगा।

यदुक, कालतोयक, मणिधान्यज, देवरक्षित और गुह—ये यदुकादि म्लेच्छवंश विश्वस्फाणि ने स्थापित किये हुए थे। नैषध, यदुक, शैपिक और कालतोयक जनपदो का शासन मणिधान्यको ने किया, जिनकी सख्याकालादि अज्ञात है। 'देवरक्षित के वंशजो ने चम्पा, कोसला, पुण्ड्र, आन्ध्र, ताम्रलिप्त और समुद्रीयद्वीपों का शासन किया।' कलिंग, महिष और महेन्द्रपर्वतप्रदेश के जनपदो का राजा गुहसंज्ञक राजा

१. भा० अ० इ० पृ० १५८-१५६,
२. पु० पा०, पृ० ५०,
३. भा० अ० इ० पृ० १६२,

था, जिसकी पहिचान अज्ञात ही है। स्त्रीराज्य और भोजक में 'कनक' (डा० जायसवाल के मत से कंग या कान) राजा ने राज्य किया, सौराष्ट्र और अवन्ति में आभीरादि ने, सिन्धुतट, चन्द्रभागातट, कश्मीरमण्डल में शूद्रादिम्लेच्छों ने शासन किया[1] ये सभी राजा—गुहकनकादि सभी गुप्तोत्तरकालीन—विक्रम की की द्वितीयशताब्दी के अन्तकालिक राजा थे। पार्जीटर इनको ई० चौथी शती में मानता है, जो शतप्रतिशत भ्रान्तिमय है।

डा० जायसवाल ने मत में कनक (क) नाम का कदम्ब राजा कंग जो समुद्रगुप्त समकालिक था, अभी प्रमाणसाध्यप्रमेय है।[2]

(गुप्तवंशः समस्यासमाधान)

त्रुटितपुराणपाठ—वर्तमान पुराणपाठ राजवंशो के वर्णन के सम्बन्ध में मे पर्याप्त त्रुटित हुआ है। निश्चय ही पुराणो मे भविष्य के राजाओ के नाम और राज्यकाल लिखे गये थे।[3] इस सत्य की पुष्टि अन्यथा प्रकार से होती है, श्री नारायणशास्त्री ने वि० सं० १९८१ मे आज से ६५ वर्ष पूर्व किसी मत्स्यपुराणपाठ से 'कलियुगराजवृतान्त' सकलित किया, उसमें कलियुग के अन्य वंशो की भांति गुप्तवंश के राजाओं का पर्याप्त वृतान्त मिलता है। अतः वर्तमान पुराणपाठ पर्याप्त त्रुटित है, इसमे कोई सन्देह नही, तथापि "कलियुगराजवृतांत' से इस अभाव की पूर्ति हो जाती है।

वंशोद्‌भव—वेद मे कौटल्य अर्थशास्त्र पर्यन्त गुप्तसंज्ञक अनेक व्यक्ति ढूंढे जा सकते है, परन्तु उनका इस गुप्तवंश से कोई सम्बन्ध स्थापित करना असम्बद्ध है. अतः आधुनिक लेखकों की इस सम्बन्ध मे धारणायें व्यर्थ हैं।

श्रीगुप्त—अत. इस वंश का आदिपुरुष श्रीगुप्त था। इसकी वंशपरम्परा गुप्त शिलालेखो मे इस प्रकार मिलती है—समुद्रगुप्त के नालन्दालेख तथा स्कन्द गुप्त के भीतरीस्तम्भलेख मे इस प्रकार मिलती है—"चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्तुर्महा-राजश्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराजश्रीघटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छिविदौहित्रस्यमहादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्परिगृहीतो महादेव्यां दत्तदेव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः परमभागवतो महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नः

---

१. पु० पा० पृ० ५३, ५४,

२. उनका मत—"पुराणो मे कान और कनक नाम से कंग का पूरा-पूरा वर्णन मिलता है। (भा० अ० इ० पृ० ३७७)

(क) स्त्रीराज्यमूषिकजनपदान् कनकाह्वयः भोक्ष्यति (भा० अ० इ० पृ० २४०)

३. तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान्। वर्षाग्रतो प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान् (पु० पा०)

परमभागवतो महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तस्तस्य—प्रथितपृथुमतिस्वभावशक्तेः पृथुयशः पृथ्वीपते. पृथुश्रीः ।

जयति भुजबलांप्रयो गुप्तवंशैकवीरः ।
प्रथित विपुलधामा नामतः स्कन्दगुप्त ।।'[1]

इसके आगे की वंशावली द्वितीय कुमार के भीतरी मुद्रालेख मे मिलती है—

"महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तस्तस्यपुत्रस्तत्पादानुध्यातो महादेव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराजश्री ( ) स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो महादेव्या श्रीचन्द्र-देव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराजश्रीश्रीनरसिंहगुप्तस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातोमहादेव्यां श्रीमन्मित्रदेव्यामुत्पन्नः परमभागवतोमहाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः ।''[2]

उपर्युक्त रिक्तस्थान मे आधुनिक इतिहासज्ञों[3] ने पुरगुप्त का नाम पढा है जबकि अन्य प्रमाणो से ज्ञात है कि कुमारगुप्तप्रथम का उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त था, अतः हार्नले आदि का पाठ संशययुक्त है । कलियुगराजवृतान्त मे सातगुप्त सम्राटों का नाम इस प्रकार लिखित है[4]—

चन्द्रगुप्त—	७ वर्ष
समुद्रगुप्त	५१ ,,
चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य	३६ ,,
कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य	४० ,,
स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य	२५ ,,
नृसिंहगुप्त बालादित्य	४० ,,
कुमारगुप्त क्रमादित्य	४४ ,,
	योग २४३

शिलालेखों के सहाय्य मे सम्पूर्ण वंशवृक्ष इस प्रकार निर्मित होता है ।

	राजा	महादेवी (महारानी)	पुत्र
१	श्रीगुप्त	—	श्रीघटोत्कचगुप्त
२	श्रीघटोत्कचगुप्त	—	श्रीचन्द्रगुप्त

१. प्रा० भा० भ० अ० पृ० ७०, वासुदेव उपाध्याय ।
२. वही, पृ० ७४, मूललेख,
३. ज० ए० सो० लुंम १८८६, पृ ८४-१०५ में स्मिथ और हार्नले का लेख, तथा प्रा० पा० रा० इ० पृ० ४३६-४३७, रायचौधरी ।
४. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ३५० पर उद्धृत ।

३	श्रीचन्द्रगुप्त	कुमारदेवी	श्रीसमुद्रगुप्त
४	श्रीसमुद्रगुप्त	दत्तदेवी	श्रीचन्द्रगुप्त
५	श्रीचन्द्रगुप्त (द्वि०)	ध्रुवदेवी	श्रीस्कन्दगुप्त
६	श्रीस्कन्दगुप्त	चन्द्रदेवी	श्रीनृसिंहगुप्त
७	श्रीनृसिंहगुप्त	मित्रदेवी	श्रीकुमारगुप्त
८	श्रीकुमारगुप्त, (द्वितीय)		

कुमारगुप्त अन्तिम गुप्तसम्राट् था, रायचौधुरी ने 'प्राचीनभारत का राजनैतिक इतिहास पृ० ४४६ पर शिलालेखों के आधार पर गुप्तवंशावली इस प्रकार निर्मित की है—

गुप्त
|
घटोत्कच + लिच्छिविकुमारी

चन्द्रगुप्त प्रथम कुमारदेवीलिच्छवि
|
समुद्रगुप्त + दत्तदेवी

ध्रुवदेवी + देवगुप्त प्रथम (चन्द्रगुप्त द्वितीय) + कुबेरनागा
|
प्रभावती

गोविन्दगुप्त, | कुमारगुप्त प्रथम | (देवकी) अनन्तदेवी | गुत्तल के गुप्त

स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य | पुरुगुप्त + श्रीचन्द्रदेवी | घटोत्कच गुप्त

नरसिंहगुप्त (बालादित्य) | बुधगुप्त

कुमारगुप्त द्वितीय, क्रमादित्य
|
विष्णुगुप्त

(१) तथागतगुप्त
|
बालादित्य द्वितीय (भानुगुप्त)

प्रकटादित्य | वज्र

स्वयं रायचौधुरी को उपर्युक्त वंशावली पर पूर्ण विश्वास नहीं, वे स्वयं संशययुक्त थे—"परन्तु, इस विषय में दृढ़ता से कुछ भी कह सकना संभव नही है, खोज अपेक्षित हैं। (वही पृ० ४४७)

उत्तरकालीन गुप्त—दामोदरपुर प्लेट और अपशद अभिलेख के आधार पर उत्तरकालीन गुप्तवंश की इस प्रकार सूची बनाई गई है—

श्रीकृष्णगुप्त
|
श्रीहर्षगुप्त
|
श्रीजीवितगुप्त, प्रथम
|
कुमारगुप्त तृतीय
दामोदरगुप्त
|
महासेनगुप्त
|
देवगुप्त, द्वितीय, | कुमारगुप्त | माधवगुप्त
|
आदित्यसेन

इनमे कुमारगुप्ततृतीय ईशानवर्मामौखरि[1] का समकालिक था और माधवगुप्त श्रीहर्षदेव का समकालिक था।[2]

कोणादेवी + आदित्यसेन (क्रमश.)
|
देवगुप्ततृतीय
|
विष्णुगुप्त
|
जीवितगुप्त द्वितीय

गुप्त उपाधियाँ—सर्वाधिक शि० ले० एवं मुद्रादि संभवतः गुप्तराजाओं के ही मिले हैं, उनमें उनकी सामान्य और विशिष्ट उपाधियां उत्कीर्णित हैं, उनमें निम्न उपाधियां सामान्य थी—विक्रमादित्य, क्रमादित्य, आदित्य, महाराजाधिराज, परम

---

१. श्री कुमारगुप्तमिति ।
भीमश्रीशानवर्माक्षितिपशशिनः सैन्यदुग्धोद सिन्धुः। (अपशदलेख, श्लो० ४)

२. श्री हर्षदेवनिजकंगमवाञ्छया च। (वही, श्लो० १८)

भागवत, श्रीविक्रम, पराक्रम, सिंहविक्रम, व्याघ्रविक्रम, इत्यादि। परन्तु कुछ गुप्त सम्राटों की कुछ विशिष्ट उपाधियां थीं, जिन्हें निम्नसूची में लिखा जाता है—

	१	२	३	४
	समुद्रगुप्त	चन्द्रगुप्त द्वितीय	स्कन्दगुप्त	कुमारगुप्त प्रथम
१	कविराज (गन्धर्वसेन)	सहासाक	देवराज[1]	महेन्द्रसिंह
२	अश्वमेध पराक्रम	शकारि	शक्रादित्य[2]	सिंहमहेन्द्र
३	समरशतजित विजय	अजितविक्रम		गुणेश
४	पराक्रमांक	चन्द्रविक्रम		महेन्द्र

अब प्रत्येक गुप्तसम्राट् के व्यक्तिगतसम्बन्ध एवं समयादि पर विचार करते है।

चन्द्रगुप्त प्रथम—यह उदीयमान प्रथम गुप्तसम्राट् था। इसके उदय में ही बिहार के प्राचीन लिच्छिवि गणराज्य का हाथ था, क्योंकि पत्नी कुमारदेवी लिच्छिकुमारी थी तथा इसकी स्वर्णमुद्राओं पर लक्ष्मीमूर्ति तथा 'लिच्छवय.' लिखा मिलता है। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

कलियुगराजवृतान के अनुसार इसका राज्यकाल ७ वर्षमात्र था, इसके समय पर आगे विचार होगा।

समुद्रगुप्त गुप्तसंवत् प्रवर्तक—यह चन्द्रगुप्त प्रथम का प्रतापी पुत्र और सर्वाधिक शक्तिशाली गुप्त सम्राट् था. जिसने दिग्विजय के अनन्तर विजय के उपलक्ष्य मे गुप्त संवत् चलाया जैसा कि समुद्रगुप्त के नालन्दा शि० ले० पर गुप्तसवत् ५ अकित है।[3] इस संवत् को विजयराजवर्ष[4] कहने का और कोई अर्थ नही होता कि यह गुप्तसंवत् सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपनी विजय के उपलक्ष्य मे प्रवर्तित किया। यह एक सुप्रमाणित एवं सुदृढ़ ध्रुव ऐतिहासिक तथ्य है कि जब-जब भारतीय सम्राटो ने किसी महान् विजय का वरण किया, तब तब ही एक नवीन संवत् चलाया। युधिष्ठिर, क्षुद्रकविक्रम और चन्द्रगुप्तविक्रम द्वितीय ने ऐसा ही किया था। अत. गुप्त सवत् का प्रवर्तक समुद्रगुप्त ही था। यदि गुप्तसंवत् का प्रवर्तक उसका कोई पूर्ववर्ती

---

१. देवराजाख्यनामासौ भविष्यति युगाधमे (मञ्जुश्री० ६३७ श्लोक)
२. राज्ये शक्रोपमे क्षितिपशतपतेः स्कन्दगुप्तस्य ।। (कहौम शि० पं० ३)
३. प्रा० भा० प्र० पृ० मूललेख, पृ० ५०
४. चन्द्रगुप्तस्य विजयराज्यवत्सरे पंचमे वर्षे वर्तमानसंवत्सरे एकषष्ठे (मथुरालेख, वही पृ० ५१),

गुप्तराजा (श्रीगुप्त या चन्द्रगुप्त) होता तो नालन्दा शि० ले० पर गुप्तसंवत् पांच का उल्लेख अशक्य था, क्योंकि चन्द्रगुप्त प्रथम ने ही न्यूनतम ७ वर्ष राज्य किया था।

गुप्तराजाओ की एकदम ठीक तिथियाँ हमने ज्ञात कर ली है, क्योंकि गुप्त सवत् ६१ से ५ वर्ष पूर्व अर्थात् ५६ गुप्त संवत्मे चन्द्रगुप्त ने शकविजय के उपलक्ष में वि० सं० १३५ मे, शकसंवत् चलाया, अतः समुद्रगुप्त का विजयसंवत् या गुप्तसवत् वि० स० ६३ मे चलाया, जबकि उनका राज्यकाल ४१ वर्ष हो अपना उसने दिग्विजय अपने अभिषेक के पश्चात् की हो तो गुप्तसवत् ६३ वि०स० मे चलाया गया, क्योंकि प्राचीनग्रन्थो मे विक्रमसंवत् और गुप्तसंवत्प्रवर्तक समुद्रगुप्त का अन्तर ६३ वर्ष माना गया है। अत समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक ६३ वि०स० मे तथा दिग्विजय और गुप्तसंवत्प्रवर्तन भी ६३ वि० स० मे हुआ, इसके पश्चात् समुद्रगुप्त ने ४१ या ४२ वर्ष राज्य किया।

दिग्विजय और अश्वमेध--प्रयागप्रशस्ति मे कालिदासद्वितीय अपरनाम हरिषेण ने अश्वमेध के अवसर की दिग्विजय का विस्तार से वर्णन किया हैं; उनमे विजित गण्य राजपुरुष या विजित जातियों के नाम इस प्रकार हैं—

१ कोशल (दक्षिण) का महेन्द्र	२२ डबाक (,,)
२ महाकान्तार का व्याघ्रराज	२३ कामरूप (,)
३ कौराल का मण्टराज	२४ नेपाल (,,)
४ कोट्टूर का स्वामिदत्त	२५ कर्त्तृपुर (,,)
५ पिष्टपुर का राजा (अज्ञातनाम)	२६ आभीर
६ एरण्डपल्ल का दमन	२७ आर्जुन
७ काची का विष्णुगोप	२८ सनाकानीक
८ अवमुक्त का नीलराज	२९ काक
९ वेंगेय—हस्तिवर्मा	३० खरपारिक
१० पलक्क का उग्रसेन	३१ शक (राज)
११ देवराष्ट्र का कुबेर	३२ मुरुण्ड
१२ कुस्थपुर का धनञ्जय	३३ प्रत्यन्तनृपति
१३ रुद्रदेव	३४ मालवराज
१४ मतिल	३५ आर्जुनायन
१५ नागदत्त	३६ यौधेय
१६ चन्द्रवर्मा	३७ मद्रक
१७ गणपतिनाग	३८ दैवपुत्र
१८ नागसेन	३९ आभीर
१९ अच्युतनन्दि	४० षाहिषाह (ईरानी)
२० बलवर्मा	४१ सैंहलिक (मेघवर्मा)
२१ समतटराज	

उपर्युक्त समुद्रगुप्त समकालिक राजाओं की विस्तृत पहिचान के लिए यहां अवसर नहीं हैं और नहीं यह ग्रन्थ का यह विषय है, तथापि रुद्रदेव वाकाटक रुद्रसेन प्रतीत होता है और गणतिनाग का पूर्व वर्णन किया जा चुका है।[1] और गोपराज प्रथम, पल्लवों का एक राजा था।[2]

हरिषेण कालिदास—समुद्रगुप्त की एक उपाधि गन्धर्वसेन[3] थी, प्रयागप्रशस्ति में सम्राट् के कविराजत्व का प्रामाण्य प्राप्य है[3] और अब काठियावाड के राजवैद्य जीवराम कालिदास ने श्रीसमुद्रगुप्तरचित कृष्णचरित के कुछ अंश प्रकाशित किये हैं (सं० १९७७ में) इसमें समुद्रगुप्त ने स्पष्ट लिखा है कि रघुवंशकर कालिदास द्वितीय, हरिषेण[4] ने मुझे कृष्णचरित रचने में समर्थ बनाया—

प्राभावयच्च मां कर्तुं कृष्णस्यचरितं शुभम्।

यह हरिषेण कालिदास समुद्रगुप्त के पिता चन्द्रगुप्त का भी सुहृद् था।

भक्त्या चिर पितुरिहास्ति सुहृन्ममायम्।[5]

वह कुमारसचिव और विग्रहमहादण्डनायक था, तुलना करो—

कृष्णचरित	प्रयागप्रशस्ति
सन्धौ च विग्रहकृतौ महाधिकारं	महादण्डनायकध्रुवभूतिपुत्रस्य सान्धि
विज्ञः कुमारसचिवो नृपनीतिदक्ष	विग्रहिककुमारामात्यमहाहरिषेणस्य

यह हरिषेण कालिदास (द्वितीय) कुन्तलेश वाकाटक नरेश पृथिवीषेण के पिता सेतुबन्धकार प्रवरसेन द्वितीय का मित्र था यह तथ्य हरिषेणकृत अजन्ता गुहालेख से प्रमाणित है—

सर्वसेनप्रवरसेनस्य जितसर्वसेनस्तुनोऽभवत्

हरिषेणो हरिविक्रमप्रतापः स कुन्तलावान्तिकलिंगकोसलत्रिकूटलाटान्ध्र··· ···

स्पष्ट है हरिषेण कालिदास दीर्घजीवी था और उसका अनेक राजकुलों से सम्बन्ध रहा।

शकारि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय—शकसंवत्प्रवर्तक—यह तथ्य अन्यत्र इसी ग्रन्थ में सुप्रमाणित किया जा चुका है शकारि चन्द्रगुप्त विक्रम यही था इसने अपने अग्रज रामगुप्त का वध किया था। भ्रातपत्नी का वरण किया और शकसंवत् चलाया। इतने सारे प्रमाणों को अस्वीकार करने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार

---

१. भा० प्र० इ० पृ० ३५५

२. भा० प्र० इ० पृ० ३५६,

३. प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य (प्र० प्र० पृ० २७),

४. काव्येन सोऽद्य (रघुकार) इति प्रसिद्धो यः कालिदास इति लब्धमहार्हनामा हरिषेणकविर्वाग्मी शास्त्रशस्त्रविचक्षणः। (कृ० पं० श्लो० २४, २६)

५. वही० श्लो० २३,

विद्वान् संज्ञा को प्राप्त नहीं कर सकता ।[1] इस सम्बन्ध में पूर्वपृष्ठों पर पर्याप्त विचार एवं निर्णय किया जा चुका है, अतः पुनरावृत्ति पूर्णतः अनावश्यक है। यद्यपि डा० भण्डारकरसदृश प्रारम्भिक भारतीय इतिहासकार 'चन्द्रगुप्त द्वितीय को उज्जैन का विक्रमादित्य शकारि मानते थे ।[2] परन्तु यह विचार आगे नहीं बढ़ सका। परन्तु तथ्य स्पष्ट है। संभवतः शकारि द्वितीय होने के कारण गुप्तसम्राट् के पूर्ववर्ती शकारि विक्रम के चरित शकारित्व को अपने ऊपर चरितार्थ होना देखकर गुप्तों की राजधानी पाटलिपुत्र से उज्जयिनी बना ली[3] हरिश्चन्द्र गुप्त और चन्द्रगुप्त दोनों भ्राता श्रेष्ठ कवि भी थे, जिनकी परीक्षा विशाला =उज्जयिनी में हुई—जैसाकि महाकवि राजशेखर ने काव्यमीमांसा में लिखा है—

इह कालिदासमेण्ठावत्रामरसूरभारवयः ।
हरिश्चन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ॥[4]

साहसाक—अत्यन्त शूरवीरता द्वारा शकवध करने के कारण 'शकारि' के साथ 'साहसाक' उपाधि सर्वप्रथम इसी चन्द्रगुप्त विक्रम की हुई; प० भगवद्दत्त ने 'साहसाक'सम्बन्धी पर्याप्त प्रमाणों का सर्वप्रथम संकलन किया था।[5]

साहसाकसमकालिक व्यक्तिगण—इसके समकालिक निम्नलिखित कविगण का परमविद्वत्गण—प्रख्यात हुये— १ हरिषेणकालिदास द्वितीय—रघुवंशकार २ वाग्भट ३ विशाखदत्त—देवीचन्द्रगुप्तनाटककार ४ भट्टार हरिश्चन्द्र गुप्त महाकविगद्यकार ५ जैनाचार्य सिद्धसेनदिवाकर[1] ६ बौद्धाचार्य दिङ्नाग ७ वासवदत्ताकार सुबन्धु ।

बन्धुभृत्य चन्द्रगुप्त—पहिले यह अपने भ्राता रामगुप्त का भृत्य (सामन्त या सेवक) था, इसीलिए इसे विशाखदत्त 'बन्धुभृत्य कहता है—

'स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु मही पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः ।'[6]

विशाखदत्त के चन्द्रगुप्त का राजकवि होने की पूरी सम्भावना है।

---

१. प्रा० भा० अ० मू०ले० पृ० १२५-१२७
२. डा० रमेशचन्द्र मजूमदार ने भारतीय जन का इतिहास (पृ० १६३-१६८) तक रामगुप्त के सम्बन्धी को ऐतिह्य अस्वीकार करने का प्रयत्न किया है।
३. प्रा० भा० रा० इ० पृ० ४१३, रायचौधुरी ।
४. का० मी० ८ अ०; बाणभट्ट ने भी लिखा है—'भट्टारहरिश्चन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते '(हर्षचरित, प्रारम्भ में);
५. इ० भा० वृ० इ० भा० २ पृ० ३२८ से ३४२ पर्यन्त ।
६. मुद्राराक्षस, भरतवाक्यम्, श्लो० १६
७. दिङ्नामाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षास्य (मल्लिनाथ मेघदूतटीका)

राज्यकाल—शकारि चन्द्रगुप्त का राज्यकाल ३६ वर्ष था अर्थात् उसने विक्रम संवत् १३५ से १७१ वि० सं० पर्यन्त राज्य किया।

पत्नी—इसकी एक पत्नी नागकुल की थी—कुबेरनागा और ध्रुवदेवी या ध्रुवस्वामिनी सम्भवत, मुण्डराज की पुत्री थी। कुबेरनागा की पुत्री प्रभावती गुप्ता रुद्रसेन वाकाटक की पत्नी और प्रवरसेन द्वितीय की माता थी।

कुमारादित्य महेन्द्रादित्य (प्रथम)—यह शकारि का उत्तराधिकारी हुआ। कलियुगराजवृतांत में इसका राज्यकाल ४२ वर्ष लिखा है। गुप्तसंवत् ९६ से १३६ पर्यन्त के शिलालेख इसके प्राप्त हो चुके हैं, अतः कलियुगराजवृतांत का कथन प्रामाणिक है। कुमारगुप्त का उल्लेख बन्धुवर्मा के दशपुर शि० ले० में है।

उत्तराधिकारी—इस सम्बन्ध में डा० आर० वी० मजूमदार ने मे वितण्डावाद खड़ा किया कि कुमारगुप्त की मृत्यु किसी युद्ध में होगई अतः कुमारगुप्त के पुत्रों—पुरुगुप्त एवं स्कन्दगुप्त में संघर्ष (युद्ध) हुआ, अन्त मे स्कन्दगुप्त कृष्णतुल्य विजित होकर सिंहासन पर बैठा।

'हतरिपुरिव कृष्ण' देवकीमभ्युपेतः।' (भिटारीलेख)

इस आधार पर डा० रायचौधुरी ने स्कन्दगुप्त की माता का नाम भी 'देवकी' कल्पित कर लिया।'

मजूमदार और रायचौधुरी की कल्पनायें निस्सार है। पं० भगवद्दत्त ने ठीक लिखा है—"कुमारगुप्त के दूसरे पुत्र स्कन्दगुप्त की माता का नाम अभी अज्ञात है।"[१]

कुमारगुप्त का वैध उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त ही था। यह कल्पना भी निस्सार है कि प्रथम पुरुगुप्त सत्तारूढ़ हुआ। उत्तराधिकार का क्रम कलियुगराज वृतात के अतिरिक्त आर्यमंजुश्रीमूलकल्प से सुप्रमाणित है—

समुद्राख्यनृपश्चैव विक्रमश्चैव कीर्तितः।

महेन्द्रनृपवरो मुख्यः सकाराद्यो अतः परम्।

देवराजाख्यनामासौ युगाधमे।[१]

अतः क्रमशः समुद्रगुप्त (सकाराद्य) उत्तरोत्तर उत्तराधिकारी हुये।

पुरुगुप्त आदि भ्राता अन्य प्रदेश यथा पुण्ड्रभुक्ति (बंगालादि) के उपराजा

---

१. प्रा० भा० रा० इ० पृ० ४४६.

२. भा० बृ० इ० भा० २, पृ० ३४८,

३. आ० म० क० (श्लो० ६४६-४७), इसकी पुष्टि शि० ले० "लक्ष्मीः स्वयं य बरयांचकार" से भी होती है (जूनागढ़लेख, श्लोक ५)

थे। इसी प्रकार बुधगुप्तभानुगुप्तादि मुख्य गुप्तसम्राट् न होकर बन्धुभृत्य या उपराजा थे। अतः इस सम्बन्ध मे विवाद निरर्थक एवं भ्रामक है।

स्कन्दगुप्त का हूणों और पुष्यमित्रो से युद्ध विख्यात है, स्कन्दगुप्त के भीतरीस्तम्भलेख मे इसका संकेत है—

पुष्यमित्रांश्च जित्वा (पं० ११)
हूणैर्यस्य समागम्य समरे दोर्भ्यां धराकम्पिता (पं० १४).

यही तथ्य नारायणशास्त्री ने पुराण से कलिराजवृतात मे लिखा है—
स्कन्दगुप्तोऽपि तत्पुत्रः साक्षात् स्कन्द इवापरः। हूणदर्पहरश्चण्डः पुष्यसेननिषूदनः। पराक्रमादित्यनाम्ना विख्यातो धारणीतले। शासिष्यति मही कृत्स्ना पञ्चविंशतिवत्सरान्॥

स्कन्दगुप्त का राज्यकाल २११ वि० स० से २३६ वि० सं० तक रहा।

नृसिंहगुप्त बालादित्य प्रथम – इसके सम्बन्ध मे आधुनिक इतिहासलेखको मे पर्याप्त विवाद एवं भ्रम है। यथा डा० जायसवाल ने नृसिंहगुप्त के पिता प्रकाशादित्य को बुधगुप्त माना है।[१] रायचौधरी ने बालादित्य को स्कन्दगुप्तभ्राता पुरुगुप्त का पुत्र माना है।[२] परन्तु प० भगवद्दत्त ने कलियुगराजवृत्तान्त से जो श्लोक उद्धृत किये है उनसे भ्रमनिवारण होता है कि स्कन्दगुप्त निस्सन्तान था, उनके भ्राता प्रकाशादित्य (स्थिरगुप्त), जो सेनापति (बलाध्यक्ष) था, का पुत्र बालादित्य नृसिंहगुप्त स्कन्द की सम्मति से ही सिंहासनारूढ हुआ—

ततो नृसिंहगुप्तश्च बालादित्य इतिश्रुत। पुत्रः प्रकाशादित्यस्य स्थिरगुप्तस्य॥
भूपतेः नियुक्तः स्वपितृव्येन स्कन्दगुप्तेन जीवता। पित्रैव साकं भविता च-वारिंशत्समा॥

अत नृसिंहगुप्त का राज्यकाल २३६ वि०सं० से २७६ वि०सं० तक था।

कुमारगुप्त द्वितीय—स्कन्दगुप्त से कुमारगुप्तपर्यन्त के गुप्तसम्राटों को हूणो का प्रबल प्रतिरोध करना पड़ा। वाट्र्स के प्रमाण से पूर्वपृष्ठ (६८) पर लिख चुके है कि वि०सं० ३२६ या २४८ ई० मे बौद्ध आचार्यसिंह का मिहिरकुल हूण राज ने वध किया। यह समय कुमारगुप्त द्वितीय के समय पड़ता है।

कलियुगराजवृत्तान्त के अनुसार मौखरि ईशानवर्मा और कुमारगुप्त समकालिक थे।[२]

अन्य प्रमाणों एवं संकेतों से ज्ञात होता है कि मिहिरकुलहूण के अतिरिक्त मालव (दशपुर मन्दसौर) के गुप्तसामन्त मालवराजयशोधर्मा आदि भी कुमार

---

१. I. H p. 38; प्रा० भा० रा० इ० पृ० ४६

२. अन्य कुमारगुप्तोऽपि पुत्रस्तस्य महायशा.। क्रमादित्य इति ख्यातो हूणैर्युधि समाचरन्। विजित्येशानवर्मादीन् भटार्केणानुसेवितः। चतुश्चत्वारिंशदेव समा भोक्ष्यति मेदिनीम्॥

गुप्त के राज्यकाल में ही प्रबल हो चले थे। पुराणों के अनुसार इस समय गुप्तराज्य संकुचित हो गया था—

> अनुगंगं प्रयागं च साकेतं मगधांस्तथा।
> एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः।।

गुप्तराज्यकाल की अवधि—अन्तिम गुप्त शासकों के सम्बन्ध में अलबेरूनी ने लिखा है—"गुप्त दुष्ट और शक्तिशाली थे। जब उनका अन्त हो गया तब उनकी समाप्ति से उनका संवत्सर चला। वलभीसंवत् के समान गुप्तसंवत् शककाल के २४१ वर्ष पश्चात् चला।'

अलबेरूनी के उपर्युक्त कथन का स्पष्ट अर्थ है कि—(१) एक गुप्तसंवत् गुप्तों के अन्त पर चला, (२) उनका अन्त २४१ वर्ष पश्चात् हुआ (३) गुप्तारम्भ सम्वत् गुप्तान्तकाल से २४१ वर्ष पूर्व चला (४) अनेक शकसंवतों के समान गुप्त-सम्वत दो थे—एक उनके आरम्भ में चला एक दूसरी अन्तकाल में (५) गुप्तों के अन्त से ही वलभी सम्वत् चला अर्थात् ३७६ वि०सं० से या ३२० ई०सं० से, जब से कि आधुनिक लेखक फ्लीटादि गुप्तकाल का आरम्भ मानते हैं। यदि 'दुर्जनम्तुष्यतु' न्याय से यह मान लिया जाय कि गुप्तसंवत् एक ही था और वह गुप्तों के अन्तकाल से चला, तब सभी गुप्तशिलालेख कूट या जाली मानने पड़ेंगे जब गुप्तसंवतगुप्तों के अन्त ३७६ ई० में ही चला तब गुप्तों के प्रारम्भिकराजा समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्तादि उसका प्रयोग कैसे कर सकते थे, क्योंकि यह संवत् तो उनके समाप्त होने पर चला, अतः गुप्तों के अन्तपर चलनेवाले संवत् का अपरनाम ही वलभी संवत् है २४१ वर्ष बाद चला। गुप्तान्तसंवत् का प्रयोग आगे चलकर हुआ ही नहीं, क्योंकि उसी का नाम वलभी संवत् था², केवल उसी वर्ष (३७६ वि०सं०) में गुप्तों का अन्त हुआ। यह स्मृति अलबेरूनी के समय तक थी। (क)

जैनकल्कि यशोधर्मा—वाट्र्स के द्वारा अनूदित ह्वेनसांग के ग्रन्थ पृ० २७९ से सिद्ध है कि मिहिरकुल हूणराज ३१६ वि० सं० (या २५९ ई०) तक अप्रतिरुद्ध विचरण करता था अर्थात् इस समय तक वह न तो बालादित्य नृसिंहगुप्त से परास्त हुआ और न मालवनरेश यशोधर्मा से, यह घटना अन्तिम गुप्त के राज्यकाल (२७६ वि० सं०—३२० वि० सं०) के मध्य में ही हुई। इसी मध्य में यशोधर्मा भारत भारतसम्राट् बन गया, जब उसने न केवल सम्पूर्णभारत, वरन् अनेक म्लेच्छ

१. अलबेरूनी का भारत, पृ० (पृ० ७)
२. वलभ का संवत् वलभी के राजा वलभ के नाम पर है। यह संवत् शककाल के २४१ वर्ष पश्चात् (२४१+१३५=३७६ वि०सं०) है। (अलबेरूनी, पृ० ६)

(क) इसका वर्णन हम विस्तार से "भा० इ० पु० क्यों ?" में कर चुके हैं।

(भारतोत्तरदेशो) पर दिग्विजय प्राप्त की, एवं हूणाधिप मिहिरकुल को परास्त किया—ये भुक्ता गुप्तनाथैर्न सकलवसुधाक्रान्तिदृष्टप्रतापै:

नाज्ञा हूणाधिपानां·····देशान् तान् यो भुनक्ति ।

·········मिहिरकुलनृपेणार्चितपादयुग्मम् ।।[1]

यशोधर्मा के नालन्दालेख में दो बार बालादित्य महानृप का उल्लेख है—

(१) बालादित्यमहानृपेण सकलम्भुक्त्वा भूमण्डलम् ।

(२) बालादित्येन राज्ञा प्रदलितरिपुणा (प० ८, न० १६)

स्पष्ट है यशोधर्मा नृसिंहगुप्त बालादित्य के ही समकालिक था। इसका समय ३१६ वि० सं० के निकट या ठीक पश्चात् था।

उपर्युक्त दिग्विजयी मालवसम्राट् यशोधर्मा को ही सम्भवतः जैनग्रन्थों मे 'इन्द्रसुतकल्कि' कहा गया है, जिसका राज्य ४२ वर्ष था।[2] डा० जायसवाल ने पुराणोल्लित म्लेच्छहन्ता + विष्णुयशा और यशोधर्मा को एक ही माना है—

शम्भलमुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।

भवने विष्णुयशसः कल्कि. प्रादुर्भविष्यति ।

नृपलिंगच्छदो दस्यून् कोटिशो निहनिष्यति ।[3] (क)

यद्यपि आदिम या प्रथम कल्कि मगधराज प्राद्योत विशाखयूप के राज्यकाल में कलिसवत् ११०० या विक्रमपूर्व १६०० वर्ष के लगभग हुआ था, जैसा कि प्राद्योत प्रकरण मे विवेचन कर चुके हैं, तथापि वर्तमान पुराणपाठो मे गुप्तराजाओं के वर्णन के पश्चात् ही कल्किवर्णन रख दिया गया है,[3] ऐसी स्थिति मे जैनग्रन्थो ने यशोधर्मा को ही 'कल्कि' मान लिया हो तो आश्चर्य नही और डा० जायसवाल ने इस का अनुकरण किया। क्योंकि नामसाम्य (कल्कि विष्णुयशा और यशोधर्मा) में के अतिरिक्त उनके अनेक कार्यों में साम्य था—दोनो ही ब्राह्मणवश के थे तथा दोनो ने दस्यु या म्लेच्छो या विधर्मियों का हनन किया, अतः जैनाचार्यो ने यशोधर्मा को गुप्तोत्तरकालीन 'कल्कि' माना।

"·········इस सम्बन्ध मे मैंने यह निश्चय किया है कि यहा कल्कि से उस विष्णु (यशा) यशोधर्मन् का अभिप्राय. है जिसने हूणो का पूरी तरह नाश किया था" (भा० भ० इ० पृ० २८४, टिप्पणी)।

यद्यपि पुराणो का ऐसा तात्पर्य नही है। तथापि जैनियों ने अपने विरोधी सम्राट् यशोधर्मा को 'कल्कि' मान लिया हो, जो शक्य है।

---

१. मन्दसोरप्रशस्ति (प्रा० भा० प्र० अ० मू० पृ १०६ (प्रा० भा० रा० इ० पृ० ४३६)

२. द्र० भा० बृ० भा० २, पृ० २६८ पर जैनप्रमाण उद्धृत;

३. भागवत (१२/२/१८, २०);

(क) कल्कि विष्णुयशाः नामः पाराशर्यः प्रतापवान् (वायुपुराण)

संक्षिप्त संकेत

क्र० सं०	संकेत	नाम
१.	अ०, अष्टा०	अष्टाध्यायी
२.	अर्थ०	अर्थशास्त्र
३.	अ० सु०	अवन्तिसुन्दरीकथा
४.	अथर्व०	अथर्ववेद
५.	अनुशा०	अनुशासनपर्व
६	आश्व० प०	आश्वमेधिकपर्व
७	आ० श्रौ०	आपस्तम्बश्रौतसूत्र
८.	इ० पु०	इतिहासपुराण
९	उच्छ्०	उच्छ्वास
१०	ऐ० आ०	ऐतरेय आरण्यक
११	ऐ० ब्रा०	ऐतरेयब्राह्मण
१२	ऋ०	ऋग्वेद
१३	ऋक्सर्वा०	ऋक्सर्वानुक्रमणी
१४	ऋ० सं०	,,
१५	क० स०	कथासरित्सागर
१६	कर्ण०	कर्णपर्व
१७.	कल्कि पु०	कल्किपुराण
१८.	कालिकापु०	कालिकापुराण
१९.	का० मी०	काव्यमीमांसा
२०.	का० श्रौ०	कात्यायनश्रौतसूत्र
२१.	का० सं०	काठकसंहिता
२२.	कौ० म०	कौमुदीमहोत्सवनाटक
२३.	कौ० उ०	कौषीतकि उपनिषद्
२४.	कृ० च०	कृष्णचरित
२५.	च० सं०	चरकसंहिता
२६.	छा० उ०	छान्दोग्योपनिषद्
२७	जै०उ०ब्रा०	जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण
२८.	जै० ब्रा०	जैमिनीयब्राह्मण
२९	ता० ब्र०	ताण्ड्यब्राह्मण
३०	तै० आ०	तैत्तिरीय आरण्यक
३१.	तै० उ०	तैत्तिरीय उपनिषद्
३२	तै० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
३३.	तै० स०	तैत्तिरीयसंहिता
३४.	नि०	निरुक्तशास्त्र
३५	ना०प्र०प०	नागरीप्रचारिणी पत्रिका
३६.	प्रा० भा० रा० इ०	प्राचीन भारतीय रा० इतिहास
३७.	बु० च०	बुद्धचरित
३८.	बृ० उ०	बृहदारण्यकोपनिषद्
३९	ब्र० पु०	ब्रह्माण्डपुराण
४०.	बौ० श्रौ०	बौधायन श्रौतसूत्र
४१.	बृ० बृहद्दे०	बृहद्देवता
४२.	भा०बृ०इ०	भारतवर्ष का बृहद् इतिहास
४३.	भा०अ०इ०	भारत का अन्धकार युगीन इतिहास

२

४४. म० पु० मत्स्य०	मत्स्यपुराण
४५. म० स्मृ०	मनुस्मृति
४६. मु०	मुण्डकोपनिषद्
४७. मै० स०	मैत्रायणीसंहिता
४८ म० महा०	महाभारत
४९. मालविना०	मालविकाग्निमित्र
५०. मार्क०	मार्कण्डेयपुराण
५१ यु० पु०	युगपुराण
५२ रघु०	रघुवंश
५३. रा०	रामायण
५४. रा० तं०	राजतरंगिणी
५५. वा० रा०	वाल्मीकीयरामायण
५६. बृ० क०	बृहत्कथामंजरी
५७ वायु०	वायुपुराण
५८. विष्णु०	विष्णुपुराण
५९. वै०वा०इ०	वैदिकवाङ्मय का इतिहास
६० वे० द० इ०	वेदान्तदर्शन का इतिहास
६१. शत ब्रा०	शतपथब्राह्मण
६२. शां० आ०	शांखायन आरण्यक
६३. शा०	शान्तिपर्व
६४. शि० पु०	शिवपुराण
६५. शु० य०	शुक्लयजुर्वेद
६६. सं० व्या० शा० इ०	संस्कृतव्याकरण शास्त्र का इतिहास
६७. सा० द०इ०	सांख्यदर्शन का इतिहास
६८. सि० शि०	सिद्धान्तशिरोमणि
६९ हरि०	हरिवंशपुराण
७०. हि०इ० लि०	हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर
71 Ag. H.T.	Ancient Indian Historical Tradition
72 C.B.H.	combride History of India
73 R.R.	Riddle of Kamayana

पूर्वखण्ड शब्दानुक्रमणी

उत्तरभाग

सन्दर्भग्रन्थसूची

हिन्दी-संस्कृतग्रन्थ

	पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	प्र० वर्ष-स०
१.	अथर्ववेद	—	परोपकारिणी सभा अजमेर	२००१
२.	अमरकोष	प्रभाटीकायुत	चौ० सं० पुस्तकालय वाराणसी	१९२९
३.	अर्थशास्त्र	कौटल्य	मैसूर	—
४.	अलबेरुनी का भारत	सचाऊ	एस० चादकं० दिल्ली	१९६५
५.	अष्टाध्यायी	—	मलापुर मद्रास	१९३७
६	आदिमानव का इतिहास	रामदत्त सास्कृत्य	साहित्यसस्थान, चुरू (राजस्थान)	
७	आयुर्वेद का इतिहास	कविराज सूरमचद्र	शिमला	
८	आर्यों का आदिदेश	डा० सम्पूर्णानन्द	हिन्दीसाहित्य सम्मेलन प्रयाग	
९.	आर्यभटीय			
१०.	आपस्तम्ब श्रौतसूत्र	स० आर० गार्बे	रायल एसियाटिक, सोसायटी कलकत्ता	१९८२ १९०३
११	इतिहासपुराण का इतिहास	डा० व्यासशिष्य	इतिहासविद्या-प्रकाशन नागलोई दिल्ली	१९७८
१२.	ईशावास्योपनिषद्	शाकरभाष्य	गीताप्रेस गोरखपुर	१९११
१३.	इतिहासपुराण अनुशीलन	रामशकर भट्टाचार्य	इण्डोलोजीकल बुकहाउस वाराणसी	१९६३
१४.	ऐतरेयब्राह्मण	षड्गुरुशिष्यटीका	आनन्द आश्रम-ग्रन्थावली पूना	१९६३,

१५	ऐतरेयआरण्यक	सायणभाष्य	आनन्द आश्रम ग्रन्थावली पूना	१८९८
१६.	ऋक्तन्त्र	शाकटायन	मेहरचन्दलक्ष्मणदास दिल्ली	१९७०
१७.	ऋग्वेद	श्रीपाद- सातवलेकर	स्वाध्यायमण्डल औंधनगर	१९४०
१८.	ऋक्सर्वानुक्रमणी	कात्यायन	विवेकप्रा० अलीगढ़	१९७७
१९.	कात्यायनश्रौतसूत्र	कात्यायन सं० वेबर	चौखम्बा सं० सीरीज वाराणसी	—
२०.	कृष्णचरित्र	समुद्रगुप्त	रसशाला औषधालय गोंडल	१९४१
२१.	काशिका	—	चौखम्बा स० वाराणसी	१९३१
२२.	कुमारसंभव	कालिदासग्रन्थावली	किताब महल इलाहाबाद	१९८०
२३.	काठकसंहिता	श्रीपाद सातवलकर	स्वाध्यायमंडल औंधनगर	१९११
२४.	केनोपनिषद्	शांकरभाष्य	गीताप्रेस गोरखपुर	
२५.	गीतारहस्य	लोकमान्य तिलक	तिलकब्रदर्स, पूना	१९७६
२६.	चरकसंहिता	चरक	मोतीलालबनारसीदास वाराणसी	
२७.	छान्दोग्योपनिषद	शंकरभाष्य	गीताप्रेस गोरखपुर	२०१९
२८.	जैमिनीयब्राह्मण	डा० लोकेशचन्द्र	सरस्वतीविहार दिल्ली	२०११
२९.	तमिलसंस्कृति	द० शौरिराजन्	द० भारत हिन्दी प्रचारक मद्रास समिति	१९७०
३०.	ताण्ड्यब्राह्मण	चिन्नस्वामी	चौखम्बा संस्कृत सी० वाराणसी	१९९१
३१.	तैत्तिरीयोपनिषद्	—	गीताप्रेस गोरखपुर	२०१२
३२.	तैत्तिरीयसंहिता	ए० बी० कीथ	मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली	१९१४

३३.	तैत्तिरीयब्राह्मण	—	आनन्दाश्रमसंस्कृत ग्रन्थमाला पूना	१६३८
३४.	तैत्तिरीयारण्यक	सायणभाष्य	आनन्दाश्रम स० ग्र, पूना	१८६७
३५.	निरुक्तशास्त्र	पं० भगवद्दत्त	रामलाल कपूर, अमृतसर	२०२१
३६.	निरुक्तसारनिर्वचन	डा० कुला० व्यासशिष्य	इतिहासविद्या प्रकाशन दिल्ली	१६७८
३७.	निदान	बुद्धघोष	चौखम्बा सं० सी० वाराणसी	—
३८.	न्यायभाष्य	वात्स्यायन	चौखम्बा स० सी० वाराणसी	—
३६.	प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास	हेमचन्द्रराय चौधरी	किताबमहल इलाहाबाद	१६३६
४०	प्राचीन भारतीय अभिलेख	डा० वासुदेव उपाध्याय	प्रज्ञा प्रकाशन	१६७१
४१	प्राचीन भारतीय गणित	ब०ल० उपाध्याय	विज्ञान भारती, नई दिल्ली-३	१६७१
४२	बुद्ध चरित	शिवबालक द्विवेदी	विद्याप्रकाशन, कानपुर	१६७६
४३	बौधायन श्रौतसूत्र	कालैण्ड	एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता	१६१३
४४	ब्रह्माण्डपुराण	सं० जगदीश शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली	
४५	बृहद्देवता	अनु० रामकुमार राय	चौखम्बा सं० सी वाराणसी	
४६	बृहदारण्यकोपनिषद्	गीता प्रेस	गीताप्रेस गोरखपुर	२०१२
४७	भारतवर्ष बृहद् इतिहास दो भाग	प० भगवद्दत्त	इतिहासप्रकाशन मंडल दिल्ली	
४८	भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें	श्री पी एन ओक	सूर्यप्रकाशन, दिल्ली	१६६८
४६	भारतवर्ष का इतिहास	इलियट	शिवप्रसाद आगरा	
५०	महाभाष्य	वासुदेव शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी	

५१	भागवतपुराण	वेदव्यास	गीताप्रेस, गोरखपुर	
५२	महाभारत, ४ भागों में	"	गीताप्रेस, गोरखपुर	
५३	भारतीय इतिहास की रूपरेखा	जयचन्द्र विद्यालंकार		
५४	भारतीयखगोल विज्ञान	पं० जगन्नाथ भारद्वाज	मोहन ब्रदर्स अम्बाला लखनऊ	१९७८
५५	भारतीय ज्योतिष	बालकृष्ण दीक्षित		१९६३
५६	भारतीय ज्योतिष	डा०नेमिचन्द्रजैन	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली	१९८१
५७	भगवद्गीता	--	गीताप्रेस गोरखपुर	सं० २०२३
५८	मत्स्यपुराण	गुरुमण्डल ग्रन्थ-माला	कलकत्ता	१९५४
५९	मनुस्मृति	कुल्लूकभट्ट	मन्वर्थ मुक्तावली, बम्बई	१९१३
६०	मुण्डकोपनिषद्	शंकर भाष्य	गीताप्रेस गोरखपुर	
६१	मैत्रायणीसंहिता	ल० व० श्रोडर	बेबार्ण	१९८५
६२	मार्कण्डेयपुराण	श्री रामशर्मा	बरेली	१९६६
६३.	यमपितृपरिचय	प्रियरत्न आर्य	दिल्ली	२००२
६४.	यज्ञसरस्वती	म०म० मधुसूदन ओझा	जयपुर	
६५.	यजुर्वेदसंहिता	श्रीपादसातवलेकर	पारडी (सूरत)	१९५२
६६.	याज्ञवल्क्यस्मृति	वेंकटेश्वर प्रेस	बम्बई	१९००
६७.	युगपुराण	सं०डॉ० आक्मनकड	वल्लभविद्यानगर	१९५१
६८.	रघुवंशमहाकाव्य	कालिदास		
६९	वायुपुराण	वेंकटेश्वरप्रेस	बम्बई	
७०.	वाल्मीकीयरामायण	गीताप्रेस	गोरखपुर	
७१.	विष्णुपुराण	"	"	
७२.	विष्णुधर्मोत्तर पुराण	वेंकटेश्वरप्रेस	बम्बई	
७३.	वेदान्तदर्शन का इतिहास	उदयवीरशास्त्री	गाजियाबाद	
७४.	वैदिकव्याकरण	रामगोपाल	नै०प०हा० दिल्ली	

७५. वेदसंज्ञामीमांसा	युधिष्ठिर मी०	अजमेर	२०२३
७६. वेदों में भारतीय संस्कृति	ज्वालाप्रसाद ठाकुर	लखनऊ	
७७. वैदिकविज्ञान और भारतीय संस्कृति	म०प्र० गिरधर शर्मा	पटना	
७८. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भा० १	भगवद्दत्त	लाहौर	
७९. " " भाग २	,,	दिल्ली	१९७४
८०. वैदिकसम्पत्ति	रघुनन्दन शर्मा	बम्बई	२००८
८१. शतपथब्राह्मण तीन भाग	गंगाप्रसाद उपाध्याय	दिल्ली	१९६९
८२. *शांखायनब्राह्मण*	*हरिनारायण* भट्टाचार्य	*सं० कालेज कलकत्ता*	*१९७०*
८३ शाखायन श्रौतसूत्र	कार्लैण्ड	नागपुर	१९५३
८४ शाखायनगृह्यसूत्र	सीताराम सहगल	दिल्ली	
८५. शिवपुराण	नागप्रकाशन	दिल्ली	
८६. शुक्लयजुर्वेद प्राति-शाख्यम्	इन्दुरस्तोगी	चौ० सं० सी० वाराणसी	१९६७
८७ श्रीमद्भगवद् गीता	गीताप्रेस	गोरखपुर	२०२३
८८. षड्विंशब्राह्मण	बी० रामचद्र शर्मा	के०सं०वि० तिरुपति	१९६७
८९. सत्यार्थप्रकाश	स्वामीदयानन्द		
९०. सामविधानब्राह्मण	बी० रामचद्र शर्मा	के०सं०वि० तिरुपति	१९६४
९१. संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास	युधिष्ठिर मीमांसक	रामलालकपूरट्रस्ट दिल्ली	
९२. सांख्यदर्शन का इतिहास	उदयवीर शास्त्री	गाजियाबाद	
९३. स्कन्दपुराण			
९४. सुश्रुतसंहिता	चौ०सं० सीरीज	वाराणसी	२०३३
९५. स्वप्नवासवदत्ता	भास	वाराणसी	
९६. हरिवंशपुराण	गीताप्रेस	गोरखपुर	२०२५
९७. हरिवंशपुराण का विवेचन	वीणापाणि पांडेय	लखनऊ	

ENGLISH BOOKS

1	Ancient Indian Historical Tradition	Pargitar	Delhi	1978
2	Ancient India	T L Shah	—	—
3	A History of India literature	Winternitz	Delhi	1968
4	A History of Skt lit	Weber	varanasi	1961
5	A ,, ,,	Maxmuller	,,	1968
6	A ,, ,,	Macdonell	Delhi	1961
7	Arctic Home in the Vedas	L Tilak	Poona	
8	Chronology of ancient India	Sitanath Pradhan	Calcutta	
9	History of Hindustan	T Mourice	London	
10	Histories	Herodotus	,,	
11	Holy Bible		London	
12	Hindu America	Chaman Lal		
13	Śakas in India	Satyasrava	Delhi	
14	Sacred Books of East	oldenberg	Delhi	
15	The Purana Texts	Pargiter	,	
16	The Riddle of the Rāmāyaṇa	C V Vaidya	,,	
17	The Vedic Age	Pusalkar	Bhartiya Vidya Bhavan Bombay	
18	The Language	F Bodmer		
19	The Language	G Jesperon		
20	The Vedic Chrornlogy	L Tilak	Poona	
21	The Cradle of Indian History	C R Krisnmachari		
22	The Geatness that was Babylon	H W F, Saggs		
23	Vendidad (Avesta)	—		—